ॐ
श्री प्रेम रामायण
: रचयिता :
श्रीमद् राम हर्षण दास जी महाराज
टीकाकार : राम नरेन्द्र दास (नरेन्द्र प्रसाद तिवारी)
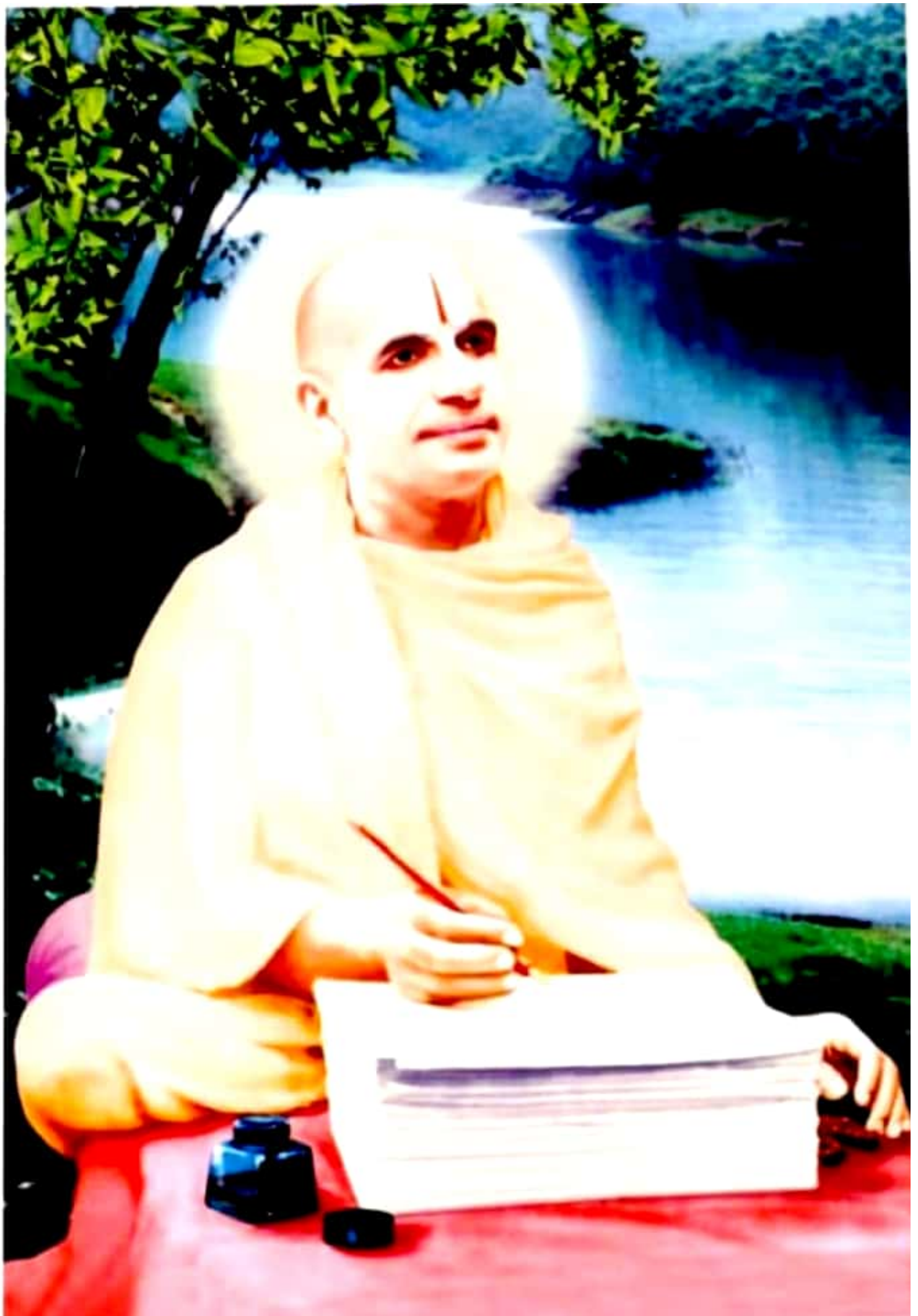
॥ नमः श्री सीतारामाभ्याम् ॥

श्री प्रेम रामायण

(टीका सहित) भाग – 2

अनन्त श्री विभूषित श्रीमद्रामानन्दीय द्वारा प्रतिष्ठापनाचार्य
वर्य स्वामिपाद

श्रीमद् योगानन्दाचार्य

वंशावतंश निखिल सन्तवृन्द वन्दित पादपद्माशेष
शास्त्र पारांगत परमहंस परिव्राजकाचार्य सिद्ध पद
प्रतिष्ठित जगदुद्धारक पण्डित प्रवर

श्रीमद् रामवल्लभाशरण महाभाग

चरणाश्रित अखिल वेद वेदांग निष्णात विशिष्टाद्वैत
सिद्धान्त प्रतिष्ठापनाचार्य पूज्यपाद

श्रीमद् अखिलेश्वर दास महाराज

चरण कमल चंचरीकेण प्रेममूर्ति पंचरसाचार्येण

श्रीमद् राम हर्षण दास

स्वामिना प्रणीतं

श्री प्रेम रामायण

(टीका सहित) भाग–2

* रचयिता :
  श्रीमद् रामहर्षण दास जी महाराज

* टीकाकार
  राम नरेन्द्र दास
  (नरेन्द्र प्रसाद तिवारी)

* प्रकाशक :
  प्रकाशन विभाग
  श्री राम हर्षण कुंज,
  परिक्रमा मार्ग,
  अयोध्या (उ.प्र.)
  पिन : 224 123

* प्रथम आवृत्ति : 200
  गुरु पूर्णिमा 12.07.2014

* मूल्य : 450/–

श्री प्रेम रामायण जी की आरती

श्री प्रेम रामायण आरती । (श्री) मुद मंगलमय भारती ॥
प्रेम प्रदायन जन मन भायन । छिन महँ भव–निधि तारती ॥
श्री प्रेम रामायण आरती...

श्री सीताराम सुगुण गण चर्चा । महा भावमय सिय पिय अर्चा ॥
नित्य धाम की सुदृढ़ नसेनी । लीला ललित सँवारती ॥
श्री प्रेम रामायण आरती...

श्याल भाम की अनुपम गाथा । प्रेम भाव परिपूरण पाथा ॥
रसमय रसिकन जीवन सरवस । निगमागम का सार सी ॥
श्री प्रेम रामायण आरती...

वायु पुत्र लक्ष्मण सम्वादा । जनकऽरु याज्ञबल्क्य अहलादा ॥
प्रेम वार्ता अम्बाओं की । भव भय भ्रम संहारती ॥
श्री प्रेम रामायण आरती...

जनक सुनैना भाव रसैनी । सिद्धि लक्ष्मीनिधि प्रिय रहनी ॥
भगिनि भाम की प्रीति अलौकिक । भक्त वृन्द निस्तारती ॥
श्री प्रेम रामायण आरती...

विरह प्रेम दृग जल की सरिता । मैथिल भाव उजागर करिता ॥
भक्ति मुक्ति अनुरक्त प्रदायिनि । वाणी श्री हर्षण देव की ॥
श्री प्रेम रामायण आरती...

———श्री सर्वेश्वर दास जी

श्री प्रेम रामायणकार की आरती

मुदित उतारहिं आरती, श्री प्रेम रामायणकार की ।

कृपा कोर वात्सल्य उदारे ।

प्रेमोच्छलित भाव हिय धारे ।

जन की प्रीति विवश रस वारे ।

प्रगटेउ प्रेम रामायण पावन, मैथिल रस आधार की ॥

कियो अमित उपकार महाना ।

दियो परम परमारथ दाना ।

प्रेम भक्ति को दृढ़ सोपाना ।

भक्त भक्ति भगवंत त्रिपुटिका, भव भेषज निरधार की ॥

श्री गुरुदेव दयालु हमारे ।

वेदोपब्रंहण चरित सम्हारे ।

विधि हरि हरहूँ से अति न्यारे ।

श्याल भाम रस रीति रसायन, पूर्ण ब्रह्म रस–सार की ॥

कल्क–जात जीवन के त्राता ।

शिष्य जनन के भाग्य विधाता ।

रघुवर श्याल भाव उद्गाता ।

राम नरेन्द्र दास हूँ पावै, कृपा प्रीति निस्तार की ॥

***

श्री प्रेम रामायण जी की आरती

आरति प्रेम रामायण जी की । मंगलमय कल कीरति नीकी ॥
कलित कृपा करुणा की काया ।
विगलित हृदय रीति रस छाया ।
भव भय नासिनि नीति अमाया ।
सद्गुरु हिय रस सिन्धु झरी की । आरति प्रेम रामायण..... ॥
सिधि लक्ष्मीनिधि जनक सुनैना ।
रहनि करनि अनुहरनि रसैना ।
मिथिला भाव भरी रस ऐना ।
रसहिं रसी श्री सिय सिय–पी की । आरति प्रेम रामायण...... ॥
भ्रात भगिनि भाभी रस गाथा ।
सरहज श्याल भाम प्रिय पाथा ।
प्रीति प्रतीति सुरीति सुक्वाथा ।
विरह प्रेममय जीवन जी की । आरति प्रेम रामायण...... ॥
रसाचार्य रस राज कहानी ।
आदि अंत लौं सत सत जानी ।
सीयराम रति रस की खानी ।
सर्वस निधि नरेन्द्र के ही की । आरति प्रेम रामायण...... ॥

***

विस्तृत विषय सूची

चित्रकूट काण्ड

वन विरह काण्ड

सम्प्रयोग काण्ड

ज्ञान काण्ड

प्रस्थान काण्ड

****

॥ नवाह्न पारायण एवं मास पारायण के विश्राम–स्थल ॥

* नवाह्न पारायण के विश्राम–स्थान *

संख्या विश्राम	पृष्ठ	काण्ड	दोहा
पाँचवाँ विश्राम	५३	चित्रकूट	६२
छठवाँ विश्राम	२०७	चित्रकूट	२४५
सातवाँ विश्राम	३६८	सम्प्रयोग	४०
आठवाँ विश्राम	५२७	ज्ञान	८६
नवमाँ विश्राम	६६५	प्रस्थान	११७

कृपया चित्रकूट काण्ड के पहले के **नवाह्न पारायण के विश्राम-स्थान** जानने के लिये श्री प्रेम रामायण-टीका सहित भाग-१ देखें.

* मास पारायण के विश्राम-स्थल *

संख्या विश्राम	पृष्ठ	खण्ड	दोहा
सोलहवाँ विश्राम	२४	चित्रकूट	२८
सत्रहवाँ विश्राम	७३	चित्रकूट	८६
अठारहवाँ विश्राम	११६	चित्रकूट	१३७
उन्नीसवाँ विश्राम	१६२	चित्रकूट	१६२
बीसवाँ विश्राम	२०७	चित्रकूट	२४५
इक्कीसवाँ विश्राम	२४७	वन विरह	१७
बाइसवाँ विश्राम	२६३	वन विरह	७१
तेइसवाँ विश्राम	३५५	सम्प्रयोग	२५
चौबीसवाँ विश्राम	४०२	सम्प्रयोग	८०
पचीसवाँ विश्राम	४४८	सम्प्रयोग	१३३
छब्बीसवाँ विश्राम	४६४	ज्ञान	५२
सत्ताइसवाँ विश्राम	५४२	ज्ञान	१०५
अठ्ठाइसवाँ विश्राम	५८८	ज्ञान	१५६
उन्तीसवाँ विश्राम	६४१	प्रस्थान	५८
तीसवाँ विश्राम	६६५	प्रस्थान	११७

कृपया चित्रकूट काण्ड के पहले के **मास पारायण के विश्राम-स्थान** जानने के लिये श्री प्रेम रामायण- टीका सहित भाग-१ देखें.

*****

ॐ नमः श्री सीतारामाभ्यां

॥अथ श्री प्रेम रामायण॥

卐 श्री चित्रकूट काण्ड 卐

श्लोक– चित्रकूट समासीनौ, मुनिमध्ये प्रतिष्ठितौ।
सेव्यमानौ लक्ष्मणेन, सीतारामौ नमाम्यहम् ॥१॥

श्री चित्रकूट गिरि में विराजे हुए, मुनियों के मध्य प्रतिष्ठित व श्री लक्ष्मण कुमार जी के द्वारा सेवित श्री सीताराम जी को मैं प्रणाम (नमन) करता हूँ।

श्री लक्ष्मणाञ्जनी सूनू, वक्ता श्रोता शुभ प्रदौ।
प्रेमानन्द सदा मत्तौ, बन्देऽहं करुणाकरौ ॥२॥

"श्री प्रेम रामायण जी" के शुभ प्रदायक वक्ता व श्रोता तथा सदैव प्रेमानन्द में मतवाले व करुणा के भण्डार श्री लक्ष्मण कुमार जी तथा अंजनी नन्दन श्री हनुमान जी की मैं वन्दना करता हूँ।

चित्रकूट गिरिं श्रेष्ठं, राम लीला शुभस्थलम्।
बन्देऽहं बन्दनीयं तं, भक्त–सिद्धि प्रदं सदा ॥३॥

जो सभी पर्वतों में श्रेष्ठ, श्री राम जी महाराज के चरित्रों के शुभ स्थल व भक्त–जनों को सदैव सिद्धि प्रदान करने वाले हैं उन त्रिभुवन वन्दनीय 'श्री चित्रकूट गिरि जी' की मैं वन्दना करता हूँ।

सुनेत्रा कैकयी पुत्रौ, राम प्रेम परिप्लुतौ।
प्रणमाम्यहं भक्त्या च, विरहेणातुरौ सदा ॥४॥

महारानी श्री सुनैना जी व महारानी श्री कैकेयी जी के प्रिय पुत्र, श्री राम जी महाराज के प्रेम से परिपूर्ण व श्री सीताराम जी के विरह में सदैव परम व्याकुल, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी तथा श्री भरत लाल जी को मैं भक्ति पूर्वक प्रणाम करता हूँ।

सो0– सद्गुरु चरण ललाम, बार बार बन्दन करौं।
भक्त हृदय विश्राम, वितरय चारु चरित्र यह ॥

मैं अपने श्री सद्गुरु देव भगवान के सुन्दर चरण कमलों की बारम्बार वन्दना करता हूँ जिनकी कृपा से भक्तजनों के हृदय में यह सुन्दर चरित्र "श्री प्रेम रामायण", परम विश्रान्ति प्रदान करने वाला सिद्ध होगा।

सीय राम दोउ पुरिहिं सहर्षा। निवसत बीते बारह वर्षा ॥
जनक सुनैनहिं हर्ष विशेषी। आनन्दमय सियरामहिं पेखी ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि– हे पवन नन्दन श्री हनुमान जी! इस प्रकार श्री सीताराम जी को दोनों पुरियों (श्री अवध व श्री मिथिला) में हर्ष पूर्वक निवास करते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो

गये। आनन्दस्वरूप, अपने प्रिय पुत्री व जामाता श्री सीताराम जी को देखकर श्री जनक जी महाराज व श्री सुनैना अम्बा जी को विशेष हर्ष हो रहा था।

तैसहिं जनक सुवन अनुरागा । सहित नारि नित बढ़ै अदागा ॥
भगिनि भाम लखि आनन्द रूपा । स्वयं सनैं सुख सिन्धु अनूपा ॥

उसी प्रकार श्री सीताराम जी के प्रति जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी का अपनी पत्नी श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित, विशुद्ध प्रिय–प्रेम नित्य बृद्धि को प्राप्त हो रहा था तथा वे आनन्दस्वरूप अपने बहन–बहनोई को देख–देखकर स्वयं अनुपमेय सुख के सागर में समवगाहन करते रहते थे।

तिरहुत राउ सुखद शुचि बानी । बोले सरस बोलाय स्वरानी ॥
देवि राम यश विशद विशाला । छाय रहेव त्रिभुवन यहि काला ॥

एक दिन तिरहुत नरेश श्री जनक जी महाराज अपनी महारानी श्री सुनैना जी को बुलाकर रस से भरी हुई वाणी बोले– हे देवि, सुनयने! श्री राम जी महाराज का व्यापक और महद्यश इस समय तीनों–लोकों (सुर, नर तथा नाग) में छाया हुआ है।

मानत जग जेहिं प्राण समाना । सुखी होहिं मुख पेखि सुजाना ॥
सकल दिव्य गुण तिन्ह पहँ आई । करि करि वरण वसे हिय छाई ॥

जिन्हें सम्पूर्ण संसार अपने प्राणों के समान मानता है वे सर्वज्ञ प्रभु, हमारे मुखोल्लास को देखकर सुखी होते हैं। सभी दिव्यातिदिव्य गुण श्री राम जी महाराज के समीप आ, उन्हें वरण कर उनके हृदय में अपना निवास बना लिये हैं।

दो०– नीति प्रीति परमार्थ पद, स्वार्थ सत्य को रूप ।
जानैं रघुपति एक जग, अमल यथार्थ अनूप ॥१॥

यथार्थ में सुन्दर नीति, प्रीति, परमार्थ व स्वार्थ के निर्मल तथा अनुपमेय सत्य स्वरूप को संसार में एक मात्र रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज ही जानते हैं।

सुनहु प्रिया नित चारिहु वेदा । राम हिये महँ वसत अखेदा ॥
प्रगटे राम आचरण माहीं । जग कहँ सो साकार लखाहीं ॥

हे प्रिये! सुनिये, "चारों वेद" श्री राम जी महाराज के हृदय में सुख पूर्वक नित्य निवास करते हैं तथा श्री राम जी महाराज के आचरण में प्रगट होकर सम्पूर्ण संसार को साकार दिखाई पड़ते हैं।

धर्माचरण सार कर सारा । करहिं राम अवधेश कुमारा ॥
काम क्रोध लघु लोभ विहीना । माया मोह पार परवीना ॥

अवधेश नन्दन श्री राम जी महाराज सभी धर्मो के सारभूत तत्व के समान आचरण करते हैं तथा वे काम, क्रोध व अल्प लोभ से भी रहित, माया–मोह के परे व परम प्रवीण हैं।

सूक्ष्म अहं के पार प्रभावा । कहहिं तत्वदर्शी चित लावा ॥
कवि कोविद गुणि ज्ञान विरागी । पण्डित परम कामनहिं त्यागी ॥

उन्हें "परमार्थ–तत्व–दर्शी" जन अपने चित्त में ध्यान कर, सूक्ष्म अहंकार के पार प्रभाव वाला बताते हैं। श्री राम जी महाराज सर्वज्ञ, सभी कलाओं के भली प्रकार ज्ञाता, परम गुणवान, ज्ञानवान, वैराग्यवान, प्रवीण तथा सम्पूर्ण कामनाओं से विहीन हैं।

अहहिं सुलक्षण धाम उदारा । अकथ अगाध अनूप अपारा ॥
राम समान राम सुनु रानी । सम अतिशय नहिं विश्व देखानी ॥

वे समस्त शुभ लक्षणों के निवास स्थल, परम उदार, अकथनीय, अथाह, अनुपमेय तथा असीम हैं। हे महारानी जी! श्री राम जी के समान तो, श्री राम जी महाराज ही हैं उनके समान अथवा उनसे अधिक इस संसार में कोई भी नहीं दिखाई देता।

दो0– बैरिहुँ पापिहुँ राम यश, सुनत श्रवण सुख मान ।
करहिं बड़ाई मोद मढ़ि, राम दिव्य गुणखान ॥२॥

श्री राम जी महाराज के शत्रु व अतिशय पापी भी उनकी कीर्ति को अपने श्रवणों से सुनकर सुख सम्प्राप्त करते हैं तथा आनन्द में आवृत होकर उनकी प्रशंसा करते रहते हैं कि– श्री राम जी महाराज दिव्यातिदिव्य गुणों के भण्डार हैं।

सुर नर मुनि अग जग समुदाई । सबहिं लगैं सुखकर रघुराई ॥
सबके हिय यह अति अभिलाषा । राम स्वामि हम सब नित दासा ॥

जड़–चेतनात्मक अखिल संसार तथा देवता, मनुष्य व मुनि समुदाय सभी को श्री राम जी महाराज अत्यन्त सुखकर लगते हैं। उन सभी के हृदय में यही महान लालसा रहती है कि– श्री राम जी महाराज हमारे स्वामी और हम नित्य उनके सेवक बने रहें तथा–––

नृप दशरथ सब पर करि नेही । रामहिं अब युवराज करेहीं ॥
मंत्रिहुँ सकल चहहिं यह बाता । सुमिरि सुमिरि प्रभु पुलकित गाता ॥

–––चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज हम सभी पर स्नेह करते हुए अब श्री राम जी महाराज को युवराज पद प्रदान कर दें। उनके सभी मन्त्रीगण भी यही चाहते हैं तथा प्रभु श्री राम जी महाराज का स्मरण कर कर पुलकित शरीर हो जाते हैं।

तहाँ एक संशय बड़ भारी । मोहि बताये नरपति प्यारी ॥
कैकइ कर जब भयो विवाहा । कीन्ह प्रतिज्ञा दशरथ नाहा ॥

परन्तु हे प्रिया जी! इस बात में, एक बड़ा भारी सन्देह है जो चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने मुझे बताया था कि– जब महारानी श्री कैकई जी का विवाह हुआ था उस समय श्री दशरथ जी महाराज ने प्रतिज्ञा की थी कि––––

लही राज पद पुत्र तुम्हारा । श्वसुर रुची रखिहौं सह दारा ॥
अहै विरोधी बात महानी । होइहिं जो विधि लिखा प्रमानी ॥

–––तुम्हारा पुत्र ही राज्य पद प्राप्त करेगा तथा मैं अपनी रानियों सहित अपने श्वसुर कैकय नरेश की इच्छा को पूर्ण करुंगा। यही एक विरोधाभास प्रतीत होता है, तथापि, होगा तो वही जो श्री

ब्रह्मा जी ने नियत कर उनके भाग्य में लिख दिया होगा।

दो0– रानि कहेव सुनु प्राण प्रिय, यदपि अहै सत बात ।
तदपि सखे रघुवंश महँ, अनुचित काम दिखात ।।3।।

श्री जनक जी महाराज के वचन सुनकर महारानी श्री सुनैना जी ने कहा हे प्राण प्रियतम! यद्यपि आपकी यह बात सर्वथा सत्य है, तद्यपि हे आत्म सखे! श्री रघुकुल में यह कार्य अनुचित दिखाई पड़ता है।–––

जेठ सुबन्धु रहत कोउ नाहीं। किये राज नृप रघुकुल माहीं ॥
भरत अहैं श्रुति धर्म धुरीना। सो किमि करिहैं राज प्रवीना ॥

–––क्योंकि श्री रघुकुल में ज्येष्ठ भ्राता के रहते किसी भी राजकुमार नें राज्य नहीं ग्रहण किया फिर श्री भरत लाल जी तो वेद तथा धर्म की धुरी (आधार) व परम कुशल हैं, वे अयोध्या पुरी के राज्य पद का कैसे ग्रहण करेंगे।–––

राम प्रेम मूरति मन हारे । अमल अकाम सेव गुन वारे ॥
वरवश राज दिहेहु नहि लेहीं । मोहि प्रतीति हिये महँ एहीं ॥

–––धर्मात्मा श्री भरत जी को श्री राम प्रेम की मूर्ति, अपने मन को श्री राम जी पर न्योछावर किए हुए, परम निर्मल, निष्काम तथा सेवा परायण ही समझिये, वे हठ पूर्वक देने पर भी राज्य–भार नहीं ग्रहण करेंगे, मुझे हृदय में यही विश्वास हो रहा है।

प्रेम देश के भरत स्वराटा । राम प्यार भोगहिं भव काटा ॥
स्वारथ सुख परमारथ सारा। भरत राम हित आतम वारा ॥

–––श्री भरत लाल जी, प्रेम राज्य के स्वयमेव सम्राट हैं तथा भव सुख को त्याग कर श्री राम जी महाराज के प्रेम का ही उपभोग करते हैं। उन्होने तो स्वार्थ का सुख (शारीरिक सुख), परमार्थ का सार (आत्म सुख) यहाँ तक कि अपनी आत्मा को भी श्री रामजी महाराज के सुख के लिए न्योछावर कर दिया है।

राम सुचाह चाह निज मानी । लखि रुख तासु रहहिं हित जानी ॥
निज सुख गंध स्वप्नहूँ नाहीं। प्रभु सुख सुखी सो नित्य लखाहीं ॥

श्री भरत लाल जी ने श्री राम जी महाराज की इच्छा को ही अपनी इच्छा समझ लिया है तथा श्री राम जी महाराज की रुचि देखकर चलने में अपना हित समझते हुए तद्वत रहते हैं। उनके हृदय में अपने सुख की किंचित कामना स्वप्न में भी नहीं आती, वे प्रभु श्री राम जी महाराज के सुख में ही नित्य सुखी दिखाई पड़ते हैं।

दो0–सो किमि रहतेहिं राम के, बनिहैं अवध नृपाल ।
कौशल पति कौशिल सुअन, होइहैं सत महिपाल ॥४॥

अतः वे श्री राम जी महाराज के रहते हुए किस प्रकार श्री अयोध्यापुरी के राजा बनेंगे? अतएव

सत्य यही है कि श्री कोशल नरेश चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज व महारानी श्री कौशिल्या जी के कुमार रघुनन्दन श्री राम जी महाराज ही श्री अयोध्यापुरी के 'सम्राट' होंगे।

कहेउ जनक मोरेउ मन माहीं। निश्चय अहै जौन तुम पाहीं ॥
हमरे भरत और रघुवीरा। इक सम अहैं कहौं मन थीरा ॥

श्री सुनैना जी की वाणी को श्रवण कर श्री जनक जी महाराज ने कहा– हे प्रिये! मेरे मन में भी वही निश्चय है जो तुम्हारे मन में है। परन्तु हमारे लिए तो श्री भरत जी और श्री राम जी दोनों एक समान हैं, मैं यह भाव स्थिर–चित्त से कह रहा हूँ।–––

बैठहिं कोउ सिंहासन माहीं। राग द्वेष बिनु सुख हम पाहीं ॥
राम अकाम नित्य सुख मगना। करैं न मन महँ राज कुलगना ॥

–––उनमें से कोई भी राज्य सिंहासन में विराजें हम लोग तो बिना राग (आसक्तिꣳ और द्वेष (अमर्ष) के सुख ही प्राप्त करेंगे। श्री राम जी महाराज तो सदैव निष्काम व शाश्वत सुख में मग्न रहने वाले हैं, वे अपने मन में भी राज्य प्राप्त करने की दुराशा नहीं रखते।–––

बिना राज पद सबके राजा। बने अहहिं तिहुँ लोक विभ्राजा ॥
सुर नर मुनि सब धाकहिं मानत। कौशिल्या सुत धन्य बखानत ॥

–––श्री राम जी महाराज तो बिना राज्य पद प्राप्त किये ही सभी के राजा (शासक) होकर तीनों लोकों में सुशोभित हो रहे हैं। देवता, मनुष्य तथा मुनि सभी उनका अनुशासन मानते हैं तथा यही कहते हैं कि– कौशिल्या नन्दन श्री राम जी महाराज धन्य हैं।–––

बिना बनाये स्वयं विराटा। सब विधि पूरण जाकी ठाटा ॥
ताकी कमी नेक कहुँ नाहीं। मानत सबै प्राण प्रिय जाहीं ॥

–––वे तो बिना बनाये हुए ही, स्वयमेव महान हैं। जिनका वैभव सभी प्रकार से परिपूर्ण है व जिन्हें समस्त जीवधारी प्राणों से प्रिय मानते हैं उनके लिए कहीं भी कोई कमी नहीं है।

दो0– संशय सब विधि त्यागि नित, सुमिरहु श्री भगवान।
होनी होय सो होवही, मानहु प्रिया प्रमान ॥५॥

अतएव हे प्रिया जी! आप मेरी बात को सत्य समझिये व सभी प्रकार के संदेहों का त्यागकर श्री भगवान का स्मरण कीजिये, जो कुछ भवितव्यता है वह तो होगी ही।

सुनि पति बचन सुनैना रानी। सम संतोष हृदय महँ आनी ॥
सीय राम पद प्रेम अतीती। बढ़त नित्य रिस रागहिं जीती ॥

अपने प्राणपति श्री विदेहराज जी महाराज के वचनों को सुनकर महारानी श्री सुनैना अम्बा जी ने अपने हृदय में समत्व और संतोष भाव को धारण किया तथा उनके हृदय में क्रोध (द्वैष) व राग (आसक्ति) को जीत कर, श्री सीताराम जी के चरणों में अत्यधिक प्रेम नित्य वृद्धिंगत होने लगा।

जनक सुअन अरु सिद्धि कुमारी। सुमिरहिं नित्य राम सिय प्यारी ॥
बढ़त हृदय नित नव अभिलाषा। रामहिं सेवहिं नित रहि पासा ॥

इधर जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जू तथा श्रीधर नन्दिनी श्री सिद्धि कुँअरि जू श्री सीताराम जी के प्रेम का स्मरण नित्य ही करते रहते थे। उनके हृदय में नित्य नवीन इच्छा बढ़ती रहती थी कि– हम श्री राम जी महाराज के समीप रहते हुए नित्य उनकी सेवा करें तथा–––

पद युवराज लहैं रघुराई। नयन लाभ सब जगहिं सुहाई ॥
कुँअर कहहिं निज प्रियहिं बुलाई। मम मनकाम सुनहु बहुताई ॥

–––श्री राम जी महाराज श्री अयोध्यापुरी का युवराज पद प्राप्त करें जिससे नेत्रों का यह परम सुन्दर लाभ सम्पूर्ण संसार को संप्राप्त हो। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी प्रिया श्री सिद्धि कुँअरि जी को बुलाकर कहते हैं कि– हे प्रिया जी! आप मेरी महद् मनोभिलाषा श्रवण कीजिये।–––

अवध राज पद पावहिं रामा। त्रिभुवन आश यहै सुख धामा ॥
साथहिं मम भावी अधिकारी। लहैं राम सिय होहुँ सुखारा ॥

–––सुख के धाम स्वरूप श्री राम जी महाराज श्री अयोध्यापुरी के राज्य पद को, तो प्राप्त ही करें, यह तो तीनों लोकों की महान अभिलाषा है, साथ ही, मेरे भावी राज्य पद (श्री मिथिलापुरी के राज्य) को भी श्री सीताराम जी ग्रहण करें, तभी मैं सुख प्राप्त करूँगा।

दो0– मिथिलापुर साकेत पुर, एक छत्र अभिराम।
करहिं अकण्टक राज सुख, युग युग सीताराम ॥६॥

इस प्रकार श्री सीताराम जी श्री मिथिला व श्री अयोध्या, दोनों पुरियों का एक छत्र, निर्विघ्न युगों–युगों तक, सुन्दर राज्य शाासन करते हुये सुख प्राप्त करें।

मोरे सरवस प्राण पियारे। सीय राम नित रहैं सुखारे ॥
भाम भगिनि सुख मम सुख प्यारी। अहैं नित्य दोउ प्राण अधारी ॥

मेरे सर्वस्व, प्राण–प्रिय श्री सीताराम जी नित्य सुखी रहें, हे प्रिये! मेरे बहन और बहनोई श्री सीताराम जी का सुख ही मेरा सुख है तथा वे दोनों नित्य ही हमारे प्राणों के आधार हैं।

आत्मा मोर सत्य सिय रामा। सब विधि नित्य सहज सुखधामा ॥
ताते उनकर जो कछु मोरा। नित्य सहज निरुपाधि अथोरा ॥

श्री सीताराम जी नित्य ही सभी प्रकार से सहज, सत्य व सुख स्वरूप मेरी आत्मा हैं इसलिए मेरा जो कुछ भी है वह सभी नित्य सहज, निरुपाधिक और पूर्णतया उनका है।

राम राज सब विधि मम राजा। श्री वैभव सुख तेज सुभ्राजा ॥
प्रभु कर यश बहु पूजा माना। सब कछु मोर सहज जिय जाना ॥

श्री राम जी महाराज का राज्य (शासन) सभी प्रकार से मेरा राज्य ही है क्योंकि उनके राज्य में मैं, लक्ष्मी, सम्पदा, सुख, तेज आदि से स्वयमेव सुशोभित रहूँगा तथा प्रभु श्री राम जी महाराज की

महान कीर्ति, पूजा, और आदर आदि को मेरा हृदय सहज ही अपनी समझता है।

प्रभु सों अलग स्वत्व हिय आनी। चहौं न कछु सुनु प्रिया प्रमानी॥
अलग होय कछु नेकहुँ चाहूँ। लगै आगि तेहि महँ पतियाहू॥

हे प्रिये! आप, मेरा निश्चय सुनिये! मैं प्रभु श्री राम जी महाराज से अलग, अपने हृदय में किसी भी प्रकार के स्वत्व (अधिकार) को समझकर कुछ भी नहीं चाहता। यदि मैं उनसे पृथक होकर किसी वस्तु की किंचित भी कामना करूँ तो उसमें आग लग जाये, आप, मेरी बात पर सर्वथा विश्वास कीजिये।

दो०– राम रहित मुक्तिहिं प्रिया, तृण सम गुनि नहि चाह।
सरवस मोरे राम सिय, तिन बिन मोहि सब दाह॥७॥

हे प्रिये! श्री राम जी महाराज के बिना मैं मुक्ति पद (मोक्ष पद) को तृण के समान तुच्छ समझकर उसकी भी कामना नहीं करता। मेरे तो श्री सीताराम जी ही सर्वस्व हैं उनके बिना सभी कुछ मेरे लिए जलन उत्पन्न करने वाला है।

नाते राम सबहिं प्रिय मोरे। सुख दुख प्रभु प्रसाद हिय लोरे॥
सुनि पिय वचन सिद्धि सरसानी। बोली सहज सरल मृदु बानी॥

श्री राम जी महाराज के सम्बन्ध से ही मुझे सभी कुछ प्रिय है तथा यह सुख और दुख तो हृदय में लहरों के समान आता–जाता हुआ, प्रभु श्री राम जी महाराज का प्रसाद है जो मुझे सुखपूर्वक स्वीकार है। अपने प्राणपति श्री लक्ष्मीनिधि जी के वचनों को सुनकर श्री सिद्धि कुँअरि जी प्रसन्न हुई तथा सहज, सरल व कोमल वचनों से बोलीं–––

जो कछु कहहु सत्य पिय सोई। मोरेहु हिय अस निश्चय होई॥
राम सिया प्रिय करिबे हेतू। जीव यतन करि साधन चेतू॥

–––हे प्राण प्रिय स्वामिन! आप जो कुछ भी कह रहे हैं, वही सत्य है व मेरे हृदय में भी ऐसा ही निश्चय हो रहा है। श्री सीताराम जी का प्रिय, करने के लिए ही जीवों को सजगतया साधन करने का उपाय करना चाहिए–––

नतरु अन्यथा जाय समूला। मूली खेत यथा प्रतिकूला॥
आपन स्वत्व राम कहँ देहीं। सदा अभय मोहिं सहित रहेहीं॥

–––नहीं तो हे नाथ! प्रभु की इच्छा के विपरीत चलने में जीव, जड़ के सहित उसी प्रकार विनष्ट हो जाता जैसे प्रतिकूल परिस्थितियों में मूली का खेत। मेरी तो यही कामना है कि– आप अपना सर्वस्व श्री राम जी महाराज को समर्पित कर मेरे सहित नित्य, निर्भय हो जाइये।।

सत पूँछहिं तो निज कछु नाहीं। सरवस स्वयं राम कर आहीं॥
मैं अरु मोर शब्द व्यवहारा। केवल है अज्ञान प्रकारा॥

अगर सत्य पूछें तो अपना कुछ भी नहीं है, सभी जीवों का सर्वस्व तो स्वयं ही, श्री राम जी महाराज का है। मैं और मेरा शब्द तो व्यवहार के लिए व केवल अज्ञान का प्रकार है।

दो0– ताते मिथिला अवध नित, राज राम कर होउ ।
देखि देखि नित सुख लहहिं, आनँद साने दोउ ॥८॥

इसलिए मेरी तो यही कामना है कि– श्री मिथिला व श्री अयोध्या (युगल पुरियों) में नित्य ही श्री राम जी महाराज का राज्य–शासन हो तथा हम दोनों आनन्द में सने हुए नित्य उन्हें देख–देखकर सुख प्राप्त करते रहें।

मम सह नाथ करैं सेवकाई। जीवन लाह लेहिं अपनाई ॥
लली किशोरी के प्रिय हेतू। सरवश त्यागि इहै चित चेतू ॥

हे मेरे स्वामी! मेरे सहित आप श्री सीताराम जी की सेवा करें तथा जीवन धारण करने के लाभ को अपना लें। हम अपनी लाड़िली किशोरी श्री सिया जू के प्रिय व हित के लिए अपना सर्वस्व त्याग कर प्रसन्न चित्त बने रहें।–––

निज सुख मूल लली कहँ जानी। सेवहिं दोउ मोद मन आनी ॥
प्रिया बचन सुनि हर्ष कुमारा। बेलि बढ़ै जनु साख सहारा ॥

–––पुनः अपनी लाड़िली श्री सिया जू को समस्त सुखों की मूल जानकर हम दोनों मन में आनन्द प्राप्त करते हुए उनकी सेवा करें। अपनी प्रियतमा श्री सिद्धि कुँअरि जी के वचनों को सुनकर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी उसी प्रकार प्रफुल्लित हुए जैसे लता (बेलि) शाखा का आश्रय प्राप्त कर सुख पूर्वक वृद्धि प्राप्त करती है।

याही विधि नित मिथिला वासी । राम कुशल चाहत अति आसी ॥
लहहिं राम अब पद युवराजा। करहिं मनोरथ सकल समाजा ॥

इस प्रकार सभी श्री मिथिलापुर–वासी नित्य श्री राम जी महाराज की कुशल–कामना अत्यन्त आशान्वित होकर करते रहते थे कि– अब श्री राम जी महाराज युवराज पद प्राप्त कर सम्पूर्ण समाज सहित हमें पूर्ण मनोरथ कर दें।

यहि सुआश कछु दिन चलि गयऊ । मैथिल मनहिं मोद नित भयऊ ॥
एक दिवश अवधहिं ते आये। मैथिल राजदूत दुख छाये ॥

इसी प्रकार की सुन्दर आशा में कुछ दिन व्यतीत हो गये तथा सभी मिथिलापुर वासियों के मन में नित्य नवीन आनन्द समाया हुआ था। कुछ कालोपरान्त एक दिन श्री मिथिला पुरी के उन दूतों में से एक राजदूत दुख में डूबा हुआ श्री अयोध्या पुरी से आया।–––

दो0– अवधहिं आवत जात ते, जानन सुधि तहँ केर ।
करि प्रणाम मिथिलेश कहँ, ठाढ़े शोक कुघेर ॥९॥

जो वहाँ के समाचार जानने लिए श्री अयोध्यापुरी आते–जाते रहते थे। वह दूत श्री मिथिलेश जी महाराज को प्रणाम कर दुख से घिरा हुआ सा खड़ा हो गया।

बैठन कहे जनक नृप ज्ञानी। बोले बहुरि कुशंकित बानी ॥
अवध कुशल वरणहु वर दूता । म्लान लगहु जनु क्लेश बहूता ॥

परम ज्ञानी श्री जनक जी महाराज ने राजदूत को बैठने हेतु कहा, पुनः किसी अनिष्ट की आशंका से शंकित से हुये वचन बोले– हे प्रिय दूत! श्री अयोध्यापुरी की कुशलता का वर्णन करो। तुम तो ऐसे मलिन दिख रहे हो जैसे तुम्हे कोई महान दुख हो।

अश्रु प्रवाह बहैं केहिं हेतू । बोलत नहि जनु भये अचेतू ॥
अकृत करण कीन्हे कछु भाई । रोकै शास्त्र जाहि गोहराई ॥

तुम्हारे आँखों से आँसुओं का प्रवाह किसलिए प्रवाहित हो रहा है? कुछ बोल नही रहे, जैसे स्मृति–हीन हो गये हो। हे भैया! क्या? तुमने शास्त्रों के द्वारा पुकार कर निषिद्ध किये हुए कोई अकरणीय कर्म कर डाले हैं।–––

या कीन्हे भगवत अपचारा। कीधौं भयौ साधु अपकारा ॥
की तुम किये असह अपराधा । सहि न सकैं हरि हरहुँ अगाधा ॥

–––तुमने या तो भगवान का अपचार किया है या कि, तुमसे भागवतों (साधुओं) का अपकार (पराभव) बन गया है। अथवा क्या, तुमने ऐसा असहनीय अगाध अपराध किया है? जिसे भगवान श्री विष्णु जी व श्री शंकर जी भी नहीं सहन कर सकते।

कहहु सत्य हम सन सब भाई। कारण म्लान हेतु दुखदाई ॥
सुनि नृप वचन दूत धरि धीरा। बोले बचन बढ़ावत पीरा ॥

हे भाई! तुम हमसे सत्य–सत्य कहो कि– तुम्हारी मलिनता का दुखदायी कारण क्या है। श्री मिथिलेश जी महाराज के वचनों को सुनकर, दूत ने धैर्य धारण किया और शोक–वर्धक वचनों से कहा–

दो0– देव दशा पूछहिं हमरि, नेकि कही नहिं जाय ।
घटै दोष दुखमय प्रबल, जो हठि देहिं दुराय ॥१०॥

हे देव! आप हमारी अवस्था को पूछ रहे हैं, वह तो किंचित भी कही नही जा रही किन्तु उस प्रबल दुखमयी अवस्था को हठ पूर्वक छिपाने से हम दोष के भागी होंगे।

अवध दशा अतिशय दुख दाई। दु:ख रूप सब भाँति जनाई ॥
सो सब कहहिं सुनहिं महिपाला। दु:ख हेतु भय कारक हाला ॥

इस समय, श्री अयोध्यापुरी की अवस्था अत्यन्त ही दुख प्रदान करने वाली है, वह 'पुरी' सभी प्रकार से दु:ख–स्वरूपा दिखाई पड़ती है। हे महाराज! सुनिये, दुख का कारण तथा भयोत्पादक सभी समाचार हम कह रहे हैं।

भरत शत्रुहन दूनहु भ्राता। मातुल भवन बसे सुखदाता ॥
सो सुधि रहे आपहूँ पाये। यथा बन्धु दोउ कैकय छाये ॥

राज कुमार श्री भरत जी व श्री शत्रुघ्न कुमार जी, दोनों भाई अपने मामा जी के गृह में सभी को सुख प्रदान करते हुए निवास कर रहे हैं। यह समाचार तो आपने भी प्राप्त किया था कि– जिस प्रकार दोनों भाई 'कैकय देश' में निवास कर रहे हैं।–––

बीचहिं दशरथ हृदय बिचारा। देहुँ राज पद रामहिं सारा ।।
कुलगुरु साधु सचिव के साथा। कीन्ह मंत्रणा कौशल नाथा ।।

–––इसी बीच चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने अपने हृदय में बिचार किया कि– मैं श्री राम जी महाराज को राज्य–पद का सम्पूर्ण भार प्रदान कर दूँ, इस लिये कोसल नरेश श्री दशरथ जी महाराज ने अपने कुलगुरु श्री बशिष्ठ जी, संतजनों तथा मंत्रियों के साथ सलाह (मंत्रणा) की।––

सम्मति पाय सबहिं कर राऊ। सुठि सनेह रघुवरहिं सुभाऊ ।।
चहे राज पद अवध अबाधी । रघुकुल गुरु तब शुभ दिन साधी ॥

इस प्रकार सभी की सहमति प्राप्त कर श्री चक्रवर्ती महाराज ने श्री राम जी महाराज को स्नेह व सुन्दर भाव पूर्वक परम सुशोभना श्री अयोध्यापुरी का निर्विघ्न राज्य पद देना स्वीकार कर लिया तथा रघुकुल गुरु श्री बशिष्ठ जी ने तब शुभ मुहूर्त का शोधन भी कर लिया।–––

चेरि मंथरा पाइ कुसंगा। कैकई बुद्धि रँगी सोइ रंगा ॥
भरत मातु मति भ्रष्ट अभागी। राम विरोध विषम विष पागी ॥

–––परन्तु मंथरा दासी का कुसंग पाकर महारानी श्री कैकई जी की बुद्धि भी कुसंग के रंग में रंग गयी और भ्रष्ट–बुद्धि, दुर्भाग्या श्री भरत जी की माता कैकई जी की बुद्धि, श्री राम जी महाराज के विरोध रूपी तीब्र हलाहल विष में डूब गयी।–––

दो०–थाती दुइ वर नृपति ढिंग, रहे कैकई केर ।
पाप बुद्धि संयोग वस, मागेउ निज हिय हेर ॥११॥

–––तब चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के समीप जो दो वरदान कैकई जी के धरोहर (थाती) स्वरूप रखे थे, कैकई ने बुद्धि में पाप के संयोग के कारण अपने हृदय में विचार कर उन्हें माँग लिया।

इक वर भरत राज लिय माँगी । दूजे बचन कही दुख दागी ॥
चौदह वरष राम वन माहीं। तापस वेष उदास रहाहीं ॥

उन दो वरदानों से, एक वर में श्री कैकई जी नें श्री भरत जी के लिए श्री अयोध्यापुरी का राज्य पद माँग लिया तथा दूसरा वर माँगते हुए उन्होने दुख–दाहक वाणी से कहा– कि, श्री राम जी महाराज चौदह वर्षो तक तपस्वी वेष में उदास रहते हुए वन में निवास करें।

सुनतहिं मुरछि महिहिं महिपाला। बूड़ेउ दुःख पयोधि विशाला ॥
गुरु मंत्री पुरजन समुझाये। भरत मातु नहिं सुनी सुनाये ॥

इस बात को सुनते ही श्री दशरथ जी महाराज मूर्छित हो भूमि में गिर कर दुख के महा सागर

डूब गये, उस समय गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी, मंत्रियों व पुरवासियों के बहुत समझाने पर भी श्री भरत लाल जी की अम्बा कैकई जी ने किसी की एक नहीं सुनी।

सहित मातु सिगरो रनिवासा। दुखित भयो लखि भंग सुआशा॥
फैली अवधपुरी यह बाता। शोक सिन्धु सब मग्न कुभाता॥

अम्बा श्री कौशिल्या जी सहित सम्पूर्ण रनिवास अपनी सुन्दर कामना रूपी लता को टूटी हुई देख कर, अत्यन्त दुखी हो गया। यह समाचार श्री अयोध्यापुरी में फैल गया और सभी पुरवासी भयावह शोक के समुद्र में डूब गये।

रघुकुल मणि रघुनंदन रामा। अति प्रसन्न मुख ललित ललामा॥
भरत राज सुनि निज वन वासू। आनँद मगन न हिये हराषू॥

परन्तु रघुकुल भूषण रघुनन्दन श्री राम जी महाराज का अत्यन्त प्रिय–दर्शन मुखारविन्द प्रसन्नता से परिपूर्ण बना रहा। वे श्री भरत जी को राज्य पद तथा अपने हेतु वनवास सुन कर आनन्द मग्न हो गये, उनके हृदय के हर्ष में किंचित भी कमी नहीं आई।

दो0– लोक त्रिलोकी पाय पद, जो आनन्द नहि होय।
अनुज राज सुनि राम कहँ, छायो हिय सुख सोय॥१२॥

तीनों लोकों का राज्य पद प्राप्त कर लेने पर भी जो सुख प्राप्त नहीं होता वही आनन्द, अपने छोटे भाई श्री भरत जी को श्री अयोध्यापुरी के राज्य पद प्राप्ति का समाचार सुनकर श्री राम जी महाराज के हृदय में छा गया।

सब प्रकार जननिहिं समुझाई। करि प्रणाम प्रिय आशिष पाई॥
विपिन साज सजि कीन्ह तयारी। प्रथमहिं चली सिया सुकुमारी॥

श्री राम जी महाराज ने अपनी अम्बा श्री कौशिल्या जी को सभी प्रकार से समझा कर प्रणाम किया तथा उनकी प्रिय आशीष प्राप्त कर वन जाने योग्य वस्त्र आदि धारणकर, वन जाने की तैयारी पूर्ण कर लिये। अपने प्राण–वल्लभ श्री राम जी महाराज को वन जाते देखकर परम सुकुमारी श्री सिया जू भी उनसे पूर्व ही वन चलने को उद्यत हो गयीं।

रहन जतन बहु रघुपति कीन्हा। सहि न सकी बच विरह बलीना॥
लीन्हे साथ सुखद रघुराई। तबहिं सिया निज तन सुधि लाई॥

श्री सीता जी को श्री अवध में रोकने के लिए श्री राम जी महाराज ने बहुत से उपाय किये परन्तु वे प्रबल वियोगजनित वचनों को सहन न कर स्मृति विहीन हो गयीं तथा जब परम सुखदायक श्री राम जी महाराज ने उन्हें अपने साथ ले लिया तभी श्री सीता जी ने शारीरिक स्मृति धारण की।

लछिमन हूँ सुधि पाय प्रवीने। रुकत न राम कहे विरहीने॥
आयसु अम्ब अकनि सुख दायी। सेवा करहु राम कर जाई॥

समाचार प्राप्त कर परम सुजान श्री लक्ष्मण कुमार जी भी असहनीय प्रभु वियोग न सह सकने

के कारण श्री राम जी महाराज के कहने पर भी श्री अवध में रुकनें को तैयार नहीं हुए। तब अपनी अम्बा श्री सुमित्रा जी की यह सुख–दायिनी आशीष प्राप्त कर कि– 'जाकर श्री राम जी की सेवा करो'———

चले राम सँग हिय हरषाये। मनहिं महा परमारथ पाये ॥
बार बार करि पितहिं प्रणामा। चले सहर्ष राम सुख धामा ॥

——— वे हृदय में हर्षित हो श्री राम जी महाराज के साथ इस प्रकार चल दिये मानों मन में महान परमार्थ पद प्राप्त कर लिए हों। इस प्रकार सुख के धाम श्री राम जी महाराज हर्ष पूर्वक अपने श्री मान् पिता चक्रवर्ती श्री दशरथ जी को प्रणाम कर वन को चल दिये।

दो0– सब विधि अवध अनाथ भो, तलफत राम वियोग ।
शोक सिन्धु सिगरे मगन, भूले सुख सम्भोग ॥१३॥

हे महाराज! श्री अयोध्यापुरी सभी प्रकार से अनाथ हो गयी है तथा श्री राम जी महाराज के वियोग में तड़प रही है। वहाँ के सभी लोग दुख के सागर में डूबकर आनन्दोपभोग भूल गये हैं।

प्रथम दिवश तमसा करि वासा । पहुँचे श्रृंगवेर सहुलासा ॥
बरबश राम सुमंतहिं फेरे । तलफत अश्व सहित दुख तेरे ॥

श्री राम जी महाराज ने प्रथम दिन तमसा नदी के तटपर निवास किया और आनन्दपूर्वक श्रृंगवेरपुर पहुँच गये और उन्हे पहुँचाने गये सचिव श्री सुमंत जी को हठपूर्वक वापस लौटा दिये तब सचिव रथ में जुते घोड़ों सहित दुख में डूबे हुए तड़फते रह गये।

राम सखा केवट के साथा । गंगा उतरि चले रघुनाथा ॥
सहित अनुज शुचि सिया सुहाई । गये प्रयाग राम रघुराई ॥

तदनन्तर श्री राम जी महाराज अपने मित्र केवट व निषादराज के साथ श्री गंगा जी को पार उतर कर अनुज श्री लक्ष्मण कुमार व परम पवित्र सुशोभना श्री सिया जू के सहित श्री प्रयाग राज गये।

करि स्नान त्रिवेणिहिं रामा । भरद्वाज मिलि चले अकामा ॥
जमुना उतरि मिले बलमीका । कहे चित्रकूटहिं अति नीका ॥

वहाँ श्री राम जी महाराज श्री त्रिवेणी संगम में स्नान कर, श्री भरद्वाज मुनि से भेंट किये तथा निष्काम मन से आगे चल पड़े। श्री यमुना जी को पार कर वे श्री बाल्मीकि जी से भेंट किये, जिन्होंने बताया कि आपके निवास हेतु श्री चित्रकूट पर्वत अत्यन्त सुन्दर व अनुकूल है।

वास हेतु हित सुनि रघुराया । जाय विराजे कुटी बनाया ॥
सम्प्रति सुखद राम रघुराजा । अनुज सिया युत कामद भ्राजा ॥

मुनिवर श्री बाल्मीकि जी के मुख से श्री चित्रकूट गिरि को अपने निवास के लिए हितकर सुनकर श्री राम जी महाराज चित्रकूट–स्थल पहुँच, कुटिया बनाकर निवास करने लगे। इस प्रकार अभी, श्री राम जी महाराज अपने अनुज श्री लक्ष्मण कुमार तथा प्राण प्रियतरा श्री सीता जू के साथ

सुखप्रद 'कामद गिरि' में सुशोभित हो रहे हैं।

दो0– अवधहिं आय सुमन्त वर, कहेउ राम वन गौन ।
सुनत नृपति रामहिं सुमिरि, भयो सदा को मौन ॥१४॥

श्री अयोध्यापुरी में आकर श्री सुमन्त जी ने श्री राम जी महाराज के वन जाने का समाचार कह सुनाया, जिसे सुनते ही चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज श्री राम जी का स्मरण कर सदैव के लिए शान्त हो गये।

नृपति मरण दुख अवधहिं छाया। सुरति करत फाटत हिय राया ॥
गुरु वसिष्ठ नृप तन रख वाई। पठे सुधावन भरत बोलाई ॥

हे महाराज! चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के निधन का दुख श्री अयोध्यापुरी में छा गया, जिसकी स्मृति मात्र से यह हृदय भी विदीर्ण होने लगता है। रघुकुल गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी ने श्री महाराज के शरीर को सुरक्षित रखवा कर, सुन्दर तीव्र धावकों को भेज, श्री भरत जी को बुला लिया।

भरत आय सब दशा विलोकी । सकल नारि नर रूप कुशोकी ॥
सुनि पितु मरण गिरे दुख कूपा । राम गवन सुनि शोक स्वरूपा ॥

राजकुमार श्री भरत जी ने आकर अयोध्यापुरी के सभी स्त्री–पुरुषों की असहनीय दुख स्वरूप अवस्था का दर्शन किया। श्री मान् पिता जी का निधन सुनकर वे दुख के कूप में डूब गये, परन्तु श्री राम जी महाराज का वन गमन सुनकर तो वे दुख–स्वरूप ही हो गये थे।

सब कर हेतु मातु निज जानी । त्यागेउ जननि भाव भल आनी ॥
गुरु निदेश पितु क्रिया प्रकारा । कीन्ह भरत अति प्रीति उदारा ॥

सभी अनर्थो का कारण अपनी माता श्री कैकेयी जी को जानकर श्री भरत लाल जी ने हृदय में विचार कर अपनी माता के प्रति मातृ–भाव ही त्याग दिया। श्री गुरुदेव जी की आज्ञानुसार श्री भरत जी ने प्रेम व उदारता पूर्वक अपने श्री मान् पिता जी का यथाविधि (दाह संस्कार) अन्तिम संस्कार किया।

समय जानि गुरु मंत्री माता। राज तिलक हित कीन्हीं बाता ॥
कान मूदि कर भरत सुजाना। हाय हाय करि अति चिल्लाना ॥
हाय महा पापी बलवाना। शब्द पापमय परेउ स्वकाना ॥

अनन्तर समय समझकर, श्री गुरुदेव जी, श्री राम माता कौशिल्या जी और मंत्रियों ने राज्याभिषेक की वार्ता प्रारम्भ की परन्तु परम ज्ञानवान श्री भरत लाल जी अपने हाथों से कर्णो को मूद कर हाय हाय! कर तीव्र स्वर से रुदन करने लगे, पुनः बोले कि– हाय! महान पापी और प्रबल पाप स्वरूप यह शब्द मेरे श्रवणों में पड़ गया।

दो0– परेउ मुरछि अस कहि भरत, भूलि गयी सुधि देह ।
थर थर काँपत अति विकल, वरणि न जाय सनेह ॥१५॥

ऐसा कहकर श्री भरत लाल जी मूर्छित हो गिर पड़े, उन्हें शरीर की स्मृति भूल गयी तथा वे थर–थर काँपते हुए अत्यन्त व्याकुल हो गए। उनके असीमित राम प्रेम का वर्णन नहीं किया जा सकता।

कछुक काल जब तन सुधि लयऊ। रुदत अधीर मनहु सब गयऊ ॥
बोले बचन सबहिं शिर नाई। सुनहु सकल मम विनय सचाई ॥

कुछ समयोपरान्त जब उन्होंने शरीर स्मृति धारण की तब अधीर होकर उसी प्रकार रुदन करने लगे मानों उनका सर्वस्व चला गया हो। वे सभी को शिर झुका प्रणाम कर बोले– कि आप, सभी सुहृद मेरी सत्य प्रार्थना को सुनिये,–––

राज तिलक की बात बहोरी। मम प्रति कहब सुनब बड़ि खोरी ॥
जो मम कान परी अस बाता। भोगहु अवध राज तुम ताता ॥

–––मेरे लिए दुबारा राज्याभिषेक की बात कहने व सुनने में महान दोष घटित होगा, यदि मेरे श्रवणों में इस प्रकार की बात पड़ेगी कि 'हे तात तुम श्री अयोध्यापुरी के राज्य का उपभोग करो',–––

तौ मोहिं प्राण सहित नहि पैहो। बार बार सबही पछितैहौ ॥
राम भोग्य यह अवध सुराजा। नित्य स्वयं निष्कंटक भ्राजा ॥

–––तो आप लोग मुझे प्राणों से युक्त नहीं पायेंगे और फिर सभी लोग बारम्बार पछताते ही रहेंगे। क्योंकि श्री अयोध्यापुरी का यह सुन्दर राज्य तो श्री राम जी महाराज का भोग्य है और वे ही यहाँ के राज्य सिंहासन में नित्य, स्वयं और निर्विघ्न रूप से विभ्राजित होगें।

करहु राज सुनि एकहु बारा। रहैं प्राण मम धिक धिक्कारा ॥
सुनतहिं मातु भोग सम पापा। लागत देन सकल संतापा ॥

''तुम राज्य करो'' यह शब्द अब एक बार भी सुनकर यदि मेरे प्राण इस शरीर में रहते हैं तो उन्हें धिक्कार है। ऐसे शब्द को तो सुनते ही सभी दुखों को देने वाला, माता के साथ भोग करने के समान पाप लगता है।

दो0– ताते पुनि पुनि बन्दि पद, सबहिं कहौं कर जोरि।
करहु कृपा अब अधम पर, सुनहु मनोरथ मोरि ॥१६॥

इसलिए मैं बारम्बार पद वन्दना करते हुए आप सभी से हाथ जोड़ प्रार्थना कर कह रहा हूँ कि– आप, मुझ अधम पर कृपा करें व मेरे मनोरथ को श्रवण करें।

होत प्रभात राम की शरणा। जइहौं और न कछु हिय धरणा ॥
सकल सुमंगल सुख की देनी। अभय करनि दुख दोष मिटेनी ॥

सबेरा होते ही मैं श्री राम जी महाराज की शरण में जाऊँगा व किसी की कोई अन्य वार्ता हृदय में नहीं धारण करूँगा। क्योंकि सभी प्रकार का मंगल करने वाली, सुख प्रदायिनी, अभय प्रदात्री दुख

व दोषों को मिटाने वाली---

दिवि गुण अयन प्रपति रघुवर की। हरै जरनि सब भक्तन उर की ॥
मोरे हिय सिय राम भरोसो। पाहि कहत पलिहैं अघि मोसो ॥

---तथा दिव्य गुणों की वास-स्थली श्री राम जी महाराज की 'शरणागति' है, जो भक्तों के हृदय के सभी प्रकार के संताप को शान्त करने वाली है। मुझे तो अपने हृदय में श्री सीताराम जी का दृढ़ विश्वास है कि- पाहि-पाहि ('रक्षा करो') शब्द कहते ही मेरे प्रभु, मेरे समान पापी का भी पालन करेंगे।

अस कहि भरत माथ महि लाई। राम शरण जनु गही तुराई ॥
गुरु महिसुर अरु सचिवन साथा। चले भरत बनि दीन अनाथा ॥

ऐसा कहकर श्री भरत लाल जी ने भूमि में अपना मस्तक झुका लिया मानों उन्होंने आतुरता पूर्वक श्री राम जी महाराज की 'शरणागति' ग्रहण कर ली हो। प्रातः काल होते ही श्री गुरुदेव, ब्राह्मण तथा मंत्रियों के साथ श्रीभरत लाल जी अनाथ व दीन बन करवन को चल दिये।

सँग सब मातु भ्रात पुर वासी। सेवक सखा सेन बड़ भासी ॥
चित्रकूट रघुपति के पासा। फेरन चले सबहिं बहु आशा ॥

उनके साथ सभी माताएँ, भ्रातृगण, पुरवासी, सेवक, सखा तथा विख्यात सैन्य समूह श्री राम जी महाराज के समीप उन्हें वापस लौटा लाने की महान आशा से चित्रकूट गिरि को चला।

दो0- गये चित्रकूटहिं भरत, विरह सने सिय राम।
मिथिला कीन्ह पयान तब, हमहुँ बिना विश्राम ॥१७॥

हे महाराज! जब श्री भरत लाल जी श्री सीताराम जी के वियोग में सने हुए श्री चित्रकूट गिरि को प्रस्थान कर गये तब हम सेवक भी बिना विश्राम किये श्री मिथिलापुरी को चल दिये ---

बेगि आय राउर के नेरे। कही बात निज नयनन हेरे ॥
सुनि प्रसंग मिथिलेश सुजाना। दाह बढ़ी हिय अति अकुलाना ॥

इस प्रकार शीघ्र ही आपके समीप आकर हमनें अपनी आँखों से देखी वार्ता कह सुनायी। श्री अयोध्यापुरी का दुखदायी समाचार सुनकर श्री मिथिलेश जी महाराज के हृदय में शोकाग्नि की जलन बढ़ गयी और वे अत्यन्त व्याकुल हो गये।

मुरछित परे देह सुधि नाहीं। सत्य विदेह बने दरशाही ॥
मुरछा विगत देह सुधि आई। रुदत राव दृग वारि बहायी ॥

वे मूर्छित हो भूमि में गिर पड़े, उन्हें शरीर की सुधि न रही, उस समय, देह स्मृति न होने के कारण वे सत्य ही विदेह बने हुए दीख रहे थे। मूर्छा समाप्त होने पर जब शरीर की स्मृति आ गयी तब श्री जनक जी महाराज शोक के बशीभूत हो नेत्रों से अश्रु बहाते हुए रुदन करने लगे।

दशरथ मरण घाव जिय जागा। सखा सखा कहि चीखन लागा ॥

सहित सिया सानुज रघुराई । गये वनहिं सुमिरत अकुलाई ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज की मृत्यु–जनित आघात का स्मरण हृदय में जागृत हो गया और वे हाय सखे!, हाय सखे! कह–कहकर प्रलाप करने लगे। श्री सिया जू तथा अनुज श्री लक्ष्मण कुमार के साथ श्री राम जी महाराज वन को चले गये हैं यह बात स्मरण कर वे अत्यन्त व्याकुल हो गए।

लगत हृदय विदरत नृप केरा । लखि समुझावैं सचिव दुखेरा ॥
याज्ञवल्क मुनि धीर बँधाये । बूड़त जनक थाह जनु पाये ॥

उस समय ऐसी प्रतीति हो रही थी जैसे श्री जनक जी महाराज का हृदय फट (विर्दीण हो) जायेगा, उनकी स्थिति देखकर, दुख में मग्न मंत्रीगण उन्हे समझाने लगे। अनन्तर जब गुरुदेव श्री याज्ञवल्क्य जी ने उन्हे धैर्य धारण कराया तब श्री जनक जी महाराज शोक सागर में डूबते हुए मानो आधार प्राप्त कर लिये ।

दो0– मिथिला पुर वासी सकल, जड़ चेतन नर नारि ।
अवध कथा सुनि शोकमय, काहु न रही सँभारि ॥१८॥

श्री अयोध्यापुरी की दुखमयी कथा को सुनकर जड़–चेतन व पुरुष–स्त्रियों से युक्त सभी मिथिलापुर निवासियों की स्थिति उनके सम्हाल में नहीं रही।

सहित सुनैना सब रनिवासा । कहि कहि विलपत बचन हरासा ॥
राव सुभाव सुशील बड़ाई । प्रीति रीति सुख सुजश भलाई ॥

श्री सुनैना जी सहित सम्पूर्ण रनिवास दुख भरे वचन कह–कहकर विलाप कर रहा है। चकवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के स्वभाव, सुन्दर शील, महानता, प्रीति–रीति, सुख, कीर्ति व उपकार–––

कहि कहि रोवहिं निमिकुल नारी । यथा अवध रघुवर महतारी ॥
सीय राम सुठि कोमलताई । सुख स्वरूप मनहरण लोनाई ॥

–––आदि का बखान करते हुए निमिकुल की नारियाँ श्री अयोध्यापुरी में श्री राम जी महाराज की माताओं की भाँति रुदन कर रही थीं। श्री सीताराम जी की सुन्दर सुकुमारता, सुख–स्वरूप मनोहारिता, सुशोभन सुन्दरता–––

बन कीहड़ अति गहर कठोरा । मुरछहिं नारि सुरति करि थोरा ॥
लक्ष्मीनिधि सुनतहिं दुख भारा । परेउ भूमि सुधि भूलि अगारा ॥

–––वन की सघनता, अत्यधिक विकरालता व कठोरता का स्मरण कर वे स्त्रियाँ मूर्छित हो जाती थीं। राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी उस अत्यधिक दुखपूर्ण समाचार को सुनते ही देह–गेह की स्मृति भूलकर भूमि में गिर पड़े।

तन तलफत जिमि जल बिन मीना । करत सुरति नृप प्यार प्रवीना ॥

सीय राम दोउ वनहिं सिधाये । अकनि अकथ अतिशय अकुलाये ॥

श्री चक्रवर्ती जी महाराज के प्रेम का स्मरण कर परम दक्ष कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी का शरीर जल से विहीन मछली के समान तड़पने लगा। लाड़िली श्री सिया जू व रघुनन्दन श्री राम जी महाराज दोनों वन को चले गये हैं यह सुनकर तो वे अकथनीय व अत्यधिक व्यग्र हो गये।

दो0– प्रलय मरण सम तन लखत, निज सुत कर मिथिलेश ।
गुरु सह बहु उपदेश दै, लायो चेत विशेष ॥१९॥

प्रलय काल में मृत्यु को प्राप्त हुये के समान अपने पुत्र के शरीर को देखकर, श्री मिथिलेश जी महाराज निमिकुल गुरुदेव श्री याज्ञवल्क्य जी सहित कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को बहुत उपदेश देकर विशेष चैतन्यता धारण कराये।

याज्ञवल्क्य बहु विधि समुझाई । धीर दियो कुँअरहिं सुखदायी ॥
यदपि कुँअर धीरज हिय धारे । तदपि हृदय अति होत दुखारे ॥

निमिकुल आचार्य श्री याज्ञवल्क्य जी ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को बहुत प्रकार से समझा कर सुख प्रदान करते हुए धैर्य बँधाया। यद्यपि कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी हृदय में धैर्य धारण किए हुए थे तथापि वे हृदय में अत्यन्त ही दुखी हो रहे थे।

मिथिला खाब पियब सब भूली । जन जन छायो दु:ख अतूली ॥
जनक सुनैना सहित कुमारा । सिद्धिहिं क्लेश अथाह अपारा ॥

इस दुखदायी समाचार को सुनकर श्री मिथिलापुर वासियों ने भोजन व जल–पान तक भुला दिया था तथा प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में अतुलनीय दुख समाया हुआ था। श्री जनक जी महाराज व श्री सुनैना जी के सहित कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी तथा श्रीमती सिद्धि कुँअरि जी को तो अत्यधिक अगाध और असीम दुख हो रहा था।

तिरहुत राउ मंत्रणा कीन्ही । विप्र साधु गुरु सचिवन लीन्ही ॥
चित्रकूट चलिबो अब चाही । निश्चय भयो सभा मुख माही ॥

तिरहुत नरेश श्री जनक जी महाराज नें ब्राह्मण, साधु, श्री गुरुदेव याज्ञवल्क्य जी तथा मंत्रियों को लेकर मन्त्रणा की, जिसमें सभा मुख से विनिश्चय हुआ कि– हम सभी को अब श्री चित्रकूट गिरि प्रस्थान करना चाहिए।

तुरतहिं कीन्हे भूप तयारी । राज काज सब दीन विसारी ॥
चले नृपति पुरजन परिवारा । लिये साथ सुत अरु सब दारा ॥

श्री महाराज जनक जी ने समस्त राज–काज भुला दिए व शीघ्र ही चलने की व्यवस्था कर ली। तदनन्तर श्री जनक जी महाराज अपने पुत्र, पुरजनों, परिजनों व सभी महारानियों को लेकर श्री चित्रकूट गिरि को चल पड़े।

दो0– विप्र साधु गुरु सचिव सँग, मैथिल सिगरे लोग ।

कामद गिरि गवने दुखित, साने सम वियोग ॥२०॥

इस प्रकार ब्राह्मणों, संत–जनो, श्री गुरुदेव व मंत्रियों के साथ समस्त श्री मिथिला पुरवासी दुखित मन से श्री राम जी महाराज के वियोग में डूबे हुए श्री कामद गिरि (चित्रकूट) को प्रस्थान कर गये।

अति आतुर सब बिन विश्रामा। पहुँचे तीर्थ राज सुख धामा ॥
सविधि त्रिवेणी करि स्नाना। विप्रन दीन्हे बहु विधि दाना ॥

वे सभी अत्यधिक शीघ्रतापूर्वक बिना विश्राम किये हुए, सुख के धाम तीर्थ राज प्रयाग पहुँच गये। वहाँ श्री मिथिलेश जी महाराज ने विधिपूर्वक त्रिवेणी (संगम) में स्नान कर ब्राह्मणों को विभिन्न प्रकार से दान दिया।

सहित नारि सुत प्रभु अनुरागा। जन्म जन्म माँगेउ बड़ भागा ॥
भरद्वाज मुनि दर्शन हेतू। गयो भूप परिवार समेतू ॥

परम सौभाग्यवान श्री जनक जी महाराज ने अपनी महारानियों व पुत्र सहित जन्म जन्मान्तरों तक प्रभु श्री राम जी महाराज के अनुराग की याचना की। तदनन्तर श्री जनक जी महाराज अपने परिवार सहित मुनिवर श्री भरद्वाज जी के दर्शन के लिए गये।

कीन्ह दण्डवत मुनिहिं महीपा। भेंट दीन्ह बहु निमिकुल दीपा ॥
मुनिवर लीन्हे ह्रदय लगाई। पुनि बिठाय पूँछी कुशलाई ॥

निमिकुल को प्रकाशित करने वाले श्री जनक जी महाराज ने मुनिराज श्री भरद्वाज जी को दण्डवत किया तथा बहुत सी भेंट प्रदान की। मुनिराज श्री भरद्वाज जी ने उन्हें ह्रदय से लगा लिया तथा बैठा कर कुशल समाचार पूछी।

कुँअरहिं करत प्रणाम मुनीशा। देखि लगायो हिय प्रिय दीषा ॥
सकल समाज मुनिहिं सिर नाई। आशिष पाइ बैठि विरहाई ॥

प्रिय दर्शन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को, प्रणाम करते देख मुनिराज श्री भरद्वाज जी ने उन्हे ह्रदय से लगा लिया। सम्पूर्ण समाज ने मुनि श्रेष्ठ श्रीभरद्वाज जी को शिर झुका प्रणाम किया तथा आशिर्वाद प्राप्त कर प्रभु वियोग में संतप्त हुए सभी जन बैठ गये।

जनक कहेउ मम आनंद रूपा। सीय राम सब भाँति अनूपा ॥
सो अब बसत बनहिं मुनिराया। तापस वेष विशेष अमाया ॥

तदनन्तर श्री जनक जी महाराज ने कहा, हे मुनिराज! मेरे आनन्द स्वरूप व सभी प्रकार से अनुपमेय जो श्री सीताराम जी हैं वे अब तपस्वी वेष में विशेष उदासीन हो वन में निवास कर रहे हैं।

दो0– तासु दरश हित जाउँ सुनि, तिय सुत लिये समाज।
जानहिं नाथ प्रसंग सब, भूप मरण दुख साज ॥२१॥

हे नाथ! यही सुनकर मैं उनके दर्शन के लिये अपने स्त्री, पुत्र व समाज को लेकर जा रहा हूँ। नाथ तो, चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज की मृत्यु सहित सभी दुखपूर्ण प्रसंग जानते ही हैं।

भरतहुँ दुखित विरह सिय रामा । गये चित्रकूटहिं अविरामा ॥
कहाँ बसहिं कहँ जाउँ कृपाला । रघुवर सुधिहिं कहहिं यहि काला ॥

श्री सीताराम जी के वियोग से दुखी हुए श्री भरत लाल जी भी बिना विश्राम किये श्री चित्रकूट गिरिस्थली को गये हैं। हे कृपालु नाथ! आप रघुनन्दन श्रीरामजी का समाचार बतलाइये कि– इस समय वे कहाँ निवास कर रहे हैं, मैं कहाँ जाऊँ।

ललचहिं लोचन दर्शन हेता । सकल समाजहिं नाथ न चेता ॥
बोले मुनि धनि जनक भुआरा। वेद विदित राउर यश सारा ॥

हे नाथ! मेरे नेत्र उनके दर्शन के लिए लालायित हैं तथा सम्पूर्ण समाज भी अचेत हो रहा है। श्री जनक जी महाराज के वचन सुनकर मुनिवर श्री भरद्वाज जी बोले– हे श्री विदेह राज जी महाराज! आप धन्य है। आपका सम्पूर्ण सुयश वेदों में वर्णित है।

सुनि तव बच परमारथ वादी । मानत हिये अमित अहलादी ॥
ज्ञान सूर्य इक रस हिय नित्या । उदय रहत सहजहिं बिन कृत्या ॥

आपके वचनों को श्रवण कर परमार्थ–वेत्ता भी अपने हृदय में असीमित आह्लाद प्राप्त करते हैं। आपके हृदय में ज्ञान का सूर्य एक समान, नित्य सहज ही बिना किसी साधन के उदित रहता है।

जेहिं प्रकाश भव निशा न आवैं । परमानन्द पूरि रस छावै ॥
मुनि हिय कमल विकासन वारे । मनहुँ ब्रह्म रस नव तनु धारे ॥

जिसके प्रकाश में भव रात्रि का आगमन नही होने पाता तथा आप परमानन्द से परिपूर्ण व रस में सने रहते हैं। आप तो मुनियों के हृदय–कमल को अपनी ज्ञान रश्मियों से विकसित करने वाले हैं। आपको देखकर ऐसी प्रतीति होती है कि– जैसे स्वयं ब्रह्मानन्द ही नवीन देह धारण किये हुए हो।

दो0– पूर्ण ज्ञान सिय राम कर, अहे तुमहिं महिपाल ।
परम प्रीति तिन महँ किये, सब विधि भये निहाल ॥२२॥

हे मिथिलाधिराज! आपको श्री सीताराम जी का पूर्णतम परिज्ञान प्राप्त है और उनके प्रति परम प्रीति किये हुए आप सभी प्रकार से कृतकृत्य हो गये हैं।

वर विज्ञान सार प्रभु प्रेमा । आत्म सार रस करन सुक्षेमा ॥
सब साधन फल जानहु ज्ञाना। ज्ञानहु फल प्रभु प्रेम बखाना ॥

हे नृपेन्द्र! रघुकुल श्रेष्ठ, प्रभु श्रीराम जी महाराज के प्रति की गयी प्रीति, तो सुन्दर विज्ञान की सार, आत्मा की भी सारभूता, रसमयी और सुन्दर कल्याण प्रदान करने वाली है। आप ब्रह्म–ज्ञान को सभी साधनों का फल समझ लीजिये पुनः उस ज्ञान का परम फल प्रभु श्री राम जी महाराज का प्रेम है ऐसा, वर्णन किया गया है।

तुमहिं सुलभ सब भाँति नृपाला । प्रेम तत्व रस रूप रसाला ॥
बालमीकि गुरुवर्य हमारे । राम तत्व दीन्हे सुख सारे ॥

हे महाराज! आपको रस स्वरूप श्री सीताराम जी का प्रेम तत्व रूपी रसीला फल सदैव सभी प्रकार से सुलभ है। श्री भरद्वाज जी कहते हैं कि– हमारे गुरुदेव श्री वाल्मीकि जी महाराज ने हमें सुखों के सार श्री राम तत्व का भली प्रकार उपदेश दिया है।

राम चरित पुनि सुन्दर दीन्हा । विधिहुँ सुनत जेहिं मन लय कीन्हा ॥
जासु नाम जपि गुरुहुँ सुजाना । ब्रह्म समान भये जग जाना ॥

पुनः सद्गुरुदेव श्री बाल्मीकि जी ने हमें, श्रीरामजी महाराज का परम सुन्दर चरित्र 'रामायण' प्रदान की है जिसे श्रवण करते ही श्री ब्रह्मा जी भी मन मग्न हो जाते हैं। जिन प्रभु श्री राम जी महाराज के पावन नाम का जप कर, हमारे सर्वज्ञ गुरुदेव, श्री ब्रह्मा जी के समान हो गये हैं, यह बात सम्पूर्ण संसार को विदित है।

सोइ राम तव बनो जमाई । भयो अवधि महिमा नृप राई ॥
याज्ञवल्क मुनि जान यथारथ । सीता राम तत्व परमारथ ॥

वे श्री राम जी महाराज ही आपके जामाता बने हैं अतः हे राज राजेश्वर! उनके सम्बन्ध से आप महिमा की सीमा हो गये हैं। परम परमार्थ स्वरूप श्री सीताराम जी को यथार्थतया ऋषिवर श्री याज्ञवल्क्य जी ही जानते हैं।

दो0– तिन प्रसाद जानहु सकल, आत्म ब्रह्म रस राम ।
ज्ञान शिरोमणि भाव घन, सत चिद आनन्द धाम ॥२३॥

उनके कृपा प्रसाद से आप आत्म, ब्रह्म व रस स्वरूप, ज्ञान के शिरमौर, सघन भावमय व सच्चिदानन्द धाम श्री राम जी महाराज को भली प्रकार से जानते हैं।

राम गवन वन सुनहु भुआरा । सो जानहु केवल व्यवहारा ॥
राम ब्रह्म नित अकल अकामा । अचल एक रस पूरण कामा ॥

हे राजेन्द्र! सुनिये, श्री राम जी महाराज का वन में जाना तो केवल व्यवहार मात्र है क्योंकि श्री राम जी महाराज तो नित्य, निष्कल, निष्काम, अचल, एक–रस, पूर्णकाम व पूर्णतम पर ब्रह्म हैं।

सत सत सत परमारथ रूपा । सीता रमण अनादि अनूपा ॥
गमनागमन तहाँ नृप नेका । कहत बनै नहिं किये विवेका ॥

सीता–रमण श्री राम जी महाराज तो त्रिसत्य परमार्थ स्वरूप, अनादि व अनुपमेय हैं। हे राजन! वहाँ पर (श्री सीताराम जी के चरित्र में) विवेक–दृष्ट्या 'आवागमन' (आना,जाना) तो किंचित भी कहते ही नहीं बनता।–––

सुख दुख परे सच्चिदानंदा । निज सुख मगन भक्त सुखकंदा ॥
लीलामय पर ब्रह्म स्वभावा । स्पन्दनमय जिमि पवन सुहावा ॥

———क्योंकि श्री सीताराम जी तो सुख–दुख के परे, सच्चिदानन्दमय, भक्तों के लिए सुखों के मूल, सहज ही अपने आनन्द में मग्न रहने वाले पूर्णतम परब्रह्म हैं। वे स्वाभाविक ही उसी प्रकार लीलामय हैं जिस प्रकार वायु सहज ही सुन्दर स्पन्दमयी (प्रवाहमयी) होती है।

ताते भाँति भाँति की लीला। करत दिखैं रघुवर गुण शीला ॥
सीय राम इक एक अधारा। सोह अनंत अनेक प्रकारा ॥

इसीलिए, गुणों व शील के धाम रघुनन्दन श्री राम जी महाराज विभिन्न प्रकार की लीलाएँ करते हुए दिखाई देते हैं। श्री सीताराम जी तो एक दूसरे के आधार है तथा वे अनंत काल तक अनेक प्रकार से सुशोभित रहते हैं।

दो0– अलग अलग नहिं रहि सकैं, कौनेहु काल अशेष।
यथा भानु अरु तेहिं प्रभा, इक संग रहै प्रजेश ॥२४॥

हे प्रजा वत्सल महाराज! सर्व काल में "पूर्ण "रहने वाले, वे दोनों (श्री सीताराम जी) किसी काल में भी उसी प्रकार अलग–अलग नहीं रह सकते जैसे सूर्य और उसकी किरणें सर्वदा एक साथ ही रहती हैं।

पृथक पृथक बिन ज्ञान दिखावैं। ज्ञान दशा नहिं विलग लखावैं ॥
यथा पुरुष अरु आत्मा ताकी। एक अहै नहिं पृथकहिं झाकी ॥

ज्ञान के अभाव (अज्ञानावस्था) में ही वे अलग–अलग प्रतिभाषित होते हैं परन्तु विवेकतया उसी प्रकार अलग नहीं समझ आते जिस प्रकार पुरुष और उसकी आत्मा दोनों एक हैं व किसी को अलग–अलग नहीं दिखाई देते।

मंगलमय की मंगल लीला। नहिं तहँ नेक अमंगल मीला ॥
दुख सुख घर वन भ्रम वस लागी। नित्य एक रस राम सुभागी ॥

मंगलमय भगवान की लीला नित्य मंगलमयी है वहाँ किंचित भी अमंगल सम्मिलित नहीं हो सकता। भ्रम के कारण ही वे, दुख–सुख व घर–वन में समझ आते है नहीं तो परम सौभाग्यशाली श्री राम जी महाराज नित्य, एकरस रहने के स्वभाव वाले हैं।

सदा बने परमारथ रूपा। ममता अहं तहाँ नहिं भूपा ॥
अहं बिना दुख भासै कैसे। भू बिन गंध गहिय नहिं जैसे ॥

हे राजन! वे श्री सीताराम जी तो सदैव ही परमार्थ स्वरूप बने हुए हैं, उनमें ममता और अहंकार किंचित भी नहीं है। अहंकार के न होने से दुख किस प्रकार से अनुभव में आ सकता है, जिस प्रकार कि बिना पृथ्वी के सुगन्ध नहीं ग्रहण की जा सकती।

दो0– तुमहिं विदित निमिराज सब, रघुपति सहज स्वरूप।
कहन सुनन की बानि यह, मुनियन केर अनूप ॥२५॥

हे निमिराज श्री जनक जी महाराज! आपको तो श्री राम जी महाराज के सहज स्वरूप का भली

प्रकार से परिज्ञान हैं। परन्तु जो, मैंने श्री राम जी महाराज की यह महिमा आपसे वर्णन की है, वह तो अपने स्वभाव के अनुसार ही की है, क्योंकि मुनियों का प्रभु यश कहने और सुनने का अनुपम स्वभाव होता है।

सुनहु बचन अब तुम मति धीरा । राम बसहिं मंदाकिनि तीरा ॥
चित्रकूट गिरि कामद नामा । सुख विलास सो सिय वर रामा ॥

हे धीर बुद्धि राजन! अब आप मेरे वचनों को सुनिये, श्री राम जी महाराज मन्दाकिनी नदी के किनारे निवास कर रहे हैं। श्री चित्रकूट पर्वत जिसका सुहावना नाम 'कामद गिरि' है, सीताकान्त श्री राम जी महाराज का इस समय वही सुखमय विहार स्थल है।

सिया रमण तहँ आनँद पागी । रमैं नित्य गिरि अति अनुरागी ॥
भरतहुँ दुखित समाजहिं लीन्हे । गये चित्रकूटहिं चित दीन्हे ॥

सीतारमण श्री राम जी महाराज वहाँ आनन्द में पगकर नित्य धाम श्री चित्रकूट पर्वत में अत्यधिक अनुराग किये हुए, निवास कर रहे हैं। श्री भरत लाल जी भी अयोध्यापुरी के दुखमग्न समाज को साथ लेकर समाहित चित्त से श्री चित्रकूट गिरि गये हुए हैं।

इहाँ वास कीन्हे इक राती । पुरजन परिजन सहित जमाती ॥
भरत रहनि सुनु भूप सुजाना । श्रुति शारद अहिपति नहिं जाना ॥

अपने पुरजनों तथा परिजनों के समाज सहित उन्होंने भी एक रात्रि यहाँ निवास किया था। हे सर्वज्ञ राजन! सुनिये, श्री भरत जी की रहनी को तो श्रुतियाँ, श्री सरस्वती जी व श्री शेष जी भी नहीं समझ सकते।

प्रेम मूर्ति जग एक भुआरा । सीयराम पर सरवस वारा ॥
रामहुँ भरतहिं प्राण समाना । मानत मैं नीके करि जाना ॥

हे राजन! वे तो प्रेम की प्रतिमा, लोक में अद्वितीय और श्री सीताराम जी पर अपना सर्वस्व न्योछावर किए हुए हैं। श्री राम जी महाराज भी, श्री भरत जी को प्राणों के समान मानते हैं, मैं यह रहस्य बहुत अच्छी प्रकार से जानता हूँ।

दो0– यथा राम सम राम है, सम अतिशय नहि एक ।
तथा भरत सम भरत हैं, ढूढ़े अण्ड अनेक ॥२६॥

मुनिराज श्री भरद्वाज जी श्री जनक जी महाराज से कहते हैं कि– जिस प्रकार श्री राम जी महाराज के समान श्री राम जी ही हैं, उनसे अधिक की क्या कोई उनकी समता में भी नहीं है उसी प्रकार अनेकों ब्रह्माण्डों में खोजने पर भी श्री भरत जी के समान श्री भरत जी ही हैं।

राम भरत की प्रीति पियारी । विधि हरि हर नहि सकैं विचारी ॥
स्वामी सेवक सुन्दर जोरी । सब विधि सुखद अनूप अथोरी ॥

श्री राम जी महाराज और श्री भरत लाल जी की प्रिय प्रीति का विचार तो श्री ब्रह्मा जी, श्री

विष्णु जी एवं श्री शंकर जी भी नहीं कर सकते। उनकी तो स्वामी और सेवक की, सभी प्रकार से सुख प्रदायक, अनुपमेय तथा सुन्दर जोड़ी (एकरसता) है।

पूर्ण नित्य दोउ निज निज भावा । पगे परस्पर प्रेम प्रभावा ॥
जग अनंत उपदेशन वारे । रहनि करनि तिहुँ पुर उजियारे ॥

वे दोनों अपने–अपने भाव में नित्य पूर्ण व पारस्परिक प्रेम से ओतप्रोत रहते हैं। श्री राम जी महाराज और श्री भरत लाल जी तीनों लोकों में विख्यात तथा अपनी रहनी और करनी से अनन्त लोकों को उपदेश करने वाले हैं।

प्रेमी प्रेमास्पद बनि भाये । सिगरे पर्वत मोम बनाये ॥
जड़ चेतन जग जीव प्रमाना । घट घट युगल रमैं करि थाना ॥

परम सुशोभन वे दोनों श्री राम जी महाराज और श्री भरत लाल जी प्रेमास्पद और प्रेमी बन कर सभी पर्वतों (जड़) तक को मोम बना कर द्रवित कर दिये हैं और प्रमाण स्वरूप जड़ चेतनात्मक सम्पूर्ण जगज्जीवों के हृदय में प्रत्येक घट घट में दोनो अपना निवास बना कर रमें हुए हैं।

प्रेम बीज अरु प्रेम समुद्रा । राम भरत सब भाँति सुभद्रा ॥
तन मन बचन एक रस दोई । सहसा भेद लखै नहिं कोई ॥

सभी प्रकार से सुन्दर व श्रेष्ठ श्री राम जी महाराज तथा श्री भरत लाल जी प्रेम के बीज तथा प्रेम के समुद्र के समान है। वे दोनों शरीर, मन व वचन से एक समान हैं व अकस्मात देखने पर कोई भी उनमें अन्तर नहीं समझ सकता।

दो0– भरत प्रेम रत राम के, बनि गे राम समान ।
भरत प्रीति वश राम हूँ, होइगे भरत सुजान ॥२७॥

श्री भरत लाल जी तो श्री राम जी महाराज के प्रेम में अनुरक्त होने के कारण श्री राम जी महाराज के समान बन गये हैं तथा श्री भरत लाल जी की प्रीति के वशीभूत होकर श्री राम जी महाराज भी सर्वज्ञ भरत जी ही हो गये हैं।

मुनिन हृदय नित दोउन वासा । सरबस बने आत्म सम भासा ॥
सुनत सुखद मुनिवर प्रिय वानी । श्रवत नयन जिय सुठि सुख सानी ॥

मुनिजनों के हृदय में तो नित्य ही दोनों का निवास है तथा श्री राम जी महाराज व श्री भरत लाल जी दोनो उनके सर्वस्व बने हुए आत्मवत प्रतीत होते हैं। मुनिश्रेष्ठ श्री भरद्वाज जी की सुखप्रद प्रिय वचनावली को श्रवण कर श्री जनक जी महाराज के नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे तथा हृदय सुन्दर सुख से आपूरित हो गया।

सब विधि मुनिवर केर प्रसादा । पाइ महीपति अति अहलादा ॥
करि प्रणाम मुनि आयसु माँगी । चले चित्त प्रभु पद अनुरागी ॥

सभी प्रकार से मुनिवर श्री भरद्वाज जी की कृपा–प्रसाद प्राप्तकर श्री जनक जी महाराज अत्यन्त आह्लाद पूर्वक प्रणाम किये तथा आज्ञा माँग कर अपने चित्त को प्रभु श्री राम जी महाराज

के चरणों में अनुराग पूर्वक लगाये हुए चल पड़े।

जमुना पार भये निमि राजा । बसे रात निज सहित समाजा ॥
भोर न्हाइ पुनि गवनत भयऊ । बालमीकि के आश्रम गयऊ ॥

निमिराज श्री जनक जी महाराज इस प्रकार चलते हुए श्री यमुना जी के उस पार चले गये तथा वहाँ रात्रि में अपने समाज सहित निवास किए। प्रातः काल होते ही यमुना स्नान कर वहाँ से चल दिये तथा मुनिराज श्री वाल्मीकि जी के आश्रम गये।

करत दण्डवत मुनि उर लाई। आशिष दीन्ह निकट बैठाई ॥
कुँअरहिं करत प्रणाम निहारे । शीश सूँघि मुनिराज दुलारे ॥

श्री जनक जी महाराज के दण्डवत करते ही मुनिवर श्री वाल्मीकि जी ने उन्हें हृदय से लगा लिया तथा आशीर्वाद देकर अपने समीप बैठा लिया। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को प्रणाम करते हुए देखकर मुनिराज श्री वाल्मीकि जी ने उनका शिर सूँघ कर दुलार किया।

दो0– कुशल प्रश्न पूँछत सुखद, मुनिवर भूपहिं देख ।
बहुरि चरित रघुनाथ कर, वरणे प्रीति विशेष ॥२८॥

मुनिराज श्री वाल्मीकि जी ने श्री जनक जी महाराज की ओर देखकर कुशल प्रश्न किये तथा पुनः विशेष प्रेम पूर्वक रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज के चरित्र का वर्णन करने लगे।

मास पारायण सोलहवाँ विश्राम

बालमीकि कह सुनहु महीपा । राम चरित सब श्रुतियन दीपा ॥
वेद पुरान संत मत सारा । राम चरित पावन मन हारा ॥

श्री वाल्मीकि जी ने श्री जनक जी महाराज से कहा– हे महाराज! सुनिये, श्री राम जी महाराज का चरित्र तो सभी श्रुतियों को भी प्रकाशित करने वाला है। वेदों, पुराणों एवं सन्तों सभी का यह मत है कि– श्री राम जी महाराज का चरित्र परम पावन एवं सभी के मन को हरण कर लेने वाला है।

लीला करहिं सिया सह रामा। वेद भाष्य सो अहै ललामा ॥
रघुवर चरित देखि जन ज्ञानी। वेद अर्थ तेहिं सत जिय जानी ॥

श्री सीता जी के सहित श्री राम जी महाराज जो चरित्र करते हैं वही वेदों का सुन्दर भाष्य हैं। ज्ञानीजन, श्री राम जी महाराज की लीलाओं का दर्शनकर अपने हृदय में उससे वेदों का यथार्थ अर्थ समझते हैं।

कहहिं सुनहिं लीला अनुसारी । श्रुति कर अर्थ त्रिसत्य विचारी ॥
चेष्टा सकल राम की भूपा । श्रुतिमय जानहु सहज स्वरूपा ॥

श्री राम जी महाराज की लीलाओं को, श्रुतियों का त्रिसत्य अर्थ विचार (समझ) कर ज्ञानीजन

उनकी लीलाओं का कथन व श्रवण करते रहते हैं। हे राजन! आप श्री राम जी महाराज की सभी चेष्टाओं को सहज श्रुतिमयी ही समझिये।

सत चित आनन्द धाम सुहावा । नाम रूप लीला मन भावा ॥
देखत सुनत कहत सुखकारी । सुमिरत मोद बढ़ावन हारी ॥

श्री राम जी महाराज के सुन्दर नाम, रूप, लीला और धाम, मन–भावन व सच्चिदानन्दमय हैं जो दर्शन, श्रवण व कथन में सुख प्रदायक तथा स्मरण करने में आनन्द बृद्धिंगत करने वाले हैं।

दो0– मंगलमय कल्याणमय, भुक्ति मुक्ति सुख दैन ।
प्रेम भगति रस बर्द्धनी, लीला राजिव नैन ॥२९॥

कमल नेत्र रघुनन्दन श्री राम जी महाराज की लीला मंगलमयी, कल्याणमयी, भुक्ति, मुक्ति व सुख प्रदायिनी तथा प्रेमाभक्ति व आनन्द (रस) की परिबृद्धि करने वाली है।

सुनि भूपाल प्रेम रस छाये । पुलकित तन दृग वारि बहाये ॥
शीश नाइ कह सत मुनिराजा । राम चरित अनुपम सुख साजा ॥

मुनिराज श्री वाल्मीकि जी के मनोरम वचनों को श्रवणकर श्री जनक जी महाराज प्रेमानन्द में समाहित हो गये तथा पुलकित शरीर हो, नेत्रों से अश्रु बहाने लगे। पुनः शीश झुका उन्हे प्रणामकर बोले– हे मुनिराज! श्री राम जी महाराज का चरित्र यथार्थतया अनुपमेय सुखों की सामग्री है।

परम शान्ति विश्राम प्रदायक । लीला ललित राम रघुनायक ॥
राउर राम तत्व विद ज्ञानी । कहहिं यथार्थ जगत हित जानी ॥

रघुकुल के नायक श्री राम जी महाराज की लीला अत्यधिक सुन्दर, परम शान्ति एवं परमानन्द प्रदायिनी है। हे मुनिश्रेष्ठ! आप तो श्री राम तत्व के ज्ञाता व परम ज्ञानवान है, संसार का हित समझ कर आप सत्य ही कह रहे हैं।

कहत सुनत रघुवर वर लीला । मुनिवर भूप पगे रस शीला ॥
लहि विश्राम भूप शिर नाई । आयसु माँगि चले रस छाई ॥

रघकुल श्रेष्ठ श्री राम जी महाराज की सुन्दर लीलाओं को कहते व सुनते हुए मुनिवर श्री बाल्मीकि जी तथा श्री जनक जी महाराज आनन्द में डूब गये। पुनः श्री जनक जी महाराज किंचित विश्राम कर मुनिवर श्री वाल्मीकि जी को श्री शिर झुका प्रणाम किये व आज्ञा प्राप्त कर रस में छके हुए चल दिये।

राम वास बन सम्पति पेखी । बढ़त भूप हिय प्रेम विशेषी ॥
कोल किरातन देखि महीपा । कहहिं लखे तुम रघुकुल दीपा ॥

श्री राम जी महाराज की निवास स्थली श्री चित्रकूट गिरि प्रान्त की वन सम्पत्ति को देख देखकर श्री जनक जी महाराज के हृदय में विशेष प्रेम वृद्धिंगत हो रहा था। वन के निवासी कोल व किरातों को देखकर श्री विदेह राज जी महाराज उनसे पूछते हैं कि– क्या आप लोगों ने रघुकुल को प्रकाशित करने वाले श्री राम जी महाराज का दर्शन किया है?

दो0– लहि सुधि भूपति रस मगन, भरि भरि हिय अनुराग ।
मिलत तिनहिं धन देयँ बहु, बरवस गनि निज भाग ॥३०॥

तब श्री जनक जी महाराज उन सभी से प्रभु श्री राम जी महाराज का समाचार पाकर आनन्द में मग्न हो जाते हैं। वे हृदय में बार बार अनुराग प्रपूरित हो कोल व किरातों से भेंट करते हैं और उन्हें हठ पूर्वक बहुत सा धन देकर अपना सौभाग्य मानते हैं।

प्रेम पगे नृप सहित समाजा । जाहिं चले प्रभु दरशन काजा ॥
अति आतुर प्रभु प्रेम निकेता । भूपति चलहिं चेत चित चेता ॥

इस प्रकार प्रेम में डूबे हुए श्री जनक जी महाराज ससमाज प्रभु श्री राम जी के दर्शनों के लिए चले जा रहे हैं। श्री जनक जी महाराज अपने चित्त में चैतन्यता पूर्वक, प्रभु चिन्तन करते हुए, अत्यन्त आतुर हो प्रेम के आगार प्रभु श्री राम जी महाराज के दर्शन के लिये चल रहे थे।

प्रेम रूप नृप दल मग मोहा। मनहु विरह बहु तन धरि सोहा ॥
महिपति विरह देखि महि जबहीं । सिया विरह सनि गई सो तबहीं ॥

प्रेम स्वरूप श्री विदेह राज जी महाराज का समाज प्रभु श्रीराम जी महाराज के चिन्तन में मोहित हुआ मार्ग में ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो प्रभु श्री राम जी का विरह ही कई शरीर धारण कर सुशोभित हो रहा हो। श्री भू देवी ने जब श्री जनक जी महाराज के प्रभु विरह को देखा तब वह अपनी पुत्री श्री सीता जी के वियोग में मग्न हो गयीं।

वन पर्वत सहद्रवति अधीरा । कोमल बनी प्रेम बह नीरा ॥
जबहिं पषानहिं परहिं सुपादा। उपटत चरण होत अहलादा ॥

भू देवी वनों और पर्वतों के सहित अधीर व द्रवीभूत होकर कोमल हो गयीं थी और उनके प्रेमाश्रु, जल के रूप में प्रवाहित हो रहे थे। उस समय जब चलने वालों के पैर पत्थरों में भी पड़ जाते तो उनमें पैरों के निशान पड़ जाते थे जिन्हें देखकर अत्यन्त ही आह्लाद होता था।

लता वृक्ष पशु पक्षी जेते। पेखि प्रेममय बने अचेते ॥
प्रेम प्रवाह चला मग माहीं । जड़ चेतन सब बहे तहाहीं ॥

लता, वृक्ष, पशु, पक्षी आदि जो भी जड़–चेतन जीव वहाँ थे वे सभी श्री भूमि देवी के प्रेम को देखकर प्रेमस्वरूप होकर स्मृतिहीन हो गये थे। उस समय प्रभु–प्रेम का प्रवाह मार्ग में प्रवहमान हो चला था जिसमें समस्त चराचर समुदाय प्रवाहित हो गया।

दो0– गिरिवर देखे जनक जब, प्रेम न हृदय समाय ।
धीर धरहिं करि यत्न बहु, तदपि अश्रु दृग छाय ॥३१॥

श्री जनक जी महाराज ने जब गिरिराज श्री चित्रकूट जी का दर्शन किया तब उनके हृदय में प्रेम समा नहीं रहा था, वे बहुत उपाय करते हुए धैर्य धारण कर रहे थे तथापि उनके नेत्र बारम्बार अश्रुओं से आपूरित हो जाते थे।

उतरि यान नृप कीन्ह प्रणामा । पुलकित तन महि परे ललामा ॥
भूपति–भू जनु सिय विरहीने । लिपटि रहे इक इक हिय लीने ॥

अपने वाहन से उतर कर श्री जनक जी महाराज ने श्री चित्रकूट गिरि को पुलकित शरीर भूमि में लेट कर सुन्दर प्रणाम किया। हमारे सद्‌गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–उन्हे देखकर ऐसी प्रतीति हो रही थी जैसे श्री सिया जू के विरह में मग्न भू–देवी के स्वामी श्री जनक जी महाराज और श्री भू–देवी एक दूसरे के हृदय से हृदय लगाकर कर भेट कर रहे हैं।

मातु सुनैना सह रनिवासा । कीन्ह प्रणाम गिरिहिं सहुलासा ॥
प्रेम मूर्ति जनु सिगरी सोही । सीता राम वियोग विछोही ॥

सम्पूर्ण रनिवास के सहित अम्बा श्री सुनैना जी ने श्री चित्रकूट गिरि को आनन्द पूर्वक प्रणाम किया। वे सभी रानियाँ श्री सीताराम जी के वियोग में दुखी व प्रेम की प्रतिमा बनी सुशोभित हो रही थीं।

लक्ष्मीनिधि कर प्रेम अपारा । देखत गिरि नहि देह सँभारा ॥
करत दण्डवत गिरि वर काहीं । नयन बहत जल काँपत जाहीं ॥

जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी का प्रेम तो अपरिमित है वे श्री चित्रकूट गिरि का दर्शन करते ही अपने शरीर को न सम्हाल सके। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अश्रु प्रपूरित नेत्रों व प्रकम्पित देह से पर्वत श्रेष्ठ श्री चित्रकूट गिरि को दण्डवत करते हैं।

उठि उठि पुनि पुनि करत प्रणामा । महि रज शोभित वपुष ललामा ॥
कुंचित केश सुगन्धिनि वारे । घुँघुरारे कारे गभुआरे ॥

वे बार–बार उठते व गिरते हुए श्री चित्रकूट गिरि को प्रणाम कर रहे हैं, उनका सुन्दर शरीर 'चित्रकूट रज' से सना हुआ सुशोभित हो रहा है। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के जो सुगन्ध प्रपूरित, घुँघुराले व काले–काले गभुआरे (जन्म–जात) केश हैं।

दो०– चित्रकूट रज भरि रहे, ताम्र वर्ण सुठि सोह ।
मुख ललाट सब धूरि मय, वस्त्र विभूषण जोह ॥३२॥

उनमें श्री चित्रकूट गिरि की परम पावन रज (धूल) भर जाने से वे सुन्दर ताम्रवर्ण के होकर सुशोभित हो रहे हैं। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के मुख, ललाट, वस्त्र तथा आभूषण आदि सभी 'चित्रकूट रज' से धूसरित दिखायी पड़ रहे हैं।

छं०– वन धूरि राजित सोह तन, नृप कुँअर तहँ अति ही लसैं ।
जनु तेज पावक भस्म धर, शोभित महा लागत जसैं ॥
लखि भाव सुरगन मोद भरि, वरषत सुमन जै जै करैं ।
सिय राम पूरण ब्रह्म रस, निज निज हृदय सर महँ भरैं ॥१॥

चित्रकूट वनस्थली की धूल से धूसरित हुए श्री जनक जी महाराज के कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अत्यन्त ही सुहावने लग रहे थे, वे उसी प्रकार अत्यधिक तेज से युक्त सुशोभित हो रहे थे जैसे राख से ढँकी हुई प्रखर अग्नि। उनके सुन्दर भाव को देखकर देवता आनन्द में भरकर पुष्प वरषाते हुए जै–जैकार कर, पूर्ण ब्रह्म श्री सीताराम जी के प्रेम रस से अपने हृदय के सरोवरों को आप्लावित कर रहे थे।

निमि बाल लखि लखि गिरिवरहिं, हिय भाव भरि मुरछित भये।
पितु मातु प्यार सुझाव लहि, चितवहिं हरषि कामद हये॥
गुरु जन सराहैं प्रेम प्रिय, धनि कुँअर प्रगट दिखायऊ।
जग देखि हर्षण बिन श्रमहिं, प्रभु प्रेम सिन्धु समायऊ॥२॥

निमिनन्दन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी पर्वत श्रेष्ठ श्री चित्रकूट जी का बार–बार दर्शन कर हृदय में भाव भरकर मूर्छित हो गये तथा श्री मान् पिता जी व श्री अम्बा जी के प्यार और सुझाव (सम्मति) को पाकर हर्षित हो श्री कामद गिरि को निहारने लगे। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– उस समय सभी गुरुजन, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रशंसा करते हुए कह रहे थे कि– हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी आप धन्य हैं जो आपने परम प्रभु श्री सीताराम जी के प्रिय प्रेम को प्रगट कर दिखा दिया, जिसे देख–देखकर सम्पूर्ण संसार आज, बिना परिश्रम (साधन) ही प्रभु प्रेम के महासागर में समाहित हो गया।

सो0–जनक सुआयसु दीन्ह, पाँय पयादे जाहिं हम।
राम दरश मन लीन्ह, पद त्राणहुँ नहि पग धरहिं॥३३॥

श्री विदेह राज जी महाराज ने आज्ञा दी कि– अब हम श्री राम जी महाराज के दर्शन में अपने मन को लगाये हुए, यहाँ से पैदल (बिना–वाहन) ही जायेंगे तथा चरणों में पद रक्षिका पावरियाँ भी धारण नहीं करेंगे।

सुनत रजायसु सकल समाजा। हरषी चलन पयादे काजा॥
करि प्रणाम तब निमिकुल वारा। सुखद भावमय वचन उचारा॥

श्री जनक जी महाराज की आज्ञा सुनते ही सम्पूर्ण समाज हर्षित होकर पैदल चलने को उद्यत हो गया। तब निमिकुल नन्दन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, श्री विदेह राज जी महाराज को प्रणाम कर उनसे सुखप्रद व भाव परिपूर्ण वचन बोले,–––

एक मोर विनती पितु पादा। अरपित अहै अहौं सविषादा॥
यदपि धृष्टता सब विधि करऊँ। शील सकोच त्यागि नहिं डरऊँ॥

–––श्री मान दाऊ जी (पिताजी) के चरणों में मेरी विनय अर्पित है, वह यह कि– मैं दुखियारा यद्यपि सभी प्रकार से शील व संकोच को त्याग, किंचित भयभीत न होकर धृष्टता कर रहा हूँ।

तदपि पिता अति मोर दुलारा। रखिहैं उर विश्वास अपारा॥
मन अस लागत रघुवर पाहीं। चलउँ अत्र ते परि भुँइ माहीं॥

तथापि श्री मान् पिता जी मेरा अत्यन्त दुलार रखेंगे ऐसा मेरे हृदय में अपरिमित विश्वास है। मेरे मन में ऐसी इच्छा हो रही है कि– मैं यहाँ से श्री रघुनन्दन जू के समीप तक भूमि में लेटकर प्रणाम करता हुआ चलूँ।

करत दण्डवत रघुवर धामा । जाउँ जपत सिय रघुवर नामा ॥
सुनि पितु हिय अतिशय सुखमानी । भाव प्रेम उर उत्तम जानी ॥

मैं दण्डवत करते हुए व श्री सीताराम नाम का जप करता हुआ श्री राम जी महाराज के निवास स्थल को जाऊँ। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रभु–प्रेम भरे वचनो को श्रवण कर उनके हृदय के भाव और प्रेम को उत्तम समझ, श्री मान् विदेह राज जी महाराज जी ने हृदय में अत्यधिक सुख प्राप्त किया।

दो0– गुरु सह आयसु हरषि हिय, दीन्हे निमि कुल भूप ।
चलहु यथा रुचि राम पहँ, धरि शुचि भाव अनूप ॥३४॥

निमिकुल नरेश श्री जनक जी महाराज ने गुरुदेव श्री याज्ञवल्क्य जी सहित हर्षित हृदय आज्ञा प्रदान की कि– हे युवराज कुमार! आप अपनी इच्छानुसार पवित्र और अनुपमेय भाव हृदय में धारण कर श्री राम जी महाराज के समीप चलिये।

गुरु अशीष पितु आयसु पाई । लक्ष्मीनिधि हिय सुख न समाई ॥
गुरु पितु मातु बन्दि निमि वारा । करत प्रणाम चल्यो प्रभु प्यारा ॥

श्री गुरुदेव जी की शुभाशीष तथा श्री मान् पिता जी की आज्ञा प्राप्त कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का हृदय सुख से आपूरित हो रहा था। अनन्तर प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रिय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी गुरुदेव श्री याज्ञवल्क्य जी, श्री मान् पिता जी, व श्री अम्बा जी को प्रणाम कर भूमि में दण्डवत करते हुए चल पड़े।

कछुक साथ हित सेवक दीन्हे। नरपति चले समाजहिं लीन्हे ॥
कुँअर प्रणाम करत मग माहीं । सविधि जात सुमिरत प्रभु काहीं ॥

उनके साथ रहने हेतु कुछ सेवक देकर श्री जनक जी महाराज समाज को लिये हुए चल दिये। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी मार्ग में दण्डवत करते हुए व विधि पूर्वक प्रभु श्री राम जी महाराज का स्मरण करते हुए चलने लगे।

सीय राम धुनि करहिं सुहाई । सेवक सखा संग सँग जाई ॥
कीर्तन प्रेम जाहिं सब छाके । सीय राम निज चित्त बसा के ॥

सेवक तथा सखागण श्री सीताराम नाम की सुन्दर ध्वनि (संकीर्तन) करते हुए कुमार के साथ साथ चल रहे थे। वे सभी श्री सीताराम जी को अपने चित्त में बसाये व कीर्तन के प्रेम में छके हुए प्रभु दर्शन को चले जा रहे थे।

सबहिं अपनपौ भूलि मदीले । नयन वारि ढारत सुख शीले ॥
नृत्यत गावत प्रेम अथोरा । गद्गद निकसत नाम विभोरा ॥

प्रभु प्रेम में मतवाले वे सभी अपनी सुधि–बुधि भूल कर नेत्रों से अश्रु बहा रहे थे तथा सुख पूर्वक अत्यधिक प्रेम के साथ नाचते–गाते हुए, गद्गद वाणी से प्रभु नाम उच्चारण करते हुए, विभोर हो रहे थे।

दो0– जात उसासें भरत सब, प्रगटत प्रेम अथोर ।
चहुँ दिशि छायो राम रस, जड़ चैतन्य विभोर ॥३५॥

वे सभी लम्बी–श्वाँसें भरकर अत्यधिक प्रेम बढ़ाते हुए चल रहे थे, उस समय वहाँ चारों दिशाओं में श्री रामानन्द (परमानन्द) छाया हुआ था तथा उन्हे देखकर जड़ और चैतन्य सभी विभोर बने जा रहे थे।

सुरगण देखि दुन्दुभी हनहीं । प्रेम मूर्ति कुँअरहिं सब गिनहीं ॥
छन छन वरषहिं सुमन अपारा । भाव भरे करि जय जयकारा ॥

देवगण कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व उनके समाज को देख–देखकर दुन्दुभी बजाते व वे सभी मन में कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को प्रभु श्री सीताराम जी के प्रेम की प्रतिमूर्ति मान रहे थे। वे प्रत्येक क्षण पुष्पों की असीम बृष्टि करते हुए, भाव विभोर हो जय जयकार कर रहे थे।

देव अपनपौ सब विधि भूले । राम प्रेम रँगि गये रँगीले ॥
प्रभु पद चिन्ह जहाँ तहँ देखी । कुँअर हिये अनुराग अशेषी ॥

उस समय प्रभुरस–रसिक देवगण सभी प्रकार से अपने अस्तित्व को भूलकर श्री राम जी महाराज के प्रेम में रँग गये थे। भूमि में जहाँ–तहाँ श्री राम जी महाराज के चरण चिन्हों को देखकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का हृदय, पूर्ण रूप से अनुराग प्रपूरित हो जाता था।

रज शिर धरि उर लोचन लाई । लोटहिं भूमि सनेह बढ़ाई ॥
कुँअर प्रेम लखि तीनहुँ लोका । लहहिं प्रेम रस अभय अशोका ॥

वे प्रभु चरण चिन्हों की धूलि को शिर में धारण करते, हृदय व नेत्रों में लगाते तथा प्रेम बढ़ाकर भूमि में लोट जाते थे। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रेम को देखकर तीनों लोकों के निवासी प्रेम व आनन्द (रस) प्राप्त कर निर्भय और शोक मुक्त हो रहे थे।

करहिं प्रशंसा जनक सुवन की ।धन्य प्रीति सिय सियारमण की ॥
जग हित राम प्रेम रस रूपा ।बनी कुँअर की देह अनूपा ॥

उस समय सभी देवता–गण जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी की सराहना करते हुए कहते थे कि– श्री सीता जी व सीता–कान्त श्री राम जी महाराज की ऐसी प्रीति धन्य हैं। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का अनुपमेय शरीर संसार के कल्याण हेतु श्री राम प्रेम और आनन्द (रस) स्वरूप बना हुआ है।

दो0– दीन अमानी भावमय, प्रेम मूर्ति निमि लाल ।
ज्ञान योग वैराग्य निधि, धनि धनि रघुवर श्याल ॥३६॥

श्री राम जी महाराज के प्रिय श्याल, निमिनन्दन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी दीन व अमानी भाव

में भरे हुये, प्रेम की प्रतिमा, ज्ञान, योग व वैराग्य के निधि बने हुए धन्याति धन्य हैं।

यहिं विधि कुँअर प्रीति रस पागे। सीय राम दरशन अनुरागे॥
करत दण्डवत जात सुधीरा। पुलकत वपुष नयन बह नीरा॥

इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेमानन्द में पगे हुए श्री सीताराम जी के दर्शनानुराग में भरे, धैर्य पूर्वक भूमि में दण्डवत करते हुए चले जा रहे थे, प्रेमातिशयता के कारण उनका शरीर पुलकित हो जाता था तथा नेत्रों से अश्रु बहने लगते थे।

विविध मनोरथ हिय महँ आवैं। तदाकार तब कुँअर सुहावैं॥
बोलहिं बचन तैसहीं भावा। प्रेम पगे नहि आन दिखावा॥

उनके हृदय में जब श्री राम जी महाराज के प्रति विभिन्न प्रकार की मनो–भावनाएँ आतीं थीं, तब कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी उनके तदाकार हो जाते थे और उसी प्रकार के भाव पूर्वक वचनों का विसर्ग करने लगते थे। प्रेम में पगे होने के कारण उन्हें अन्य कुछ भी दिखाई नहीं देता था।

मिलिहहिं आज भगिनि अरु भामा। सोचत कुँअर हृदय अभिरामा॥
तापष वेष तिनहिं ये नैना। हाय देखिहैं आज सचैना॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने हृदय में सुन्दर विचार करते कि– आज मेरे बहन और बहनोई मुझे प्राप्त होंगे। हाय! ये नेत्र आज उन्हें तपस्वी वेष में सुखपूर्वक दर्शन करेंगे।

सीय राम बनवास कहानी। सुनत फटेउ नहि उर अकुलानी॥
धिक धिक धिक मैं अवधि अभागा। सिय दुख लखिहौं भरि अनुरागा॥

हाय! श्री सीताराम जी के वनवास का समाचार सुनते ही मेरा हृदय आकुल होकर विदीर्ण क्यों नहीं हो गया। हाय! मुझे धिक्कार है, धिक्कार है, धिक्कार है, मैं तो अभाग्य की परिसीमा हूँ, हाय! आज मैं अपनी प्रिय भगिनि श्री सीता जी के दुखों का दर्शन, प्रेम में भरकर करुँगा।

दो0– राम श्याल सिय भ्रात ह्वै, तनिक न आई लाज।
प्रभु प्रेमी कहवाइ जग, दम्भहिं हिये विराज॥३७॥

हाय! श्री राम जी महाराज का श्याल और श्री सीता जू का प्रिय भ्रात होकर भी मुझे लज्जा ने वरण नहीं किया और मैं अपनें हृदय में दम्भ को बिठाये हुए संसार में भगवान का प्रेमी कहला रहा हूँ।

इहौ कहत अति दम्भ जनाई। बिन करनी कहनी विरथाई॥
यहि विधि उपजत भाव अनेका। हिय न धीर अति किये विवेका॥

यह कहते हुए भी तो मुझे महान दम्भ ही प्रतीत हो रहा है क्योंकि करनी (आचरण) के बिना कथनी (गाल बजाना) तो, व्यर्थ ही है। इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में उस समय अनेक प्रकार के भाव उत्पन्न हो रहे थे तथा अत्यधिक विवेक करने पर भी हृदय में धैर्य नहीं हो रहा था।

राम प्रेम आपुहिं लय कीन्हे। जात कुँअर ह्वै सब विधि खीने॥
कमलहुँ सो अति कोमल सोही। भूमि बनी कुँअरहिं पर मोही॥

श्री राम प्रेम में अपने आपको लीन किये हुए, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सभी प्रकार से दुखी बने, चले जा रहे थे। उस समय कुँअर श्री भू–देवी, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखकर उनके श्री राम प्रेम पर मुग्ध हो, उनके लिये कमल से भी अत्यधिक कोमल बनी हुई उसी प्रकार सुशोभित हो रही थीं–––

मातु समान करति मनु प्यारा। मेघउ छाया किये सम्हारा॥
सहित वायु सुर सब अनुकूले। पाँच तत्व सेवहिं मन भूले॥

–––मानो श्री भूमि देवी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को माता के समान प्यार कर रहीं हों। मेघ (बादल) भी उन पर छाया किये हुए उन्हें सम्हाल रहे थे, श्री पवन देव सहित सभी देवता अनुकूल बने हुए थे तथा पृथ्वी, जल, वायु, आकाश व अग्नि आदि पांचों तत्व भी अपने मन को भूलकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की सेवा कर रहे थे।

पुष्प वरषि छन छन अनुरागे। कहहिं कुँअर जय जय बड़ भागे॥
उहाँ राम सिय सहित समाजा। भरत मातु मंत्री मुनि राजा॥
आवत जनक समाजहिं लीन्हे। सुधिहिं पाइ सब विस्मय कीन्हे॥

वे देव–गण प्रत्येक क्षण अनुराग प्रपूरित हो पुष्प वरषाते तथा कहते थे कि– परम सौभाग्यशाली कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी की जय हो। उधर, श्री सीताराम जी, श्री भरत जी, सभी माताएँ, मन्त्रीगण तथा मुनिराज श्री बसिष्ठ जी एवं श्री विश्वामित्र जी आदि सभी जन यह समाचार पाकर कि– 'श्री जनक जी महाराज ससमाज चित्रकूट आ रहे हैं' आश्चर्यचकित हो गये।

दो0– गुरु निदेश रघुवर मुदित, भाइन सहित समाज।
चले मिलन मिथिलेश कहँ, शील सकुच सुठि भ्राज॥३८॥

रघुकुल गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी की आज्ञा से श्री राम जी महाराज भ्रातृगणों व समाज सहित सुन्दर शील व संकोच से भरे हुए श्री मिथिलेश जी महाराज से भेट करने हेतु चल पड़े।

सहित समाज जनक नृप देखा। आवत राम तपस्वी वेषा॥
मुरछि परे सब सहित नरेशा। भूलि अपनपौ अरु वह देशा॥

तपस्वी वेष में श्री राम जी महाराज को आते देखकर, अपने अस्तित्व व स्थान की स्मृति भूलकर समाज सहित श्री जनक जी महाराज मूर्छित हो भूमि में गिर पड़े।

दूरिहिं ते प्रभु दशा विलोकी। आतुर नृप ढिंग गये सशोकी॥
भरि दृग नीर परसि नरपाला। चेत करायो दीन दयाला॥

तब दूर से ही उनकी यह अवस्था देखकर शोकाकुल प्रभु श्री राम जी महाराज, त्वरान्वित हो श्री जनक जी महाराज के समीप गये तथा दीनों पर दया करने वाले वे प्रभु, नेत्रों में अश्रु भरकर, श्री जनक जी महाराज का स्पर्श कर चैतन्यता प्रदान किये।

प्रभु इच्छा सब जगी समाजा। भरे नयन निरखति रघुराजा ॥
राम प्रणाम कियो मिथिलेशहिं। हियहिं लगाये नृप अवधेशहिं ॥

प्रभु श्री राम जी की इच्छा मात्र से सम्पूर्ण समाज मूर्छा से जागृत हो गया तथा अश्रुपूरित नेत्रों से श्री राम जी महाराज को निहारने लगा। श्री राम जी महाराज ने श्री मिथिलेश जी महाराज को प्रणाम किया तब श्री जनक जी महाराज ने अयोध्या नरेश श्री राम जी को हृदय से लगा लिया।

नयन नीर शिर ऊपर ढारी। हृदय दाह नरपति दुख भारी ॥
भरत लखन रिपुहनहिं सुराजा। करत प्रणाम हिये लहि भ्राजा ॥

श्री राम जी महाराज के शिर में, श्री जनक जी महाराज के नेत्रों से अश्रु ऐसे गिर रहे थे मानों वे उनका प्रेमाश्रुओं से अभिषेक कर रहे हों। श्री जनक जी महाराज का हृदय शोक की अग्नि के महान संताप से जला जा रहा था। श्री भरत लाल जी, श्री लक्ष्मण कुमार जी तथा श्री शत्रुघ्न कुमार जी को प्रणाम करते देख श्री जनक जी महाराज, उन्हें हृदय से लगाकर सुशोभित होने लगे।

दो0–भाइन सह रघुपति मिले, सासु सुनैना काहिं।
सिद्धि सहित रनिवास कहँ, यथा योग दरशाहिं ॥३९॥

पुनः अपने भ्राताओं सहित श्री राम जी महाराज अपनी सासू श्री सुनैना जी से भेंट किये तथा वे श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित सम्पूर्ण रनिवास से यथोचित विधि से अपना दर्शन दान देकर मिले।

यागबल्क सह विप्रन वन्दे। अभिमत आशिष पाइ अनन्दे ॥
मिले मैथिलन सबहिन रामा। हिय लगाय लोचन अभिरामा ॥

नरश्रेष्ठ श्री राम जी महाराज ने निमिकुल आचार्य श्री याज्ञवल्क्य जी सहित सभी ब्राह्मणों की वन्दना की तथा मनोभिलषित आशीषें प्राप्त कर आनन्दित हुए। नयनाभिराम श्री राम जी महाराज सभी मैथिलों से हृदय से हृदय लगाकर भेंट किये।

जनक राम गुरु पद धरि शीशा। पाये सहित सनेह अशीषा ॥
सकल द्विजन सह अवध समाजा। भेंटे करुण कसे निमिराजा ॥

श्री जनक जी महाराज ने श्री राम जी महाराज के गुरुदेव मुनिवर श्री बसिष्ठ जी के चरणों में शिर रखकर प्रणाम किया तथा उनका स्नेह और आशिर्वाद प्राप्त किया। निमिराज श्री जनक जी महाराज ने करुणा प्रपूरित हो सभी ब्राह्मणों सहित श्री अयोध्यापुरी के सम्पूर्ण समाज से भेंट की।

मैथिल औध समाज मिलापा। जनु जुग करुण सिन्धु मिलि आपा ॥
रोदत वदत विलाप कराहीं। मग्न भये दुख सागर माहीं ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– उस समय श्री मैथिल व श्री अवध, युगल–समाज का मिलन ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे करुणा के दो सागर परस्पर में मिल रहे हों। वे सभी रुदन करते हुए, शोक प्रपूरित बातें कर–कर, विलाप करते हुए दुख के सागर में मग्न हो रहे थे।

सबहिं देखि कुँअरहिं नहिं देखे। अन्तरयामी सोच विशेषे॥
धरि धीरज श्री रघुकुल राऊ। पूछे नृपहिं सनेह समाऊ॥

अन्तर्यामी प्रभु श्री राम जी महाराज सभी लोगों को देखने के बाद कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को न देखकर विशेष चिन्ता में पड़ गये। पुनः धैर्य धारण कर श्री जनक जी महाराज से रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज ने स्नेह प्रपूरित हो पूँछा।

दो0– कुँअर न दीखैं मोहि इत, कारण कौन विशेष।
जानन हित अतुरान जिय, कहहिं देव मिथिलेश॥४०॥

हे श्रीमान् मिथिलेश जी महाराज! मुझे यहाँ कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी, नहीं दिखायी दे रहे। हे देव! आप कहिये, कि– इसका कौन सा विशेष कारण हैं? उसे जानने के लिए मेरा हृदय त्वरान्वित हो रहा है।

सुनि प्रभु बचन नयन भरि वारी। बोले जनक बहत रस धारी॥
तव वियोग रघुवीर कुमारा। विलपत व्याकुल वदन बिचारा॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवण कर श्री जनक जी महाराज की नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आये तथा वे प्रेम रस के प्रवाह में प्रवाहित हो बोले– हे रघुकुल प्रवीर, श्री राम जी ! आपके वियोग में दीन हुए, कुमार लक्ष्मीनिधि जी विलाप करते हुए व्याकुल हो गये हैं।

करत दण्डवत भूमिहिं लोटत। आवत दरशन हित तन घोटत॥
कुँअर व्यथा नहिं बरनन योगू। सुमिरि दशा सिहरहिं सब लोगू॥

वे भूमि में लोट कर दण्डवत करते, अपने शरीर को कष्ट देते हुए आपके दर्शनों के लिए आ रहे हैं। कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी का दुख वर्णन करने योग्य नहीं है, उस अवस्था का स्मरण मात्र करने पर ही सभी लोग काँप जाते हैं।

नरपति मरण आप बनवासा। सुनत कुँअर कटु क्लेशहिं ग्रासा॥
गुरु निदेश धरि धीर कुँआरा। आवत विरह बोझ दब वारा॥

श्री चक्रवर्ती जी की मृत्यु (स्वर्गवास) और आपका बनवास सुनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को कठोर क्लेश ने ग्रसित कर लिया है। श्री गुरुदेव जी की आज्ञा से धैर्य धारण कर कुमार वियोग के असीनीय भार से दबे हुए आ रहे हैं।

भरद्वाज बलमीकि सुजाना। तेहिं समुझाये बहुत विधाना॥
तदपि नयन जल सींचत भूमी। थर थर काँपत तव रस झूमी॥

यद्यपि सर्वज्ञ श्री भरद्वाज जी और मुनिराज श्री बाल्मीकि जी नें उन्हें बहुत प्रकार से समझाया है तथापि वे आँसुओं से भूमि को सींचते हुए, आपके वियोग में थर–थर काँपते व झूमते हुए–––

दो0– आय रहेव निकटहिं ललन, कीर्तन शब्द सुनात।
सुनत श्रवत दृग बिसरि तन, हाय कहत अकुलात॥४१॥

———आ रहे हैं। हे ललन रघुनन्दन! वे समीप ही हैं क्योंकि कीर्तन के शब्द सुनायी पड़ रहे हैं। श्री जनक जी महाराज के इन वचनों को सुनते ही श्री राम जी महाराज के नेत्रों से अश्रु बहने लगे, शरीर स्मृति भूल गयी तथा हाय, कहते हुए वे व्याकुल हो गये।

आतुर श्री रघुनाथ पाला । अति कृतज्ञ प्रभु प्रणतन पाला ॥
भेंटन चले सुखद सिय भ्राता। प्रेम विभोर भक्त सुखदाता ॥

तदनन्तर अत्यन्त कृतज्ञ (अपने प्रति किये गये किंचित कार्य का महान उपकार मानने वाले), आश्रित जनों का प्रतिपालन करने वाले व भक्तजनों को सुख प्रदान करने वाले रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज प्रेम विभोर हो, सीताग्रज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से भेंट करने हेतु आतुरता पूर्वक चल पड़े।

मैथिल अवध समाजहुँ पीछे। चली सकल कीन्हे मन छूँछे ॥
करत दण्डवत आवत श्यालहिं। देखे राम सुखद निमि बालहिं ॥

उनके पीछे श्री मिथिला व श्री अवध का सम्पूर्ण समाज भी शान्त–मन से चल पड़ा। श्री राम जी महाराज ने कुछ दूरी पर भूमि में दण्डवत करते आते हुए, अपने सुख प्रदायक श्याल निमिनन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखा।

धाये तन मन सुरति बिसारी । गिरत भूमि पुनि उठत सम्हारी ॥
विह्वल प्रेम राम रघुराजा । भूली सिगरी गुरुजन लाजा ॥

———उन्हे देखते ही शरीर व मन की स्मृति भुला कर भूमि में गिरते और फिर सम्हल कर उठते हुए श्री राम जी महाराज दौड़ पड़े। वे श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रेम में विह्वल हो गये, उन्हें गुरुजनों की सम्पूर्ण लज्जा का विस्मरण हो गया।

चहत उठावन कर गहि रामा। स्वयं मूर्छि महि परे ललामा ॥
नृप सुवनहुँ तहँ रघुवर देखी। तापस वेष उदास विशेषी ॥

श्री राम जी महाराज उन्हें हाथ पकड़ कर उठाना ही चाह रहे थे कि– स्वयं भी मूर्छित हो भूमि में गिर पड़े। वहाँ श्री राम जी महाराज को तपस्वी वेष धारण किये हुए विशेष उदास अवस्था में देखकर श्री जनक कुमार लक्ष्मीनिधि जी भी–

दो0– बेसुध लोटत भुइँ परेउ, हाय हाय चिल्लात ।
दशा निरखि जग हिय फटै, जड़ चेतन विलपात ॥४२॥

स्मृतिहीन होकर भूमि में गिर लोटने लगे तथा हाय–हाय कहकर आर्तनाद करने लगे। उस समय जड़ व चेतन सभी उनके साथ विलाप कर रहे थे, उनकी अवस्था को देखकर संसार के सभी जीवों का हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा था।

छं0– जड़ जीव चेतन की दशा, तेहिं समय अनुभव रस भरी।
जहँ मोम सादृश द्रवत गिरि, चैतन्य वर्णन को करी ॥

कछु बेर जागे दोउ प्रिय, लखि लखि परस्पर रस पगे।
हिय मेलि मेटत ताप उर, दोउ नयन बरसन बहु लगे॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि हे श्री हनुमान जी! उस समय चराचर सभी जीवों की अवस्था करुण रस में भरी हुई सी अनुभव में आ रही थी। जहाँ पर बज्रवत पर्वत भी मोम के समान द्रवित हो रहे थे वहाँ पर चैतन्य जीवों की दशा का क्या वर्णन किया जाय। कुछ समय बाद दोनों प्रिय कुमार जागृत हुए और एक दूसरे को देखकर आनन्द (रस) में डूब गये। वे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज, दोनों एक दूसरे को हृदय से लगाकर अपने–अपने विरह ताप को शान्त कर रहे थे उन दोनो के नेत्रों से लगातार अश्रु प्रवाहित हो रहे थे।

धरि धीर भ्रातन राम के, पुनि कुँअर भेंटे श्याम सम।
लखि प्रीति भामन श्याल की, को कवि कहै शारद अगम॥
हिय छाय शोकहिं दोउ दल, नहिं लाज धीरज ज्ञान है।
सब प्रेम माते राम के, हर्षण छुटेउ जग ध्यान है॥

पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने धैर्य धारण कर श्री राम जी महाराज के भ्राताओं से श्री राम जी महाराज के समान ही अत्यन्त प्रेम पूर्वक भेंट की। उस समय श्याल और चारों भाम (बहनोइयों) की प्रीति को देखकर उसका यथार्थ वर्णन कौन कवि कर सकता है क्योंकि वह प्रीति तो श्री सरस्वती जी के लिए भी अगम्य है। वहाँ 'श्री मैथिल व श्री अवध' दोनों समाज के हृदय में दुख छाया हुआ था उन्हें लज्जा और धैर्य का ज्ञान नहीं हो रहा था। हमारे सद्‌गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– वे सभी प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रेम में मतवाले हो गये थे, उनका संसार की ओर से ध्यान छूट गया था।

सो0–याही विधि कछु काल, शोक सिन्धु सिगरे मगन।
रघुवर राम कृपाल, कहे कुँअर सन बात मृदु॥४३॥

कुछ समय तक इसी प्रकार सभी लोग दुख के सागर में मग्न रहे तत्पश्चात् कृपालु श्री राम जी महाराज ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से कोमल वाणी से कहा–––

देखहु मुनियन केर समाजा। तेज पुंज दिनकर भलि भ्राजा॥
गुरु वसिष्ठ कौशिक जाबाली। याज्ञवल्क अत्री तप शाली॥

–––हे कुमार! आप मुनियों के समाज को तो देखिये– जो सूर्य के समान तेजोराशि से समन्वित सम्यक प्रकार से शोभायमान हो रहा है। परम ज्ञानी गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी, मुनिराज श्री विश्वामित्र जी, मुनिवर श्री जाबालि जी, निमिकुल आचार्य श्री याज्ञबल्क्य जी तथा तपस्वी श्री अत्रि जी आदि मुनिगण–––

देखहिं बदन तुम्हार ललामा। करहु सबन कहँ दण्ड प्रणामा॥
सुनत कुँअर कछु धीरज धारी। राम गुरुहिं प्रणमेउ सुख सारी॥

———आपके सुन्दर मुख मण्डल को देख रहे हैं, आप इन सभी को दण्डवत प्रणाम कीजिये। श्री राम जी महाराज के वचनों को सुनते ही कुछ धैर्य धारण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने सुखों के सार श्री राम जी महाराज के गुरुदेव मुनि श्रेष्ठ श्री बसिष्ठ जी को प्रणाम किया।

करत प्रणाम कुँअर कहँ देखी। मुनि बसिष्ठ हिय प्रीति विशेषी॥
द्रुत उठाय निज हृदय लगाये। शीश सूँघि दृग जल नहवाये॥

मुनिवर श्री बसिष्ठ जी ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को प्रणाम करते हुए देखा तो उनका हृदय विशेष प्रेम से आपूरित हो गया तब शीघ्रता–पूर्वक कुमार को उठाकर उन्होंने हृदय से लगा लिया तथा उनके शिर को सूँघ कर प्रेमाश्रुओं से अवगाहन करा दिया।

करि दुलार समझाय सुबानी। काल कर्म गति कहि कहि ज्ञानी॥
तैसहिं कौशिक करि करि प्यारा। कुँअरहिं लियो हृदय बहु बारा॥

परम ज्ञानवान रघुकुल आचार्य श्री बसिष्ठ जी ने उनका दुलार कर सुन्दर वचनों से समझाते हुये कहा कि–'यह सब काल और कर्मो की गति है'। उसी प्रकार मुनिराज श्री विश्वामित्र जी महाराज ने भी प्यार करते हुए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अपने हृदय से कई बार लिपटाकर शान्त्वना प्रदान की।

दो0– सकल मुनिन कहँ कुँअर वर, दीन्हे दण्ड प्रणाम।
प्रेम पुलकि नयनन सजल, आशिष लहे ललाम॥४४॥

अनन्तर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने प्रेमपूर्वक, पुलकित शरीर, नेत्रों में अश्रु भरकर सभी मुनियों को दण्डवत प्रणाम किया व सुन्दर आशीषें प्राप्त की।

बहुरि राम जनकहिं मुदु बानी। आश्रम चलन कहेव सुख सानी॥
सुनि मृदु बचन भाव सरसाने। लै समाज नृप कीन्ह पयाने॥

पुनः श्री जनक जी महाराज से, श्री राम जी महाराज ने कोमल वचनों से सुखपूर्वक आश्रम चलने हेतु कहा। तब उनके भावपूर्ण कोमल वचनों को श्रवण कर श्री जनक जी महाराज ससमाज आश्रम को प्रस्थान किये।

चले लिवाय राम दुख हारी। आश्रम शान्ति सिन्धु सुखकारी॥
दशरथ मरण बिचारि बिचारी। दुहुँ समाज तलफत अति भारी॥

शोक हरण करने वाले श्री राम जी महाराज सभी को, अपने शान्ति के सागर व सुखकर आश्रम ले चले। उस समय चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के स्वर्ग–वास का स्मरण व चिन्तन करते हुये मैथिल व अवध दोनों समाज शोक से अत्यधिक तड़प रहा था।

सीता सुधि आवत मन माहीं। विलखिविलखि मैथिल हिचकाहीं॥
जनक सुवन सिधि जनक सुनैना। विलपत जस कछु कहत बनैना॥

लाड़िली श्री सिया जू का स्मरण मन में आते ही सभी मैथिल बिलख–बिलख कर हिचकियाँ

भरने लगते थे। उस समय जनक–नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी, श्री सिद्धि कुँअरि जी, श्री जनक जी महाराज तथा श्री सुनैना जी जिस प्रकार विलाप कर रहे थे उसे किंचित भी कहते नहीं बन रहा।

अधिक अधिक हिय शोक जनाई । ज्यों ज्यों आश्रम निकटहिं आई ॥
सुर नर मुनि अरु किन्नर नागा । सिगरे शोक सिन्धु रस पागा ॥
राम सहित साकेत निवासी । जनक सहित मिथिला पुरवासी ॥

जैसे–जैसे श्री राम जी महाराज का आश्रम समीप आता जा रहा था सभी के हृदय में उतना ही अधिक दुख बढ़ता हुआ प्रतीत हो रहा था। देवता, मनुष्य, मुनि, किन्नर तथा नाग आदि सभी उस समय शोक के सिन्धु में मग्न तथा विरह रस में डूबे हुए थे। श्री राम जी महाराज के सहित समस्त श्री अवधपुर वासी व श्री जनक जी महाराज सहित सभी श्री मिथिला पुर निवासी–––

दो0–शोक सिन्धु बूड़त बहत, लेते श्वास प्रश्वाँस ।
विकल अचेतन सम लगत, चले जात वर वास ॥४५॥

–––शोक सागर में डूबते व बहते हुए, दीर्घ श्वाँस प्रश्वाँस लेते हुए, व्याकुल हो बेसुध के समान श्री राम जी महाराज के आश्रम को चले जा रहे थे।

पहुँचे जाइ राम निज वासा । जन दुख दुखी सबहि कहँ भासा ॥
यद्यपि सत चिद आनँद धामा । तदपि करहिं वर चरित ललामा ॥

इस प्रकार चलते हुए श्री राम जी महाराज अपने निवास (आश्रम) में पहुँच गये। उस समय श्री राम जी महाराज स्वजनों के दुख से दुखी हुए से दिखाई दे रहे थे। श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि– हे श्री पवन नन्दन! यद्यपि श्री राम जी महाराज सच्चिदानन्दमय व परम पद–स्वरूप हैं, तथापि वे मनुष्यों की भाँति सुन्दर लीला कर रहे थे।

पितु सुधि जबहिं हृदय महँ आवै । शोकित स्वजन पेखि अकुलावैं ॥
शोक सिन्धु आश्रमहिं डुबायो । पशु पक्षी दुख चीख मचायो ॥

जब श्री राम जी महाराज को हृदय में अपने श्री मान् पिता जी का स्मरण आता और दुखी स्वजनों को देखते तब वे अत्यन्त ही शोकाकुल हो जाते थे। इस प्रकार शोक के सागर ने सम्पूर्ण आश्रम को स्वयं में आत्मसात कर लिया था, यहाँ तक कि वहाँ के पशु और पक्षी भी दुखभरी आवाज से चीत्कार कर रहे थे।

दशरथ गुणगण कहि कहि भूपा । विलपत बने दुःख कर रूपा ॥
तैसहिं सुअन सखन सह भ्राता । दशरथ सुरति करत बिलपाता ॥

श्री जनक जी महाराज चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के चरित्रों का बखान करते हुये विलाप कर स्वयं दुख स्वरूप बने हुए थे। उसी प्रकार जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी भी अपने भ्राताओं और सखाओं सहित अयोध्या नरेश श्री दशरथ जी महाराज का स्मरण कर विलाप कर रहे थे।

राम भरत सानुज दोउ जोरी। विलपत बोलत वपुष विभोरी ॥
सकल समाज शोक रस सानी। विलपति बहु गुण गणहिं बखानी ॥

विकल शरीर श्री राम जी महाराज व श्री भरत लाल जी दोनों राज कुमार अपने अनुजों के साथ पिता श्री की अक्षय कीर्ति व दिव्य गुणों को परस्पर कहते हुये विलाप कर रहे थे तथा सम्पूर्ण समाज भी चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के गुणों का बखान करता हुआ करुण रस में डूबकर रुदन कर रहा था।

दो0– लगत मनहु आजहिं गये, दशरथ अक्षर धाम।
प्रीति रीति दिवि गुण सुमिरि, रोवहिं सब अविराम ॥४६॥

उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे श्री चक्रवर्ती जी महाराज आज ही परम धाम गये हों तथा उनकी प्रीति–रीति एवं दिव्य गुणों का स्मरण कर सभी अनवरत रुदन कर रहे हों।

याज्ञबल्क्य बशिष्ठ मुनि ज्ञानी। प्रेरित ईश धर्म हिय आनी ॥
वर विज्ञान बचन मृदु भाषा। दीन्ह विदेहहिं ज्ञान प्रकाशा ॥

परम ज्ञानवान श्री याज्ञबल्क्य जी और मुनि–श्रेष्ठ श्री बसिष्ठ जी अदि मुनियों ने ईश्वर की प्रेरणा से हृदय में धर्म को धारण कर मधुर शैली से सुन्दर, श्रेष्ठ व ज्ञान स्वरूप वचनों के द्वारा श्री विदेहराज जी महाराज के हृदय में ज्ञान प्रकाशित कर दिया।

कुँअरहुँ कहँ बहु विधि समुझाई। मुनिवर दीन्हे धीर बँधाई ॥
मुनि सानुज रामहिं हिय लाई। दीन्ह शान्ति कहि बचन सुहाई ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को भी श्रेष्ठ मुनिजनों नें बहुत प्रकार से समझा कर धैर्य धारण कराया। श्री मुनिवर बसिष्ठ जी ने अनुजों सहित श्री राम जी महाराज को हृदय से लगा कर सुन्दर वाणी का विसर्ग करते हुए हुए शान्ति प्रदान की।

बहुरि बसिष्ठ कहे सुख सानी। जल थल तकि उर उत्तम जानी ॥
सब कर वास होय बिन बेरी। शान्ति लहैं श्रम भयो घनेरी ॥

पुनः सुख पूर्वक श्री बसिष्ठ जी महाराज ने कहा कि– अब सभी जन, अपने हृदय में उत्तम जल व स्थल आदि देख–समझ कर अविलम्ब निवास कर शान्ति प्राप्त करें, क्योंकि सभी को मार्ग में अत्यधिक श्रम हुआ है।

सुनि हित बचन जनक सिर नाई। सहित समाज राम चित लाई ॥
जहँ तहँ बसे समय अनुहारा। सपनेहु क्लेश न मनहिं भुआरा ॥

मुनिवर श्री बसिष्ठ जी के हितकारक वचनों को श्रवण कर श्री जनक जी महाराज ने शिर झुका प्रणाम किया तथा ससमाज श्री राम जी महाराज को हृदय में धारण कर समयानुसार जहाँ–तहाँ निवास किये। उस समय श्री जनक जी महाराज के मन में वन की कठिनाइयों का दुख स्वप्न में भी नहीं प्रतीत हो रहा था।

दो0– राम दरश आनँद अवधि, मन बुधि बानी पार ।
जनक भये तेहिं सुख मगन, ममता अहं बिसार ॥४७॥

आनन्द की परिसीमा तथा मन, बुद्धि व वाणी के परे श्री राम जी महाराज के दर्शन के सुख में श्री जनक जी महाराज अपने ममता व अहंकार को विस्मृत कर मग्न हो गये।

गुरु बशिष्ठ चरणन शिर नाई । कुँअर सकुचि जल नययन छाई ॥
करि शिर निम्न जोरि युग पानी । खड़े भये नहि बोलत बानी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी संकोच पूर्वक आँखों में अश्रु भर, रघुकुल आचार्य महर्षि श्री बशिष्ठ जी के चरणों में शिर झुका प्रणामकर हाथों को जोड़ नत मस्तक हो खड़े हो गये, प्रेमावेश के कारण उनका कण्ठावरोध हो रहा था।

हिय रुख लखि श्री मुनिवर बोले । कहन चहहु सो कहहु अमोले ॥
आयसु लहि तब कहेउ कुमारा । नाथ हृदय के जानन हारा ॥

उनके हृदय की इच्छा को समझकर मुनिराज श्री बसिष्ठ जी बोले– श्री निमि–वंश के अनमोल निधि हे कुमार लक्ष्मीनिधि! आप जो कुछ कहना चाहते हैं, उसे कहिये, तब उनकी आज्ञा प्राप्त कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे नाथ! आप सर्वज्ञ व मेरे हृदय की सभी बातें जानने वाले हैं

सीय दरश की आस महानी । तलफत हृदय नयन ललचानी ॥
बिनु देखे जिय जरनि न जाई । कवन कुटीर बसैं सुखदाई ॥

श्री सिया जू के दर्शनों की महान अभिलाषा से मेरा हृदय तड़प रहा है तथा नेत्र लालायित हैं। मेरे हृदय की जलन श्री सिया जू के दर्शन बिना समाप्त नहीं होगी अतएव आप बतलावें कि– वे सुख प्रदायिनी श्री सिया जू किस कुटी में निवास कर रही है।

सीता सासुन्ह दर्शन प्यासा । हृदय लगी त्रासित तव दासा ॥
अस कहि कुँअर बहुरि पद लागी । सीय दरश की आयसु माँगी ॥

आपके इस दास के हृदय में श्री सीता जी की सासुओं के दर्शन की भी तीव्रतर तृषा लगी हुई है। ऐसा कह कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी पुनः गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी के चरणों को प्रणाम कर श्री सिया जू के दर्शन की अनुमति माँगी।

दो0– मुनिवर रिपुहन ते कहेउ, कुँअरहिं सिया समीप ।
जाहु लिवाय सुदर्श हित, जोवहिं शान्ति प्रदीप ॥४८॥

मुनिश्रेष्ठ श्री बसिष्ठ जी ने तब श्री शत्रुघ्न कुमार जी से कहा कि– आप कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को, श्री सिया जू के समीप ले जाइये, जिससे उनका दर्शन प्राप्त कर श्री निमिकुल के दीपक (प्रकाशक)– कुमार लक्ष्मीनिधि, शान्ति प्राप्त करें।

उत सिय सुनि पितु मातु अवाई । भ्राता भाभी पुर समुदाई ॥
सोच सकोच विरह रस भीनी । नैहर प्रेम विवश मति झीनी ॥

उधर, सूक्ष्मदर्शिणी श्री सिया जू, श्री अम्बा जी, श्री मान दाऊ जी, श्री भैया जी, श्री भाभी जी और मिथिला पुर–वासियों का आगमन जानकर, अपने नैहर (मायके) के प्रेम के वशीभूत हो चिन्ता, संकोच व वियोग रस में डूबी हुई थीं।

सोचति हृदय मोर वन गवना । सुनि पितु मातु तजे निज भवना ॥
भैया दु:ख वरणि नहिं जाई । विलपत महि महँ लोटत आई ॥

वे विचार कर रही थीं कि मेरा वनगमन सुनकर मेरे श्री मान् पिता जी व श्री अम्बा जी ने अपने भवनों का त्याग कर दिया है तथा मेरे श्री मान् भैया जी का दुख तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता, वे तो रोते हुए व भूमि में लोटते हुए यहाँ आये हैं।

मोहि लगि सहे अमित संतापा । धन्य भ्रातु कर प्रेम प्रतापा ॥
मोरे हित निज सरवस त्यागी । बनेउ अनन्य भगिनि अनुरागी ॥

श्री मान् भैया जी ने मेरे लिए असीमित दुख सहन किया है, उनके प्रेम का प्रभाव धन्य है जिन्होंने मेरे हित के लिए अपना सर्वस्व त्याग कर अनन्य रूप से मुझ बहन के अनुरागी बने हुये हैं।

तिन सों उऋण कबहुँ नहिं होई । चाहौं जनम जनम मिलि सोई ॥
तापस वेष देखि मोहि भइया । सहिहैं पीर हाय दुख दइया ॥

मैं उनसे कभी भी उऋण नहीं हो सकती और प्रत्येक जन्म में उन्हें ही भ्रात रूप में चाहती हूँ। मेरे श्री मान् भैया जी मुझे तपस्वी वेष में देखकर अतिशय दुखदाई पीड़ा को सहन करेंगे।

दो0– इतना कहि सिय मुर्छि महि, परी शोक सुठि छाय ।
भइया भइया रटति प्रिय, बहत अश्रु अकुलाय ॥४९॥

इतना कहकर श्री सिया जू मूर्छित हो दुख में भर, भूमि में गिर पड़ीं तथा हे श्री भैया जी, हे मेरे भैया जी उच्चारण करती हई व्याकुल हो अश्रु बहाने लगीं।

लखि सिय दशा कौशिला माता । समुझाई मृदु बचन सुहाता ॥
सियहिं कराय सचेत दुलारी । सोचन लगी स्वयं नृप नारी ॥

श्री सिया जू की ऐसी अवस्था को देखकर, श्री कौशिल्या अम्बा जी ने दुलार करते हुये सुन्दर कोमल वाणी से श्री सीता जी को समझाकर चैतन्यावस्था में लाया। पुनः महारानी श्री कौशिल्या जी स्वयं विचार करने लगीं कि–––

सीतहिं मोकहँ सौपि सचैना । रहे सुखी बहु जनक सुनैना ॥
सो थाती मैं बनहिं पठाई । दुख समुद्र जहँ नित उमड़ाई ॥

–––श्री जनक जी महाराज और महारानी श्री सुनैना जी आनन्दपूर्वक अपनी पुत्री श्री सिया जू को मुझे सौंप कर सुखी हो गये थे। परन्तु मैने उनकी उस धरोहर को वन में भेज दिया है, जहाँ नित्य ही दुखों का सागर उमडाता रहता है।

जननि जनक की नयन पुतरिया । भ्रात भाभि की प्राण अधरिया ॥
आनँद सिन्धु गई प्रति पाली । अति सुकुमार सुकोमल वाली ॥

लाड़िली श्री सिया जू तो अपनी श्री अम्बा जी और श्री मान् पिता जी के नयनों की पुतली तथा श्री मान् भैया जी व श्री भाभी जी के प्राणों की आधार तथा आनन्द के सागर में पाली हुई अत्यन्त सुकुमार कोमल बालिका हैं।

मखमल ऊपर पुष्प विछाये । धरत पदहिं पितु मातु डेराये ॥
ललित लली पद पंकज माहीं । पुष्प चुभन की शंका आही ॥

इनके श्री मान् पिता जी व श्री अम्बा जी मखमल वस्त्र के ऊपर बिछे हुए फूलों में श्री सिया जू के चरण रखने पर भी डर जाते थे। उन्हें श्री लाड़िली सिया जू के चरण कमलों में पुष्पों के चुभ जाने की आशंका हो जाती थी।

छं०– सिय पद सुकोमल मंजु अति, कहुँ जाय गड़ि पुष्पन कली ।
हिय सोच माता भ्रात पितु कर, नित यतन बहु विधि भली ॥
सोइ आज सीता बन बनहि, चालति बिना पद त्रान है ।
लखि ताहि विदरत नहिं हियो, हर्षण कुलिश अधिकान है ॥

श्री सीता जी के अत्यन्त सुकोमल मंजुल चरणों में पुष्पों की कलियाँ कहीं चुभ न जायें यही आशंका उनके श्री मान् पिता जी, श्री अम्बा जी और श्री मान् भैया जी के हृदय में बनी रहती थी और इस हेतु वे बहुत प्रकार से उपाय किये रहते थे। वही श्री सीता जी आज वनों में बिना पद रक्षिका जूतियों के चल रही हैं। हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री स्वामी राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– अम्बा श्री कौशिल्या जी विचार करती हैं कि– श्री सीता जी के ऐसे दुख को देखकर भी मेरा हृदय विदीर्ण नहीं हो जाता, लगता है यह वज्र से भी अधिक कठोर है।

दो०– जनक सुनैनहिं हाय, केहिं विधि मुख दिखराइहौं ।
बैरी प्राण जनाय, निकसत नहि भेंटन प्रथम ॥५०॥

हाय! मैं श्री जनक जी महाराज और महारानी श्री सुनैना जी को किस प्रकार अपना मुख दिखाऊँगी, ये मेरे प्राण भी मुझे आज शत्रु प्रतीत हो रहे हैं क्योंकि महारानी श्री सुनैना जी से भेंट होने के पूर्व ही इस शरीर से नहीं निकल जाते।

बार बार पुचकारि पियारी । मातु पवावति भोग सुखारी ॥
सो सिय आज निरस फल खाई । पियत पहारी पय दुखदायी ॥

जिन श्री सीता जी को बारम्बार पुचकार और प्यार कर उनकी श्री अम्बा जी सुखमय भोग पवाया करती थीं वही श्री सीता जी आज वन के रूखे– रसहीन फल खाती हैं और पर्वतों का दुखप्रद जल, पान करती हैं।

सुभग सेज जेहिं गावत लोरी । मातु सोवावति प्रीति अथोरी ॥

सो सिय घास पात नित डासी । सोवत भुँइ पति प्रेम प्रकाशी ॥

जिन श्री सीता जी को सुन्दर शयनासन में लोरी गा–गाकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक उनकी श्री अम्बा जी शयन कराती थीं वही श्री सिया जू अब घास और पत्तों को स्वयं बिछाकर, नित्य भूमि में अपने पति–प्रेम को प्रकट करती हुई शयन करती हैं।

हाय कवन विधि सनमुख होइहौं । जनक सुनैनहिं उत्तर दहहौं ॥
सियहिं देखि भइया पितु माता । केहिं विधि धरिहहिं धीर विधाता ॥

हाय! हाय! मैं किस प्रकार श्री जनक जी महाराज व श्री सुनैना जी के सामने जाऊँगी और उन्हें क्या उत्तर दूँगी। हे विधाता! श्री सिया जू को देखकर, उनके श्री भैया जी, श्रीमान् पिता जी और श्री अम्बा जी किस प्रकार धैर्य धारण करेंगे।

सासु कार्य मैं पूर्ण न कीन्हा । सिय अस वधू भेजि बन दीन्हा ॥
यहि प्रकार बहु करत प्रलापा । मातु कौशिलहिं भूलेउ आपा ॥

मैंने सासू का कार्य पूर्ण नहीं किया जो श्री सिया जू के समान पुत्रवधू को वन में भेज दिया। इस प्रकार बहुत भांति से प्रलाप करते–करते अम्बा श्री कौशिल्या जी को अपना स्मरण भी भूल गया।

दो0– नयन श्रवत तनहूँ कँपत, रह्यो हृदय अकुलाय ।
सीय सासु की दशहिं लखि, धरणी हूँ दुख छाय ॥५१॥

उनके नेत्रों से अश्रु बह रहे थे, शरीर कँप रहा था और हृदय व्याकुल हो रहा था। श्री सीता जी की सासू अम्बा श्री कौशिल्या जी की वह अवस्था देखकर श्री भूमि देवी भी दुखों में भर गयी।

एहीं विधि सब रघुवर माता । निज हिय भावित सोचहिं बाता ॥
श्रुति कीरति माण्डवि उरमीला । सीय सखी दासी शुभ शीला ॥

श्री राम जी महाराज की सभी माताएँ अपने हृदय में इसी प्रकार के भावों से भावित होकर विचार कर रही थीं। श्री श्रुतिकीर्ति जी, श्री माण्डवी जी, श्री उर्मिला जी और श्री सिया जू की सखियाँ व शुभप्रद दासियाँ सभी–––

निज निज भाव भरे प्रिय प्रेमा । सोचहिं पितर भ्रात वर क्षेमा ॥
तापस वेष विलोकि जानकी । गिरि न करैं कहुँ हानि प्रान की ॥

–––अपने अपने भावों में भरी हुई प्रिय प्रेमपूर्वक श्री मान दाऊ जी व श्री भैया जी की कुशलता का चिन्तन कर रही थीं कि–जनक दुलारी श्री जानकी जू को तपस्वी वेष में देखकर कहीं वे भूमि में गिरकर प्राणों की हानि ही न कर लें।

करि शंका सर्वेश मनाई । चाहहि नैहर कुशल भलाई ॥
तेहि अवसर लक्ष्मीनिधि आये । डगमग पैर धरत दुख छाये ॥

इस प्रकार की आशंका कर वे सर्वेश्वर भगवान से प्रार्थना करती थीं और अपने नैहर (मातृपुरी) श्री मिथिलापुरी की कुशलता व भलाई की कामना करती हैं। उसी समय दुख में डूबे हुये

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, डगमगाते पैर रखते हुए आ गये।

प्रहरी जाइ नारि वर शाला। कहेउ मातु सन तुरत हवाला ॥
जनक सुवन की सुनत अवाई । आयसु दीन्ह मातु अतुराई ॥
आवत भ्रात सीय सुनि काना । हृदय विकल नहिं जाय बखाना ॥

एक द्वार रक्षक (प्रहरी) नारियों के सुन्दर आवास में जाकर अम्बा श्री कौशिल्या जी से शीघ्र ही यह समाचार कह सुनाया। जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी का आगमन सुनकर अम्बा श्री कौशिल्या जी ने, आतुरतापूर्वक उन्हे अन्दर आने की आज्ञा प्रदान की। श्री सीता जी ने, जब अपने श्रवणों से श्रवण किया कि– श्रीमान् भइया जी आ रहे हैं तो उनका हृदय इतना अधिक व्याकुल हो गया, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

दो0– लहि आयसु निमिकुल कुँअर, पहुँचे शाला माँहि ।
तापस वेष विलोकि सिय, मुर्छि परे सुधि नाहिं ॥५२॥

अम्बा श्री कौशिल्या जी की आज्ञा प्राप्त कर, निमिकुल नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी 'नारियों की तृणशाला' में पहुँचे, वहाँ अपनी अनुजा श्री सीता जी को तपस्वी वेष में देखकर वे मूर्छित हो गिर पड़े, उन्हें किंचित भी स्मृति नहीं रही।

सियहुँ दौरि भैया ढिंग आई । प्रेम विवश झइ परी तोराई ॥
बिसरि देह सुधि भगिनी भ्राता । भूमि परे व्याकुल विलपाता ॥

श्री सीता जी भी दौड़कर अपने श्री भैया जी के समीप आयीं और प्रेम के वशीभूत आतुर हो स्मृति भूलकर भूमि में गिर पड़ी। उस समय दोनों भाई–बहन श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सीता जी शरीर की स्मृति भूले हुए, भूमि में गिरे–पड़े व्याकुल हो रुदन कर रहे थे।

राम मातु लखि दशा विभोरी। विलपत जनक किशोर किशोरी ॥
स्वयं विकल पर धीरज धारी। चेत करायउ करि उपचारी ॥

श्री निमिकुल किशोर और श्री जनक किशोरी दोनों को विलाप करते हुए विभोर अवस्था में देखकर श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी ने स्वयं व्याकुल होते हुए भी धैर्य धारण कर उपचार के द्वारा उन्हें सचेत कराया।

जागि लखे इक एकन काहीं । बहुरि विभोर भये सुधि नाहीं ॥
पुनि सुधि लहि भगिनि अरु भाई । प्रेम प्रवाह बहे अकुलाई ॥

जागृत हो वे दोनो, एक दूसरे को देखकर पुनः विभोर हो गये, उन्हें कोई स्मृति नहीं रही। पुनः स्मृति प्राप्त कर बहन और भाई श्री सीता जी व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व्याकुल होकर प्रेमाश्रुओ के प्रवाह में बह गये।

जनक सुवन सीतहिं हिय लाई। मनहु गई निधि आपन पाई ॥
बार बार निज हृदय लगाया । सिसकत प्रलपत प्रेम महाया ॥

जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सिया जू को इस प्रकार अपने हृदय से लगा लिया मानों अपनी खोयी हुई अनमोल निधि को प्राप्त कर लिये हों। वे बार–बार श्री सिया जू को हृदय से लगा रहे थे तथा सिसकते हुए अतिशय प्रेम पूर्वक प्रलाप कर रहे थे।

सूँघत शीष नयन जल ढारी । सिय अभिषेक करत जनु प्यारी ॥
भ्रात गोद सीतहुँ अति रोई । पितु तन जिमि शिशु भययुत होई ॥

वे उनका शिर सूँघते हुए आँसू बहा रहे थे मानों श्री सिया जू का प्यार करते हुए अभिषेक कर रहे हों। श्री सीता जी अपने श्री मान् भैया जी की गोद में उसी प्रकार बहुत रुदन कर रही थी जिस प्रकार कोई अबोध शिशु भयभीत होकर अपने पिता की गोदी में लिपट कर रोता है।

दो0– कछुक धीर धरि कुँअर वर, कहे प्रेमरस सानि ।
सुनहु मोरि सिय लाड़िली, हौं अभाग की खानि ॥५३॥

किंचित धैर्य धारण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने प्रेम रस में भीगे हुए बचनों से कहा कि– हे श्री लाड़िली सिया जू! सुनिये, मैं तो अभाग्य की राशि हूँ।

जबते जन्म लियो तुम आई । तबते मैं सब गयो भुलाई ॥
तुमहिं छोड़ि जानेउ कछु नाहीं । मन बच कर्म रहे तुम पाहीं ॥

जब से आप हमारे यहाँ आकर जन्म धारण की हैं तब से मैं सभी कुछ भूल गया था, मैंने आपके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं जाना तथा मन, वचन और कर्म से सदैव आप पर ही आश्रित बना रहा।

तव सुख निज सुख सत्य बिचारी ।आनँद मगन सदा रस धारी ॥
सहि न सक्यो सो सुखहिं विधाता ।मम अभाग की अवधि प्रदाता ॥

आपके सुख को ही अपना यथार्थ (सत्य) सुख मानकर मैं सदैव आनन्द रस की धारा में आनन्दपूर्वक डूबा रहा। किन्तु वह सुख, मेरे अभाग्य की सीमा को प्रदान करने वाले विधाता से सहन न हुआ।

यह वन वेष देखि तव सीता । फटत हृदय नहिं विधि विपरीता ॥
यहिते अधिक कवन दुख आही । हाय जियउँ केहिं हित जगमाही ॥

हे श्री सिया जू! आपका यह वनवासी वेष देखकर भी मेरा हृदय विदीर्ण नहीं हो रहा, लगता है श्री ब्रह्मा जी ही मुझसे विपरीत हो गये हैं। अब मेरे लिए इससे अधिक दुख और क्या होगा? हाय! मैं किस लिये संसार में जीवन धारण किये हूँ।

धिक धिक धिक मैं अमित अभागी ।जो पै रहा देह अनुरागी ॥
अस कहि विलखि परेउ पुनि रोई ।हाय हाय कहि सुधि सब खोई ॥
सीय परश लहि जग्यो कुमारा ।कहन लग्यो पुनि हाय पुकारा ॥

मुझे धिक्कार है, धिक्कार है, धिक्कार है, मैं अतिशय भाग्यहीन हूँ जो अपने शरीर पर अनुराग

किये हूँ। ऐसा कहकर प्रेम प्रवीण कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी विलख–बिलख कर रोने लगे तथा हाय! हाय! कहते हुए अचेत हो गये। श्री सीता जी का स्पर्श पाकर वे जागृत हुए और पुनः हाय! हाय! पुकारते हुए बोलने लगे।

सो0–सीय राम बनवास, सत्य किधौं स्वप्नो अहै ।
हिय महँ महा हरास, प्राण रहे अकुलाय मम ॥५४॥

श्री सीता राम जी का वनवास सत्य है कि स्वप्न है, मेरे हृदय में तो महान विषाद हो रहा है तथा मेरे प्राण व्याकुल हो छटपटा रहे हैं।

भ्रात दशा लखि सिय धरि धीरा । कृपामयी पर पीर अधीरा ॥
भैया सन बोली मृदु बानी । तजिय विषाद धीर हिय आनी ॥

अपने श्री भैया जी की अवस्था देखकर कृपामयी व दूसरों के दुख में अधीर हो जाने वाली श्री सिया जू ने धैर्य धारण कर मृदु वाणी में अपने श्री भैया जी से कहा, कि– हे श्री मान् भइया जी! आप दुखों का त्याग कर अपने हृदय में धैर्य धारण कीजिए।

मैं बन सुखी अवध सम वीरा । स्वप्नहुँ दुख नहिं लखी अधीरा ॥
स्वतः भ्रात निज सुख हित लागी । आई बनहिं अमित अनुरागी ॥

हे मेरे विरह में व्याकुल वीर! मैं तो, वन में श्री अयोध्यापुरी के समान ही सुखी हूँ, मैने यहाँ स्वप्न में भी किंचित दुख का अनुभव नहीं किया। हे श्री भइया जी! मैं तो स्वयं ही अपने सुख के लिये, अपार स्नेह के साथ वन में आयी हूँ।

सूर्य समीप न नेक अँधेरा । अगिन निकट नहिं शीत बसेरा ॥
आत्म दरश तिमि सुन मम भ्राता । सब दुख दोष कुसंशय जाता ॥

सूर्य के समीप जिस प्रकार किंचित भी अंधकार नहीं रहता व अग्नि के पास शीतलता का निवास नहीं रह पाता, उसी प्रकार हे मेरे श्री मान् भइया जी! आत्मदर्शन से सभी दुख, दोष व सन्देह दूर हो जाते हैं।

दुख सुख पार मोहि सत जानी । त्यागहु शोक मोर बच मानी ॥
राउर भगिनी सिद्धि ननन्दा । दाऊ पुत्रि नित्य आनन्दा ॥

आप यथार्थतः मुझे दुख व सुख से परे जान, मेरे वचनों को मानकर शोक त्याग दीजिये क्योंकि आपकी प्रिय बहन, श्री सिद्धि कुँअरि जी की ननँद और श्री मान दाऊ जी की पुत्री नित्य ही आनन्द परिपूर्णा है।

दो0– आनँदमय मोहि जानि जिय, धरहु धीर भल भ्रात ।
अस कहि पोंछति आँसु दृग, पकड़ि गरहिं लपटात ॥५५॥

हे मेरे परम प्रिय श्री भैया जी! आप अपने हृदय में मुझे आनन्द–स्वरूपा समझ कर धैर्य धारण कीजिये। ऐसा कहकर वे उनकी आँखों के आँसू पोंछती हैं तथा गले में बाहें डालकर लिपट जाती हैं।

अति विवेकमय सुनि सिय बचना। कुँअर करत हिय धीरज रचना॥
तदपि यथारथ धीर न आवै। आय महा माधुर्य दबावै॥

श्री सिया जू के अत्यन्त विवेकपूर्ण वचनों को श्रवणकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने हृदय में धैर्य धारण करने का प्रयास करते हैं तथापि उन्हें यथार्थतः धैर्य नहीं हो रहा, श्री सिया जू के प्रति उनका महान माधुर्य भाव उनके ऐश्वर्य परक ज्ञान को आकर तिरोहित कर देता है।

अति ऐश्वर्य उपाय न चलई। महा मधुर महिमा अति बलई॥
नयन श्रवत प्रिय प्रेम अधीरा। गद् गद् बोले बयन प्रवीरा॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को धैर्य धारण कराने हेतु ऐश्वर्य का महान उपाय, माधुर्य भाव की प्रबल महिमा के सामने किंचित भी काम नहीं कर रहा था। श्री सिया जू के प्रिय प्रेम में अधीर हो अश्रु बहाते हुए गद्‌गद वाणी से निमिकुल प्रवीर श्री लक्ष्मीनिधि जी बोले–

कहा कहौं इन आँखिन काहीं। समुझाये समुझत हैं नाहीं॥
इन कहँ राजवेष सो प्यारा। लखि न सकैं बन वेष तुम्हारा॥

हे मेरी प्रिय श्री लाड़िली जू! मैं अपनी इन आँखों को क्या कहूँ? जो बहुत समझाने पर भी नहीं समझतीं, इन्हें तो आपका वह राजवेश ही प्रियकर है, ये आपके वनवासी वेश को नहीं देख पातीं।

वन वन चलत नयन ये मोरे। देखत तुम्हें डेरात अथोरे॥
श्रवण सुनत वन दु:ख कहानी। लागै फटन हृदय अकुलानी॥
निमिकुल सहज स्वभाव उदारा। भूलेव मोकहँ ब्रह्म विचारा॥

ये मेरे नेत्र आपको वन–वन में भटकते हुए देखकर अत्यन्त ही भयभीत हो जाते हैं। मेरे कर्ण, वन की दुख भरी कथा को सुनते हैं तो मेरा हृदय व्याकुल होकर फटने लगता है इस समय तो मुझे अपने श्री निमिकुल के सहज उदार स्वभाव 'ब्रह्म चिन्तन' का भी विस्मरण हो गया है।

दो0– तव मुख लखि लखि लाड़िली, लेवत परमानन्द।
ब्रह्मानन्दहुँ ते लगत, शत गुन प्रेमानन्द॥५६॥

हे दुलारी श्री सिया जू! मैं तो आपके मुख कमल को देख–देखकर ही परमानन्द प्राप्त करता हूँ, मुझे ब्रह्मानन्द से भी सौ गुना अधिक श्रेष्ठ आपका प्रेमानन्द प्रतीत होता है।

कहत सुनत दोउ बात अमोली। रहे प्रेम रस निज निज घोली॥
कुँअर भयो प्रकृतिस्थ स्वरूपा। देखी दशरथ नारि अनूपा॥

इस प्रकार वे दोनों अनमोल प्रेम–वार्ता कहते व सुनते हुए अपने आपको प्रेमानन्द में घोल रहे थे। तदुपरान्त कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रकृतिस्थ हो जब स्वरूप में स्थित हुए तब उन्होंने श्री दशरथ जी महाराज की अनुपमेय महारानियों के दर्शन किये।

धाइ कौशिला पद महँ जाई। गिरेउ लकुटि इव सुधिहिं भुलाई॥
फूट फूट कर रोवन लागेउ। दशरथ गुण सब हिय महँ जागेउ॥

तब वे दौड़कर अम्बा श्री कौशिल्या जी के चरणों में दण्ड के समान, स्मृति भूल कर गिर पड़े और फूट–फूट कर रोने लगे, उनके हृदय में चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के सभी गुणगणों का उदय हो गया।

दाऊ कहि कहि करत विलापा। चलत अश्रु तन थर थर काँपा॥
बरबश अंक उठाय बिठाई। रही मातु निज हियहिं लगाई॥

वे, हे दाऊ जी! कहते हुए रुदन कर रहे थे, उनका शरीर थर–थर काँप रहा था और नेत्रों से आँसू बह रहे थे। श्री कौशिल्या अम्बा जी ने हठात् उन्हें उठा, गोद में बैठाकर हृदय से लगा लिया।

अश्रु पोंछि मुख चूमि दुलारी। मृदुल स्वभाव राम महतारी॥
कहत कुँअर मैं मातु अभागी। चलत न देखेउँ नृप अनुरागी॥

कोमल स्वभाव वाली श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के आँसू पोंछ, मुख का चुम्बन कर दुलार करती हैं। तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे श्री अम्बा जी! मैं तो अत्यन्त ही भाग्यहीन हूँ, मैं अन्तिम समय में श्री मान दाऊ जी का अनुरागपूर्वक दर्शन तक नहीं कर सका।

दो०– करत प्यार मम राम सम, गोद बिठाय भुआल।
सो सुख अब कहँ पाइहौं, अमृत सनो विशाल॥५७॥

श्री मान दाऊ जी तो श्री राम जी महाराज के समान गोद में बिठाकर मेरा प्यार करते थे, हाय! मैं अब वह अमृत से सना हुआ महान सुख कहाँ प्राप्त करुँगा।

अस कहि सिसकत रोवत वारा। मातु बुझाई करि बहु प्यारा॥
बोली ललन सुनहु मम बाती। विधि करतूत न नेक बसाती॥

ऐसा कहकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सिसकते हुए रुदन करने लगे तब श्री अम्बा जी ने अत्यधिक प्यार कर उन्हें समझाया और बोलीं– हे लालन! मेरी बात सुनिये, श्री ब्रह्मा जी के विधान में किसी का कुछ भी जोर नहीं चलता।

भा विधि मोहिं अतिहिं प्रतिकूला। सहौं विविध विधि नित बहु शूला॥
परम अभागिनि वैधव लीन्ही। पूत पतोहू बाहर कीन्ही॥

वे श्री ब्रह्मा जी तो यथार्थतः मेरे लिए ही अत्यधिक प्रतिकूल हुए हैं जिसके कारण मैं नित्य ही अत्यधिक कष्ट सह रही हूँ। मैं तो अत्यन्त ही भाग्यहीना हूँ जिसने अपने प्रिय पुत्र और पुत्रवधू को घर से बाहर निकाल दिया और वैधव्य स्वीकार कर लिया है।

आँख काढ़ि जिमि तन ते फेंकी। कोउ सुख लहै न जग अविवेकी॥
तिमि सियरामहिं बनहिं पठाई। शोक सिन्धु नित रहौं समाई॥

जिस प्रकार कोई अज्ञानी व्यक्ति अपनी आँख को अपने शरीर से निकाल कर फेंक दे तो वह संसार में कोई सुख नहीं प्राप्त कर सकता उसी प्रकार सभी के प्रिय श्री सीताराम जी को वन में भेज कर मैं नित्य ही शोक के समुद्र में डूबी रहती हूँ।

कर्म विपाक मोर सब लाला। भयो उदय दुखमय यहि काला ॥
मिथिला अवध सहित जग काहीं । भयो दु:ख मम दोषहिं माहीं ॥

हे ललन श्री लक्ष्मीनिधि जी! यह सब मेरे कुटिल कर्मो का परिणाम ही इस समय दुख के रूप में प्रगट हुआ है और मेरे दोषों के कारण ही श्री मिथिला व श्री अवधपुरी सहित सम्पूर्ण संसार को महान दुख प्राप्त हुआ है।

दो0— काहु दोष नहि गिनेउ मन, यह सब भोर अभाग ।
दुखमय रावरि यह दशा, मम करमन के लाग ॥५८॥

इस प्रकार की दुखदायी परिस्थिति के लिये, मेरा मन किसी को भी दोष नहीं देता, यह सभी कुछ तो मेरी भाग्यहीनता के कारण हुआ है तथा आपकी भी यह दुखमयी अवस्था मेरे कुटिल कर्मो के कारण ही हुई है।

सीय राम सुनि कानन बासा । मन प्रसन्न नहि नेक हरासा ॥
आये चित्रकूट चित दीने । देखे सुने सो ज्ञान प्रवीने ॥

श्री सीताराम जी तो अपना वनवास सुनकर भी अतिशय प्रसन्न प्रसन्न हैं उन्हे किंचित भी दुख नहीं हुआ और वे प्रसन्न चित्त हो यहाँ चित्रकूट आ गये हैं। हे परम ज्ञानवान, कुशल, कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! यह सब तो आपने देखा और सुना ही है।

मातु बचन सुनि जनक कुमारा। धारेउ धीरज प्रेम पसारा ॥
औरहुँ मातन कीन्ह प्रणामा। पायो आशिष प्यार ललामा ॥

अम्बा श्री कौशिल्या जी के वचनों को सुनकर जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने प्रेमपूर्वक धैर्य धारण किया तथा वे अन्य माताओं को प्रणाम कर उनसे सुन्दर आशीष तथा प्यार प्राप्त किये।

बहुरि सकल भगिनिन कहँ भेंटी । प्रीति समेत ताप कछु मेटी ॥
पुनि पुनि सिय कहँ हृदय लगाई। कौशिल्या पद शीष नवाई ॥

पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अन्य सभी बहनों से प्रेमपूर्वक भेंट की तथा अपने हृदय के ताप को किंचित शीतल किया। अनन्तर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सिया जू को बार–बार हृदय से लगाकर व अम्बा श्री कौशिल्या जी के चरणों में सिर झुका प्रणाम कर———

लहि आयसु गे पितृ सकाशा। चरण वन्दि बैठे वर वासा ॥
लली कुशल निज नययन देखी । मातु पिता सन कही विशेषी ॥

———उनसे आज्ञा प्राप्त कर अपने पिता श्री मान् जनक जी महाराज के पास गये और उनकी चरण वन्दना कर सुन्दर–पर्ण–कुटी में बैठ गये। उन्होंने, अम्बा श्री सुनैना जी और श्री मान दाऊ जी महाराज से अपनी अनुजा लली श्री सिया जू की अपने नेत्रों से देखी कुशलता विशेष प्रकार से कह सुनायी।

दो0– लली वेश सुनि समुझि उर, जननि जनक मन माहिं ।
हर्ष शोक दूनहुँ वसे, सात्विक भाव लखाहिं ॥५९॥

लाड़िली श्री सिया जू के स्वरूप (वन वेश) को सुन तथा हृदय में समझ कर उनकी श्री अम्बा जी व श्री मान् दाऊ जी के मन में हर्ष और दुख दोनों ही निवास कर गये, उनके शरीर में प्रेम के सात्विक भाव दिखाई देने लगे।

पावन जल मन्दाकिनि न्हाये । सन्ध्या करि सबहीं प्रभु ध्याये ॥
तेहिं दिन फलहारहु नहिं लीने । मैथिल सकल विरह रस भीने ॥

तदुपरान्त सभी नें श्री मन्दाकिनी जी के पवित्र जल में स्नान किया तथा सन्ध्योपासन कर प्रभु श्री राम जी का ध्यान किये। विरह रस में डूबे हुए सभी मैथिलों ने उस दिन भोजन में फलाहार तक नहीं ग्रहण किया।

सीय सासु पहँ भेजि सुदासी । सीय मातु दरशन बड़ि प्यासी ॥
समय जानि मिथिलेश्वर रानी । सिद्धि सहित हिय विरह समानी ॥

अम्बा श्री सुनैना जी ने श्री सीता जी की सासू श्री कौशिल्या जी के निकट सेविका भेजकर संदेश कहवाया कि– आपके दर्शन की अत्यन्त प्यासी, श्री सिया जू की अम्बा, दर्शन चाह रही है। पुनः अनुकूल समय समझ कर अपनी पुत्रवधू श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित, मिथिलेश्वर श्री जनक जी महाराज की महारानी श्री सुनैना जी, हृदय में पुत्री के वियोग में डूबी हुई–––

गवनी राम मातु पहँ दोऊ । देखि कौशिला धीरज खोऊ ॥
आगे ह्वै सिय मातुहिं भेंटी । भरि भुज शोक सनेह लपेटी ॥

–––दोनों श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी के समीप गयीं। उन्हें देखते ही श्री कौशिल्या जी का धैर्य छूट गया तथा वे आगे आकर दुख व प्रेम से डूबी हुई अम्बा श्री सुनैना जी से भुजाओं में भरकर भेंट कीं।

केकइ सहित सुमित्रा रानी । मिली सुनैनहिं शोक समानी ॥
सिद्धिहुँ गिरी चरण लपटाई । प्रेम विवश तन दशा भुलाई ॥
मातु उठाय हृदय निज धारी । चूमि बदन पोंछति दृग वारी ॥

महारानी श्री केकई जी सहित श्री सुमित्रा जी ने विषाद में डूबी हुई श्री सुनैना जी से भेंट की। प्रेम के वशीभूत हो, शरीर स्मृति भुला कर श्री सिद्धि कुँअरि जी श्री कौशिल्या अम्बा जी के चरणों में गिरकर लिपट गयीं। अम्बा श्री कौशिल्या जी ने उन्हें उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और मुख चूमकर, उनके आँखों से बहते हुए आँसुओं को पोछने लगीं।

दो0– सिय सम प्रिय मोहि सिधि कुँअरि, अहहु गुनहु मन माहिं ।
सीय राम शुचि प्रेम तव, वरणि न शेष सिराहिं ॥६०॥

अम्बा श्री कौशिल्या जी ने कहा–हे श्री सिद्धि कुँअरि जी! आप मुझे श्री सिया जू के समान प्रिय

हैं, ऐसा अपने मन में समझ लीजिये। श्री सीतारामजी के प्रति आपके पवित्र प्रेम का वर्णन कर हजार मुख वाले श्री शेष जी भी पार नहीं पा सकते।

बहुरि धीर धरि श्री निधि प्यारी । सब कहँ कीन्ह प्रणाम सम्हारी ॥
आशिष प्यार पाइ सबहीं के। सीय दरश लालच अति ही के ॥

पुनः लक्ष्मीनिधि वल्लभा श्री सिद्धि कुँअरि जी ने धैर्य धारण कर, स्वयं को सम्हाल सभी माताओं को प्रणाम किया तथा सभी के प्यार व आशीष को उन्होने प्राप्त किया। उस समय श्री सिद्धिकुँअरि जी के हृदय में अपनी ननद श्री सिया जू के दर्शन की अत्यधिक लालसा हो रही थी।

यथा समय आसन बैठाई। राम मातु कहि बचन सुहाई ॥
तेहिं अवसर सुनि मातु अवाई। निज शाला ते सिय चलि आई ॥

श्री राम जी महाराज की, श्री अम्बा जी नें श्री सिद्धिकुँअरि जी को सुन्दर बचनों से समझाकर, समयानुसार आसन में बैठा दिया। उसी समय, श्री अम्बा जी का आगमन श्रवण कर श्री सिया जू अपनी पर्णशाला से वहाँ आ गयीं।

देखतहिं सीतहिं रानि सुनैना। सिद्धि सहित गइ सहमि अचैना ॥
मुरछि परीं दोउ सास पतोहू। सुधि बुधि खोय गयीं शुचि मोहू ॥

श्री सीता जी को देखते ही, श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित अम्बा श्री सुनैना जी भयाक्रान्त हो व्याकुल हो गयीं तथा सासू–पतोहू (सास–बहू) श्री सुनैना जी व श्री सिद्धि कुँअरि जी दोनों मूर्छित हो स्मृति भूल, श्री सिया जू के पवित्र मोह में फँस कर भूमि में गिर पड़ीं।

दौड़ि सिया भाभी ढिंग आई । परशि वदन नयनन जल छाई ॥
चेत करावति कहि प्रिय भाभी। उठी सिद्धि दरशन सिय लाभी ॥

–––उस समय श्री सिया जू दौड़कर अपनी श्री भाभी जी के समीप आ गयीं और अश्रुपूरित हो उनका मुख स्पर्श कर हे प्रिय श्री भाभी जी! कह कर सचेत कराने लगीं तब श्री सिद्धि कुँअरि जी मूर्छा से जागृत होकर उठीं और अपनी प्रिय ननद श्री सिया जू का दर्शन लाभ प्राप्त कीं।

दो0– भाभी ननँद सुप्रेम भरि, रही लिपटि हिय लाय ।
देखि देखि इक एक कहँ, देवहिं सुधिहिं भुलाय ॥६१॥

भाभी और ननँद श्री सिद्धि कुँअरि जी व श्री सीता जी सुन्दर प्रेम से आपूरित होकर हृदय से हृदय लगाकर लिपट गयीं और एक दूसरे को देख देखकर दोनो अपनी सम्पूर्ण स्मृति भूल गयीं।

अकथ अगाध मिलन दोउ केरा। अनुपम रसमय प्रेमहिं प्रेरा ॥
देव सराहि सुमन बहु बरषैं। प्रीति रीति लखि जड़ चित करषैं ॥

उन दोनों के अकथनीय, अतिशय गूढ़, अनुपमेय, रसमय तथा प्रेम से परिपूर्ण मिलन को देखकर देवता उनकी प्रशंसा कर पुष्पों की विपुल वर्षा करने लगे। उस समय भाभी और ननँद श्री सिद्धि कुँअरि जी व श्री सीता जी की प्रीति–रीति को देखकर जड़–चेतन समस्त जीवों का चित्त भी

आकर्षित हो रहा था।

प्रेम मगन दोऊ जन एकी । कहि न सकैं कछु गयो विवेकी ॥
राम मातु उत रानि सुनैनहिं । चेत करावति कहि प्रिय बैनहिं ॥

वे दोनों प्रेम में मग्न हो एकाकार हो गयी थीं तथा कुछ भी नहीं कह पा रही थीं, उनका सम्पूर्ण ज्ञान भूल गया था। उधर राम–माता श्री कौशिल्या जी, सिया–जननि श्री सुनैना जी को प्रिय वचन कहकर चैतन्य कराती हैं।

जागी जबहिं सुनैना रानी। देखि सिया आयी सुखखानी ॥
मगन सिया निज मातु सनेहा। विकल भई सुधि बुधि नहि देहा ॥

महारानी श्री सुनैना जी जब मूर्छा से जागृत हो गयीं तब परम सुखों की खानि श्री सिया जू उन्हें देखकर उनके समीप आ गयीं। अपनी अम्बा जी के स्नेह में मग्न हो श्री सीता जी उस समय शरीर व बुद्धि की स्मृति भूल कर व्याकुल हो गयी थीं।

लीन्ही मातु ह्रदय लपटाई । बिलखि बिलखि सुधिदीन्ह भुलाई ॥
कछुक काल हिय महँ धरि धीरा । सियहिं दुलारति बह दृग नीरा ॥

अम्बा श्री सुनैना जी ने श्री सीता जी को अपने ह्रदय में लिपटा लिया तथा विलख–बिलख कर रोती हुई स्मृतिहीन हो गयीं। कुछ समय बाद ह्रदय में धैर्य धारण कर वे अश्रु बहाती हुई श्री सिया जू का दुलार करने लगीं।

दो0– शीश सूँघि चूमति बदन, बार बार हिय लाय ।
धन्य सुनैना कहत जग, सिय पुत्री जिन जाय ॥६२॥

श्री सुनैना जी श्री सिया जू का सिर सूँघती हैं, मुख चुम्बन करती है तथा बारम्बार ह्रदय से लगा लेती हैं। श्री सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–उनके इसी महान सौभाग्य को देखकर संसार के सभी जीव कहते हैं कि– श्री सुनैना जी धन्याति धन्य हैं, जिन्होंने महान महिमामयी श्री सीता जी को जन्म दिया है।

नवाह्न पारायण पाँचवा विश्राम

बोली मातु सिया तुम धन्या । कीन्ह्यो पति पद प्रेम अनन्या ॥
कुक्ष पवित्र मोर तुम कीन्ही । सब विधि मोहि बड़ाई दीन्ही ॥

अम्बा श्री सुनैना जी ने कहा– हे श्री सिया जू! आप धन्य हैं जो अपने प्राण–पति के चरणों में आपने अनन्य प्रेम किया है। हे पुत्री! आपने तो मेरी कोख पवित्र कर दी और मुझे सभी प्रकार से यश का पात्र बना दिया है।

सुर नर मुनि वर वधू सराहैं । तव यश गावहिं भरे उछाहैं ॥
तुमहिं पाय मैं भइ बड़ भागी । सीहहिं देव नारि अनुरागी ॥

अपके चरित्र को देख–सुनकर देवता, मनुष्य तथा मुनियों की सुन्दर बधुएँ भी आपकी प्रशंसा

करती हैं और आपके गुणों का आनन्दपूर्वक गायन करती रहती हैं। आपको प्राप्त कर मैं भी महान सौभाग्यशालिनी हो गयी हूँ। मेरे सौभाग्य को देखकर देवांगनायें भी अनुराग में भरकर स्पृहा करती रहती हैं।

अस कहि मातु सियहिं दुलराई । बैठी जहँ कौशिल्या माई ॥
कछुक काल दुहुँ नृप रनिवासा। बैठि रहा चुप मनहिं हरासा ॥

ऐसा कहकर अम्बा श्री सुनैना जी, श्री सीता जी का दुलार कर, श्री कौशिल्या अम्बा जी के समीप बैठ गयीं। अनन्तर कुछ समय तक दोनों (मिथिला व अवध) नरेशों का रनिवास मन में दुखी हुआ शान्त बैठा रहा।

धरि बड़ धीर कुँअर की माता। बोली सुखद शोक हर बाता ॥
देवि सकल रघुवर वर लीला। जन हित सुखद परम शुभ शीला ॥

पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की अम्बा श्री सुनैना जी ने धैर्य धारण कर दुख दूर करने वाली सुखप्रद वाणीं से कहा– हे देवि श्री कौशिल्या जी! श्री राम जी महाराज की सम्पूर्ण लीला तो भक्तजनों की हितकारिणी, सुख–संविधायिका, सुन्दर, पवित्र व शुभ–प्रदायिका है।

छं०– जग देन बहु सुख राम की, लीला मधुर मन भावहीं ।
जेहिं देखि सुर नर मुनि सकल, आनन्द अनुपम पावहीं ॥
नर नारि वरणहिं प्रेम वश, सुनि सुनि परस्पर मोद उर ।
भव पार नौका पाइ जनु, हर्षण गये सुख शान्ति पुर ॥

श्री सुनैना जी कहती हैं कि– हे श्री महारानी जी! श्री राम जी महाराज की लीला तो संसार को अत्यधिक आनन्द देने वाली, मधुर व मन भावनी है। जिसका दर्शन कर देवता, मनुष्य व मुनि सभी अनुपमेय आनन्द प्राप्त करते हैं। श्री राम जी महाराज की इस लीला को प्रेम के वशीभूत हो संसार के सभी स्त्री–पुरुष, एक दूसरे से वर्णन व श्रवण कर आनन्द प्राप्त करेंगे। हमारे सद्गुरु देव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– श्री राम जी महाराज की इस परम मनोहर लीला को प्राप्त कर सभी लोग ऐसे आनन्दित हो जायेगें जैसे संसार–सागर से पार उतरने के लिये सुदृढ़ नौका को पाकर वे संसार से पार हो सुख और शान्ति का धाम परम पद प्राप्त कर लिये हों।

दो०– घर वन सुख दुखमय चरित, सब परमारथ रूप ।
सत चिद आनँद दायिनो, सब विधि अमल अनूप ॥६३॥

श्री राम जी महाराज के, गृहवास व वनवास के सुखमय व दुःखमय सभी चरित्र परम परमार्थ स्वरूप, सच्चिन्मय, परमानन्द प्रदान करने वाले, सभी प्रकार से निर्मल और अनुपमेय हैं।

जानतहूँ यह नहिं सखि धीरा । राम रूप लखि उपजति पीरा ॥
धरत चरण कस पर्वत माहीं । जहँ बहु कंकड़ काँट कुराहीं ॥

हे सखी! यह सब जानते हुए भी मेरा हृदय धैर्य नहीं धारण कर रहा, श्री राम जी महाराज का

सुन्दर रूप देखकर मेरे हृदय में महान पीड़ा उत्पन्न हो जाती है कि– वे पर्वतों में किस प्रकार से अपने चरण रखते होंगें? जहाँ बहुत से कंकड़ व काँटों से परिपूर्ण अत्यन्त कठिन मार्ग हैं।

चरण कमल कोमल अति भाये । कली गुलाब गड़न भय लाये ॥
अशन शयन सत इन्द्र विलासा । भोगत रहे भोग गृह वासा ॥

श्री राम जी महाराज के चरण कमल तो अत्यन्त ही सुकोमल हैं जिनमें गुलाब की कलियों के चुभ जाने की भी आशंका हो जाती है। ये तो अपने राजमहल में सैकड़ों इन्द्र के समान ऐश्वर्यमय भोगों से युक्त भोजन, शयन और आनन्दोपभोग करते थे।

तिनहिं योग नीरस फल कन्दा । जिमि मधुपहिं गोमय दुख दन्दा ॥
अमृत बसत जासु मुख माहीं । सो किमि पीवै वन जल काहीं ॥

राज कुमार श्री राम जी के लिये यहाँ के रसहीन फल और कन्दमूल उसी प्रकार हैं जिस प्रकार मधु लोभी भ्रमर के लिए दुखदायी गाय का गोबर। हे सखी! जिन श्री राम जी के श्री मुख में स्वयं अमृत का निवास है वे पर्वतीय जल का पान किस प्रकार करते होंगे।

यहि दुख दाह दही सब मिथिला । कहा कहौं सखि मन बुधि शिथिला ॥
राम चरण लखि बिनु पद त्राना । फटत हृदय नहि कुलिस समाना ॥

हे सखी! इसी दुख की अग्नि से सम्पूर्ण मिथिलापुरी विदग्ध हो रही है, मैं क्या कहूँ? मेरे तो मन और बुद्धि शिथिल ही हो गये हैं। श्री राम जी महाराज के चरण कमलों को बिना पद त्राणों के देखकर मेरा बज्र के समान हृदय विदीर्ण भी नहीं हो जाता।

दो0– राम निकाई नीक भलि, नयन श्रवण मन चाह ।
लखि प्रतिकूलहिं सत्य सखि, बढ़त हृदय अति दाह ॥६४॥

मेरे नेत्र, श्रवण व मन तो श्री राम जी महाराज का भली प्रकार से मंगल और कुशल ही चाहते हैं, हे सखी! मैं सत्य कहती हूँ कि– श्री राम जी के विपरीत परिस्थितयों को देखकर मेरे हृदय में अत्यन्त जलन (पीड़ा) बढ़ जाती है।

सखि सुनु सीय स्वयंम्बर काला । चलेउ धनुष तोरन रघुलाला ॥
तबहिं देखहि माधुर्य अपारा । लगेउ करन मन मोर विचारा ॥

हे सखि, श्री कौशिल्या जी! सुनिये, श्री जानकी जू के स्वयम्बर के समय रघुनन्दन श्री राम जी जब धनुष तोड़ने के लिए चले थे, तभी उनको देखकर अपार माधुर्य के कारण मेरा मन चिन्तन करने लगा था–––

धनु कठोर कोमल कर कंजा । गड़ न जाय कहु धरत अभंजा ॥
मान भंग रघुवर कर देखी । होई हिय महँ ताप विशेषी ॥

–––कि सभी से अभंजनीय अत्यन्त कठोर यह, पिनाक धनुष उठाते समय इनके कोमल कर कमलों में चुभ न जाय और यदि धनुष भंग न हो सका तो, उस समय श्री राम जी महाराज का निरादर देखकर मेरे हृदय में विशेष दाह हो जायेगी।

याते सुखमय सुन्दर रामा । जावैं नहिं धनु भंजन कामा ॥
सीता बरुक व्याह बिन रहई । जो बोवै सो फल नर लहई ॥

इसलिए सुख स्वरूप, सुशोभन श्री राम जी महाराज धनुष को तोड़ने के लिए न जायें। हमारी पुत्री श्री सीता जी भले ही बिना विवाह के (बिन–व्याही) रही आयेगी, क्योंकि जो व्यक्ति जैसा बीज बोता है उसी प्रकार का वह फल प्राप्त करता है।

नित अविवाहित देखत सीता । सहिय हृदय लखि विधि विपरीता ॥
राम अमंगल नहिं सह जाई । सत सत सखि मम बुधि ठहराई ॥

श्री ब्रह्मा जी की प्रतिकूलता को देखकर, मेरा हृदय अपनी पुत्री श्री सीता जी को कुँआरी (बिन ब्याही) देख–देखकर प्राप्त दुख को सहन कर लेगा परन्तु श्री राम जी महाराज का अमंगल मुझे असह्य है, हे सखी! इस सत्य सत्य निर्णय को मेरी बुद्धि नें निश्चित किया था।

दो0– सोइ राम अब बन बनहिं, चलत बिना पद त्राण ।
देखत सुनत अभाग्य वश, निकसत नहिं सखि प्राण ॥६५॥

हे सखी! अब वे ही श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज वन–वन में बिना 'पद त्राणों' के चल रहे हैं और दुर्भाग्यवश हम देखते और सुनते हैं, परन्तु हमारे प्राण देह से नहीं निकल रहे।

कहतहिं मूर्छि परी महि रानी । लीन्ह कौशिला निज हिय आनी ॥
करि उपचार सचेत कराई । बोली कोमल बचन सुहाई ॥

ऐसा कहते ही महारानी श्री सुनैना जी मूर्छित हो भूमि में गिर पड़ी तब श्री कौशिल्या अम्बा जी ने उन्हें हृदय से लगाया व उपचार के द्वारा चैतन्यावस्था में कर कोमल स्वर से सुहावनी वाणी बोलीं–

राम प्रेम तिहरो अति आली । जेहिं वश प्रगट कियो सिय लाली ॥
उमा रमा शारद सुर देवी । मानत तुम्हें मातु के भेवी ॥

हे सखि! आपके हृदय में श्री राम जी महाराज के प्रति अत्यधिक प्रेम है जिसके कारण आपने परमाद्या शक्ति को अपनी लाड़िली पुत्री श्री सिया जी के रूप में प्रगट किया है। श्री पार्वती जी, श्री सरस्वती जी, श्री लक्ष्मी जी और अन्य सभी देवताओं की शक्तियाँ आपमें मातृ–भाव रखती हैं।

ब्रह्मा विष्णु महेश त्रिदेवा । तव आँगन पहुँचे सिय सेवा ॥
भाग्य अवधि सखि तुम सब भाँती । रहे सराहत नृप दिन राती ॥

श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शंकर जी आदि 'त्रिदेव' श्री सिया जू की सेवा करने के लिए आपके आँगन में पहुँचते थे। हे सखी! आप तो सभी प्रकार से सौभाग्य की परिसीमा हैं, श्री चक्रवर्ती जी महाराज भी आपकी प्रशंसा दिन–रात किया करते थे।

मोर दशा जानहु सखि नीके । कुटिल कर्म भे गाहक जी के ॥
पाय विधवपन अशुभ अपारी । पूत पतोहू बनहिं निकारी ॥

हे सखी! मेरी स्थिति तो आप भली प्रकार जानती हैं, मेरे कठोरद्ध्अप्रिय) कर्म ही मेरे प्राणों के ग्राहक बने हैं, मैंने अत्यन्त अशुभ वैधव्य को प्राप्त कर लिया है तथा अपने प्रिय पुत्र श्री राम जी व पुत्रवधू श्री सियाजी को बन में निकाल दिया है।

दो0— सहौं परम संताप सखि, सो सब मोर कुकर्म ।
राम मातु बनि जियत जग, तनिक न लागति शर्म ॥६६॥

हे सखी! मैं जो, इस प्रकार का महान दुख सहन कर रही हूँ वह सभी मेरे दुष्कर्मों का परिणाम है। इतनी प्रतिकूलताओं के पश्चात् भी श्री राम जी की माता होकर, मैं संसार में जीवन धारण किये हूँ, मुझे किंचित भी लज्जा नहीं लगती।

जन्म मृत्यु विधि जानेउ राऊ। राम प्रेमरत शील सुभाऊ ॥
निकसत राम तजे तिन प्राना । मैं पति पूत बिना सुख माना ॥

हे सखी! जन्म और मृत्यु की रीति तो श्री मान् चक्रवर्ती जी महाराज ने ही पहचानी थी, वे श्री राम जी महाराज के प्रेम में अनुरक्त तथा शील स्वभाव सम्पन्न थे। जिन्होंने अपने प्रिय पुत्र श्री राम जी महाराज के महल से निकलते ही प्राणों को त्याग दिया और एक मैं हूँ जो पति और पुत्र के बिना सुख का अनुभव कर रही हूँ।

भरत प्रेम रघुपति पद माहीं । सखी कहहुँ ताकरि मिति नाहीं ॥
भरत विरह दुख देखि विशाला । लगत लाज नहिं सुमिरि नृपाला ॥

हे सखी! पुत्र श्री भरत जी का श्री राम जी महाराज के चरणों में जो प्रेम है उसकी तो कहीं सीमा ही नहीं है। श्री भरत जी के महान विरह—दुख को देख तथा श्री मान् चक्रवर्ती जी का स्मरण कर भी मुझे किंचित लज्जा नहीं लगती।

राम वियोग भरत अकुलाना। सहेउ मरण सम क्लेश महाना ॥
पिता प्रदत्त राज तजि धाये । भरत लिवावन रामहिं आये ॥

श्री भरत जी ने श्री राम जी महाराज के वियोग में व्याकुल हो मृत्यु के समान महान क्लेश सहन किया है। वे अपने श्री मान् पिता जी द्वारा दिये हुए श्री अयोध्यापुरी के राज्य को त्याग कर त्वरा—पूर्वक श्री राम जी महाराज को लिवाने हेतु आये हुए हैं।

सत्य सिन्धु दृढ़वत रघुराया। जो नहिं फिरिहैं विनती लाया ॥
तौ सखि भरत देह महँ प्राना। रखिहैं नहिं यह शोक महाना ॥

परन्तु सत्य के सागर व अपने व्रत में दृढ़ रहने वाले श्री राम जी महाराज यदि भरत की विनय को सुनकर वापस नहीं लौटेंगे तो हे सखी! श्री भरत जी के शरीर में प्राण नहीं रह पायेंगे, मुझे सबसे बड़ा दुख यही है।

दो0— राम लखन सीता वनहिं, पइहैं कष्ट महान ।
भरत शत्रुहन रहत गृह, छोड़िहैं प्रान प्रमाण ॥६७॥

श्री लक्ष्मण कुमार तथा श्री सीता जू के सहित श्री राम जी वन में महान कष्ट प्राप्त करेंगे ही परन्तु श्री भरत जी और श्री शत्रुघ्न कुमार जी तो गृह में रहते हुए भी निश्चित ही अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देंगे।

सब विधि दीन्हेव शोक विधाता। हाय कहत मुरछी प्रभु माता ॥
विलपन लग्यो सबहिं रनिवासा। शोक सिन्धु सनि हृदय हरासा ॥

श्री विधाता ने मुझे सभी प्रकार से दुख ही दुख प्रदान किया है, ऐसा कहकर श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी हाय! हाय! कहती हुई मूर्छित हो गयीं। उस समय सम्पूर्ण रनिवास शोक के समुद्र में डूब गया था तथा उनके हृदय में महान दु:ख हो रहा था।

अति अकुलाय रुदन बहु करहीं। छिन छिन शोक उसासें भरहीं ॥
दशरथ दिवि पुर गे जनु आजू। प्रलपहिं युग कुल नारि समाजू ॥

वे सभी महारानियाँ अत्यन्त व्याकुल हो अत्यधिक रुदन कर रही थीं और प्रत्येक क्षण में दुखपूर्ण उसासें ले रही थीं। उस समय दोनों कुलों (श्री मैथिल व श्री अवध) की नारियाँ इस प्रकार प्रलाप कर रही थीं जैसे चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज आज ही दिव्य–धाम पधारे हों।

कछुक धीर धरि रानि सुनैना। चेत करावति ज्ञान सुऐना ॥
करि उपचार जगाई रानी। बोली सुखद सुशीतल बानी ॥

परम ज्ञान सम्पन्ना श्री सुनैना अम्बा जी कुछ धैर्य धारण कर सभी को चैतन्यता प्रदान कर रही थीं। उन्होने उपचार के द्वारा महारानी श्री कौशिल्या जी को जागृत कर सुख प्रदायिनी व शीतल वाणी से कहा–

चिन्ता तजहिं धरहिं हिय धीरा। कुसमय जानि सहिय सब पीरा ॥
छावहिं बादल सकल अकाशा। कतहुँ न दीखै भानु प्रकाशा ॥

हे श्री महारानी जी! आप चिन्ता त्याग कर हृदय में धैर्य धारण करिये तथा विपरीत समय समझ कर सभी दुख को सह लीजिए। जिस प्रकार सम्पूर्ण आकाश में बादलों के छा जाने से कहीं भी सूर्य का प्रकाश नहीं दिखायी देता–––

पुनि नभ निर्मल शुभ्र सुहाई। पावैं आनँद जग बहुताई ॥
रात भयानक बहु अँधियारी। उऐ बहुरि नित जगत तमारी ॥
वर्षा काल नदी उतराई। रोके बाट जनन दुख दाई ॥

–––परन्तु बादलों के छँट जाने के बाद आकाश स्वच्छ, शुभ्र व सुन्दर हो जाता है व संसार पुनः अत्यधिक आनन्द प्राप्त करता है। रात्रि के समय अत्यन्त ही भयावह अंधकार हो जाता है परन्तु पुनः श्री सूर्य भगवान उदय होते हैं व अंधकार विनष्ट हो जाता है। वर्षा ऋतु में नदी में बाढ़ आ जाने से वह सभी के मार्ग को रोक कर दुख–दायिनी हो जाती है।

दो0– शरद पाय पाँजी भई, निर्मल जल सुखदानि ।
दुख बीते सुख आइहैं, जानहु तिमि महरानि ॥६८॥

परन्तु शरद ऋतु में वही नदी पाँजी (कम पानी वाली), स्वच्छ जल से संयुक्त व सुखदयिनी बन जाती है, उसी प्रकार हे श्री महारानी जी! आप जान लीजिये कि इस दुख के बीत जाने पर सुख अवश्य आयेगा।

सूरज चन्द्र ग्रसे कहुँ राहू। छूटै पुनि रवि शशी उछाहू ॥
ग्रीषम ताप जगत सब तापा। वर्षा भये सुशीतल थापा ॥

सूर्य और चन्द्रमा को कभी राहु ग्रस लेता है परन्तु सूर्य और चन्द्र उससे छूटकर आनन्दित होते हैं। गर्मी के मौसम में सम्पूर्ण संसार सूर्य के ताप से झुलस जाता है परन्तु वर्षा ऋतु में वर्षा होने से सभी लोग शीतलता प्राप्त करते हैं।

समय पाय नर रोगी होई । कछु दिन गये स्वस्थ पुनि होई ॥
निर्धन ह्वै भिक्षा कर आजू । सोइ जन काल भोग सुर राजू ॥

कभी, समय में मनुष्य बीमार हो जाता है परन्तु कुछ दिन बाद स्वस्थ हो जाता है। आज विपरीत समय में गरीब बना जो भिक्षाटन कर रहा है वही अनुकूल समय में कल देवराज इन्द्र के समान राज्य भोग प्राप्त कर लेता है।

आज दिखै जहँ पर्वत माला । लखै काल तहँ नगर विशाला ॥
हारेउ आज करत संग्रामा । सोइ कल जितै रिपुहिं मति धामा ॥

आज जहाँ पर्वतों की श्रेणियाँ दिखाई देती हैं वहीं कल महान नगर दिखाई पड़ने लगता है। आज जो वीर युद्ध करते–करते हार गया है वही बुद्धिमान वीर कल अपने शत्रुओं से विजय प्राप्त कर लेता है।

तैसहिं सुख दुख सखी अनित्या। वेद पुराण कहहिं हरि भृत्या ॥
अनुभव करत जगत दिन राती। बात अशंसय प्रगट दिखाती ॥

हे सखी! उसी प्रकार दुख और सुख शाश्वत (स्थायी) नहीं है, ऐसा वेद, पुराण, और भक्तजन कहते हैं तथा यही बात सम्पूर्ण संसार दिनरात अनुभव करता है, मेरी यह वार्ता संदेह रहित व सभी को प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ती है।

दो0– सुनहु सखी कह मैं त्रिसत, दुरदिन भगिहैं दूरि ।
अवध सिंहासन बैठिहैं, राम सिया सुख पूरि ॥६९॥

हे सखी! मैं त्रिसत्य कहती हूँ कि ये हमारे ये प्रतिकूल दिन अवश्य दूर हो जायेगें और पुनः श्री अयोध्यापुरी में सुखपूर्वक श्री सीताराम जी सिंहासनासीन होंगे।

भरत लखन अरु रिपुहन लाला। सेइहैं सकल प्रीति प्रण पाला ॥
आपु सहित सिगरी शुचि माता। लखि लखि राम सिया सुखदाता ॥

श्री भरत जी, श्री लक्ष्मण कुमार जी और श्री शत्रुघ्न कुमार जी आदि सभी भ्राता प्रेमपूर्वक अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने वाले रघुनन्दन श्री राम भद्र जू की सेवा करेंगे। आप के सहित सभी पवित्र माताएँ सुख प्रदाता श्री सीताराम जी को देख देखकर–––

अति आनँद मगन दिन राती। रहिहैं छन छन शान्ति समाती ॥
आनन्द सिन्धु अवध उमड़ाई। देई तीनहुँ लोक डुबाई ॥

–––अत्यानन्द में मग्न हुई दिनरात प्रत्येक क्षण शान्ति में समाहित रहेंगी। श्री अयोध्यापुरी में आनन्द का महासागर उमड़ कर तीनों लोकों को स्वयं में डुबा देगा।

याज्ञबल्क गुरुदेव हमारे। तीन काल गति जाननि हारे ॥
आगेहिं ते सब राम चरित्रा। राखे कहि नृप पाहिं पवित्रा ॥

तीनों कालों की स्थिति का परिज्ञान रखने वाले हमारे निमिकुल के गुरुदेव श्री याज्ञवल्क्य जी ने श्री महाराज जनक जी से, श्री राम जी महाराज के प्रारम्भ से समस्त पवित्र चरित्रों का पूर्व में ही वर्णन किया है।

जबहिं ललन जन्मे जग आई। वैष्णव चिन्ह देह दरशाई ॥
लगी समाधि चित्त बिनु भयऊ। तबहिं राउ गुरु बोलि सो लयऊ ॥
सद्गुरु आय सचेत करायो। जनकहिं पूरब कथा सुनायो ॥

जब हमारे कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी यहाँ आकर का संसार में जन्म धरण किये थे, उस समय उनके शरीर में सभी वैष्णव चिन्ह (भाल में तिलक, रामायुध अंकित दोनो जानु पर्यन्तु बाहु आदि) दिखाई पड़ रहे थे। पुनः कुमार की समाधि सी लग गयी थी और वे अचेत हो गये थे, तब श्री जनक जी महाराज ने गुरुदेव श्री याज्ञवल्क्य जी को बुला पठाया था उस समय भवन पधारकर सद्गुरुदेव श्री याज्ञवल्क्य जी ने कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को चैतन्यता धारण करायी तथा श्री जनक जी महाराज से पूर्व का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया था।

दो0– दिव्य धाम साकेत शुभ, सीता राम सुदास।
सोइ इत आयउ कुँअर वर, प्रगटन प्रेम प्रकाश ॥७०॥

सर्वज्ञ आचार्य श्री याज्ञबल्क्य जी ने बताया था कि– शुभ दिव्य धाम साकेत में श्री सीताराम जी के जो सुन्दर सेवक हैं, वही, प्रभु प्रेम का प्रकाश फैलाने के लिए यहाँ श्री मिथिलापुरी में आकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के रूप में जन्म धारण किये हैं।

कछु दिन गये राम अवतारा। होइहिं दरशथ नृपति अगारा ॥
सीतहुँ पुत्रि तुम्हार विदेहू। होइय सत्यहिं प्रगटि सनेहू ॥

कुछ दिन पश्चात् अयोध्यापुरी में चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के महल में श्री राम जी महाराज का अवतार होगा। हे श्री विदेह राज जी! सत्य ही, श्री राम वल्लभा जानकी जी भी आपके स्नेह के कारण आपकी पुत्री रूप में प्रगट होंगी।

भगिनि भ्रात श्याला बहनोई । वरणी प्रीति विविध विधि गोई ॥
तीनहुँ कर शिशु चरित बखाना । अरु पौगण्ड किशोर सुहाना ॥

उन्होंने बहन–भाई (श्री सीता जी और श्री लक्ष्मीनिधि जी) तथा श्याले–बहनोई (श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज) की विभिन्न प्रकार के गुप्त प्रेम का वर्णन किया है। श्री याज्ञबल्क्य जी महाराज ने तीनों (श्री सीता जी, श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज) के बाल चरित्रों तथा किशोरावस्था तक की क्रमशः अवस्थाओं के सुशोभन चरित्रों का भी वर्णन किया है।

व्याह उछाह यथा विधि गायो । मिथिला अवध सुप्रीति सुनायो ॥
द्वादश वर्ष सिया अरु रामा । जा विधि सुख सह रहे ललामा ॥

उन्होने आनन्दपूर्वक यथा–रीति श्री राम जी महाराज के वैवाहिक चरित्रों का गायन किया तथा श्री मिथिला पुरी व श्री अयोध्यापुरी की सुन्दर प्रीति वर्णन कर सुनायी थी। पुनः श्री सीताराम जी जिस प्रकार सुन्दर बारह वर्षो तक सुखपूर्वक निवास किये हैं–––

मुनिवर वरणे चरित अनूपा । सुखमय दम्पति दिव्य स्वरूपा ॥
विपिन गवन चित्रकूट विलासा । दशरथ मरण अवध दुख भाषा ॥

––मुनिराज श्री याज्ञबल्क्य जी ने उनके उस अनुपमेय, सुखमय, दिव्य दाम्पत्य स्वरूप का भी वर्णन किया है। वन गमन, चित्रकूट की क्रीड़ाएँ, चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज का स्वर्गारोहण, श्री अयोध्यापुरी का विषाद–––

दो0– करि पितु क्रिया भरत जिमि, लीन्हे सकल समाज ।
आये गिरिवर शोक युत, लौटावन रघुराज ॥७१॥

–––अपने श्री मान् पिता जी का 'मृत्यु–संस्कार' कर, सम्पूर्ण समाज को लेकर दुख कातर श्री भरत जी जिस प्रकार श्री राम जी महाराज को लौटाने हेतु श्री गिरिराज चित्रकूट आये है तथा–––

जेहिं विधि मिथिला नगर निवासी । आये चित्रकूट सो भाषी ॥
बहुरे भरत सहित सब लोगा । वरणे मुनिवर राम वियोगा ॥

–––जिस प्रकार सम्पूर्ण श्री मिथिलापुर निवासी चित्रकूट आये हैं वह सम्पूर्ण चरित्र गुरुदेव श्री याज्ञबल्क्य जी ने पूर्व में ही बखान किया है। पुनः श्री भरत जी के सहित सभी अयोध्या मिथिला का समाज जब वापस हुआ, उस समय के श्री राम जी के वियोग का वर्णन मुनिवर श्री याज्ञबल्क्य जी ने किया है।

कुँअर रहनि वसि मिथिला माहीं । वरणी भरत प्रीति नृप पाहीं ॥
चौदह वर्ष राम वन वासा । कीन्हे निशिचर निकर विनासा ॥

श्री राम जी के वियोग में श्री मिथिलापुरी निवास काल में कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की दैनिक चर्या, और श्री भरत जी की श्री राम–प्रीति का वर्णन मुनिवर श्री याज्ञबल्क्य जी नें श्री महाराज जनक

जी से किया है। जिस प्रकार चौदह वर्षो तक श्री राम जी महाराज वन में निवास किये और राक्षस समूहों का विनास किये,———

लौटि अवध लछिमन सिय रामा। कीन्हे अचल राज सुख धामा ॥
राम त्रिलोकिहिं शासन कीन्हे। सुर नर नाग संत सुख दीन्हे ॥

———श्री लक्ष्मणजी एवं श्री सीता जी सहित सुख के धाम श्री राम जी महाराज लौट कर श्री अयोध्यापुरी में अविचल राज्य किये। पुनः श्री राम जी महाराज ने तीनों लोकों का शासन किया एवं तीनों लोकों (देवता, मनुष्य, नाग) एवं सन्त–जनों को सुख प्रदान किया तथा———

कीन्ही भाँति भाँति की लीला । राज बैठि वरणी मुनि शीला ॥
गुप्त प्रगट इतिहास अनेका । वरणे मुनिवर सहित विवेका ॥

———राज्य सिंहासन में विराजकर विभिन्न प्रकार की लीलाएँ किए, उन सभी चरित्रों को मुनिश्रेष्ठ श्री याज्ञबल्क्य जी ने पूर्व में ही वर्णन कर रखा है। मुनि प्रवर श्री याज्ञबल्क्य जी नें अन्य, गुप्त व प्रकट अनेक इतिहास का विवेक पूर्ण वर्णन किया है।

दो0– याज्ञबल्क मुनिवर कथन, अक्षर अक्षर मान ।
तजि विषाद दुर्दिन सहहु, मिलिहैं शुभ दिन आन ।।७२।।

अतः परम ज्ञानी मुनिवर श्री याज्ञबल्क्य जी के द्वारा वर्णित कथानक को अक्षरसः सत्य समझकर आप दुखों को त्याग, प्रतिकूल–समय को सहन कीजिए, निश्चित ही शुभ दिन वापस आयेंगे।

सीय राम शुभ दर्शन लागी । सेवा सरस आस प्रिय लागी ॥
धरि हिय धीरहिं राखि शरीरा । काटिय विपति सुमिरि रघुवीरा ॥

आप श्री सीताराम जी के शुभ दर्शनों के लिए, उनकी रसमयी सेवा की प्रिय लालसा के कारण हृदय में धैर्य धारण कर अपने शरीर की रक्षा कीजिए और श्री राम जी का स्मरण करते हुए इन विपत्ति के दिनों को व्यतीत कीजिए।

सुनत सुनैना शब्द अमोली। राम मातु मृदु बानी बोली ।।
ज्ञान निधान भूप वर नारी। उचित देन अस ज्ञान बिचारी ।।

श्री सुनैना जी के अनमोल वचनों को श्रवण कर अम्बा श्री कौशिल्या जी कोमल वाणी से बोलीं– परम ज्ञान–निधान श्री जनक जी महाराज की महारानी जी द्वारा मुझे ऐसा ज्ञान देना उचित ही है।

बहे जात जिमि मिलै अधारा । सखी बचन तिमि अहै तुम्हारा ।।
हमहुँ विचारति गुनि मन माहीं । देखि भरत गति जिय अकुलाहीं ।।

हे सखी! आपके प्रिय वचन तो किसी बहे जाते हुए को आधार प्राप्ति के समान हैं। हम भी हृदय में, ऐसा ही विचार करती हैं किन्तु, कुमार श्री भरत जी की स्थिति को देखकर हमारा हृदय व्याकुल हो जाता है।

ताते लागत मन महँ प्यारी । जो नहि फिरैं राम धनुधारी ।।
भरतहिं साथ लेहिं अपनाई । अवध वसैं लक्ष्मण दोउ भाई ।।

इस लिए हे प्यारी, सखी! मुझे तो ऐसा लगता है कि यदि धनुर्धर श्री राम जी महाराज वापस नहीं होते तो वे अपने साथ श्री भरत जी को ले लें और श्री लक्ष्मण कुमार एवं श्री शत्रुघ्न कुमार दोनों भाई श्री अयोध्यापुरी में निवास करें।

दो0— भूपहि पाइ एकान्त महँ, मोरी विनय सुनाय ।
भरतहिं रघुवर साथ हित, कहेहु आप समुझाय ॥७३॥

हे महारानी जी! आप श्री जनक जी महाराज को एकान्त में पाकर मेरी प्रार्थना सुनाते हुए, श्री भरत जी को श्री राम जी के साथ रखने हेतु समझाकर कहियेगा।

अवध नृपति गे अक्षर धामा । अब मम गति अलिखेश अकामा ॥
कै मिथिलेश सखी सत जानी । विधि गति कीन्ह अनाथ महानी ॥

क्योंकि, अयोध्या नरेश श्री चक्रवर्ती जी महाराज तो अक्षर धाम चले गये हैं अब हमारे एकमात्र गति सर्वथा निष्काम अखिलेश्वर भगवान अथवा श्री मिथिलेश जी ही हैं। हे सखी! आप इसे सत्य समझिये, श्री विधाता की गति ने तो मुझे अत्यन्त ही अनाथ कर दिया है।

ईश कृपा मिथिलेश सहाया । अति अवरेव सुधरि सब जाया ॥
प्रेम प्रशंसा भरी प्रभावा । वानी सुनि सिय मातु लजावा ॥

परमेश्वर की कृपा से ही श्री मिथिलेश जी महाराज की सहायता प्राप्त हो गयी है अब मेरी सभी महान उलझनें सुधर जायेगी। श्री कौशिल्या जी की प्रेम और प्रशंसा से परिपूर्ण प्रभावयुक्त वाणी को सुनकर सिया जू की अम्बा श्री सुनैना जी लज्जित हो गयीं।

बोली बचन पानि जुग जोरी । सुनिय देवि विनती वर मोरी ॥
सूर्य सहाय योग नहिं दीपा । रंक करहिं किमि हित अवनीपा ॥

पुनः महारानी श्री सुनैना जी दोनों हाथों को जोड़ कर बोलीं— हे देवि कौशिल्ये! आप मेरी एक प्रार्थना सुनिये! लघु—दीपक महान सूर्य की सहायता के योग्य कदापि नहीं होता और कोई निर्धन, (गरीब) किसी राजा का हित किस प्रकार से कर सकता है।

तुच्छ शकुन किमि गरुड़ सहाया । करै कहहु सुनिबी सत भाया ॥
निशि दिन सखि शिवशिवा महानी । करैं सहाय करम मन बानी ॥

नगण्य पक्षी, पक्षिराज गरुड़ की सहायता कैसे करेगा, आप ही कहिये। अतः हे श्री महारानी जी! आप सद्भाव पूर्वक श्रवण कीजिये— आपकी सहायता तो अहो—रात्रि मन, वचन और कर्म से श्री शिव जी और श्री पार्वती जी किया करते हैं।

दो0— सब बिधि सेवक नृपति सखि, त्रिकरण जानहिं आप ।
अवशि सदा आयसु सकल, पलिहैं ईश प्रताप ॥७४॥

हे सखी! श्री मिथिलेश जी महाराज तो आपके सभी प्रकार से त्रिकरण (मन, वचन व कर्म से) सेवक हैं, इसे आप जानती ही हैं, वे भगवत्कृपा से अवश्य ही आपकी सभी आज्ञाओं का पालन करेंगे।

दशरथ कृपा आप भल भाऊ। रहेउ नृपति पर कर अति चाऊ ॥
प्राण सखा निज रघुकुल राजा । मानत रहे प्रेम प्रिय छाजा ॥

श्री चक्रवर्ती जी महाराज की कृपा और आपका सुन्दर भाव श्री जनक जी महाराज के ऊपर अत्यन्त रुचि पूर्वक सदैव रहा है। प्रेम में सने हुए श्री रघुकुल नरेश, श्री मिथिला महाराज को, अपना प्रिय व प्राण–सखा मानते थे।

छन छन सुरति किये मन माहीं। दीन्हे सुख मिथिलेश्वर काहीं ॥
कौनहु कार्य भूप बिनु पूँछे। करन चहे नहिं भाव अछूँछे ॥

वे मन में प्रत्येक क्षण श्री मिथिलेश जी महाराज की याद किया करते थे और सुख–प्रदान करते रहते थे। श्री चक्रवर्ती जी महाराज कोई भी कार्य, श्री महाराज से बिना पूछे नहीं करते थे और इनके किसी भी भाव को वे अपूर्ण नहीं रखना चाहते थे।

जब तब अवधहिं लेहिं बुलाई । कहुँ पहुँचै नृप मिथिला आई ॥
राजहुँ चक्रवर्ति सत पाये। किये प्रेम ईशहिं के भाये ॥

वे जब–तब श्री मिथिलेश जी महाराज को श्री अयोध्यापुरी बुला लेते थे तो कभी वे ही वहाँ से आकर श्री मिथिलापुरी पहुँच जाते थे। श्री जनक जी महाराज भी, श्री चक्रवर्ती जी के रूप में सच्चा मित्र पाकर उन्हें ईश्वर के भाव से प्रेम करते थे।

युगल महीपति प्रीति सयानी । नित्य अतर्क हृदय रस सानी ॥
सो सुख जाने दोउ महीपा । अकथ अगाध सनेह उदीपा ॥

दोनों महाराजाओं की प्रीति नित्य, तर्कहीन, बुद्धिमत्ता परिपूर्ण एवं आनन्द में सनी हुई थी उस अकथनीय व गूढ़ स्नेह से प्रकाशित सुख को दोनों महाराज ही जानते थे।

दो0– सोइ विनय सखि मोर है, तैसहिं नित नव छोह ।
रहै कुँअर सह भूप पर, रहौं सुखी जिय जोह ॥७५॥

अतएव, हे सखी! मेरी यही प्रार्थना है कि– कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सहित श्री महाराज पर आप सभी की उसी प्रकार की नवनवायमान कृपा नित्य बनी रहे जिसे देखकर मैं हृदय में सुखानुभूति करती रहूँ।

आयसु होय सीय लै साथा। जाउँ थलहिं जहँ निमिकुल नाथा ॥
राम मातु बोली अति प्रीती। जाहिं सखी धनि तुम्हरी नीती ॥

हे श्री महारानी जी! यदि आपकी आज्ञा हो तो, अब श्री सिया जू को साथ ले कर मैं निमिकुल नरेश श्री विदेह राज जी के निवास स्थल को प्रस्थान करूँ। तब अम्बा श्री कौशिल्या जी ने अत्यन्त प्रीति पूर्वक कहा– हे सखी! आप पुत्री श्री जानकी जी को ले जाइये, आपकी नीति धन्य है।

सहित सीय सब पुत्रिन काहीं । लेहिं लिवाय मुदित मन माहीं ॥
सिद्धि कुँअरि सबहिन शिर नाई । प्रेम पगी प्रिय आशिष पाई ॥

आप मन में आनन्दित हो श्री सीता जी सहित सभी पुत्रियों श्री माण्डवी, श्री उर्मिला व श्री श्रुतिकीर्ति को बुलाकर साथ ले जाइये। तदनन्तर श्री सिद्धि कुँअरि जी ने सभी अम्बाओं को शिर झुकाकर प्रणाम किया तथा उनसे प्रेम परिपूर्ण प्रिय आशीषें प्राप्त कीं।

प्रीति सराहि सबहिं शुचि माता । सिद्धिहिं लाई हिय पुलकाता ॥
सीय मातु मिलि बारम्बारा । दशरथ रानिन्ह विनय प्रकारा ॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी के प्रेम की प्रशंसा कर सभी पवित्र राम–माताओं ने पुलकित देह से उनको हृदय से लगाया। अनन्तर श्री सीता जी की अम्बा सुनैना जी ने चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज की सभी रानियों से बारम्बार विनयपूर्वक भेंट की।

सादर सीतहिं भगिनिन साथा । चलीं लिवाय प्रिया निमिनाथा ॥
पहुँची थलहिं सीय सह माता । हर्ष शोक पूरित सब गाता ॥

इस प्रकार सभी बहनों के साथ आदरपूर्वक श्री सीता जी को लेकर श्री जनक जी महाराज की प्रिया श्री सुनैना जी चल दीं। हर्ष और शोक प्रपूरित अंगों से श्री सिया जू के सहित अम्बा सुनैना जी अपने निवास स्थल पहुँच गयीं।

दो०– पुरजन परिजन सबहिं सिय, भेंटी भरि अनुराग ।
विरह विकल लखि स्वजन जन, कृपा कोर रस पाग ॥७६॥

वहाँ श्री सीता जी ने अपनें पुरजनों व परिजनों आदि सभी से अनुराग में भरकर भेंट किया तथा विरह से व्याकुल अपने स्वजनों को रस परिपूर्ण कृपा दृष्टि से निहार कर कृतार्थ कर दिया।

छं०– लखि सीय मैथिल निज जनन, भेंटत सबहिं अनुराग भरि ।
वश प्रेम पागल सी बनी, रोदति विकल सुधि दूर करि ॥
लखि राव सीतहिं वेष वन, जनु न्यासिनी करि त्याग है ।
अवनीश अवनिहिं द्रुत गिरे, मुरछित मनहिं भरि राग है ॥

अपने विरह में दुखी मैथिल जनों को देख, अनुराग में भरकर श्री सीता जी ने सबसे प्रेम पूर्वक भेंट की तथा वे प्रेम के वशीभूत हो पगली सी बनी व्याकुल होकर रुदन करने लगीं और स्मृति हीन हो गयीं। श्री विदेह राज जी महाराज श्री सीता जी के वनवासी वेष को ऐसे देख रहे थे मानों वे सर्वस्व त्याग कर सन्यासिनी बनी हुई हों। श्री सीता जी को देखते ही मिथिला महीपति श्री जनक जी महाराज मन में अनुराग भरकर, चेतना रहित हो, शीघ्र ही भूमि में गिर पड़े।

कछु काल चेतहिं पाइ नृप, अति ललकि सिय हिय लायऊ ।
शुभ शीश सूँघत प्रेम भरि, दृग वारि तेहिं नहवायऊ ॥

पितु गोद सीतहुँ रह लिपटि, मम दाउ बोलति भरि दृगन ।
लखि प्रेम वर्षत पुष्प सुर, हर्षण करत जय जय मगन ॥

कुछ ही समय में चैतन्य होकर श्री जनक जी महाराज श्री सीता जी को ललक कर हृदय से लगा लिये, वे श्री सिया जू का शुभ शीश सूँघते हैं तथा प्रेम में भरकर उनका आँसुओं से अभिषेक करने लगते हैं। श्री सीता जी भी अपने श्री मान् पिता जी की गोद में लिपट कर आँखों में अश्रु भरकर हे दाऊ जी, हे दाऊ जी कहने लगती हैं। हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– पिता पुत्री श्री जनक जी महाराज व श्री सिया जू के प्रेम को देखकर देवता पुष्प वरषाते हैं और प्रेम–मग्न हुए दोनो की जयकार करते हैं।

सो0–पितु पुत्री प्रिय प्रेम, भैया भाभी अम्ब लखि ।
भूले सुधि बुधि नेम, शोक विकल परिवार सब ॥७७॥

पिता और पुत्री श्री विदेह राज जी महाराज व श्री सिया जू के प्रिय प्रेम को देखकर उनके श्री मान् भैयाजी, श्री भाभी जी तथा श्री अम्बा जी अपनी स्मृति, बुद्धि व सभी नियम भूल गये थे और सम्पूर्ण परिवार शोक में व्याकुल हो गया था।

प्रेम विकल लखि सबहिन काहीं । याज्ञबल्क गे पहुँचि तहाँही ॥
सियहिं दुलारि नृपहिं समुझायो । कुँअर मातु कहँ धीर धरायो ॥

सभी लोगों को प्रेम में व्याकुल जानकर निमिकुल आचार्य श्री याज्ञवल्क्य जी वहाँ पहुँच गये और श्री सीता जी को दुलार कर, श्री जनक जी महाराज, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व अम्बा श्री सुनैना जी को समझा कर धैर्य धारण करा दिये।

जनक कहे सुनु लाड़िलि सीते । प्राण प्राण की प्राण पिरीते ॥
तुमहिं पाय मैं लही बड़ाई । लोकहुँ वेदहुँ विपुल भलाई ॥

तदनन्तर श्री जनक जी महाराज ने कहा– हे लाड़िली श्री सिया जू! सुनिए, सभी प्राणियों के प्राणों के प्राण श्री राम जी महाराज की प्राण प्रियतरा आपको पाकर मैंने लोक और वेद दोनों में महान लाभ और यश प्राप्त कर लिया है।

निमिकुल भूषण गुणन उजागिरि । मातु पिता भ्राता सुख सागरि ॥
सब विधि रघुकुल यशहिं प्रदानी । भई सुखद बड़भाग्य विधानी ॥

आप तो श्री निमिकुल की आभूषण, गुणों को प्रगट करने वाली, अपने माता, पिता और भैया के सुखों की सागरी, श्री रघुकुल को यश व सुख प्रदान करने वाली एवं सौभाग्य की विधायिनी बनी हैं।

युग कुल पूत करन के हेतू । प्रगटी पुत्री मोर निकेतू ॥
सुरसरि सो बड़ कीर्ति तुम्हारी । पावन पावन करनेहि हारी ॥

दोनों कुलों श्री निमिकुल व श्री रघुकुल को पवित्र करने के लिए, ही आप मेरे गृह में पुत्री

बनकर प्रगट हुई हैं। आपकी कीर्ति तो देवनदी श्री गंगा जी से भी महान तथा पवित्रता को भी पवित्र बनाने वाली है।

सो0–अनुपम यश छायो सुता, अण्ड अनन्तन माहिं ।
कहत सुनत मुक्ती सुलभ, प्रेम प्रदायक आहिं ॥७८॥

हे प्रिय पुत्री! आपकी अनुपमेय कीर्ति तो अनन्त ब्रह्माण्डों में छायी हुई है जिसके कथन व श्रवण से मुक्ति भी सुलभ हो जाती है साथ ही वह परम प्राप्तव्य प्रभु प्रेम प्रदान करने वाली है।

तुम सम अतिशय नहिं कोउ आहीं । सुर नर मुनि सब संत कहाहीं ॥
लखि लखि शुचि आचरण तुम्हारा । होवत हिय आनन्द अपारा ॥

आपसे अधिक अथवा आपके समान कहीं, कोई नहीं है, ऐसा सभी देवता, मनुष्य, मुनि व संतजन कहते हैं। आपके पवित्र चरित्र को देख–देखकर मेरे हृदय में असीम आनन्द की अनुभूति होती है।

जबहिं कहति मोहि हे मम दाऊ । सुनि मृदु बचन अमित सुख पाऊ ॥
ब्रह्मा विष्णु महेशहुँ भागा । मम समान नहिं निज हिय लागा ॥

जब आप मुझे, पिता मानकर हे मेरे दाऊ जी कहती हैं तब आपके कोमल बचन सुनकर मैं अपार सुख प्राप्त करता हूँ। उस समय, श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, और श्री शंकर जी का भाग्य भी, मुझे अपने हृदय में मेरे समान नहीं प्रतीत होता है।

सुनि पितु बचन सिया सकुचानी । मनहुँ गयी हिय माहिं समानी ॥
यथा समय मिलि प्रेमिन सीता । बैठी मातु समीप पुनीता ॥

अपने श्री मान् पिता जी के वचनों को श्रवणकर श्री सीता जी संकोच में ऐसे भर गयीं मानों वे अपने हृदय में समाहित हो गयी हों। समयानुसार पवित्र श्री सीता जी अपने सभी प्रेमियों से भेंटकर, अपनी अम्बा श्री सुनैना जी के समीप बैठ गयीं।

औरहु भगिनि सखी सब बैठी । नैहर प्रेम भरी दुख पैठी ॥
चरचा चलति समय अनुसारी । मातु कही सुनु लली पियारी ॥

श्री सीता जी की अन्य बहनें व सखियाँ, सभी अपनी मातृ–पुरी के प्रेम से ओत–प्रोत व शोकाकुल हो बैठी हुई थीं। वहाँ, समय के अनुरुप वार्ता चल रही थी। अनन्तर अम्बा श्री सुनैना जी ने कहा– हे प्रिय श्री लाड़िली जू!–––

दो0– घर तजि आयी राम सँग, तुमहिं उचित वर एहु ।
मंगल मूल सुमोक्ष प्रद, पति पद सहज सुनेहु ॥७९॥

–––आप राजमहल को छोड़कर श्री राम जी महाराज के साथ चली आयी हैं, आपके लिए यही उचित और योग्य है क्योंकि अपने पति के चरणों में सहज व सुन्दर प्रेम, सर्व मंगलों का मूल एवं सुन्दर मोक्ष प्रदाता होता है।

सुनि तव पति पद प्रेम अपारा। करिहैं नारि धर्म सब दारा॥
भई न हैं नहि होनेहुँ काहीं। तुम समान तिहुँ लोकन माहीं॥

परम पूज्य पति–देवता के चरणों में आपके अपरिमित प्रेम को श्रवणकर सभी नारियाँ 'स्त्री धर्म' का पालन करेंगी, आपके समान पतिव्रता त्रिलोक में न तो कोई हुई है, न कोई है और नही कोई होने वाली है।

सूक्ष्म धर्म की जानन वारी। धन्य धन्य शुचि सुता हमारी॥
अस कहि बहुत बार दुलराई। तदपि हृदय नहिं मातु अधाई॥

सूक्ष्म धर्म की ज्ञाता हमारी पुनीता लाड़िली धन्यातिधन्य है। ऐसा कहकर श्री अम्बा जी नें श्री सीता जी का बारम्बार दुलार किया, फिर भी उनका हृदय संतृप्त नहीं हो रहा था।

गई सिया अरु सिद्धि कुमारी। मिलि इकान्त बड़ि प्रीति बिचारी॥
सिद्धि सियहिं हिय लाय अलोली। वानी मधुर विचार स्वबोली॥

एकान्त में जाकर श्री सीता जी और श्री सिद्धि कुँअरि जी ने भेंट की, उन दोनों की प्रीति अत्यन्त गरिमामयी व अनुभव गम्य है। श्री सिद्धि कुँअरि जी ने श्री सीता जी को हृदय से लगाकर स्थिर चित्त हो मधुर वाणी से अपने विचारों को प्रगट किया।

भरत विनय सुनि रघुवर रामा। फिरहिं होहिं सब पूरण कामा॥
सुनि सिय सिद्धिहिं शब्द सुनाई। सत्यसन्ध दृढ़ व्रत रघुराई॥

हे श्री लाड़िली जू! श्री भरत जी की प्रार्थना को सुनकर रघुनन्दन श्री राम जी महाराज वापस हो जायेंगे तब हम सभी पूर्ण मनोरथा हो जायेंगी। अपनी भाभी श्री सिद्धि कुँअरि के वचन सुनकर श्री सीता जी नें उनसे कहा, कि– हे श्री भाभी जी! श्री राम जी महाराज सदैव सत्य का अनुसन्धान करने वाले और दृढ़तापूर्वक अपने व्रत का पालन करने वाले हैं।–––

दो0– अस प्रतीति मोरे मनहिं, नहि फिरिहैं रघुवीर।
सिद्धि कुँअरि सुनि दुख सनी, श्रवति सुलोचन नीर॥८०॥

–––अतः मेरे हृदय में तो ऐसी प्रतीति है कि– रघकुल प्रवीर श्री राम जी महाराज वापस नहीं लौटेंगे। श्री सिया जू की यह वाणी सुनकर श्री सिद्धि कुँअरि जी विषाद में डूब गयीं और उनके सुन्दर नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे।

बोली बहुरि विरह दुख छाई। कुँअर हृदय को भाव बताई॥
निज भैया कर सुनहु विचारा। मम सह जाय बनहिं तप सारा॥

पुनः विरह–कातरा श्री सिद्धि कुँअरि जी, अपने प्राण वल्लभ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृद्गत भावों को बताते हुए बोलीं– हे लली जू! आप अपने श्री भैया जी के विचारों को सुनिये, वे मेरे सहित, आपके के समीप वन में रहकर तपस्या करना चाहते हैं।–––

अहनिशि भगिनि भाम प्रिय सेई । चौदह वर्ष बितैहैं धेई ॥
कह सिय असमंजस यह लागा । किमि सहिहैं रघुवर तव त्यागा ॥

———इस प्रकार दिन—रात्रि अपने प्रिय बहन व बहनोई की सेवा करते हुए ध्यान पूर्वक चौदह वर्ष व्यतीत कर देंगे। अपनी प्रिय भाभी जी के वचनों से श्री भैया जी के भाव को श्रवण कर श्री सीता जू ने कहा— हे श्री भाभी जी! इस बात में संदेह यही है कि— श्री राम जी महाराज आप के त्याग को किस प्राकर सहन कर पायेंगे।

कहत सुनत दोउ प्रेम विभोरी । गवनी मातु समीप किशोरी ॥
रात्रि रहब इत सिया बिचारी । अति अयोग मन संशय भारी ॥

दोनों भाभी—ननँद श्री सिद्धि कुँअरि जी व श्री सीता जी इस प्रकार की बातें कहती व सुनती हुई प्रेम में विभोर हो रही थीं। अनन्तर जनक किशोरी श्री सिया जू अपनी अम्बा जी के समीप चली गई। अतिकाल समझ, श्री सीता जी ने विचार किया कि— रात्रि में यहाँ रहना अत्यन्त ही अनुपयुक्त है, इस बात को लेकर वे मन में अत्यन्त ही सशंकित हो गयीं।

लखि रुख जननि जनाई राजहिं । लली जाय जहँ राम सुभ्राजहिं ॥
सुनि नृप कुँअरहिं आयसु दीना । सिय पहुँचावहु प्रेम प्रवीना ॥

श्री सिया जू की इच्छा को जानकर अम्बा श्री सुनैना जी ने श्री जनक जी महाराज को बताया कि— अब लाड़िली सिया जू वहाँ जायेंगी जहाँ श्री राम जी महाराज विराज रहे हैं। यह बात सुनकर श्री जनक जी महाराज नें कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को आज्ञा दी कि— हे प्रेम प्रवीण कुमार! आप श्री सिया जू को पहुँचा दीजिये।

दो0— हिलि मिलि सब कहँ सीय तब, सहित भगिनि सुखरूप ।
चली भ्रात सँग विरह वश, धनि भल भाव अनूप ॥८१॥

तदनन्तर सभी से भेंटकर, अपनी सुख स्वरूपा बहनों सहित, श्री सिया जू अपने भैया श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ विरहातुर हो सासू श्री कौशिल्या जी के समीप चल दीं, उनके सुन्दर और अनुपमेय भाव परम धन्य है।

दरश हर्ष सिय साथ कुमारा । गयउ भगिनि लै सासु अगारा ॥
सीय सासु पहँ सीतहिं राखी । आयो बहुरि दरश अभिलाषी ॥

जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सीता जी के दर्शन से हर्षोत्फुल्ल मना, श्री सिया जू के साथ अपनी सभी बहनों को लेकर उनकी सासू श्री कौशिल्या जी के निवास गये तथा श्री सीता जी को उनकी सासू श्री कौशिल्या जी के समीप छोड़ कर पुनः दर्शन की इच्छा से वापस लौट आये।

कहत सुनत सिय राम चरित्रा। बीती रजनी अर्ध पवित्रा ॥
कीन्हे मैथिल सब विश्रामा। उठे प्रात सुमिरत सिय रामा ॥

इस प्रकार श्री सीताराम जी के चरित्रों को कहते और सुनते पवित्र अर्ध—रात्रि व्यतीत हो गयी

तब सभी मैथिलों नें विश्राम किया और प्रातः काल श्री सीताराम जी का स्मरण करते हुए जागृत हुए।

मन्दाकिनि सब लोग नहाये । आह्निक कर्म किये चित चाये ॥
गुरु बसिष्ठ वर आयसु पाई । मैथिल किय फलहार अमाई ॥

सभी नें श्री मन्दाकिनी जी में स्नान किया और प्रसन्न चित्त हो प्रातः कालीन नित्य–कर्मो का अनुष्ठान किया। अनन्तर रघुकुल गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी की सुन्दर आज्ञा प्राप्त कर सभी मैथिलों ने निर्लिप्त हो फलाहार किया।

जनक कुँअर पहुँचे जहँ रामा । मिले प्रेम युत श्याल सुभामा ॥
राम बदन लखि निमिकुल वारा । अविरल अश्रु बहावत धारा ॥

तदनन्तर जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी वहाँ पहुचें जहाँ श्री राम जी महाराज विराज रहे थे, वहाँ श्याल और भाम (श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज) दोनो ने प्रेम–पूर्वक भेंट की। श्री राम जी महाराज के मुख कमल का दर्शनकर निमिकुल नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी के नेत्रों से लगातार अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी।

दो0– राम कहेउ सुनु कुँअर वर, सब विधि तुम कहँ ज्ञान ।
सुख दुख देह विकार है, नहिं आतम मति मान ॥८२॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को ऐसी विह्वल अवस्था में देखकर श्री राम जी महाराज ने कहा– हे परम बुद्धिमान कुमार, श्री लक्ष्मीनिधि जी! आपको तो सभी प्रकार का ज्ञान है, ये सुख और दुख तो मात्र देह के विकार हैं, आत्मा के नहीं अर्थात् सुख व दुख केवल शरीर का स्पर्श करते हैं आत्मा का नही।

सखे कहौं तुम सन सति भाऊ । यह सब भयो मोर मन चाऊ ॥
समय बिताय बहुरि सुनु प्यारे । बसिहौं मिथिला अवध अगारे ॥

हे सखे! मैं आपसे अपने सत्य–सत्य भाव कह रहा हूँ कि– यह सभी कुछ मेरा मनचाहा ही हुआ है। हे मेरे प्रिय कुमार! यह वन की अवधि व्यतीत कर मैं पुनः श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी के राजमहलों में निवास करुँगा।

सब विधि सुखहिं रहहिं इत गारे । जानहु सत सत प्राण अधारे ॥
चित्रकूट करि विविध विलासा । लहिहौं आनन्द बारह मासा ॥

हे मेरे प्राणाधार सखे! आप सत्य–सत्य जानिये कि– मैं यहाँ सभी प्रकार से सुखों में ही समाहित हूँ। श्री चित्रकूट गिरि में विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाएँ करते हुये, मैं बारहों मास आनन्द प्राप्त करता रहूँगा।

पिता प्रदत्त सुखद वन राजू । सम्मत मातु सुलभ सब साजू ॥
ऋषि मुनि अरु वन जीव अपारा । वसत जहाँ भल कार्य हमारा ॥

अपने श्री मान् पिता जी द्वारा दिये हुए और श्री अम्बा जी की सहमति से युक्त यह वन का

राज्य मेरे लिये सभी प्रकार की सुविधाओं से परिपूर्ण हैं। जहाँ पर ऋषियों–मुनियों के सहित असीम वन्य जीव निवास करते हैं, वहीं निवास करना हमारे लिए उत्तम कार्य है।

अवशि मोहि कसकति इक बाता । दाऊ दिवि पुर गे विलपाता ॥
मोरे विरह शोक दुख छाई । सत्य प्रीति सब काहिं दिखाई ॥
सुमिरत हमहिं कियो तन त्यागी । मोपर रहे परम अनुरागी ॥

हाँ, एक बात अवश्य ही, मुझे दुखी करती रहती है कि– मेरे श्री मान् दाऊ जी महाराज विलाप करते हुए दिव्य धाम को चले गये। वे मेरे वियोग में दुखी हो, मेरे प्रति अपना सच्चा प्रेम सभी को दिखा कर, मेरा स्मरण करते हुए शरीर त्याग दिये, वे मुझ पर महान अनुरक्त थे।

दो0– अस कहि प्रभु गद्‌गद् भये, नयनन नीर बहाय ।
लुढ़कि परे प्रिय कुँअर की, गोद अतिहिं अकुलाय ॥८३॥

ऐसा कह कर प्रभु प्रेमावेश में भर गये तथा नेत्रों से अश्रु बहाते हुए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रिय गोद में अत्यन्त व्याकुल हो लुढ़क कर गिर पड़े।

भरि दृग नीर कुँअर दुलराये । कहे समय सम शब्द सुहाये ॥
प्रेमिन प्रेम सुजानन हारा । तुम सम कोउ नहिं जग अवतारा ॥

नेत्रों में अश्रु भरे हुये कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, श्री राम जी महाराज का दुलार किये तथा विचार कर समयानुसार सुन्दर शब्द बोले– हे रघुनन्दन! आप के समान प्रेमियों के प्रेम को जानने वाला संसार में अन्य कोई भी जन्म नहीं धारण किया।

पितु पद प्रेम प्रगटि दिखरायो । जग शिक्षण हित भूतल आयो ॥
प्रभु पद प्रीति भरत भलि जानी । धन्य धन्य जग कहत बखानी ॥

आपने, श्री मान् पिता जी के चरणों में, अपना प्रेम प्रगट कर दिखा दिया, आप संसार को धर्म की शिक्षा देने हेतु ही इस भूतल में आये हुए हैं। राज कुमार श्री भरत जी ने आपके (श्री राम जी महाराज के) चरणों की प्रीति को सम्यक प्रकार से पहचान लिया है इसलिए उनको समस्त संसार धन्यातिधन्य कहकर बखान करता है।

सुर नर मुनि योगी बड़ त्यागी । भरत प्रेम लखि भे अनुरागी ॥
जनक सुवन मुख सुनि सुख धामा । भरत प्रेम निज पद अभिरामा ॥

देवता, मनुष्य, योगी तथा महान त्यागीजन भी श्री भरत जी के प्रेम को देख कर अनुरागी बन गये हैं। जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी के मुख से, अपने चरणों के प्रति, श्री भरत जी के सुन्दर प्रेम को सुनकर, सुख के धाम श्री राम जी महाराज–––

भये मगन मन पुलकित गाता । अति सनेह जल नययन जाता ॥
बोले सरस सुखद मृदु बानी । भरत भरत सम लेवहिं जानी ॥

–––मन मग्न और पुलकित शरीर हो गये, श्री भरत जी के प्रति अत्यन्त स्नेह–वश उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे और वे रस से भरे हुये कोमल, सुखप्रद, वचन बोले– हे कुमार! आप,

श्री भरत जी को श्री भरत जी के समान ही समझ लें।

दो0– रसिक शिरोमणि प्रेम निधि, सब विधि अगम अगाध ।
आत्महुँ ते अति मोहिं प्रिय, लखि लखि जग रुचि बाध ॥८४॥

श्री भरत जी तो रसिकों में शिरमौर, प्रेम के निधान, सभी प्रकार से अगम्य, अगाध, मुझे आत्माधिक प्रिय एवं दर्शन मात्र से संसारिक वासनाओं को दूर कर देने वाले हैं।

भरत मोहि अपने वश कीन्हे। सरवश वारि मोर मन लीन्हे ॥
अवध राज पितु भरतहिं दीना। सुनि सुख लहेउँ अतीव प्रवीना ॥

श्री भरत जी ने मुझे अपने वश में कर लिया है तथा वे मुझ पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर मेरे मन को अपना मन कर लिये हैं। हे परम प्रवीण कुमार! श्री मान् दाऊ जी ने श्री अयोध्या पुरी का राज्य, श्री भरत जी को दे दिया है, यह वचन सुनकर मैंने अत्यन्त सुख प्राप्त किया है।

सुनि स्वराज जो नहिं सुख भयऊ । भरत राज सुनि कोटिक लयऊ ॥
सखे भरत मोहि प्राण पियारे। कहौं त्रिसत्य न वृथा उचारे ॥

अपने लिये राज्य सुनकर मुझे जो सुख नहीं प्राप्त हुआ था उससे करोड़ गुना सुख मुझे श्री भरत जी का राज्य सुनकर हुआ है। हे सखे! मैं व्यर्थ बात न कह, त्रिसत्य कह रहा हूँ कि– श्री भरत जी तो मुझे प्राणों से भी प्रिय हैं।

सुनत देव सब वरषहिं फूला। जय जय कहत मगन मन भूला ॥
भरत राम प्रिय प्रीति सराही। मधु रस वर्षत पुनि महि माहीं ॥

श्री राम जी महाराज के मुख से श्री भरत जी की प्रशंसा सुनकर सभी देवता पुष्प वरषाने लगे तथा जय–जयकार करते हुए प्रेम–मग्न होकर अपने मन को भी भूल गये। वे सभी देवता श्री भरत जी और श्री राम जी महाराज के परस्परिक प्रेम की प्रशंसा करते हैं तथा बारम्बार भूमि में अमृत–रस की वर्षा करते हैं।

कुँअर कहा जय रघुवर रामा। भगत बछल परिपूरण कामा ॥
जन पर देहिं अपनपौ वारी। वेद विदित यह रीति तुम्हारी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे रघुनन्दन श्री राम जी महाराज आपकी जय हो। आप तो भक्त–जनों पर वात्सल्य करने वाले व उनकी कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं तथा आपकी यह रीति वेद विदित है कि–अपने सेवकों पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देते हैं।

दो0– आये फेरन भरत प्रिय, पितृ दीन तजि राज ।
प्रीति त्याग दोउ बन्धु कर, कहि न सकत अहिराज ॥८५॥

श्री भरत जी अपने पिता द्वारा प्रदत्त अयोध्या पुरी की राज्य–लक्ष्मी को त्याग कर, अपने परम प्रिय भ्राता श्री राम जी महाराज को वापस ले जाने हेतु आये हुए हैं। आप दोनों भ्राताओं के प्रेम और

त्याग का वर्णन तो हजार मुख वाले श्री शेष जी भी नहीं कर सकते।

देखि देखि भल भाव अपारा । सब विधि गयउँ तात मैं वारा ॥
आप अवध बड़ पावहिं राजू । अथवा भरत सिंहासन भ्राजू ॥

हे तात रघुनन्दन जू! मैं आप दोनो भाइयों के सुन्दर व अपरिमित भाव को देख–देखकर सभी प्रकार से बलिहार हो गया हूँ। श्री अयोध्यापुरी का महान राज्य वैभव चाहे आप श्री प्राप्त करें अथवा श्री भरत लाल जी सिंहासन में विराजें–––

मोरे दूनहुँ एक समाना । कहौं विचार जो मोहिं लखाना ॥
भरत गहहु तुम राज सुखारी । तव मुख सुनत अभाग बिचारी ॥

–––मेरे लिए तो दोनों ही एक समान हैं, तथापि मुझे जिस प्रकार समझ आ रहा है, मैं अपना विचार प्रगट कर रहा हूँ। आप श्री के मुख से यह सुनकर कि– 'भरत! तुम सुखपूर्वक राज्य ग्रहण करो', अपनी अभाग्य विचार कर,–––

रखिहैं भरत न देह अधीरा । लागत मोहि अस सुनु रघुवीरा ॥
अस कहि कुँअर प्रेम रस साने । रहे बेर लगि देह भुलाने ॥

–––श्री भरत जी अधीर हो अपनी देह धारण ही नहीं कर पायेंगे, हे रघुकुल प्रवीर! सुनिये, मुझे तो ऐसी ही प्रतीति होती है। ऐसा कहकर कुँअर लक्ष्मीनिधि जी प्रेमानन्द द्धरस) में डूब गये तथा बहुत समय तक देह स्मृति भूले रहे।

रामहुँ प्रेम पगे पुलकाई । करत कुँअर सों भरत बड़ाई ॥
श्याल भाम दोउ प्रीति समाने । कछुक काल धीरज उर आने ॥
गये लषन पहँ जनक कुमारा । मिलि सौमित्र सप्रेम बिठारा ॥

श्री राम जी महाराज भी श्री भरत जी के प्रेम में पगकर, पुलकित शरीर हो कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से श्री भरत जी की प्रशंसा करते हैं। पुनः श्याले–बहनोई श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज दोनों प्रेम से ओत–प्रोत हो गये व कुछ समय बाद हृदय में धैर्य धारण किये। तदनन्तर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री लक्ष्मण कुमार के समीप गये, सप्रेम भेंट कर सुमित्रा नन्दन श्री लक्ष्मण कुमार ने उन्हे बैठाया।

दो0– लखि इक एकहिं प्रेम पगि, होवहिं युगल विभोर ।
प्रीति रीति सरसत सने, दशरथ जनक किशोर ॥८६॥

श्री दशरथ जी महाराज और श्री जनक जी महाराज के राजकुमार श्री लक्ष्मण जी तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी पारस्परिक प्रेम में पगे, आनन्दपूर्वक प्रीति–रीति में सने हुए, एक दूसरे को देख–देखकर विह्वल हो रहे थे।

मास पारायण सत्रहवाँ विश्राम

बहुरि धीर धरि श्री निधि बोले । अतिहिं दैन्यमय वचन अमोले ॥
अहौं तात मैं परम अभागा । लखि वन वेष जिऔं अनुरागा ॥

पुनः धैर्य धारण कर श्री लक्ष्मीनिधि जी अत्यन्त दैन्यता पूर्वक अनमोल बचन बोले– हे तात! मैं तो अत्यन्त भाग्यहीन हूँ जो आपके वन वेष को देखकर भी अनुराग पूर्वक जी रहा हूँ।

तापस वेष उदास अशेषा । प्रेमिन दायक पीर विशेषा ॥
धनि धनि प्रभु पद प्रीति विशेषी । धन्य मातु तोहि जन्यो सुशेषी ॥

आपका यह तपस्वी वेष व पूर्ण रूप से उदास मुख मण्डल प्रेमियों को विशेष पीड़ा देने वाला है। प्रभु श्री राम जी के चरणों में आपकी विशेष प्रीति धन्यातिधन्य है तथा आपकी माता श्री सुमित्रा जी भी धन्य हैं जिन्होने आपके समान सुन्दर शेष–गुण सम्पन्न (सेवक) पुत्र को जन्म दिया है।

सीय राम पद मंगल मूला । सेवहु जानि स्वामि अनुकूला ॥
देखि देखि तव सुन्दर भाऊ । चाहौं रहनि तुम्हारि अघाऊ ॥

आप समस्त मंगलों के मूल श्री सीताराम जी के चरणों की सेवा अपने स्वरूप के अनुकूल समझ कर करते हैं। आपके सुन्दर भाव को देख–देखकर मैं संतृप्त होकर आपके समान ही आचरण करना चाहता हूँ।

तुम्हरी कृपा जगत सब जीवा । लहहिं कृपा सिय राम अतीवा ॥
ह्वै तुम्हार हौं हूँ अति धन्या । भयो जगत जस भयो न अन्या ॥
अस कहिं कुँअर मगन मन भयऊ । बोले लषण वचन मधु मयऊ ॥

आपकी कृपा से ही संसार के सभी जीव श्री सीता राम जी की महान कृपा प्राप्त करते हैं। आपका होकर, मैं भी अत्यन्त धन्य तथा संसार में अद्वितीय हो गया हूँ। ऐसा कह कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी मन–मग्न हो गये तब श्री लक्ष्मण कुमार जी ने अमृतमय वचनों से कहा–

दो0– सुनहु कुँअर प्रिय लाड़िले, रघुवर प्राण पियार ।
प्रेम मूर्ति सिय भ्रात वर, तुमहिं विदित सब सार ॥८७॥

हे प्रिय लाड़िले कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! सुनिये, आप तो श्री राम जी महाराज के प्राण प्रिय, प्रेम–मूर्ति तथा जनक नन्दिनी श्री जानकी जू के सुन्दर बड़े भैया हैं, आपको सभी रहस्यों का भली प्रकार परिज्ञान है।

प्रभु वनवास सुनत निज काना । मोर हृदय अतिशय अकुलाना ॥
तापस वेष बनाय सुभागे । ठाढ़ भयों प्रिय प्रभु के आगे ॥

हे परम सौभाग्य शाली कुमार! अपने कर्णो से जैसे ही मैंने, प्रभु श्री राम जी महाराज का वनवास श्रवण किया, मेरा हृदय अत्यन्त व्याकुल हो गया और मैं शीघ्र ही तपस्वी वेष बनाकर, प्रिय प्रभु श्री राम जी महाराज के सामने खड़ा हो गया।

अवध रहन हित यत्न अपारा। कीन्हे रघुवर विविध प्रकारा॥
धरम करम नहिं मन महँ भावा। जगत प्रीति दुख दारुण दावा॥

उस समय श्री राम जी महाराज ने मुझे श्री अयोध्यापुरी में रोकने के लिए विभिन्न प्रकार के उपाय किये परन्तु मुझे मन से धर्म व कर्म कुछ भी अच्छा नहीं लगा तथा संसार की प्रीति मुझे दावाग्नि के समान महान दुखदायिनी प्रतीत होने लगी।

प्रभु बिन जिऔं मुहूरत एकी। नहिं प्रतीति मन किये विवेकी॥
सियहिं देखि प्रभु पद धरि माथा। कहेउँ तजहु जनि मोहिं रघुनाथा॥

मैं प्रभु श्री राम जी महाराज के बिना एक मुहूर्त (पल) भी जी पाऊँगा ऐसा विश्वास मन में विवेक पूर्ण विचार करने पर भी नहीं हो रहा था। तब मैंने श्री सिया जू की तरफ देख, श्री राम जी महाराज के चरणों में अपना मस्तक रखकर कहा कि– हे रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज! मेरा त्याग मत कीजिए।

व्याकुल प्राण पेखि रघुराया। संग लिये सिय कृपा सहाया॥
पाय युगल पद सेव सोहानी। रहौं अवध सम बनहिं मोहानी॥

मेरे प्राणों को व्याकुल देख श्री राम जी महाराज ने श्री सीता जी की कृपा के प्रभाव से मुझे साथ में रख लिया, अब मैं श्री सीताराम जी के चरण कमलों की सुन्दर सेवा प्राप्तकर व उन पर मुग्ध हुआ वन में भी श्री अयोध्या पुरी के समान ही सुखी रहता हूँ।

दो0– लखि लखि सीताराम दोउ, स्वामी सुखद उदार।
रहत सदा आनन्द मगन, पाइ कृपा सुख सार॥८८॥

सर्व सुख प्रदायक व परम उदार अपने युगल स्वामिवर्य श्री विदेहराज नन्दिनी जी व श्री राम जी महाराज का दर्शन कर और उनकी सुखों की सारभूता कृपा को प्राप्त कर मैं सदैव आनन्द मग्न रहता हूँ।

और कछू हिय चाह न मोरे। तृण सम गिनहुँ चार फल कोरे॥
सेवा दरश पाइ सिय रामा। रहौं सदा सत पूरण कामा॥

हे कुमार! इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी इच्छा मेरे हृदय में नहीं है, मैं चारो फलों (अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष) को भी तिनके के समान समझता हूँ। श्री सीताराम जी का दर्शन और उनकी सेवा प्राप्त कर मैं यथार्थतः सदैव पूर्णकाम रहता हूँ।

सेवा छूटन संशय आनी। विकल होउँ मछली बिन पानी॥
बिनु प्रभु सेव पदारथ चारी। ताप देहिं जिमि अगिनि दवारी॥

प्रभु कैंकर्य छूटने की आशंका मन में लाते ही, मैं जल विहीन मछली के समान व्याकुल हो जाता हूँ। प्रभु श्री राम जी महाराज की सेवा के बिना चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) मुझे दावानल के समान ताप प्रदान करते हैं।

सहज स्वरूप शेष सेवकाई । पाइ रहौं बिन भोज अघाई ॥
ताते वन अरु अवध समाना । इक सम मोकहँ लगैं सुजाना ॥

मेरा (जीव का) सहज स्वरूप भगवान के शेष होकर सेवा करना है, जिसे प्राप्तकर मैं बिना भोजन पाये हुए भी तृप्त रहता हूँ। अतएव हे सर्वज्ञ कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! मुझे वन और श्री अयोध्यापुरी दोनो का सुख एक समान प्रतीत होता है।

एक बात मोरेउ हिय खटकै । सीयराम नित बन बन भटकैं ॥
लखि पद कमल नित्य तिन केरा । होवैं हृदय विषाद घनेरा ॥

परन्तु एक बात मेरे हृदय में अवश्य ही चुभती रहती है कि– मेरे स्वामी श्री सीताराम जी नित्य ही वन–वन में भटकते फिरते हैं। उनके श्री चरण–कमलों को बिना पद–त्राण के देख–देखकर नित्य ही मेरे हृदय में महान विषाद होता है।

दो0– अवध राज छुड़वाय विधि, रामहिं वन महँ भेज ।
जगतहिं दीन्हे दुसह दुख, करि अभिमान स्वतेज ॥८९॥

अपने प्रताप का गर्व कर श्री ब्रह्मा जी ने, श्री राम जी महाराज को श्री अयोध्यापुरी के राज्य से वियुक्त कर, वन में भेज संसार को असहनीय दुख प्रदान किया है।

देखि देखि रघुवर अपचारा । होवै हिय महँ क्रोध अपारा ॥
मन लागत विधि लोकहिं तेरे। विधिहिं गिरावौं बाणन प्रेरे ॥

श्री राम जी महाराज के इस अपचार को देखकर मुझे हृदय में असह्य क्रोध होता है, मन में ऐसा लगता है कि– अपने बाणों को प्रेरितकर ब्रह्मा को, ब्रह्मा के लोक से ही गिरा दूँ।

मारि विधिहिं सिय रघुवर काहीं। अवध राज पद देउँ उछाहीं ॥
मम रुचि देखि सिया वर रामा। बरवश रोकहिं नीति अकामा ॥

और श्री ब्रह्मा जी को मार कर उमंग पूर्वक श्री सीताराम जी को श्री अयोध्यापुरी का राज्य पद प्रदान कर दूँ। परन्तु मेरी इच्छा को देखकर, नीति का पालन करने वाले, सहज निस्पृह सीताकान्त श्री राम जी महाराज मुझे हठपूर्वक रोक देते हैं।

मन मसोस प्रभु रुचि हिय आनी । जावहुँ रुकि सहि निज मन ग्लानी ॥
नतरु वरषि सर लोकहिं फोरी । मारौं विधि जे अण्ड करोरी ॥

तब मैं स्वेच्छा का शमन कर, प्रभु श्री राम जी महाराज की इच्छा को हृदय में धारण कर, अपने मन की ग्लानि को सहन करते हुए रुक जाता हूँ अन्यथा वाणों की वर्षा कर करोड़ों ब्रह्माण्डो के ब्रह्म–लोकों (श्री ब्रह्मा जी के लोकों) को फोड़ कर उनके ब्रह्मा को मार डालूँ।

सुनत सहज बल लक्ष्मण केरा । लागी काँपन धरा घनेरा ॥
थरथरात सुर सुरतरु फूला । वरषहिं कहि जय मंगल मूला ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी के सहज बल को श्रवणकर श्री भूमि देवी अत्यन्त कम्पित होने लगी,

देवगण भयभीत होकर, हे मंगल मूल श्री लक्ष्मण कुमार जी! आपकी जय हो–जय हो, कहते हुए कल्पवृक्ष के पुष्प वरषाने लगे।

दो0– लक्ष्मीनिधि लखनहिं लखे, कीन्हे हिय महँ ध्यान ।
सहज स्वरूप सुतेज वर, जग कारण अनुमान ॥९०॥

उस समय आवेशित श्री लक्ष्मण कुमार जी को देखकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने हृदय में ध्यान किया तो संसार का कारण स्वरूप समझकर, उनके सुन्दर पराक्रम सम्पन्न सहज स्वरूप का दर्शन प्राप्त किया।

जासु अंश सहसानन होई । शेष कहैं जेहिं गुण गण जोई ॥
जासु विभूति विश्व संहारी । अहैं सदा शिव सत त्रिपुरारी ॥

जिनके अंश मात्र से हजार मुख वाले श्री शेष जी की उत्पत्ति होती है और जिनके गुण–गणों को देखकर उन्हें सभी शेष कहते हैं, जिनके वैभव से ही यथार्थतया, त्रिपुर नामक असुर के शत्रु भगवान श्री शिव जी विश्व का संहार करते हैं तथा–––

महा काल भक्षक जो अहई । रघुवर भ्रात लषण तेहिं कहई ॥
कुँअर लखे अस ध्यानहिं माहीं । गिरे लखन पद अति पुलकाहीं ॥

–––महान काल का भी, जो भक्षण करने वाले हैं वही श्री रामानुज लक्ष्मण कुमार कहलाते हैं। श्री लक्ष्मण कुमार जी के स्वरूप का इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने ध्यान में दर्शन किया तथा वे उनके श्री चरणों में अत्यन्त पुलकित हो गिर पड़े।

लखन लाय हिय जनक कुमारहिं । मिले प्रेम भरि कहैं को पारहिं ॥
निज स्वरूप माधुर्य दिखावा । कुँअर हृदय ऐश्वर्य छिपावा ॥

तब, प्रेम में भरकर श्री लक्ष्मण कुमार जी ने जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी को हृदय से लगाकर भेंट की। हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–श्री लक्ष्मण कुमार जी और कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के पारस्परिक प्रेम का वर्णन कर उसकी सीमा का कौन पार पा सकता है। अनन्तर श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में अपने ऐश्वर्यमय स्वरूप को छिपाकर माधुर्य स्वरूप को प्रगट कर दिये।

कुँअर कहे धनि धनि तुम ताता । सीय राम पद प्रेम सुदाता ॥
जग कहँ सत सत प्रगट दिखावा । शेषी शेष भाव सुख छावा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे तात श्री लखन लाल जी! आप धन्य है, आप तो श्री सीता राम जी के चरणों का सुन्दर प्रेम प्रदान करने वाले श्रेष्ठ 'दानी' हैं। आपने सुखपूर्वक ब्रह्म व जीव के शेषी और शेष भाव को इस संसार को सत्य–सत्य प्रगट कर दिखा दिया है।

दो0– ब्रह्म जीव जस प्रेम घन, सहज अकथ बिन गाध ।
लोकहिं करि प्रत्यक्ष प्रभु, दिखरायो बिन बाध ॥९१॥

हे प्रभु! आपने ब्रह्म और जीव के सहज अविरल, अकथनीय और गूढ़ प्रेम को प्रत्यक्ष प्रगट कर संसार को अबाधित रूप से दिखा दिया।

कृपा राम सिय कहत सलोने। लक्ष्मीनिधि लक्ष्मण सुख भौने ॥
राम रसिक दोउ प्रेम विभोरे। सब छर भार राम पर छोरे ॥

परम लावण्य मूर्ति श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– यह सब तो श्री सीताराम जी की महान कृपा का परिणाम है। सुख के भवन व श्री राम–रस के रसिक श्री लक्ष्मीनिधि जी और श्री लक्ष्मण कुमार जी दोनों प्रेम मे विभोर हुये अपने सम्पूर्ण योग–क्षेम का भार श्री राम जी महाराज पर छोड दिये थे।

लखनहिं पूछि कुँअर धरि धीरा। चले मिलन प्रिय भरत कुटीरा ॥
जनक कुँअर कहँ आवत देखी। मिले भरत उठि प्रेम विशेषी ॥

पुनः श्री लखन लाल जी की आज्ञा लेकर श्री निमि वंश प्रभव कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी धैर्य धारण कर प्रियवर श्री भरत जी से मिलने के लिए उनकी कुटी में गये। श्री भरत लाल जी नें श्री जनक नन्दन जी को आते देख, उठकर उनसे विशेष प्रेमपूर्वक भेंट की।

श्याम गौर दोउ प्रेम निधाना। शोक विरह दुख सने सुजाना ॥
लिपटि रहे इक एकन काहीं। ढारत जल दोउ नयनन माहीं ॥

परम गुणज्ञ श्याम व गौर वपुधारी, प्रेम के निधान दोनों राजकुमार श्री भरत लाल जी व श्री लक्ष्मीनिधि जी, श्री चक्रवर्ती जी के प्रयाण–शोक और श्री राम वियोग–दुख में मग्न, आँखों से अश्रु बहाते हुए, एक दूसरे से लिपट गये।

दूनहुँ मन चित बुद्धि भुलाये। करत रुदन दोउ विरह समाये ॥
प्रेमाकर्षण दोहुँन केरा। जड़ चेतन हिय लीन्ह वसेरा ॥

वे दोनों ही अपने मन, चित्त और बुद्धि को भुलाकर विरह में समाये हुए रुदन कर रहे थे। उन दोनों के प्रेम के आकर्षण ने उस समय चराचर सभी जीवों के हृदय में अपना निवास बना लिया था।

दो0– आपापन भुलवाय कर, दियो प्रेम को रूप।
सुर नर मुनि जय जय करत, वरषत पुष्प अनूप ॥९२॥

उस समय उन दोनों, श्री भरत लाल जी व श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रेम के सुन्दर स्वरूप ने उनके सम्पूर्ण अस्तित्व को विस्मृत कर दिया था अर्थात् वे दोनो अत्यन्त प्रेम के कारण विभोर हो गये थे जिसे देखकर देवता, मनुष्य, तथा मुनि सभी जय–जय कहते हुए अनुपमेय पुष्पों की वरषा कर रहे थे।

भरि युग दण्ड लहे चित चेता। बैठे आसन प्रीति समेता ॥
प्रेम पगे दोउ दृग जल ढारी। कछु न कहहिं मन शान्त अपारी ॥

वे दोनों राज कुमार दो दण्ड (४८ मिनट) बाद चैतन्यता प्राप्त किये व प्रेमपूर्वक आसनों में बैठ गये। उस समय दोनों नरपति कुमार प्रेम परिपूर्ण हो दृगों से अश्रु प्रवाहित करते हुये, शान्त मन, कुछ न बोलते हुए बैठे थे।

लक्ष्मीनिधि हिय धीरज धारी। बोले बचन सप्रेम विचारी॥
राम कृपा भाजन धनि ताता। बसत राम जेहिं हिय जन त्राता॥

कुछ समयोपरान्त हृदय में धैर्य धारण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, विचार कर, प्रेम पूर्वक वचन बोले– श्री राम जी महाराज की परम कृपा के पात्र, हे तात श्री भरत लाल जी! आप धन्य हैं जिनके हृदय में, अपने सेवकों की सर्व विधि रक्षा करने वाले प्रभु श्री राम जी महाराज निवास करते हैं।

प्रेम मूर्ति रघुवीर पियारे। सुर नर मुनि सब भे बलिहारे॥
धन्य त्याग वर विशद विशाला। तुम बिन अस को करै सुकाला॥

हे, श्री राम प्रेम के मूर्तिमान स्वरूप! आपके ऊपर देवता, मनुष्य व मुनिजन आदि सभी न्योछावर हैं, आपने जो व्यापक, महान और सुन्दर त्याग किया है उसे आपके अतिरिक्त इस समय और कौन कर सकता है।

निज मुख राम बड़ाई करहीं। कहत प्रीति मुरछित गिरि परहीं॥
तासु प्रभाव कहै को गाई। प्रीति रीति शुचि भाव भलाई॥

जिनकी प्रशंसा श्री राम जी महाराज स्वयं अपने मुख से करते हैं और प्रीति का वर्णन करते समय प्रेमावेश के कारण मूर्छित होकर भूमि में गिर पड़ते हैं, उनके प्रभाव, प्रेम, नियम, पवित्र–भाव एवं कुशलता का वर्णन कौन कर सकता है।

दो0– कहत नाम राउर जगत, पावहिं प्रभु प्रिय प्रेम।
जड़हु जचत चैतन्य सम, चेतन भूलत नेम॥९३॥

आपके नाम का उच्चारण कर सम्पूर्ण संसार प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रिय प्रेम को प्राप्त करते हैं तथा स्मरण कर जड़–जीव चेतन्य जीवों के समान प्रतीत होने लगते हैं तथा चैतन्य जीव तो अपनी सम्पूर्ण स्मृति ही भूल जाते हैं।

छं0– तव नाम सुमिरत जीव जड़, चेतन बनत प्रभु प्रेम लहि।
अरु चरत चेतन जड़ समहिं, प्रभु प्रेम सरिता वारि बहि॥
कहँ लौ कहौं निज नयन लखि, महिमा महा तव नाम की।
प्रिय भरत आवत नाम हिय, रामहु तजैं सुधि आत्म की॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी कहते हैं, कि– हे श्री भरत जी! आपके नाम का स्मरण करते ही जड़–जीव प्रभु प्रेम प्राप्त कर चैतन्य हो जाते हैं तथा चैतन्य जीव प्रभु प्रेम सरिता के जल में बहते हुए स्मृतिहीन हो, जड़वत प्रतीत होने लगते हैं। मैं आपके नाम की महिमा का गायन कहाँ तक करूँ, मैने तो उसका, अपने नेत्रों से भली प्रकार दर्शन किया है कि– आपके प्रिय नाम 'भरत' का हृदय में स्मरण आते ही श्री राम जी महाराज स्वयं अपनी आत्मा को भी भूल जाते हैं।

जड़ता अवधि मम हिय अहै, कुलिशहुँ न जेहि समता लहै।

तव दरश पिघलत सम लगै, कछु प्रेम रस मन महँ बहै ॥
नर नाग मुनि गंधर्व सब, कर नित प्रशंसा रावरी ।
धनि भाग मोरहुँ सब विधिहिं, हरषण कहायो आपरी ॥

हे राज कुमार श्री भरत जी! मेरा हृदय, जो जड़ता की सीमा ही है, जिसके कठोरता की समानता बज्र भी नहीं कर सकता, वह भी आपका दर्शन प्राप्त कर द्रवित होता सा प्रतीत हो रहा है तथा मेरे मन में भी किंचित प्रेमानन्द (रस) प्रवाहित सा हो रहा है। मनुष्य, नाग, मुनि और गंधर्व आदि सभी आपकी प्रशंसा नित्य करते हैं तथा मैं भी सभी प्रकार से धन्य–भाग्य हो गया हूँ जो हर्ष–पूर्वक आपका कहलाता हूँ।

सो0–छन छन बढ़ति सुचाह, रघुपति अविरल प्रेम की ।
सेवा लहन उमाह, जनक कुँअर होवहिं विकल ॥९४॥

इस प्रकार जनक नन्दन लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में श्री राम जी महाराज का अविरल प्रेम प्राप्त करने की सुन्दर अभिलाषा प्रतिक्षण वृद्धि को प्राप्त कर रही है तथा उनके कैंकर्य को प्राप्त करने का तीव्रतम उत्साह होने के कारण वे व्याकुल हो रहे थे।

भरत कुमारहिं निज हिय लाई । प्रेम सिन्धु दोउ रहे समाई ॥
कहा भरत सुनु प्रिय सिय भ्राता । दरश तुम्हार मोहि सुखदाता ॥

उस समय श्री भरत जी ने कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को हृदय से लगा लिया और दोनों राजकुमार प्रभु–प्रेम के समुद्र में डूब गये। कुछ समय पश्चात श्री भरत जी ने कहा– हे श्री सीताग्रज, प्रिय कुमार, श्री लक्ष्मीनिधि जी! आपका दर्शन मुझे अतिशय सुख प्रदान करने वाला है।–––

राम प्राण प्रिय तुम भल भइया । प्रेम मूर्ति रघुवर सुख दइया ॥
सीय राम मूरति उर धारे । बाकी काह रहेउ मम प्यारे ॥

–––हे प्रिय भइया जी! आप तो श्री राम जी महाराज के प्राण प्रिय, प्रेम के साक्षात् विग्रह एवं उन्हें सुख प्रदान करने वाले हैं। आप अपने हृदय में सदा श्री सीताराम जी की मूर्ति धारण किये रहते हैं, हे मेरे प्यारे कुमार! आप ही कहिये कि– आपको पाने के हेतु अब क्या शेष रह गया है ?–––

तुम्हरे दरश भरोसा आवा । अनुपम सुभग सहायक पावा ॥
मैं अति अधम अमित अपराधी । जेहिं लगि जानहु सकल उपाधी ॥

–––आपका दर्शन प्राप्त कर मुझे सहारा मिल गया है तथा आपके रूप में मैंने अनुपमेय व सुन्दर सहायक प्राप्त कर लिया है। मैं तो अत्यन्त अधम और असीमित अपराध करने वाला हूँ। आप जान लीजिए कि– यह सम्पूर्ण उपाधि मेरे कारण ही हुई है।–––

मोर विनय रघुवरहिं सुनाई । बँटिहौ विपति बहुत दुखदाई ॥
जाहिं अवध फिरि रघुवर रामा । एक इहै मोरे मन कामा ॥

---आप मेरी प्रार्थना, श्री राम जी महाराज को सुनाकर अत्यन्त दुखदाई मेरी विपति को बाँट लेंगे। मेरी तो एक मात्र यही मन की कामना है, कि– श्री राम जी महाराज श्री अयोध्यापुरी को लौट जायें।---

दो0– सीय राम सम्मुख चलत, मन महँ लागति लाज।
प्रणत पाल रघुपति यदपि, दीन गरीब निबाज ॥९५॥

---यद्यपि श्री राम जी महाराज आश्रितों का सर्वथा पालन करने वाले और दीनों व गरीबों पर दया करने वाले स्वभाव के हैं तथापि मुझे श्री सीताराम जी के सामने जाने में मन में अत्यन्त ही लज्जा लगती है।---

समुझि समुझि मन आपन करणी। लगत महा भय जाय न वरणी ॥
जो उर धरहिं राम रघुवीरा। कल्प अनंत मिटै नहिं पीरा ॥

---अतः अपने अवर्णनीय कृत्यों का स्मरण कर मुझे अत्यधिक भय लगता है, क्योंकि श्री राम जी महाराज यदि, मेरे कर्मो को हृदय में स्थान देंगे तो अनन्त कल्पों तक मेरी पीड़ा शान्त नहीं हो सकती।---

प्रपति प्रताप समुझि मन माहीं। आयो इहाँ सुमिरि प्रभु काहीं ॥
रक्षक मम रघुपति पद त्राना। मन प्रतीत नहिं साधन आना ॥

---मैं तो 'शरणागति के प्रभाव' को मन में समझ कर ही, प्रभु श्री राम जी महाराज का स्मरण करता हुआ यहाँ आया हूँ। मेरी रक्षक तो प्रभु श्री राम जी महाराज की चरण रक्षिका पादुकायें ही हैं, मेरे मन में अन्य साधनों का विश्वास नहीं है।

सुनहु कुँअर मैं परम अभागी। जन्म भयो रघुवर दुख लागी ॥
मरत लखे लहि पितु पद भाये। मातुल भवन रहे सुख छाये ॥

हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! सुनिये, मैं अत्यन्त ही भाग्यहीन हूँ क्योंकि मेरा जन्म श्री राम जी महाराज को दुख प्रदान करने का हेतु बना है। मैं परलोक गमन के समय, श्री मान् पिता जी के पूज्य चरणों का दर्शन तक नहीं कर सका बल्कि अपने मामा के भवन में सुखपूर्वक निवास करता रहा।

गुरु सँदेश लहि अवधहिं आये। देखे शोक सिन्धु उमड़ाये ॥
जो दुख लहा कहौं का प्यारे। अजहुँ जरावत देह अँगारे ॥

गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी द्वारा भेजा हुआ समाचार प्राप्त कर जब मैं, श्री अयोध्या पुरी आया तब वहाँ उमड़ते हुए शोक के समुद्र का मैने दर्शन किया। हे प्यारे! उस समय मैंने जो दुख प्राप्त किया है उसे अब क्या कहूँ? अभी भी वह शोक की अग्नि मेरे शरीर को जलाये जा रही है।

दो0– सीयराम बन गमन सुनि, छूटेव नाहिं शरीर।
आगे चल विधि का करैं, कवन भुगाई पीर ॥९६॥

पुनः श्री सीताराम जी का 'वन–गवन' सुनकर भी मेरा यह शरीर नहीं छूटा, तब न जाने ब्रह्मा,

अब और क्या करेगा, कौन सी पीड़ा मुझे सहन करायेगा।

करि पितु क्रिया समाजहिं लीन्हे । चलेउँ चित्रकूटहिं चित कीन्हें ॥
तमसा पहुँचि दुखद सुधि आयी । अत्र राम जलहूँ नहि खाई ॥

पुनः श्री मान् पिता जी का 'अन्तिम संस्कार' कर, सम्पूर्ण समाज को लेकर, मैं अपने चित्त को श्री राम जी के चरणों में लगाये हुये, चित्रकूट चल दिया। श्री तमसा नदी के किनारे पहुँच कर मुझे अत्यन्त दुखदायी स्मृति आयी कि– श्री राम जी महाराज ने यहाँ, जल तक नहीं ग्रहण किया।

श्रृङ्गवेर पुर पहुँच सशोकी । कुश साथरि सिय राम विलोकी ॥
देखत हृदय विदरि नहिं गयऊ । कुलिस समान कठिन सो भयऊ ॥

पुनः दुखित–मना, श्रंगवेरपुर पहुँच कर मैंने श्री सीताराम जी के, कुश नामक घास से निर्मित बिछावन (कुश साथरी) का दर्शन किया। उसे देखकर भी मेरा हृदय विदीर्ण नहीं हुआ, मानों वह वज्र के समान कठोर हो गया हो।

लखि निषाद कर प्रेम महाना । फटेउ हृदय नहिं पंक समाना ॥
कह लौं कहौं मोर उर देखी । अति कठोरता लजत विशेषी ॥

वहाँ निषाद राज के महान प्रेम को देखकर भी मेरा कलुषित हृदय कीचड़ के समान विदीर्ण नहीं हुआ। मैं कहाँ तक कहूँ, मेरे हृदय को देखकर स्वयं, महान कठोरता भी विशेष लज्जित हो जाती है।

पहुँचि प्रयाग नहाय त्रिवेणी । देखी सुन्दर मुनिवर श्रेणी ॥
भरद्वाज सन सब सुधि पाई । मोहिं पर जिमि सनेह रघुराई ॥

श्री प्रयाग राज पहुँच कर मैने त्रिवेणी संगम में स्नान किया तथा मुनियों के सुन्दर समूह का दर्शन किया। पुनः मुनिवर श्री भरद्वाज जी द्वारा वह सभी समाचार प्राप्त किया, जिस प्रकार श्री राम जी महाराज का मुझ पर स्नेह है।

दो0– आप विषय प्रभु प्रीति सुनि, कृपा अमित परतीत ।
कछु धीरज मन महँ भयो, सन्मुख चलेउ अभीत ॥९७॥

अपने विषय में प्रभु श्री राम जी महाराज की प्रीति श्रवण कर तथा उनकी असीमित कृपा की प्रतीति हो जाने पर मन में कुछ धैर्य हुआ था तभी मैं निर्भय होकर, अपने प्रभु श्री राम जी महाराज के समक्ष आने हेतु चला।

आय परेउ प्रभु चरणन माहीं । त्राहि पुकारत तन सुधि नाहीं ॥
समुझि खिन्न मोहिं राम उठावा । दीन दयाल हृदय निज लावा ॥

यहाँ आकर प्रभु चरणों में त्राहि–त्राहि पुकारता हुआ, शरीर स्मृति भूलकर, गिर पड़ा, तब दीनों पर दया करने वाले प्रभु, श्री राम जी महाराज ने मुझे दुखी समझ, उठाकर, अपने हृदय से लगा लिया।

नयन नीर शिर सिंचन कीन्हा। अभय बाँह सब विधि प्रभु दीन्हा॥
मोहिं सम को पापी शिर मोरा। अपनायो तेहिं बन्दी छोरा॥

पुनः श्री राम जी महाराज ने मेरे शिर को अपने नेत्रों के जल से सिंचित कर, सभी प्रकार से निर्भय कर देने वाली अपनी बाहु मुझे प्रदान कर दी। हे कुमार! मेरे समान पापियों में अग्रगण्य कौन है, उसे भी मेरे प्रभु ने अपना कर पाप–बन्धन से मुक्त कर दिया है।

को कृपालु अस कहहु कुमारा। प्रणत पाल प्रभु प्रेम पसारा॥
विधि हरि हर लखि रीति उदारी। करहिं प्रशंसा होत सुखारी॥

हे कुमार! आप ही कहिये कि– प्रभु श्री राम जी महाराज के समान, ऐसा कृपालु, आश्रित जनों का परिपालन करने वाला एवं प्रेम प्रदाता स्वामी कौन होगा। श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शंकर जी भी, श्री राम जी महाराज की परम उदार पद्धति को देखकर बड़ाई करते व सुखी होते हैं।

रक्षक अस प्रभु पाइ पाला। भूलेउँ निज अघ भय ततकाला॥
सीय कृपा का कहौं सुनाई। करत दण्डवत तुरत उठाई॥

इस प्रकार रक्षा करने वाले, कृपालु स्वामी श्री राम जी महाराज को पाकर मैं तत्क्षण अपने पाप और भय को भूल गया। विदेहराज नन्दिनी श्री सीता जी की कृपा को तो मैं, क्या? कह कर आपको सुनाऊँ, दण्डवत करते ही उन्होंने मुझे शीघ्र उठा लिया।

दो0– कीन्ह अभय शिर परशि मम, पोंछेउ पुनि दृग वारि।
भरी नयन जल वचन मृदु, बोली सिय सुकुमारि॥९८॥

मेरे शिर का स्पर्श कर उन्होने मुझे अभय कर दिया। पुनः मेरे नेत्रों से बहते हुए अश्रुओं को पोंछ कर परम सौकुमार्य सम्पन्ना श्री सीता जी दृग–वारि प्रपूरित होकर कोमल वचनों से बोलीं–

जनि गलानि कीजै मन माहीं। रघुपति गिनहिं प्राण तोहि काहीं॥
परम भरोस हिये महँ आवा। सीय कृपा जब दरशन पावा॥

हे भैया, श्री भरत जी! आप मन में ग्लानि मत कीजिए, रघुनन्दन श्री राम जी महाराज आपको अपने प्राण मानते हैं। इस प्रकार श्री सीता जी की महान कृपा का जब मैंने दर्शन किया तब मेरे हृदय में अत्यन्त भरोसा हो गया।

लखनहुँ मिले सुपावन रीती। भाव सहित हिय प्रेम प्रतीती॥
परम अनुग्रह तीनहुँ केरा। पाय छुटेव हिय भय बहुतेरा॥

भैया श्री लक्ष्मण कुमार जी भी सुन्दर पावन विधि से, भाव पूर्वक, हृदय में प्रेम और विश्वास भरकर, मुझसे भेंट किये। इस प्रकार तीनों (श्री राम जी महाराज, श्री सीता जी व श्री लक्ष्मण कुमार जी) की अतिशय कृपा को प्राप्त कर मेरे हृदय का महान भय छूट गया है।

तेहिं पर नृप विदेह इत आये। आपु सहित परिवार लिवाये॥
गुरु बसिष्ठ यगबलिक सुजाना। कौशिकादि मुनि दया निधाना॥

उतने पर, आपके सहित सम्पूर्ण परिवार को लिये हुए श्री विदेहराज जी महाराज यहाँ आ गये। गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी, परम विज्ञ श्री याज्ञबल्क्य जी तथा ब्रह्मर्षि श्री विश्वामित्र जी आदि दया के निधान मुनिजन भी यहाँ उपस्थित हैं।

ते सब दैहैं मोर सुधारी। मम हिय अहै भरोसा भारी॥
दीन जानि मिलि करिहहिं दाया। सुनिहैं विनय मोर रघुराया॥
कुँअर कहेउ प्रभु अहहिं तुम्हारे। सब विधि कृपा सनेह सँभारे॥

वे सभी मेरी बिगड़ी बना देंगे ऐसा मेरे हृदय में महान विश्वास है। मुझे दीन समझ कर, वे सभी मिलकर, मुझ पर दया करेंगे और श्री राम जी महाराज मेरी प्रार्थना को सुनकर, स्वीकार कर लेंगे। श्री भरत जी के सुन्दर वचनों को श्रवण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे प्रिय राजकुमार भरत! प्रभु श्री राम जी महाराज तो सभी प्रकार से आपके हैं तथा आपकी सभी प्रकार से, कृपा और प्रेम पूर्वक सम्हाल किये हुए हैं।

दो0– निजी वस्तु लहि राम प्रिय, काह शेष रहि जाय।
कबहुँ न करिहैं भंग मन, रखिहैं रुचि रघुराय॥९९॥

अतः अपनी प्रिय वस्तु श्री राम जी महाराज को प्राप्त कर, आपको क्या पाना शेष है। प्रभु श्री राम जी महाराज आपका मन, कभी भी नहीं तोड़ेंगे, वरन् आपकी इच्छा को अवश्य ही पूर्ण करेंगे।

तेहि अवसर रिपुसूदन आये। मिले कुँअर भरि भाव अघाये॥
भरतहिं हिलि मिलि बहुरि कुमारा। निज निवास गो भाव अपारा॥

उसी समय श्री शत्रुघ्न कुमार जी वहाँ आ गये और कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भाव में भरकर उनसे भेंट किये। अनन्तर उनके भावों को जानकर वे तृप्त हो गये। पुनः कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी, श्री भरत लाल जी से भेंट कर, महान भाव में भरे हुये अपने निवास स्थल चले गये।

जाय सिद्धि सन कहि समुझाया। चारहुँ भामन भाव जो भाया॥
सिद्धि कही सुनु प्राण अधारा। वेद तत्व चारहु सुकुमारा॥

वहाँ जाकर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी नें अपनी सह–धर्मिणी श्री सिद्धि कुँअरि जी से अपने चारों बहनोइयों के सुन्दर भावों को समझाकर कह सुनाया। जिसे श्रवण कर श्री सिद्धि कुँअरि जी ने कहा हे प्राणाधार! सुनिये, वे चारो राज कुमार तो वेद के "तत्व" ही हैं।–––

परम प्रीति एक एकन केरी। विधि हरि हर नहिं करैं निवेरी॥
प्राण प्राण एक एकन केरे। होय रहे ननदोई मेरे॥

–––उन चारो राजकुमारों की पारस्परिक महान प्रीति का वर्णन श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी एवं श्री शंकर जी भी नहीं कर सकते हैं। मेरे चारो ननदोई, तो एक दूसरे के प्राणों के प्राण बने हुए हैं।–––

निज सुख त्यागि भ्रात सुख चाही। पगे परस्पर परम उछाही॥
त्यागी परम विरक्त अमोले। मन बुधि ते कोउ जाँय न तोले॥

———वे सभी अपने–अपने सुखों का त्याग कर अपने भैया श्री राम जी महाराज के सुखों की कामना में परम आनन्दपूर्वक पगे हुए हैं। वे चारो परम त्याग, वैराग्य सम्पन्न एवं अनमोल हैं, मन और बुद्धि के द्वारा उनकी श्रेष्ठता का अनुमान नहीं किया जा सकता।———

दो0– अवध राज करि गेद सम, राम भरत दोउ खेल ।
इत सो उत उत सो इतहिं, पद प्रहार करि झेल ॥१००॥

———तभी तो श्री अयोध्यापुरी के महान राज्य पद को गेंद के समान बनाकर, श्री राम जी महाराज तथा श्री भरत लाल जी दोनों, क्रीड़ा करते हुए इधर से उधर और उधर से इधर पैरों से ठुकरा रहे (पद प्रहार कर रहे) हैं।

अनासक्ति अति दूनहु भाई । यहि मिस त्याग भक्ति दिखराई ॥
जग हित दूनहु दशरथ वारे । करत चरित सुख दानि अपारे ॥

इस प्रकार दोनों भाई श्री राम जी महाराज व श्री भरत लाल जी सर्वथा आसक्ति रहित होकर, उपर्युक्त प्रकार की कीड़ा के व्याज से संसार को त्याग और भक्ति का संदर्शन करा रहे हैं तथा वे युगल चक्रवर्ती कुमार लोक हित के लिये असीम सुखदायी चरित्र कर रहे हैं।———

देखहिं विजय होहि अब काकी । निश्चय करन जगत मति थाकी ॥
आपन समुझि कहौ हिय प्यारे । भरत विजय चाहत जगवारे ॥

———अब देखना यह है कि– दोनो में जीत किसकी होती है, क्योंकि संसार में इसका निश्चय करने वाली बुद्धि श्रमित हो चुकी है। हे प्रिय प्राण वल्लभ! मैं अपने हृदय का विचार प्रगट कर रही हूँ कि– संसार के सभी लोग तो श्री भरत लाल जी के विजय की ही कामना करते हैं।

मोरेहु मन प्रभु अति रुचि होई । राखहिं राम भरत रुख जोई ॥
प्रिया वचन सुनि जनक कुमारा । कहेउ देवि तुम नीक विचारा ॥

हे नाथ! मेरे मन की भी यही महान अभिलाषा है कि– श्री भरत लाल जी की रुचि देखते हुए श्री राम जी महाराज उनकी इच्छा का पालन करें। अपनी प्रिया श्री सिद्धि कुँअरि जी के वचनों को सुन कर जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी बोले– हे देवि! आपने अच्छा विचार किया है।———

राम राज पद सब कोउ चाहा । कीन्हे प्रीति प्रतीति उमाहा ॥
राम भरत गुरुजन मिलि सिगरे । करिहैं निश्चय अस मन लगरे ॥

———हम सभी श्री राम जी महाराज का राज्य पद चाहते हैं तथा प्रेम और आनन्द पूर्वक विश्वास किये हुए हैं। परन्तु मुझे मन में प्रतीति होती है कि– श्री राम जी महाराज, श्री भरत जी तथा सभी गुरुजन मिलकर ही इसका सम्यक विनिश्चय करेंगे।

दो0– राम भरत गुण गण कहत, दम्पति भरि अनुराग ।
सीय राम शुभ दरश निज, लालच अति जिय जाग ॥१०१॥

इस प्रकार श्री लक्ष्मीनिधि जी और श्री सिद्धि कुँअरि जी, श्री राम जी महाराज और श्री भरत

लाल जी के गुण–समूहों का अनुराग पूर्वक वर्णन परस्पर कर रहे थे तथा उनके हृदय में श्री सीताराम जी के शुभ–दर्शन का अत्यधिक लोभ नित्य जगता रहता था।

समय पाइ सिय मातु सुनैना । मिथिलेशहिं बोली मृदु बयना ॥
भरत प्रेम वश राम वियोगा । अवध रहत कस सहिहहिं शोगा ॥

अनुकूल समय पाकर श्री सीता जू की अम्बा श्री सुनैना जी ने श्री मिथिलेश जी महाराज से मधुर वाणी में कहा– हे नाथ! श्री भरत जी, श्री राम जी महाराज के प्रेम के आधीन हो, श्री अयोध्यापुरी में निवास कर उनके वियोग–दुःख को किस प्रकार सहन कर सकेंगे–––

इहै शोच वश चहति विचारी । राम मातु गुण शील उदारी ॥
लौटहिं राम अवधपुर काहीं । भरत विनय सुनि धरि मन माहीं ॥

–––गुणशीला व उदार हृदया श्री राम–माता अम्बा श्री कौशिल्या जी इसी चिन्ता में चिन्तित रहती हैं कि– श्री भरत जी की प्रार्थना सुन एवं स्वीकार कर श्री राम जी महाराज श्री अयोध्यापुरी लौट जायें।–––

जो नहिं फिरै भरत सँग लेहीं। लखनहिं भेजि अवध कहँ देही ॥
जनक कहेउ सुनु प्राण पियारी। इहै आश सबके मन भारी ॥

–––यदि वे नहीं लौटते तो श्री भरत जी को साथ में ले लें और कुमार श्री लक्ष्मण को श्री अयोध्या पुरी भेंज दें। श्री सुनैना जी के वचनों को श्रवण कर श्री जनक जी महाराज ने कहा– हे प्राण प्यारी! सुनिये, आप जो कह रही हैं, यही महान अभिलाषा हम सबके मन में है।–––

देवि परन्तु भरत भल भावा। प्रेम प्रतीत तरक नहिं आवा ॥
भरतहुँ प्रति जिमि भाव अथोरा। कोउ न जान जिमि करत किशोरा ॥
जानि न जाय दुहुँन कर भाऊ । काहि कहै कोउ बिना लखाऊ ॥

–––परन्तु हे देवि! श्री राम जी महाराज के प्रति श्री भरत जी का सुन्दर भाव, प्रेम एवं विश्वास बुद्धि के द्वारा अनुमान नहीं किया जा सकता तथा श्री भरत जी के प्रति श्री राम जी महाराज का जिस प्रकार का महान भाव है उसे भी कोई नहीं जान सकता। दोनों के परस्पर भाव समझ में नहीं आते, उनका कोई बिना समझे किस प्रकार वर्णन कर सकता है।

दो0– विधि हरि हर नर नाग मुनि, भरत राम की प्रीति ।
अकथ अगाध अनूप शुचि, जान सकैं नहिं रीति ॥१०२॥

श्री भरत जी एवं श्री राम जी महाराज की अकथनीय, गहरी, अनुपमेय एवं पवित्र प्रीति–रीति को, श्री ब्रह्माजी, श्री विष्णु जी, श्री शंकर जी एवं कोई मनुष्य, नाग और मुनि आदि नहीं जान सकते।

ब्रह्म विचार योग बहु धर्मा । वर्णन योग अवर श्रुति मर्मा ॥
तिनके प्रवचन केर न कामा। का कहिहौं सुनु प्रिया ललामा ॥

हे सुन्दर, प्रिये! यहाँ ब्रह्म का चिन्तन, योग, धर्म तथा श्रुतियों के रहस्य आदि के व्याख्यान का

प्रयोजन नहीं है अतः उन दोनो भइयों के मध्य, मैं क्या कह पाऊँगा।

अकथनीय इत प्रेम स्वरूपा। भरत राम हृदि बसेउ अनूपा॥
तहाँ मोर गम एकहु नाहीं। धरहु भाव यह गुनि मन माहीं॥

यहाँ तो अनिवर्चनीय स्वरूप वाला अनुपमेय 'प्रेम' ही, श्री भरत जी और श्री राम जी महाराज के हृदय में निवास किये हुए है जिसमें मेरा किंचित भी प्रवेश नहीं है अतः आप, अपने मन में समझकर यह भाव धारण कर लीजिये कि–––

करिहैं दोउ बन्धु निपटारा। स्वामी सेवक भाव उदारा॥
संशय शोच कुतर्क नसाई। होइहिं सब विधि प्रिया भलाई॥

–––स्वामी और सेवक भाव से भावित उदार दोनों भ्राता श्री भरत जी और श्री राम जी महाराज ही इसका निर्णय करेंगे। हे प्रिये! तभी समस्त संदेह, चिन्ता व कुतर्क विनष्ट हो जायेंगे और सभी प्रकार से मंगल होगा।

शिक्षण हेतु लोक दोउ भ्राता। करिहैं निजनिज धर्म सुहाता॥
कहत सुनत समुझत सुख होई। लहिहैं पथ परमारथ सोई॥

संसार को शिक्षा प्रदान करने हेतु दोनो भाई अपने–अपने सुन्दर धर्म के अनुसार आचरण करेंगे। जिसके कहने, सुनने व समझने से सभी को सुख संप्राप्त होगा और उस 'परम–परमार्थ' को प्राप्त करेंगे।

दो0– कुँअर मातु सुनु पिय वचन, तजि संशय प्रतिकूल।
युग पाहुन लीला ललित, सुमिरि गयी मन भूल॥१०३॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की अम्बा श्री सुनैना जी अपने स्वामी श्री जनक जी महाराज के प्रिय वचनों को श्रवणकर, विपरीत संदेहों को त्याग, अपने दोनों जामाताओं की सुन्दर लीला का स्मरण कर अपने मन को भूल गयीं।

जनक कबहुँ रघुकुल गुरु साथा। बात करहिं धरि युग पद माथा॥
कबहुँ मिलत रघुनायक काहीं। भरतहिं कबहुँ बुझावन जाहीं॥

श्री जनक जी महाराज कभी रघुकुल के आचार्य श्री बसिष्ठ जी महाराज के चरणों में अपना मस्तक झुका प्रणाम कर इस हेतु चर्चा करते तो कभी वे श्री राम जी महाराज से मिलने जाते और कभी श्री भरत जी के समीप जाकर उन्हें समझाया करते थे।

मिलहिं परस्पर नर अरु नारी। चरचा करहिं समय अनुसारी॥
राम दरश पायी विश्रामा। मिथिला अवध समाज ललामा॥

वहाँ (श्री चित्रकूट में) सभी पुरुष और स्त्रियाँ आपस में मिल जुलकर समय के अनुसार (श्री राम–भरत प्रेम की) चरचा करते थे। श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी का सुन्दर समाज श्री राम जी महाराज का दर्शन प्राप्त कर परम शान्ति प्राप्त कर रहा था।

सबके हृदय चाह यह होई। बिन सियराम फिरब नहिं होई ॥
जौ नहिं फिरैं राम व्रत धारी। बसहिं अवध लगि वनहिं सुखारी ॥

उस समय सभी के हृदय में यही अभिलाषा हो रही थी कि– श्री सीताराम जी के बिना अब हम अयोध्या पुरी को वापस नहीं होंगे और यदि अपने व्रत का पालन करने वाले श्री राम जी महाराज नहीं लौटते तो, हम सभी 14 वर्षों की वनावधि समाप्त होने तक वन में ही सुखपूर्वक निवास करेंगे।

न्हान पान मन्दाकिनि केरा। चित्रकूट नित होइ बसेरा ॥
सीता राम दरश नित प्यारा। पल सम जाँय अवधि दिन सारा ॥
सुख निधान सुखदानि अपारा। सेवन सीता राम हमारा ॥

यहाँ श्री मन्दाकिनी जी के परम पवित्र जल में स्नान तथा उसका जल पान करते हुए श्री चित्रकूट गिरि का नित्य निवास एवं श्री सीता राम जी का नित्य प्रिय दर्शन करते हुए चौदह वर्षों की अवधि के सभी दिन पल के समान व्यतीत हो जायेंगे। इस प्रकार हमें सुख के निधान श्री सीताराम जी को अपार सुख प्रदान करने वाली सेवा भी प्राप्त हो जायेगी।

दो0– सीय राम बिनु मोक्ष सुख, अरु वैकुण्ठ महान ।
सार्व भौम तिरलोक रस, लागत अनल समान ॥१०४॥

श्री सीता राम जी के बिना मोक्ष सुख, वैकुण्ठ का महान सुख, सार्व–भौम सुख तथा तीनों लोकों का सुख, सभी हमें अग्नि के समान जलाने वाले प्रतीत होते हैं।

करि व्रत नियम पूजि सुर लोगू। त्यागि दिए मन सो सब भोगू ॥
माँगत इहै स्वदेव मनाई। सीयराम फिरि अवधहिं जाई ॥

सभी जन नियम पूर्वक व्रत करते हुए अपने–अपने इष्टदेवों की पूजा करते हुए मन से भी सभी भोगों को त्याग दिये थे और अपने आराध्यों को प्रसन्न कर यही याचना करते थे कि– श्री सीताराम जी, श्री अयोध्या पुरी लौट चलें।

लहहिं राज पद पैतृक भाया। सुखी होहिं सुर नर मुनिराया ॥
राम स्वामि सेवक हम सिगरे। रहैं सदा शुचि नेहन पगिरे ॥

श्री सीताराम जी श्री अयोध्या पुरी के अपने सुन्दर पुश्तैनी (परम्परागत) राज्य–पद को ग्रहण करें और देवता, मनुष्य व मुनि सभी लोग पुनः सुखी हों। श्री राम जी महाराज हमारे स्वामी और हम सभी पवित्र प्रेम में पगे हुए सदैव उनके सेवक बने रहें।

राम राज बिनु मरण पियारा। माँगहिं हाथ जोरि करतारा ॥
पंचदेव सुनि आरत बानी। राम प्रेम अतिशय पहिचानी ॥

हे विधाता हम सभी हाथ जोड़कर आपसे यही याचना करते हैं कि या तो हमें श्रीराम राज्य प्रदान कीजिये नहीं तो हमे मृत्यु दे दीजिये, श्री राम–राज्य के बिना हमे मृत्यु प्रिय ही है। उनके आराध्य पंच–देवता (आदित्य, रुद्र, विष्णु, गणेश व शक्ति) आर्ति पूर्ण वचनों को सुन तथा उनके हृदय के श्री राम प्रेम के आधिक्य को जान कर–––

स्वप्न मध्य सब कह सुख पाई । अवध राज करिहैं रघुराई ॥
स्वामि धर्म रखि राम पाला । प्रजहिं प्राण पलिहैं जनपाला ॥

———सभी को स्वप्न में सुखपूर्वक आश्वासन देते हैं कि– श्री राम जी महाराज, श्री अयोध्यापुरी का राज्य–शासन करेंगे। भक्तों का प्रति–पालन करने वाले, प्रभु श्री राम जी महाराज स्वामि–धर्मद्धअपने धर्म) का पालन करते हुए अपनी प्रजा द्धआप सभी) का प्राणों के समान पालन करेंगे।———

दो0– सप्त द्वीपमय भूमि को, शासक राम कुमार ।
प्रजा रहइ आनन्दमय, वचन न मृषा हमार ॥१०५॥

———इस प्रकार सातों द्वीपों (जम्बू, शाक, कुश, कोंच, शाल्मलि, गोमेद व पुष्कर) वाली इस वसुन्धरा के चक्रवर्ती कुमार श्री राम जी महाराज ही शासन कर्ता (राजा) होंगे तथा प्रजा आनन्द पूर्वक रहेगी, ये हमारे वचन असत्य नहीं होंगे।

जागि विचारहिं सब नर नारी । होइहिं स्वप्न सत्य सुखकारी ॥
धीरज धरहिं हृदय सब लोगू । चहैं न छन सिय राम वियोगू ॥

अपने–अपने इष्ट देवों के स्वप्न–वचनों को श्रवण कर सभी स्त्री पुरुष जाग्रत हो विचार करते हैं कि– यह सुख प्रदायक स्वप्न सत्य होगा। इस प्रकार सभी जन हृदय में धैर्य धारण किये रहते हैं तथा वे श्री सीताराम जी से एक क्षण का भी वियोग भी नहीं चाहते।

करहिं त्रिकाल गंग स्नाना । दैनिक कृत्य करहिं धरि ध्याना ॥
राम सीय दरशन शुभ करहीं । बिसरे गृह सुधि आनँद भरहीं ॥

वे सभी तीनो समय (प्रातः, दोपहर व सायं) श्री मन्दाकिनी गंगा में स्नान कर ध्यानपूर्वक नित्य–कर्म करते हैं तथा श्री सीताराम जी के शुभ–दायक दर्शन करते हुये अपने भवनों की स्मृति भुलाये हुए आनन्द से भरे रहते हैं।

मिथिला अवध पेखि प्रिय प्रीती । सीय राम सुख लहैं अमीती ॥
साथहिं उर संकोच महाना । राम हृदय नहिं जाय बखाना ॥

श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी निवासियों की ऐसी प्रिय प्रीति को देखकर श्री सीताराम जी असीमित सुख प्राप्त करते हैं साथ ही श्री राम जी महाराज के हृदय में इतना अधिक संकोच होता है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

शील निधान राम रघुराई । जन मन क्षोभ न हृदय समाई ॥
पाँच दिवस मिथिलेशहिं आये । भये इहाँ मन सोच सुभाये ॥

श्री राम जी महाराज शील के निधान हैं, उनका हृदय, अपने सेवकों के मन का दुख नहीं सहन कर पाता। श्री मिथिलेश जी महाराज भी पाँच दिन से आये हुए हैं, यह चिन्ता श्री राम जी महाराज के मन में स्वाभाविक ही हो रही है।

दो0– कन्दमूल फल खाय सब, पियत तोय दुख साज ।
शयन भूमि अति ताप सह, मिथिला अवध समाज ॥१०६॥

श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी का समाज कन्दमूल व फल आदि का आहार कर, पर्वत का दुख प्रदायक जल पी रहा है और भूमि में शयन करते हुये अत्यधिक दुख सहन कर रहा है।

अस विचारि करुणाकर रामा । गये जहाँ कुलगुरु मतिधामा ॥
करि प्रणाम मुनि राज समीपा । बैठ सकुच सह रघुकुल दीपा ॥

ऐसा विचार कर परम करुणा के सागर श्री राम जी महाराज, बुद्धि के आगार कुलगुरु श्री बशिष्ठ जी के समीप गये तथा उन्हे प्रणाम कर श्री रघुवंश के प्रकाशक श्री राम जी, संकोच पूर्वक उनके समीप बैठ गये–––

कहि न सकत शिर नीचहिं कीने । धरनि विलोकत भावहिं लीने ॥
लखि स्वभाव गुरु आयसु दीना । कहन चहहु का प्रेम प्रवीना ॥

–––शिर झुकाये हुए वे कुछ बोल न सके तथा भाव में मग्न हुए भूमि की ओर देखते रहे। तब उनके स्वभाव को देखकर, गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी ने आज्ञा प्रदान की, कि– हे, प्रेम प्रवीण रघुनन्दन! क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

लहि निदेश रघुवर कर जोरी । बोले वचन विनय रस बोरी ॥
मिथिला अवध सून दोउ देशा । शोचनीय बहु बिना नरेशा ॥

श्री गुरुदेव जी की आज्ञा प्राप्तकर श्री राम जी महाराज ने अपने हाथ जोड़ विनय पूर्ण वचनों से कहा, कि–हे श्री गुरुदेव! इस समय श्री मिथिला पुरी और श्री अयोध्यापुरी दोनों ही देश, सभी प्रकार से रिक्त, नृपति–विहीन एवं अत्यन्त विचारणीय अवस्था में हैं।

राउ गये दिवि धाम पधारी । आप बसत इत संशय कारी ॥
तैसहिं इत मिथिला पति राऊ । बसत समाज लिये करि चाऊ ॥

संशय कारिणी बात यह है कि– श्री मान् दाऊ जी महाराज तो श्री दिव्य–धाम पधार गये हैं और आप श्री यहाँ निवास कर रहे हैं। उसी प्रकार श्री मिथिलेश जी महाराज भी ससमाज उत्साहपूर्वक यहाँ निवास कर रहे हैं।

सो0–सहत कष्ट सब कोय, मिथिला अवध समाज दोउ ।
लखि न जाय नित मोय, जानहिं मम हिय भाव गुरु ॥१०७॥

यहाँ श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी दोनों देशों का समाज दुख सहन कर रहा है, यह मुझसे नित्य नहीं देखा जा रहा, मेरे ह्रदय के भावों को तो मेरे श्री सद्गुरुदेव जी जानते ही हैं।

तव अधीन सब कर हित भारी । उचित होय तस करहिं सुखारी ॥
अस कहि सकुचे राम सुभाये । बोले बचन सुशीश झुकाये ॥

हे श्री आचार्य महाप्रभु! हम सभी का महान हित, आपके ही आधीन है अतएव सुखपूर्वक जैसा उचित हो, वैसा, किया जाय। ऐसा कहकर श्री राम जी महाराज सहज ही संकुचित हो गये पुनः अपना सुन्दर शिर झुकाये हुये बोले–––

छमहिं धृष्टता गुरुवर मोरी । अविनय कियो नाथ यहि ठौरी ॥
सुनि मृदु वचन बशिष्ठ अघाने । प्रेम पुलकि पय लोचन आने ॥

–––हे मेरे परम उदार श्री सद्‌गुरुदेव! आप मेरी ढिठाई को क्षमा करेंगे क्योंकि मैंने इस स्थान में महान उद्‌दण्डता की है। श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवणकर रघुकुल आचार्य श्री बसिष्ठ जी तृप्त हो गये, प्रेम से पुलकित हो गए तथा उनकी नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आये।

रामहिं लीन्ह हृदय निज लाई । अन्हवाये दृग जल मुनिराई ॥
सुनहु राम तव वदन निहारी। सुखी भये सब वासर चारी ॥

मुनिराज श्री बसिष्ठ जी ने श्री राम जी महाराज को अपने हृदय से लगा कर, प्रेमाश्रुओं से उनका अभिषेक कर दिया और बोले– हे चक्रवर्ती राजकुमार श्री राम जी! सुनिये, आपके मुख कमल का दर्शन कर सभी लोग यहाँ चार दिन, सुखपूर्वक निवास किये है।

सुख कारन सुख धाम अनूपा । तुम बिनु जग सुख नित दुख कूपा ।।
तुम्हरे दरश आश सब केरा । पूजेव सुख रस शान्ति घनेरा ।।

हे समस्त सुखों के कारण स्वरूप, सुख के धाम, अनुपमेय श्री राम जी ! आपके बिना संसार के सभी सुख नित्य ही दुख–कूप के समान हैं, अब आपके दर्शन से सभी की सुख–प्रदायक, सुन्दर शान्ति से युक्त, सघन अभिलाषायें पूर्ण हुई हैं।

सुनि सकुचाइ नाइ शिर रामा । गवने आशिष पाइ ललामा ॥
तब बशिष्ठ भरतहिं बुलवाये । आय गुरुहिं निज शीश झुकाये ॥

अपने श्री गुरुदेव जी के इस प्रकार वचनों को श्रवण कर श्री राम जी महाराज संकुचित हो गये तथा शिर झुकाकर प्रणाम किये एवं सुन्दर आशीर्वाद प्राप्त कर प्रस्थान कर गये। तदनन्तर आचार्य श्रेष्ठ श्री बसिष्ठ जी ने श्री भरत जी को बुलवाया तथा श्री भरत जी आकर श्री गुरुदेव जी के चरणों में सिर झुका प्रणाम किये।

दो0– लहि आशिष बैठे भरत, मनहु दीनता रूप ।
सजल नयन मुख नाम प्रभु, हिय सिय राम अनूप ॥१०८॥

पूज्य श्री गुरुदेव जी का आशीर्वाद प्राप्त कर श्री भरत जी इस प्रकार बैठ गये मानों वे दैन्यता की प्रतिमूर्ति हों। उस समय उनके नेत्रों में अश्रु, मुख में प्रभु श्री राम जी का पावन नाम तथा हृदय में अनुपमेय श्री सीताराम जी की कमनीय छबि विराज रही थी।

बोले मुनि सुनु भरत सुजाना । कीजै कहा सो करहु बखाना ॥
भरत कहा पूछहिं मोहि नाथा । सो सब मम अभाग फल साथा ॥

सर्वज्ञ मुनिवर श्री बशिष्ठ जी ने कहा– हे प्रज्ञ, श्री भरत जी! सुनिये, अब आप कहिये कि–

क्या किया जाय? श्री गुरुदेव जी के वचनों को सुनकर श्री भरत जी ने दुख–पूर्वक कहा– हे नाथ! यह आप जो मुझसे, पूछ रहे हैं, वह सभी मेरे दुर्भाग्य का ही फल है।–––

आपन भलो आप सो अधिका। जानहुँ नहीं काह लहि सधिका॥
ताते राउर मम हित ताकी। उचित होय तस करहिं हिया की॥

–––मैं अपना हित आपसे अधिक नहीं जानता तथा मुझे यह भी ज्ञान नही है कि– क्या? प्राप्त कर, मेरा कार्य सिद्ध होगा। इसलिए मेरे हित को देखते हुए आप वही कीजिये जो आपके हृदय में मेरे लिए उचित हो।–––

हिय गति जानहिं मम सब भाँती। बाहर भीतर दिन अरु राती॥
जस प्रतीति मोरे मन होई। कहहुँ सुनहिं कीजै प्रभु जोई॥

–––यद्यपि आप मेरे हृदय की बाह्याभ्यन्तर, दिन और रात्रि सभी प्रकार की गति–विधियों को भली प्रकार जानते हैं, तथापि हे नाथ! मेरे हृदय में जिस प्रकार प्रतीति हो रही है, उसे निवेदन कर रहा हूँ आप श्रवण कर लीजिए, अनन्तर चाहे जो कीजिएगा।

बिनु सिय राम मोहिं सब सूना। चारहुँ फल देवहिं दुख दूना॥
राम विमुख जीवन नहिं रहिहैं। प्राण निसरि यमलोक सिधहिहैं॥

श्री सीता राम जी के बिना मुझे सभी कुछ सूना लगता है तथा चारों फल (अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष) भी दुगने दुख देने वाले प्रतीत होते हैं। श्री राम जी महाराज से विमुख होकर यह मेरा जीवन नहीं रहेगा, मेरे प्राण शरीर से निकल कर यमलोक प्रस्थान कर जायेंगे।

दो0–जो नहिं होतो जन्म प्रभु, मातु कैकई मोर।
केहिं हित माँगति राज पद, प्रभु वन गवन कठोर॥१०९॥

हे नाथ! यदि मेरा जन्म ही, श्री कैकई माता की कोंख से न हुआ होता, तब वह प्रभु श्री राम जी के लिए कठोर वन–गवन व अयोध्या का राज्य–पद किसके लिये मांगती।

ताते जानहिं मुनि सत भाऊ। मोर जनम रघुवर दुख दाऊ॥
विश्व प्राण सिय राम सुहाये। बिनु पद त्राण फिरहिं बन धाये॥

अतएव हे मुनिराज! आप सत्य जान लीजिए कि– मेरा जन्म ही, श्री राम जी महाराज को दुख देने के लिए हुआ है। सम्पूर्ण विश्व के प्राण, परम सुशोभन श्री सीताराम जी, जंगल में बिना चरण रक्षिका पाँवरियों के भटकते फिर रहे हैं –––

सो सुधि बनवति मोहि विहाला। दुखमय हृदय गड़ति जिमि भाला॥
फिरिहहिं राम आस करि प्राणा। अब तक बसैं तनहिं दुख साना॥

–––वह दुखमयी स्मृति मुझे विह्वल बना रही है तथा मेरे हृदय में भाले के समान चुभी हुई हैं। श्री राम जी महाराज वापस हो जायेंगे इसी आशा से मेरे प्राण दुख में डूबे हुए भी, अब तक शरीर में रुके हुए हैं।–––

नाहित सुनि वन गवन कठोरा । जावत विदरि हृदय सत मोरा ॥
परम दुखी अति दीन अभागी । जानि कृपा कीजै अनुरागी ॥

–––नहीं तो निश्चय ही, श्री राम जी महाराज का कठोर वन–गवन सुनते ही मेरा हृदय विदीर्ण हो गया होता। अतः मुझे महान दुखी, अत्यन्त दीन और भाग्यहीन समझ कर आप, मुझ पर अनुराग पूर्वक कृपा कीजिये।

इतना कहत भरत अनुरागे । मुरछि परे भुँइ रोवन लागे ॥
गुरु उठाय भरतहिं हिय लाई। समुझावत मृदु वचन सुहाई ॥

इतना कहते ही, श्री भरत जी प्रेम के वशीभूत हो, मूर्छित होकर भूमि में गिर पड़े तथा रुदन करने लगे। तब गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी ने श्री भरत जी को उठाकर हृदय से लगा लिया और कोमल व सुन्दर वचनों से उन्हें समझाया।

दो0– भरत हृदय शोकित भयो, विलपत गुरु पद माहिं ।
समुझाये समुझत नहीं, विरह सिन्धु अवगाहिं ॥११०॥

उस समय श्री भरत जी का हृदय शोक से व्याकुल हो गया था, वे श्री गुरुदेव जी के चरणों में पड़े हुए विलाप कर रहे थे और समझाने पर भी न समझ कर, प्रभु वियोग के महा सागर में अवगाहन कर रहे थे।

बहु विधि करि गुरुवर उपचारा। भरतहिं धीर बँधाय सम्हारा ॥
गवने आप जहाँ मिथिलेशू । देखि उठे मन हरष नरेशू ॥

पुनः गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी ने विविध प्रकार के उपचार द्वारा श्री भरत जी को धैर्य धारण कराकर, सम्हाल दिया और आप श्री मिथिलेश जी महाराज के समीप प्रस्थान किये। रघुकुल आचार्य श्री बशिष्ठ जी को देखते ही श्री जनक जी महाराज हर्षित मन उठ खड़े हुए।

करि प्रणाम आसन पधराये । पूजि यथा विधि समय सुभाये ॥
बोले जनक नाथ केहि हेतू । आये सम्प्रति मोर निकेतू ॥

गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी को प्रणाम कर आसन में विराज, समयानुसार यथा–रीति पूजन कर श्री जनक जी महाराज ने कहा– हे नाथ! इस समय किस कारण आप स्वयं चलकर मेरी तृणशाला में पधारे हैं।

मोकहँ बोलि पठावत नाथा। जाय नवौत्यों तव पद माथा ॥
कह बसिष्ठ सुनियहिं महिपाला । जेहिं हित आयों मैं यहि काला ॥

हे नाथ! आप मुझे ही बुलवा भेजते, तो मैं स्वयं श्री चरणों में दण्डवत करने हेतु उपस्थित हो जाता। श्री जनक जी महाराज के वचनों को श्रवण कर श्री बशिष्ठ जी ने कहा हे राजन! इस समय, मैं जिस प्रयोजन हेतु आया हूँ, सुनिये–––

शील सकुच निधि राम पियारे । अति विनीत मृदु भाव धियारे ॥
धर्मरूप व्रत सत्य कृपाला । सत्यरूप शरणागत पाला ॥

———हमारे प्रिय श्री राम जी, जो शील और संकोच की निधि, अपने हृदय में अतिशय विनय पूर्ण कोमल भावों को धारण किये हुए, धर्म विग्रह, सत्यव्रती, परम कृपालु, सत्य–स्वरूप व शरणागत जीवों का प्रतिपालन करने वाले हैं।———

दो0– दुहुँ समाज संकोच वश, कहि न सकत कछु राम ।
मन महँ सहत कलेश पुनि, भरत सोच अठयाम ॥१११॥

———वे श्री राम जी दोनों (श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी) समाज के संकोच के कारण कुछ नहीं कह पा रहे जिससे उन्हें अत्यन्त क्लेश सहन करना पड़ रहा है। पुनः श्री भरत जी की चिन्ता उन्हें आठोयाम बनी रहती है।

कीजै ताते अवशि उपाई । संकट शोच सबहिं कर जाई ॥
कह कर जोरि जनक मृदु बानी । भाव विवेक भक्ति रस सानी ॥

इसलिए आप अवश्य ही ऐसा उपाय कीजिये जिससे सभी के दुख और चिन्ता का निवारण हो जाय। श्री बशिष्ठ जी के वचनों को सुनकर भाव, ज्ञान, भक्ति एवं आनन्द (रस) से सनी हुई कोमल वाणी से श्री जनक जी महाराज ने कहा–

राउर आयसु श्रुति अनुसारी । सम्मत संत नित्य अविकारी ॥
सब कहँ पालनीय प्रिय होई । संकट सोच मिटावन सोई ॥

हे नाथ! आपकी आज्ञा, श्रुतियों से सम्मत , सन्तों से अनुमोदित व नित्य निर्दोष है। वही सभी को प्रिय एवं पालन करने योग्य है तथा वही सभी के दुख और चिन्ता का विनाश करने वाली सिद्ध होगी।———

मैं का कहौं सूझ नहिं मोहीं । राम भरत हिय गति अति सोहीं ॥
गहि न जाय अति किये उपाऊ । विधि हरि हरहुँ शेष गणराऊ ॥

———मैं क्या कहूँ ? मुझे तो कुछ समझ ही नहीं पड़ता। श्री राम जी महाराज एवं श्री भरत जी के हृदय की अत्यन्त सुन्दर स्थिति को तो श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शंकर जी, श्री शेष जी और श्री गणेश जी से विविध उपाय करने पर भी जानी नहीं जा सकती।

निज हिय समुझि कहौं मैं एकी । अहहिं नाथ हिय परम विवेकी ॥
राज धर्म धुर नीति निधाना । जानहिं तीन काल गति ज्ञाना ॥

परन्तु मैं अपने हृदय में विचार कर एक बात कह रहा हूँ कि– नाथ तो परम ज्ञान सम्पन्न हृदय वाले, राज्य–धर्म की धुरी, नीति के निधान और तीनों कालों (भूत,भविष्य व वर्तमान) की स्थिति का ज्ञान रखने वाले हैं।

दो0– मिथिला अवध समाज सब, जुरहिं छोट बड़ ठौर ।
सत्य सभा मुख शुचि सुखद, निर्णय करहिं निचोर ॥११२॥

श्री मिथिलापुरी एवं श्री अयोध्यापुरी के समाज के सभी छोटे–बड़े सदस्य एक स्थान में एकत्रित हों और वहाँ सभा मुख से विचार कर आप पवित्र, सुखप्रद व सत्य निर्णय कर दें।

राम भरत दोउ दशरथ वारे । करहिं सुशोभित सभा सुखारे ॥
कहि कहि निज निज हिय उद्गारा । निश्चय करहिं दोउ सुख सारा ॥

दोनों चक्रवर्ती कुमार श्री राम जी महाराज और श्री भरत जी उस सभा को सुखपूर्वक सुशोभित करें तथा सुखों के सार वे दोनों अपने–अपने हृदय के भावों को प्रगट कर करणीय कृत्यों का विनिश्चय कर लें।

सुनहिं समाज दोउ हिय भावा । भक्ति ज्ञान मय कर्म सुहावा ॥
रखिहैं राम भरत रुचि नाथा । राखि राम रुख भरत सनाथा ॥

उस समय दोनों कुमारों के हृदय के सुन्दर भक्ति, ज्ञान एवं कर्म से परिपूर्ण भावों को सम्पूर्ण समाज श्रवण करे। हे नाथ! मुझे तो यही प्रतीति है कि– श्री राम जी महाराज, श्री भरत जी की रुचि रखेंगे तथा श्री भरत जी, श्री राम जी महाराज की इच्छा को स्वीकार कर सनाथ हो जायेंगे।

अन्य पुरुष की गम तहँ नाहीं । धोखेहु लहै न तिन गति छाहीं ॥
शरणागत प्रिय भरत सुजाना । तिन रुचि राखब धर्म महाना ॥

वहाँ किसी अन्य पुरुष की सामर्थ्य नहीं है क्योंकि कोई धोखे से भी उनके अवस्था की छाया तक नहीं पा सकता। सर्वज्ञ श्री भरत जी तो श्री राम जी महाराज के प्रिय शरणागत हैं अतः उनकी इच्छा को पूर्ण करना श्री राम जी का महान धर्म है।

बन महँ रहन राम रुचि जानी । हठ कीने भरतहिं हित हानी ॥
स्वामी सेवक भाव अपारा । तिन बिन को करि सक निरुआरा ॥

परन्तु श्री राम जी महाराज की वन में रहने की इच्छा को जानकर भी हठ करना श्री भरत जी के हित के लिए हानिकारक है। वे दोनों स्वामी और सेवक श्री राम जी महाराज व श्री भरत जी असीमित भाव सम्पन्न हैं अतएव उनके अतिरिक्त अब कोई भी निर्णय नहीं कर सकता।

दो0– काह कहैं दोउ बीच महँ, निज मति केर बिचार ।
अरुझी सब सुरझी तुरत, दूनहु बुद्धि अगार ॥११३॥

उन दोनों नृपति कुमारों के मध्य, अपनी बुद्धि के विचारों को कोई क्या कह सकता है ? परन्तु सभी उलझने शीघ्र सुलझ जायेंगी क्योंकि वे दोनों ही बुद्धि के धाम हैं।

की राउर सब भाँति समर्था । तव मुख सुनि दोउ बात यथर्था ॥
मनिहैं सब विधि सादर साईं । मोहि नहिं सूझै अवर उपाई ॥

अथवा आप श्री सभी प्रकार से सामर्थ्यवान हैं, हे नाथ! आपके मुख से दोनों कुमार यथार्थ

तथ्य को श्रवण कर, आदर पूर्वक सभी प्रकार से स्वीकार कर लेंगे। इसके अतिरिक्त मुझे दूसरा उपाय नहीं समझ आता।

मुनिवर कहेउ उचित नृप भाषा। मोर बिचार बढ़ेउ लहि शाखा॥
अहैं सूक्ष्म दर्शी निमि राऊ। कस न कहहिं यह उचित उपाऊ॥

श्री जनक जी महाराज के वचनों को श्रवण कर मुनि श्रेष्ठ श्री बशिष्ठ जी ने कहा– श्री महाराज ने उचित ही कहा है, आपके विचारों की शाखा को प्राप्त कर, मेरी विचार–लता वृद्धि को प्राप्त हो गयी है। हे निमिराज श्री जनक जी! आप तो सूक्ष्म–दृष्टा है, यह उचित उपाय आप क्यों न कहें।

अस कहि मुनि निज वासहिं आये। राम भरत गति लखत सुभाये॥
तबहिं भरत पहुँचे नृप वासा। जनकहिं कीन्ह प्रणाम प्रकाशा॥

ऐसा कहकर मुनिराज श्री बशिष्ठ जी श्री राम जी महाराज एवं भरत जी की सुन्दर स्थितियों का विचिन्तन करते हुए अपने वास–स्थल आ गये। तभी श्री भरत जी श्री जनक जी महाराज के निवास स्थल आये और श्री जनक जी महाराज को प्रणाम किये।

नृपति लिये निज हृदय लगाई। सूँघि शीश पुलकावलि छाई॥
बैठे भरत बहत जल नैना। बोलि न आवे कछु मुख बैना॥

श्री जनक जी महाराज ने पुलकित होकर उन्हें अपने हृदय से लगा लिया व उनका शिरोघ्राण किया। पुनः आँसू बहाते हुए श्री भरत जी बैठ गये उनके मुख से आवाज नहीं निकल रही थी (उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया था)।

दो0–कछुक काल धीरज धरेउ, सकुच हिये नत शीश।
बोलेउ कर सों महि लिखत, प्रभु पद प्रेम नदीश॥११४॥

कुछ समयोपरान्त धैर्य धारण कर संकुचित हृदय, शिर झुकाकर, प्रभु श्री राम जी के चरणों के प्रेम रूपी महासागर श्री भरत जी अपने हाथ से भूमि में लिखते हुए बोले–––

मैं अपराधी केहिं गोहराऊँ। काकहँ निज जिय जरनि बताऊँ॥
मोहिं लखि दुखी सहायहिं कीजै। हृदय शांति सुठि सुखप्रद दीजै॥

हे श्री मिथिलेश जी महाराज! महान अपराधी 'मैं' किसे पुकारूँ व अपने हृदय की जलन को किसे बताऊँ ? अतः मुझे दुखी देखकर, आप मेरी सहायता कीजिए और मेरे हृदय में सुन्दर सुख–प्रदायी शान्ति प्रदान करिये।

सीय राम सुख सत सब भाँती। देखन चहौं गनत गुन पाँती॥
हाय हाय मम कुटिल कुकर्मा। प्रभु पद बिमुख कीन्ह बेधर्मा॥

श्री सीताराम जी की गुण–गणावली का चिन्तन करता हुआ, मैं, सत्य–सत्य सभी प्रकार से उनका सुख ही, देखना चाहता हूँ। किन्तु हाय, हाय! मेरे अप्रिय दुष्कर्मो ने मुझे प्रभु चरणों से बिमुखी

और अधर्मी बना दिया है।

राम भ्रात सिय देवर होई। सुनि वन गवन जियौं बिच लोई ॥
बदन दिखावत लाज न लागी। प्रभु वन बसहिं जासु हित त्यागी ॥

श्री राम जी महाराज का अनुज और श्री सीता जू का देवर होकर, उनके वन–गवन को सुनकर भी, मैं जन–समाज के बीच जीवन धारण किये हूँ। जिसके कारण प्रभु श्री राम जी महाराज अपना सर्वस्व त्याग कर वन में निवास कर रहे हैं, उस मुझ अधम को अपना मुख दिखाने में लज्जा भी नहीं लगती।

परम अभागी अशुभ शिरोमणि। कत जग जयो विमुख रघुकुल मणि ॥
अस कहि भरत विरह रस पागे। विकल परे भुइँ रोवन लागे ॥

अपने स्वामी रघुवंश विभूषण श्री राम जी महाराज का विमुखी, अतिशय भाग्यहीन एवं समस्त अमंगलो का शिरमौर मैं इस संसार में जन्म ही क्यों धारण किया था ? ऐसा कहकर श्री भरत जी प्रभु–विरह–रस में डूबकर व्याकुल हो भूमि में गिर पड़े तथा रुदन करने लगे।

दो0– बार बार दुलराय नृप, हृदय बँधावत धीर ।
भरत लहे चित चेत कछु, कम्पत सुभग शरीर ॥११५॥

उस समय, श्री भरत जी का बारम्बार दुलार करते हुए, श्री जनक जी महाराज ने उन्हे हृदय में धैर्य बँधाया तब श्री भरत जी ने हृदय में किंचित चैतन्यता प्राप्त की, परन्तु उनका सुन्दर शरीर अभी भी कम्पित हो रहा था।

जनक कहेउ सुनु भरत अमाई। रघुवर प्राण अहौ सुखदायी ॥
निज सुख शान्ति सुमंगल मूला। पइहौ नित्य राम अनुकूला ॥

श्री जनक जी महाराज ने कहा– हे निश्छल हृदय, राज कुमार भरत जी ! सुनिये, आप तो श्री राम जी महाराज के प्राण व सुख–प्रदायक हैं, आप नित्य ही अपने सुख–शान्ति और सुमंगलों की मूल, श्री राम जी महाराज की अनुकूलता प्राप्त करेंगे।–––

जो सब भयो राम की लीला। अस विचार दुख तजहु सुशीला ॥
श्वसुर बचन सुनि कछुक जुड़ाई। भरत लहेउ कछु धीरज भाई ॥

–––हे सुशील, कुमार भरत जी! यह जो कुछ भी हुआ है, वह सब श्री राम जी महाराज की लीला है, ऐसा विचार कर आप दुख का त्याग कीजिये। अपने श्वसुर श्री मान् विदेह राज जी महाराज के वचनों को श्रवणकर श्री भरत जी का हृदय किंचित शीतल हुआ और वे कुछ धैर्य धारण किये।

राम सिया हिय धारि गँभीरा। करि प्रणाम जनकहिं मति धीरा ॥
कुँअरहिं मिले राम प्रिय भाये। बहुरि सुनैना के ढिंग आये ॥

अनन्तर परम धीर–बुद्धि श्री भरत जी अपने हृदय में श्री सीताराम जी को धारण किये हुए,

श्री जनक जी महाराज को प्रणाम कर गंभीर मुद्रा युक्त हो, श्री राम जी महाराज के प्रिय श्याल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से मिले तदुपरान्त वे श्री सुनैना अम्बा जी के समीप गये।

सिद्धिहिं मिलि पुनि भरत वियोगी। गये वास जहँ अवध सुलोगी ॥
जनकहुँ गे जहँ रघुकुल नाथा । देखि उठे प्रभु अति प्रिय गाथा ॥
करत प्रणाम जनक हिय लाये । शीश सूँघि लोचन जल छाये ॥

पुनः प्रभु वियोग में अधीर हुए श्री भरत जी श्रीमती सिद्धि कुँअरि जी से मिलकर अपने निवास आ गये जहाँ श्री अयोध्या पुरी का समाज था। तदनन्तर श्री जनक जी महाराज उस पर्णशाला में गये, जहाँ रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज विद्यमान थे। श्री जनक जी महाराज को देखते ही परम स्तुत्य व उदात्त चरित्र, श्री राम जी महाराज अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा से उठ खड़े हुए तथा श्री जनक जी महाराज को प्रणाम किये। श्री राम जी महाराज को प्रणाम करते हुए देखकर श्री जनक जी महाराज ने उन्हे हृदय से लगा लिया और उनका शिरोघ्राण किया, उस समय उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आये।

दो0– समय सुआसन बैठि पुनि, भरत जरनि जिय पीर ।
कहत राम सन विलखि नृप, पगे प्रेम रस धीर ॥११६॥

पुनः समयानुकूल सुन्दर आसन में बैठकर प्रेम–रस में पगे हुए परम धैर्यवान श्री जनक जी महाराज विलखते हुए, श्री राम जी महाराज से श्री भरत जी के हृदय की जलनि व पीड़ा को बखान किये।

रामहुँ मगन भरत प्रिय प्रेमा । भूले सब सुधि अरु सब नेमा ॥
धरि बड़ धीर राम नय शाली । बोले वचन प्रेम रस पाली ॥

जिसे श्रवण कर श्री राम जी महाराज भी, श्री भरत जी के प्रिय प्रेम में अपनी सभी स्मृति और सभी प्रकार के नियम भूल गये। पुनः परम नीतिवान श्री राम जी महाराज धैर्य धारण कर प्रेमरस से सिंचित वाणी का विसर्ग किये–

भरत रुची बिन रंचहुँ राजा । होइय मोर न कवनहुँ काजा ॥
मोरे पितु प्रभु गुरु सम राया । मैं निशोच तव पाय सहाया ॥

हे श्री महाराज! श्री भरत जी की इच्छा के बिना मेरा कोई भी, कार्य किंचित सम्भव नहीं हो सकता। पुनः मेरे लिए तो आपश्री, श्री मान् पिता जी, स्वामी और श्री गुरुदेव जी के समान हैं। अतः आपकी सहायता पाकर मैं सभी प्रकार से निश्चिन्त हूँ।–––

पितु परधाम आप पर छोरी । गये निशंक प्रीति पगि मोरी ॥
भाइन सह पुर केर अधारा । राउर करिहैं सकल सम्हारा ॥

–––हमारे श्री मान् पिता जी, मुझे आप के सहारे छोड़कर, निश्चिन्त हो, मेरी प्रीति में पगे हुये, परम–धाम को पधार गये हैं। अतः श्री अयोध्यापुरी और भाइयों के सहित मेरे आधार आप श्री ही हैं, अब हमारी सम्पूर्ण देख–रेख आप ही करेंगे।–––

मो कहँ जस कछु आयसु होई। करिहौं सदा लेहि जिय जोई ॥
अस विचारि सब संशय मेटी । देवैं सब कहँ शान्ति समेटी ॥

———आप अपने हृदय में समझ लीजिए कि– मेरे लिए आपकी जैसी आज्ञा होगी मैं सदा वही करूँगा। ऐसा विचार कर आप अपने सभी सन्देहों को मिटा दीजिये तथा सभी समाज को एकत्रित कर, निर्णय दे, शान्ति प्रदान कीजिये।

दो0–राम बचन सुनि जनक जिय, बाढ्यो प्रेम प्रवाह ।
शिथिल अंग तन स्वेद बह, निकसत भरि मुख आह ॥११७॥

श्री राम जी महाराज के वचनों को सुनकर श्री जनक जी महाराज के हृदय में प्रेम का प्रवेग विवर्धित हो गया, शरीर स्वेद युक्त व शिथिल पड़ गया तथा मुख से आहें (दीर्घ निःश्वास) निकलने लगीं।

धरि बड़ धीर भाव रस सानी । बोले जनक सुभाव सुबानी ॥
सुनहु राम तव मृदुल सुभाऊ। वरणहिं वेद संत भरि भाऊ ॥

पुनः अत्यन्त धैर्य धारण कर, भाव–रस में निमग्न हो, श्री जनक जी महाराज, सहज ही सुन्दर वाणी का विनियोग करते हुए बोले– हे रघुनन्दन श्री राम जी! सुनिये, आपके कोमल स्वभाव का वर्णन वेद और संतजन भाव परिपूर्ण हो किया करते हैं।———

कहतहुँ नित नहिं होत अघाई । पर हित सने सरस सुखदाई ॥
पाइ तुमहिं मैं सब विधि पूरा । भयो भाग भाजन सुख मूरा ॥

———परन्तु बखान करते हुए भी वे तृप्ति नहीं प्राप्त करते। हे श्री राम जी! दूसरों के हित में सने हुए, रस से परिपूर्ण तथा सुखप्रदायक आपको पाकर मैं सभी प्रकार से पूर्ण सौभाग्य का पात्र तथा सुखों का मूल हो गया हूँ।

तुम्हरे हृदय मोर नित थाना । जानहुँ नीके राम सुजाना ॥
जनहिं देहु तुम विपुल बड़ाई । लखि ब्रह्मादिक देव सिहाई ॥

———हे सर्वज्ञ श्री राम जी महाराज! आपके हृदय में मेरे लिए नित्य ही आदर पूर्ण स्थान है, यह बात मैं भली प्रकार जानता हूँ। आप अपने जनों को महान बड़ाई प्रदान करते हैं जिसे देखकर श्री ब्रह्मा जी आदि देवता भी उनसे स्पृहा करते हैं।

सनहु तात मम हृदय प्रतीती । होइय सो जेहिं महँ तव प्रीती ॥
जो विधि सब जग सिरजन हारा । सोउ तव रुचि नहि मेटन हारा ॥

हे तात् रघुनन्दन! सुनिये, मेरे हृदय में पूर्ण विश्वास है कि– होना वही है जिसमें आपकी प्रीति होगी। क्योंकि सम्पूर्ण विश्व के सृजन–कर्ता श्री ब्रह्मा जी में भी आपकी इच्छा को मिटाने की सामर्थ्य नहीं है।

दो0– अति आरति अति दीनता, देखि भरत की राम ।
तुमहिं सुनायो प्रेम वश, प्रभु जग अन्तर धाम ॥११८॥

हे श्री राम जी महाराज! मैंने श्री भरत जी की अत्यन्त आर्ति–पूर्ण (छटपटाहट से भरी हुई) महान दीनता को देखकर ही, उनके प्रेम के विवश हो, आपको उनकी स्थिति सुनायी है, अन्यथा प्रभु आप तो स्वयं ही सम्पूर्ण संसार के हृदय में निवास करने वाले हैं।

अस कहि जनक थलहिं पगु धारे । वरणत राम स्वभाव हियारे ॥
सोउ वासर बीतेउ हनुमाना । दुतिय दिवस सब करि स्नाना ॥

ऐसा कहकर श्री जनक जी महाराज अपने हृदय में श्री राम जी महाराज के स्वभाव का बखान(स्मरण) करते हुए अपने निवास स्थल चले गये। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा–हे श्री हनुमान जी! इस प्रकार वह दिन भी व्यतीत हो गया। पुनः दूसरे दिन सभी–जन स्नानोपरान्त–––

नित्य नेम सब सूक्ष्म निबाही । बैठे जाय सभा थल माहीं ॥
भ्रातन सह श्री राम उदारा । मुनिन समेत वशिष्ठ भुआरा ॥

–––नित्य नियमों का सूक्ष्म निर्वाह कर सभा स्थल में जाकर बैठ गये। अपने भ्राताओं सहित परम उदार श्री राम जी महाराज, रघुकुल आचार्य श्री बशिष्ठ जी आदि मुनियों सहित श्री जनक जी महाराज भी सभा स्थल में विराज गये।

मिथिला अवध समाज विराजी । मध्य मुनीश तेज रवि भ्राजी ॥
सबके हृदय यहै अभिलाषा। लौटहिं राम छोड़ि बन वासा ॥

वहाँ श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी के सम्पूर्ण समाज के मध्य, सूर्य के समाज तेज से युक्त तपोधन श्री बशिष्ठ जी महाराज सुशोभित हो रहे थे। उस समय सभी के हृदय में एकमात्र यही प्रबल इच्छा थी कि– श्री राम जी महाराज वनवास का त्याग कर श्री अयोध्यापुरी लौट चलें।

गुरु निदेश देवहिं हरषाई। फिरहिं लखन सिय श्री रघुराई ॥
सब कर हित यहि माहिं जनाई । राज छत्र प्रभु लेहिं धराई ॥

–––श्री गुरुदेव बसिष्ठ जी हर्षित होकर आज्ञा प्रदान कर दें और श्री लक्ष्मण कुमार तथा श्री सीताजी के सहित श्री रामजी महाराज वापस हो, श्री अयोध्यापुरी चलें। सभी का हित इसी में समझ आ रहा था कि– प्रभु श्रीराम जी महाराज अपने शिर पर श्री अयोध्यापुरी का राज्य छत्र धारण करा लें।–––

दो0– फिरिहहिं नहिं जो राम सिय, छोड़ि असन जल पान ।
शरणागत आसन सबहिं, बैठहिं सत व्रत ठान ॥११९॥

–––यदि श्री सीताराम जी अयोध्या पुरी वापस नहीं होते तो, भोजन और जल–पान छोड़कर हम सभी सत्य–व्रत का अनुष्ठान करते हुए शरणागत के आसन में बैठ जायेंगे।

गुरु बशिष्ठ अरु जनक भुआरा । यागबल्क सह मुनि परिवारा ॥
देखहिं आज करहिं सब काहा । गुनहिं नारि नर बात उमाहा ॥

गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी तथा श्री जनक जी महाराज और सभी मुनियों के सहित परम ज्ञानवान श्री याज्ञबल्क्य जी आज क्या निर्णय करते हैं, सभी लोग देखें। इस प्रकार का विचार आनन्द पूर्वक सभी स्त्री–पुरुष मन में कर रहे थे।

कृश शरीर नयनन भरि आँसू। जनु बहु रूप दीनता भाषू ॥
भरत सजल दृग दुहुँ कर जोरे। शिर नत किये विरह रस बोरे ॥

इस प्रकार वे सभी दुर्बल (कृश) शरीर व आँखों में आँसू भरे हुए, ऐसे बैठे हुये थे जैसे कई रूपों से दीनता ही प्रतिभाषित हो रही हो। अनन्तर अश्रुपूरित नेत्रों से, दोनों हाथ जोड, शिर झुकाए, विरह रस में डूबे हुए श्री भरत जी –––

रघुवर सन्मुख बैठे आई। दीनासन गुनि प्रभु प्रभुताई ॥
देखि भरत गति प्रेम स्वरूपी। प्रपति रूप सब भाँति अनूपी ॥

–––प्रभु श्री राम जी महाराज के सामने आकर उनकी महानता का स्मरण करते हुए दीन भाव से बैठ गये। श्री भरत जी की प्रेममयी व सभी प्रकार से शरणागति–धर्म के अनुकूल अनुपमेय स्थिति को देखकर,–––

सोचहिं सुर गुनि राम सुभाऊ। शरणागत रक्षक रघुराऊ ॥
सदा प्रेम वश भक्त अधीना। शील संकोच उदार प्रवीना ॥

–––देव–गण श्री राम जी महाराज के स्वभाव का स्मरण कर विचार रहे थे कि– श्री राम जी महाराज तो शरणागत रक्षक, सदैव प्रेम के वशीभूत, शील, संकोच व उदारता आदि गुणों से सम्पन्न, परम प्रवीण तथा भक्तों के आधीन रहने वाले हैं।

दो0– भरत केर रुचि राखि प्रभु, जो जैहैं निज धाम ।
होइय सुर कारज कहा, लहिय न भूमि अराम ॥१२०॥

प्रभु श्री राम जी महाराज यदि श्री भरत जी की इच्छा का सम्मान कर, अपने धाम श्री अयोध्यापुरी वापस चले जायेंगे तो देवताओं का कार्य किस प्रकार पूर्ण होगा और श्री भू देवी विश्रान्ति नहीं प्राप्त कर सकेगी।

राम रजाय सिद्ध हिय मानी। सुमिरहिं रामहिं सुर हित सानी ॥
भरत प्रेम लखि बारम्बारा। भाव दीनता प्रपति उदारा ॥

अब श्री राम जी महाराज की आज्ञा ही हमे पूर्णकाम करने वाली है, ऐसा सभी देवता अपने हृदय में विचार कर, अपने हितों में सने हुए, श्री राम जी महाराज का स्मरण करने लगे। परन्तु श्री भरत जी के प्रेम, भाव, दीनता, शरणागति और उदारता को बारम्बार देख–देखकर,–––

भूले स्वारथ देह विभोरी। भरत प्रेम छाया रस बोरी॥
लगे सराहन भरतहिं देवा। वर्षहिं सुमन करत शुचि सेवा॥

———वे सभी देवता श्री भरत जी के प्रेम के रसाभास में सराबोर हो, विभोर होकर अपने स्वार्थ को भूल गये तथा श्री भरत जी की प्रशंसा करते हुए पुष्पों की वर्षा कर, उनकी पवित्र सेवा करने लगे।

जय जयकार भरत की करहीं। सुनि सब लोग हृदय सुख भरहीं॥
त्रिकरण चहैं भरत की नीकी। कहहिं फलहिं सब आस सुहीकी॥

देवगण श्री भरत जी की जय जयकार करते हैं जिसे सुनकर सभी, हृदय में सुख से परिपूर्ण हो रहे हैं। वे सभी देवता मन, वचन व कर्म से श्री भरत जी का मंगल ही चाहते हैं तथा कहते हैं कि— आपके हृदय की सभी अभिलाषायें फलवती हों।

भरत प्रेमवश एकहिं साथा। बोले सब सुर सुनु रघुनाथा॥
अन्तर्यामी प्रभु सब जानी। भाव कुभाव अलख गति ज्ञानी॥

श्री भरत जी के प्रेम के वशीभूत हो सभी देवता एक साथ बोल पड़े— हे रघुकुल के स्वामी प्रभु श्री राम राम जी महाराज! सुनिये, यद्यपि आप अन्तर्यामी हैं तथा बिना प्रगट किये हुए भी सभी के हृदय के भावों व कुभावों का यथा—स्थिति ज्ञान रखते हैं।———

दो0— तदपि मलिनता लोक की, दूरि करन के हेतु।
सबहिं सुनावत देव सब, तव आगे श्रुति सेतु॥१२१॥

———तथापि, हे श्रुतियों के सेतु श्री राम जी महाराज! इस संसार में श्री भरत के प्रति समुत्पन्न कालुष्य को दूर करने के लिए ही हम सभी देवता आपके आगे सभी को सुना कर कह रहे हैं।

छं0— धनि भरत तीनहु लोक महँ, तिन सम नहीं कोउ जग अहै।
प्रभु प्रेम सागर करि प्रगट, अण्डन डुबायो रस दहै॥
सुर नाग मुनि नर नारि सब, जग जड़ सुचेतन जीव जो।
नव नेह निरखे निज नयन, शक्ती अनूप अतीव जो॥

———श्री भरत जी, तीनों लोको में धन्य है, संसार में उनके समान कोई भी नहीं है। श्री भरत जी ने प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रेम का महासागर प्रगट कर, सभी ब्रह्माण्डों को उसमें डुबा दिया है और स्वयं भी उस रस में अवगाहन करते रहते हैं। इस संसार में देवता, नाग, मुनि, पुरुष, स्त्री आदि जो भी जड़ चेतनात्मक जीव हैं, उन सभी ने अपने नेत्रों से श्री भरत जी के माध्यम से आपके नवीन प्रेम का दर्शन किया है जो अनुपमेय शक्ति सम्पन्न और सर्व श्रेष्ठ है।

सब शोक त्यागहिं भरत भल, तोहि जग कही निर्दोष है।
नहिं नेक सम्मति जाहिं प्रभु, बन महँ सबै सुर घोष है॥
पुर राज ग्रहणहुँ आस नहिं, कह सत त्रिवाचा देव सब।
उर भाव जानहिं राम सब, हर्षण करत सोउ ध्यान तब॥

हे श्री भरत जी! आप सभी प्रकार से अपने शोक को त्याग दीजिये, आपको संसार के सभी लोग सर्वथा निर्दोष कहेंगे। हम सभी देवताओं का उद्‌घोष है कि– श्री राम जी महाराज के वन–गवन में आपकी किंचित भी सम्मति नहीं है। आपके हृदय में श्री अयोध्यापुरी का राज्य ग्रहण करने की भी अभिलाषा नहीं है यह सत्य बात हम सभी देवता त्रिवाचा (तीन बार) कह रहे हैं। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज वर्णन करते हैं कि– उस समय वे देवगण कह रहे थे, कि– हे श्री भरत जी! प्रभु श्री राम जी महाराज आपके हृदय के सभी भावों को भली प्रकार जानते हैं और आपका सदैव सप्रेम ध्यान करते हैं।

सो0–तजहु भरत सब सोच, राम सुग्राही भाव कर ।
मेटहु अपडर पोच, अभयद सीताराम वर ॥१२२॥

हे श्री भरत जी! आप सभी प्रकार की चिन्ताएँ त्याग दीजिए क्योंकि श्री राम जी महाराज भावों के सुन्दर ग्रहण कर्ता हैं। आप अपने हृदय से तुच्छ भय को मिटा दीजिए क्योंकि परम श्रेष्ठ श्री सीताराम जी सभी को अभय दान देने वाले हैं।———

कैकइ मिस सो भई कुचाली । पाइ सहाय मंथरा जाली ॥
सो प्रभु लीला शक्तिहिं केरी । लीला लीला हेतुहिं प्रेरी ॥

———श्री कैकई जी के बहाने से व मन्थरा के षडयंत्र की सहायता को पाकर जो अनुचित आचरण हुआ है, वह प्रभु श्री राम जी महाराज की लीला शक्ति की प्रेरणा से उनकी लीला कार्य सम्पादन हेतु की गयी लीला है।

लीलामय लीला रस ग्राही । लीला शक्तिहिं ते सुख लाही ॥
लीला महँ नित करहिं विहारा । सुख स्वरूप रसिकन सुखकारा ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज लीलामय, लीला स्वाद रसिक तथा लीला शक्ति के द्वारा ही आनन्द प्राप्त करने वाले हैं। सुख–स्वरूप व रसिक–जनों को सुखी करने वाले श्री राम जी महाराज नित्य ही लीला में विहार करते रहते हैं।

प्रेम पाठ पढ़ि परम प्रवीना । प्रभु लीला महँ अति सुख दीना ॥
लीला शक्ति पाठ जस देई । पढ़ब उचित तस सबहिं सुधेई ॥

हे परम सुजान श्री भरत जी! प्रभु श्री राम जी महाराज की लीला में आपने प्रेम का पाठ पढ़कर उन्हे महान सुख प्रदान किया है। क्योंकि 'लीला शक्ति' जिस प्रकार का पाठ देती है उसी प्रकार का पाठ ध्यानपूर्वक पढ़ना सभी के लिए उचित होता है।———

सो तुम दियो दिखाय सहर्षा । प्रेम वारि कर लोकहिं वर्षा ॥
आरत विनय दीनता तुम्हरी । उपमा स्वर्ण सुगंधहिं लहरी ॥

अतः आपने लीला शक्ति द्वारा प्राप्त उस पाठ को प्रसन्नता पूर्वक दिखाकर सम्पूर्ण संसार में 'प्रभु प्रेम जल' की वृष्टि कर दी है। पुनः उसमें आपकी आर्त्ति व विनय परिपूर्ण दैन्यता की उपमा स्वर्ण में सुगन्धि के सदृश प्रतीत होती है।

दो0– उचित पाठ तुम्हरो भरत, जग उद्धारन हार ।
प्रेम प्रदायक विरति कर, भक्तन पोषन वार ॥१२३॥

हे श्री भरत जी! आपका पाठ अत्यन्त उचित, संसारी जीवों का उद्धार करने वाला, प्रभु प्रेम प्रदान करने वाला, वैराग्य उत्पन्न करने वाला एवं भक्तजनों का पोषण करने वाला है।

तुम समान तुम भरत सुजाना । भक्ति ज्ञान वैराग्य निधाना ॥
मन गलानि त्यागहु तुम प्यारे । हौ श्री रघुवर प्राण अधारे ॥

हे परम प्राज्ञ श्री भरत जी! आप भक्ति, ज्ञान व वैराग्य के कोष हैं तथा आपके समान केवल आप ही हैं। आप अपने मन की ग्लानि को त्याग दीजिये क्योंकि आप तो रघुनन्दन श्री राम जी महाराज के प्राणाधार हैं।

अस कहि देव पुष्प झरि लाई । जय जय कहत भरत भल भाई ॥
देव गिरा सुनि सभा सुहरषी । भरत प्रेम वश दृग जल वरषी ॥

ऐसा कहकर देवता पुष्पों की अनवरत वर्षा करने लगे तथा परम सुशोभन भैया श्री भरत की जय–जयकार करने लगे। उस समय देवताओं की वाणी को श्रवण कर सम्पूर्ण सभा हर्षित हो गयी तथा श्री भरत जी के प्रेम के वशीभूत हो नेत्रों से अश्रुओं का विमोचन करने लगी।

सकुचि भरत नीचे शिर कीन्हे। जनु हिय गये समाय प्रवीने ॥
कह बशिष्ठ सुनु राम सुजाना। तुम सर्वज्ञ देव तरु बाना ॥

देवताओं के वचनों को श्रवण कर श्री भरत जी संकुचित हो शिर नीचे कर लिये मानों परम प्रवीण वे अपने हृदय में समाहित हो गये हों। तदनन्तर रघुकुल आचार्य श्री बशिष्ठ जी ने कहा– हे परम सुजान श्री राम जी महाराज! आप तो सभी कुछ जानने वाले तथा कल्पवृक्ष (मनो वांछित प्रदान करने वाले) के समान स्वभाव वाले हैं।

प्रणत पाल जानत जन प्रीती। भक्ति विवश सुख दानि अमीती ॥
निज रुचि कहहु होय का आजू। बैठी निश्चय करन समाजू ॥

आप अपने आश्रित जनों के प्रतिपालक, सेवकों की प्रीति को जानने वाले, भक्ति के वशीभूत तथा असीमित सुख प्रदान करने वाले हैं। आप, अपनी रुचि का बखान कीजिये कि आज क्या निर्णय हो? क्योंकि सम्पूर्ण समाज निश्चय करने हेतु बैठा हुआ है।

दो0– तुम समान रघुवीर तुम, सकल जीव सुख हेत ।
करि विचार कहि देहु अब, मन की पा निकेत ॥१२४॥

हे रघुकुल प्रवीर, कृपा के आगार श्री राम जी ! आपके समान तो केवल आप ही हैं, अतः सभी जीवों के सुख के लिए आप, अब विचार कर अपने मन की इच्छा प्रगट कर दीजिए।

सुनि गुरु बचन राम शिर नाई । बोले सकुचि सुभाव सुहाई ॥
सद्गुरुदेव सकल सुखकारी। स्वारथ रहित कृपालु अपारी ॥

रघुकुल आचार्य श्री बशिष्ठ जी के वचनों को श्रवण कर श्री राम जी महाराज ने उनके चरणों में शिर झुका प्रणाम किया तथा संकुचित हो बोले– हे श्री सदगुरुदेव भगवान! आप तो सभी को सुखी करने वाले, स्वार्थ–विहीन एवं असीमित कृपालु हैं।–––

भुक्ति मुक्ति सिधि निधि सब चेरी । जासु कृपा कर टहल घनेरी ॥
सो सुख दानि सुगुरु दिन राती । करिहैं भार सम्हार सुहाती ॥

–––जिनकी कृपा से सभी प्रकार के श्रुत व दृष्ट भोग, चतुर्विधा मोक्ष (सालोक्य, सायुज्य, सामीप्य व सादृश्य) आठों सिद्धियाँ (अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व व वशित्व) और नवों निधियाँ (पद्म, महा पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील व वर्च्च) दासी बनी हुई सभी प्रकार की सेवा करती रहती हैं, वे सुख प्रदायक श्री सद्गुरुदेव ही हमारी दिवा–रात्रि सुन्दर सार–सँभाल करेंगे।–––

पितु विहीन हम चारहु भाई । गुरु पद देखि दुखहिं बिसराई ॥
संशय शोक मोह भ्रम नाशी । जबहिं कृपा गुरु हियहिं प्रकाशी ॥

–––क्योंकि श्री मान् पिता जी से रहित हम चारो भाई श्री गुरुदेव जी के चरण कमलों को देखकर अपने सभी दुख भूल गये हैं। जीवों के सभी प्रकार के संदेह, दुख, मोह और भ्रम का नाश उसी समय हो जाता है जब जीव श्री गुरुदेव जी की कृपा का प्रकाश हृदय में प्राप्त करता है अर्थात् आचार्य शरणागति ग्रहण करता है।–––

सबहिं जानि प्रभु सेवक अपना । देहिं जगाय दूर करि सपना ॥
देवहिं आयसु सबहिन नाथा । होइहिं अवशि समाज सनाथा ॥

–––अतएव हे नाथ! आप हम सभी को अपना सेवक समझ, मोह रात्रि से जागृत कर शोक स्वरूप स्वप्न को दूर कर दें। हे स्वामिन्! आप सभी को अपनी आज्ञा प्रदान कीजिए, अवश्य ही सम्पूर्ण समाज सनाथ हो जायेगा।

दो0–सब विधि आयसु शिर धरिहिं, युग पुर सकल समाज ।
सुख सुशान्ति लहि मोद मन, खिलि सरसिज सम भ्राज ॥१२५॥

हे नाथ! दोनों पुरियों श्री अवध व श्री मिथिला का सम्पूर्ण समाज आपकी आज्ञा को सभी प्रकार से शिरो–धार्य कर, सुख, सुशान्ति और मन में आनन्द प्राप्त करते हुये खिले हुए कमल के समान सुशोभित हो जायेगा।

आयसु देहिं प्रथम मोहिं साईं । मोल लिये शुचि सेवक ताईं ॥
सब विधि आज्ञा निज शिर धारी । करिहौं सत्य त्रिवाच उचारी ॥

हे नाथ! आप, सर्व प्रथम मुझे अपने क्रय किये हुए पावन सेवक की भाँति आज्ञा प्रदान कीजिये, मैं आपकी आज्ञा सभी प्रकार से शिरोधार्य कर पालन करूँगा, यह मैं त्रिवाचा सत्य कह रहा हूँ।

सुनि मुनि पुलक नयन जल ढारे । राम भगति भाल भाव निहारे ॥
बोले गुरु सुनु राम सुजाना । धर्म सेतु आनन्द निधाना ॥

श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवण कर मुनिराज श्री बशिष्ठ जी पुलकित हो गये तथा श्री राम जी महाराज की भक्ति व सुन्दर भाव को देखकर आँखों से अश्रु बहाते हुए बोले– हे सुजान श्री राम जी ! सुनिये, आप तो धर्म के सेतु तथा आनन्द के निधान हैं।–––

निज स्वभाव मोहिं वस करि लीन्हें ।हौं तो सब विधि सरवस दीन्हे ॥
आज्ञा देन कहहु मोहिं प्यारे ।करि विवेक देखेंउ हिय हारे ॥

–––आपने अपने स्वभाव से मुझे वश में कर लिया है और मैंने भी आपको अपना सर्वस्व प्रदान कर दिया है। हे प्राण प्रिय व मेरे हृदय हार, राघव! आप मुझे आज्ञा देने हेतु कह रहे हैं, परन्तु मैंने ज्ञान पूर्वक, विचार कर देख लिया है कि– किसी प्रकार का निर्णय देने में मैं हृदय से हार गया हूँ।–––

भरत प्रीति मम ज्ञान डुबाई । बुद्धिहिं दीन्हेउ नाच नचाई ॥
निश्चय करन शक्ति नहिं मोरे। कहौं कछुक पुनि पूँछे तोरे ॥

–––पुनः श्री भरत जी के प्रेम ने मेरे ज्ञान को स्वयं में डुबाकर, मेरी बुद्धि को नचाते हुये अनिर्णय की स्थिति में पहुँचा दिया है। अतएव अब मुझमें निश्चय करने की शक्ति नहीं रही। तथापि आपके पूछने पर यत्किंचित कह रहा हूँ।–––

दो0–भरत विनय सुनि प्रेम युत, करि विचार रघुपाल ।
जस कछु कहिहै घटिहिं सब, होइहिं सबै निहाल ॥१२६॥

–––हे रघुकुल के पालक श्री राम जी ! आप श्री भरत जी की प्रार्थना को प्रेमपूर्वक श्रवण कीजिये तथा विचार कर आप जो कुछ भी कहेंगे, वैसा ही होगा। इस प्रकार आपकी आज्ञा पालन कर सभी कृतकृत्य हो जायेंगे।

जनक कहेउ गुरु सम्मति रामा। चाहिय अवशि करन मति धामा ॥
भरत प्रसन्न देखि सब कोऊ। रहिहैं अति प्रसन्न सुख मोऊ ॥

श्री बशिष्ठ जी के वचनों का समर्थन करते हुये, श्री जनक जी महाराज ने कहा– हे बुद्धि के आगार श्री राम जी महाराज! श्री गुरुदेव जी के निर्देश को अवश्य मानना चाहिये। क्योंकि श्री भरत जी को प्रसन्न देखकर सभी अत्यन्त प्रसन्न व सुख में सराबोर हो जायेंगे।–––

भरत खेद लखि सब नर खेदी । मातु सचिव गुरु दोउ दल वेदी ॥
जो जानहिं आपहुँ रघुराया । अन्तरयामी गत मद माया ॥

–––हे परम विज्ञ श्री राम जी! श्री भरत जी को दुखी देखकर दोनों पक्षों की अम्बाएँ, मंत्री तथा श्री गुरुदेव जी आदि सभी दुखी होंगे। इस तथ्य को आप भी जानते हैं क्योंकि, हे रघुराज! आप अन्तरयामी और अभिमान व ममता से परे हैं।

सुन नृप वचन प्रेम रस साने । बोले राम स्वभाव सुहाने ॥
धन्य भरत मम बन्धु सुहाये। भयो धन्य हौहूँ तिन पाये ॥

रघुकुल गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी व श्री जनक जी महाराज के प्रेम व रस से परिपूर्ण वचनों को सुनकर श्री राम जी महाराज स्वभावानुकूल सुन्दर वाणी से बोले– मेरे सुन्दर अनुज श्री भरत जी धन्य हैं तथा उनको प्राप्त कर मैं भी धन्य हो गया हूँ।–––

गुरुवर राव प्रशंसत जाही। प्रेम पगे जग सुधि कछु नाही॥
महा भाग्य भल भरत सुजाना। महा महिम किमि करौं बखाना॥

–––स्वयं श्री गुरुदेव जी और श्री मिथिलेश जी महाराज, जिनकी प्रशंसा करते हैं तथा जो प्रेम में पगे हुए संसार की स्मृति से शून्य हैं। ऐसे परम ज्ञानवान श्री भरत जी, अतिशय सौभाग्यवान तथा महान महिमा मण्डित हैं, मैं उनके गुणों का किस प्रकार बखान से करूँ।–––

दो0– लघु सुबन्धु शुचि सम्मुखहिं, करत बड़ाई तात।
सत्य कहौं मिथिलेश बच, मम मति अति सकुचात॥१२७॥

–––हे तात श्री मिथिलेश जी महाराज! मैं सत्य वचन कह रहा हूँ कि– अपने छोटे, सुन्दर व पवित्र भ्राता के सामने उनकी बड़ाई करने में मेरी बुद्धि अत्यन्त ही संकोच का अनुभव कर रही है।–––

प्राणाधिक मोहिं भरत पियारे। सब गुण धाम प्रेम रस वारे॥
भरत समान बन्धु जग माहीं। खोजिय सबै लोक तिहुँ नाहीं॥

–––श्री भरत जी तो मुझे प्राणाधिक प्रिय हैं तथा वे समस्त गुणों के धाम व प्रेम और रस से परिपूर्ण हैं। श्री भरत जी के समान भ्राता संसार में खोजने पर भी तीनों लोकों में अप्राप्त है।

जानि भरत रुख मेटन कोरे। शक्ति नहीं तिहुँ कालहुँ मोरे॥
प्रीति विवश मम पिता सुभाये। गे पर धाम मोहि लय लाये॥

श्री भरत जी की रुचि को जानकर उसे बदलनें (मिटा देने) की शक्ति मुझमें, त्रिकाल (भूत, वर्तमान व भविष्य) में भी नहीं है। यद्यपि, मेरे श्री मान् पिता, चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज, सुन्दर भाव पूर्वक मुझमें ध्यान लगाये हुए परम धाम को प्रस्थित हुए हैं।–––

तिन कर वचन भंग नहिं होई। दृढ़ निश्चय निज हिय महँ जोई॥
भरत कहे मेटहुँ पुनि ताहू। सुनहिं सुगुरु अरु मिथिला नाहू॥

–––इसलिए उनके वचनों को खण्डित न करूँ ऐसा मैंने अपने हृदय में दृढ़ निश्चय किया है, परन्तु हे श्री सद्गुरु देव जी व श्री मिथिलेश जी महाराज! सुनिये, यदि श्री भरत जी कहें तो मैं उस बचन को भी मिटा सकता हूँ।

अस कहि राम उठे अतुराई। प्रेम वारि दोउ दृगन बहाई॥
भरतहि लिये स्वगोद बिठाई। बार बार हिय रहे लगाई॥

ऐसा कहकर, श्री राम जी महाराज आतुरतापूर्वक उठ खड़े हुए व दोनों नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित करते हुए श्री भरत जी को अपनी गोद में बिठाकर बार–बार अपने हृदय से लगाने लगे।

दो०– अश्रु पोंछि पुचकारि प्रभु, कहत कहहु हिय बात ।
सोइ करहुँ नहि आन कछु, जो तव हिये सुहात ॥१२८॥

पुनः प्रभु श्री राम जी महाराज, श्री भरत जी के अश्रुओं को पोंछ कर पुचकारते हुए उनसे बोले– हे प्रिय श्री भरत! आप अपने हृदय की बात कहिये, आपके हृदय को, जो अच्छा लगेगा मैं वही करूँगा, उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं करूँगा।

राम प्यार लहि देह भुलाने । भरत निजासन बैठि रसाने ॥
नेह विवश थर थरहिं शरीरा । फफकत सिसकत बह दृग नीरा ॥

श्री राम जी महाराज के प्रिय प्रेम को प्राप्त कर, श्री भरत जी अपने शरीर की स्मृति भूल गये पुनः प्रेम–रस में डूबे हुए, अपने आसन में बैठ गये। प्रेम के कारण उनका शरीर थर–थर काँप रहा था तथा वे सिसकियाँ लेते हुए आँखों से अश्रु बहा रहे थे।

कह बशिष्ठ सुनु प्रेम निधाना । धरहु धीर यहि अवसर जाना ॥
कहहु भ्रात सन निज हिय बाता । जो कछु चहहु स्वभाव सुहाता ॥

उस समय, आचार्य श्री बसिष्ठ जी ने कहा– हे प्रेम के निधान श्री भरत जी! सुनिये, इस समय आप समय को पहचान कर, धैर्य धारण कीजिये और अपने हृदय की स्वाभाविक सुन्दर बात, जो आप चाहते हैं, अपने प्रिय भ्राता श्री राम जी महाराज से निवेदन कर दीजिये।

गदगद कण्ठ न निकसत बानी । भरत दशा नहि जाय बखानी ॥
राम भरत लखि प्रीति सुहाई । अकथ अगाध बरणि नहिं जाई ॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–प्रेमावेश के कारण श्री भरत जी का कण्ठावरोध हो गया था, वाणी नहीं निकल पा रही थी, उनकी उस अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता। श्री राम जी महाराज और श्री भरत जी की सुन्दर अकथनीय, गूढ़ व वर्णनातीत प्रीति को देखकर–

जय जय कहि सुर वर्षत फूला । शेषि शेष दोउ मंगल मूला ॥
सजल नयन दोउ दल अनुरागे । प्रेम विभोर राम रस पागे ॥

समस्त मंगलों के मूल, शेषी व शेष स्वरूप श्री राम जी महाराज व श्री भरत जी आप दोनों की जय हो जय हो कहते हुए देवता पुष्प वरषाने लगे। उस समय श्री मिथिला व श्री अवध दोनों पुरियों का समाज अश्रुपूरित नेत्रों से अनुराग पूर्वक प्रेम विभोर हुआ श्री राम जी महाराज के रस (आनन्द) में पगा हुआ सुशोभित हो रहा था।

दो०– दण्ड एक सुनसान सम, सकल सभा मन छूँछ ।
प्रेम भरी जल ढार दृग, नहिं कोऊ कछु पूँछ ॥१२९॥

वहाँ एक दण्ड(कुछ क्षणों तक) तक सम्पूर्ण सभा निःशब्द, रिक्तमना व प्रेम में भरी हुई आँखों से अश्रु बहाती रही, किसी ने किसी से भी, कुछ नहीं पूछा। (सभी लोग प्रशान्त हो गये थे।)

निश्चय भार आपु पर जानी । प्रभु पियार प्रिय पाय अघानी ॥
धरि बड़ धीर भरत उठि ठाढ़े । कर सम्पुट जल नयनन बाढ़े ॥

निर्णय का उत्तरदायित्व अपने ऊपर जानकर, प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रिय प्यार को प्राप्तकर अघाये हुए श्री भरत जी अत्यन्त धैर्य धारण कर उठे व हाथ जोड़, आँखों में अश्रुभर कर खड़े हो गये।–––

सरसत सकुचि सभहिं सिर नाई । गद्गद् कण्ठ सुमिरि रघुराई ॥
प्रीति भाव भरि वचन सुहाये । विनय विवेक शील रस छाये ॥

–––अनन्तर प्रेम पूर्वक सम्पूर्ण सभा को शिर झुका प्रणाम करते हुए, श्री राम जी महाराज का स्मरण कर, संकुचित हृदय, गद्गद वाणी से प्रेम व भाव परिपूर्ण, विनय, ज्ञान, शील व रस से भरे हुए सुन्दर वचन–––

परहित सने सत्यमय धरमी । बोले भरत अमान सुकरमी ॥
कृपा प्यार मैं प्रभु कर पाई । आज भयो धनि धन्य महाई ॥

–––परहित रत, सत्य स्वरूप, धर्ममय, अमानी एवं सुन्दर कर्मों का अनुष्ठान करने वाले श्री भरत जी बोले– आज मैं प्रभु श्री राम जी महाराज की कृपा व प्यार प्राप्त कर महान और धन्यातिधन्य हो गया।–––

जानि शरण मोहिं दीन दयाला । प्रणतपाल प्रण सब विधि पाला ॥
छमि अपराध मोर सब भाँती । करी अहैतुक कृपा अघाती ॥
विधि हरि हर दुर्लभ प्रिय प्यारा । कीन्हे नाथ जाउँ बलिहारा ॥

–––दीनों पर दया व आश्रित जनों का प्रतिपालन करने वाले मेरे प्रभु श्री राम जी महाराज ने मुझे, अपनी शरण में आया जानकर आश्रित जन प्रतिपालन व्रत का सभी प्रकार से पालन किया है तथा मेरे सभी अपराधों को क्षमाकर अतिशय अहैतुकी कृपा की है। श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शंकर जी को भी जो प्यार अत्यन्त दुर्लभ (अप्राप्त) है वह प्रिय प्यार मेरे स्वामी श्री राम जी महाराज ने मुझ पर किया है, मैं उन पर बलिहारी जाता हूँ।–––

दो0– बिसरि गयो दुख मोर सब, लखि प्रभु सरल स्वभाव ।
आपन ओर निहारि कछु, निज मन माँहि लजाव ॥१३०॥

–––प्रभु श्री राम जी महाराज के सरल स्वभाव को देखकर मेरे सभी दुख मुझे भूल गये हैं। परन्तु अपना किंचित भी अन्वेषण करने पर मुझे मन में महान लज्जा वरण कर लेती है।–––

निज कर्मार्जित फल मैं पावा । दोष काहि पुनि देहुँ बनावा ॥
सब अनर्थ कर कारण भयऊँ । जग महँ विपति बीज बोइ दयऊँ ॥

–––मैंने, अपने कर्मों के द्वारा अर्जित किए हुए फल को ही प्राप्त किया है अतएव इसके लिए मैं, दोषी कह–कर, किसे दोष दूँ। मैं ही सम्पूर्ण अनर्थों का कारण हूँ, जिसने संसार में विपत्तियों का

बीज बोया है।–––

तेहि महँ पुनि प्रभु दास कहाया । लाज न रचहुँ हिये समाया ॥
सुनि वन गवन पयादेहिं पाये । प्राण न निकसे देह लुभाये ॥

–––उतने पर भी मैं प्रभु श्री राम जी महाराज का सेवक कहला रहा हूँ, मुझे हृदय में किंचित भी लज्जा नही लगती। मेरे प्रभु श्री राम जी, बिना चरण पादुकाओं के पैदल ही बन चले गये हैं यह सुनकर भी मेरे प्राण नहीं निकले, वे इस शरीर में आसक्त बने रहे।–––

कहँ सिय कहँ वन चलब कठोरा । सुनि नहिं विदरि गयो हिय मोरा ॥
ललित लषन लालन ललकाने । गयेराम सँग सुनि अकुलाने ॥

–––कहाँ कोमलता की परिसीमा श्री सिया जू और कहाँ कठोर वन में भटकना, यह सुनकर भी मेरा हृदय विर्दीण नहीं हुआ। सुन्दर लाल लक्ष्मण कुमार भी प्रभु सेवा का लालच हृदय में लिये हुए श्री राम जी महाराज का वनगवन श्रवण कर, व्याकुल हृदय साथ चले गये हैं यह वार्ता भी मैने श्रवण की।–––

कान सुनेउ पुनि गुरु मुख बानी । राज करहु तुम अवध महानी ॥
सोउ सुनि प्राण निसरि नहि गयऊ । अधम शिरोमणि मैं गनि लयऊँ ॥

–––पुनः श्री गुरुदेव जी की श्री मुख वाणी, मैंने अपने कर्णो से सुनी कि– 'तुम इस महान श्री अयोध्यापुरी का राज्य करो'। उसे सुनकर भी मेरे प्राण शरीर से नहीं निकले अतः मैंने जान लिया कि– मैं अधमों का शिरमौर हूँ।–––

दो0– मातु पिता गुरु वच निदर, कियो राम प्रतिकूल ।
तदपि जानि निज शरण मोहिं, मान्यो प्रभु अनुकूल ॥१३१॥

–––यद्यपि मैने, श्री माता जी, श्री मान् पिता जी और श्री गुरुदेव जी के वचनों का निरादर कर, श्री राम जी महाराज के प्रतिकूल आचरण ही किया है तथापि अपनी शरण में आया हुआ जानकर प्रभु ने मुझे अपने अनुकूल समझा है।–––

राम कियो मोपर अति छोहा । सो सुख जानै मम मन जोहा ॥
हेरहिं नाथ दोष जो मोरा । मिलि न सेव बहु कल्प करोरा ॥

–––इस प्रकार, श्री राम जी महाराज ने मुझ पर अतिशय कृपा की है, उस सुखानुभूति को मेरा मन ही जानता है। यदि नाथ मेरे दोषों की ओर देखेंगे तो करोड़ों कल्पों तक मुझे, प्रभु कैंकर्य अप्राप्य ही रहेगा।–––

सहज बानि शरणागति पाली । पालेउ मोंहि दोष दुख घाली ॥
अहह स्वामि रघुनायक मोरे । तिन समान तिरदेव न भोरे ॥

–––अपने शरणागत जन प्रतिपालक, सहज स्वभाव के कारण मेरे दुख और दोषों को नगण्य समझकर, प्रभु ने मेरा पालन किया है। अहा! रघुकुल के नायक श्री राम जी महाराज, मेरे स्वामी है,

जिनके समान तीनों देवता श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी और श्री शंकर जी भूल कर भी नहीं हो सकते।———

जानेउँ सब विधि नाथ सुभाऊ। पापिहुँ प्रति नहि क्रोध लखाऊ॥
बैरिहुँ मन महँ अति विश्वासा। सपनेहुँ राम न मम भल नासा॥

———मैने अपने नाथ के स्वभाव को भली प्रकार से पहचान लिया है, कि– उनके हृदय में पापी व्यक्ति के प्रति भी क्रोध नहीं दिखाई देता, उनके शत्रुओं के मन में भी यह अतिशय विश्वास रहता है कि– श्री राम जी महाराज, स्वप्न में भी हमारा अमंगल नहीं करेंगे।———

मोपर कृपा सुनेह सुप्यारा। वारेहिं ते प्रभु कियो अपारा॥
रिसमय बदन न कबहुँ विलोका। सदा प्रसन्न हरैं हिय शोका॥

———पुनः मुझ पर तो बचपन से ही प्रभु श्री राम जी महाराज ने अपार कृपा, स्नेह व सुन्दर प्रेम किया है। मैंने कभी भी उनके क्रोधपूर्ण मुख का दर्शन नहीं किया, वे तो सदैव प्रसन्न तथा हृदय के शोकों का हरण करने वाले हैं।———

दो0– मज्जन अशन सुशयन प्रिय, खेलब पढ़ब सुहात।
प्रभु सँग नित सुखमय भयो, प्रेम प्रफुल्लित गात॥१३२॥

———हमारी स्नान, भोजन, शयन, क्रीड़ा व अध्ययन आदि सभी प्रिय और सुन्दर क्रियाएँ नित्य प्रभु श्री राम जी महाराज के साथ ही, प्रेम पुलकित शरीर से सुखपूर्वक सम्पन्न हुई हैं।

मोर हार प्रभु सकहिं न देखी। जन पर ममता प्रीति विशेषी॥
केतिक बार लखे निज नयना। जीते खेल राम हरषैना॥

———मेरी पराजय (हार) प्रभु श्री राम जी महाराज नहीं देख सकते थे, उनकी अपने सेवकों पर विशेष ममता और प्रीति है। कई बार मैंने स्वयं की आँखों से देखा है कि– श्री राम जी महाराज खेल में जीतने पर भी हर्षित नहीं होते थे।———

हारतहूँ मोहि देहिं जिताई। तबहि प्रहर्षैं श्री रघुराई॥
मम रुचि राखि सदा निज साथा। राखेव छोहि राम रघुनाथा॥

———मेरे हार जाने पर भी, मुझे जिता देते थे तभी श्री राम जी महाराज हर्षित होते थे। मेरी रुचि का ध्यान रखकर प्रभु श्री राम जी महाराज ने अपनी कृपा से मुझे सदैव अपने साथ रखा है।———

शिशुपन ते अब लौं रघुराया। प्राणन सम पालेव सुख छाया॥
निज हिय चाह दबाय सुभाये। मम हिय चाहहिं पूर कराये॥

———बाल्यावस्था से अब तक श्री राम जी महाराज नें सुख पूर्वक मेरा प्राणों के समान पालन किया है। उन्होंने अपने हृदय की स्वाभाविक इच्छा को भी दबाकर, मेरे हृदय की इच्छा पूर्ण की है।———

नयन पलक सम करि रखवारी । जोगये मोहि श्रीराम उदारी ॥
मोर नाथ सम नहि कोउ नाथा । बिन हित पालैं जानि अनाथा ॥

———परम उदार श्री राम जी महाराज ने, नेत्र—पलकों के समान रक्षा करते हुए सदैव मेरा पालन किया है। मेरे स्वामी श्री राम जी महाराज के समान स्वामी अन्य कोई भी नहीं है, जो अनाथ समझ कर निःस्वार्थ भाव से किसी का पालन करता हो।———

दो0— पाप शिरोमणि मोहिं पर, बिनु हित दयानिधान ।
कीन्ह कृपा भरपूर लखि, को न भजै जिय जान ॥१३३॥

———पापियों के शिरमौर मुझ पर, भी दया के निधान प्रभु श्री राम जी महाराज ने अकारण ही पूर्ण रूपेण कृपा की है। उनके ऐसे स्वभाव को देखकर कौन है जो उनका भजन नहीं करेगा।———

सुमिरि सुमिरि रघुनाथ सुभाऊ । जो न तरै भव खेहर खाऊ ॥
जब ते दरश सिया पद भयऊ । तब ते नित नवीन सुख ठयऊ ॥

———रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज के ऐसे स्वभाव का स्मरण कर जो कोई भी संसार सागर से उनका भजन कर पार नहीं हो जाता वह केवल धूल ही छान रहा है। पुनः श्री सिया जू के चरण—कमलों का जबसे दर्शन हुआ तब से तो मुझे नित्य ही नवीन सुख प्राप्त होता रहा है।———

विधि सो मम सुख सहा न गयऊ । बड़ कुकर्म फल आवत भयऊ ॥
मो अभाग सिय राम निकारी । दियो छुड़ाय सकल सुख सारी ॥

———परन्तु श्री ब्रह्मा जी से मेरा सुख, सहन नहीं हो सका, और मेरे कुकर्मो का महान परिणाम सामने आ गया। मेरे अभाग्य ने सम्पूर्ण सुखों के मूल स्रोत, श्री सीताराम जी को राज—महल से निकाल कर, मुझसे मेरा सुख छीन लिया।———

सो सब सहत देह के लागी । बनि कुमूर्ति दुख रूप अभागी ॥
हाय विधाता मम तन राखी । का पइहैं मुख कहहु न भाषी ॥

———देह का लोभी व दुखस्वरूप मैं दुर्भाग्य की कुमूर्ति बना हुआ, वह सभी सहन कर रहा हूँ। हाय! विधाता अपने मुख से क्यों नही कहता, कि— इस अवस्था में भी, मेरे शरीर को रखकर तू क्या प्राप्त कर लेगा?———

करहिं दया विधि बिन सिय रामा । निकसि प्राण जावैं यम धामा ॥
रुदत बदत मुरछित भुइँ माहीं । परे भरत भूले सुधि काहीं ॥

———हे श्री ब्रह्मा जी! आप मुझ पर दया करें कि— श्री सीताराम जी के बिना मेरे प्राण निकल कर यमलोक चले जायें। इस प्रकार कह कर रुदन करते हुए श्री भरत जी, मूर्छित हो स्मृति भूलकर भूमि में गिर पड़े।

दो0— देखत दौड़े जनक तहँ, भरतहिं गोद उठाय ।
करि उपचार अनेक विधि, दीन्हे सुरति जगाय ॥१३४॥

श्री भरत जी को भूमि में गिरते हुए देख श्री जनक जी महाराज दौड़कर, उन्हे गोद में उठा लिए और अनेक प्रकार से उपचार कर, उनकी स्मृति जागृत कर दिये।

बोले जनक भरत धरि धीरा। कहहु हृदय रुचि प्रेम प्रवीरा ॥
राम कृपा लाधे भर पूरा। तुम समान तुम गिनि जग धूरा ॥

पुनः प्रेम पूर्वक श्री जनक जी महाराज बोले– हे प्रेम प्रवीर श्री भरत जी! आप धीरज धारण करें तथा अपने हृदय की इच्छा कहिये। आपने श्री राम जी महाराज की भरपूर कृपा प्राप्त की है और आपके समान केवल आप ही हैं जिन्होने सांसारिक सुखों को धूलवत समझा है।

भरत ठाढ़ भे युग कर जोरी। बोले वचन विनीत बहोरी ॥
गुरु भुआल रघुराज अगाधू। मम हित चहत प्यार बिन बाधू ॥

श्री मिथिलेश जी महाराज के वचनों को श्रवण कर, श्री भरत जी दोनों हाथ जोड़ खड़े हो गये तथा विनयपूर्वक वाणी से बोले– हे सर्वज्ञ श्री गुरुदेव जी, नृप श्रेष्ठ श्री मिथिलेश जी महाराज और रघुवंश विभूषण श्री राम जी महाराज! आप सभी, अबाधित प्रेम परिपूर्ण हो मेरा सर्व प्रकारेण हित चाहते हैं।–––

सब कर कृपा पाइ अनुकूली। मिटी मलिन मन विरचित शूली ॥
कहब मोर गुरुदेव भुआरा। प्रभु सन कहे कहौं का बारा ॥

–––आप सभी के अनुग्रह व अनुकूलता को प्राप्त कर, मेरे कलुषित मन की उत्पन्न व्याधि भी मिट गयी है। मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ उसे तो, श्री गुरुदेव जी और श्री मिथिलेश जी महाराज ने प्रभु श्री राम जी महाराज को सुना ही दिया है, अब बाल–बुद्धि मैं, उसे क्या कहूँ?–––

पाप मूल पुनि आरत भारी। स्वारथ सनी बुद्धि पुनि बारी ॥
ज्ञानिन सभा बहोरि अपारा। कहा कहौं निर्णय मति धारा ॥

–––क्योंकि मैं तो पापों का मूल व महान दुखी हूँ तथा मेरी बुद्धि स्वार्थ में सनी हुई व अत्यन्त ही अल्प है। पुनः असीमित विज्ञ–जनों की सभा में, अपनी बुद्धि द्वारा निर्धारित निर्णय को मैं क्या कहूँ?–––

दो0– सूझै नहिं कछु बुद्धि महँ, सीय राम हिय वास ।
तिनके बल कछु कहत हौं, जस बुधि देहिं प्रकाश ॥१३५॥

–––मेरी बुद्धि में कुछ भी नहीं सूझ रहा किन्तु हृदय में श्री सीताराम जी का निवास है अतएव उनकी कृपा बल से, जिस प्रकार का ज्ञान वे बुद्धि में प्रदान कर रहे हैं, मैं कुछ निवेदन कर रहा हूँ।–––

राम लषन सिय जनक दुलारी। करि मुनि वेष फिरहिं पदचारी ॥
काँट कुराय भूमि पथरीली। कोमल चरण गड़े जिमि कीली ॥

–––श्री राम जी महाराज, श्री लक्ष्मण कुमार और जनक दुलारी श्री सिया जू, मुनियों का

वेष–धारणकर वन में पैदल भटक रहे हैं, जहाँ काँटे, कुराँय व पत्थरों से युक्त भूमि है, जो उनके कोमल पाद–पंकजों में कील के समान चुभती है।–––

सो सुधि प्राण उड़ावन हारी। देवति सब तन सुधिहिं बिसारी॥
सो हिय घाव दिनहिं दिन बाढ़ै। तापर सुरति चोट लग गाढ़ैं॥

–––वह प्राणापहारी स्मृति मेरे शरीर की सम्पूर्ण सुधि–बुधि भुला देती है तथा उससे हृदय घाव अनुदिन बढ़ता जाता है, उस पर भी, उसमें स्मरण की गहरी चोट लगती रहती है।–––

छन छन सुरती ब्रणहिं बढ़ाई। एक दिन मोकहँ मार गिराई॥
आयउँ यहाँ स्वार्थ के हेतू। पूरै घाव होउँ चित चेतू॥

–––वह स्मृति प्रत्येक क्षण मेरे घाव को बढ़ाती जाती है, जो अन्ततः एक दिन मुझे मार ही डालेगी। अतः मैं, अपने स्वार्थ के लिए ही यहाँ आया हूँ कि– मेरे हृदय का घाव ठीक हो जाय और मैं चित्त में शान्ति प्राप्त कर सकूँ।–––

सीय राम सिंहासन देखी। आपुहिं पगतरि सेवत पेखी॥
होइहौं सुखी सुनहु सब काहू। नाहित बहिहौं विपति प्रवाहू॥

–––आप सभी, मेरी एक बात सुन लीजिए कि– श्री सीताराम जी को श्री अयोध्या पुरी के राज–सिंहासन में विराज, स्वयं को उनकी जूतियों की सेवा करते देखकर ही मैं सुखी होऊँगा। अन्यथा विपत्ति के प्रवाह में बहता ही रहूँगा।

दो0– मातु पिता गुरु सचिव सब, मिथिला अवध समाज।
सबके हिय अभिलाष वर, लहहिं राम पद राज॥१३६॥

–––श्री मान् चक्रवर्ती जी महाराज, सभी अम्बाओं, श्री गुरुदेव जी, सभी मंत्रियों, श्री मिथिलापुरी व श्री अयोध्यापुरी के सम्पूर्ण समाज आदि सभी के हृदय ही यही सुन्दर अभिलाषा है कि– श्री राम जी महाराज राज्य पद ग्रहण करें।–––

अवध फिरे प्रभु सब सुख लहिहैं। मंगल तिलक जबहिं दृग जोहिहैं॥
अवध लौटि प्रभु सब दुख नासी। बसहिं भवन सिय सहित सुपासी॥

–––हे प्रभु! ये सभी, उसी समय सुखी होंगे जब, श्री अयोध्यापुरी लौटने पर अपनी आँखों से आपके मंगलमय राज तिलक का दर्शन करेंगे। अतएव हे नाथ! आप श्री अयोध्यापुरी लौट कर सभी के दुखों का नाश कीजिये तथा सुन्दर सुख–पूर्वक राजमहल में श्री सिया जू के साथ निवास कीजिए।–––

मैं वन जाय करौं वर वासा। प्रभु वद सत सत परम हुलासा॥
चह रिपुहनहुँ मोर सँग जाई। बनहिं वसहिं सुमिरत रघुराई॥

–––मैं सत्य–सत्य कहता हूँ कि– प्रभु श्री राम जी महाराज के स्थान पर मैं परम आनन्द पूर्वक वन में जाकर निवास करुँ। यदि चाहें तो श्री शत्रुघ्न कुमार भी मेरे साथ जाकर, श्री राम जी महाराज का स्मरण करते हुए वन में निवास करें।

राम लखन सिय फिरहिं हमारे । जनिहौं तब मम भाग महारे ॥
नतरु वसहिं बन तीनहु भ्राता । बहुरहिं सीय सहित जन त्राता ॥

———जब हमारे प्रिय भ्रात श्री राम जी महाराज, श्री लक्ष्मण कुमार व श्री सिया जू श्री अयोध्यापुरी लौट जायेंगे तभी मैं अपनी महती सौभाग्य समझूँगा। यदि ऐसा न हो, तो हम तीनों भाई (मैं, लक्ष्मण व शत्रुघ्न) वन में निवास करें और श्री सीता जू सहित जन–रक्षक श्री राम जी महाराज श्री अयोध्यापुरी वापस हो जायें।———

जो रुचि होय नाथ अनुकूला । करहिं सोइ मुद मंगल मूला ॥
प्राप्त समय की अति अभिलाषा । प्रगट करी यहि सभा प्रकाशा ॥

———हे नाथ! अब आपकी जो भी अनुकूल व मंगलों की मूल इच्छा हो, आप श्री उसे ही आनन्द पूर्वक क्रियान्वित करें। मैंने अपने हृदय की समयानुसार प्राप्त अत्यन्त अभिरुचि को इस सभा में प्रगट कर दिया।

दो0– आपन रुचि सिद्धान्त मैं, अहनिशि छन छन केर ।
सबहिं सुनावत सुनहिं सो, रघुपति करहिं निबेर ॥१३७॥

———अब मैं अपने अहो–रात्रि के प्रत्येक क्षण की अभिरुचि व सिद्धान्त सभी लोगों को सुना रहा हूँ, उसे आप लोग श्रवण कीजिये, जिसका निर्णय श्री राम जी महाराज ही करेंगे।

मास पारायण अठारहवाँ विश्राम

जो कछु कहेउ दशा मन केरी । नहिं कछु कियो दुराव हियेरी ॥
तदपि रजाय राम जस होई । मनिहौं प्रभु सुख सानत सोई ॥

श्री भरत जी कहते हैं कि– यद्यपि मैंने यहाँ जो कुछ भी कहा है, वह मेरी मनोस्थिति है, अपने हृदय में मैने कुछ भी गुप्त नहीं रखा। तथापि प्रभु श्री राम जी महाराज की मेरे लिए जैसी आज्ञा होगी, उनके सुख में सुखी हुआ मैं, उसे स्वीकार करूँगा।———

शतगुण आनँद आयसु पाले । होय हृदय हे दीन दयाले ॥
मम रुख रखि निज रुखहिं दबाई । जो करिहैं निर्णय रघुराई ॥

———क्योंकि हे दीनों पर दया करने वाले श्री राम जी महाराज! आपकी आज्ञा का पालन करने में मुझे स्वसुख से सौ गुना अधिक आनन्द प्राप्त होगा। परन्तु यदि श्री राम जी महाराज मेरी इच्छा को मान, अपनी इच्छा को आत्मसात कर निर्णय करेंगे।———

तौ मोहि यहि अवसर दुख दाता । होय अवशि अस उरहिं जनाता ॥
नित परतंत्र राम कर दासा । सेवन धर्म मोर सहुलासा ॥

———तो मुझे इस समय वह अवश्य ही दुखदायी होगा, ऐसा मेरे हृदय में समझ आ रहा है। क्योंकि मैं तो नित्य ही प्रभु श्री राम जी महाराज के अधीन रहने वाला सेवक हूँ तथा आनन्द–पूर्वक

उनकी सेवा करना ही मेरा धर्म है।———

सीय राम सुख सुख निज जानी। तिन इच्छा इच्छा निज मानी॥
नहिं स्वतन्त्र नहिं चाह जनाई। सेवक भाव नशै जेहिं पाई॥

———मैं तो श्री सीताराम जी के सुख को ही अपना सुख समझता हूँ और उनकी इच्छा को ही अपनी इच्छा मानता हूँ। मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ और ऐसी इच्छा नहीं प्रगट करना चाहता कि– जिससे मेरा दास्य भाव विनष्ट हो जाये।———

दो0– प्रभुहिं सकोचै दास बनि, निज स्वारथ के हेत।
दास धर्म तुरतहिं नशै, करि विवेक चित चेत॥१३८॥

———क्योंकि सेवक बनकर, अपने स्वार्थ के लिए यदि कोई अपने स्वामी को संकोच में डाल देता है तो उसका दास–धर्म शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। इसलिए स्वामी की सेवा, विवेक पूर्वक, सावधान चित्त से करना चाहिए।

स्वामि प्रदत्त प्रसाद सुजानी। सुख दुख सह नित दास अमानी॥
इक रस रहै प्रसन्न सदाही। किये समाधि प्रपति पथ माहीं॥

———सच्चा सेवक तो, सम्मान–विहीन हो, भगवद्विधान से प्राप्त सभी सुखों और दुखों को अपने स्वामी द्वारा प्रदान किया हुआ, प्रसाद समझकर नित्य सहन करता है तथा सदैव एक समान प्रसन्न बना हुआ 'शरणागति पथ' में समाधिस्थ बना रहता है अर्थात् शरणागति मार्ग का अनुसरण करता रहता है।———

मैं अरु मोर देय सब त्यागी। दास रमै रामहिं रस पागी॥
जेहिं विधि स्वामि सहज सुख लहई। सोइ करै सेवक हिय गहई॥

———अपने सभी अहंकार और ममकार को त्याग कर सेवक श्री राम जी महाराज के रस में पगा हुआ श्री राम जी में ही अनुरक्त बना रहता है। उसके स्वामी जिस प्रकार से सहज सुख प्राप्त करते हैं, सेवक अपने हृदय में उसी प्रकार के भाव ग्रहण कर, उन्हे ही क्रियान्वित करता है।———

स्वामि स्वार्थ गुनि आपन स्वारथ। दास चलै मग नित परमारथ॥
आपन स्वार्थ तनिक हिय आई। देय तुरत सम्बन्ध मिटाई॥

———इस प्रकार अपने स्वामी के हित को अपना हित समझ कर सेवक, नित्य परमार्थ पथ में चलता रहता है। सेवक के हृदय में किंचित भी अपना स्वार्थ आते ही, वह स्वामी–सेवक का सम्बन्ध शीघ्र समाप्त कर देता है।———

जहाँ स्वार्थ तहँ भाव न प्रेमा। स्वामी सेवक सेव न नेमा॥
चारि पदारथ त्यागि कुआसा। स्वामी सेवन करै सुदासा॥

———क्योंकि जहाँ स्वार्थ होता है वहाँ पर प्रेम–भाव और स्वामी–सेवक के मध्य सेवा का नियम नहीं रह पाता। श्रेष्ठ सेवक तो चारो पदार्थो (अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष) की कामना को त्याग कर अपने स्वामी की सेवा करता है।———

दो0– योग क्षेम तजि आपनो, दास शरण पथ होय ।
बनि अनन्य स्वामिहिं भजै, आपा डारै खोय ॥१३९॥

–––अतः सेवक अपने सर्व विधि लौकिक व पारलौकिक योग और क्षेम की चिन्ता का त्याग कर शरणागति पथ में चलता हुआ अनन्य बन कर, अपने स्वामी का भजन करे और यहाँ तक कि– अपने अस्तित्व को भी समाप्त कर दे।–––

स्वामि धर्म जहँ स्वारथ नाहीं । स्वारथ बिच नहिं स्वामि लखाहीं ॥
सेवक धर्म कठिन जग अहई । राम कृपा कोउ विरलहिं वहई ॥

–––श्री भरत जी कह रहे हैं कि– जहाँ स्वार्थ होता है वहाँ स्वामि धर्म नहीं रहता क्योंकि स्वार्थ साधन करने में कोई स्वामी–भाव नहीं दिखाई देता। पुनः संसार में सेवक का धर्म तो अत्यन्त ही कठिन है, प्रभु श्री राम जी की कृपा से कोई–कोई ही इस धर्म का पालन कर पाते हैं।–––

राम कृपा चाहौं सोइ धर्मा । गति अनन्य शुचि दास सुकर्मा ॥
सेवक सुख हित सेवन प्रभु की । त्यागि आश अतिशय पद विभु की ॥

–––श्री राम जी महाराज की कृपा से, मैं अनन्य गति होकर, उसी सेवक धर्म व पवित्र सुन्दर दास्य कर्म की कामना कर रहा हूँ। सेवक को अपना सुख और अत्यन्त महान परम पद की लालसा को भी त्यागकर अपने स्वामी की सेवा करना चाहिये।–––

स्वामि सुआयसु निज सिर धारी । चलै सदा सेवक अविकारी ॥
आज्ञा सम नहिं सेवा कोपी । गनै सदा शुचि सेवक चोपी ॥

–––सेवक को चाहिये कि– अपने स्वामी की सुन्दर आज्ञा को शिरोधार्य कर, सभी प्रकार के विकारों से रहित हो, सदैव उस पथ का अनुसरण करता रहे। स्वामी की आज्ञा–पालन के समान अन्य कोई सेवा नहीं है, इस बात को पवित्र सेवक सदैव आनन्द पूर्वक समझता है।–––

आयसु मानि नरक महँ रहई । कोटि कोटि दारुण दुख दहई ॥
सो सेवक अति प्रभुहिं पियारा । गुनि प्रसाद सुख दुख शिर धारा ॥

–––जो सेवक अपने स्वामी की आज्ञा मानकर नरक में भी करोड़ों–करोड़ों महान दुखप्रद कष्टों में जलता हुआ निवास करता है तथा सुखों एवं दुखों को प्रभु–प्रसाद स्वरूप समझ शिरोधार्य किये रहता है वही सेवक अपने स्वामी श्री राम जी महाराज को अत्यन्त प्रिय होता है। –––

दो0– होय राम प्रतिकूल, बरुक निकट सब दिन रहै।
लहहि न सुख अनुकूल, आज्ञा मेटन हार जन ॥१४०॥

–––श्री भरत जी बखान कर रहे हैं कि– प्रभु श्री राम जी महाराज की आज्ञा मिटा देने वाला अर्थात् विपरीत चलने वाला सेवक, उनके समीप रहते हुए भी, कभी भी अनुकूलता का सुख नहीं प्राप्त कर सकता वरन् प्रतिकूलता को ही प्राप्त किये रहता है।

इहै आस मन माहिं समाई । रहौं नाथ कर सदा कहाई ॥
जहँ चहैं जेहिं विधि जेहिं काला । मोकहँ राखैं दीन दयाला ॥

अतः मेरे मन में एकमात्र यही कामना भरी हुई है कि– मैं सदैव अपने स्वामी श्री राम जी का कहलाता रहूँ तथा दीनों पर दया करने वाले, प्रभु श्री राम जी महाराज मुझे जहाँ भी, जिस प्रकार, जिस काल में रखना चाहें उसी प्रकार रखे रहें।

वेद परम पद दुर्लभ गावा । बनि स्वतंत्र नहिं चहौं सुहावा ॥
सहज स्वरूप दास परतंत्रा । मंत्री आश्रित जिमि कोउ मंत्रा ॥

———वेदों में वर्णित परम सुन्दर अति दुर्लभ परम पद को भी मैं स्वतन्त्रता पूर्वक नहीं चाहता। सेवक का स्वरूप तो सहज ही अपने स्वामी के उसी प्रकार परतंत्र रहना है जिस प्रकार कोई मंत्र, जप करने वाले के आधीन होता है।———

तेहिं ते अमित कल्प पर्यन्ता । पराधीन यह दास जियन्ता ॥
मम सकोच तजि जानि अधीना । शरणागत चेतन गति हीना ॥

———इसलिए असीमित कल्पों तक, परतन्त्र बना हुआ, यह दास जीवन धारण किये रहेगा। अस्तु हे नाथ! मुझे अपने आधीन, शरण में आया हुआ व अगति चेतन समझ कर मेरे संकोच को छोड़ दें।———

साधन हीन समर्थ विहीना । प्रेम प्यास त्रासित अति दीना ॥
शेष भोग्य आपन जिय जानी । देवहिं आयसु मोहि प्रमानी ॥

———अपने हृदय में मुझे, साधनों से रहित, असमर्थ, प्रेम प्यास से पिपासित, अत्यन्त दीन और अपना शेष व भोग्य जानकर, अपनी निश्चयात्मक आज्ञा प्रदान करें।

सो०–तनिक सकोच न होय, मम दिशि देखि सुनाथ कहँ।
सुख सह ढोइहौं सोय, आज्ञा शिर धरि रावरी ॥१४१॥

———मेरे स्वामी श्री राम जी महाराज को मेरी ओर देखकर किंचित भी संकोच नही करना चाहिए, मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर सुखपूर्वक उसका पालन करूँगा।———

मम सुख हित प्रभु देहिं रजाई। सेवा जानि लेहुँ अपनाई ॥
मोरे सरवस दीन दयाला। पावौ अति दुलार यहिं काला ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज मेरे सुख के लिए आज्ञा प्रदान करें, मैं उसे उनकी सेवा समझ कर अपना लूँगा। दीनों पर दया करने वाले मेरे प्रभु श्री राम जी महाराज ही मेरे सर्वस्व हैं अतः मैं इस समय उनका अत्यन्त दुलार प्राप्त करने की कामना करता हूँ।

सब विधि मन महँ नाथ भरोसा । नसिहैं आज सबहिं दुख दोषा ॥
मोरे प्रभु तुम एक अधारा। नहिं जानौं कछु और विचारा ॥

हे नाथ! मेरे मन में सभी प्रकार से विश्वास है कि– आज मेरे समस्त दुख और दोष नष्ट हो

जायेंगे। हे स्वामिन्! मेरे आधार तो एक मात्र आप ही हैं, इसके अतिरिक्त मैं अन्य किसी विचार को नहीं जानता।

अहहिं नाथ प्राणन के प्राणा। जीव जीव सुख के सुख जाना ॥
राखहु शरण सदा अपनाई। झारौं पाँवरि नाथ सुहाई ॥

हे मेरे स्वामी! आप सभी जीव समुदाय के प्राणों के प्राण, जीवों के जीव और सुखों के भी सुख हैं, आप मुझे अपना कर सदैव के लिए अपनी शरण में रख लीजिये ताकि मैं आपकी सुन्दर जूतियों की सेवा करता रहूँ।

अस कहि भरत जाय प्रभु चरणा। पकरि परे महि प्रेम अवरणा ॥
त्राहि त्राहि कहि रोवन लागे। फेरत कर प्रभु शीशहिं रागे ॥

ऐसा कह, प्रभु श्री राम जी महाराज के समीप जाकर, प्रेम मूर्ति श्री भरत जी प्रभु के चरणों को अवर्णनीय प्रेम पूर्वक पकड़, भूमि में गिर पड़े तथा त्राहि–त्राहि (रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए) कह कर रुदन करने लगे। तब प्रभु श्री राम जी महाराज अनुराग पूर्वक उनका शिर अपने कर कमल से सुहलाने लगे।

दो0– बहुरि उठाये गोद निज, सूँघि शीश दुलराय।
निज कर कमल सुनयन जल, पोंछत दृगन बहाय ॥१४२॥

पुनः श्री राम जी महाराज ने अपने प्रिय भ्राता श्री भरत जी को गोद में उठाकर दुलराते हुए शिरोघ्राण किया तथा प्रेमाश्रु प्रवाहित करते हुये, अपने हस्त–कमल से उनके अश्रुओं का प्रोच्छण करने लगे।

भरत प्यार करि अति रघुराई। बोले भाव सनेह जनाई ॥
यहि थल कुलगुरु सहित भुआरा। बैठी जननी अतिहिं उदारा ॥

इस प्रकार श्री भरत जी को अत्यधिक प्यार कर श्री राम जी महाराज अपने भाव व स्नेह को प्रगट करते हुए बोले– इस स्थान में विराजे हुये, हमारे कुलगुरु मुनिराज श्री बशिष्ठ जी के सहित श्री मिथिलेश जी महाराज एवं हमारी अत्यन्त उदार माताएँ–––

करि विचार मोहिं आज्ञा देहीं। पावहिं सुख मम भ्रात सनेही ॥
नृप सम्मत मुनिवर मुसकाई। बोले धन्य राम रघुराई ॥

–––आप सभी विचार कर मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये, जिससे मेरे प्रिय अनुज श्री भरत जी सुखी हों। श्री राम जी के वचनों को श्रवण कर मुनि प्रवर श्री बशिष्ठ जी मुस्कुरा कर श्री मिथिलेश जी महाराज की सहमति से युक्त वचन बोले– हे रघुकुल नरेश, श्री राम जी ! आप धन्य हैं।–––

अस स्वभाव सुख देवन हारा। शील सनेह भाव मृदु सारा ॥
तुम समान तुमही महँ देखा। अमित अण्ड जग कोउ न पेखा ॥

–––आपका शील, स्नेह, कोमल भाव से परिपूर्ण व सुख प्रदान करने वाला ऐसा स्वभाव तो केवल आपमें ही दिखाई देता है। असीमित ब्रह्माण्डों व इस संसार में आपके जैसे स्वभाव का दर्शन

किसी में नहीं किया गया।–––

कस न कहहिं अस बारम्बारा । गुरुजन आयसु होय सुखारा ॥
सुनहु लाल सबहिन मत ऐसो । आपुहिं कहैं होय रुचि जैसो ॥

–––आप, ऐसा बार–बार क्यों? न कहें कि– मेरे लिए गुरुजनों की सुखपूर्वक आज्ञा हो। हे लाल रघुनन्दन! सुनिये, हम सभी की ऐसी ही राय है कि– आपकी जो रुचि हो, उसे ही आप बखान करें।

दो0– राउर हिय रुचि जानि जिय, भरतहिं अति सुख होइ ।
करहिं सुनिर्णय आपु ही, सबकी मति गै खोइ ॥१४३॥

–––क्योंकि आपके हृदय की अभिरुचि जानकर श्री भरत जी को अत्यन्त सुख संप्राप्त होगा, इसलिए आप ही सुन्दर निर्णय करें, यहाँ उपस्थित हम सभी की बुद्धि विस्मृत हो गई है।

सुनि गुरु वचन प्रणत सुखदाई । बोले भय भंजन पुलकाई ॥
सुनहु भरत मम प्राण पियारे। हौ मम जीवन सत्य सहारे ॥

श्री गुरुदेव जी के वचनों को श्रवणकर आश्रित जनों को सुख व अभय प्रदान करने वाले श्री राम जी महाराज पुलकित हो बोले– हे मेरे प्राणों के प्रिय श्री भरत जी! सुनिये, आप सत्य ही मेरे जीवन के आधार हैं।–––

साधु स्वभाव कार्पण गहहू । ह्वै अति दीन प्रेम पय बहहू ॥
शरणागत चेतन अनुकूला । पै मोंहि लगत दुसह दुख मूला ॥

–––आप अपने साधु स्वभाव के कारण कार्पण्यता ग्रहण किये व अत्यन्त दीन बने हुए प्रेम–वारि के प्रवाह में प्रवाहित हो रहे हैं, जो शरण में आये हुए जीवों के अनुकूल ही है। परन्तु मुझे आपका यह कार्पण्य(दैन्य) दुखों का मूल और असहनीय प्रतीत होता है।–––

जो तुम कहौ मोहि लगि रामा । बसे आइ चितकूटहिं धामा ॥
मोहि समान को पाप स्वरूपा । ठौर न मिलिहैं नरकन कूपा ॥

–––यदि आप कहते हैं कि– मेरे कारण ही श्री राम जी यहाँ वन में आकर चित्रकूट में निवास किये हैं, मेरे समान पापों का विग्रह कौन है? तथा मुझे नरक–कूप में भी स्थान नहीं मिलेगा।–––

सो मोसन अब सुना न जाई । श्रवण परत रहिहौ पछताई ॥
अहह हृदय मम बज्र कठोरा। भरत गलानि सुनी सुख बोरा ॥
द्रवित होय हिय बहि नहिं गयऊ । बन्धु विकल लखि धीरज कयऊ ॥

–––तो यह, अब मुझसे सुना नहीं जा रहा, मेरे श्रवणों में यदि, अब इस प्रकार की बातें पड़ीं, तो आप पछताते ही रह जायेंगे। अहा हा! मेरे बज्र के समान कठोर हृदय ने श्री भरत जी की ग्लानि को सुखपूर्वक सुना और यह द्रवित होकर प्रवाहित न हो सका। मैं अपने अनुज श्री भरत जी को व्याकुल देखकर भी धैर्य धारण किये रहा।

दो०– भरत प्रेम जस मोहिं पर, कियो त्याग शिरमौर ।
मैं न सकेउँ करि तिनहिं पर, लाज लगत लखि ओर ॥१४४॥

–––त्यागियों के शिरो–भूषण श्री भरत जी ने मुझ पर जिस प्रकार का प्रेम किया है उस प्रकार का प्रेम तो मैं भी उनके ऊपर नहीं कर सका। अतः अपनी ओर देखकर मुझे अत्यन्त लज्जा लग रही है।–––

छं०– मोहि लाज लागति लखि भरत, धनि प्रेम सहज सुहावनो ।
नहिं होत सम्मुख मोर मन, सत सत भरत भल भावनो ॥
बनि तात ऋणिया तोर मैं, करतो सदा तव ध्यान है ।
नहि छणहुँ बिसरेउ चित्त ते, लखि लेहु प्रेम प्रमान है ॥

–––श्री भरत जी को देखकर मुझे लज्जा लगती है, उनका सहज और सुन्दर प्रेम धन्य है, मेरा मन श्री भरत जी के सच्चे व सुन्दर भाव को देखकर उनका सामना करने में भी असमर्थ है। हे तात! मैं, ;णी बनकर आपका नित्य ध्यान करता हूँ। मेरे प्रेम का प्रमाणीकरण आप स्वयं ही समझ लीजिये कि– मैं एक क्षण को भी, अपने चित्त से आपका विस्मरण नहीं करता।–––

तव नाम सुमिरत लोग सब, अरु चरित सुनि नव नेह करि ।
प्रिय प्रेम लक्षण भक्ति भलि, पैहैं अवशि आनन्द भरि ॥
तजि काम इच्छहिं विरति मन, परमार्थ पथ शोधन करैं ।
वर धाम अच्युत पाइ जन, हर्षण मगन सुखमय चरैं ॥

–––सभी आपके नाम का स्मरण व प्रेम पूर्वक चरित्र का श्रवण कर अवश्य ही आनन्द में भरे हुए सुन्दर प्रिय प्रेम–लक्षणा भक्ति प्राप्त करेंगे। हमारे श्री आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज बखान करते हैं कि–श्री राम जी महाराज श्री भरत जी से कहते हैं कि– आपका स्मरण करने वाले, सभी प्रकार की लौकिक कामनाओं का त्यागकर मन से विरक्त हो परमार्थ पथ का शोधन करेंगे तथा सुन्दर अच्युत धाम को प्राप्त कर सदैव सुखी बने रहेंगे।–––

सो०–सुनहु तात मति धाम, अच्युत प्रेम प्रवाह नद ।
तव सुख मोहिं विश्राम, सत्य सत्य वर वचन मम ॥१४५॥

–––हे अच्युत प्रेम प्रवाही श्रेष्ठ नद स्वरूप, बुद्धि के आगार तात श्री भरत जी! सुनिये, मेरे वचन सर्वथा सत्य हैं कि– आपके सुख से ही मुझे परम शान्ति की प्राप्ति होती है।–––

लखि रुचि मातु पिता आदेशा । कीन्हेउ वन महँ तात प्रवेशा ॥
पिता मरण अरु दुःख तुम्हारे । कारण बनेव सुनहु मति वारे ॥

हे तात! श्री अम्बा कैकई जी की इच्छा और श्री मान् पिता जी की आज्ञा से जो, मैंने वन में प्रवेश किया है तथा श्री मान् पिता जी की मृत्यु और आपके दुख का जो कारण बना है–––

मातहिं लाज संकोच सम्हारी । मिथिला अवधहिं कीन्ह दुखारी ॥
सो सब भई ईश की लीला । कर्ता कर्म करण क्रिय मीला ॥

———पुनः श्री अम्बा कैकई जी को लज्जित और संकुचित होने तथा श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी के निवासियों को दुखी करने का जो कारण हुआ है, वह सभी कर्त्ता, कर्म, करण और क्रिया की सम्मिलित भगवल्लीला है अर्थात् इस लीला के कर्ता (करने वाले), कर्म (कार्य), करण (सहाय सामग्री) और क्रिया (प्रतिक्रिया) सभी परमात्मा हैं और उन्ही की इच्छा से ही यह सब हुआ है।

जो कछु औरहु आगे होई । ईश रजाय गिनहु सब सोई ॥
मंगल भवन सच्चिदानंदा । तहँ नहिं रहै अमंगल मंदा ॥

——— जो कुछ आगे (भविष्य) में होगा, उसे भी ईश्वर की इच्छा ही समझिये। परमात्मा सर्व मंगलों का भवन व सच्चिदानन्दमय है, अतः उसकी (ईश्वर की) लीला में कभी भी निकृष्ट अमंगल का स्थान ही नही रहता वह तो सर्वदा मंगलमयी ही होती है।———

चिदानंदमय ईश्वर लीला । दुख नहिं नेक तहाँ सुखशीला ॥
रंक राव घर बन दिन राती । सुख दुख तोर मोर गुन जाती ॥

———वह परमात्मा की लीला चिदानन्दमयी व सुख–स्वरूपा है उसमें सर्वथा दुख का अभाव रहता है। रंक–राजा, घर–वन, दिन–रात, सुख–दुख, तेरा–मेरा तथा गुण व जाति आदि———

दो0– जानहु सब व्यवहार मय, परमारथ कछु नाहिं ।
जाग्रत होइ जिमि मनुज कर, स्वप्न केर भ्रम जाहिं ॥१४६॥

———सभी को व्यवहार स्वरूप ही जानना चाहिये, इनमें किंचित भी परमार्थ नहीं है। ज्ञान हो जाने पर ये सभी रहस्य उसी प्रकार समझ में आ जाते हैं जिस प्रकार मनुष्य के जाग जाने पर उसका स्वप्न–जनित संदेह समाप्त हो जाता है।———

गुनहु प्रेम महिमा बड़ि ताता । मृतहिं बनावै अमृत भाता ॥
ममता अहं सुदूर भगाई । राग दैष की वृत्ति मिटाई ॥

———हे तात श्री भरत जी! आप, प्रेम की महान महिमा को समझिये, यह 'प्रेम' मरण धर्मा जीवों को सुन्दर अमरत्व प्रदान करता है और उनके अहंकार व ममता को दूर कर राग और द्वेष की वृत्ति को सर्वथा समाप्त कर देता है।———

मैत्री करुणा मुदिता देई । प्रेम देव जब कृपा करेई ॥
सुख दुख सम दर्शन अति होवै । बनै तितिक्षु क्षमा मति मोवै ॥

———ये प्रेम देवता जब कृपा करते हैं तभी मित्रता, करुणा और प्रसन्नता प्रदान करते हैं, बुद्धि, सुख और दुख में समान दृष्टि रखने वाली हो जाती है, वह प्रेमी सहिष्णु बन जाता है तथा उसकी बुद्धि क्षमा से परिपूर्ण हो जाती है।———

हिये बसत निशि दिन संतोषा। शम दम वृत्ति सहज सुख कोषा॥
दृढ़ निश्चयी बनावत प्रेमा। मन बुधि परे भूल तन नेमा॥

———प्रेमी के हृदय में रात–दिन संतोष का निवास हो जाता है, उसकी वृत्ति शम–दमादि गुणों से युक्त, सहज ही सुखों की कोष हो जाती है। 'प्रेम' जीवों को दृढ़–प्रतिज्ञ बनाता है तथा वह मन व बुद्धि के परे, शारीरिक नियमों का विस्मरण कराने वाला होता है।

प्रेमास्पद कहँ आतम अर्पी। जगत लखै तेहिं मय तजि दर्पी॥
आनँद सिन्धु मगन दिन राती। प्रेम देव की कृपा विभाती॥
अभय देय पुनि शान्तिहुँ देवै। शक्ति अचिन्त्य प्रेम की धेवै॥

प्रेमी अपने अहंकार को त्याग, अपने प्रेमास्पद को अपनी आत्मा अर्पित कर, संसार को प्रेमास्पद के स्वरूप में दर्शन करता हुआ अहो–रात्रि आनन्द के सागर में अस्त रहता है। 'प्रेम देव' की सुन्दर कृपा जीवों को अभय–पद व शान्ति प्रदायिनी होती है। अतः प्रेम को अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न समझना चाहिए।

दो0– प्रेम रूप तुम भरत सत, दिव्य गुणन आगार।
विरह विवश बहु दुख दहे, मोरे प्राण पियार॥१४७॥

———हे दिव्य गुणों के धाम, मेरे प्राण प्रिय श्री भरत जी! आप सत्य ही प्रेम–स्वरूप हो। आप मेरे वियोग के वशीभूत हो महान दुख की अग्नि में जले हुए हो।———

प्रथमहि प्रेमी सेवक भावा। निज मुख कहि तुम सबहिं सुनावा॥
तैसहिं रहनि करनि सुखकारी। बारेहिं ते मम प्रतिहिं तुम्हारी॥

———आपने, अपने मुख से पूर्व में ही प्रेमियों व सेवकों के भावों को जिस प्रकार कहकर सभी को सुनाया है, मेरे प्रति आपकी, उसी प्रकार की सुखकारिणी रहनी और करनी बाल्यावस्था से ही रही है।

मम रुचि राखि सदा तुम ताता। चले प्रेम पथ पर सुख दाता॥
सहज प्रीति पगि मोहि सुख देई। बितये दिन एतने प्रिय धेई॥

———हे तात! आप सदैव मेरी इच्छा के अनुकूल रहकर, सुख प्रदायक प्रेम पथ में अग्रसर रहे हैं तथा हे मेरे प्रिय श्री भरत जी! मेरी सहज प्रीति में पगकर, सजगतया मुझे सुख प्रदान करते हुए आप इतने दिन व्यतीत कर दिये हैं।———

तेहिं बल हिय कठोर करि भाई। छेदहुँ कंज बान झरि लाई॥
काह कहौं अस समय करावा। नहिं मम दोष तनिक दरशावा॥

———हे भइया! उसी भरोसे पर मैं, अपने हृदय को कठोर कर, तुम्हारे हृदय कमल को अपने वचन रूपी बाणों की अनवरत वृष्टि से आहत कर रहा हूँ। परन्तु मैं क्या करूँ? विपरीत समय ही मुझसे ऐसा कार्य करा रहा है इसमें मुझे अपना रंचमात्र भी दोष नहीं दिख रहा।———

जानि स्वकरतव तजि रिस रागा। कहौं भरत सुन करि अनुरागा॥
जानहु बन्धु भानु कुल रीती। सत्य संध निर्मल मन जीती॥

———मैं इस समय अपने कर्तव्य को समझ, क्रोध और प्रेम (राग) को त्यागकर कह रहा हूँ, हे श्री भरत जी! आप अनुराग पूर्वक सुनिये, हे भइया! आप तो हमारे सूर्य–कुल की सत्य पर आरूढ़ रहने वाली निर्मल, और मन को जीतने वाली रीति तो जानते ही हैं।

दो0– तेहिं कुल उपजे रघु सदृश, त्याग शील महाराज।
सत्य संध दृढ़ ब्रत धरी, जग महँ विरद विराज॥१४८॥

———उस श्री रघुकुल में महाराज श्री रघु जी के समान त्याग व शीलवान महाराज उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने सदैव सत्य का पालन और दृढ़–व्रत धारण किया है। उनकी महान कीर्ति आज भी संसार में परिव्याप्त है।———

रघुकुल भये मोर पितु नामी। जासु सुयश तिहुँ लोकहिं यामी॥
सत्य वाक रत अति रणधीरा। दानि शिरोमणि सुमति प्रवीरा॥

———उसी महान श्री रघुकुल में गरिमा मण्डित मेरे श्री मान् पिता चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज भी उत्पन्न हुए हैं, जिनकी सुन्दर कीर्ति तीनों लोकों में विख्यात है। वे सदैव सत्य बोलने वाले, अत्यन्त रणधीर, दानियों में शिरमौर, परम बुद्धिमान तथा अतिशय कुशल थे।———

मो कहँ कहै दाशरथि रामा। कोउ कहैं रघुराज ललामा॥
सो मै पिता बचन अब काटी। केहिं विधि जिऔं जगत सुख चाटी॥

———मुझे सभी श्री दशरथ नन्दन "राम" कहते हैं तथा कोई–कोई श्री रघुराज नाम से पुकारते हैं। इसलिए अपने ऐसे महान श्री मान् पिता जी के वचनों को भंगकर (न मानकर) मैं, किस प्रकार से सांसारिक सुखों का उपभोग करते हुए जीवन धारण करूँ?———

वचन राखि मोहिं अरु प्रिय प्राणा। त्यागे पिता सकल जग जाना॥
तासु वचन राखन मम धर्मा। किये उलट बहु होय कुकर्मा॥

———अपने वचनों की रक्षा हेतु हमारे श्री मान् पिता जी ने मुझे व अपने प्रिय प्राणों तक को त्याग दिया, इस वार्ता को सम्पूर्ण संसार जानता है। अतः उनके वचनों का पालन करना मेरा धर्म है तथा उसके विपरीत आचरण करने से महान दुष्कर्म हो जायेगा।———

जो कछु समय विधाता दीन्हा। सहैं बन्धु दोउ बाँटि प्रवीना॥
जो भय हरै कहावै भाई। विपति परे महँ होय सहाई॥

———हे परम प्रवीण श्री भरत जी! विधाता नें हमें जो विपत्ति का समय प्रदान किया है, हम दोनों भाई उसे बाँट कर सहन करें, क्योंकि जो भय का निवारण कर विपत्ति के समय सहायता करता है वही, 'भाई' कहलाता है।———

दो0–अस विचारि सुनु भ्रातु प्रिय, जानि विपति कर काल।
धरि धीरज दुख सब सहत, पिता बचन दृढ़ पाल ॥१४९॥

–––हे प्रिय बन्धु श्री भरत जी! ऐसा विचार कर, विपत्ति का समय समझ, धैर्य धारण कर, सभी दुखों को सहते हुए हम दोनों भाई, श्री मान् पिता जी के वचनों का दृढ़ता पूर्वक पालन करें।–––

यदपि कठिनता तुमहिं विशेषी। चौदह वरष बिना मोहि देखी ॥
तदपि सहहु दुख प्रेम प्रवीरा। मम हिय चाह जान मति धीरा ॥

यद्यपि चौदह वर्षों तक मेरे अदर्शन के कारण आपको विशेष कठिनाई होगी तथापि हे प्रेम प्रवीर, धीर–बुद्धि, कुमार श्री भरत जी! मेरे हृदय की इच्छा जानकर, आप इस महान कष्ट को सहन कर लीजिये।–––

होई सुजस धवल जग माहीं। दहे कनक जिमि विमल लखाहीं ॥
निज निज करहिं दोउ आचारा। तबहिं लोक शिक्षण सुकुमारा ॥

–––इस प्रकार चलने से संसार में आपकी, विमल कीर्ति उसी प्रकार फैल जाएगी जिस प्रकार स्वर्ण तपाने पर और भी निर्मल दिखने लगता है। अतः हे सुकुमार श्री भरत जी! लोक शिक्षण हेतु हम दोनो अपने–अपने धर्म के अनुसार आचरण करें।–––

जस जस नृपति करै आचरणा। होय प्रजा तेहिमय श्रुति वरणा ॥
रघुकुल गौरव राखहिं दोऊ। पिता बचन जिय धारैं जोऊ ॥

–––क्योंकि, श्रुतियों ने वर्णन किया है कि– राजा जिस प्रकार आचरण करता है प्रजा भी उसी प्रकार हो जाती है। अतएव हम दोनों अपने महान कुल (श्री रघुकुल) के गौरव की रक्षा करते हुये, अपने श्री मान् पिता जी के वचनों को हृदय में धारण किये रहें।–––

पितु बच पालन समय सुहावा। बड़े भाग सुत पावइ भावा ॥
निदरब ताहि उचित नहिं होई। निदरे नरक वास कर सोई ॥

–––श्री मान् पिता जी के वचनों को पालन करने का सुन्दर समय पुत्र को बड़े सौभाग्य से प्राप्त होता है। इसलिए उसका निरादर करना उचित नहीं है। श्रीमान् पिता जी के वचनों का निरादर करने पर पुत्र निश्चय ही नरक में निवास करता है।–––

दो0– पितु कै दीन्ही वन अवधि, सम्मत मातु स्वभाव।
त्यागव उचित न होय प्रिय, मेरो यही सुझाय ॥१५०॥

–––हे प्रिय श्री भरत जी! मेरी तो यही राय है कि–अपने श्री मान् पिता जी द्वारा प्रदान की गई एवं अम्बा श्री कैकेई जी द्वारा सहज सहमति से परिपूर्ण वन–वास की सीमा का त्याग करना कदापि उचित नहीं है।–––

तुमहुँ तात गुनि आयसु मोरी। पालहु पुहुमि अवधि दिन जोरी ॥
यामहँ तुम कहँ दोष न नेका। मम बच गौरव प्रीति विवेका ॥

––––अतः हे तात! आप इसे मेरी आज्ञा समझ कर वन–वास की अवधि तक श्री अयोध्यापुरी की पृथ्वी का पालन कीजिये। इसमें आपके लिए किंचित दोष नहीं है बल्कि विवेक पूर्वक देखने पर इसमें मेरे वचनों का गौरव व प्रेम ही दृष्टिगत होता है।–––

गुरु मिथिलेश रहैं जहँ प्यारे । तहँ न शोच संकट दुख सारे ॥
गुरु प्रसाद करिहैं रखवारी । अवध रही मुद मंगलकारी ॥

–––पुनः जहाँ सम्पूर्ण सार–सम्हार करने वाले गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी एवं श्री मिथिलेश जी महाराज हैं वहाँ सभी प्रकार की चिन्ता, आपत्ति और दुख रह ही नहीं सकते। श्री गुरुदेव जी अपने कृपा प्रसाद से श्री अयोध्यापुरी की सर्व प्रकारेण रक्षा करते रहेंगे जिससे वह आनन्दित एवं मंगलकारी बनी रहेगी।–––

मैं वन बसिहौं युत अहलादा । रक्षक रह नित गुरू प्रसादा ॥
हमहिं तुमहिं तजि बालहिं माहीं । पिता गये पर धामहिं काहीं ॥

–––मैं भी वन में आह्लाद पूर्वक निवास करूँगा तथा मेरी रक्षा भी श्री गुरुदेव जू के कृपा प्रसाद से नित्य होती रहेगी। हम दोनों को बाल्यावस्था में ही छोड़कर हमारे श्री मान् पिता जी परम धाम प्रस्थान कर गये हैं।–––

भये अनाथ अवशि सब भाई । जननि सहित प्रिय प्रजौ दुखाई ॥
गुरु अरु राव सँभार सो कीन्ही । मेटि शोक अवलम्बन दीन्ही ॥

–––इस प्रकार हम सभी भ्राता अवश्य ही अनाथ हो गये हैं, हमारी अम्बाओं सहित सम्पूर्ण प्रजा भी अत्यन्त दुखी है। परन्तु श्री गुरुदेव जी और श्री मिथिलेश जी महाराज ने हमारी देख–रेख व सुरक्षा की है तथा हमारे शोक को मिटाकर आश्रय प्रदान किये हैं।–––

दो0– तात सुनहु इनके रहत, हमहिं तुमहि नहिं क्लेश ।
पितु इव रहहिं सनाथ सब, छोहहिं पाय विशेष ॥१५१॥

–––अतएव हे तात श्री भरत जी! इन गुरुजनों के रहते हमें और आपको किंचित क्लेश नहीं होगा तथा इनकी विशेष कृपा प्राप्त कर, हम अपने श्री मान् पिता जी के जीवित रहने के समान ही सुरक्षित बने रहेंगे।–––

अस विचार मुद मंगल मूला । पितु आयसु पालिय अनुकूला ॥
कुल मर्याद राखि दोउ भाई । रहिहैं इक सँग अवधि बिताई ॥

–––ऐसा विचार, इनके अनुकूल बनकर, आनन्द और मंगलों की मूल, श्री मान् पिता जी की आज्ञा को आप, अवश्य ही पालन कीजिए। इस प्रकार अपने कुल के गौरव की रक्षा कर हम दोनों भाई वन की अवधि व्यतीत कर पुनः एक साथ रहेंगे।–––

जस कहिहौ पुनि तैसहिं भ्राता । रहिहौं तुमहिं सदा सुखदाता ॥
करन योग तुम यद्यपि प्यारा । तदपि दबायो बोझ उदारा ॥

–––हे मेरे प्रिय बन्धु श्री भरत जी! उस समय आप मुझे जैसा कहेंगे, मैं वैसे ही रहूँगा तथा

आपको सदा सुख प्रदान करता रहूँगा। हे उदार, तात श्री भरत जी! यद्यपि आप वात्सल्य व प्यार करने के योग्य हैं तथापि मैंने आपको महान उत्तरदायित्व के भार से दबा दिया है।———

लखि कठोर मोहि जनि तुम ताता । करेहु असूया बचन कुभाता ॥
तव उर पीर जान मैं नीके । विरह सनी गुनि गाहक जीके ॥

———अतः हे तात! आप, कठोर हृदय समझ कर मेरे अशोभनीय वचनों के लिये मुझमें, कभी भी अश्रृद्धा मत करना। मैं अपने विरह से सनी हुई, आपके हृदय की प्राण–लेवा पीड़ा को भली प्रकार समझता हूँ।———

तापर पुनि बच सुई चुभोई । पालहु अवध अवधि जिय जोई ॥
भरत अश्रु मैं ध्यान न दीन्हा । हाय दैव उर बज्रहिं कीन्हा ॥

———उतने पर भी हे श्री भरत जी! 'वन की अवधि समाप्त होने तक, श्री अयोध्यापुरी का पालन करो' अपने इन वचनों की सुई आपके हृदय में चुभाकर, उसकी पीड़ा का हृदय में अनुभव करते हुए भी, आपके अश्रुओं की ओर ध्यान न दे सका, हाय! दुर्दैव ने मेरे हृदय को बज्र के समान कठोर कर दिया है।———

दो0– मनुज धरम क्षत्री धरम, रघुकुल धर्म महान ।
आर्य धर्म अति ही कठिन, विवश कियो मोहिं आन ॥१५२॥

——— मैने समझ लिया कि, प्रथम तो मानव–धर्म, पुनः क्षत्री–धर्म, उस पर भी महान श्री रघुकुल का धर्म एवं अत्यन्त कठिन आर्य–धर्म ने मुझे ऐसा करने पर विवश कर दिया है।———

क्षमहु भ्रात मम हिय कठिनाई । अस कहि शिथिल भये रघुराई ॥
अश्रु श्रवत दृग प्रेम प्रवाहा । राम मगन जनु नीर अथाहा ॥

———अतः हे मेरे प्रिय भ्राता श्री भरत जी! आप मेरे हृदय की कठोरता को क्षमा कर दीजिये, ऐसा कहकर श्री राम जी महाराज शिथिल हो गये, उनके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं का प्रवाह ऐसे प्रवाहित होने लगा मानों श्री राम जी महाराज अथाह जल में डूब गये हों।

सुनि प्रभु बचन भाव भरि भाये । सोउ पुलकि नव नेह नहाये ॥
नयन श्रवत तन थर थर काँपी । उठे भरत प्रभु बच हिय थापी ॥

अपने प्रभु श्री राम जी महाराज के भाव–पूर्ण सुन्दर बचनों को सुनकर श्री भरत जी भी पुलकित शरीर हो नवीन प्रेम में अवगाहन करने लगे, पुनः वे थर–थराकर कँपते शरीर से नेत्रों से अश्रु विमोचन करते हुए, प्रभु श्री राम जी महाराज के वचनों को हृदय में धारण कर उठ खड़े हुये।

जाय गिरे द्रुत चरनन माहीं । कहत न बनै समय मोहिं पाहीं ॥
राम उठाय हृदय लिय लाये । दृग जल इक एकहिं नहवाये ॥

अनन्तर जाकर, श्री भरत जी, प्रभु श्री रामजी महाराज के चरणों में प्रणत हो गिर पड़े। श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि– हे श्री हनुमान जी! उस समय की उनकी अवस्था का वर्णन मुझसे नहीं किया जाता। श्री राम जी महाराज ने श्री भरत जी को उठाकर हृदय से लगा लिया तथा अपने

प्रेमाश्रुओं से दोनों ने एक दूसरे को स्नान करा दिया।

पेखि प्रेम सब सुर हरषाने । वरषि सुमन जय जयति बखाने ॥
बहुरि धीर धरि राम कृपाला । भरतहिं लिये गोद तेहि काला ॥
नयन पोंछि करि बहुत दुलारा । परसेउ पाणि शीश सुखकारा ॥

दोनों राजकुमारों श्री राम जी व श्री भरत जी के पारस्परिक प्रेम को देखकर सभी देवता हर्षित हो पुष्पों की वरषा करते हुए जय–जय नाद करने लगे। पुनः कृपालु श्री राम जी महाराज ने धैर्य धारण कर उस समय श्री भरत जी को अपनी गोद में बिठा लिया तथा उनके नेत्रों का प्रोच्छण कर अत्यन्त दुलार करते हुए, अपने कर कमल से, उनके शिर का सुखमय स्पर्श किया।

दो0–हृदय लाय धरि चिबुक कर, कहत राम रघुराज ।
कहहु अनुज तुम मोहिं गिने, कठिन हृदय का आज ॥१५३॥

पुनः रघुवंश विभूषण श्री राम जी महाराज ने श्री भरत जी को हृदय से लगा, उनकी ठोढ़ी में हाथ रखकर कहा– हे प्रिय अनुज श्री भरत जी! कहिये, क्या, आपने आज मुझे, कठोर हृदय वाला समझ लिया है?–––

मन महँ कछु दुख तो नहिं माने । सहि लीन्हे किमि मम बच बाने ॥
गोद उतरि भल भरत सुजाना । मन प्रसन्न हिय हर्ष महाना ॥

–––आपने अपने मन में किंचित दुख तो नहीं अनुभव किया। मेरे वचन रूपी वाणों के प्रहार को आपने किस प्रकार से सहन कर लिया। अपने प्रिय भ्रात श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवण कर, सुजान श्री भरत जी प्रभु श्री राम जी महाराज की सुन्दर गोद से उतर, प्रसन्न–मना, हृदय में अतिशय हर्षित हो–––

बोले बचन भाव सरसाने । सबहिं बढ़ावत मोद महाने ॥
आजु सुफल भो जनम हमारा । सफल भयो पुनि साधन सारा ॥

–––भाव में भर कर, सभी के हृदय में महान आनन्द विवर्धित करते हुए बोले– आज मेरा जन्म धारण करना व सभी प्रकार के साधनों का अनुष्ठान सफल हो गया।

योग ज्ञान फल पायों आजू । सेवन फल मुनि साधु समाजू ॥
पायो राम कृपा भरि पूरी । लहेउ न कोउ प्यार अस भूरी ॥

–––आज मैंने योग, ज्ञान तथा मुनियों व साधु समाज की सेवा करने का प्रतिफल (परिणाम) श्री राम जी महाराज की भरपूर कृपा प्राप्त कर ली। प्रभु श्री राम जी महाराज के ऐसे महान प्यार को आज तक किसी ने प्राप्त नहीं किया।

सबहिं भाँति प्रभु दीन्ह बड़ाई । भूषण साधु समाज बनाई ॥
आज्ञा दिय मोहि गुनि निज सेवा । राखेउ मोर दुलार सुदेवा ॥

–––मेरे प्रभु श्री राम जी महाराज ने मुझे आज सभी प्रकार से बड़ाई प्रदान की है और

साधु समाज में मुझे आभूषण बना दिया। मेरे परमाराध्य देव श्री रघुनन्दन जू ने मेरे दुलार की रक्षा करते हुए अपनी सेवा समझ कर मुझे आज्ञा प्रदान की है।———

दो0— अमित भाग भाजन भयों, गये नाशि दुख दोष ।
मम सम नहिं तिरदेवहूँ, पाये प्यार सुकोष ॥१५४॥

———आज मैं असीमित सौभाग्य का पात्र बन गया, मेरे सभी दुख और दोष विनष्ट हो गये। मेरे समान प्रभु प्रेम के अनुपम कोष को, त्रिदेवों (श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शंकर जी) ने भी नहीं प्राप्त किया।———

राउर मृदुमय सरल सुभाऊ । पर दुख देखि द्रवत रस छाऊ ॥
कोमल अवधि हृदय प्रभु केरा। दिव्यानन्त गुणन को डेरा ॥

———मेरे स्वामी श्री राम जी महाराज का स्वभाव तो अत्यन्त सरल व सुकोमल है जो दूसरों के दुख को देखकर रस स्वरूप हो द्रवित हो जाता है। प्रभु श्री राम जी महाराज का हृदय कोमलता की परिसीमा और दिव्य अनन्त गुणों का आगार है।———

नाथ बचन सुनि सुख संतोषा । सत्य भयो दुख दारिद शोषा ॥
बसिहौं अवध करत सेवकाई । जब लगि अवधि विहान न आई ॥

———अपने स्वामी श्री राम जी महाराज के वचनों को सुनकर सत्य ही मेरे सुख—संतोष का पोषण एवं दुख—दारिद्र्य का शोषण हो गया है। मैं श्री अयोध्या पुरी में उनकी सेवा करते हुए तब तक निवास करूँगा जब तक वन की अवधि रूपी रात्रि का प्रभात (आपका आगमन) नहीं हो जाता।

करन चहौं विनती इक नाथा। करुणामय प्रभु पाल अनाथा ॥
चाहौं राउर कछुक अधारा। जा बल ढोय सकौं भुइँ भारा ॥

———परन्तु हे मेरे मानद स्वामी! मैं एक विनय करना चाहता हूँ, आप तो करुणा के विग्रह एवं अनाथों का प्रतिपालन करने वाले हैं। हे नाथ! मैं आपका कोई अवलम्ब (सहारा) चाहता हूँ जिसके आधार से आपकी इस भूमि का भार वहन कर सकूँगा।———

प्रभु सर्वग्य दास जिय जानी । करहिं सफल याचक कै बानी ॥
अस कहि भरत नाइ पद माथा । प्रेम पुलक नयनन भरि पाथा ॥

———अतः हे अन्तर्यामी प्रभु! अपने हृदय में, अपना सेवक जानकर, मुझ भिखमंगे की वाणी को सफल कर दीजिए। ऐसा कहकर श्री भरत जी प्रभु चरणों में शिर झुका प्रणाम करते हुए, प्रेम पुलकित हो आँखों में अश्रु भर कर,———

दो0— ठाढ़ भये कर जोरि नत, कौशिल सुवन समीप ।
राम विलोकत मुनि जनहिं, कुलगुरु सहित महीप ॥१५५॥

———हाथ जोड़े हुए विनम्र भाव से कौशिल्या नन्दन श्री राम जी महाराज के समीप खड़े हो

गये। श्री भरत जी की विनय को श्रवण कर, श्री राम जी महाराज कुलगुरु श्री बसिष्ठ जी व श्री मिथिलेश जी सहित मुनियों की ओर निहारने लगे।

सकुचत राम काह आधारा । गुरुजन आगे देहुँ दुलारा ॥
गुरु समीप पूजन करवाई । या निज सेवा जनहिं दृढ़ाई ॥

उस समय श्री राम जी महाराज संकुचित हो रहे थे कि– अपने दुलारे भ्राता श्री भरत जी को श्रेष्ठ गुरुजनों के समक्ष मैं क्या आधार दूँ? क्योंकि गुरुजनों के समीप अपनी पूजा कराना अथवा अपनी सेवा करने के लिए सेवकों को समझाना,–––

करि अपचार महा गुरु केरा । भ्रष्ट होय द्रुत सुपथ ते चेरा ॥
जानि सकुच वश मुनि वर ज्ञानी । बोले रामहिं अति प्रिय बानी ॥

–––गुरु जनों का महान अपचार होता है, ऐसा करने से सेवक शीघ्र ही उत्तम मार्ग से भ्रष्ट हो जाता है। श्री राम जी महाराज को संकोच के वशीभूत जानकर, परम ज्ञानवान गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी ने उनसे अत्यन्त प्रिय वाणी में कहा–

धर्म धुरीण राम गुरु सेवक । तुम समान तुम वेद सुखेवक ॥
समय विवश कछु अनुचित नाहीं । राखु भरत रुख यहि थल माहीं ॥

–––हे श्री राम जी ! आप, धर्म की धुरी, सच्चे आचार्य सेवक, वेदों के कर्णधार तथा आपके समान स्वयं आप ही हैं। समय की विवशता में कोई भी कार्य अनुचित नहीं होता अतः आप, यहाँ अवश्य ही श्री भरत जी की इच्छा की रक्षा कीजिए।–––

शान्ति सुदायक सुखद अनूपा । दै अधार निज प्रतिनिधि रूपा ॥
भरतहिं देहु परम सन्तोषू । छाँड़ि सकुच कीजै जन पोषू ॥

–––आप, शान्ति प्रदान करने वाला, सुखदायक और अपना प्रतिनिधि–स्वरूप अनुपमेय अवलम्ब दे कर श्री भरत जी को परम संतोष प्रदान कीजिये तथा संकोच को त्याग कर अपने प्रिय सेवक का पोषण कीजिये।

दो0– बहुरि कहेउ मिथिलेश नृप, अवशि राम रघुलाल ।
गुरु निदेश रखि भरत रुख, करहिं प्रणत जनपाल ॥१५६॥

आचार्य श्रेष्ठ श्री बशिष्ठ जी के वचनों का अनुमोदन करते हुये, श्री मिथिलेश जी महाराज ने कहा– हे रघुनन्दन, श्री राम जी महाराज! अवश्य ही आप श्री गुरुदेव जी की आज्ञा स्वीकार कर, श्री भरत जी की इच्छा को रख, अपने आश्रित जन का प्रतिपालन कीजिये।

सुनि गुरु राव वचन रघुराई । शिर नत किये हृदय सकुचाई ॥
चरण पीठ निज करहिं उठाई । भरतहिं दिये प्रेम दृग छाई ॥

श्री गुरुदेव जी और श्री मिथिलेश जी के वचनों को सुनकर श्री राम जी महाराज अपना शिर झुकाये हुए, संकुचित हृदय अपनी 'चरण पादुकाओं' को हाथों से उठा, प्रेमाश्रु–प्रपूरित श्री भरत जी

को प्रदान कर दिये।

भरत दौरि आतुर हरषाने। पाँवरि धरे शीश रस साने ॥
"श्री रामः शरणं मम्" पागे। कीर्तन करन लाग अनुरागे ॥

श्री भरत जी त्वरा पूर्वक, हर्षित हो दौड़ कर आनन्द मे समाये हुए श्री राम जी महाराज की "श्री चरण पादुकाओं" को अपने शिर में रख लिये और शरणागति के रस में डूबकर, अनुराग प्रपूरित हो 'श्री रामः शरणं मम्' कीर्तन करने लगे।

अतिशय कृपा राम की जानी। नृत्यन लगे प्रेम सरसानी ॥
को हम कहाँ करैं का आजा। भूले भरत नेह नव भ्राजा ॥

श्री राम जी महाराज के अतिशय कृपा की अनुभूति कर श्री भरत जी प्रेम से परिप्लुत हुए नृत्य करने लगे। हम कौन हैं, कहाँ है और आज क्या कर रहे हैं, उन्हें यह सभी भूल गया, वे नवीन प्रेम से आभूषित हो गये, उन्हें देश काल और परिस्थिति का ज्ञान न रहा।

प्रेम सिन्धु उमड़ेउ चहुँ ओरा। मिथिला अवध समाज विभोरा ॥
जय जय भरत राम जय देवा। कहत सुमन वरषहिं करि सेवा ॥
दुन्दुभि हनत अनन्द विभोरे। भरत प्रेम रस लेत हिलोरे ॥

चित्रकूट स्थली में उस समय, चारो दिशाओं में प्रेम का सागर उमड़ पड़ा था जिसमें श्री मिथिलापुरी एवं श्री अयोध्यापुरी दोनों समाज विभोर हो गया था। देव–गण श्री भरत जी की जय हो, श्री राम जी महाराज की जय हो कहते हुए, पुष्प–वरषा कर सेवा कर रहे थे तथा आनन्द में विभोर, दुन्दुभी नाद करते हुए श्री भरत जी के प्रेमानन्द (रस) में हिलोरे ले रहे हैं।

दो0– मिथिला अवध समाज हूँ, जय जय कहत विभोर।
राम भरत शुचि प्रेम पगि, नृत्यन लगी हिलोर ॥१५७॥

उस समय श्री मिथिलापुरी और श्री अवधपुरी का समाज भी विभोर हो कर, जय–जयकार कर रहा था तथा श्री राम जी महाराज और श्री भरत जी के पवित्र प्रेम रस में डूबकर हिलोरे लेता हुआ नृत्य कर रहा था।

छं0– तिहुँ लोक नृत्यत प्रेमवश, सुर नाग मुनि नर नारि हैं।
वर अष्ट अक्षर मंत्र प्रिय, करि गान शरण पुकारि हैं ॥
भल भाव हिय महँ हठि जगेउ, सब नयन वारि बहावहीं।
सिय राम सुन्दर रूप दिवि, घट घटहिं सबहिं लखावहीं ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कह रहे हैं, कि– हे श्री हनुमान जी! उस समय सभी देवता, नाग, मुनि, पुरुष और स्त्री आदि तीनों लोकों के निवासी, श्री भरत जी के प्रेम के वशीभूत हो नृत्य करने लगे थे तथा श्रेष्ठ व प्रिय अष्ठाक्षर मंत्र "श्री रामः शरणं मम्" का गान करते हुए शरण (रक्षा) की पुकार लगा रहे थे। समुपस्थित सभी समुदाय के हृदय में हठात् ही सुन्दर भाव जागृत हो गया था, सभी नेत्रों

से अश्रु बहा रहे थे उस समय सभी को प्रत्येक घट में श्री सीताराम जी का सुन्दर, दिव्य स्वरूप दिखाई दे रहा था।

सब होय उन्मत भूलि तन, जनु प्रेम बहु रूपहिं धर्‌यो ।
खग मृगहुँ पत्थर वृक्ष सरि, प्रभु प्रेम पूरित लखि पर्‌यो ॥
छिन छिनहिं वरषत पुष्प सुर, जय जय कहत आनँद भरे ।
बाजे बजावत प्रेम पगि, हरषण सुगीतहिं अनुहरे ॥

उस समय सभी अपनी शरीर स्मृति भूलकर प्रभु–प्रेम में मतवाले हो ऐसे दिखाई दे रहे थे जैसे श्री राम–प्रेम ही कई रूप धारण कर श्री चित्रकूट गिरि–स्थली में प्रगट हो गया हो। वहाँ के पक्षी, जानवर, पत्थर, वृक्ष एवं नदी आदि सभी चराचर जीव प्रेम परिपूर्ण दीख रहे थे। हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– देवता प्रत्येक क्षण आनन्दपूर्वक जय–जयकार करते हुए पुष्प वरषा रहे थे तथा सुन्दर 'शरणागति मंत्र' गायन ध्वनि का अनुसरण करते हुए विभिन्न प्रकार के वाद्य बजा रहे थे।

सो0–रामहुँ प्रेम विभोर, भूले सुधि बुधि देह की ।
सब देवन शिर मौर, भगतन गति नित अनुसरे ॥१५८॥

उस समय समस्त देवताओं के शिरोभूषण श्री राम जी महाराज भी अपने शरीर और बुद्धि की स्मृति भूल गये थे, क्योंकि वे तो नित्य ही अपने भक्तों की स्थितियों का अनुसरण करते रहते हैं।

कीर्तन धुनि तिहुँ लोकन छाई । प्रेम सिन्धु सब गये समाई ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश त्रिदेवा । चढ़े विमान लखैं प्रभु भेवा ॥

वह शरणागति मन्त्र के कीर्तन की ध्वनि तीनों लोकों में व्याप्त हो गयी तथा सभी प्रेम के सागर में समा गये। श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी एवं श्री शंकर जी (त्रिदेव) विमानों में चढ़े हुए प्रभु श्री राम जी महाराज के इस प्रेम के रहस्य को देख रहे थे।

तबहिं राम बाहर मन कीन्हा । इच्छा शक्ति प्रबल गुनि लीन्हा ॥
ता बल करि प्रकृतिस्थ समाजा । राम रहे आसन अति भ्राजा ॥

तभी श्री राम जी महाराज ने अपनी प्रबल इच्छाशक्ति का आश्रय लेकर अपने मन को उस संकीर्तन से बाहर कर लिया और उसके प्रभाव से सम्पूर्ण समाज को प्रकृतिस्थ कर श्री राम जी महाराज आसन में विराजे हुये अत्यन्त सुशोभित होने लगे।

सुर नर मुनि नर नारि समेता । चितवत रामहिं खड़े अचेता ॥
अभय करनि मुद्रा प्रभु केरी । परम तेजमय सबहिन हेरी ॥

उस समय वहाँ उपस्थित स्त्री–पुरुषों सहित सभी देवता एवं मुनिजन आदि स्मृतिहीन से हुए खड़े होकर श्री राम जी महाराज को निहारने लगे। उस समय सभी ने प्रभु श्री राम जी महाराज की परम प्रकाशमयी "अभय प्रदायक" मुद्रा का दर्शन किया।

हृदय मिलन मुद्रा पुनि देखी । पाये आनँद सबहिं विशेषी ॥
परमैश्वर्य स्वरूप सुहावा । लखे सिया सह सब सुख पावा ॥

पुनः सभी ने श्री राम जी महाराज की "हृदय मिलनि" मुद्रा का दर्शन कर विशेष आनन्द प्राप्त किया। तदनन्तर सभी ने श्री सीता जी के सहित श्री राम जी महाराज के परम सुन्दर, परम ऐश्वर्यशाली स्वरूप (मुद्रा) का दर्शन किया व सुख संप्राप्त किया।

दो0– बहुरि दुरान्यो रूप सो, सभा बीच रघुनन्द ।
पूरब वत बैठे लखे, सब कोउ आनँद कन्द ॥१५९॥

तदनन्तर सभा के मध्य में रघुकुल चन्द्र श्री राम जी महाराज का वह रूप भी छिप गया तब सभी ने आनन्दकन्द प्रभु को पूर्व की भाँति विराजे हुए दर्शन किया।

दुहुँ कर जोरि राम रघुराई । सबहिं बिठाये नेह नहाई ॥
अभय होय सब त्रिभुवन वासी । बैठे दरशन करत पिपासी ॥

रघुकुल नन्दन श्री राम जी महाराज ने दोनों हाथ जोड़कर प्रेम–सिक्त हो सभी को बिठाया। तब प्रभु दर्शन की प्यास से प्यासे, तीनों लोकों के सम्पूर्ण निवासी अभय होकर बैठे हुए श्री राम जी महाराज का दर्शन करने लगे।

यागबलिक अरु जनक बशिष्ठा । रहे ब्रह्म विद् ज्ञान वरिष्ठा ॥
प्रेम विभोर दोउ सुधि भूले । नृत्यत किये कीर्तन झूले ॥

ब्रह्म विद् और ज्ञानियों में श्रेष्ठ श्री याज्ञबल्क्य जी, श्री मिथिलेश जी महाराज एवं रघुकुल आचार्य श्री बशिष्ठ जी भी श्री राम जी महाराज व श्री भरत जी दोनों के प्रेम में विभोर हो सुधि–बुधि भुलाकर प्रेम भाव में छक कर नृत्य करते हुए संकीर्तन किये।

महिमा प्रेम देव बड़ि भारी । प्रगट भरत तन सुखद अपारी ॥
निज कण अंश प्रभावित कीनी । ज्ञानि शिरोमणि जनन प्रवीनी ॥

उस समय स्वयं, महत् महिमा मण्डित व अतिशय सुख प्रदायक 'प्रेमदेव' श्री भरत जी के वपु के रूप में प्रगट हो गये थे तथा अपने प्रभाव के कणांश से ज्ञानियों के शिरोमणि परम कुशल श्री याज्ञबल्क्य जी, श्री मिथिलेश जी महाराज एवं श्री बसिष्ठ जी आदिकों को भी प्रभावित कर दिये थे।

तहाँ कुँअर लक्ष्मीनिधि प्यारे । राम भरत के नैनन तारे ॥
राम भरत लखि प्रीति अनूपी । सुनि सुनि कीर्तन भाव स्वरूपी ॥
करत कीरतन स्वयं कुमारा । प्रेम विवश नहिं तनहिं सम्हारा ॥

वहाँ श्री राम जी महाराज एवं श्री भरत जी के नेत्रों के तारे प्रिय कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज एवं श्री भरत जी की अनुपमेय प्रीति को देख तथा उनके संकीर्तन को सुनकर अपने भाव स्वरूप में स्थित हो स्वयं कीर्तन करते हुए प्रेम के वशीभूत हो, अपना शरीर न सम्हाल सके।

दो0–भूमि गिरे बेसुध विकल, मनहुँ चेतना हीन ।
सकल सभा बैठी थलहिं, कुँअर परे अति दीन ॥१६०॥

वे स्मृतिहीन और व्याकुल हो भूमि में ऐसे गिर पड़े मानों जीवनी शक्ति खो चुके हों। उस समय सम्पूर्ण समाज सभा–स्थल में विराजा हुआ था परन्तु जनक कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अत्यन्त दैन्यता पूर्वक, स्मृति भुलाये भूमि में पड़े थे।

ह्वै प्रकृतिस्थ भरत अरु रामा । बैठे आसन दोउ ललामा ॥
देखे कुँअरहिं दूनहु भाई । गये तहाँ हड़बड़ अतुराई ॥

पुनः जब श्री भरत जी और श्री राम जी महाराज दोनों प्रकृतिस्थ होकर सुन्दर आसन में विराज गये तब उन दोनों भाइयों ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखा तथा आतुर हो उतावली पूर्वक उनके समीप गये।

राम भरत दोउ श्याम सलोने । परशत कुँअर गात रँग सोने ॥
कुँअरहिं अर्ध उठाय बिठाई । दूनहु इत उत बैठ सहाई ॥

वहाँ जाकर श्याम वपुधारी, दोनों सलोने राज कुमार श्री राम जी महाराज और श्री भरत जी, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के स्वर्ण के समान वपु का स्पर्श करने लगे। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के शरीर के आधे भाग को उठाकर बैठा दिये तथा उनकी सहायता हेतु, दोनो ओर, वे दोनों कुमार बैठ गये।

हृदय लगाय रहे रघुवारे । केश सम्हारि परशि मुख प्यारे ॥
श्याम श्याम विच गौर सुतेजा । लगत मनोहर रसमय रेजा ॥

रघुवंश के युगल राजकुमार, श्री भरत जी एवं श्री राम जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को हृदय से लगाये हुए थे तथा उनके केशों को सँवारते हुए मुख–कमल का स्पर्श कर रहे थे। उस समय नयनाभिराम श्याम वर्ण वाले युगल राजकुमारों के बीच, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का तेजोमय, मनोहारी व रस स्वरूप सुन्दर गौर वर्ण, नील मणियों के मध्य, रत्न–कणिकाओं के समान प्रतीत हो रहा था।–––

जमुन धार जनु युगल सुहाई । मधि महँ गंग धरि छवि छाई ॥
कनक तरुहिं जनु श्याम सुहाये । युग तरु भेंट रहे मन भाये ॥

उस समय ऐसी प्रतीति होती थी जैसे श्री यमुना जी की सुन्दर युगल श्याम धाराओं के मध्य में श्री गंगा जी की धवल धारा सुशोभित हो रही हो अथवा कनक वृक्ष से श्याम रंग के सुन्दर दो तमाल वृक्ष भेंट कर रहे हों।

दो0–बार बार हिय लाय दोउ, करि अनेक उपचार ।
कुँअरहिं करि प्रकृतिस्थ पुनि, बैठे वपुहिं सम्हार ॥१६१॥

वे दोनों नृपति नन्दन श्री राम जी महाराज व श्री भरत जी बारम्बार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को हृदय से लगाकर अनेक प्रकार से उपचार द्वारा सचेत किये पुनः उनके

अस्त–व्यस्त शरीर को सम्हाल कर अपने–अपने आसन में विराज गये।

बोले राम सभहिं कर जोरी। मृदु मुसकाय प्रेम रस बोरी ॥
सुर नर नाग त्रिलोक निवासी। रक्षक आपन मोहिं प्रकाशी ॥

अनन्तर श्री राम जी महाराज सम्पूर्ण सभा को हाथ जोड़, मृदुल मुस्कान के साथ प्रेम–रस से भीगी हुई वाणी बोले– देवता, मनुष्य व नाग तीनों लोकों के समग्र निवासियों ने मुझे अपना रक्षक उद्घोषित किया है।–––

चहत लेन मोसो कछु सेवा। विप्र धेनु सुर सन्त जितेवा ॥
करिहौं अवशि सबहिं सेवकाई। सत्य कहौं दोउ भुजा उठाई ॥

–––तथा वे मुझसे कुछ सेवा लेना चाहते हैं। अतएव मैं दोनों भुजाएँ उठाकर कर सत्य घोषित कर रहा हूँ कि–ब्राह्मण, गौ, देवता, तथा सन्त आदि जो भी जीव हैं, उन सभी जीवों की सेवा, मैं अवश्य करूँगा।–––

राम कबहुँ कछु मृषा न भाषा। थपिहौं सुखमय शान्ति प्रकाशा ॥
कछुक काल बीते त्रैलोका। अभय होय गति लही अशोका ॥

–––'राम' ने कभी, कुछ भी असत्य सम्भाषण नहीं किया। मैं 'राम' आज उद्घोषित कर रहा हूँ कि– मैं सुखमयी शान्ति की स्थापना करूँगा। कुछ समय व्यतीत होने पर पुनः तीनों लोकों के निवासी निर्भय होकर शोक–रहित (सुख–स्वरूप) अवस्था को प्राप्त करेंगे।

सुनतहिं जय जय कौशल मण्डा। छाई धुनि कोटिन ब्रह्मण्डा ॥
बरषहिं सुमन देव झरि लाये। हनत दुन्दुभी सुठि सुख पाये ॥

प्रभु श्री राम जी के वचनों को सुनते ही करोड़ों ब्रह्माण्डों में कौशल नरेश श्री राम जी महाराज की जय हो–जय हो की ध्वनि गूंज गयी। देवता अनवरत पुष्प–वृष्टि करने लगे तथा सुन्दर सुखी होकर दुन्दुभी बजाने लगे।

दो0– श्यामल सुखकर चन्द्र मुख, निरखत मनहुँ चकोर।
सुर नर मुनि आनन्द भरे, तीनहुँ लोक विभोर ॥१६२॥

परम प्रभु श्री राम जी महाराज के अनिंद्य सुन्दर श्याम सुखदायक मुख चन्द्र का, चकोर के समान, आनँद पूर्वक दर्शन कर, देवता, मनुष्य एवं मुनि आदि तीनों लोकों के समग्र जीव प्रेम–विभोर हो गये।

दण्ड एक महँ सब थिर भयऊ। खड़े भरत शिर पाँवरि लयऊ ॥
कहेउ बहुरि धनि भाग हमारा। जो पै लहेउ प्रसाद तुम्हारा ॥

पुनः एक दण्ड (कुछ समय) में सभी स्थिर चित्त हो गये। तदनन्तर श्री भरत जी श्री राम जी महाराज की 'चरण पादुकाएँ' अपने शिर में धारण कर, खड़े हो गये और बोले कि– हे श्री राम जी महाराज! हमारा भाग्य वैभव असमोर्ध्व है जो मैंने आपके कृपा प्रसाद को संप्राप्त किया है।

पाइ पाँवरी पूत कृपाला । पूर्ण मनोरथ भो यहि काला ॥
रहि प्रभु साथ करत सेवकाई । पायों सुख सो आज सुहाई ॥

हे परम कृपालु! आपकी इन पवित्र 'चरण पादुकाओं' को प्राप्त कर मैं इस समय पूर्ण–काम हो गया हूँ। प्रभु श्री राम जी महाराज के साथ रहते हुए मुझे सेवा करने का जो सुन्दर सुख प्राप्त होता वही सुख मैंने आज प्राप्त कर लिया।–––

योग क्षेम सब अवधहिं केरा । करिय पादुका अवशि घनेरा ॥
सुख सह राखी प्रजहिं बसाई । चारहु फल देइय मन भाई ॥

–––श्री अयोध्यापुरी का महान योग–क्षेम श्री चरण पादुकायें अवश्य ही करेंगी तथा प्रजावर्ग को सुख पूर्वक पालन करते हुये, मनोभिलषित चारों फल प्रदान करेंगी।–––

सीय राम पद प्रेम अपारा। ज्ञान विराग योग शुभ सारा ॥
करि प्रदान पद त्राण विशेषी। सदा बढ़ाइय भाव अलेखी ॥
धरम करम जे वेद निरूपे। राखी जन जन सहज स्वरूपे ॥

–––'श्री चरण पादुकायें' श्री सीताराम जी के चरणों में अपार प्रेम, ज्ञान, वैराग्र, योग एवं सम्पूर्ण शुभ–श्रेष्ठ मांगलिक वस्तुये विशेष रूप से प्रदान कर सदैव अनिर्वचनीय सुन्दर भाव बृद्धिंगत करती रहेंगी तथा जिन धर्मों व आचरणों का वेदों ने निरूपण किया है उनके सहज स्वरूप को प्रत्येक जनों में बनाये रखेंगी।

दो0– मोकहँ हिय विश्वास प्रभु, पाँवरि कृपा महान ।
अघटित घट अरु घट अघट, शक्ति अवध बस जान ॥१६३॥

–––हे प्रभु! मेरे हृदय में तो महान विश्वास है कि– आपकी इन चरण पादुकाओं की महान कृपा से श्री अयोध्यापुरी में असम्भव को सम्भव तथा सम्भव को असम्भव बनाने की शक्ति आ जायेगी।–––

राम लखन सम मम हित कारी । चरण पादुका नाथ तुम्हारी ॥
अक्षर युगल रकार मकारा । तेहिं सम जीवहिं करि भव पारा ॥

हे मेरे स्वामिन्! आपकी चरण–पादुकाएँ मेरे लिए श्री राम जी एवं श्री लक्ष्मण कुमार जी के समान हितकारी हैं। ये युगल चरण पादुकायें आपश्री के परम पावन नाम के युगल अक्षर 'र' और 'म' के स्वरूप वाली हैं। अतः ये उन्ही के समान जीवों को भव से पार करने वाली हैं।

प्राण अधार नाथ पद त्राणा । जिऔं अवधि लगि पाइ सुजाना ॥
पाँवरि आयसु प्रभु कैंकर्या । करिहौं सब विधि निज शिर धर्या ॥

हे नाथ! आपकी पद–रक्षिका चरण–पादुकायें तो मेरी प्राणाधार हैं, मैं आपकी परम सुजान पाद–त्राणों को प्राप्त कर वनवास की समयावधि तक जीवन धारण किये रहूँगा तथा इन पादुकाओं की आज्ञा शिरोधार्य कर सभी प्रकार से प्रभु–कैंकर्य करता रहूँगा।

प्रभु बिनु पाँवरि पाइ सहाई । प्रिय बहुरन हिय आस लगाई ॥
जियत करत गुरु मातु सुसेवा । देहुँ बिताय अवधि दिन देवा ॥

———प्रभु श्री राम जी महाराज के वियोग में प्रभु चरण पादुकाओं की सहायता प्राप्त कर श्री राम जी महाराज के वापस आने की प्रिय आशा से जीवन धारण किए हुए तथा श्री गुरुदेव जू एवं अम्बा श्री कौशिल्या जी आदि माताओं की सुन्दर सेवा करते हुए हे देव! मैं वनवास की अवधि के दिनों को व्यतीत कर दूँगा।———

सकुचि छोंड़ि इक विनय पाला। करहुँ सुनिय प्रभु प्रणतन कृपाला ॥
बीते अवधि प्रथम दिन नाथा। जो नहिं करिहैं आय सनाथा ॥
तौ पुनि मोंहि जियत नहिं पइहै । समय चुके विरथा पछितैहैं ॥

———हे आश्रित जनों का पालन करने वाले, परम कृपालु मेरे स्वामी श्री राम जी महाराज! मैं संकोच छोड़कर एक विनती कर रहा हूँ आप उसे सुन लीजिये, हे नाथ! यदि वनवास की अवधि समाप्ति होने के प्रथम दिन आपने आकर मुझे सनाथ नहीं किया तो मुझे जीवित नहीं पायेंगे और समय बीत जाने पर आपको व्यर्थ ही पछताना पड़ेगा।———

दो0— सत्य सन्ध रघुनाथ तव, हौं प्यारो लघु भाइ ।
वृथा न कहौ समाज बिच, प्रभु सो कौन दुराइ ॥१६४॥

———हे सत्यव्रती, रघुकुल के स्वामी, श्री राम जी महाराज! मैं आपका प्रिय अनुज भरत, इस समाज के मध्य वृथा सम्भाषण नहीं कर रहा, क्योंकि अपने स्वामी से मेरा छिपाव ही क्या है।

कहत कहत अस हिय भरि आयो । सके न बोलि नयन जल छायो ॥
बहुरि गिरे प्रभु चरणन माहीं। लिय लगाय रामहुँ हिय पाहीं ॥

ऐसा कहते हुए श्री भरत जी का हृदय गद्‌गद् हो गया और वे कुछ भी बोल न सके। पुनः श्री भरत जी अश्रु प्रपूरित नेत्रों से प्रभु श्री राम जी के चरणों में गिर पड़े और श्री राम जी महाराज ने उन्हें अपने हृदय से लगा लिया।

करि दुलार समुझाय अकामा । आवन कहेव अवध सुख धामा ॥
भरत प्रेम लखि तिरहुत राजा । गुरु बसिष्ठ सह ऋषिन समाजा ॥

सर्व सुखों के आगार व सर्वथा निष्काम श्री महाराज ने श्री भरत जी का दुलार करते हुए समझाया कि— मैं वनावधि समाप्त होते ही श्री अयोध्यापुरी वापस आ जाऊँगा। प्रेम मूर्ति श्री भरत जी के प्रेम को देखकर, तिरहुत नरेश श्री जनक जी महाराज व गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी सहित सम्पूर्ण ऋषि मुनियों का समाज———

भे विभोर मति गई न तहँवा । मन थिति रही भरत की जहँवा ॥
प्रेम योग सरि कवनेहु योगा । करि न सकै यह शास्त्र नियोगा ॥

———विह्‌वल हो गया, उन सभी की बुद्धि श्री भरत जी की मनः स्थिति तक नहीं पहुँच पायी।

'प्रेम–योग' की समानता कोई भी (कर्म, ज्ञान व अष्टांग आदि) योग नहीं कर सकते यह शास्त्रों का समवेत कथन है।

देखेव सब सो आँखिन माहीं। राम भरत गति अकथ अथाहीं॥
प्राण प्राण रघुवीर पियारे। भरत भये तिन प्राण सहारे॥

श्री राम जी महाराज एवं श्री भरत जी की प्रेम की अकथनीय एवं अथाह स्थिति के माध्यम से सभी ने अपने नेत्रों से दर्शन किया कि– श्री भरत जी, सभी जीवों के प्राणों के प्राण प्रिय श्री राम जी महाराज के भी प्राणाधार हो गये हैं।

दो0– अमित शक्ति प्रभु प्रेम में, कर्षे तीनहुँ लोक।
कर्मठ योगी ब्रह्म विद, करि न सके निज रोक॥१६५॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– 'प्रभु प्रेम' में असीमित शक्ति है जिसने तीनों लोकों को आकर्षित कर लिया है, तभी तो बड़े–बड़े कर्मानुष्ठानी, योगाश्रयी एवं ब्रह्म–वेत्ता भी प्रेम की ओर आकर्षित होने से अपने आपको रोक नही सके।

भरत प्रेम कणिका जल माहीं। डूबि गये तन मन सुधि नाहीं॥
सबहिन आनँद लहे अपारा। जो निज साधन नाहिं निहारा॥

वे सभी श्री भरत जी के प्रभु–प्रेम–जल की एक बूँद में आत्मसात हो गये, उन्हें शरीर और मन की स्मृति भी नहीं रही। उन सभी ने असीम आनन्द प्राप्त किया जो उन्हें अपने साधनों में दृष्टिगत भी नहीं होता था।

ब्रह्मानन्द सौ गुणों पाये। प्रेमानन्द महँ गये लुभाये॥
बड़े बड़े ज्ञानिहुँ जहँ भूलैं। तहँ की दशा कौन विधि तूलैं॥

उन सभी ने ब्रह्मानन्द से सौ गुना अधिक श्रेष्ठ प्रेमानन्द को प्राप्त कर लिया और उसमें लुब्ध हो गये थे। निमिकुल आचार्य श्री याज्ञबल्क्य जी महाराज, रघुकुल आचार्य श्री बशिष्ठ जी महाराज व श्री विदेह राज जी महाराज जैसे बड़े–बड़े ज्ञानी भी जहाँ अपने ज्ञान को भूल गये हैं, वहाँ के स्थिति की तुलना किसी अन्य योग से कैसे की जा सकती है।

पुनि धरि धीर भरत प्रिय बोले। सबहिं सुखद वर बचन अमोले॥
राज तिलक कर साज सजाई। आये रहे इहाँ रघुराई॥

पुनः धैर्य धारण कर श्री भरत जी, सभी को सुखप्रद, प्रिय, सुन्दर व अनमोल वचन बोले– हे रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज! हम सभी यहाँ राज्य–तिलक की सम्पूर्ण सामग्री सजा कर आये हैं।–––

कोटिन तीरथ शुभ जल आनी। जानहिं सब प्रभु अन्तर जानी॥
राम कहेव बिन अवधि बिताये। तिलक उचित नहिं मोरे भाये॥

–––हम आपके अभिषेकार्थ करोड़ों तीर्थो का शुभ जल लेकर आये हैं, यह सब तो अन्तरयामी प्रभु जानते ही हैं। श्री भरत जी के वचनों को सुनकर श्री राम जी महाराज ने कहा– हे

मेरे प्रिय बन्धु श्री भरत जी! वनवास की अवधि व्यतीत होने के पूर्व राज्य तिलक करना मेरी दृष्टि में उचित नहीं है।———

दो0— तीरथ जल राखहिं इतहिं, जो गुरु आयसु देंय ।
अस कहि रघुपति सकुचि मन, भरत प्रेम रस लेंय ॥१६६॥

———यदि श्री गुरुदेव जी आज्ञा प्रदान करे तों 'तीर्थों' का पवित्र जल यही रखवा दीजिए, ऐसा कहकर श्री राम जी महाराज मन में संकुचित हो गये और श्री भरत जी के प्रेमानन्द का रसास्वादन करने लगे।

छं0— प्रभु पाइ आयसु भल भरत, द्रुत जाइ गुरु चरणन लगे ।
कर जोरि विनवत प्रेम पगि, मन आस इक हिय महँ जगे ॥
जल कोटि तीरथ जो प्रभो, अभिषेक करि पद त्राणहीं ।
पुनि पूजि आदर भाव ते, नृप पद बिठा सुख पावहीं ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज की सुन्दर आज्ञा प्राप्त कर, श्री भरत जी, शीघता पूर्वक गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी के चरणों में प्रणाम कर, हाथ जोड़, प्रभु—प्रेम में डूबकर प्रार्थना किये— हे नाथ! मेरे ह्रदय में एक मनोभिलाषा जागृत हो रही है कि— हे प्रभु! यह जो करोड़ों तीर्थो का जल है, उससे प्रभु चरण पादुकाओं का अभिषेक कर मैं आदर पूर्वक, भावमग्न हो उनका पूजन करूँ एवं उन्हें श्री अयोध्या पुरी के राज्य सिंहासन में विराजकर सुख संप्राप्त करूँ।———

लखि लोग उत्सव सुठि सुखद, यहि ठौर आनँद मन भरैं ।
करि आस धीरज धारि पुनि, जन वर्ष चौदह तप करैं ॥
सुनि बैन गुरुवर हर्ष हिय, भरतहिं सुआयसु दीन्ह है ।
तुम अवशि पूजहु लाल पाँवरि, शरण हर्षण लीन्ह है ॥

———एतदर्थ सभी, इस स्थान में सुन्दर एवं सुख प्रदायक उत्सव का दर्शनकर आनन्दित हों तथा धैर्य—धारण कर श्री राम जी महाराज के अयोध्या पुरी पदार्पण की कामना करते हुए चौदह वर्षो तक तपस्या करें। श्री भरत जी के वचनों को सुनकर रघुकुल आचार्य श्री बसिष्ठ जी ने हर्षित ह्रदय श्री भरत जी को आज्ञा प्रदान की, कि— हे लाल श्री भरत जी! जिनकी शरण आपने हर्षित होकर ग्रहण की है उन श्री प्रभु—पद पादुकाओं का पूजन आप अवश्य ही कीजिये ।

सो0—सुनि सुनि तिरहुत राव, मगन होहिं प्रिय प्रेम जल ।
सुखद भरत भल भाव, सबहिं सिखावत प्रेम पथ ॥१६७॥

श्री भरत जी व रघुकुल गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी के मध्य हुई वार्ता श्रवण कर तिरहुत नरेश श्री जनक जी महाराज प्रेमानन्द के आधिक्य से प्रवाहित प्रेमाश्रुओ में मग्न हो गये और बोले— राज कुमार श्री भरत जी के सुख प्रदायक सुन्दर भाव धन्य हैं, जो सभी जनों को प्रेम मार्ग में चलने हेतु प्रेरणा प्रदान करते हैं।

भरत तुरत सब साज मँगाई। करन हेतु अभिषेक सुहाई ॥
कनक थार धरि प्रभु पद आना । करहिं शुभद अभिषेक महाना ॥

रघुकुल आचार्य श्री बसिष्ठ जी की सुखदायी आज्ञा प्राप्तकर श्री भरत जी ने शीघ्रता पूर्वक अभिषेक करने हेतु समग्र सुन्दर सामग्री मँगवा ली एवं श्री प्रभु चरण पादुकाओं को स्वर्ण थाल में रख कर उनका शुभदायक महान अभिषेक करने लगे।

वेद मंत्र मुनिवरन उचारे। देखत सुर नभ भये सुखारे ॥
वरषि सुमन धुनि करत नगारा। जय जय छायो शब्द अपारा ॥

सभी ऋषि–मुनि वेद मन्त्रों का उच्चारण कर रहे हैं, आकाश से उत्सव देखकर देवता सुखी हो रहे हैं तथा नगाड़े बजाते हुए पुष्पों की वरषा कर रहे हैं। उस समय वहाँ जय–जयकार की विपुल ध्वनि छायी हुई है।

चढ़ी विमानन सुर मृग नयनी । नाचहिं गावहिं कोकिल बयनी ॥
तीरथ जल सों करि अभिषेका। पाँवरि दीन्हे आसन एका ॥

देवताओं की मृगलोचनी अंगनाएँ विमानों में चढ़ी हुई कोकिल–कण्ठ से गायन करती हुई नृत्य कर रही हैं। इस प्रकार श्री भरत जी ने श्री चरण पादुकाओं को असीमित तीर्थों के जल से अभिषेक कर, एक आसन में विराज दिया।

पूजे सविधि समय अनुहारी । भरत दिये परदक्षिण चारी ॥
करि वर विनय दण्डवत कीन्हें। हिय लगाय पुनि शीशहिं लीन्हें ॥

समयानुसार विधि–पूर्वक श्री राम चरण पादुकाओं का पूजन कर श्री भरत जी ने चार प्रदक्षिणायें की एवं सुन्दर प्रार्थना कर उनको दण्डवत प्रणाम किये। पुनः उन्हें हृदय से लगा कर अपने शिर में धारण कर लिये।

अश्रु जलहिं पुनि सींच सुहाये । सिंहासन पाँवरि पधराये ॥
छत्र चमर गहि निज कर माहीं । सेवत भरत खड़े पुलकाहीं ॥

पुनः श्री भरत जी ने श्री राम चरण पादुकाओं को प्रेमाश्रुओं से सिंचन कर श्री अयोध्या पुरी के सुशोभन राज्य सिंहासन में प्रतिष्ठित कर दिया तथा पुलकित शरीर, अपने हाथों में छत्र व चँवर लेकर सेवा करने लगे।

दो0– मिथिला अवध समाज दोउ, पाँवरि शरण सुलीन ।
यथा समय उत्सव मगन, छिन छिन भाव नवीन ॥१६८॥

उस समय दोनो श्री मिथिलापुरी एवं श्री अयोध्यापुरी के समाज ने श्री प्रभु–पद पादुकाओं की शरण ग्रहण की तथा समयानुसार प्रत्येक क्षण नवीन भाव में भावित हो उत्सव में मग्न हो गये।

दीन्हे भरत बहुत विधि दाना । विप्र साधु सुर कहि सनमाना ॥
करत प्रशंसा भरत लाल की । सुरनर मुनि मन मुदित बाल की ॥

श्री भरत जी नें ब्राह्मणों, साधुओं एवं देवताओं को सन्मानित कर विविध प्रकार से दान दिया। चक्रवर्ती नन्दन श्री भरत जी के भाव को देखकर उस समय देवता, मनुष्य एवं ऋषि–मुनि सभी प्रसन्न मन हो श्री भरत जी की प्रशंसा कर रहे थे।

जड़ चेतन जहँ लगि जग जीवा। भरत प्रशंसहि भाव अतीवा ॥
गुरु बसिष्ठ तब अत्रि बुलाई। बोले मुनि कहँ देत बड़ाई ॥

संसार के चराचर सभी जीव समुदाय श्री भरत जी के महान भाव की प्रशंसा कर रहे थे। अनन्तर गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी ने मुनिवर श्री अत्रि जी को बुलवाया एवं उनकी प्रशंसा करते हुए बोले–

जासु तिया मन्दाकिनि आनी। तप बल ईश चरण जल जानी ॥
परम पुनीत अमित अघ हारिणि। बहति विमल चितकूट विहारिणि ॥

जिनकी सह–धर्मिणी श्री अनुसुइया जी ने अपने तपस्या के प्रभाव से परमात्मा के चरण–जल (श्री गंगा जी) के समान श्री मन्दाकिनी जी को पृथ्वी में उतार लिया है, जो परम पवित्र असीमित पापों को हरण करने वाली और श्री चित्रकूट में विहार करती हुई प्रवाहित होती हैं।

ताकी महिमा केंहि विधि गाई। भये पुत्र विधि हरि हर आई ॥
राम चरण पाँवरि जल एहा। बिनु श्रम मिल्यो धरहिं कहँ तेहा ॥

उनकी महिमा का गायन हम किस प्रकार करें जिनके यहाँ आकर श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी एवं श्री शंकर जी स्वयं पुत्र बने हैं। हे ऋषि प्रवर श्री अत्रि जी! श्री राम जी महाराज की चरण पादुकाओं का परम पवित्र प्रच्छालित यह जल, जो बिना परिश्रम ही हम सभी को प्राप्त हो गया है, उसे कहाँ ? रखा जाय।

दो0– राम कृपा विधि वश भयो, भरत हाथ उपकार।
महा महिम महिमा ह्रदय, मुनिवर लेंहि विचार ॥१६९॥

हे मुनिवर श्री अत्रि जी! आप तो महान महिमा सम्पन्न एवं विशाल ह्रदय हैं, आप स्वयं विचार कर लीजिये कि– श्री राम जी महाराज की कृपा से, श्री ब्रह्मा जी के संयोगवश, महा–भागवत श्री भरत जी के हाथ से यह महान उपकार हुआ है।

अत्रि कहेउ सुनियहिं मुनिराई। यहि जल महिमा जाय न गाई ॥
चित्रकूट गिरि पश्चिम देशा। कछुक दूरि पावन थल वेशा ॥

मुनिराज श्री बसिष्ठ जी के वचनों को श्रवणकर महा–मुनि श्री अत्रि जी ने कहा हे मुनिवर श्री बसिष्ठ जी! सुनिये, श्री राम चरण पादुकाओं के प्रच्छालित इस जल की महानता का वर्णन नहीं किया जा सकता। हे महा महिम्न! श्री चित्रकूट गिरि से पश्चिम दिशा में, कुछ दूरी पर, एक पवित्र सुन्दर स्थल है।–––

सिद्ध सुथल तेहिं जानि अनादी। लुप्त भयो जानहिं परवादी ॥
प्रगट करहिं सोइ भरत सुजाना। कूप खनावैं तहाँ महाना ॥

———वह स्थली अत्यन्त सिद्ध व अनादि है जो अब लुप्त हो गयी है, इस रहस्य को परमात्म–वेत्ता आप स्वयं जानते हैं। सुजान राजकुमार श्री भरत जी! उस स्थान को प्रगट करें तथा वहाँ एक विशाल कूप खुदवायें।———

तेहिं महँ राखैं जल हर्षाई। पावन अमित वरणि नहिं जाई॥
भरत कूप तेहिं नाम प्रसिद्धा। होइहिं जग महँ दायक सिद्धा॥

———तदनन्तर उस कूप में इस परम पवित्र अनिर्वचनीय महिमा सम्पन्न "प्रभु–पद–पादुकाओं के प्रच्छालित जल को हर्षपूर्वक रखवा दें। वह कूप, "श्री भरत कूप" के नाम से संसार में प्रसिद्ध एवं महान सिद्धियों का प्रदाता होगा।———

प्रेम नेम सह मज्जत लोगा। भुक्ति मुक्ति लहिहैं बिनु योगा॥
सुनि बशिष्ठ द्रुत आयसु दीना। कूप खनन हित तहाँ नवीना॥

———जिसमें प्रेम और नियम पूर्वक स्नान करने से लोग बिना साधन ही भुक्ति और मुक्ति प्राप्त करेंगे। मुनिवर श्री अत्रि जी के वचनों को श्रवणकर श्री बसिष्ठ जी ने उस "अनादि सिद्ध स्थल" में शीघ्र ही नवीन कूप खुदवाने की आज्ञा प्रदान की।

दो0– कूप बनेउ तहँ अति रुचिर, देखत आनँद होय।
पावन पय भरि वासनन, चले लोग मुद मोय॥१७०॥

इस प्रकार शीघ्र ही वहाँ, अत्यन्त सुहावने कूप का निर्माण हुआ जिसे देखते ही हृदय में आनन्द उत्पन्न हो जाता था। श्री चरण पादुकाओं का परम पवित्र अभिषेक जल, सुन्दर पात्रों में भर–भरकर लोग आनन्द पूर्वक वहाँ ले चले।

पाँवरि पय तेहिं कूपहिं राखा। सब सुर परम तीर्थमय भाषा॥
मज्जन पान तहाँ हरषाई। कीन्हे त्रिभुवन जन समुदाई॥

श्री चरण पादुकाओं का वह जल उस कूप में रखवा दिया गया, उस समय सभी देवताओं ने उसे परम तीर्थ स्वरूप "श्री भरत–कूप" कहकर उद्घोषित किया। तीनों लोकों के जन समुदाय ने हर्षित होकर उस महान तीर्थ स्वरूप "श्री भरत–कूप" में समवगाहन किया और उसके परम पवित्र जल का पान किया।

जय जय भरत प्रेम पथ वीरा। कहत सबहिं सुर नर मुनि धीरा॥
कीन्हेउ तात जगत उपकारा। आनँद दायक प्रेम पसारा॥

उस समय सभी देवता, मनुष्य, मुनि एवं प्रबुद्ध–जन, प्रेम पथ प्रवीर श्री भरत जी की जय जयकार करते हुये, कह रहे थे– हे तात्! आपने आनन्द प्रदायक, प्रेम का प्रसारण कर संसार का महान उपकार किया है।———

सिखयो चलन प्रेम पथ माहीं। जेहिं समान कछु साधन नाहीं॥
आये बहुरि थलहिं सब कोई। कीन्हे शयन अर्द्ध निशि जोई॥

———आपने इस माध्यम सभी को प्रेम–मार्ग के अनुसरण का प्रशिक्षण दिया है जिसके समान

अन्य कोई भी साधन नहीं हैं। अनन्तर सम्पूर्ण युगल समाज अपने विश्राम–स्थल आ गये एवं अर्ध रात्रि हुई समझ कर विश्राम किये।

भोर नहाई युगल समाजा । नित्य नेम करि भरत सुभ्राजा ॥
वन्दि गुरुहिं विनती वर कीनी । उठत आस इक हृदय नवीनी ॥

प्रभात काल में दोनों समाज (श्री मिथिला एवं श्री अयोध्या) ने मन्दाकिनी जी में स्नान व नित्य नियमों का निर्वाह किया। पुनः प्रातःकालीन कृत्यों से उपरत होकर श्री भरत जी गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी की चरण वन्दना कर सुन्दर प्रार्थना किये– हे मेरे सद्गुरु देव! मेरे हृदय में एक नवीन अभिलाषा उत्पन्न हो रही है।–––

दो0– राम चरण अंकित अवनि, पुनि सिय राम विहार ।
देखन मन अभिलाष अति, चित्रकूट थल सार ॥१७१॥

–––हे नाथ! श्री राम जी महाराज के चरणों से चिन्हित हुई यहाँ की परम पवित्र भूमि पुनः श्री सीताराम जी के विहार की सर्वोत्तम स्थली श्री चित्रकूट के सम्पूर्ण सुन्दर स्थलों का दर्शन करने की मेरे मन में तीव्र आकांक्षा हो रही है।

मुनिवर कह्यो भरत सुनि लेहू । इहै रुची मोहि कह्यो विदेहू ॥
अवशि चहिय वन पावन देखा । भाव भक्ति हिय होहि विशेषा ॥

श्री भरत जी की प्रार्थना श्रवणकर मुनिश्रेष्ठ श्री बशिष्ठ जी ने कहा– हे श्री भरत जी! सुनिये, ऐसी ही इच्छा मुझसे श्री विदेह राज जी महाराज ने भी प्रगट की थी। अवश्य ही इस पवित्र वन–प्रान्त का दर्शन करना चाहिए क्योंकि इसके दर्शन से सभी के हृदय में विशेष प्रकार की भक्ति–भावना उत्पन्न होगी।

गुरु आपसु लहि भरत सुजाना । गये जहाँ प्रिय भ्रात महाना ॥
जनक सुवन पहुँचे तेहिं ठामा । मिले प्रेम युत रघुवर श्यामा ॥

श्री गुरुदेव जी की आज्ञा प्राप्त कर परम सुजान श्री भरत जी अपने प्रिय व महान भ्राता श्री राम जी महाराज के समीप गये। उसी समय जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी भी वहाँ पहुँचे तथा रघुनन्दन श्री राम जी व श्यामा श्री सिया जू से प्रेम पूर्वक भेंट किये।

चित्रकूट थल विचरन हेता । कही भरत रुचि निजहिं समेता ॥
राम कहा मुनिवर इत अत्री । लहि आयसु बिचरहुँ बनि छत्री ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री राम जी महाराज से चित्रकूट वनस्थली दर्शन करने की अपनी इच्छा सहित श्री भरत जी की इच्छा कह सुनायी। जिसे श्रवण कर श्री राम जी महाराज ने कहा कि– यहाँ निवास करने वाले महा मनस्वी श्री अत्रि जी से आज्ञा प्राप्त कर व उनकी क्षत्र–छाया में रहते हुये इस चित्रकूट वनस्थली का आप सभी दर्शन कर लीजिये।

प्रभु सम्मत कहि अत्रि समीपा । आयसु लिये दोउ कुल दीपा ॥
नित्य न्हाइ अरु करि कछु नेमा । मिथिला अवध समाज सप्रेमा ॥

मुनिवर श्री अत्रि जी के समीप, प्रभु श्री राम जी महाराज की सहमति निवेदन कर श्री निमिकुल व श्री रघुकुल के प्रकाशक श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री भरत जी नें उनकी आज्ञा प्राप्त कर ली और प्रेम पूर्वक नित्य स्नान एवं अपने नियमों का निर्वाह कर, श्री मिथिला एवं श्री अवध के सम्पूर्ण समाज सहित–––

दो0–जाइ लखहिं चितकूट थल, पावन अमल अनूप ।
कहुँ मज्जन कहुँ सींच जल, बनत सुप्रेम स्वरूप ॥१७७॥

–––वे दोनो राजकुमार श्री भरत जी व श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री चित्रकूट गिरि के पवित्र निर्मल एवं अनुपमेय स्थलों में पहुँचकर दर्शन करते हैं। वे कहीं स्नान तो कहीं अपने शीश में मात्र जल सिंचन कर ही सुन्दर प्रेम–स्वरूप हो जाते हैं।

कतहुँ बैठि देखहिं शुचि ठामा । मन महँ सुमिरत श्री सिय रामा ॥
कहहिं महात्म्य परस्पर माहीं । सुनि नर नारि हृदय पुलकाहीं ॥

कहीं सुन्दर पवित्र स्थान देखकर राज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री भरत जी मन में श्री सीताराम जी का स्मरण करते हुए बैठ कर परस्पर श्री चित्रकूट जी के माहात्म्य का वर्णन करते हैं जिसे सुनकर सभी स्त्री–पुरुष पुलकित हृदय हो जाते हैं।

जाहिं धाम ऋषि मुनियन केरे । करि दर्शन प्रणवैं सुख तेरे ॥
दान मान दै विनती करहीं । सीयराम मंगल मन धरहीं ॥

पुनः वे ऋषि–मुनियों के आश्रम में जा–जाकर उनके दर्शन कर सुखपूर्वक प्रणाम करते हैं एवं आदर पूर्वक दान देते हुए सुन्दर प्रार्थना करते हैं तथा श्री सीताराम जी की मंगल कामना ही अपने मन में धारण किये रहते हैं।

भरि दृग देखत दिवि वन शोभा । जहाँ रहत मुनियन मन लोभा ॥
सिया राम पद चिन्ह विलोकी । कहुँ कहुँ होवहिं सबहिं सशोकी ॥

इस प्रकार वे सभी जहाँ मुनियों का मन भी लुभाया रहता है उस श्री चित्रकूट की 'दिव्य वन श्री' का भर नेत्र दर्शन करते हैं। कहीं–कहीं तो नृपति कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी एवं श्री भरत जी भूमि में श्री सीताराम जी के चरण चिन्हों का दर्शन कर अतिशय दुख मग्न हो जाते हैं।

लेत धूरि निज शिरन चढ़ाई । मलत आँखि नव नेह नहाई ॥
बिनु पद त्राण चलत मग रामा । सहित सीय सुन्दर सुख धामा ॥

वे वहाँ की पवित्र धूल को शिर में धारण करते तथा नेत्रों से लगाकर नवीन प्रेम में अवगाहन करने लगते थे कि– हाय! हमारे परमाराध्य, सुन्दर एवं सुखों के धाम, श्री राम जी महाराज, परम सुकुमारी श्री सिया जू सहित वन के मार्ग में बिना पाद–त्राण धारण किये ही चलते हैं।

दो0– करत सुरति होवहिं विकल, कुँअर भरत दोउ लाल ।
फफकत सिसकत महि गिरत, भूलत तन मन काल ॥१७३॥

ऐसी स्मृति कर दोनों नृपति कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी एवं श्री भरत जी व्याकुल हो जाते हैं तथा फफकते व सिसक कर रोते हुए भूमि में गिर पड़ते हैं उन्हें शरीर, मन और समय की स्मृति भूल जाती है।

यहि प्रकार दर्शन हित जाहीं। तिसरे पहर बहुरि पुनि आहीं ॥
कछु दिन महँ सब सब थल देखे। भाव भरे हिय प्रेम विशेषे ॥

इस प्रकार वे सभी, परम पुनीत श्री चित्रकूट वनस्थली के दर्शन के लिए जाते हैं तथा दिन के तीसरे प्रहर में वापस आ जाते हैं। कुछ ही दिनों में सभी ने भाव में भरकर, विशेष प्रेम परिपूरित हृदय से वहाँ के सभी स्थलों के दर्शन कर लिये।

सीता राम सुदर्शन पाई। रहत सुसुख सह लोग लुगाई ॥
जहाँ राम तहँ निज घर द्वारा। साधन सुठि सुख भोग अपारा ॥

पावन स्थली चित्रकूट में श्री सीताराम जी के सुशोभन दर्शन करते हुए सभी स्त्री–पुरुष सुन्दर सुखपूर्वक निवास कर रहे थे। हमारे प्राणाधार श्री राम जी महाराज जहाँ निवास करते हैं वहीं अपना श्रेष्ठ घर–द्वार, उत्तम साधन, सुन्दर सुख एवं असीमित भोग सामग्री है।–––

हिय अस गुनहिं भूलि निज देहा। तहँ नहि सपनेहु सुरति स्वगेहा ॥
मन महँ होय कबहुँ नहि जाई। बसहिं अत्र जहँ सिय रघुराई ॥

–––इस प्रकार का ज्ञान वे सभी, शरीर स्मृति भुलाये हुए अपने हृदय में धारण किये रहते थे तथा वहाँ स्वप्न में भी उन्हे अपने घरों की याद नहीं आती थी। सभी के मन में यही इच्छा होती थी कि– अब यहाँ से हमारा, कभी भी जाना न हो, हम यहीं निवास करें जहाँ हमारे आराध्य श्री सीताराम जी निवास कर रहे हैं।

आगि लगै घर सम्पति माहीं। जो प्रभु दरश छुड़ावत आहीं ॥
मातु पिता भ्राता सुत दारा। पति परिवार मित्र सुख सारा ॥

ऐसे घर और सम्पति में आग लग जाये जो हमारे स्वामी श्री सीताराम जी का अदर्शन कराती हो। हमारे माता, पिता, पुत्र, स्त्री, पति, परिवार, मित्र एवं समस्त सुखोपभोग की वस्तुएँ–––

दो0– राम दरश बाधक बनैं, तो सब कौने काम।
सबहिं त्यागि रघुपति भजै, तब लह जिय विश्राम ॥१७४॥

–––यदि श्री राम जी महाराज के दर्शन में अवरोध करते हैं तो वे किस काम की? अतः भगवद्विरोधी जनों का त्याग कर श्री राम जी महाराज का भजन करने पर ही जीवों का हृदय शान्ति प्राप्त करता है।

एक दिवश श्री जनक कुमारा। समय पाइ बोले निज दारा ॥
प्राण प्रिया सिय राम हमारे। सहित लखन तप वेष सम्हारे ॥

एक दिन श्री जनक कुमार लक्ष्मीनिधि जी ने अनुकूल समय पाकर अपनी धर्म–पत्नी श्री सिद्धि–कुँअरि जी से कहा– हे प्राण–प्रिये! हमारे प्रिय बहन व बहनोई श्री सीताराम जी, श्री लक्ष्मण

कुमार जी सहित तपस्वियों का वेष बनाये हुए–––

बन वसि चौदह वर्ष प्रवीने। तपिहैं तप अति धर्म धुरीने ॥
भरतहिं दैहैं अवध पठाई। राज काज सो धर्म दृढ़ाई ॥

–––परम प्रवीण एवं धर्म धुरीण वे, वन में निवास करते हुए चौदह वर्षो तक तपस्या कर अत्यन्त ही कष्ट प्राप्त करेंगे। श्री भरत जी को तो श्री राम जी महाराज धर्म समझाकर राज्य कार्य हेतु श्री अयोध्यापुरी भेज देंगे।–––

दाऊ कहँ करि भरतहिं साथा। भेजिहैं अवशि राम रघुनाथा ॥
रहन न पैहैं एकहुँ लोगा। सहिहैं सब कोउ राम वियोगा ॥

–––हमारे श्री मान् दाऊ जी को भी अवश्य ही, रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज श्री भरत जी के साथ भेज देंगे। यहाँ कोई भी नहीं रह पायेगा, इस प्रकार सभी लोग श्री राम जी महाराज के वियोग–जन्य दुख को सहन करेंगे।

सुनहु प्रिया मन मोर बिचारा। राम सिया सेवा सुख सारा ॥
ताते बसहिं इतहिं वन माहीं। सेवहिं निशि दिन रामहिं काहीं ॥

अतः हे प्रिया जू! आप मेरे मन के विचारों को श्रवण कीजिये, सभी प्रकार के सुखों का मूल स्रोत श्री सीताराम जी का कैंकर्य है अतएव हम दोनो अहो–रात्रि श्री राम जी महाराज की सेवा करते हुए यहीं वन में निवास करें।–––

दो0– सीय राम बन महँ वसहिं, जाइ रहहिं हम गेह।
भ्रात श्याल तिन कर भये, बृथा जनाये नेह ॥१७५॥

–––क्योंकि हमारे परमाराध्य श्री सीताराम जी वन में निवास करें और हम भवन में जाकर रहें तो श्री सीता जू के भैया और श्री राम जी महाराज के श्याल होकर हमने ब्यर्थ ही उनके प्रति प्रेम सम्बन्ध को प्रगट किया।

सुनत सिद्धि बोली मृदु बानी। प्राण नाथ हिय की सब जानी ॥
इहै कामना मम मन आही। मोहि सह बसहिं नाथ बन माहीं ॥

अपने प्राण वल्लभ श्री लक्ष्मीनिधि जी के वचनों को सुनकर श्री सिद्धि–कुँअरि जी ने कोमल वाणी से कहा– प्राणनाथ तो मेरे हृदय की सभी बाते जानते ही हैं, मेरी यही मनोभिलाषा है कि– मेरे सहित मेरे नाथ आप, यहीं वन में निवास करें।–––

सेवहिं सीय राम सुख साथा। लहहिं जनम फल होहिं सनाथा ॥
सीय राम लगि जीवन आशा। नतरु मरण भल लहि यम फासा ॥

–––इस प्रकार सुखपूर्वक श्री सीताराम जी की सेवा करते हुए जीवन धारण करने के फल को प्राप्त कर सनाथ हो जायें। श्री सीताराम जी की सेवा के लिए ही इस जीवन की आवश्यकता है अन्यथा यम–बन्धन प्राप्त कर मर जाना ही उत्तम है।–––

मातु पिता सन आज्ञा लेहीं । मुनिवर मुदित सुआयसु देहीं ॥
विनय सुनहिं जो पै सियरामा । प्राण नाथ बड़ भाग ललामा ॥

–––अतः श्री अम्बा जी एवं श्री मान् दाऊ जी से आप श्री आज्ञा प्राप्त कर लें, हमारे आचार्य चरण मुनिराज श्री याज्ञवल्क्य जी तो अपनी सुन्दर आज्ञा, हमें प्रदान ही कर देंगे। यदि श्री सीताराम जी हमारी प्रार्थना स्वीकार कर लें, तो हे प्राण नाथ! हमारा अत्यल्त ही सुन्दर सौभाग्य होगा।–––

अवशि महा पुरुषारथ एहा । जीव लहै कैंकर्य सनेहा ॥
साथहिं लखनहु सेवा होई । जीवन सार लहैं हम दोई ॥

–––हे नाथ! जीवों का महान पुरुषार्थ अवश्य ही यही है कि– वे श्री सीताराम जी के कैंकर्य एवं प्रेम को प्राप्त कर लें। इस प्रकार श्री सीताराम जी के साथ–साथ राजकुमार श्री लक्ष्मण जी की भी सेवा हो जाएगी और हम दोनों जीवन धारण करने का चरम फल प्राप्त कर लेगें।

दो0– सिद्धि कुँअरि अरु कुँअर की, यहि विधि होवति बात ।
छिन छिन बढ़ अभिलाष अति, सेवहिं राम सुहात ॥१७६॥

इस प्रकार श्री सिद्धि–कुँअरि जी और कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रिय वार्ता हो रही थी तथा उनके हृदय में प्रतिक्षण यही प्रबल मनोभिलाषा बृद्धिंगत हो रही थी कि– हम श्री सीताराम जी महाराज की सुन्दर सेवा करें।

जानि समय पितु मातु समीपा । गे सिय भ्रात निमी कुल दीपा ॥
चरण बन्दि ठाढ़े कर जोरे । कहि न सकत सकुचत नृप छोरे ॥

तदनन्तर अनुकूल समय समझकर श्री सिया जू के प्रिय भैया व श्री निमिवंश को प्रोद्दीपित करने वाले कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने श्री मान् दाऊ जी एवं श्री अम्बा जी के समीप गये तथा उनकी चरण वन्दना कर हाथ जोड़, खड़े हो गये, राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी, संकोच के कारण कुछ भी कह पाने में असमर्थ हो रहे थे।

लखि शुचि भाव जनक हरषाने । बोले चाहहु काह बखाने ॥
भरि दृग नीर सुखद सिय भ्राता । बोले पितुहिं सुभाव जनाता ॥

उनके पवित्र भाव को देखकर श्री जनक जी महाराज हर्षित हो बोले– हे कुमार! आप क्या चाहते हैं? कहिये, तब आँखों में अश्रु भरकर श्री सीता जी के सुखप्रद भ्राता श्री लक्ष्मीनिधि जी नें श्री मान् दाऊ जी से अपने हृदय के सुन्दर भाव प्रगट करते हुए कहा–

मातु पिता सो आयसु पाऊँ । बन बसि चौदह वर्ष बिताऊँ ॥
सेवहिं सदा राम वैदेही । चाहत बार बार मन एही ॥

हे श्री मान् दाऊ जी! यदि श्री अम्बा जी एवं आपकी आज्ञा प्राप्त हो जाय तो मैं चौदह वर्ष, वन में निवास करते हुए व्यतीत करूँ तथा श्री सीताराम जी की सदैव सेवा करूँ, मेरा मन बारम्बार यही अभिलाषा करता है।–––

विपति माँहि प्रभु काम न आयो । सीय भ्रात बिरथा कहवायो ॥
तव सुत होय हृदय मम चाऊ । सेवहुँ सदा सीय रघुराऊ ॥

———यदि मैं संकट के समय प्रभु श्री राम जी महाराज के काम न आ सका तो व्यर्थ ही श्री सीता जी का भैया कहलाया। आपका आत्मज होने के कारण ही मेरे हृदय में अत्यन्त उत्साह हो रहा है कि– मैं सदैव ही श्री सीताराम जी की सेवा करता रहूँ।———

दो0– मातु जनमि मो कहँ तबहिं, पुत्रवती पद योग ।
नतरु जन्म बिरथा लियो, उदर कीट बनि रोग ॥१७७॥

मेरी श्री अम्बा जी भी मुझे जन्म देकर पुत्रवती पद के योग्य तभी हो पायेंगी जब मैं अपने भगिनी–भाम की सेवा में संलग्न रहूँगा अन्यथा उनके पेट में रोग का कीड़ा बन कर मेरा जन्म धारण करना व्यर्थ ही होगा।

सुनि वर विनय जनक हरषाई । कुँअरहिं बोले गोद बिठाई ॥
धन्य भाव भल प्रेम तुम्हारा । सीयराम पद अमल उदारा ॥

अपने कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी की सुन्दर प्रार्थना सुनकर श्री जनक जी महाराज हर्षित हो गये व उन्हे अपनी गोद में बैठाकर बोले– श्री सीताराम जी के चरणों में आपका निर्मल, उदार और सुन्दर प्रेम व भाव धन्य है।

हमरेहु हृदय माहिं यह बाता । प्रथमहिं उठति रही सुनु ताता ॥
कुसमय परे लाड़िले रामा । सिया लषन सह निज सुख धामा ॥

हे तात! हमारे हृदय में भी यह बात पूर्व से ही उठ रही थी कि– हमारे सुखों के आगार लाड़िले श्री राम जी महाराज, श्री सीता जी एवं श्री लक्ष्मण कुमार के सहित विपरीत समय के फेर में वन में पड़े हुए हैं।———

प्राण प्राण प्रिय सब विधि मोरे । वन वन विचरहिं सुख तृन तोरे ॥
चाहहु करिबी कछुक सहाया । जानि कुँअर मम हिय हुलसाया ॥

———सभी प्रकार से मेरे प्राणों को प्राण–प्रिय श्री राम जी महाराज समस्त सुखों को तृणवत समझ, वनों में विचरण कर रहे हैं। हे कुमार! इस समय, आप उनकी कुछ सहायता करना चाहते हैं यह जानकर मेरा हृदय आनन्दित हो रहा है।———

जो मैं रहहुँ बनहिं सँग माहीं । सकुच होय रामहिं सुख नाहीं ॥
ताते अवशि राम सँग वासा । करहु तात प्रभु प्रेम प्रकाशा ॥

———यदि मैं उनके साथ वन में रहता हूँ तो श्री राम जी को संकोच होगा और वे सुख नहीं प्राप्त करेंगे, इसलिए हे तात! आप अवश्य ही प्रभु श्री राम जी के साथ निवास करिये और भगवत्प्रेम का आलोक विस्तारित कीजिये।

दो0– शंका हिय महँ होति यह, रखिहैं तुम कहँ राम ।
जो होवै संकोच उर, तौ किमि लह विश्राम ॥१७८॥

———परन्तु मेरे हृदय में यह आशंका हो रही है कि— क्या श्री राम जी महाराज आपको अपने साथ रखेंगे? क्योंकि यदि उनके हृदय में संकोच हुआ तो वे किस प्रकार से विश्राम प्राप्त करेंगे———।

जो रघुवीर सुआयसु होई । रहहु वनहिं सेवा हित जोई ॥
पुत्र जये कर सुख बहु पाऊँ । जो तुम सेवहु बन रघुराऊ ॥

———यदि श्री राम जी की आज्ञा प्राप्त हो जाय तो उनके हित को देखते हुए सेवा हेतु आप अवश्य वन में रह जाइये। क्योंकि यदि वन में, आप श्री राम जी महाराज की सेवा कर पायेंगे तो मैं आपको पुत्र रूप में जन्म देने के महान सुख को प्राप्त करूँगा।———

आवत जात अवध महँ रहिहैं । सेवा भाव हमहुँ हिय गहिहैं ॥
भरत सेव करि अवधि प्रमाना । गनिहैं सेवा महत महाना ॥

———हम भी अपने हृदय में सेवा भाव ग्रहण किये हुए श्री अयोध्यापुरी आते–जाते रहेंगे तथा श्री भरत जी की सेवा को ही श्रेष्ठतम समझकर, वन की अवधि समाप्ति पर्यन्त सेवा करते रहेंगे।———

धरहु धीर मैं सभा मँझारा । करिहौं याकर सत निरुवारा ॥
सुनि सुख मानि कुँअर तब गयऊ । सिद्धिहिं बहुरि सुनावत भयऊ ॥

———आप धैर्य धारण कीजिये, मैं सभा के मध्य इसका सत्य निर्णय करूँगा। अपने श्री मान् पिता जी के इस प्रकार के वचनों को सुनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सुखानुभूति करते हुए अपने निवास चले गये, पुनः वे श्री सिद्धि कुँअरि जी को उपरोक्त संवाद सुनाने लगे।

मात पिता सम्मति अति नीकी । जो विधि आश पुरावै जीकी ॥
सुनि सुख मानि सिद्धि रस मेली । सेवा भाव मगन मन भेली ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सिद्धि कुँअरि जी से कहा— श्री अम्बा जी एवं श्री मान् दाऊ जी की अत्यन्त सुन्दर सहमति तो प्राप्त हो गयी है, परन्तु जो, विधाता हमारे हृदय की अभिलाषा को पूर्ण कर दें तो हम पूर्णकाम हो जाँय। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के वचनों को श्रवणकर श्री सिद्धि कुँअरि जी ने अतिशय आनन्द (रस) प्राप्त किया एवं श्री राम जी महाराज की सेवा प्राप्त होगी इस भाव में उनका मन मग्न हो गया।

दो०– सीय राम सेवा सरस, दम्पति गुनि मन माँहिं ।
हिय पुलकहिं अति प्रेम वश, मिथिला सुधि तन नाहिं ॥१७९॥

श्री सीताराम जी की रस परिपूर्ण सेवा प्राप्त होगी, ऐसा मन में अनुभव करते ही श्री जनक नन्दन दम्पति का हृदय पुलकित हो गया तथा अत्यन्त प्रेम के कारण उन्हें श्री मिथिलापुरी एवं अपने शरीर की स्मृति भी नहीं रही।

मिथिला अवध सकल नर नारी । राम देखि बहु होहिं दुखारी ॥
तदपि रजाय ईश बड़ि भारी । शासहिं सबै न सक कोउ टारी ॥

यद्यपि श्री मिथिलापुरी एवं श्री अयोध्यापुरी के सभी स्त्री–पुरुष, श्री राम जी महाराज को वन

में निवास करते हुये देखकर, अत्यन्त दुखी हो रहे थे तथापि सर्वेश्वर श्री राम जी महाराज की महती आज्ञा का सभी लोग पालन कर रहे थे, कोई भी उनकी आज्ञा की अवहेलना नहीं कर पाता था।

भोर न्हाइ रघुनाथ बिचारा । शुभ दिन आज हेतु पग धारा ॥
करि बिचार सकुचहिं बहु रामा । केहिं विधि कहहिं जाहिं सब धामा ॥

प्रातः श्री राम जी महाराज ने स्नान कर विचार किया कि– इन सभी के प्रस्थान के लिए आज का दिन अतिशय शुभ है। ऐसा विचार कर वे अत्यन्त संकुचित होते हैं कि– हम, किस प्रकार यह कहें कि– अब सभी लोग अपने–अपने धाम श्री अयोध्या पुरी व मिथिलापुरी को वापस जाइये।––

जो न कहौं असमंजस होई । मोहिं लगि सहत दु:ख सब कोई ॥
जन दुख देखि दुखी प्रभु होहीं । कृपा सिन्धु मूरति भलि मोही ॥

–––परन्तु यदि मैं नहीं कहता हूँ तो मेरे हृदय में बड़ी दुविधा होती है कि– मेरे कारण सभी जन अत्यन्त कष्ट सहन कर रहे हैं। श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि– हे तात श्री हनुमान जी! हमारे प्रभु श्री राम जी महाराज अपने भक्तों के दुखों को देखकर अत्यन्त ही दुखी होते हैं क्योंकि वे कृपा के सागर एवं करुणा के साक्षात् सुन्दर विग्रह हैं।–––

भरि भल भाव भानुकुल भानू । कीन्हें गुरुहिं प्रणाम सुजानू ॥
पुनि कर जोरि सकुचि शिर नाई । बोले बचन सुभाव सुहाई ॥

–––तब सूर्यकुल के सूर्य परम सुजान श्री राम जी महाराज सुन्दर भाव में भरकर गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी को प्रणाम किये। पुनः हाथ जोड़, संकुचित हो सिर झुकाकर अपने हृद्गत, सुन्दर भाव मधुर वाणी से प्रगट किये–––

दो0– आज दिवस सुन्दर सुखद, करिबे हेतु पयान ।
होय उचित जस करहिं प्रभु, राउर ज्ञान निधान ॥१८०॥

–––हे नाथ! यद्यपि, प्रस्थान करने के लिए आज का दिन सुन्दर और सुख–प्रदायी है पुनः जैसा उचित हो आप वैसा ही करें क्योंकि आप तो स्वयं ज्ञान के कोष हैं।

यहि बड़ि मोरि ढिठाई नाथा । गुरुवर क्षमहिं धरौं पद माथा ॥
अस कहि चुपहिं रहे रघुवीरा । शिर नत किये सकुच गंभीरा ॥

हे नाथ! मेरी इस महान धृष्टता को श्री गुरुदेव जी क्षमा करेंगे। मैं आपके चरणों में शिर झुका प्रणाम करता हूँ। ऐसा कहकर श्री राम जी महाराज चुप हो गये तथा शिर झुकाए हुए संकुचित व गम्भीर हो गये।

जानि राम रुचि ऋषिवर ज्ञानी । सबहिं बुलाये आयसु दानी ॥
मिथिला अवध समाज सुपूरी । भरत जनक युत मुनि गन भूरी ॥

तब परम ज्ञानवान ऋषि–श्रेष्ठ श्री बशिष्ठ जी ने श्री राम जी महाराज के हृदय की इच्छा जानकर सभी को बुलाने की आज्ञा प्रदान की जिसे श्रवण कर श्री भरत जी, श्री जनक जी महाराज एवं सम्पूर्ण मुनियों सहित श्री मिथिलापुरी एवं श्री अयोध्यापुरी का सम्पूर्ण समाज वहाँ आ गया।

राम गुरुहिं सब कीन्ह प्रणामा। बैठे निरखहिं शशि मुख रामा॥
बोले मुनिवर सबहिं समाजा। सुखद मुहूरत सुन्दर आजा॥

सभी ने श्री राम जी महाराज के सद्‌गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी को प्रणाम किया तथा श्री राम जी महाराज का मुखचन्द दर्शन करते हुए बैठ गये। तब मुनिराज श्री बशिष्ठ जी ने कहा– सम्पूर्ण श्री मिथिला व श्री अवध समाज श्रवण करें, आज अत्यन्त ही सुखप्रद एवं सुन्दर मुहूर्त है।–––

चहिय चलन प्रभु रुख अनुसारा। परम धरम सब श्रुतियन सारा॥
सुनत सहम गे सब नर नारी। अगिन आँच जनु लता दुखारी॥

–––अतएव प्रभु श्री राम जी महाराज की इच्छा के अनुसार हम लोगों को अवश्य ही आज प्रस्थान कर देना चाहिये, क्योंकि इनकी इच्छा का पालन करना ही परम धर्म एवं सम्पूर्ण श्रुतियों का सार है। श्री बशिष्ठ जी के इन वचनों को सुनकर सभी स्त्री–पुरुष उसी प्रकार भयाक्रान्त हो गये जैसे कोई लता अग्नि के ताप दुखी हो जाती है।

दो0– विशद विरह हिय महँ बढ्यो, सबहिं श्रवत दृग नीर।
काँपहि थर थर नारि नर, सात्विक भाव गम्भीर॥१८१॥

सभी के हृदय में प्रबल प्रभु–विरह बृद्धिंगत हो गया, सभी के नेत्रों से अश्रु बहने लगे तथा सभी स्त्री–पुरुष सात्विक भावों की गम्भीरता के कारण थर–थर काँपने लगे।

लक्ष्मीनिधि रघुपति पहँ आये। विरह विकल जल नयनन छाये॥
चरण पड़े प्रेमाकुल भारी। कहि न सकत कछु विरह विदारी॥

उसी समय निमिकुल कीर्तिध्वज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु–विरह से व्याकुल, अश्रु बहाते हुए श्री राम जी महाराज के समीप आये तथा प्रेम विह्वल होकर उनके श्री चरणों में गिर पड़े, वे कुछ भी बोल न सके, उनका हृदय वियोगजन्य पीड़ा से विदीर्ण हुआ जा रहा था।

तब उठि जनक हाथ दोउ जोरी। राम गुरुहिं बोले रस भोरी॥
राम सिया लगि चौदह वर्षा। चहत बसन वन कुँअर सहर्षा॥

तब श्री जनक जी महाराज उठकर दोनों हाथ जोड़, रस में विभोर हो श्री राम जी महाराज के गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी से बोले कि– कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी हर्ष पूर्वक, श्री सीताराम जी की सेवा में चौदह वर्षो तक वन में निवास करना चाहते हैं।–––

निज तिय सहित इहहिं करि वासा। सेवन चह सिय राम हुलासा॥
कुँअरहुँ इत सब भाँतिहिं तेरे। रहिय सुखी दरशन कर नेरे॥

–––ये अपनी धर्मपत्नी श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित यहाँ निवास कर आनन्द पूर्वक श्री सीताराम जी की सेवा करना चाहते हैं। यहाँ कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी, श्री सीताराम जी के दर्शन करते हुए, समीप रह कर सभी प्रकार से सुखी रहेंगे।–––

सब विधि सम्मत मोर समाता। पायो कुँअर हर्ष हिय गाता॥

हौहूँ नाथ अवध पुर जाई । लखिहौं सब विधि भरत भलाई ॥

———हर्षित हृदय व पुलकित वपु कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने सभी प्रकार से अपनी श्री अम्बा जी सहित मेरी सहमति प्राप्त कर ली है। हे नाथ! मैं भी श्री अयोध्या पुरी जाकर सभी प्रकार से श्री भरत जी की कुशलता का निरीक्षण करता रहूँगा।

दो0– समय समय सेवा सरस, अवध केर मुनि नाथ ।
बनत रही तव दास ते, आयसु धरि निज माथ ॥१८२॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर आपके सेवक इस 'जनक' से समय–समय में श्री अयोध्यापुरी की सुन्दर रसमयी सेवा बनती रहेगी।———

यदपि अपेक्षा सेवा केरी । राम तनिक नहिं निज हिय हेरी ॥
अवधहुँ स्वयं सिद्ध सब कामा । राउर गुरु जहँ बस मति धामा ॥

———यद्यपि श्री राम जी महाराज अपने हृदय में किसी प्रकार के सेवा की किंचित भी अपेक्षा नहीं रखते। पुनः जहाँ आप श्री के समान बुद्धि के धाम श्री गुरुदेव निवास करते हों उस श्री अयोध्यापुरी के भी सभी कार्य स्वयं ही सिद्ध हैं।———

तदपि जीव कर सहज स्वरूपा । प्रभु अधीन कैंकर्य अनूपा ॥
सोइ सेवा शुचि चहत कुमारा । काह कहहिं रघुनाथ उदारा ॥

———तथापि जीव का सहज स्वरूप अपने स्वामी के आधीन रहते हुए कैंकर्य करना है। अतएव कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी उसी पवित्र सेवा की कामना करते हैं, इस सम्बन्ध में परम उदार, रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज का क्या कथन है?

कह बसिष्ठ सुनु सुन्दर श्यामा । आयसु देवहिं काह अकामा ॥
राम कुँअर कहँ हृदय लगाई । नयन वारि दीन्हे अन्हवाई ॥

श्री विदेहराज जी महाराज के वचनों को श्रवण कर, मुनिराज श्री बशिष्ठ जी ने कहा– हे निष्काम श्याम सुन्दर रघुनन्दन! सुनिये, आपकी क्या आज्ञा है? तब श्री राम जी महाराज ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को हृदय से लगाकर उन्हे अपने प्रेमाश्रुओं से स्नान करा दिया।

बोले बचन सरल सुख सारी । कृपा निधान कुँअर हितकारी ॥
सुनहिं सुजन जन बात हमारी । कहहुँ कुँअर प्रति हृदय बिचारी ॥
गुरु प्रसाद कुँअरहिं सब ज्ञाना । प्रेम खानि विज्ञान निधाना ॥

पुनः कृपा के निधान व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के परम हितकारी श्री राम जी महाराज सुख पूर्वक सरल वचनों से बोले– हे मेरे आत्मीय जनो! मैं कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रति अपने हृदय में विचार कह रहा हूँ, आप लोग श्रवण करें। निमिकुल आचार्य श्री याज्ञवल्क्य जी के कृपा प्रसाद से कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को सभी प्रकार का ज्ञान है तथा वे प्रेम के कोष एवं विज्ञान के निधान हैं।———

दो0– मम हिय जाननहार सो, बसत हृदय नित मोर ।

कुँअर हृदय हौहूँ बसत, जानहुँ भाव अथोर ॥१८३॥

———कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, मेरे हृदय की सभी बाते जानने वाले व नित्य मेरे हृदय में निवास करने वाले हैं। पुनः मैं भी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में निवास करता हूँ अतः उनके महान भाव को भली प्रकार जानता हूँ।———

प्राण प्राण इक एकन केरे । बने रहैं नित दोऊ नेरे ॥
मोहि वश कियो आपने प्रेमा । मम बस रहत सोउ कर नेमा ॥

———अतः हम दोनो एक दूसरे के प्राणों के प्राण बने हुए नित्य ही एक दूसरे के समीप बने रहते हैं। इन्होंने मुझे अपने प्रेम के वशीभूत कर लिया है तथा ये भी प्रेम–नियम में बँधे हुये मेरे वशीभूत रहते हैं।———

प्रीति अलौकिक हम दोउ केरी । कोउ न जान निज हिय मँह हेरी ॥
तिनके हेतु अहै सब मोरा । मम हित सर्वश दियो किशोरा ॥

———हम दोनों की प्रीति अलौकिक (संसार से सर्वथा विलक्षण) है उसे कोई नहीं जान सकता किन्तु हम दोनो अपने–अपने हृदय में उसका अनुभव करते रहते हैं। मेरा सर्वस्व उनके लिए है तथा मिथिलेश किशोर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने भी मेरे लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया है।———

जहँ मैं तहँ तिन बसैं कुमारा । जहाँ कुँअर तहँ हमहिं निहारा ॥
भूषण वसन सुखद परिधाना । हौं पहिरौं सोइ पहिरि सुजाना ॥

राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी, वहीं नित्य निवास करते हैं, जहाँ मैं निवास करता हूँ तथा जहाँ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी रहते हैं, वहीं मैं रहता हूँ। आभूषण तथा वस्त्र आदि सुखप्रद परिधान जो मैं धारण करता हूँ परम सुजान कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी भी वही धारण करते हैं।———

कुँअरहिं धारत मैं सुख पाऊँ । भूषण बसन पहिरि अति चाऊँ ॥
मम भोजन इन भोजन होई । हौहुँ अघात खात तिन जोई ॥

———कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के आभूषण, वस्त्र आदि परिधान धारण करने से मैं सुख प्राप्त करता हूँ तथा अत्यन्त उत्साह पूर्वक वस्त्राभूषण धारण करता हूँ। मेरा भोजन करना इनका भोजन करना होता है और इनके भोजन करने से मैं ही तृप्ति को प्राप्त होता हूँ।———

दो0– देखब सूँघव परश सुख, सुनब कहब जो मोर ।
सो जानहिं सब कुँअर कर, संशय करहिं न थोर ॥१८४॥

———जो भी मेरी देखना, सूँघना, स्पर्श करना, सुनना व कहना आदि सुखकर क्रियायें हैं उन सभी को आप सभी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि की ही समझिये, इस बात में किंचित भी सन्देह नहीं मानियेगा।———

तिनहूँ देखब सूँघब परशा । कहब सुनब मन आनन्द सरसा ॥
सब विधि गिनहि मोर अभिरामा । सदा सुखद दायक विश्रामा ॥

———पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि की भी दर्शन, घ्राण, स्पर्श, कथन, श्रवण एवं मन का आनन्दित होना आदि क्रियायें हैं, सभी प्रकार से वे मेरी ही हैं तथा सदैव मुझे सुख प्रदायक व विश्राम–दायिनी हैं।———

मम बन गवन गवन इन केरा । कीन्हे तापस वेष जटेरा ॥
मोर राज पद इनकर राजा । कीर्ति विभूति विजय सुखसाजा ॥

———मेरा कठिन तपस्वी वेष धारण कर वनगमन, इनका ही वनगमन है तथा मेरा राज्य–पद, कीर्ति, वैभव, विजय एवं सुख की वस्तुएँ इनकी ही हैं।———

कुँअर वास पुर मैं पुर रहहूँ । भोग समृद्धि सुआनन्द लहहूँ ॥
जो यह करैं मोर सब कामा । मम करतब इन केर ललामा ॥

———कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के नगर निवास से, मैं ही नगर में निवास करता हूँ तथा भोग, वैभव एवं आनन्द प्राप्त करता हूँ। ये जो भी कार्य करते हैं वे सभी मेरे ही कार्य हैं तथा मेरे किये हुए कार्य इनके ही किये हुए सुन्दर कार्य हैं।———

मम सुख इच्छा कुँअरहिं जानी । कुँअर सुखेच्छा मोरहिं मानी ॥
कहँ लौं कहौं आतमा मोरी । जानहिं आत्मा इनकर सोरी ॥

———मेरे सुखों की इच्छा को कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की इच्छा समझिये तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सुख की इच्छा को मेरी ही इच्छा समझिये। मैं कहाँ तक कहूँ, यहाँ तक कि– जो मेरी आत्मा है वही इनकी आत्मा है, ऐसा आप सभी जान लीजिये।———

कुँअर आत्मा मोर सुहाई । देत सबहिं कहँ आज सुनाई ॥
यदपि कहत गुरुजन ढिग लाजा । तदपि कहेउँ गुनि समय स्वकाजा ॥

———पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की आत्मा ही मेरी सुन्दर आत्मा है। यह बात मैं आज सभी को सुना कर कह रहा हूँ। यद्यपि गुरुजनों के सामने ऐसा कहने में मुझे संकोच होता है तथापि मैने समय और अपने कार्य को समझ कर ही ऐसा कह दिया है।———

दो0– सत्य सत्य भाष्यो यहाँ, कर्‌यो न नेक दुराव ।
सुनत सुनत कुँअरहिं लगी, आत्म समाधि सुभाव॥१८५॥

———मैंने यहाँ सभी कुछ सत्य–सत्य बखान किया है और किंचित भी छिपाव नहीं रखा। प्रभु श्री राम जी महाराज के ऐसे वचनों को सुनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की सुन्दर भाव–पूर्वक आत्म समाधि लग गयी।

चित विलीन कर नर अरु नारी । सुने राम भाषण सुख कारी ॥
वर्षहिं सुमन देव जय बोली । प्रवचन सुने सहर्ष अडोली ॥

उस समय सभी स्त्री–पुरुष अपने चित्त को विलीन कर श्री राम जी महाराज के सुखकर व्याख्यान को श्रवण किये। देवताओं ने जय–घोष करते हुए पुष्पों की वर्षा की तथा स्थिर–चित्त हो हर्ष पूर्वक श्री राम जी महाराज के विशेष वचनों को श्रवण किया।

कुँअर राम की प्रीति अपारी। विधि हरि हर नहिं तरकि विचारी॥
जानहिं दोउ कहि सकैं न सोऊ। मन अनुभवहिं सदा रस मोऊ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी और श्री राम जी महाराज के असीम प्रेम का तर्क पूर्वक विचार श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी एवं श्री शंकर जी भी नहीं कर सकते। उसे तो वे दोनों (श्री राम जी महाराज एवं श्री लक्ष्मीनिधि जी) ही जानते है परन्तु उसका वर्णन वे भी नहीं कर सकते, अपने मन में उसका अनुभव कर सदैव रस मग्न रहते हैं।

राम कहा तब सुनु महिपाला। कुँअर दशा देखहिं यहिं काला॥
मैं बनि कुँअर कुँअर मम रूपा। रहैं सदा अद्वैत अनूपा॥

श्री राम जी महाराज ने पुनः कहा– हे श्री मिथिलेश जी महाराज! सुनिये, इस समय आप, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की स्थिति को देखिए। मैं कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी बना हुआ हूँ तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, मेरा स्वरूप धारण किये हुए हैं, मुझमें और इनमें सदैव ही अनुपमेय अद्वैत (अभिन्नता) है।–––

इक सों एक विलग नहि होही। जानहिं सत्य तात जिय जोही॥
मोहि लगि ये नित जीवन धारे। हौहुँ इनहिं हित देह सँभारे॥

–––मैं और कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी एक दूसरे से कभी भी अलग नहीं होते, यह सत्य बात आप अपने हृदय में विचार कर देख लीजिए। ये तो मेरे लिए ही नित्य अपना जीवन धारण किये हुए हैं तथा मैं भी इन्ही के लिए अपने शरीर को सँभाले हुए हूँ।–––

दो0– मोर विरह नहि कुँअर सह, मोहिं दुख इनहिं वियोग।
ब्रह्म जीव इव सहज ही, नित नव नेहहिं भोग॥१८६॥

–––कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी मेरे वियोग को सहन करने में सर्वथा असमर्थ हैं तथा इनका विरह मुझे भी दुख पहुँचाता रहता है, हम दोनों ब्रह्म एवं जीव के समान सहज ही नित्य नवीन प्रेम का समुपभोग करते रहते हैं।–––

धनि धनि श्री निधि भरत सुप्रेमा। शरणागति लीन्हे तजि नेमा॥
जात्यों नाहिं बनहिं का करऊँ। असमंजस आयसु अनुसरऊँ॥

–––कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी और श्री भरत जी का मेरे प्रति सुन्दर प्रेम धन्यातिधन्य है, इन्होंने सभी प्रकार के सांसारिक नियमों का उल्लंघन कर मेरी शरणागति ग्रहण की है। इनके प्रेम को देखकर मैं वन नहीं प्रस्थान करता, परन्तु क्या करूँ? असमंजस यही है कि– मैं अपने श्री मान् पिता जी की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ।–––

दूजे सुर मुनि शरणहिं आये। दीन्हेउँ अभय बाँह सति भाये॥
ताते सुर मुनि सेवन धर्मा। प्रथम अहे मम गुनि सत कर्मा॥

–––दूसरी बात यह भी है कि– देवता और मुनियों के शरण में आने पर मैने उन्हें निश्चित रूप से अभय करने वाली भुजा प्रदान कर रखी है (रक्षा करने का वचन दे दिया है) अतएव देवता

और मुनियों की सेवा, सत्कार्य समझ कर, करना मेरा प्रथम धर्म है।---

यथा रसोई घर महँ होई। पति पत्नी पुत्रन हित सोई॥
ताहि समय अभ्यागत आये। भूखे त्राहि त्राहि त्राहि गोहराये॥

---जिस प्रकार घर में यदि पति, पत्नी और पुत्रों के लिए ही रसोई (भोजन) सुलभ है तथा उसी समय भूखे अतिथि आ गये और रक्षा करो, रक्षा करो कह कर पुकारने लगे।---

गृहपति सुख सह अतिथि खवाई।भूखो रहै स्वयं सुत जाई॥
जो नहिं लहै अतिथि सतकारा। धर्म जाय शिर पातक सारा॥

---तब गृह स्वामी को चाहिये कि- सुखपूर्वक अतिथि को भोजन करा दे तथा स्त्री व पुत्र सहित स्वयं भी भूखा रह जाय। उस समय यदि अतिथि उसके द्वारा सत्कार नहीं प्राप्त करता तो गृह स्वामी का धर्म नष्ट होता है तथा शिर में समग्र पाप लग जाता है।---

दो0- लक्ष्मीनिधि अरु भरत तिमि, जानहिं दशा नृपाल।
गृहहिं फेरि इन सबन्ह कहँ, सुर मुनि करौं निहाल॥१८७॥

---हे श्री महाराज! मेरी स्थिति को तो आप भली-भाँति जानते ही हैं, कि- कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी एवं श्री भरत जी मेरे स्वजन तथा देवता व मुनि अभ्यागत (अतिथि) हैं। अतः अपने स्वजनों को मैं घर भेजकर व देवता और मुनियों की सेवा कर उनाको निहाल (प्रसन्न) करना चाहता हूँ।---

अस कहि राम कुँअर तन परशे। चेत करावत हिय रस वरषे॥
जागि कुँअर प्रभु परशहिं पाया। रहे लगाय हियहिं रघुराया॥

ऐसा कहकर श्री राम जी महाराज ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के शरीर का स्पर्श किया तथा हृदय में रस वर्षण करते हुए चैतन्य कराने लगे। तब प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रिय स्पर्श को प्राप्तकर जनक कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी जागृत हुए और श्री राम जी महाराज नें उन्हें अपने हृदय से लगा लिया।

लै विविक्त कुँअरहिं रघुलाला। बैठे इक आसन तेहिं काला॥
कहा राम सुनु सुमुख कुमारा। देखे काह समाधि मँझारा॥

उस समय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को एकान्त स्थल में ले जाकर रघुनन्दन श्री राम जी महाराज एक आसन में विराज गये तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से बोले- हे सुशोभन, मुख-मण्डल-युक्त कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ! अपनी समाधि के बीच आपने कौन सा दृश्य दर्शन किया?

भाम बचन सुनि बोले श्याला। लखे धाम साकेत पाला॥
नहिं तहँ देश काल दिन राती। सदा एकरस सुख सब भाँती॥

अपने प्रिय बहनोई श्री राम जी महाराज के वचनों को सुनकर प्रिय श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा- हे परम कृपालु श्री राम जी महाराज! समाधि अवस्था में मैंने दिव्य साकेत धाम के दर्शन

किये। वहाँ साकेत धाम में देश, समय, दिन व रात्रि नही है तथा सभी प्रकार के सुख वहाँ सदैव एक समान बने रहते हैं।

सूर्य चन्द्र नहिं पावक तहँवा। स्वयं प्रकाश रूप सत जहँवा॥
सत चित आनँदमय नित धामा। परम परात्पर रूप ललामा॥

वहाँ प्रकाश हेतु सूर्य, चन्द्र, और अग्नि भी नहीं है, वह साकेत धाम निश्चित ही स्वयं परम प्रकाश स्वरूप है। उस नित्य सच्चिदानन्दमय धाम में परम श्रेष्ठातिश्रेष्ठ सुन्दर स्वरूप वाले–––

अमित भोगवर दिव्य अनूपा। लखे तहँ सुनु कौशल भूपा॥
सखी सखा शुचि दास अनंता। विहरहिं दोउ तहाँ सिय कन्ता॥
दिव्य कुंज अगणित तहँ देखे। लीला रसमय बहु पुनि पेखे॥

–––दिव्य और अनुपमेय सुन्दर भोगों का, हे कौशल नरेश श्री राम जी महाराज! मैंने दर्शन किया। वहाँ अनन्त सखी, सखाओं और पवित्र सेवकों सहित युगल किशोर श्री सीता राम जी (आप) स्वयं विहार करते हैं। वहाँ मैंने अनन्त दिव्य कुंजों के दर्शन किये पुनः उन कुंजों में कई प्रकार की रसमयी लीलाओं का भी दर्शन मुझे प्राप्त हुआ।

दो0– आनन्दमय युग रूप लखि, आनन्द लहेउँ अपार।
अपनेहुँ कहँ पुनि तहँ लखेउँ, तव सँग विविध विहार॥१८८॥

वहाँ आप दोनो बहन–बहनोई के आनन्दमय युगल स्वरूप का दर्शन कर मैंने असीमित आनन्द प्राप्त किया। पुनः आपके साथ वहाँ विभिन्न प्रकार से विहार करते हुए मैने, स्वयं को भी देखा।

आनँदमय दोउ लाड़िली लाला। सब विधि कीन्हेउ मोंहि निहाला॥
राम कहेउ सुनु कुँअर पियारे। मोर कहा निज धरहु धियारे॥

आनन्द स्वरूप लाड़िली–लाल आप दोनों ने मुझे सभी प्रकार से पूर्णकाम कर दिया। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के वचनों को श्रवण कर श्री राम जी महाराज ने कहा– हे प्रिय कुमार लक्ष्मीनिधि जी! आप मेरे कहे हुए वचनों को अपने मन में दृढ़ता पूर्वक धारण कर लीजिये।

मम बन वास केर वर लीला। लीला मात्र सुनहु सुख शीला॥
यथा स्वपन देखहिं नर नारी। तैसेहिं जानहु जगत क्रिया री॥

–––हे सुख–शील कुमार! मेरा वनवास का चरित्र केवल मेरी लीला के लिए ही है। जिस प्रकार संसार में स्त्री–पुरुष स्वप्न देखते हैं उसी प्रकार ही आप, मेरी सभी सांसारिक क्रियाओं को समझिये।–––

मोरे साथ रहहु जो ताता। लीला पाठ न ललित लखाता॥
लीला शक्ति पाठ जो दीन्हा। ताहि करहु तुम निज शिर लीन्हा॥

–––हे तात! यदि आप मेरे साथ वन में रहेंगे तो लीला का पाठ सम्यक प्रकार से नहीं चल पायेगा। क्योंकि 'लीला–शक्ति' ने आपको जो पाठ दिया है, आप शिरोधार्य कर उसे ही क्रियान्वित कीजिये।–––

मम सह गवन न पाठ तुम्हारा । सत्य सत्य सत कथन हमारा ॥
अस कहि राम कियो संकल्पा । प्रगटी लीला शक्ति अनल्पा ॥

———मेरे साथ वन में चलना आपका पाठ नहीं है यह मेरा त्रिवाचा सत्य कथन है। ऐसा कहकर श्री राम जी महाराज ने अपने मन में संकल्प किया, जिससे वह महान 'लीला शक्ति' प्रगट हो गयी।

दो0– अंतरिक्ष राजति सुभग, शक्ति अचिन्त्य अभेद ।
सखि अनन्त सेवत खरीं, शक्तिमयी बहु वेद ॥१८९॥

अचिन्तनीय शक्ति व सौन्दर्य सम्पन्न, परमात्मा से सर्वथा अभिन्न वह 'लीला शक्ति' अंतरिक्ष में सुशोभित हो रही थी जिनकी सेवा, शक्ति स्वरूपा ज्ञानमयी अनन्त सखियाँ खड़ी हुई कर रही थीं।

विधि हरि हर बहु सेवन करहीं । जीव अमित लीला विधि चरहीं ॥
रामहिं कामद गिरिहिं विहारा । देखेउ सह सिय लखन कुमारा ॥

लीला शक्ति की सेवा श्री ब्रह्मा जी, श्री शंकर जी व श्री विष्णु जी आदि अनन्त देवता कर रहे थे तथा अनेक जीव उन लीला शक्ति की इच्छा के अनुसार अपने आचरण कर रहे थे। पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री राम जी महाराज को श्री सीता जी और श्री लक्ष्मण कुमार जी सहित श्री कामद गिरि (चित्रकूट) में विहार करते हुए दर्शन किया।

आपुहिं लखेउ जनक पुर वासा । करत भजन प्रभु दरशन आसा ॥
आज्ञा सबहिं शीश तेहिं केरी । नहिं स्वतन्त्र पाठक कोउ हेरी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने स्वयं को श्री जनक पुरी में प्रभु दर्शनों की आशा से भजन (तप) करते हुए देखा तथा उन्होने दर्शन किया कि– सभी जीव उस 'लीला शक्ति' की आज्ञा शिरोधार्य किये हुए हैं, कोई भी लीला–पात्र स्वतन्त्र नहीं दीख रहा।

देखत ही पुनि दृश्य विलाया । जनक कुँअर मन विस्मय आया ॥
बोले राम सुनहु निमि वारे । लीला शक्ति प्रभाव अपारे ॥

इस प्रकार का दृष्य दर्शन करते ही, वह दृश्य विलीन हो गया और जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी, मन में अत्यन्त विस्मित हो गये। उन्हें आश्चर्य–चकित देखकर श्री राम जी महाराज ने कहा– हे निमि नन्दन! सुनिये, 'लीला–शक्ति' असीमित प्रभाव सम्पन्ना है।

लीला कार्य विवश तेहिं केरे । नहि स्वतन्त्र कोउ करैं निबेरे ॥
हमहुँ तुमहुँ तेहि वश तन धारी । लीला करैं पाठ अनुहारी ॥

संसार के सभी जीवधारी उस लीला–शक्ति के कार्यो के वशीभूत हैं, कोई भी स्वतन्त्र नहीं है। लीला–शक्ति की इयत्ता का कोई वर्णन नहीं कर सकता। हम और तुम भी उसी लीला–शक्ति के आधीन होकर शरीर धारण किये हैं और अपने पाठ के अनुरूप लीला कर रहे हैं।

दो0– जो प्रिय हम तुम कहँ कहहिं, चलहु हमारे साथ ।
लीला शक्ती विवश करि, गृह भेजी दृग पाथ ॥१९०॥

हे प्रिय राजकुमार! यदि हम आपको आज्ञा भी प्रदान कर देते हैं कि– आप हमारे साथ वन में चलिए तो भी 'लीला–शक्ति' आपको लाचार कर अश्रुपूरित नेत्रों से गृह भेज देगी।–––

ताते तुम मम खेल सहाया। होहु तात मिथिला पुर जाया ॥
चौदह वर्ष बहुत नहिं होई। सिद्धि सहित बितयो दिन सोई ॥

–––इसलिए, हे मिथिलापुरी में उत्पन्न मिथिलेश कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप मेरी इस लीला में सहायता कीजिए, पुनः चौदह वर्ष कोई अधिक नहीं होते, उन्हें आप श्री सिद्धि कुँअरि जी के सहित व्यतीत कर लीजियेगा।–––

अवशि विरह मम दुखद अपारा। मधुर भाव रत तुमहिं दुलारा ॥
तदपि विवश होइ सहिबो परई। प्रकृति अवधि लगि अलगहिं करई ॥

–––हे प्रिय कुँवर! मेरे माधुर्य भाव में भावित रहने के कारण, अवश्य ही मेरा वियोग आपके लिये अपरिमेय दुख–प्रदायक है परन्तु विवशता है कि– उसे सहना ही पड़ेगा, क्योंकि प्रकृति हमें वनावधि तक के लिए अलग कर रही है।–––

भक्ति मुक्ति सुख सुजस कुमारा। पाइ प्रेम रस सहज उदारा ॥
बने रहहु सबहिन जग तारे। जिमि शशि नित चकोर मन हारे ॥

–––हे उदार कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप सहज ही भक्ति, मुक्ति, सुख, सुन्दर कीर्ति प्रेम एवं रस (आनन्द) प्राप्त कर उसी प्रकार सभी के आँखों के तारे बने रहें जिस प्रकार चन्द्रमा नित्य ही चकोर का मन हरण किये रहता है।–––

होय लोक प्रिय दिवि गुण धामा। बने रहहु मम प्राण ललामा ॥
जगतहिं प्रेम पाठ सिखवाई। धन्य तुम्हें जन्मी जो माई ॥

–––हे समस्त दिव्य गुणों के धाम! आप संसार के प्रिय होकर मेरे सुन्दर प्राण स्वरूप बने रहें। आपने सम्पूर्ण संसार को प्रेम की शिक्षा दी है, अम्बा श्री सुनैना जी धन्य हैं जिन्होंने आपको जन्म दिया है।–––

दो0– बितै अवधि प्रथमहिं दिनहिं, अइहौं निज पितु धाम ।
अस बिचारि गवनहुँ पुरहिं, मैं बन वसहुँ अराम ॥१९१॥

–––मैं अपनी वन की समय सीमा व्यतीत कर प्रथम दिन ही अपने पितृ–पुरी श्री अयोध्यापुरी आ जाऊँगा। ऐसा विचार कर आप, अपनी पुरी श्री मिथिला को चले जायें। मैं यहाँ वन में सुख पूर्वक निवास करूँगा।

बोले कुँअर नयन भरि नीरा। को जानै प्रभाव रघुवीरा ॥
जस चाहौ तस नाच नचाई। सुख दुख परे जनन सुखदाई ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी आँखों में अश्रु भर कर बोले– हे रघुकुल प्रवीर श्री राम जी महाराज! आपके प्रभाव को कौन समझ सकता है। आप जैसा चाहते हैं वैसा ही जीवों को नाच–नाचते रहते हैं अर्थात् सभी को स्वइच्छानुसार चलाते हैं। आप

सुख–दुख के परे तथा अपने भक्तों को सुख प्रदान करने वाले हैं।–––

लीला रसिक लखहु नित लीला । सदा एक रस सुखमय शीला ॥
विधि हरि हरहिं खेल के नायक । तुमहिं बनायौ हे रघुनायक ॥

–––आप तो लीला रस के रसिक नित्य लीला का दर्शन करने वाले, सदैव एक–रस, सुख स्वरूप एवं शील आदि गुणों से संयुक्त हैं। हे रघुकुल के नायक श्री राम जी महाराज! आपने ही श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी एवं श्री शंकर जी को इस जगल्लीला का नायक बनाया है।–––

जीव अमित जग खेलन वारे । अनासक्त तुम लखहु पियारे ॥
बरबश कवन तुम्हार सुखेला । सकै बिगाड़ बुद्धि निज मेला ॥

–––हे प्रियवर! इस संसार के असीमित, लीलाधारी जीवों को आप आसक्ति विहीन हो देखते रहते हैं। आपकी लीला को हठात् अपनी बुद्धि के संयोग से कौन बिगाड़ सकता है।–––

ताते आयसु धरि तव ताता । जइहैं हमहुँ पुरहिं रस राता ॥
सुनि सुख मानि राम हिय लाये । पानि पकरि पुनि गुरु ढिग आये ॥

–––अतएव आपकी आज्ञा स्वीकार कर हम भी आपके विरह–रस में डूबे हुए अपनी श्री मिथिलापुरी को चले जाएँगे। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के इस प्रकार के वचनों को सुन, सुख मानकर श्री राम जी महाराज ने उन्हें हृदय से लगा लिया, पुनः वे उनका हाथ पकड़ अपने गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी के समीप आ गये।

दो0– बैठि सुआसन सरस मन, कहेउ राम सुखकन्द ।
कुअरहुँ जैहैं जनक सह, मेटि दियो दुख द्वन्द ॥१९२॥

–––सुख स्वरूप श्री राम जी महाराज रस परिपूर्ण मन से सुन्दर आसन में विराज कर बोले– हे श्री गुरुदेव! श्री मिथिलेश जी महाराज के साथ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भी श्री मिथिलापुरी जायेंगे, मैंने उनके दुखों व समस्त दुविधाओं को मिटा दिया है।

मास पारायण उन्नीसवाँ विश्राम

सुनि गुरु सबहीं आयसु दीन्हा । चाहिय चलन मोर मत लीन्हा ॥
गुरु आज्ञा गिनि दुहूँ समाजा । साजी सबै चलन की साजा ॥

श्री राम जी के वचनों को श्रवण कर गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी ने आज्ञा दी कि– मेरे मतानुसार अब प्रस्थान कर देना चाहिये। श्री गुरुदेव जी की आज्ञा समझ कर दोनों समाज (श्री मिथिलापुरी व श्री अयोध्यापुरी) के नर–नारियों ने प्रस्थान की सम्पूर्ण तैयारियाँ पूर्ण कर ली।

भरत आइ प्रभु के पग लागे । बोले वचन अतिहिं अनुरागे ॥
सिखवहिं नाथ मोहिं जन जानी । केहिं विधि पलिहौं प्रजहिं प्रमानी ॥

तदनन्तर श्री भरत जी ने आकर प्रभु श्री राम जी महाराज के चरणों में प्रणाम किया और

अत्यन्त अनुराग पूर्वक बोले– हे नाथ! मुझे अपना सेवक समझ कर आप शिक्षा दें कि– मैं किस प्रकार से आपकी प्रजा का पालन करूँगा।

राजनीति बहु विमल सिखाई । बोले बहुरि बचन विभु साई ॥
सदगुरु सुनृप सुमंत्र सुजाना । शासि सकै त्रैलोक महाना ॥

उस समय श्री राम जी महाराज ने श्री भरत जी को बहुत प्रकार से राजनीति की सुन्दर शिक्षा दी, पुनः परम वैभवशाली स्वामी श्री राम जी महाराज बोले– हे सुजान श्री भरत जी! सद्‌गुरु देव श्री बशिष्ठ जी, परम ज्ञानवान श्री महाराज मिथिलेश जी और श्रेष्ठ सचिव श्री सुमन्त्र जी तो तीनों लोकों का महान शासन कर सकने में समर्थ हैं।———

तिन्हके रहत शोच सब त्यागी। पालहु जाय अवध अनुरागी ॥
सुनि शिख आयसु निज शिर धारी। कीन्ह भरत सब चलन तयारी ॥

———अतः उनके होते हुए, आप सभी प्रकार की चिन्ताओं का त्यागकर, श्री अयोध्यापुरी जाकर, प्रजा का अनुराग पूर्वक पालन करिये। तब श्री राम जी महाराज की शिक्षा को सुन व शिरोधार्य कर श्री भरत जी ने चलने की सभी तैयारियाँ पूर्ण कर लीं।

दो0– विरह विवश रघुवीर के, भरत भरत दृग नीर ।
हृदय कसक कहि जात नहिं, मन महँ होत अधीर ॥१९३॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–श्री राम जी महाराज के वियोग के वशीभूत हो, प्रेम मूर्ति श्री भरत जी के नेत्रों से अथाह अश्रु निर्झरित हो रहे थे, उनका हृदय अवर्णनीय दुःख से पीड़ित था तथा वे मन में अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे।

राम चरण गिरि दण्ड समाना । कीन्ह प्रणाम भरत बिनु माना ॥
पकरि पदहिं रोवत विरहाये । बल करि कृपा सिन्धु हिय लाये ॥

श्री भरत जी ने श्री राम जी महाराज के चरणों में, स्मृति शून्य हो दण्ड के समान गिरकर प्रणाम किया तथा प्रभु विरह में व्याकुल हुए वे श्री चरणों को पकड़ कर अत्यन्त रुदन करने लगे। तब कृपा के सागर श्री राम जी महाराज ने उन्हें बलपूर्वक उठाकर अपने हृदय से लगा लिया।

रामहुँ भरत विरह रस पागे । हाय भ्रात कहि रोवन लागे ॥
लिपटि रहे दोउ परम वियोगी। देखि दशा सिसकत सब लोगी ॥

श्री राम जी महाराज भी श्री भरत जी के विरह–रस में डूबे हुए हाय, भइया कहकर रुदन करने लगे और दोनों परम वियोगी एक दूसरे से लिपट गये। उनकी अवस्था देखकर सभी लोग सिसकते हुए रुदन करने लगे थे।

राम भरत विछुड़न गति देखी । दुखी भये जड़ अजड़ विशेषी ॥
कहि न जाय सो दशा दुखारी । लगी बनहिं जनु दुसह दवारी ॥

श्री राम जी महाराज और श्री भरत जी की वियोगावस्था को देखकर जड़ और चैतन्य सभी विशेष रूप से दुखी हो गये थे। हमारे सद्‌गुरुदेव भगवान स्वामी श्रीराम हर्षण दास जी महाराज कहते

हें कि–श्री राम जी महाराज और श्री भरत जी की उस दुखपूर्ण अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता है वहाँ ऐसी दुखमयी अवस्था हो रही थी जैसे वन में असहनीय दावाग्नि लगी हुई हो।

इक एकन कहँ सकैं न छोड़ी । हृदय लगे गुरु लाजहिं तोड़ी ॥
देखि दशा तहँ गुरुवर आई । समुझाये बहु विधि दोउ भाई ॥

श्री राम जी महाराज व श्री भरत जी एक दूसरे को छोड़ नहीं पा रहे थे तथा श्री गुरुदेव जी के संकोच का भी परित्याग कर वे एक दूसरे के हृदय से लगे हुए थे। उनकी उस अवस्था को देखकर, वहाँ गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी आ गये और उन्होने दोनों भाइयों को बहुत प्रकार से समझाया।

दो0– अलग अलग करि दुहुन कहँ, पोंछि दुहुन दृग वारि ।
भरतहिं बोले चलन हित, हृदय बहत रस धारि ॥१९४॥

गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी ने हृदय से प्रेमरस की धारा प्रवाहित करते हुए श्री राम जी महाराज व श्री भरत जी को अलग कर दोनों के नेत्रों से प्रवाहित हो रहे अश्रुओं का प्रोच्छण किया और श्री भरत जी से श्री अयोध्या पुरी चलने के लिए कहा।

रामहिं बार बार शिर नाई । पाय प्यार वात्सल्य अघाई ॥
भरत धरे शिर प्रभु पद त्राना । आयसु पाइ चलन चित ठाना ॥

तत्पश्चात् श्री राम जी महाराज को बारम्बार शिर झुका प्रणाम कर, उनके वात्सल्य व प्रेम को पाकर संतुष्ट हो, श्री भरत जी ने प्रभु श्री राम जी महाराज की चरण पादुकाओं को शिर में धारण किया तथा उनकी आज्ञा प्राप्त कर अपने चित्त में चलने का निश्चय किया।

खनहिं मिले विरह रस सानी । कहि न जाय सो दशा बखानी ॥
जाइ बहुरि सीता पद लागे । रोवत भरत विरह रस पागे ॥

श्री भरत जी विरह रस में सने हुए श्री लक्ष्मण कुमार से भेंट किये, उस समय की उनकी अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता। पुनः जाकर, श्री भरत जी, श्री सीता जी के चरणों में लिपट गये और विरह रस में पगे हुए रुदन करने लगे।

सियहुँ सजल दृग कर शिर परशी । देत अशीश कृपा रस वरषी ॥
रिपुहन प्रभुहिं दण्डवत कीन्हा । हिय लगाय रघुवर रस भीना ॥

अश्रु प्रपूरित नेत्र, श्री सीता जी ने भी अपने कराम्बुजों से श्री भरत जी के शिर का स्पर्श कर, कृपा–रस वर्षिणी आशीष प्रदान की। पुनः श्री शत्रुघ्न कुमार जी ने प्रभु श्री राम जी महाराज को दण्डवत किया तब श्री राम जी महाराज ने उन्हें हृदय से लगा लिया।

कहेउ जानि मोहि भरतहिं सेयब । जिमि अविचारी निज तन प्रेयब ॥
यथा लखन मम सेवा करहीं । सेयेहु तथा भरत मन भरहीं ॥

रघुवंश विभूषण श्री राम जी महाराज ने कहा– श्री भरत जी को मेरा ही स्वरूप समझकर आप उनकी उसी प्रकार सेवा कीजियेगा जिस प्रकार अज्ञानी (विचारहीन) जीव प्रेम पूर्वक अपने शरीर की

सेवा करते हैं। पुनः श्री लक्ष्मण कुमार जी जिस प्रकार मेरी सेवा करते हैं आप उसी प्रकार श्री भरत जी की सेवा कर उनके मन को प्रसन्न रखियेगा।

दो0– सुनहु शत्रुहन भरत ते, तुम मोंहि अधिक पियार।
भरत सुसुख जेहिं ते लहैं, सहजहिं प्राण हमार ॥१९५॥

हे श्री शत्रुघ्न कुमार जी! आप मुझे श्री भरत जी से अधिक प्रिय हो क्योंकि श्री भरत जी जिसके द्वारा सुख प्राप्त करते हैं वह सहज ही मेरा प्राण बन जाता है।

करि प्रणाम पुनि पुनि प्रभु काहीं। गये लखन पहँ तन सुधि नाहीं॥
करत दण्डवत लखन उठाये। बार बार निज हृदय लगाये॥

प्रभु श्री राम जी महाराज को बार–बार प्रणाम कर श्री शत्रुघ्न कुमार जी, श्री लक्ष्मण कुमार जी के समीप गये उस समय उन्हे अपने शरीर की स्मृति नही थी। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने उन्हें दण्डवत करते देख उठा लिया और बार–बार अपने हृदय से लगाने लगे।

अश्रु पोंछि बहु भाँति दुलारी। विदा कियो ढारत दृग वारी॥
रिपुहन चले दुसह दुख दागे। अतिशय बन्धु विरह विष पागे॥

पुनः श्री लक्ष्मण कुमार जी ने उनके अश्रुओं का प्रोच्छण कर बहुत प्रकार से दुलार किया तथा अश्रु बहाते हुए उन्हें विदा किये। तब श्री शत्रुघ्न कुमार जी भ्रातृ–विरह रूपी महान विष में डूबे तथा असहनीय दुख में जलते हुए चल दिये।

सीतहिं कीन्ह प्रणाम बहोरी। प्यार अशीश लहे तन भोरी॥
सहित लखन रघुवर पुनि जाई। गुरु पद कमल परे रस छाई॥

पुनः श्री शत्रुघ्न कुमार जी ने श्री सीता जी को प्रणाम किया तथा उनके प्यार व आशीष को प्राप्त कर उनकी शरीर स्मृति भूल गयी। तदनन्दतर श्री लक्ष्मण कुमार जी सहित श्री राम जी महाराज अपने गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी के समीप जाकर विरह रस से ओत–प्रोत हो श्री गुरुचरण कमलों में गिर पड़े।

लीन्ह उठाय दुहुन मुनि राया। बार बार निज उर लपटाया॥
मुनिवर सकल मुनिन के साथा। रक्षा मंत्र कीन्ह रघुनाथा॥

गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी, दोनों राज कुमारों श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार जी को उठाकर बार–बार हृदय से लिपटाने लगे। पुनः मुनिराज श्री बशिष्ठ जी ने श्री राम जी महाराज के मंगल हेतु सभी मुनियों के सहित रक्षा मंत्र का पाठ किया।

सहित लखन सिय रघुवर केरा। मंगल स्तव पढ़ि कर फेरा॥
सकल मुनिन्ह कहँ शीश नवाये। राम लखन माता ढिग आये॥

श्री लक्ष्मण कुमार व श्री सीता जू के सहित श्री राम जी महाराज का मांगलिक स्तवन पाठ कर श्री गुरुदेव जी ने अपना वरद हस्त उनके शिर में फिराया। पुनः सभी मुनियों को शीश झुका प्रणाम कर श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार जी अपनी अम्बा श्री कौशिल्या जी के समीप आये।

करत प्रणाम देखि दोउ भाई । जननी लीन्हीं हृदय लगाई ॥
बैठे गोद लखन रघुवीरा । रोवत हिचकत होत अधीरा ॥

दोनों भ्राताओं को प्रणाम करते देख अम्बा श्री कौशिल्या जी ने उन्हें हृदय से लगा लिया। उनकी सुखद गोद में बैठकर श्री लक्ष्मण कुमार और श्री राम जी महाराज हिचकियाँ ले-लेकर रुदन करते हुए अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे।

मातु दशा किमि वरणै कोई । विरह व्यथित बहु व्याकुल होई ॥
शीश सूँघि मुख पंकज चूमी । आशिष दीन्ह प्रीति रस झूमी ॥

अम्बा श्री कौशिल्या जी की अवस्था का वर्णन कौन कर सकता है। विरह पीड़ा से दुखी हुई अत्यन्त व्याकुल हो श्री कौशिल्या जी ने श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार जी का शिरोघ्राण कर मुख कमल का चुम्बन किया तथा प्रेम रस में सराबोर हो आशीर्वाद प्रदान की।

पुनि दोउ बन्धु केकई पादा । कीन्ह प्रणाम भरे अहलादा ॥
बहु विधि राम ताहि समुझाई । आशिष लहे हर्ष हिय छाई ॥
जाइ सुमित्रहिं बन्दन कीन्हा । लखन मातु निज गोदिहिं लीन्हा ॥

पुनः दोनों भाई श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार जी अम्बा श्री कैकई जी के चरणों में आह्लाद में भर कर प्रणाम किये, श्री राम जी महाराज ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया तथा उनका आशीर्वाद प्राप्त कर हृदय में हर्ष परिपूर्ण हो गये। पुनः दोनों भाइयों नें जाकर श्री सुमित्रा जी के चरणों की वन्दना की तब श्री लक्ष्मण कुमार की अम्बा जी ने उन्हें अपनी गोद में बैठा लिया।

दो0-प्रेम रूपिणी मातु हिय, प्रेम सरोवर बाढ़ ।
नयन नीर नहवावती, हृदय लगाये गाढ़ ॥१९६॥

उस समय प्रेम स्वरूपा अम्बा श्री सुमित्रा जी के हृदय रूपी सरोवर में प्रेम की बाढ़ आ गयी तब वे हृदय में गाढालिंगन किये हुए श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार जी को अपने प्रेमाश्रुओं से अवगाहन कराने लगीं।

बहुरि अशीश दीन्ह बहु भाँती । लखनहिं सिखयो सेव सुहाती ॥
राम लखन सब मातन भेंटे । आशिष लहे सनेह समेटे ॥

पुनः उन्होंने विविध प्रकार से आशीर्वाद प्रदान किया तथा प्रभु श्री राम जी महाराज की अनुकूल सेवा करने की शिक्षा श्री लक्ष्मण कुमार जी को दी। तत्पश्चात् श्री राम जी महाराज तथा श्री लक्ष्मण कुमार ने सभी माताओं से भेंट कर उनके स्नेह मिश्रित आशीर्वचन प्राप्त किये।

सखी सखा शुचि दासी दासा । भेंटे सबहिं राम दै आशा ॥
सचिवन दूनहु बन्धु सुबन्दे । प्रेम पगे नयनन सुख कन्दे ॥

अपने लौटने की सुन्दर आशा देकर, श्री राम जी महाराज ने अपने सखी, सखा, दासी व दास आदिकों से भेंट की। सुखस्वरूप दोनों भ्राताओं श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार जी नें प्रेम में पगकर सभी मन्त्रियों की वन्दना की।

कहेउ राम मम पिता समाना । आप सबहिं दायक सुख नाना ॥
लरिका भरत विरह दुख दीने । राज काज कबहुँक नहि कीने ॥

श्री राम जी महाराज ने कहा– आप सभी मेरे लिए श्री मान् पिता जी के समान तथा विभिन्न प्रकार का सुख प्रदान करने वाले हैं। श्री भरत जी अभी बच्चे ही हैं पुनः मेरे विरह ने उन्हें दुखी कर रखा है और उन्होंने कभी राज्य कार्य भी नहीं किया है।–––

सब सँभार करियो पुर केरा । रहै प्रजा सुख सनी घनेरा ॥
यहि प्रकार मिलि अवध सुवासिन । मिले जनक कहँ प्रेम प्रकाशिन ॥
करि प्रणाम पुनि विनती कीना । राम लखन दोउ बन्धु प्रवीना ॥

–––इसलिए आप सभी, श्री अयोध्यापुरी की देख–रेख करते रहियेगा जिससे प्रजा अत्यधिक सुख में सनी रहे। तदनन्तर श्री राम जी महाराज और श्री लक्ष्मण कुमार जी श्री अयोध्या पुर वासियों से मिलकर, प्रेम पूर्वक श्री जनक जी महाराज से भेंट किये। परम प्रवीण दोनों भ्राताओं (श्री राम जी महाराज और श्री लक्ष्मण कुमार जी) ने उन्हें विनय पूर्वक प्रणाम किया।

सो0–जनक रहे उर लाय, प्रेम वारि ढारत दृगन ।
दै अशीष रस छाय, रक्षा मंत्रन पाठ करि ॥१९७॥

श्री जनक जी महाराज ने श्री राम जी महाराज और श्री लक्ष्मण कुमार जी को हृदय से लगाकर,नेत्रों से प्रेमाश्रु बहाते हुए आशीर्वाद प्रदान किया और प्रेम रस मग्न हो, रक्षा मंत्र का पाठ किया।

बहुरि सुनैना के ढिंग जाई । कीन्ह प्रणाम लखन रघुराई ॥
मातु गोद लै मोचत वारी । विरह जनित दुख फँसी अपारी ॥

पुनः श्री राम जी महाराज और श्री लक्ष्मण कुमार जी ने श्री सुनैना अम्बा जी के समीप जाकर उन्हें प्रणाम किया, श्री अम्बा जी वियोग–जनित अपार दुख में फँसी हुई उन दोनों को गोद में लेकर अश्रु बहाने लगीं।

मंगल स्तव रक्षा पाठी । दुखित मातु सुलगत हिय भाठी ॥
सिद्धि कुँअरि पहँ गे दोउ भाई । सिद्धि परी चरणनन लपटाई ॥

अम्बा श्री सुनैना जी नें रक्षा मंत्र पाठ कर, दोनो राज कुमारों का मंगलानुशासन किया। उस समय श्री अम्बा जी का हृदय दुख के कारण भट्ठी के समान सुलग रहा था। पुनः दोनों भाई श्री राम जी महाराज और श्री लक्ष्मण कुमार जी श्री सिद्धि–कुँअरि जी के समीप गये, उन्हें देखते ही श्री सिद्धि कुँअरि जी उनके चरणों में लिपट गयीं।

विरहातुर कहि जाय न प्रेमा । भूलि गई सिगरी सुधि नेमा ॥
रोवत गई हृदय अकुलाई । प्रेम दशा वरणी नहिं जाई ॥

वे विरह से आतुर हो गयी थीं, उनके प्रेम का वर्णन नहीं किया जा सकता। उस समय श्री सिद्धि कुँअरि जी अपनी सम्पूर्ण स्मृति और व्यावहारिक नियमों को भी भूल गयीं थीं। वे रुदन करती

हुई हृदय में व्याकुल हो रही थीं उनकी प्रेमावस्था अवर्णनीय थी।

जाय सुनैना धीर बँधावति। राम देखि सिद्धी दुख छावति ॥
रामहुँ वारि विलोचन ढारी। समुझाये कहि बचन बिचारी ॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी की अवस्था देख, उनके समीप जाकर श्री सुनैना जी ने उन्हें धैर्य धारण कराया परन्तु श्री राम जी महाराज को देखकर श्री सिद्धि कुँअरि जी बारम्बार दुख से आपूरित हो जाती थीं। श्री राम जी महाराज भी उनकी अवस्था को देखकर नेत्रों से अश्रु बहा रहे थे, पुनः उन्होने विचार पूर्वक वचन कह कर श्री सिद्धि कुँअरि जी को समझाया।

दो0– सकल मैथिलन राम मिलि, कुँअरहिं भेंटे आय ।
प्रेम दशा तहँ अटपटी, श्याल भाम की छाय ॥१९८॥

पुनः श्री राम जी महाराज सभी मैथिल–जनों से भेंट करने के उपरान्त आकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से भेंट किये। उस समय दोनों श्याल और भाम श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज के हृदय में अत्यन्त ही दुर्गम प्रेमावस्था छायी हुई थी।

प्राण सखे अब जाहु अगारा। लखिहौं आय मुरुकि मुख प्यारा ॥
श्रवत नयन रस रघुवर कहहीं। कुँअर विरह वस नहि सुधि लहहीं ॥

हे प्राण सखे! अब आप अपने भवन को प्रस्थान कीजिये, मैं अब लौट कर ही आपके प्रिय मुख चन्द्र का दर्शन कर सकूँगा। श्री राम जी महाराज नेत्रों से प्रेमाश्रु बहाते हुए ऐसा कह रहे थे तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी विरह के वशीभूत हो अपनी स्मृति नहीं धारण कर पा रहे थे।

प्रेम विभोर देखि रघुराया। कहि मृदु बचन विविध समुझाया ॥
सकल कुँअर भ्रातन मिलि रामा। प्रेम पगे विरहातुर धामा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को प्रेम में विभोर हुए देखकर श्री राम जी महाराज ने कोमल वचनों के विनियोग से उन्हे बहुत प्रकार से समझाया। पुनः विरह से व्याकुल श्री राम जी महाराज प्रेम में डूबकर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सभी भ्राताओं से भेंट किये।

सिय गुरु गुरु पतिनिहिं शिर नाई। प्रेमाशिष लहि सकुचि सुभाई ॥
जाय सासु पद बन्दन कीन्ही। गोद बिठाय मातु हिय लीन्ही ॥

श्री सीता जी ने गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी और गुरुपत्नी श्री अरुन्धती जी के चरणों में सिर झुका प्रणाम किया तथा प्रेमाशीष प्राप्त कर सहज ही संकुचित हो गयीं। पुनः अपनी सासू श्री कौशिल्या जी के समीप जाकर उनकी चरण वन्दना कीं तब श्री अम्बा जी ने उन्हें गोद में बिठा कर अपने हृदय से लगा लिया।

कब मुख चन्द्र तुम्हारो लखिहौं। हाय तुमहि बिन अब तन रखिहौं ॥
प्रेम विभोर राम महतारी। अति कातर सुधि देह बिसारी ॥

मैं अब, कब आपके चन्द्र मुख का दर्शन कर सकूँगी? ऐसा कहती हुई श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी प्रेम विभोर हो, अत्यन्त दुखी हो गयीं, तथा अपनी देह– स्मृति भूल गयीं।

दो0– लहि सुचेत पुनि धीर धरि, आशिष दीन्ह सुहात ।
गंगा सरयू धार लौं, अचल होय अहिवात ॥१९९॥

पुनः सचेत हो, धैर्य धारण कर श्री अम्बा जी ने सुन्दर आशीर्वाद दिया कि– जब तक श्री गंगा जी और श्री सरयू जी की धारायें हैं तब तक आपका सुहाग (सुख–सौभाग्य) बना रहे।

रक्षा कीन्ह सखिन सह माई । विरह व्यथा नहिं कछु कहि जाई ॥
सब सासुन पग माथ नवाई । आशिष प्यार लही सुखदाई ॥

श्री कौशिल्या अम्बा जी ने अपनी सखियों सहित अपनी पुत्री श्री सीता जी के लिये रक्षा मंत्र पाठ किया। उनकी उस समय की विरही पीड़ा का वर्णन नहीं किया जा सकता। पुनः श्री सीता जी ने अपनी सभी सासुओं के चरणों में शिर झुकाकर प्रणाम किया तथा सुख प्रदायक प्रेमाशीष प्राप्त कीं।

भगिनि सखिनि दासिनि मिलि सीता । भरी विरह भल भाव पुनीता ॥
मिली सुनैनहिं विरह दुखारी । लीन्ह मातु निज गोद बिठारी ॥

विरह में भरी हुई परम पवित्रा श्री सीता जी ने भाव पूर्वक अपनी सभी बहनों, सखियों एवं दासियों से भेंट की। अनन्तर श्री सीता जी ने अपनी अम्बा विरह–कातरा श्री सुनैना जी से भेंट की और श्री सुनैना जी ने उन्हें अपनी गोद में बिठा लिया।

मातु पुत्रि दोऊ विरहीनी । लिपटि रहीं प्रिय प्रेम प्रवीनी ॥
आशिष दै रक्षी पढ़ि मंत्रा । कछु न बसाय नारि परतन्त्रा ॥

विरह में सनी हुई प्रिय प्रेम पण्डिता वे दोनों (श्री माता सुनैना जी एवं पुत्री श्री सीता जी) एक दूसरे से लिपट गयीं। पुनः श्री अम्बा जी ने रक्षा मंत्र पढ़कर उन्हें आशीर्वाद दिया तथा बोलीं–हे पुत्री! सहज परतन्त्र नारी सदैव ही विवश होती है।

भाभिहिं जाय बहुरि लपटानी । सिया प्रीति किमि जाय बखानी ॥
सिद्धि कुँअरि निज हिय महँ लीन्ही । विरह सनी बोलति दुख कीन्ही ॥

पुनः श्री सीता जी अपनी भाभी श्री सिद्धि कुँअरि जी के समीप जाकर उनसे लिपट गयीं। अपनी भाभी जी के प्रति श्री सीता जी की प्रीति का वर्णन नहीं किया जा सकता। श्री सिद्धि कुँअरि जी ने उन्हें हृदय से लगा लिया तथा विरह में डूबी हुई वे दुखी होकर बोलीं–

दो0– हिय कठोर मम लाड़िली, तुम बन मैं गृह भोग ।
छोड़ अकेली जाँव अब, विधि कर इहैं नियोग ॥२००॥

हे लाड़िली श्री सिया जू! मेरा हृदय अत्यन्त कठोर है क्योंकि आप वन में निवास करेंगी तथा मैं राज–भवन में सुखों का उपभोग करूँगी। हाय, मैं अब आपको यहाँ अकेली छोड़ कर जा रही हूँ, विधाता का यही विधान हैं।

अस कहि गिरी भूमि सुकुमारी । प्रेम विकल नहिं देह सँभारी ॥
सासु सुनैना करि उपचारा । सिद्धिहिं बोध कराय सम्हारा ॥

ऐसा कहकर परम सुकुमारी श्री सिद्धि कुँअरि जी प्रेम व्यथित हो शरीर न सँभाल पाने के कारण भूमि में गिर पड़ीं, तब उनकी सासू श्री सुनैना जी ने उपचार द्वारा उन्हे स्वस्थ किया तथा समझाकर सम्हाल दिया।

प्रिय परिवार प्रजा पुरवासी । सब कहँ मिली सिया विरहासी ॥
जनकहिं मिली अतिहिं अकुलाई । विरह विपति हिय रही समाई ॥

विरह की प्रतिमूर्ति श्री सीता जी ने अपने प्रिय परिवार एवं प्रजा–पुर–वासियों सभी से भेंट की। पुनः श्री सीता जी ने अत्यन्त व्याकुल होकर अपने पिता श्री जनक जी महाराज से भेंट की, उनके हृदय में वियोग–जनित महान विपत्ति समाई हुई थी।

भूप सियहिं शुचि हृदय लगाये । नयन नीर शिर सो अन्हवाये ॥
सियहिं सराहि बुझाइ भुआरा । आशिष दीन्हे प्रीति पसारा ॥

श्री जनक जी महाराज ने अपनी पुत्री पवित्र श्री सिया जू को अपने हृदय से लगा लिया तथा प्रेमाश्रुओं से उनका शिरोभिषेक करने लगे पुनः श्री सिया जू की प्रशंसा करते हुए उन्हे समझाया और प्रेम पूर्वक आशीर्वाद प्रदान किया।

मिली भ्रात कहँ पुनि सिय प्यारी । अश्रु बहत दृग विरह विचारी ॥
हिय लगाय बहु रुदत कुमारा । विरहातुर नहिं देह सँभारा ॥

पुनः श्री सिया जी ने अपने भैय्या श्री लक्ष्मीनिधि जी से भेंट की, उनके विरह दुख का विचार करते ही श्री सीता जी के नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे थे। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सीता जी को अपने हृदय से लगाकर रुदन करने लगे तथा विरह से व्याकुल हो अपनी शरीर स्मृति न सँभाल सके।

दो0–भ्रात तुम्हारो अति निठुर, छोड़त वन महँ तोहि ।
काह करौं विधि विवश हौं, दोष न दीजै मोहि ॥२०१॥

हे श्री लाड़िली जू! आपका भैय्या अत्यन्त ही निर्दयी है जो आपको वन में छोड़ कर जा रहा है परन्तु मैं क्या करूँ? मैं श्री ब्रह्मा जी के विधान से लाचार हूँ, अतएव आप मुझे दोष मत दीजिएगा।–––

मोर निठुरता निज उर धारी । कबहुँ न कोसेव जनक दुलारी ॥
भलो पोच हौं जो कछु लाली । भैया मान किहेव प्रतिपाली ॥

–––हे श्री जनक दुलारी जानकी जू! आप मेरी निष्ठुरता को अपने हृदय में धारण कर, कभी भी मुझे मत कोसियेगा। वरन् हे श्री लाड़िली जू! मैं अच्छा या बुरा जो कुछ भी हूँ, अपना भैया समझ कर मेरा पालन करते रहिएगा।–––

हे विधि मोहिं कत जग जनमायो । जौ सिय राम काम नहिं आयो ॥
अब न जात जग बदन दिखाई । जीवौं बिन कैंकर्य अघाई ॥

–––हे विधाता! जब मैं श्री सीताराम जी के काम नही आ रहा तो आपने मुझे संसार में जन्म

ही क्यों दिया था। मुझसे अब संसार को अपना मुख नहीं दिखाया जाता क्योंकि मैं बिना प्रभु कैकर्य के संतुष्ट होकर जी रहा हूँ।———

सीय भ्रात ह्वै गृह सुख भोगी। सीय राम बन बसहिं कुयोगी ॥
लौटत महँ नहिं छुटै शरीरा । महा अधम पापिन कर वीरा ॥

———यह कैसा अशुभ समय आया है कि– श्री सीता जी का अग्रज होकर, मैं राज महलों में सुखों का उपभोग करूँगा तथा मेरे बहन–बहनोई श्री सीताराम जी दुखी हो वन में निवास करेंगे। हाय! यहाँ से लौटते समय, मेरे प्राण क्यों नहीं निकल जाते? मैं अत्यन्त ही नीच और पापियों का शिरमौर हूँ।———

अवशि छूटिहैं कबहुँक प्राना । यश न लियो बिछुरत सिय जाना ॥
अस कहि भये विभोर कुँअर वर । मुरछि परेउ बहु विकल भूमि पर ॥
सीय विकल परसति निज हाथा । उठहु भ्रात मम मन तव साथा ॥

———मेरे प्राण कभी न कभी तो अवश्य ही इस शरीर का परित्याग करेंगे ही परन्तु अपनी प्राण प्रियतरा अनुजा श्री सीता जी का वियोग जानकर भी ये देह से निकल कर यश क्यों नहीं प्राप्त कर लेते। ऐसा कहकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी विह्वल हो गये और अत्यन्त व्याकुलता के कारण मूर्छित होकर भूमि में गिर पड़े तब व्याकुल हुई श्री सीता जी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का अपने कराम्बुजों से स्पर्श कर बोलीं– हे श्री भइया जी! उठिये, आप दुखी न हों, मेरा मन तो सदैव ही आपके साथ है।

दो0– याज्ञबल्क्य तहँ आइकै, कुँअरहिं चेत कराय ।
पानि पकरि पुनि लै चले, सीतहिं धीर बँधाय ॥२०२॥

उसी समय निमिकुल आचार्य श्री याज्ञवल्क्य जी वहाँ पहुँचकर, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को चैतन्यता धारण कराये, पुनः श्री सीता जी को धैर्य धारण करा, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी हाथ पकड़ कर वहाँ से ले चले।

गुरु बशिष्ठ अरु जनक भुआरा। चित्रकूट के मुनिन उदारा ॥
हिलि मिलि करि प्रणाम सतभाये । कामद गिरिहिं स्वशीश नवाये ॥

पुनः रघुकुल गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी और श्री जनक जी महाराज ने श्री चित्रकूट के सभी उदार मुनियों से मिलकर, सद्भाव पूर्वक प्रणाम किया तत्पश्चात् श्री कामद गिरि (चित्रकूट जी) को भी अपना शिर झुकाकर प्रणाम किया।

चले अवध हिय धरि सिय रामा । विधि गति जानि विवश विरहामा ॥
तैसहिं मिथिला अवध के लोगा । करि प्रणाम गिरिवरहिं वियोगा ।।

इस प्रकार वे अपने हृदय में श्री सीताराम जी को धारण कर उनके विरह के वशीभूत हो, श्री ब्रह्मा जी के विधान को जानकर श्री अयोध्यापुरी चल दिये। उसी प्रकार श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी के सभी जन प्रभु वियोग–जनित दुख से दुखी गिरिराज श्री चित्रकूट जी को प्रणाम किये।

चले सकल रघुवर विरहीले । भये शिथिल सब तन मन ढीले ॥
प्रभु पद पाँवरि शिरहिं सोहाहीं । सुमिरत चले भरत पुर काहीं ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के वियोग में व्यथित, समागत सम्पूर्ण समाज श्री अयोध्या पुरी को चल दिया। उस समय सभी के शरीर और मन शिथिल हो गये थे। श्री राम जी महाराज की चरण पादुकाओं को शिर में धारण किये, श्री भरत जी श्री राम जी महाराज का स्मरण करते हुए श्री अयोध्यापुरी को प्रस्थान करते हुए सुशोभित हो रहे थे।

सजल नयन थर थर तन होई । विरह व्यथा कहि जाय न सोई ॥
तैसहिं जनक कुँअर मग चलहीं । डममग पैर धरत बिन बलहीं ॥

श्री भरत जी के नेत्र आँसू भरे हुये थे तथा उनका शरीर थर–थर काँप रहा था, उनकी उस विरह व्यथा का वर्णन नहीं किया जा सकता। उसी प्रकार जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी भी मार्ग में डगमगाते हुए बिना बल के पैरों को रखते हुए चल रहे थे।

दो0– फफकत सिसकत जात पथ, गुरु पकरे तिन हाथ ।
मनहु फणी मणि बिन विकल, कहत सीय रघुनाथ ॥२०३॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी फफकते एवं सिसकियाँ भरते हुए मार्ग में श्री सीताराम कहते हुए चले जा रहे थे, श्री गुरुदेव जी उनका हाथ पकड़े हुए थे तथा वे मणि के बिना नाग के समान व्याकुल हो रहे थे।

राम लखन दूनहु विरहीने । चले जात पहुँचावन भीने ॥
बार बार गुरु देहिं निदेशा । जाहु बहुरि जनि सहहु कलेशा ॥

श्री राम जी महाराज और श्री लक्ष्मण कुमार दोनों–भाई अपने प्रियजनों के विरह में दुखी हुए उन्हें पहुँचाने के हेतु चल रहे थे। श्री गुरुदेव जी उन्हें बार बार आज्ञा देते हैं कि– आप दोनो अब लौट जायें, ज्यादा कष्ट मत सहिये।

प्रेम विवश बहुरहिं नहिं रामा । पार भये मन्दाकिनि श्यामा ॥
वरवश रामहिं गुरुजन फेरे । विरह व्यथा तहँ अतिशय घेरे ॥

परन्तु प्रेम के वशी हो श्री राम जी महाराज वापस नहीं हो रहे थे, इस प्रकार श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज सभी को पहुँचाते हुए श्री मन्दाकिनी जी के इस पार आ गये तब सभी गुरुजनों ने श्री राम जी महाराज को हठपूर्वक लौटा दिया उस समय वहाँ सभी को अत्यधिक विरह वेदना ने आत्मसात कर लिया था।

जानि विकल सब कहँ रघुराई । सबहिं मिले क्षण महँ उर लाई ॥
अमित रूप ह्वै जान न कोऊ । गये विरह रस लोग समोऊ ॥

उस समय सभी जनों को अपने वियोग में व्याकुल समझ, श्री राम जी महाराज ने असीमित रूप धारण कर एक ही क्षण में सभी को हृदय से लगाकर भेंट की। उनके इस रहस्य को कोई भी नहीं जान सका और सभी लोग विरह रस में समाविष्ट हो गये।

जड़ चेतन जग विरह समायो । चीतकार रव विछुरत छायो ॥
देखि देव भे प्रेम विभोरा । वरषहिं सुमन करत जय शोरा ॥
राम लखन फिरि सरिता पारा । खड़े ऊँच थल सुभग करारा ॥

श्री राम जी महाराज से अलग (वियोग) होते समय संसार के सभी जड़ चेतनात्मक जीव विरह में समा गये थे, तथा करुण कन्दन का महान शोर वहाँ व्याप्त हो गया था। देवगण उस विरहावस्था को देखकर प्रेम विभोर हो गये तथा पुष्प वरषाते हुए जय नाद करने लगे थे। पुनः दोनो राज कुमार श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार जी लौट पड़े और श्री मन्दाकिनी जी के दूसरे किनारे पर ऊँचे स्थान में खड़े हो गये।

दो0—निरखहिं लोगन्ह जात पथ, प्रेम विवश रघुवीर ।
कहत लखन सन आह भरि, धन्य भरत मति धीर ॥२०४॥

अपने स्वजनों के प्रेमाधीन हो श्री राम जी महाराज मार्ग में उन्हें प्रस्थान करते हुए देख रहे थे तथा श्री लक्ष्मण कुमार से उसाँसे भरकर कह रहे थे कि— परम बुद्धिमान कुमार श्री भरत जी धन्य हैं।

जब लौं रही समाज दिखाती । तौ लौं खड़े रहे रस माती ॥
बहुरि गये आश्रम रघुवीरा । प्रेम विकल बहु होत अधीरा ॥

जब तक अयोध्यापुरी प्रस्थान करता हुआ समाज दिखाई देता रहा तब तक श्री राम जी महाराज उनके प्रेम में डूबे हुए खड़े रहे, पुनः वे अपने आश्रम आ गये तथा प्रेम विकलता के कारण अत्यन्त अधीर हो गये।

हाय भरत हा कुँअर हमारे । कहत राम मोचत दृग धारे ॥
अकल अनीह एकरस रामा । सत चित आनँद ज्ञान स्वधामा ॥

अपने आश्रम में श्री राम जी महाराज, हा श्री भरत जी!, हा कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! कहते हुए नेत्रों से अश्रु विमोचन कर रहे थे। जो श्री राम जी महाराज स्वयं पूर्ण , निष्काम, एकरस रहने वाले, सच्चिदानन्दमय, परम विवेकवान तथा परम पद स्वरूप हैं।———

भक्त प्रीति वात्सल्य दिखाई । धन्य राम निज जन सुखदाई ॥
सिय सौमित्र रुदत अकुलाई । तन अनुरूप रहै जिमि छाँई ॥

———वही श्री राम जी महाराज अपने भक्तों पर प्रेम वात्सल्य दिखा रहे हैं। स्वजन सुख प्रदाता श्री राम जी महाराज धन्य हैं। श्री राम जी महाराज को अधीर हुए देखकर, सुमित्रा कुमार श्री लक्ष्मण जी एवं जनक नन्दिनी श्री सीता जी उसी प्रकार व्याकुल हो रहे थे जिस प्रकार परछायीं देह का अनुसरण करती है।

तहँ लखि रामहिं विकल अतीवा । भये विकल बन गिरि जड़ जीवा ॥
मुनि सब समुझाये बहु भाँती । धरे राम धीरज सुख शान्ती ॥

वहाँ श्री राम जी महाराज को अत्यन्त व्याकुल देखकर, वन व पर्वत के सभी जड़ जीव भी

व्याकुल हो गये थे। अनन्तर सभी मुनियों ने जब श्री राम जी महाराज को विविध प्रकार से समझाया तब वे धीरज धारण किये तथा सुख और शान्ति प्राप्त किये।

दो0– मुनिगन रामहिं पूँछि पुनि, अत्रि आदि तप शालि ।
गवने आश्रम निज निजहिं, सीय राम रुख पालि ॥२०५॥

पुनः महा तपस्वी श्री अत्रि जी आदि मुनिगण श्री राम जी महाराज से आज्ञा प्राप्तकर तथा श्री सीताराम जी की रुचि का पालन करने हेतु अपने–अपने आश्रमों को प्रस्थित हो गये।

छं0– सिय राम राजत लखन युत, कामद गिरिहिं रस छाय के ।
नित मोदमय लीला ललित, करि प्रिय सिया सह भाय के ॥
सुख लहहिं सीता अरु लखन, नित नित करत सोइ राम हैं ।
सुख चाह तैसहिं उर वसत, हित राम के दोउ धाम हैं ॥

इस प्रकार श्री लक्ष्मण कुमार सहित श्री सीताराम जी, रस मग्न हुए, कामद गिरि में निवास कर रहे थे तथा अपनी प्रिय प्रियतमा श्री सिया जू और भैया श्री लक्ष्मण कुमार के साथ नित्य आनन्द स्वरूप सुन्दर लीला कर रहे थे। श्री राम जी महाराज नित्य प्रति वही कार्य करते थे जिससे उनकी प्राण वल्लभा श्री सीता जी और अनुज कुमार श्री लक्ष्मण जी सुख संप्राप्त करें तथा उसी प्रकार श्री राम जी महाराज के हेतु, सुखेच्छा, उन दोनों श्री सीता जी एवं श्री लक्ष्मण कुमार जी के हृदय भवन में नित्य निवास करती थी।

कहुँ आय मुनिगन दर्श करि, निज निज हिये आनँद भरहिं ।
नित होत वेद पुराण तहँ, सुठि शुचि त्रिपथ चरचा करहिं ॥
सिय राम विहरत मोद भरि, सरिता पुलिन अति ही लसैं ।
जिमि क्षीर सागर शेष शेषी, श्री सहित हरषण वसैं ॥

कभी मुनिगण श्रीराम जी महाराज के समीप आकर, उनके दर्शन कर हृदय में आनन्द प्राप्त करते थे। वहाँ चित्रकूट की श्री राम पर्णशाला में नित्य ही वेदों और पुराणों का पाठ होता था तथा परस्पर मुनिगण त्रिपथ (कर्म, ज्ञान और उपासना) की सुन्दर पवित्र चरचा करते रहते थे। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– श्री मंदाकिनी नदी के तट पर विहार करते हुए श्री सीताराम जी उसी प्रकार अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार क्षीर–सागर में सर्वशेषी श्री विष्णु भगवान अपनी प्रिया श्री लक्ष्मी जी के साथ शेष–शैय्या पर हर्ष पूर्वक निवास कर रहे हों।

दो0– सुख विलास कामद गिरी, पावन थल अनुरुप ।
सत चिद आनँद धाम प्रभु, विलसैं अमल अनूप ॥२०६॥

इस प्रकार सुखपूर्वक विहार करने के सर्वथा अनुकूल श्री कामदगिरि चित्रकूट की पावन स्थली में सच्चिदानन्दमय प्रभु श्री सीताराम जी निर्विकार व अनुपमेय विहार कर रहे थे।

जस रह सिया सहित भगवाना। चित्रकूट तिमि कीन्ह बखाना ॥
आगिल चरित कहहुँ हनुमाना। भरत कुँअर जिमि कीन्ह पयाना ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि– हे श्री हनुमान जी! श्री चित्रकूट गिरि में श्री सीता जी के सहित भगवान श्री राम जी महाराज जिस प्रकार निवास कर रहे थे, वह चरित्र मैंने बखान कर दिया। अब मैं आगे का चरित्र वर्णन कर रहा हूँ जिस प्रकार, श्री भरत जी और कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री चित्रकूट गिरि से प्रस्थान किया था ।

मिथिला अवध समाज दुखारी। विदा होय तन सुधिहिं बिसारी ॥
डगमग पैर धरत मग माहीं। देखहिं मुरुकि मुरुकि प्रभु काहीं ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के विरह में दुखी, समग्र श्री मिथिला एवं श्री अयोध्यापुरी का समाज उनसे अलग होकर, अपने शरीर स्मृति को भूल गया था। वे सभी मार्ग में डगमगाते पैर रख रहे थे तथा पीछे मुड़–मुड़कर प्रभु श्री राम जी महाराज को देख लेते थे।

अढुकि अढुकि ढारत दृग आँसू। देखहिं प्रभुहिं खड़े सरि पासू ॥
कछुक दूरि गवने सब लोगू। राम दरश दुरि गयो सुयोगू ॥

सभी ठहर–ठहर कर नेत्रों से अश्रु बहाते हुए श्री मन्दाकिनी जी के समीप खड़े हुए प्रभु श्री राम जी महाराज को देखते जाते थे। इस प्रकार वे सभी कुछ दूर चले गये जहाँ से श्री राम जी महाराज के दर्शन का सुयोग भी दूर हो गया।

कामद गिरिहिं विलोकन लागे। पायन चलत प्रेम रस पागे ॥
फिरि फिरि गिरि कहँ लेहिं विलोकी। करैं प्रणाम समाज सशोकी ॥
कछुक दूरि चलि गिरिवर दर्शा। भयो निरोध महा दुख कर्षा ॥

तब वे सभी कामद गिरि श्री चित्रकूट पर्वत को देखते हुए, प्रेम–रस में डूबे, पैदल ही चले जा रहे थे। वे सभी पीछे मुड–मुड़कर गिरि श्रेष्ठ श्री चित्रकूट जी को देखते तथा दुख में डूबे हुए ससमाज प्रणाम कर लेते थे। कुछ दूर चलने पर गिरि–श्रेष्ठ श्री चित्रकूट जी के दर्शन में भी महान दुखदायी अवरोध हो गया।

दो0– करि प्रणाम गिरवरहिं सब, विनवत दोउ कर जोर।
सुखी रहैं सिय राम नित, सहित लखन सब ठौर ॥२०७॥

तब सम्पूर्ण मिथिला व अवध समाज ने श्री चित्रकूट गिरि को प्रणाम किया तथा हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि– श्री लक्ष्मण कुमार जी के सहित श्री सीताराम जी नित्य ही सर्वत्र सुखी रहें।–––

अवधि बिताय अवध रजधानी। राजा राम सीय पटरानी ॥
होहिं मनोरथ हिरदय केरा। अवध रहे आनन्द बसेरा ॥

–––हमारे हृदय का यही महान मनोरथ है कि– वन की अवधि व्यतीत कर, अपनी राजधानी श्री अयोध्यापुरी में श्री राम जी महाराज राजा और श्री सीता जी उनकी पटरानी (महारानी) हों तथा श्री अयोध्यापुरी में पुनः आनन्द का निवास हो जाय।

यहि प्रकार सब भरि भरि आँसू । सीय राम कहि लेत उसाँसू ॥
चले धनिक इव धनहिं गँवाई । शोक सनेह विपत्ति समाई ॥

इस प्रकार वे सभी नेत्रों में अश्रु भरकर श्री सीताराम कहते हुए, उसाँसे भरकर, शोक प्रेम और विपत्ति में सराबोर हुए, ऐसे चले जा रहे थे जैसे अपनी सम्पूर्ण सम्पति गँवाकर कोई धनवान दुखी व विपत्ति में डूबा हुआ चलता है।

गुरु बशिष्ठ जनकहिं लखि बोले । तन श्रम हरण वचन रस घोले ॥
दुहुँ समाज तन कृशी मलीनी । राम विरह दुखमय अति दीनी ॥

गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी ने श्री जनक जी महाराज की ओर देखकर, श्रम निवारक व रससिक्त वचनों से कहा– हे श्री मिथिलेश जी! सुनिये, दोनों पुरियों के समाज के सभी स्त्री–पुरुष क्षीण–काय, श्री हीन और श्री राम जी महाराज के दुखमय वियोग के कारण अत्यन्त दीनता युक्त हैं।–––

पायन चलन योग नहिं कोई । वाहन चढ़ि चढ़ि चल सब कोई ॥
सुनि मुनि बचन जनक शिर धारी । भरतहिं दीन सुझाव हँकारी ॥

–––इस प्रकार कोई भी पैदल चलने के योग्य नहीं हैं अतः सभी लोग वाहनों में सवार होकर चलें। मुनिवर श्री बशिष्ठ जी के वचनो को सुन एवं शिरोधार्य कर श्री जनक जी महाराज ने श्री भरत जी को बुलाकर श्री गुरुदेव जी के इस प्रस्ताव को प्रगट किया।

दो0– वाहन चढ़ि चढ़ि सब चले, आयसु धरि मुनि राज ।
सीय राम सोचत सबहिं, मिथिला अवध समाज ॥२०८॥

तदनन्तर मुनि श्रेष्ठ श्री बशिष्ठ जी की आज्ञा शिरोधार्य कर दोनों पुरियों (श्री अयोध्यापुरी व श्री मिथिला) का समाज श्री सीताराम जी का चिन्तन करता हुआ वाहनों में चढ़ कर प्रस्थान करने लगा।

कहत परस्पर सब नर नारी । लखन सीय रघुवर सुख सारी ॥
करि करि सुरति सबहिं की आजू । होइहैं शोक विकल रस राजू ॥

वे सभी स्त्री–पुरुष परस्पर में कह रहे थे कि– श्री लक्ष्मण कुमार जी, श्री सीता जी और सुखों के सार श्री राम जी महाराज आज हम सभी का स्मरण कर शोकाकुल व विरह रस मग्न होंगे।

धर्म धुरीन धर्मव्रत धारी । मातु पिता गुरु आज्ञाकारी ॥
छाये बनहिं प्रसन्न महाना । शरणागत पालक भगवाना ॥

धर्म के आश्रय, धर्म व्रत में आरूढ़, अपने माता–पिता व श्री गुरुदेव जी के आज्ञा–पालक, शरणागत जीवों के प्रतिपालन में नित्य निरत भगवान श्री राम जी महाराज इस समय अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक वन में निवास कर रहे हैं।

लक्ष्मीनिधि अरु भरत सलोने । पीवत चले विरह रस दोने ॥
सीता राम लखन यश भावा । कहत परस्पर मधु रस छावा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी और परम सुशोभन कुमार श्री भरत जी श्री राम जी महाराज के विरह–रस को हृदय द्रोणों में भर कर पान करते हुए चले जा रहे थे। वे श्री सीताराम जी की अक्षुण्ण कीर्ति व श्री लक्ष्मण कुमार जी के पवित्र भावों का परस्पर कथन–श्रवण करते हुए हृदय में मधुर आनन्द (रस) से ओतप्रोत हो जाते थे।

दीन बन्धुता प्रभु की वरणी। सहित दीनता आपन करणी ॥
सुनत सुनावत दोउ प्रभु प्रेमी। भूलि अपनपौ सिगरो नेमी ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के दीन बन्धुत्व और दैन्यता पूर्वक अपने कृत्यों का वर्णन कर परस्पर सुनते और सुनाते हुए वे दोनों प्रभु प्रेमी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी तथा श्री भरत जी अपने अस्तित्व और समग्र नियमों को भी भूल जाते थे।

दो0– तैसहिं मुनिगन जनक नृप, प्रभु चरचा मन लाय ।
कहत जाहिं मग माहिं सब, शीतल सुखद सुहाय ॥२०९॥

उसी प्रकार मुनिगण और श्री जनक जी महाराज आदि सभी जन मार्ग में, प्रभु श्री राम जी महाराज के शीतल, सुखद व सुन्दर चरित्रों को मन लगाकर कहते हुए चल रहे थे।

राम मातु अरु कुँअर सुमाता। कहत स्वभाव राम सुख दाता ॥
सिय व्रत लखन सुखद सेवकाई। कहत सुनत करि बहु विलपाई ॥

श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की अम्बा श्री सुनैना जी परस्पर में, श्री राम जी महाराज के सुख प्रदायक स्वभाव, श्री सीता जी के पातिव्रत और श्री लक्ष्मण कुमार की सुखप्रद सेवा का कथन एवं श्रवण करती हुई अतिशय विलाप कर रही थीं।

यहि विधि विरह सने सब कोऊ। वसत जहाँ तहँ प्रभु थल जोऊ ॥
पहुँचे जाय अवध सब लोगू। गये सहमि सुधि हृदय वियोगू ॥

इस प्रकार श्री राम–विरह में डूबे हुए सभी जन मार्ग में जहाँ–तहाँ प्रभु श्री राम जी महाराज के निवास किये हुए स्थलों में रुकते और उन्हें देखते हुए श्री अयोध्यापुरी पहुँच गये। परन्तु वहाँ पहुँच चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज की स्मृति और हृदय में प्रभु श्री राम जी के वियोग के कारण सभी जन सहम (स्तम्भित हो) गये।

नीर वहत दृग किये प्रवेशा। जनक किये सुधि अवध नरेशा ॥
प्रेम विभोर मुरछि गे राऊ। भूले सुधि बुधि ज्ञान न काऊ ॥

श्री जनक जी महाराज अवध नरेश चक्रवर्ती श्री दशरथ जी की स्मृति कर नेत्रों से अश्रु बहाते हुए पुरी में प्रवेश किये। उस समय श्री जनक जी महाराज प्रेम विभोर हो सभी प्रकार की स्मृति भूल गये थे उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं था।

करिहैं कवन मोर सतकारा। कहि कहि विलपत जनक भुआरा ॥
हाय सखे मोहि छोड़ि सिधायउ। देखन अवध तुम्हहि बिन आयउँ ॥

अब मेरा यहाँ कौन सत्कार करेगा ऐसा कहकर, श्री जनक जी महाराज विलाप करने लगे,

हाय सखे! आप मुझे छोड़कर अकेले ही परम धाम चले गये, मैं अब आप से रहित श्री अयोध्या पुरी को देखने आया हूँ।

दो0– अति कठोर हिय मोर सत, देखि अवध बिन भूप ।
धीर धरे जीवत रहौं, लह्यो न प्रेम स्वरूप ॥२१०॥

मेरा हृदय निश्चित ही अत्यन्त कठोर है क्योंकि श्री अयोध्यापुरी को चक्रवर्ती जी महाराज के बिना देखकर भी मैं धैर्य धारण किये हुए जीवित हूँ। हाय, मैं देह त्याग कर प्रेम के स्वरूप को नहीं प्राप्त कर सका।

मुनि बशिष्ठ जनकहिं समुझाई । लीन्हे अपने साथ लिवाई ॥
कुँअरहु दशा जाय नहिं वरणी । भूप प्यार सुधि तन मन हरणी ॥

मुनिराज श्री बशिष्ठ जी ने श्री जनक जी महाराज को समझा कर अपने साथ ले लिया। श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि– हे श्री हनुमान जी! कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की, उस समय की अवस्था का मुझसे वर्णन नहीं किया जा रहा, चक्रवर्ती महाराज श्री दशरथ जी के प्रेम की स्मृति ने उनके शरीर और मन दोनो का अपहरण कर लिया था।

विलपि वदत नहि देह सँभारा । अमित अभागी अपुहिं विचारा ॥
आज मोर करिहहिं को प्यारा । होवत करि करि सुरति दुखारा ॥

वे अपने आपको अतिशय भाग्यहीन विचार कर, विलाप करते हुए शरीर नहीं सँभाल पा रहे थे। आज मेरा प्यार कौन करेगा? ऐसा कह कर, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी चक्रवर्ती जी महाराज का स्मरण कर दुखी हो रहे थे।

कौशिल्या तेहिं बहु समुझाई । गई आपने सदन लिवाई ॥
निज निज गृह गवने सब लोगू । सकल अवध वासी अति शोगू ॥

उस समय महारानी श्री कौशिल्या जी ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया और अपने महल में ले गयीं। श्री अयोध्यापुर निवासी सभी जन अत्यन्त दुख–पूर्ण हृदय से अपने–अपने भवनों को प्रस्थित हो गये।

गे बशिष्ठ मुनि वरन लिवाई । अपने आश्रम शान्ति समाई ॥
जनकहुँ निज समाज के साथा । कहत सुनत दशरथ गुण गाथा ॥

रघुकुल गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी महाराज सभी मुनियों को लिवाकर शान्तिपूर्वक अपने आश्रम चले गये। श्री जनक जी महाराज भी अपने समाज सहित चक्रवर्ती श्री दशरथ जी के गुण–गणों का कथन एवं श्रवण करते हुए–––

दो0– प्रथम जहाँ उतरत रहे, जनकपुरी जेहिं नाम ।
उतरे सबहिन साथ लै, कियो तहाँ विश्राम ॥२११॥

–––जहाँ, पूर्व में ठहरते थे व जिसका नाम श्री जनकपुरी था सभी समाज को साथ लेकर वहाँ चले गये तथा वहाँ विश्राम किये।

भरत सहानुज विरह समाये। निज निज सदन बसे रस छाये॥
तिसरे दिवस भरत बुलवाये। गुरु समेत पुरवासी आये॥

श्री भरत जी अपने अनुज श्री शत्रुघ्न कुमार जी सहित, प्रभु–विरह में समाये हुए अपने अपने महल में शान्तिपूर्वक निवास किये। पुनः तीसरे दिन श्री भरत जी ने सभी को बुलवाया तब परम विवेकी गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी सहित सभी पुरवासी वहाँ आये।

मंत्री मातु महाजन साधू। विप्र सुहृद सब प्रजा अगाधू॥
जनक कुँअर सह मिथिला वासी। बैठे रघुवर प्रेम प्रकाशी॥

इस प्रकार सभी मंत्रीगण, मातायें, व्यापारी, संत, ब्राह्मण, मित्र, सम्पूर्ण असीम प्रजा–समूह और श्री जनक जी महाराज एवं श्री कुँअर लक्ष्मीनिधि जी के सहित समग्र श्री मिथिलापुर वासी श्री राम जी महाराज के प्रेमालोक से अलंकृत हुये आकर, वहाँ बैठ गये।

सदगुरु सचिव भरत प्रिय भाषी। समाधान करि सबहिं स्वराखी॥
हृदय प्रेम बल भरत सुजाना। खींचेउ सब कर चित्त महाना॥

सद्गुरु देव श्री बशिष्ठ जी, सचिव सुमन्त जी एवं श्री भरत जी ने प्रिय वचनो का विनियोग कर सभी को सम्मान पूर्वक आश्वस्त किया। परम विज्ञ एवं श्रेष्ठ श्री भरत जी उस समय अपने हृदय के प्रेम प्रभाव के कारण सभी के चित्त को अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे।

भरतहिं देखि सबहिं सुख होई। यथा राम दरशन मुद मोई॥
सबके हृदय विशद विश्वासा। भरत राज आनन्द विकासा॥

प्रेम विग्रह श्री भरत जी को देखकर सभी जनों को उसी प्रकार सुख हो रहा था जिस प्रकार आनन्दपूर्वक श्री राम जी महाराज के दर्शन करने से होता था। सभी के हृदय में यह महान विश्वास हो रहा था कि– श्री भरत जी के राज्य में अवश्य ही आनन्द का विकास होगा।

सुख समृद्धि नित नूतन बाढ़ी। परजा सनी रही सुख गाढ़ी॥
वेद धर्ममय प्रजा स्वरूपा। रही अवशि जस दशरथ भूपा॥

श्री अयोध्यापुरी में नित्य–प्रति नवीन सुख–समृद्धि बृद्धिंगत होती रहेगी तथा प्रजा अत्यधिक आनन्द में सनी रहेगी। वेद–धर्म के अनुसार प्रजा का स्वरूप अवश्य ही उसी प्रकार होगा जैसा श्री चक्रवर्ती जी महाराज के समय था।

दो0– राम प्रेम रत नारि नर, चौदह वर्ष विताय।
अवध सिंहासन राम लखि, रहिहैं आनन्द छाय॥२१२॥

इस प्रकार श्री राम प्रेम में अनुरक्त सभी स्त्री–पुरुष चौदह वर्ष व्यतीत कर श्री अयोध्यापुरी के राज्य सिहांसन में विराजे हुए, श्री सीताराम जी का दर्शन कर आनन्द में छक जायेंगे।

भरत गुरुहिं पूँछेव कर जोरी। सुदिन सुमंल देन अथोरी॥
जेहिं दिन राम पादुका भाई। देवहिं सिंहासन पधराई॥

पुनः श्री भरत जी ने अपने गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी से हाथ जोड़ कर पूछा कि–असीमित सुमंगलो का प्रदाता वह शुभ दिवस कब आयेगा, जिस दिन श्री राम जी महाराज की चरण पादुकाओं को श्री अयोध्यापुरी के राज्य सिंहासन में पधार दिया जाय।

गुरु निदेश शुभ समय विचारी। सिंहासन पाँवरी पधारी॥
पूजि सप्रेम राम के भावा। छत्र चमर निज हाथ चलावा॥

श्री गुरुदेव जी की आज्ञानुसार शुभ समय विचार कर श्री राम जी महाराज की चरण पादुकाओं को श्री भरत जी ने राज्य सिंहासन में पधरा दिया तथा उनका श्री राम जी महाराज के भाव से भावित हो पूजन कर छत्र और चँवर अपने हाथों से चलाने लगे।

विप्रन दीन्ह अनेकन दाना। भरत भाव नहिं जाय बखाना॥
राम पाँवरी नृप पद राजी। सेवहिं भरत दास रस भ्राजी॥

प्रेम विग्रह श्री भरत जी नें अनेक प्रकार से ब्राह्मणों को दान दिया। उस समय श्री भरत जी के हृदय के सुन्दर भाव का वर्णन नही किया जा सकता। श्री राम जी महाराज की चरण पादुकायें श्री अयोध्यापुरी के राज्य पद में सम्प्रतिष्ठित हैं और श्री भरत जी सेवक भाव में मग्न होकर उनकी सेवा कर रहे हैं।

भई विदित जग बात सुएही। भरत त्याग मूरति प्रभु नेही॥
जनक स्वयं सब काज सम्हारी। भरत सहाय सुनीति बिचारी॥

समग्र संसार में इस प्रकार की सुन्दर वार्ता विस्तारित हो गई कि– श्री भरत जी प्रभु प्रेम और त्याग की साक्षात् मूर्ति हैं। वहाँ मिथिला नरेश श्री जनक जी महाराज स्वयं ही, सुन्दर नीतियों का निर्धारण कर, श्री भरत जी की सहायता करने हेतु सभी कार्य सम्हाल रहे थे।

सेवक सचिव राज सहयोगी। धनिक महाजन प्रजा सुलोगी॥
सब कहँ निज निज काज लगाये। प्रीति प्रतीति रीति अपनाये॥

तत्पश्चात् सेवकों, मंत्रियों, राज्य सहयोगियों, धनवानों, व्यापारियों एवं प्रजा पुरवासियों आदि सभी को श्री जनक जी महाराज नें अपने अपने–अपने कार्य में लगा दिया था तथा उन सभी ने प्रेम, विश्वास एवं नियम पूर्वक उसे स्वीकार कर लिया था।

दो0– दशरथ नृप के रहत जस, सकल देश सुख शान्ति।
तथा प्रजा लहि भरत कहँ, मोद पाइ गइ भ्रान्ति॥२१३॥

जिस प्रकार चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के समय सम्पूर्ण श्री अयोध्यापुरी में सुख–शान्ति छायी हुई थी, उसी प्रकार श्री भरत जी को महाराज के रूप में पाकर प्रजा आनन्द प्राप्त कर रही थी, उनकी सभी शंकाओं का निवारण हो गया।

मुनि बशिष्ठ अरु जनक समीपा। करि वर विनय भरत कुल दीपा॥
कछुक नेम हित मम मति पागी। राम दरश जेहिं लहौं सुभागी॥

तदुपरान्त रघुवंश के दीपक (प्रकाशित करने वाले) श्री भरत जी ने रघुकुल आचार्य श्री बशिष्ठ

जी और श्री जनक जी महाराज के समीप सुन्दर विनती की कि– मैं अपने सौभाग्य स्वरूप श्री राम जी महाराज के दर्शन प्राप्त कर सकूँ , इस हेतु मेरी बुद्धि में कुछ नियम धारण करने की त्वरा उत्पन्न हुई है।

परम प्रेम लखि मुनि कहि दीना। करहु यथा रुचि धर्म धुरीना॥
पाइ सुआयसु भरत सुजाना। नन्दि ग्राम करि कुटी अमाना॥

श्री भरत जी के अतिशय प्रेम को देखकर, मुनिवर श्री बसिष्ठ जी ने कहा कि– हे धर्म धुरीण श्री भरत जी! आपकी जो अभिरुचि हो आप, वही कीजिये। तब श्री भरत जी ने श्री गुरुदेव जी की सुन्दर आज्ञा प्राप्तकर निरभिमान हो श्री नन्दिग्राम में कुटी बनवा ली।

भूमि खोदि शुभ गुफा बनाई। एक कुशासन तहाँ बिछाई॥
वलकल वसन जटा शिर धारी। त्रिकरण तजे भोग सुखकारी॥

वहाँ श्री भरत जी नें भूमि को खुदवाकर एक शुभ गुफा का निर्माण कराया। पुनः उस पर कुशा का एक आसन बिछाकर, तपस्वी वेष के वल्कल (वृक्षों की छाल के) वस्त्र एवं शिर में जटा धारणकर, मन, वचन और कर्म से सभी प्रकार के सुखकर भोगों का त्याग कर दिया।

तुम्बी केर बने जल पात्रा। राखहिं तिनहिं प्रयोजन मात्रा॥
संयम नियम रहनि मुनि ताँई। लीन्हे भरत सकल अपनाई॥

उस समय उनके उपयोग के लिये लौकी की तुम्बी के जल पात्र बनाये गये और उन्हें भी श्री भरत जी ने उपयोग मात्र के लिये ही रखा था। इस प्रकार श्री भरत जी नें, मुनियों की भाँति संयम–नियम पूर्वक सभी आचरणों को अपना लिया।

दो0– महा कठिन व्रत भरत कर, अचरज मानत लोग।
मुनिगन सकुचहिं अति हिये, नहि हमार अस योग॥२१४॥

श्री भरत जी के अत्यन्त कठिन ब्रत व नियम को देखकर सभी आश्चर्य मानते थे तथा उन्हे देखकर ऋषि–मुनि भी अपने हृदय में सकुचाने लगे थे कि– हमारी साधना भी इस प्रकार की नहीं है।

राम सीय उचरत भरि आहा। श्वाँस श्वाँस प्रति भरे उमाहा॥
अश्रु प्रवाह सदा दृग माहीं। कबहुँ विरह बस विकल लखाहीं॥

प्रेम मूर्ति श्री भरत जी अपनी प्रत्येक श्वाँस में आनन्दपूर्वक, आहें भर कर श्री सीताराम नाम का उच्चारण करते थे। उनके नेत्रों में सदैव ही अश्रु का प्रवाह बना रहता था, कभी–कभी वे विरह के कारण अत्यन्त व्याकुल दिखाई देते थे।

सीता राम ध्यान चित राता। भरत हृदय न सनेह समाता॥
महिमा भरत न कह श्रुति शेषा। प्रेम बनेउ जनु तापस वेषा॥

श्री भरत जी का चित्त निरन्तर श्री सीताराम जी के ध्यान में लगा रहता था जिससे उनका प्रेम हृदय में न समा सकने के कारण नेत्रों से निर्झरित होता रहता था। श्री भरत जी की महिमा को श्रुतियाँ और श्री शेष जी भी नहीं बखान कर सकते, उस समय वे ऐसे प्रतीत होते थे जैसे स्वयं

'प्रेम–देव' ही तपस्वी वेष धारण किये हो।

अवध राज सुख सत सुर ईशा । भरत वसत तहँ जप जगदीशा ॥
सपनेहु भोग न मन महँ आयो । भ्रमर यथा चम्पा बन छायो ॥

सैकड़ों देवताओं के स्वामी श्री इन्द्र के समान श्री अयोध्यापुरी का राज्य सुख था, जहाँ श्री भरत जी सम्पूर्ण जगत के स्वामी श्री सीताराम जी का जप करते हुए निवास करते थे। उनके मन में स्वप्न में भी किसी प्रकार के भोगों का स्मरण उसी प्रकार नहीं होता था जिस प्रकार वाग में रहते हुये भी चम्पा के फूल में भँवरा नहीं आता है।

भरतहिं सुर नर मुनी सराहैं । नाम लेत हिय प्रेम प्रवाहैं ॥
राम वसहिं वन तापस रूपा । भरत तपत तन गृहहिं अनूपा ॥

श्री भरत जी की प्रसंशा सभी देवता, मनुष्य एवं मुनि करते थे, श्री भरत जी का नाम लेने मात्र से हृदय में प्रेम का प्रवाह उमड़ पड़ता था। उस समय सभी कहते थे कि– श्री राम जी महाराज तो वन में निवास कर तपस्वी वेष धारण कर किये हुये हैं परन्तु श्री भरत जी भवन में निवास करते हुए भी अनुपमेय तपस्या कर, अपने शरीर को तपा रहे हैं।

दो0– भरत सुआयसु शीश धरि, रिपुहन हिय पुलकात ।
राज कार्य सहयोग सह, सेवहिं सिगरी मात ॥२१५॥

श्री भरत जी की सुन्दर आज्ञा शिरोधार्य कर श्री शत्रुघ्न कुमार जी हृदय में पुलकित होकर राज्य कार्य में सहयोग करने के साथ ही सभी माताओं की सेवा किया करते थे।

आपु स्वयं नित पाँवरि पूजा । करत भाव भरि नहिं गति दूजा ॥
अँसुअन नहवावैं पद पीठा । सिरहिं धारि पुन धारैं दीठा ॥

श्री भरत जी स्वयं, नित्य ही, चरण पादुकाओं का पूजन अनन्य गति हो, भाव में भरकर किया करते थे। वे श्री चरण पादुकाओं को प्रेमाश्रुओं से नहलाते हैं पुनः शिर में धारण कर, उन्हें नेत्रों में लगाते हैं।

योग क्षेम सब छोड़ सुजाना । पाँवरि आस हृदय नहिं आना ॥
आयसु माँगि राज कर काजा । करत भरत सह सचिव समाजा ॥

सुजान श्री भरत जी अपने योग और क्षेम की चिन्ता को त्याग कर, एकमात्र श्री चरण पादुकाओं का ही भरोसा करते थे, उनके हृदय में किसी अन्य का किंचित भी भरोसा नही था। श्री भरत जी श्री चरण पादुकाओं से आज्ञा माँग–माँगकर मंत्रियों सहित राज्य का कार्य भार चलाते थे।

अवधपुरी के सब नर नारी । भरत प्रीति जावैं बलिहारी ॥
राम दरश हित व्रत उपवासा । लागे करन सकल सहुलासा ॥

श्री अयोध्यापुरी के सभी स्त्री–पुरुष, श्री भरत जी की प्रीति पर बलिहारी थे तथा श्री राम जी महाराज के शुभ दर्शनों की कामना से आनन्द पूर्वक व्रत और उपवास आदि करने में तत्पर हो गये थे।

भरत रहनि परभाव पसारा। पूरेउ कौशल देश अपारा॥
लागे करन देश भरि नेमा। संयम सहित त्यागि तन क्षेमा॥

राज कुमार श्री भरत जी के आचरण का असीमित प्रभाव सम्पूर्ण कौशल–पुरी में छा गया था जिससे सभी श्री अयोध्यापुर निवासी संयम–पूर्वक अपनी शारीरिक कुशलता को त्यागकर नियम व व्रत करने लगे थे।

दो0– सीय राम कल्याण हित, अरु प्रिय दरशन काज।
गृहहिं बसत सिगरी प्रजा, जनु वन मुनिन समाज॥२१६॥

श्री सीताराम जी के मंगल एवं प्रिय दर्शनों के हेतु श्री अयोध्यापुरी की सम्पूर्ण प्रजा नियम व व्रत करती हुई, अपने भवन में उसी प्रकार निवास कर रही थी जिस प्रकार वन में मुनियों का समाज।

जनक बशिष्ठ भरत सन जाई। कहा हृदय भरि नेह जनाई॥
आयसु होय जाउँ अब मिथिला। अवध कार्य सब चलत अशिथिला॥

कुछ समयोपरान्त श्री जनक जी महाराज, मुनिवर श्री बशिष्ठ जी और राजकुमार श्री भरत जी के समीप जाकर, भरे हुए हृदय से, अत्यन्त स्नेह प्रकट करते हुए बोले– यदि आप लोगों की आज्ञा हो तो मैं अब श्री मिथिलापुरी को प्रस्थान करूँ क्योंकि श्री अयोध्यापुरी के राज्य कार्य अब पूर्ण रूपेण सुचारुतया चलने लगे हैं।–––

समय समय महँ आवत रहिहैं। सब विधि नाथ सुआयसु वहिहैं॥
भरत मते मुनि आयसु दीन्हा। मिथिला जाय समाजहिं लीन्हा॥

–––पुनः समय–समय पर मैं यहाँ आकर, सभी प्रकार से नाथ की आज्ञा का पालन करता रहूँगा। श्री विदेहराज महाराज के वचनों को श्रवण कर मुनिवर श्री बशिष्ठ जी ने श्री भरत जी की सम्मति के अनुसार आज्ञा प्रदान की कि– आप अपने सम्पूर्ण समाज के सहित श्री मिथिलापुरी को प्रस्थान करें।

भरत बशिष्ठ सचिव के हाथा। सौंपि राज सब निमिकुल नाथा॥
हिलि मिलि सबहिं समाजहिं लीन्हे। कुँअर सहित मिथिलहिं पग दीन्हे॥

निमिकुल नरेश श्री जनक जी महाराज नें उस समय राज कुमार श्री भरत जी, आचार्य श्रेष्ठ श्री बशिष्ठ जी एवं सचिव श्री सुमन्त जी के हाथों में श्री अयोध्यापुरी का राज्य भार सौंप, सभी से प्रेम पूर्वक भेंटकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सहित सम्पूर्ण समाज को लिये हुये श्री मिथिलापुरी को प्रस्थान किया।

कुँअरहिं चलत सुआयसु दीनी। सकल मातु करि प्यार प्रवीनी॥
अब कब श्याल भाम की जोरी। देखिहौं नयन कहत रस बोरी॥
भरत शत्रुहन पुनि पुनि भेंटी। मुनिवर आयसु प्यार समेटी॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रस्थान करते समय सभी परम प्रवीणा माताओं ने प्यार कर सुन्दर आशिर्वाद देते हुये रसयुक्त वाणी से कहा– अब हम लोग, कब श्याल और भाम (श्री लक्ष्मीनिधि

जी और श्री राम जी महाराज) की सुन्दर जोड़ी का दर्शन अपने नेत्रों से करेंगी। पुनः श्री भरत जी और श्री शत्रुघ्न कुमार जी से बारम्बार भेंट कर तथा मुनिवर श्री बशिष्ठ जी के प्यार व आशीर्वाद को एकत्रित कर———

दो0– सने विरह रस दुखित मन, कुँअर पिता के साथ ।
करि प्रणाम अवधहिं चले, सुमिरि सीय रघुनाथ ॥२१७॥

———विरह रस में सने हुए दुखित मन से कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने पिता श्रीमान् जनक जी महाराज के साथ श्री अयोध्या पुरी को प्रणाम कर श्री सीताराम जी का स्मरण करते हुए, श्री मिथिलापुरी को चल दिये।

बसत जहाँ तहँ जनक भुआरा। पहुँचे मिथिला विरह अपारा ॥
निज निज भवनहिं सकल समाजा । गवनी हृदय राखि रघुराजा ॥

श्री जनक जी महाराज मार्ग में जहाँ–तहाँ निवास करते हुए श्री राम जी महाराज के असीम विरह में भरे हुए श्री मिथिलापुरी पहुँच गये। वहाँ सम्पूर्ण समाज श्री राम जी महाराज को हृदय में धारण कर अपने–अपने भवनों में चली गयी।

भूप सुनैना सह परिवारा। गवने निज निज सबहिं अगारा ॥
आवहिं मिलन नगर नर नारी । सीय राम शुभ चरित पियारी ॥

परिजनों सहित श्री जनक जी महाराज व महारानी श्री सुनैना जी भी अपने–अपने भवनों में प्रस्थान कर गये। श्री विदेहराज जी महाराज व श्री सुनैना जी के महल में, सभी नगर निवासी स्त्री–पुरुष उनसे भेंट करने हेतु आये जिनसे श्री सीताराम जी के शुभ एवं प्रिय चरित्रों की———

कहहिं कथा सब जनक सुनैना। सुनत विरह वश होहि अचैना ॥
तैसहिं जनक सुअन गृह भीरा। कहत सुनत सब होहिं अधीरा ॥

———दुख भरी कथा श्री जनक जी महाराज और श्री सुनैना जी ने कही, जिसे सुनकर सभी प्रभु विरह के वशीभूत व्याकुल हो गये। उसी प्रकार जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी के भवन में भी मिथिला पुरी का जन–समूह एकत्रित हुआ और वे सभी श्री सीताराम जी के वनवास के दुखमय चरित्रों का वर्णन, श्रवण कर अधीर हो गये।

सो दिन बिन भोजन सब बीता । किय विश्राम रात मन चीता ॥
दुसरे दिवस न्हाइ सब लोगा । करि करि आह्निक कृत्य अभोगा ॥

इस प्रकार वह दिन भी बिना भोजन किये ही व्यतीत हो गया और रात्रि में सभी ने स्थिर मन से विश्राम किया। पुनः दूसरे दिन सभी लोग शारीरिक सुख–दुख का अनुभव किये बिना, स्नानोपरान्त आह्निक कृत्यों का सम्पादन किये।

दो0– बैठे करि भोजन सबहिं, जनक राय पहँ आय ।
सीय राम लीला ललित, कहहिं भरत रति गाय ॥२१८॥

तदनन्तर श्री मिथिला पुर के सभी निवासी भोजन ग्रहण कर, श्री जनक जी महाराज के समीप आकर बैठ गये। उस समय श्री विदेहराज जी महाराज श्री सीताराम जी के सुन्दर चरित्रों एवं श्री भरत जी के उत्कृष्ट प्रेम का वर्णन करने लगे।

जनक नगर सिगरे नर नारी । चहत राम सिय मंगल भारी ॥
दूजे दरश हेतु सब लोगू । तृण सम तजे गृहादिक भोगू ॥

श्री जनक पुरी के सभी स्त्री–पुरुष प्रथम तो नित्य ही श्री सीताराम जी की मंगल कामना किया करते थे तथा दूसरे उनके पुनः प्रिय दर्शनों (राज्य सिंहासनासीन) के लिए उन सभी ने अपने अपने भवनों में उपस्थित सम्पूर्ण भोगों को तृण (तिनके) के समान त्याग दिया था।

असन वसन संयम सब कीन्हे। बहु विधि लोग नेम व्रत लीन्हे ॥
चाहहिं हृदय राम कल्याना। देव मनावहिं विविध विधाना ॥

सभी ने अपने भोजन और वस्त्र संयमित कर लिये थे तथा विविध प्रकार से नियम व व्रतों का अनुष्ठान करने लगे थे। वे सभी हृदय से श्री राम जी महाराज का मंगल चाहते थे अतः इस निमित्त विभिन्न प्रकार से अपने–अपने इष्ट देवताओं को प्रसन्न करते थे।

सिया राम शुभ सुयश बखानी । सुनहिं परस्पर प्रेम समानी ॥
अह निशि मन सिय राम स्वरूपा । सुमिरत दूलह वेष अनूपा ॥

वे परस्पर में श्री सीताराम जी की शुभ कीर्ति का ही बखान करते और उसे ही प्रभु प्रेम में डूबे हुये श्रवण करते थे। समस्त मिथिलापुर वासी अहो–रात्रि अपने मन में श्री सीताराम जी के अनुपमेय दूलह वेष के स्वरूप का स्मरण करते रहते थे।

जनक सुनैना प्रेम अपारा। को कवि कहै अहै बुधि वारा ॥
जासु प्रेमवश शक्ति अचिन्ती। नित्य अनादि पालु अगिन्ती ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–ऐसा बुद्धिमान कवि कौन है जो श्री जनक जी महाराज और अम्बा श्री सुनैना जी के असीम प्रेम को वर्णन कर सकने में समर्थ हो। जिनके प्रेम के वशीभूत हो नित्य, अनादि, अचिन्त्य शक्ति सम्पन्ना, असीमित कृपा परिपूर्णा व परमाद्याशक्ति श्री सीता जी स्वयं–––

दो0–पुत्रि भई सुख देन हित, ब्रह्म राम जामात ।
शारद शेष महेश विधि, यश नहिं वरणि सिरात ॥२१९॥

–––उन्हें सुख प्रदान करने के हेतु पुत्री व पूर्णतम, परब्रह्म परमात्मा श्री राम जी महाराज जामाता बने हैं। उनके महद्यश का वर्णन श्री सरस्वती जी, श्री शेष जी, श्री शंकर जी एवं श्री ब्रह्मा जी भी नहीं कर सकते।

सेवा सरस राम की जानी। राज काज देखत विरहानी ॥
वेद विदित महिमा जेहिं केरी। तासु रहनि किमि कहौ बड़ेरी ॥

श्री विदेह राज जी महाराज श्री राम जी के विरह में समाये हुए उनकी रसमयी सेवा समझ

कर, राज्य कार्य का निरीक्षण करते थे। जिनकी महिमा का, वेदों में वर्णन किया गया है उनकी महान रहनी का, सर्वथा संसारी मैं, किस प्रकार बखान कर सकता हूँ।

अनासक्त सब विधि तजि रागा । वसत गृहहिं सिय वर अनुरागा ॥
गुरु मंत्री भ्रातन सह राया । देखहिं राज काज बिन माया ॥

श्री मिथिलेश जी महाराज, सभी प्रकार से आसक्ति विहीन हो, राग का भली प्रकारेण त्याग कर, श्री सीताकान्त में अनुराग किये हुए अपने महल में निवास कर रहे थे। अपने परमाचार्य गुरुदेव श्री याज्ञबल्क्य जी, मन्त्रियों एवं भ्राताओं सहित श्री जनक जी महाराज माया–मोह से सर्वथा रहित हो, राज्यकीय कार्यो का निरीक्षण करते रहते थे।

रानि सुनैना के ढिंग जाई । राम सिया यश कहहिं सुहाई ॥
भरत प्रीति वरणत बहु भाँती । कहत सुनत भरि आवत छाती ॥

श्री जनक जी महाराज महारानी श्री सुनैना जी के समीप जाकर, श्री सीताराम जी के सुन्दर यश का वर्णन करते थे। वे श्री सीताराम जी के प्रति राजकुमार श्री भरत जी की प्रीति का विविध प्रकार से वर्णन किया करते थे, जिसे कहने और सुनने से उनका हृदय प्रेम से आपूरित हो जाता था।

प्रेम विवश भल भूप सुनैना । जियत अवधि की आस अचैना ॥
सीय राम मन आँखिन रूपा । झूलत निशि दिन अकथ अनूपा ॥

प्रभु प्रेम के आधीन हो श्रेष्ठ महाराज श्री जनक जी और महारानी श्री सुनैना जी परम दुखी होते हुए भी उस सुखदायी समय की आशा में जीवन धारण किये हुए थे, जब श्री राम जी महाराज श्री अयोध्यापुरी वापस आयेंगें। श्री सीताराम जी का अकथनीय एवं अनुपमेय स्वरूप उनके मन और नेत्रों में दिवा–रात्रि झूलता रहता था।

दो0– यहिं विधि भूपति नारि सह, सहित कुँअर मति मान ।
मिथिला बसत वियोग रस, रहत सदा लपटान ॥२२०॥

इस प्रकार श्री जनक जी महाराज अपनी महारानी श्री सुनैना जी एवं परम बुद्धिमान कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ प्रभु वियोग में अनवरत डूबे हुए श्री मिथिलापुरी में निवास कर रहे थे।

एक दिवस श्री जनक दुलारा । कहेव नारि सन बात बिचारा ॥
प्रिया सुनहु अभिलाषा मोरी । बसहिं विपिन प्रभु जनक किशोरी ॥

एक दिन जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने भली प्रकार विचार कर अपनी धर्मपत्नी श्री सिद्धि–कुँअरि जी से एक बात कही, हे प्रिये! आप मेरे हृदय की अभिलाषा को सुनिये, हमारे प्राणाधार प्रभु श्री राम जी महाराज एवं जनक किशोरी श्री जानकी जू इस समय वन में निवास कर रहे हैं।

करि मुनि वेष फिरहिं पद चारी । बने मूल फल कन्द अहारी ॥
कष्ट सहत नित नूतन रामा । भोगन योग भोग भल श्यामा ॥

वे मुनियों का वेष धारण कर पैदल चलते हुए जंगलों में भटकते फिर रहे हैं तथा कन्दमूल एवं फलों का आहार करने वाले बने हुए हैं। परम सुन्दर भोगों का उपभोग करने के योग्य वे दोनों श्यामा–श्याम लाड़िली श्री सिया जू और चक्रवर्ती नन्दन श्री राम जी महाराज, वन में नित्य–प्रति नवीन दुःखों को सहन कर रहे हैं।———

तिन कर होइ हम गृह सुख भोगी । सुनहु प्रिया यह बात अयोगी ॥
यथा भरत करि नेम विशेषी । बसहिं अवध निज नयनन देखी ॥

हे प्रिया जू! सुनिये! उनके निजी सम्बन्धी होकर, हम भवन में निवास कर सुखों का उपभोग करें यह बात हमारे योग्य नहीं है। अतः जिस प्रकार हमने अपने नेत्रों से देखा है कि– राजकुमार श्री भरत जी श्री अयोध्यापुरी में विशेष–नियम पूर्वक निवास कर रहे हैं।———

तथा हमहुँ बस पुर के बहरी । राज वेष तजि भजहिं सियहिंरी ॥
राम दरश करि पुनि निज भवना । बसहिं प्रिया श्रम यहि महँ कवना ॥

———उसी प्रकार हम भी राजकीय वेश को त्याग कर, अपनी श्री मिथिलापुरी के बाह्य प्रान्त में निवास करते हुए श्री सिया जू का भजन करें। वनावधि पूर्ण होने के बाद श्री राम जी महाराज के दर्शन प्राप्त कर अपने भवन में पुनः निवास करेंगे, हे प्रिये! इस बात में कौन सा परिश्रम है।———

दो0– सिद्धि कुँअरि तब हर्षि हिय, बोली पति सन बात ।
प्राण नाथ मम मनहिं की, कीन्ही बात सुहात ॥२२१॥

———तब हर्षित हृदय श्री सिद्धि कुँअरि जी ने अपने प्राणपति कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से कहा– हे प्राणनाथ! आपने मेरी मनोभिलषित सुन्दर वार्ता ही कही है।———

मोरे मनहिं इहै अभिलाषा । गृह सुख त्यागि करैं बन वासा ॥
राम सीय हित तनहिं सुखाई । निज अनुरूप करहिं सेवकाई ॥

———मेरे हृदय में भी यही महान इच्छा है कि– हम समस्त गृह सुखों को त्यागकर, वन में निवास करें तथा श्री सीताराम जी के लिए अपने शरीर को तपा कर अपने स्वरूपानुरूप उनकी सेवा करें।

कुँअरि बात सुनि मन उत्साहा । कुँअर हृदय बहु बढ़ेव उमाहा ॥
मातु पिता ढिग गये त्वराई । कीन्ह प्रणाम लकुटि की नाई ॥

अपनी प्राण प्रियतरा श्री सिद्धि कुँअरि जी के अनुकूल वचन सुनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के मन में अतिशय उत्साह हुआ तथा हृदय में अत्यधिक आनन्द बृद्धिंगत हो गया। तब वे आतुरतापूर्वक अपने माता–पिता के समीप गये और उन्हें दण्डवत प्रणाम किये।

आशिष प्यार पाइ भे ठाढ़े । खड़े रोम जल नयनन बाढ़े ॥
पितु निदेश तब बोल कुमारा । विनती सुनियहिं तात उदारा ॥

अपने माता–पिता का आशिर्वाद एवं प्यार प्राप्त कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी खड़े हो गये, उन्हें रोमांच हो गया तथा नेत्र अश्रु प्रपूरित हो गये। उस समय अपने श्री मान् पिता जी की आज्ञा प्राप्तकर

कुमार लक्ष्मीनिधि जी बोले– हे उदार शिरोमणि श्री मान दाऊ जी! आप मेरी विनय सुनिये।–––

चौदह वर्ष करन बन वासा । बढ़ी मनहिं मन चाह पिपासा ॥
सीय राम मुद मंगल हेतू । करहिं नियम जिमि भरत सचेतू ॥

–––मेरे मन में चौदह वर्षो तक वन में निवास करने की मन–भावनी अतिशय त्वरा जागृत हुई है। अतः श्री सीताराम जी के आनन्द व मंगल के लिए हम सजगतया उसी प्रकार नियम करना चाहते हैं जिस प्रकार श्री भरत लाल जी कर रहे हैं।–––

दो0– सीय राम बन महँ बसहिं, मोसो नहि रहि जाय ।
पाइ सुआयसु आपु की, करहुँ वास बन छाय ॥२२२॥

–––हमारे प्राणाधार श्री सीताराम जी वन में निवास कर रहे हैं अतः मुझसे अब यहाँ राजमहल में नहीं रहा जाता। इसलिए आपकी सुन्दर आज्ञा प्राप्त कर मैं सानन्द वन में निवास करना चाहता हूँ।

जनकराय गुरुवरहिं बोलाई । कुँअर कामना कही सुहाई ॥
याज्ञबल्क कह सुनहु भुआरा । देवहिं आयसु परम उदारा ॥

तब श्री जनक जी महाराज ने गुरुदेव श्री याज्ञवल्क्य जी को बुलाकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की सुन्दर मनोकामना कह सुनायी। जिसे श्रवण कर परम पूज्य गुरुवर श्री याज्ञबल्क्य जी ने कहा– हे परम उदार राजन! सुनिये, आप कुमार को आज्ञा प्रदान कर दीजिये।

प्रथमहिं मैं कहि चरित सुनाया । करिहैं जस जस कुँअर अमाया ॥
आयउ समय भविष जो भाषा । कछु दिन करहिं कुअर बन वासा ॥

हे राजन! मैंने आप से पूर्व में ही इनका चरित्र वर्णन कर सुनाया था कि– कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी निष्काम रहते हुए जिस प्रकार आचरण करेंगे। अब वह समय आ गया है– जिसकी भविष्य वाणी मैंने पूर्व में की थी, अतः अब, कुछ दिनों तक कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी वन में निवास करेंगे।

राम सीय सेवा हित साने । अवशि करहिं व्रत नियम अमाने ॥
नगर निकट बन जहँ शिव लिंगा । करहिं कुँअर तप तहाँ अभंगा ॥

श्री सीताराम जी की सेवा भाव में सने हुए अमानी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अवश्य ही अपना विशेष व्रत और नियम पूर्ण करें। श्री मिथिलापुरी के समीपस्थ वन में जहाँ श्री शिवलिंग है, वहाँ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अनवरत तपस्या करें।

राउर मिथिला अवध बसाई । युग पुर रक्षहिं गिन सेवकाई ॥
कुँअर चरित लखि मोद अपारा । मानहुँ निशि दिन सत्य भुआरा ॥

आप यतस्ततः श्री मिथिलापुरी एवं श्री अयोध्यापुरी में निवास करते हुए श्री राम जी महाराज की सेवा समझकर दोनों पुरियों (श्री मिथिला व श्रीअवध) की रक्षा करें। हे महाराज! कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के चारुतम चरित्रों को देख–देखकर आप दिनरात उन्हें सत्य समझते हुए असीम आनन्द प्राप्त करें।

दो0– सुनि गुरु बचन सुप्रेम नृप, कहे वचन हर्षाय ।
राउर कृपा अपार लहि, धन्य कुँअर जग आय ॥२२३॥

गुरुदेव श्री याज्ञवल्क्य जी के वचनों को, सुन्दर प्रेमपूर्वक श्रवण कर, श्री जनक जी महाराज ने हर्षित हो कर कहा कि– हे गुरुदेव! आपकी असीम कृपा को प्राप्त कर, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी इस संसार में धन्यातिधन्य हो गये हैं।

अवशि लाड़िली लाल कुमारा। इक एकन ये प्राण अधारा ॥
तरकि न जाय बुद्धि मन बानी । इन कर प्रेम महा रस सानी ॥

लाड़िली श्री सिया जू, लाल साहब श्री रघुनन्दन जू और कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ये तीनों अवश्य ही एक दूसरे के प्राणों के आधार हैं, इनका प्रेम मन, बुद्धि और वाणी से अगम्य तथा महान रस से ओतप्रोत है।

कुँअरहिं आयसु दीन्ह भुआला । वसि इकान्त ध्यावहिं रघुलाला ॥
मातु पिता गुरु शीश नवाई । हर्षित आज्ञा पाइ सुहाई ॥

श्री जनक जी महाराज ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को सुन्दर आज्ञा प्रदान की कि–आप, 'कमला जी के किनारे एकान्त वास कर रघुनन्दन श्री राम जी महाराज का ध्यान करें'। इस प्रकार सुन्दर आज्ञा प्राप्त कर हर्षित हो कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री अम्बा सुनैना जी, श्री जनक जी महाराज व गुरुदेव श्री याज्ञबल्क्य जी के चरणों में शीष झुका प्रणाम किया।

पुर बाहेर शुचि सरिता तीरा। बन इकान्त नहि जन की भीरा ॥
रची कुँअर सुन्दर तृण शाला । सोह निकट बट बृक्ष विशाला ॥

पुनः श्री जनकपुरी के बाहर पवित्र नदी श्री कमला जी के तट पर, जनसमूह से रहित, कंचन वन की एकान्त स्थली में कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने सुन्दर पर्ण कुटी का निर्माण किया, जिसके समीप ही एक विशाल वट वृक्ष सुशोभित होता था।

गुफा मनोहर युग खनवाई। भजन ध्यान हित अमल सुहाई ॥
बलकल वसन जटिल शिर सोहा। जनु मुनि वेश काम छबि जोहा ॥

उस तृण–शाला में भजन और ध्यान करने के लिए, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने निर्मल व सुन्दर मनोहारिणी दो गुफायें खुदवायीं। वहाँ वृक्षों की छाल से निर्मित तपस्वियों के वस्त्र पहन, शिर में जटाएँ धारण किये कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों स्वयं कामदेव ही मुनियों का वेष धारण किये हों।

दो0– लीन्ह तुमरिका पात्र शुभ, दीन्ह अन्न कहँ त्याग ।
कंद मूल फल खाइ कछु, सिद्धि सहित तजि राग ॥२२४॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सिद्धि कुँअरि जी के सहित मन से सर्वथा अनासक्त होकर, तुम्बी का (लौकी को सुखाकर बनाया हुआ जलपात्र) शुभ पात्र ले लिया तथा अन्न का भी परित्याग कर दिया। जीवन धारण हेतु सूक्ष्म कंदमूल, फल आदि आरोगते हुए–––

बसैं तहाँ श्री जनक कुमारा। नारि सहित तजि भवन सुखारा॥
साधन कठिन करैं दोउ भाये। मनहु शिवा शिव तप हित आये॥

———अपनी पत्नी श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित श्री जनक कुमार लक्ष्मीनिधि जी अपने राजमहल को छोड़कर वहाँ सुखपूर्वक निवास करने लगे। इस प्रकार वे दम्पति अत्यन्त कठोर व सुन्दर साधना करने लगे मानों स्वयं श्री पार्वती जी और श्री शंकर जी ही तपस्या हेतु आये हुए हों।

कुँअरहिं देखि भ्रात अनुरागे। सिगरे करन वास तहँ लागे॥
जहँ तहँ पर्ण कुटी सब छाई। सबहिन लीन्हे ब्रत अपनाई॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखकर उनके सभी भ्रातृगण उसी स्थल में जहाँ–तहाँ पर्ण कुटी बना कर निवास करने लगे और उन सभी ने भी उनके समान ही व्रत को अपना लिया।

साधन अति अचरज उपजावन। सकल करहिं अनुराग बढ़ावन॥
कुँअर सेव हिय भावहिं धारी। रहे तिनहिं पर तन मन वारी॥

वे सभी उस समय अत्यन्त आश्चर्योत्पादक व अनुराग विवर्धक साधन करने लगे। वे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की सेवा के भाव को ह्रदय में धारण किये हुए, उन पर अपने शरीर और मन न्योछावर किये हुये थे।

सेवा हित नहि अवसर देहीं। बने कुँअर अठयाम विदेही॥
तीन पहर बीतत जब राती। कुँअर उठत गिन प्रभु गुन पाँती॥

परन्तु कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने भ्रातृगणों को सेवा के लिए समय न देते हुए आठोयाम विदेह बने रहते थे। जब रात्रि का तीसरा प्रहर समाप्त (व्यतीत) हो जाता तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु श्री राम जी महाराज की गुणगणावलियों का स्मरण करते हुए उठ पड़ते थे।

दो0– सीय राम अनुराग भरि, हे लाड़िली हे लाल।
कहत स्वरूपहिं ध्यान धरि, लीला ललित बिशाल॥२२५॥

वे अनुराग में भर कर, हे श्री सिया जू, हे श्री राम जी, हे श्री लाड़िली जू, हे लाल साहब जू कहते तथा उनकी अतिशय सुन्दर लीला का चिन्तन करते हुए उनके स्वरूप का ध्यान करते थे।

नित्य निबाहि प्रेम रस पागी। प्रभु पनहीं अर्चत बड़ भागी॥
सिद्धि कुँअरि जो कोहवर पाई। प्रथमहिं पाँवरि कथा सुनाई॥

पुनः नित्य कर्मो का निर्वाह करते हुए, परम सौभाग्यशाली कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम रस में डूब कर प्रभु श्री राम जी महाराज की उन पाँवरियों की पूजा करते थे जिन्हें श्री सिद्धि कुँअरि जी ने कोहवर भवन में प्राप्त किया था। जिन पाँवरियों की प्राप्ति का चरित्र मैंने पूर्व में कह सुनाया है।

सिंहासन धरि ताहि कुमारा। पूजत रहे नित्य अति प्यारा॥
सोइ पाँवरि दम्पति सति भाये। अँसुअन धार नित्य नहवाये॥

कोहवर भवन में प्राप्त प्रभु श्री राम जी महाराज की उन चरण पाँवरियों को सिंहासन में

प्रतिष्ठित कर जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी, अत्यन्त प्रेमपूर्वक, राजोपचार द्वारा उनका नित्य प्रति पूजन किया करते थे। इस समय भी उन्ही चरण पाँवरियों को दम्पति (श्री लक्ष्मीनिधि जी और श्री सिद्धि कुँअरि जी) नित्य प्रति सद्भाव पूर्वक प्रेमाश्रुओं से अवगाहन कराते हैं।

पूजि सविधि शिर धरि पद त्राणा। प्रेम विभोर नचैं रस खाना॥
श्री रामः शरणं मम् गाई। दम्पति रहैं प्रेम रस छाई॥

पुनः विधि–विधान पूर्वक पूजन करते हैं तथा रस–स्वरूप दम्पति (श्री लक्ष्मीनिधि जी और श्री सिद्धि कुँअरि जी) 'प्रभु पद पाँवरियों' को अपने शिर में धारण कर प्रेम विभोर हो नृत्य करने लगते हैं और श्री रामः शरणं मम्, श्री रामः शरणं मम्, गा–गा कर प्रेम–रस में समाविष्ट हो जाते हैं।

पाँवरि पूजि षडाक्षर मंत्रा। जपहिं प्रेम पगि प्रभु परतंत्रा॥
अर्थ यथारथ करि करि ध्याना। तदाकार बनि भूलत भाना॥
पृथक पृथक दोउ ध्यानहिं धरहीं। निज निज गुफा बैठि रस झरहीं॥

वे दम्पति श्री राम पद पाँवरियों का पूजन कर, प्रेम प्रपूरित हो, प्रभु श्री राम जी महाराज की अध ीनता स्वीकार कर, श्री राम षड़ाक्षर मंत्रराज का जप करते हैं तथा मंत्रराज के वास्तविक अर्थ का ध यान करते हुए उसमें तदाकार होकर अपनी स्मृति भूल जाते हैं। श्री लक्ष्मीनिधि जी और श्री सिद्धि कुँअरि जी दोनो, अलग–अलग अपनी गुफा में बैठकर ध्यान करते तथा रस की निष्पत्ति करते रहते थे।

दो0– अश्रु बहत अविरल नयन, नियम मध्य चित हान।
प्रेम पगे प्रभु सुरति करि, विकल विलख गत ज्ञान॥२२६॥

उन दोनो के नेत्रों से अनवरत प्रेमाश्रु प्रवाहित होते रहते थे तथा नियम के मध्य उनका चित्त विलीन हो जाता था, तब वे प्रभु प्रेम में सराबोर हुए श्री सीताराम जी का स्मरण कर अपने ज्ञान को भूल कर व्याकुल हो विलाप करने लगते थे।

बिन सुधि आसन जब गिरि जाहीं। शिथिल पड़े भूले तन काहीं॥
भक्त वसल प्रभु विश्व निवासा। करि उपचार तहाँ निज दासा॥

जब वे स्मृतिहीन हो आसन में गिर जाते हैं तथा शरीर स्मृति भुलाए हुए शिथिल होकर पड़े रहते हैं तब भक्तों पर अतिशय वात्सल्य करने वाले, सम्पूर्ण संसार में निवास करने वाले प्रभु श्रीराम जी महाराज वहाँ, अपने उन भक्तों को उपचार कर–––

चेत कराइ जाँय छिपि तहँवा। रोवहिं कुँअर गये प्रभु कहँवा॥
जानहिं मंत्र जपत चित माही। तदाकारता भई तहाँही॥

–––चैतन्यता प्रदान कर छिप जाते हैं, तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी यह कहकर रुदन करने लगते हैं कि– मेरे प्रभु श्रीराम जी महाराज कहाँ चले गये। कुछ समय बाद वे समझ जाते हैं कि– मंत्र जप करते समय चित्त में तदाकारता हो गई थी।–––

चिदाकाश महँ दृश्य दिखायो। अस लागत जनु रघुवर आयो॥
यहि विधि मंत्र जाप करि दोऊ। ध्यान करहिं लीला मन मोऊ॥

–––अतः चिदाकाश में यह दृश्य दिखाई दिया है, जिसमें ऐसी प्रतीति हो रही थी कि– जैसे रघुनन्दन श्री राम जी महाराज ही आये हुए हों। इस प्रकार दोनों (कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँअरि जी) मंत्रराज का जप कर आनन्दित मन से प्रभु की लीलाओं का ध्यान किया करते थे।

सीय राम के सुभग चरित्रा। दिवि गुण मनहर परम पवित्रा॥
ध्यावहिं रटत राम सियरामा। प्रेम प्रवाह बढ़ै अभिरामा॥

वे दम्पति श्री सीताराम जी के परम पावन नाम श्री सियाराम को रटते हुए, उनके सुन्दर, दिव्य, गुणों से परिपूर्ण, मनोहारी व परम पवित्र चरित्रों का ध्यान करते थे जिससे उनके हृदय में प्रेम का सुन्दर प्रवाह बृद्धिंगत होने लगता था।

दो0– चरित ध्यान जब चित रँगै, तदाकार बनि जाय।
लगत ललित लीला अबहिं, होवति सरस सुहाय॥२२७॥

जब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँअरि जी के चित्त प्रभु चरित्रों के ध्यान में निमग्न हो जाते तब वे उनमें तदाकार हो जाते थे उस समय उन्हें ऐसी प्रतीति होने लगती थी कि यह सुन्दर और रसमयी लीला सम्प्रति ही हो रही है।

आवेशित ह्वै बचन निकारैं। क्रिया कलाप कछुक पुनि सारैं॥
चरित ध्यान दोउ याहि प्रकारा। करहिं नित्य मन मोहन हारा॥

उस समय वे पति–पत्नी आवेशित होकर बोलने लगते तथा तदनुसार कुछ क्रिया कलाप करने लगते थे। इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँअरि जी मन को मोहित करने वाले प्रभु चरित्रों का नित्य ध्यान करते थे।

मानस पूजा पुनि चित लाई। करत दोउ दोउ दृगन बहाई॥
रटहिं नाम पुनि दोउ मन भूले। झरत आँसु दृग विरह बिहूले॥

पुनः वे दम्पति नेत्रों से अश्रु बहाते हुए, ध्यानपूर्वक श्री सीताराम जी का मानसिक पूजन करते थे। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँअरि जी दोनो अपने मन को विस्मृत कर अपने प्रभु के प्रिय नाम 'श्री सीताराम' को रटते रहते थे तथा विरह विह्वल हुए नेत्रों से अश्रु बहाते रहते थे।

सीता राम नाम मुख राजै। युगल रूप हिय सुन्दर भ्राजै॥
लगत प्रेम दम्पति तनु धारी। सोहत तापस वेष सँभारी॥

उनके मुख में सदैव सुन्दर श्री सीताराम नाम तथा हृदय में सुन्दर श्री सीताराम जी का युगल स्वरूप सुशोभित रहता था। उन्हें देख कर ऐसा प्रतीत होता था मानों स्वयं प्रेम ही दम्पति (श्री लक्ष्मीनिधि जी एवं श्री सिद्धि कुँअरि जी) का शरीर धारण कर तपस्वी वेष बनाये हुए सुशोभित हो रहा हो।

समय सकल करतहिं नित नेमा। जात कुँअर कर बाढ़त प्रेमा॥
बीतत जबहिं गोधुरी बेला। नाम मात्र फल लहहिं सुभेला॥

इन दिव्य दम्पति का सम्पूर्ण समय नित्य नियम करने में ही व्यतीत होता था जिससे इनके हृदय में प्रभु प्रेम प्रवर्धन होता रहता था। जब गोधूलि बेला बीत जाती (सायंकाल हो जाता) तब परम सौभाग्यशाली ये नाम मात्र फलाहार ग्रहण करते थे।

दो0– बैठहिं आसन एक तब, जानि समय सब भ्रात ।
निज निज पर्ण कुटीर ते, आवहिं तहाँ सुहात ॥२२८॥

तदुपरान्त वे दोनों अपने आसन में विराज जाते थे, उस समय उनके सभी भ्रातृगण समय समझ कर अपनी–अपनी पर्ण–कुटियों से वहाँ आ जाया करते थे।

करि प्रणाम बैठहिं हर्षाई। कुँअर दरश सुख लहैं महाई ॥
चरचा राम स्वभावहिं केरी। होत तहाँ बहु विशद बड़ेरी ॥

वे सभी भ्रातृगण उन्हें प्रणाम कर, हर्षित हो बैठ जाते तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के दर्शन से महान सुख प्राप्त करते थे। उस समय वहाँ श्री राम जी महाराज के स्वभाव की अतिशय विस्तृत चर्चा होती थी।

कहत सुनत सब प्रेमहिं माती। सीय राम सुमिरहिं गुण पाँती ॥
करत कीर्तन कथा सुहाती । जाय बीति यहि विधि अध राती ॥

इस प्रकार वे सभी प्रभु प्रेम में मतवाले हुए श्री सीताराम जी की गुण–गणावलियों को कहते–सुनते हुए, स्मरण करते रहते थे तथा सभी प्रभु कीर्तन करते व सुन्दर चरित्रों का गायन करते रहते थे। इस प्रकार अर्ध रात्रि व्यतीत हो जाती थी।

करहिं शयन सब आसन जाई । कुअरहुँ शयन करहिं प्रभु ध्याई ॥
कुश अरु पर्ण डसाय सुभाये। सोवहिं कुँअर राम चित लाये ॥

पुनः सभी जाकर अपने आसन में शयन करते थे तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भी प्रभु श्री राम जी महाराज का ध्यान करते हुए शयन किया करते थे। श्री राम जी महाराज में अपने चित्त को लगाये हुए वे कुश व पत्तों का आसन बिछाकर उसमें शयन किया करते थे।

सिद्धि कुँअरि पिय चरण दबाई । आसन जाय सुआयसु पाई ॥

सीय राम मन सुमिरि उदारी । करहिं शयन पति भक्ति अपारी ॥

उस समय श्री सिद्धि कुँअरि जी अपने प्राणपति कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की चरण सेवा करती तथा असीमित पतिभक्ति–पूर्णा एवं उदार–हृदया वे उनकी सुन्दर आज्ञा प्राप्तकर अपने आसन में जा, मन में श्री सीताराम जी का स्मरण करती हुई शयन करती थीं।

दो0– एक पहर विश्राम लहि, जपत राम सिय राम ।
उठि बैठहिं पुनि दोउ तब, करहिं भजन निष्काम ॥२२९॥

इस प्रकार वे दोनों केवल एक प्रहर (तीन घण्टे मात्र) विश्राम करते थे पुनः श्री सीताराम जी

नाम का जप करते हुए उठ बैठते और निष्काम होकर भजन करते थे।

यहि प्रकार दिनचर्या करहीं। संयम नियम हृदय निज धरहीं॥
योग ज्ञान वैराज्ञ अनूपा। बने कुँअर के सहज स्वरूपा॥

वे दिव्य दम्पति इस प्रकार की सुन्दर दिनचर्या करते थे तथा संयम और नियम को अपने हृदय में धारण किये रहते थे। योग, ज्ञान और वैराग्य आदि सभी अनुपम साधन सहज ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के स्वरूप हो गये थे।

जन्महिं ते सब वरे कुमारा। दिवि दिवि गुण हिय किये अगारा॥
शिशुपन ते जो प्रेमहिं माता। कहै कवन विधि तासु महाता॥

जन्म से ही इन सभी साधनों ने कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी का वरण कर लिया था तथा सभी दिव्यातिदिव्य गुण उनके हृदय में अपना आवास किये हुए थे। शैशवावस्था से ही जो प्रभु प्रेम में मतवाला रहा हो उसकी महानता का बखान वाणी किस प्रकार कर सकती है।

सिद्धि कुँअरि पिय सेवा हेतू। निशि दिन रहति सुदक्षि सचेतू॥
भूलत कुँअर जबहिं तन भाना। विह्वल प्रेम विरह रस साना॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी अपने प्राण वल्लभ की सेवा के लिए अहोरात्रि निपुणता पूर्वक सजग रहती थी। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी जब भी विरह रस में डूबकर प्रेम विह्वल हो शरीर स्मृति भूल जाते थे।

तब तब करि उपचार कुमारी। पति की देवति सुरति सम्हारी॥
कबहुँ स्वयं जब तन सुधि भूले। प्रभु की कृपा तहाँ अनुकूले॥

तब तब श्री सिद्धि कुँअरि जी उपचार के द्वारा अपने प्राणपति को स्मृतियुक्त बना देती थीं। कभी–कभी वहाँ जब प्रभु की अनुकूल कृपा के वशीभूत श्री सिद्धि कुँअरि जी स्वयं शरीर स्मृति भूल जातीं थीं।

दो0– स्वयं सम्हारत सिद्धि कहँ, रक्षत दिन अरु रैन।
दम्पति पागे प्रेम रस, करहिं तपस्या ऐन॥२३०॥

उस समय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी स्वयं श्री सिाद्धि कुँअरि जी की सम्हाल करते और उनकी दिन रात–रक्षा करते थे। इस प्रकार दिव्य दम्पति रस में पगे हुए अपनी–अपनी तृण–शालाओं में तपस्या कर रहे थे।

बने सहायक इक इक काहीं। दम्पति भाव भरे मन माहीं॥
करहिं भजन सुमिरन दिन राती। प्रीति रसीली नहिं कहि जाती॥

वे दिव्य दम्पति एक दूसरे के सहायक बने हुए भाव में भरकर मन में अहोरात्रि प्रभु श्री सीताराम जी का भजन और स्मरण करते रहते थे। उनकी रसमयी प्रभु प्रीति का वर्णन नहीं किया जा सकता।

दिन दिन होवै शित शरीरा । पूर रहेव आतम बल वीरा ॥
मुख मण्डल छबि अतिहिं प्रकाशी । देखत लेवै जन चित फाँसी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी स्वयं श्री सिद्धि कुँअरि जी के शरीर प्रतिदिन दुर्बल हो रहे थे परन्तु आत्म–बल उनमें भली प्रकार से परिपूर्ण था। उनके मुख मण्डल की शोभा अत्यन्त प्रकाशित हो रही थी जो देखने वालों के हृदय को स्वयं मुग्ध कर लेती थी।

जनक कुँअर अरु भरत सुजाना । दूनहुँ रघुपति प्रेम निधाना ॥
मिथिला अवध राम प्रिय लागी । करहिं नियम मुनि इव अनुरागी ॥

जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी और परम सुजान श्री भरत लाल जी दोनों ही श्री राम जी महाराज के प्रेम के भण्डार हैं वे श्री राम जी महाराज की प्रियता प्राप्ति हेतु श्री मिथिलापुरी व श्री अयोध्यापुरी में मुनियों की भाँति प्रेमपूर्वक नियम कर रहे थे।

राजदूत मिथिला पुर तेरे । आवत जात भरत के नेरे ॥
नित्य नित्य कर चरित उदारा । देवहिं जनकहिं सुखद सँभारा ॥

श्री मिथिलापुरी से जो राजदूत श्री भरत जी के समीप आते जाते रहते थे वे उनके नित्य के उदार एवं सुख प्रदायक चरित्र श्री जनक जी महाराज को सुनाते रहते थे।

दो0– तैसहिं आवत जात बहु, चित्रकूट पुर लोग ।
नेह विवश सिय राम के, साने सरस वियोग ॥२३१॥

उसी प्रकार श्री मिथिलापुरी के बहुत से पुरजन श्री सीताराम जी के प्रेम के वशीभूत उनके रसमय वियोग में डूबे हुए श्री चित्रकूट गिरि आते जाते रहते थे।

समाचार मिथिलेशहिं आई । सीयराम कर जन सुखदाई ॥
देहिं सुनाय सुभग सुपुनीता । सुनि भूपति सुख लहैं अमीता ॥

वे श्री मिथिलेश जी महाराज को, जन सुख प्रदायक श्री सीताराम जी का सुन्दर और पवित्र समाचार आकर सुना देते थे, जिसे श्रवण कर श्री जनक जी महाराज असीम सुख प्राप्त करते थे।

कुँअरहु सुनत भरत आचरणू । होत मगन अति अन्तःकरणू ॥
प्रेमोद्दीपन बढ़ै सुभाया । हृदय विरह रस नाहि समाया ॥

श्री भरत लाल जी की रहनी को श्रवणकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भी अपने हृदय में अत्यधिक मग्न हो जाते थे। उस समय उनका प्रेमोद्दीपन बढ़ जाता था तथा उनके हृदय में प्रभु–वियोग का रस उफनने लगता था।

सीय राम शुभ पाइ संदेशा । मिलन हेतु तलफत सविशेषा ॥
एक दिवस सोचत अध राता । कुँअर हृदय प्रभु विरहहिं माता ॥

श्री सीताराम जी का शुभ समाचार पाकर वे उनसे मिलने हेतु विशेष छटपटाने लगते थे। एक दिन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु–विरह में डूबे हुये, अर्ध–रात्रि में अपने हृदय में विचार करते हैं

कि———

कोमल कलित सीय मृदु चरणा। तैसहिं प्रभु पद कमल अवरणा॥
केहिं विधि धरत होहिं भुँइ माहीं। काँकड़ काँट कुराँय जहाहीं॥

———हमारी लाड़िली श्री सिया जू अपने सुन्दर कोमल चरणों को, तथा उसी प्रकार प्रभु श्री राम जी अपने अवर्णनीय व कोमल चरण कमलों को किस प्रकार भूमि में रखते होंगे जहाँ कि, कंकड़, काँटें व कुराँय (छिपे हुये गड्ढे) आदि की बहुतायत है।

दो0— अमित इन्द्र तरसावती, अवधपुरी सुसमृद्ध।
अशन शयन, मज्जन तहाँ, सीयराम नित सिद्ध॥२३२॥

असीमित देवराज इन्द्रों के वैभव से स्पृहणीय जिस श्री अयोध्यापुरी का वैभव है, वहाँ श्री सीताराम जी का निश्चित रूप से नित्य भोजन, शयन तथा अवगाहन होता था।———

बलकल बसन कन्द फल खाई। महि सोवत सो सिय रघुराई॥
सोचत सोचत प्रेम विभोरा। भये तुरत श्री जनक किशोरा॥

———वही श्री सीताराम जी बल्कल वस्त्र (वृक्षों की छाल के वस्त्र) धारण किये हुए हैं, कन्द और फलों का आहार करते हैं तथा भूमि में शयन करते हैं। ऐसा विचार करते—करते जनक किशोर श्री लक्ष्मीनिधि जी शीघ्र ही प्रेम विह्वल हो गये।

सहि न सकेव दुख रघुपति केरा। भूलेव सुध परिताप बसेरा॥
मुरछित परेउ कुमार धरणि महँ। लखेउ दृश्य एक सुखद रूप तहँ॥

कुँअर श्री लक्ष्मी निधि जी श्री राम जी महाराज के दुख को सहन नहीं कर सके, उनके ह्रदय में दु:ख ने घर कर लिया और स्मृति भूलकर मूर्छित हो कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी भूमि में गिर पड़े तब वहाँ उन्होंने एक सुखदायी दृश्य का दर्शन किया।

दिव्य देश एक कामद अन्तर। परम तेजमय सुखद शोभ कर॥
सत चित आनँदमय नित धामा। कुञ्ज अनेक तहाँ अभिरामा॥

उन्होने दर्शन किया कि— श्री कामद गिरि के अन्दर एक परम तेजवान, सुखप्रद, शोभा सम्पन्न नित्य सच्चिदानन्दय धाम हैं। वहाँ अनेक प्रकार के रमणीक कुञ्ज सुशोभित हैं।

अकथ अगाध अमित भल भोगा। लखे सुलभ नित नव सुख योगा॥
कोटि सूर्य सम तेज प्रकाशा। आसन एक भवन मधि भासा॥

उन्होने देखा कि— उन कुजो में नवीन सुखोत्पादक अवर्णनीय, अगाध तथा असीमित सुन्दर भोग सामग्रियाँ नित्य ही सुलभ हैं। उस भवन के मध्य में करोड़ों सूर्यो के समान तेजवान व प्रकाशित सिंहासन सुशोभित हो रहा है।

दो0— बैठि श्याम श्यामा सुभग, सुखद किशोर किशोरि।
राज वेश मनहर लसैं, छवि छहरति चहुँ ओरि॥२३३॥

उस आसन में सौन्दर्य की परिसीमा व परम सुखप्रद श्याम सुन्दर अवध किशोर श्री राम जी महाराज व चिर श्यामा जनक किशोरी श्री जानकी जी मनोहारी राजकीय वेष धारण किये, विराजे हुए सुशोभित हो रहे हैं, उनकी सुन्दरता राशि चतुर्दिक उद्‌भासित हो रही है।

पीत हरित अम्बर तन धारे । चम चम छिटकति ज्योति अपारे ॥
मुकुट चन्द्रिका लटक अमोली । रवि शशि झरत अमित तहँ लोली ॥

वे श्यामर–श्याम सुन्दर पीत और हरित रंग के वस्त्र शरीर में धारण किये हुए हैं जिनसे चम–चम चमकती हुई असीमित ज्योति छिटक रही है। उनके मुकुट और चन्द्रिका की अनमोल लटकनि में असीमित सूर्य और चन्द्र सदृश ज्योति झिलमिलाती हुई निर्झरित होती हैं।

भहर भहर कर खौर ललाटा । बेंदी तिलक मनोहर ठाटा ॥
केश सुगंधित चिक्कन कारे । विहरति अलक कपोलन प्यारे ॥

उनके भव्य भाल में केशर की खौर, बेंदी तथा मनहरण तिलक शोभा संप्राप्त कर रहा है। उनके केश सुन्दर सुगन्धि से युक्त, चिकने व काले रंग के हैं, जिनकी सुन्दर लटें मृदुल कपोलों पर विहार कर रही हैं।

कुण्डल हलनि कपोलन चारी । प्रेमिन रसहिं बढ़ावन वारी ॥
लहरन झाईं परत कपोला । मनहुँ रसोदधि मीन किलोला ॥

सुन्दर कपोलों पर विचरने वाली कुण्डलों की हलकनि, प्रेमियों के रस को बृद्धिंगत करने वाली है। उन कुण्डलों की लहराती हुई छाया (प्रतिबिम्ब) जब कपोलों पर पड़ती हैं तो ऐसी प्रतीति होती है कि जैसे रस के सागर में मीन क्रीड़ा कर रही हो।

भौंह रसीली रसिकन हेती । सुखद सुभग मनहर रस देती ॥
तकनि परस्पर नयन सुहाये । कंज खंज मृग मीन लजाये ॥
दीर्घ श्रवण लौं रस के खानी । लखि लखि परिकर रहत बिकानी ॥

उनकी भौहैं रस से परिपूर्ण तथा सुन्दर, मनोहारी व सुखप्रद 'रस' हैं जो रसिक जनों के लिए रस प्रदान करने वाली हैं। उनके कमल, खंजन पक्षी, हरिण, और मछली को लजाने वाले बड़े–बड़े कर्ण पर्यन्त रस के स्रोत सुन्दर नेत्रों से परस्पर के दृष्टि निक्षेप को देख–देखकर उनके परिकर उनपर सदैव बिके रहते हैं।

दो0– चार नयन रस अयन वर, दयन चयन दिन रैन ।
बयन पार मन लयन लखि, शयन पयन मिटि मैन ॥२३४॥

जनक तनया श्री जानकी जी व रघुनन्दन श्री राम जी महाराज के रस के आश्रय, अहर्निशि आनन्द प्रदाता, वाणी के पार, मन को वशीभूत करने वाले, संकेत करने में कुशल व सुशोभन चार नेत्रों को देखकर देखने वालों की सभी प्रकार की कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं।

सुभग नास देखत मन हरणी । छबिमय कहत जाय नहिं वरणी ॥
हलरत अधर नास मणि शोभा । कहत न बनै देखि मन लोभा ॥

युगल सरकार की अत्यन्त सुन्दर नासिका दर्शन मात्र से ही मन का अपहरण कर लेती है, सौन्दर्य स्वरूप उस नासिका का वर्णन नहीं किया जा सकता। उन लाड़िली लाल जू के सुन्दर अरुण वर्ण के अधरों में अत्यन्त सुन्दर नासामणि लहरा रही है। जो अवर्णनीय शोभा सम्पन्न है तथा जिसे देखने मात्र से ही मन लुब्ध हो जाता है।

करत अधर रस पान सुहागी । यहि सम भयो न कोउ बड़भागी ॥
मधुर मधुर प्रिय अधर सलोने । सुभग दाख छबि अतिहिं लजोने ॥

यह परम सौभाग्य–शालिनी नासामणि प्रभु के अप्रतिम अधरामृत का पान कर रही है। इसके समान भाग्यवन्त कोई भी नहीं है। श्री सीताराम जी के मधुरातिमधुर, प्रिय सलोने सुन्दर अरुणाधर, सुहावने अंगूर की शोभा को अत्यधिक विलज्जित रहे हैं।

चिबुक सुहावनि छवि की सीमा । उपमा कहत मोर मन धीमा ॥
कर करतल छवि वरणि न जाहीं । दिये परस्पर दोउ गल बाहीं ॥

उनकी शोभा की सीमा सदृश असीम सुन्दर ठोढ़ी अत्यन्त ही सुहावनी है जिसकी उपमा कहने में मेरा मन संकुचित (मन्द) हो जाता है। उनके कर और करतलों की सुन्दर छवि का वर्णन नहीं किया जा सकता, जिनसे वे दोनों परस्पर गलबहियाँ दिये हुए हैं।

इक इक कर ते श्याम सुश्यामा । इक इक परशत तनहिं ललामा ॥
कंठ हृदय दिवि भूषण धारे । छबि छिटकाय रहे उजियारे ॥

वे दोनो चिर श्यामा श्री सिया जू व श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज अपने एक हाथ से एक दूसरे के सुन्दर वपु का स्पर्श कर रहे हैं। उनके कंठ और हृदय, दिव्य व प्रकाशित आभूषणों को धारण किये हुए छवि छहरा रहे हैं।

दो0– परम सुभग कटि मेखला, झूमत मोतिन धार ।
शब्द मधुर प्रिय कारिणी, छहरत छटा अपार ॥२३५॥

उनकी परम सुशोभन कमर की करधनी में मोतियों की लड़ियाँ झूम रही हैं जो मधुर व प्रिय शब्द उत्पन्न करने वाली तथा असीमित सौन्दर्य समन्विता हैं।

चरण कमल छवि अनुपम भाई । ललित कलित सुठि कोमलताई ॥
अंकुश ध्वजा कमल कुलिसादी । रेखा रुचिर देन अह्लादी ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि– हे तात श्री हनुमान जी! श्री सीतारामजी के चरण कमलों की छटा तो अनुपमेय है वे लावण्य युक्त सुन्दर, कोमलता से परिपूर्ण तथा अंकुश, ध्वजा, कमल व बज्र आदि आह्लाद प्रदायिनी सुन्दर रेखायें सुशोभित हैं।

सोहत चरण किशोर किशोरी । नूपुर शब्द साम श्रुति भोरी ॥
लली लाल छबि नख शिख सोही । जहँ चित जाय अटक तहँ मोही ॥

श्री युगल किशोरी किशोर जू के चरणों में ऐसे नूपुर सुशोभित हैं जिनकी सुन्दर ध्वनि सामवेद को भी विलज्जित करने वाली है। श्री जनक लली जानकी जू और कौशिल्या नन्दन श्री राम जी

महाराज नख शिखान्त अत्यन्त शोभा से सुशोभित हो रहे हैं। उनके सुन्दर वपु में जहाँ भी चित्त जाता है वहीं मोहित होकर अटक जाता है।

अमित काम रति बलि बलि जाहीं । राम सीय तन लखत लजाहीं ॥
शोभा विन्दुहुँ निज तन शोभा । नाहिं लखत हिय होवत क्षोभा ॥

श्री राम जी महाराज और श्री सीता जी के काय वैभव को देख कर असीमित कामदेव व रती विलज्जित होकर उन पर बलिहारी जाते हैं तथा वे अपनी शोभा को उनके शरीर शोभा के एक कणांश के बराबर भी नहीं समझते, अतएव उनके हृदय में अत्यन्त क्षोभ उत्पन्न हो जाता है।

गर्व गवाँइ काम रति आपन । सेवत युगल चरण प्रभु थापन ॥
सोइ चिन्ह नर नारी केरा । प्रभु पद लखियत लीन्ह वसेरा ॥

इस प्रकार 'कामदेव और रति' अपने अभिमान को खोकर श्री सीताराम जी के युगल चरणों में स्थापित हो उनकी सेवा करने लगते हैं। श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि– हे श्री हनुमान जी! श्री सीताराम जी महाराज के चरणों में कामदेव व रति के निवास करने से ही पुरुष व स्त्री के चिन्ह उनके श्री चरणों में दिखायी पड़ते हैं।

दो0– अनुपम जोरी राजती, ब्रह्म शक्ति मिलि एक ।
सीय राम सुख सागरी, लखतहिं जात विवेक ॥२३६॥

इस प्रकार ब्रह्म व शक्ति की मिली हुई एक अनुपमेय सुख की सागर स्वरूपा श्री सीताराम जी की अप्रतिम जोड़ी उस दृष्य में सुशोभित हो रही थी जिसका दर्शन करने मात्र से ही सभी प्रकार का अस्तित्व समाप्त हुआ जा रहा था।

अमित सखिन सेवित सियरामा । छत्र चमर छहराइ ललामा ॥
किन्नर नाग देव वर कन्या । गन्धर्वी नृप कुँअरि सुधन्या ॥

दृष्य में श्री सीताराम जी असीमित सखियों के द्वारा सेवित हो रहे थे। उनके शिर पर सुन्दर छत्र और चँवर छहरा रहे थे। वहाँ किन्नरों, नागों, देवताओं, गन्धर्वो व राजाओं की परम धन्य सुन्दर अनन्त कन्याएँ–––

नृत्यहिं गावहिं भाव बताई । सेवन करैं सीय रघुराई ॥
सिगरी रतिहिं लजावनि वारी । शोभा धाम रूप उजियारी ॥

–––नृत्य, गायन व भावों का प्रदर्शन कर श्री सीताराम जी की सेवा कर रही थीं जो सभी कामदेव पत्नी रती को विलज्जित करने वाली, शोभा की धाम व रूप वैभव से प्रकाशित थीं।

कंकण किंकिणि नूपुर धारी । सोहि रहीं पहिरे वर सारी ॥
मूरति प्रेम सकल जनु अहहीं । सब विधि सेवा निपुन सो रहहीं ॥

वे सभी प्रकार से सेवा में निपुण, कंकण, किंकिणी और नूपुरों को धारण किये, सुन्दर साड़ी पहने हुए ऐसे सुशोभित हो रही हैं मानों वे साक्षात प्रेम की प्रतिमाएँ हों।

रिझवहिं श्यामा श्याम अनन्दी । स्वयं लहैं सुख लखि सुखकन्दी ॥
कुंज कुंज होवति सुख लीला । आठहुँ याम प्रवाह रसीला ॥

वे सभी युगल सरकार श्यामा–श्याम श्री सीताराम जी को आनन्द पूर्वक प्रसन्न कर रही थीं और सुख के आश्रय स्वरूप उन्हें देख–देखकर स्वयं भी सुख प्राप्त कर रही थीं। इस प्रकार सुखपूर्वक प्रत्येक कुंज में आठोयाम रसमयी लीला सम्पादित होती रहती थी।

दो0– भाँति भाँति लीला ललित, परिकर मिलि सियराम ।
नित्य सुखद रसमय रसद, करत जनन सुखधाम ॥२३७॥

इस प्रकार श्री सीताराम जी अपने परिकरों के साथ मिलकर विभिन्न प्रकार की नित्य सुख प्रदायक, रस प्रदायिनी, रसमयी सुन्दर लीलाएँ करते हुए अपने भक्तों को सुख स्वरूप बना रहे थे।

दूसर दृश्य लखेउ पुनि तहँवा । कुँअर हृदय सुख जाय न कहवा ॥
विरजा सरयू गंगा यमुना । कमला विमला कलिमल दमना ॥

पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने वहाँ दूसरे दृश्य का दर्शन किया, जिसे देखकर उनके हृदय मे जो सुख हुआ उसका बखान नहीं किया जा सकता। उन्होंने देखा कि– कमिमलहारिणी श्री विरजा जी, श्री सरयू जी, श्री गंगा जी, श्री यमुना जी, श्री कमलाजी, श्री विमला जी,–––

मँदाकिनि कृष्णा सिन्धु प्रवाही । गोदावरी कावेरि सुहाहीं ॥
चर्मनवती नर्मदा सरिता । तमसा अवर पयसुनी तरिता ॥

–––श्री मन्दाकिनी जी, श्री कृष्णा जी, श्री सिन्धु जी, श्री गोदावरी जी, श्री काबेरी जी, श्री चर्मनवती जी, श्री नर्मदा जी, श्री तमसा जी, श्री पयस्विनी जी आदि सभी जीवों का उद्धार करने वाली श्रेष्ठ नदियाँ–––

रमा सरिस तिय रूप सम्हारी । नित नहवावहिं नाथ दुलारी ॥
अमित रमा सरसुती भवानी । शची आदि सुरपति पटरानी ॥

–––श्री लक्ष्मी जी के समान सुन्दर स्त्री रूप धारण कर नित्य प्रति श्री अयोध्या नाथ श्री राम जी महाराज तथा जनक दुलारी श्री सिया जू को स्नान कराती हैं। असीमित श्री लक्ष्मी जी, श्री सरस्वती जी, श्री पार्वती जी एवं देवराज इन्द्र की पटरानी श्री शची आदि सभी देवियाँ–––

सेवहिं लली लाल हर्षाई । वसन माल भूषण पहिराई ॥
व्यंजन विविध पवाहहिं आनी । पान गन्ध अरपैं सुख खानी ॥
करि नीरांजन बलि बलि जाहीं । प्रेम सिन्धु सब सरसि समाहीं ॥

–––हर्षित होकर, वस्त्र, माल्य व आभूषण आदि धारण करवा, श्री जनक लली व श्री दशरथ लाल जू की, सेवा करती हैं, सुख स्वरूपिणी वे उन्हें विभिन्न प्रकार के सुस्वादु व्यंजन पवाती हैं तथा पान व इत्र आदि अर्पित कर नीरांजन करती हैं। पुनः वे युगल सरकार श्री सीताराम जी पर बलिहारी जाती हैं तथा प्रेम के सागर में आनन्द पूर्वक समाहित हो जाती हैं।–––

दो0– झाँकी युगल किशोर लखि, सफल गिनैं निज काहिं।
कृपा कोर लहि दुहुन की, भूली सुधि तन माहिं ॥२३८॥

–––वे सभी युगल किशोर श्री सीताराम जी की झाँकी का दर्शन कर अपने आपको सफल समझती है तथा दोनों की कृपा दृष्टि प्राप्त कर अपने शरीर की स्मृति भूल जाती हैं।

देखेउ तीसर दृश्य कुमारा। अकथनीय ऐश्वर्य अपारा॥
सीय राम सिंहासन राजे। दासि दास सखि सखा सुभ्राजे॥

मिथिलेश राजकुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने पुनः असीमित ऐश्वर्यशाली तृतीय अवर्णनीय दृश्य का दर्शन किया। उन्होने दर्शन किया कि– अनन्त दासी, दास, सखी व सखा आदि से समन्वित श्री सीताराम जी सिंहासन में विराजमान होकर सुशोभित हो रहे हैं।

ऋषि मुनि सुर नर किन्नर व्याला। स्तुति करहिं सकल दिगपाला॥
ब्रह्मा विष्णु महेश त्रिदेवा। अमित अण्ड के करहिं सुसेवा॥

सभी ऋषि, मुनि, देवता, मनुष्य, किन्नर, नाग व दिग्पाल आदि उनकी स्तुति कर रहे हैं। असीमित ब्रह्माण्डों के अनेक श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु और श्री शंकर जी (त्रिदेव) भी उनकी सुन्दर सेवा कर रहे हैं।

हरि अवतार सुहाहि अनंता। सेवहिं सब सिय अरु सिय कन्ता॥
सम अतिसय नहि कोउ जनाई। सीता राम एक प्रभुताई॥

भगवान श्री हरि के सभी अनन्त अवतार श्री सीता जी और सीताकान्त श्री राम जी महाराज की सेवा करते हुए सुशोभित हो रहे हैं। वहाँ कोई भी उनसे अधिक की क्या कहे, समानता में भी नहीं ठहर रहा, श्री सीताराम जी ही वहाँ एकमात्र परम प्रभुता सम्पन्न हैं।

चौथ दृश्य पुनि तहाँ विलोकी। देखि कुँअर हिय भयो अशोकी॥
मिथिला अवध विहार अपारा। सीय राम सुख मंगल सारा॥
आपु सहित देखेउ सिय रामा। मधुर वेष सुख रूप स्वधामा॥

पुनः अपने चिदाकाश में चतुर्थ दृश्य देखकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का हृदय सभी प्रकार से शोक विमुक्त हो गया। उस दृश्य में उन्होने श्री मिथिलापुरी व श्री अयोध्यापुरी में होने वाली सुख एवं मंगलों की सारभूता, लीलाओं का दर्शन किया। पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने स्वयं के सहित अपने श्री मिथिला धाम में सुख–स्वरूप व मधुर दूलह वेश से युक्त श्री सीताराम जी का दर्शन किया।

दो0– कुँअर हृदय आनन्द जो, देखि परेव तन माँहिं।
रोम पुलकि ठाढ़े भये, यदपि देह सुधि नाहिं ॥२३९॥

उस समय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में जो आनन्द हुआ वह उनके हृदय में न समाकर शरीर से प्रकट होकर दिखायी पड़ने लगा था, यद्यपि उन्हें शरीर स्मृति नहीं थी तथापि उनका शरीर पुलकित और रोमांच प्रपूरित हो गया था।

दृश्य दुराय बहुरि सब गयऊ । कुँअर विकल होइ तन सुधि लयऊ ॥
दृश्य सुरति करि प्रेमहिं पूरा । पुनि प्रकृतिस्थ भयो मति सूरा ॥

पुनः उनके चित्त पटल से सभी दृश्य दूर हो गये तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने व्याकुल होकर शरीर स्मृति धारण की। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी उन दृश्यों की स्मृति कर प्रेम से परिपूर्ण हो गये थे पुनः परम बुद्धिमान कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रकृतिस्थ हुए।

लगेव बिचारन हृदय मँझारा । गिरि भीतर दिवि देश निहारा ॥
सुख सह लसैं तहाँ सिय रामा । दिव्य भोग भोगत अठ यामा ॥

तदनन्तर वे अपने हृदय में विचार करने लगे कि– श्री कामद गिरि के अन्तः प्रदेश में मैंने जिस 'दिव्य धाम' का दर्शन किया है, वहाँ श्री सीताराम जी सुखपूर्वक निवास करते हुए आठो याम दिव्य भोगों का उपभोग कर रहे हैं।

तहँ बनवास असत्य दिखाना । तरकि न जाय चरित्र महाना ॥
करत बिचार पहर त्रय राती । बीत गयी सुमिरत सो बाती ॥

उस दृश्य में तो श्री सीताराम जी का वन में निवास करना असत्य दिखाई पड़ता है। अतः उनके महान चरित्रों का तर्क के द्वारा विवेचन नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार का विचार तथा स्मरण करते–करते तीन प्रहर रात्रि व्यतीत हो गयी।

करि स्नान नियम सब कीन्हे । प्रेम सहित मन रघुपति दीन्हे ॥
बहुरि सिद्धि सन रात चरित्रा । वरणेउ कुँअर महान विचित्रा ॥

तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने स्नान कर, प्रेम पूर्वक श्री राम जी महाराज में अपने मन को लगाये हुए आह्निक कृत्यों का सम्पादन किया। पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने रात्रि में देखे हुए महान व विलक्षण चरित्रों का अपनी प्राण प्रियतमा श्री सिद्धि कुँअरि जी से उसी प्रकार वर्णन किया,–––

दो0– यथा लखे भीतर गिरिहिं, रसिकेश्वर सिय राम ।
अमित चरित परिकर सहित, नित्य सुखद सत धाम ॥२४०॥

–––जिस प्रकार उन्होनें श्री कामदगिरि के अन्तः प्रदेश में परिकरों सहित, रसिकेश्वर श्री सीताराम जी के, नित्य सुखप्रद और सत्य स्वरूप असीमित चरित्रों का दर्शन किया था।

सुनत कुँअरि अति आनँद माती । प्रेम विभोर हृदय पुलकाती ॥
कहत सुनत दोउ आनँद मगना । निर्मल एक चित्त जिमि गगना ॥

उन चरित्रों को श्रवण करते ही श्री सिद्धि कुँअरि जी आनन्द में पगकर प्रेम विभोर हो गयीं उनका हृदय पुलकित हो गया। श्री सिद्धि कुँअरि जी व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी दोनों उन चरित्रों को कहते–सुनते ही आनन्द मग्न हो स्वच्छ आकाश के समान, निर्मल व एक चित्त वाले हो गये।

तब धरि धीर कुँअरि प्रिय बोली । कहेउ प्राण पति बात अमोली ॥
संशय एक अहे मन मोरे । दूरि करहु विनवहुँ कर जोरे ॥

तदुपरान्त धैर्य धारण कर, प्रिय वचनों से श्री सिद्धि कुँअरि जी ने कहा– हे प्राण नाथ! आपने बड़ी अनमोल बात कह सुनाई है, परन्तु मेरे मन में एक संदेह उपस्थित हो गया है, मैं करबद्ध प्रार्थना करती हूँ कि– आप मेरे उस संदेह का शमन कर दें।

कामद गिरि भीतर वर लीला । सत्य कहहिं रउरे गुण शीला ॥
प्रगट दिखै रघुवर बन वासा । करहिं प्राणपति भ्रमहिं विनासा ॥

हे गुण व शील के निधान स्वामी! आपने कहा है कि– श्री कामद गिरि के अन्तर्देश की यह सुन्दर लीला सत्य है, परन्तु प्रगट में तो श्री राम जी महाराज का वन–निवास दिखाई देता है। अतएव हे प्राणेश्वर! आप मेरे हृदय में उपस्थित दुविधा को विनष्ट करने की कृपा करें।

जनक कुँअर कह सुनहु पियारी । मन चित लाय सुबात हमारी ॥
यथा एक तिरलोकी राजा । राजत राज भोग सजि साजा ॥

जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे प्रिय, प्रिया जी! हमारी सुन्दर बात को ध्यान पूर्वक श्रवण कीजिये, जिस प्रकार कोई एक तीनों लोकों सुन्दर राजा, राज–भोग और राजकीय सामग्रियों का उपभोग करते हुए राज्य कर रहा है।–––

दो0– सम अतिशय नहिं ताहि के, कोऊ जगत भुआल ।
भोगत भोग अनेक विधि, निष्कंटक जन पाल ॥२४१॥

–––उस महाराज से अधिक व समता में संसार के कोई भी राजा नहीं है तथा वह अनेकों प्रकार से भोगों का उपभोग करता हुआ अवाधित शासन कर रहा है।–––

खेलन चाह हृदय महँ आई । लीन्हेउ परिकर सकल बुलाई ॥
रंग मंच पर पहुँचि भुआरा । खेलहिं खेल अनेक प्रकारा ॥

–––उस नरेश के हृदय में, जब क्रीड़ा करने की इच्छा होती है तब अपने सभी परिकरों को बुलाकर, रंग–मंच में पहुँच, अनेक प्रकार की कीडाये करने लगता है।–––

लीला रुचि अनुरूप सुहाये। यथा अनेकन वेष बनाये ॥
तैसहिं लीला सुख के हेता । वेष बनावैं कृपा निकेता ॥

–––वह राजा, अपनी इच्छा के अनुसार जब जैसी लीला करना चाहता है उसी के अनुसार अनेक सुन्दर वेष धारण कर लेता है। उसी प्रकार कृपानिधान श्री राम जी महाराज भी लीला सुख आस्वाद के लिए विभिन्न प्रकार के वेष बनाये हुये हैं।–––

सुख दुख परे राम भगवाना । परमानन्द रूप रस खाना ॥
सत स्वरूप प्रभु कृपा निवासा । सत ते असत न नेक प्रकाशा ॥

–––यथार्थ में भगवान श्री राम जी महाराज तो सुख और दुख के पार परमानन्द स्वरूप व रस के उद्गम हैं। वे कृपा के निवास तथा सत्य स्वरूप हैं अतएव सत्य से कभी भी असत्य का प्राकट्य नहीं होता।–––

यथा राम सत रूप बखाना। तैसहिं लीला ललित महाना ॥
लीलाधार ब्रह्म रघुराई । नहिं तहँ प्रगट असत दुखदाई ॥

———पुनः जिस प्रकार श्री राम जी महाराज का स्वरूप 'सत्य' वर्णन किया गया है उसी प्रकार उनकी विशद सुन्दर लीला भी सत्य स्वरूप है। क्योंकि उस लीला के सूत्र धारक तो स्वयं पूर्ण ब्रह्म श्री राम जी महाराज ही हैं अतः उसमें दुख प्रदान करने वाला असत्य कभी भी प्रगट नहीं होता।———

दो0— राम कृपा लहि सूक्ष्म मति, सत्य दरश हिय होय ।
पुनि प्रिय प्रभु चरितहुँ लखैं, प्रणतारत रस मोय ॥२४२॥

———शरण में आया हुआ आर्त चेतन जब प्रभु श्री राम जी महाराज की कृपा से सूक्ष्म बुद्धि को प्राप्त कर लेता है तभी उसके हृदय में इस सत्य का वोध होता है तब वह रस में निमग्न हुआ प्रभु के प्रिय चरित्रों का दर्शन करता रहता है।———

पूर्ण ब्रह्म रघुवर रस राजा। पूरण कामद चरित समाजा ॥
पूरण धरा धाम वर लीला। जेहिं मुनि मगन रहै दम शीला ॥

———रस राज श्री राम जी महाराज पूर्ण ब्रह्म हैं, उनका सपरिकर श्री कामदगिरि का चरित्र भी पूर्ण है तथा उनकी इस धरा—धाम की लीला भी पूर्ण है जिसमें शम—दम आदि गुणों से युक्त मुनिजन सदैव मग्न रहते हैं।———

ब्रह्म महत्ता अकथ अपारा । तरकि न जाय प्रिया सुख सारा ॥
पूर्ण ब्रह्म ते जग भा पूरा। पूरण बचा न होय अधूरा ॥

———ब्रह्म की महानता अकथनीय और अपार है। हे प्रिया जू! वह बुद्धि के तर्क का विषय नहीं है। पुनः यह सम्पूर्ण संसार पूर्ण ब्रह्म से ही उत्पन्न हुआ है और उससे पूर्ण निकाल लेने पर भी वह ब्रह्म पूर्ण ही शेष रहता है, कभी आधा नहीं होता।———

सब समर्थ प्रभु शक्ति अनन्ता । नित्य अचिन्त्य एक सियकंता ॥
एकहिं साथ अनेकन चरिता। धरि बहु वेष करै मुद भरिता ॥

———हमारे स्वामी सीताकान्त श्री राम जी महाराज सभी प्रकार की सामर्थ्य से संयुक्त, अनन्त शक्ति सम्पन्न, नित्य, एक (अद्वितीय) व अचिन्त्य महिमा वान हैं जो आनन्द पूर्वक, एक साथ बहुत से वेश धारण कर अनेक प्रकार के चरित्रों का सम्पादन करते रहते हैं।———

या महँ कछु अचरज है नाहीं । गिनहु प्रिया अपने मन माहीं ॥
साधन करि इक सिद्ध सुयोगी। वेष अनेक बनाय अभोगी ॥
एकहिं साथ करै बहु कामा। जानहिं परमारथ मति धामा ॥

———हे प्रिया जी! इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है। आप अपने मन में समझ लीजिए कि— जब एक सिद्ध योगी साधना के द्वारा अनेक वेष धारणकर एक साथ ही बहुत से कार्य कर लेता है। इस रहस्य को सभी परमार्थ दर्शी एवं बुद्धिमान लोग जानते ही हैं।

दो0– योग रूप योगीश प्रभु, योगद सीता राम ।
पूर्ण ब्रह्म जगदात्म महँ, नहिं अचरज प्रिय बाम ॥२४३॥

–––हे प्रिय प्रिये! तब जो योग स्वरूप, योगियों के ईश्वर व योग प्रदान करने वाले, पूर्ण ब्रह्म और सम्पूर्ण संसार की आत्मा में रमण करने वाले प्रभु श्री सीताराम जी हैं उनके लिए कोई भी कार्य करना आश्चर्य नहीं है।–––

यहि विधि पूर्ण काम रघुराया । एक साथ कर चरित अमाया ॥
एक पाद लीला वीभूती । ता मधि आय राम सिय पूती ॥

–––इस प्रकार पूर्ण काम श्री राम जी महाराज एक साथ कई अलौकिक चरित्र करते रहते हैं। पवित्र श्री सीताराम जी अपनी लीला की एक पाद विभूति (भू लोक) में आकर –––

सम्प्रति चरित करैं बन वासा । लीला मात्र न मनहिं हरासा ॥
भोग विभूति परा तिरपादी । तहँ सियराम रमैं अह्लादी ॥

–––इस समय केवल लीला सम्पादन के लिए, मन में विषाद रहित हो वनवास का चरित्र कर रहे हैं। परन्तु लीला की त्रिपाद विभूति परम धाम दिव्य 'साकेत' में श्री सीताराम जी महान वैभव व असीमित भोगों का आह्लाद पूर्वक उपभोग करते हुए रमें रहते हैं।–––

मुरछा मध्य लखा मैं सोई । सदा एकरस चिन्मय जोई ॥
एक साथ दूनहु प्रिय लीला । घटहिं त्रिसत्य प्रिया सुख शीला ॥

–––मैंने उसी चरित्र का दर्शन, अपनी मूर्छावस्था के मध्य किया है, जो सदैव एकरस और चिदानन्दात्मक है। हे सुख प्रदायिनी प्रिये! मेरे प्रभु की दोनों प्रकार (एकपाद विभूति व त्रिपाद विभूति) की लीलाएँ त्रिसत्य रूप से एक साथ चलती रहती हैं।–––

राम सिया महँ इत उत भेदा । घटै न नेक भनत सब वेदा ॥
पर अरु अवर नाथ सियरामा । एकहिं अहहिं सदा अभिरामा ॥

–––श्री सीताराम जी में यहाँ वहाँ काभेद, किंचित भी घटित नहीं होता, ऐसा सभी वेद कहते हैं। पर और अवर दोनो स्वरूपों में सदैव मेरे परम सुशोभन नाथ श्री सीताराम जी एक ही हैं।–––

दो0– परा धाम साकेत बिच, विहरत सीता राम ।
धरा धाम सोइ राजहीं, बने भगिनि मम भाम ॥२४४॥

–––जो श्री सीताराम जी, परम धाम दिव्य साकेत में विहार करते हैं वही मेरे बहन और बहनोई बने हुए इस भूलोक में सुशोभित हो रहे हैं।–––

अस विचार तजि संशय एहू । करहु राम पद नित नव नेहू ॥
धन्य भाग गिनियहिं निज प्यारी । कहहिं आपु कहँ राम हमारी ॥

–––ऐसा विचार कर आप अपने संदेह को त्याग दें और श्री राम जी महाराज के चरणों में नित्य नवीन प्रेम करती रहें। हे प्यारी जू! आप अपने सौभाग्य को धन्य समझिये कि– श्री राम जी

महाराज आपको 'अपनी' कहते हैं।———

जगदातम प्रिय श्याम सुश्यामा । सो हैं हमरे भगिनी भामा ॥
सौंपि तिनहिं सम दासी दासा । सेवत रहहिं इहै अभिलाषा ॥

———जो श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज और श्यामा सुन्दरी श्री सिया जू सम्पूर्ण संसार की आत्मा व परम प्रियतम हैं वही हमारे बहनोई व बहन हैं अतः उन्हें अपना सर्वस्व सौंप कर हम सेविका और सेवक के समान उनकी सेवा करते रहें यही हमारी मनोकामना है।———

बने रहैं लीला सहकारी । लखि रुचि सेवा करहिं सुखारी ॥
मम अरु अहं जमै नहि कबहूँ । विधि हरि हर पद पावहिं तबहूँ ॥

———हम उनकी लीला में सहयोग प्रदान करने वाले बने रहें तथा उनकी इच्छानुसार सुखपूर्वक सेवा करते रहें। हमारे हृदय में श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिवजी का पद प्राप्त हो जाने पर भी कभी अहंकार और ममकार न उत्पन्न हों।———

भोग शेष प्रभु तंत्र स्वरूपा । चेतन कर सब भाँति अनूपा ॥
भोक्ता शेषी राम स्वतंत्रा । सबहिं नचावैं जिमि जग यन्त्रा ॥

———चेतन (जीव) का स्वरूप तो सभी प्रकार से अनुपमेय शेष, भोग और प्रभु के आधीन रहना है तथा श्री राम जी महाराज शेषी, भोक्ता और स्वतंत्र हैं, वे संसार में सभी जीवों को यंत्र की भाँति नचाते रहते हैं।———

दो0— अस विचार सियवर शरण, पड़ा रहै जब जीव ।
परमानँद पावहि तबहिं, सहित शान्ति प्रिय पीव ॥२४५॥

———ऐसा विचार कर जब जीव सीताकान्त श्री राम जी महाराज की शरण में पड़ा रहता है तभी वह शान्ति के सहित परम प्रिय प्रभु श्री राम जी महाराज को प्राप्त कर परमानंद में समाया रहता है।

नवाह्न पारायण छठवाँ विश्राम

मास पारायण बीसवाँ विश्राम

यहि प्रकार दोउ कुँअर कुमारी । मगन रहैं प्रभु प्रेम मँझारी ॥
कहुँ ऐश्वर्य कबहुँ रस मधुरा । दम्पति पागैं प्रेम अगधुरा ॥

इस प्रकार पति—पत्नी दोनों कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी और श्री सिद्धि कुँअरि जी प्रभु प्रेम में मग्न रहते थे। कभी वे दम्पति श्री सीताराम जी के ऐश्वर्य भाव में तो कभी माधुर्य भाव के अगाध प्रेम में डूबे रहते थे।

भ्रातन कहँ पुनि चरित सुनायो । कामद गिरि जो दरशन पायो ॥
सुनि सुख लहे सुभग सब भाई । प्रेम सिन्धु सब गये समाई ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने पुनः वह चरित्र जो श्री कामद गिरि के अन्तर्देश में दर्शन किया था अपने भ्रातृ–गणों को सुनाया, जिसे सुनकर उनके सभी सुन्दर भ्राताओं नें सुख प्राप्त किया तथा वे प्रेम के सागर में निमग्न हो गये।

बार बार लक्ष्मीनिधि चरणा। प्रणमहिं प्रेम जाय नहिं वरणा॥
कहहिं धन्य हमरे बड़ भइया। गुप्त चरित प्रभु के लख पइया॥

वे सभी बारम्बार अपने प्रिय अग्रज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के चरणों में अनिर्वचनीय प्रेम पूर्वक प्रणाम करते हुये कहते हैं कि– हमारे बड़े भइया आप श्री धन्य हैं जिन्होंने प्रभु श्री राम जी महाराज के गुप्त चरित्रों का दर्शन प्राप्त किया है।–––

मधुर मनोहर मंगल कारी। प्रेम प्रमोद सरस सुख सारी॥
कुँअर कहेउ प्रभु कृपा अधारा। जन प्रवेश कर चरित मझारा॥

–––अपने भ्रातृगणों के वचन सुनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा कि– प्रभु के चरित्र तो अत्यन्त ही मधुर, मन को हरण करने वाले, मंगल प्रदायक, प्रेम, आनन्द व रस से परिपूर्ण सुखों के सारतम स्वरूप हैं। प्रभु श्री राम जी महाराज की कृपा के बल से ही भक्त जन उनके समग्र चरित्रों में प्रवेश कर जाते हैं।

दो0– कहहु सखे यामहँ कहा, मोहि धन्य की बात।
धन्य धन्य प्रभु कृपहिं को, जो अपनाइ हठात॥२४६॥

हे सखा गणों! आप लोग ही कहिये कि– इसमें मेरे धन्य होने की बात कहाँ हैं। धन्यातिधन्य तो प्रभु श्री राम जी महाराज की कृपा है जिसने हठपूर्वक मुझे अपना लिया है।

छं0– धनि धन्य प्रभु की बड़ि कृपा, जेहिं पाइ नर आनँद लहैं।
नव नेह अविरल होत उर, रस धार अनुपम नित बहैं॥
जय जयति जय किरपा जयति, सिय राम नयन दिखावती।
नित नव निपुण कैंकर्य महँ, जन कहँ सदैव लगावती॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने भ्रातृगणों से कहते हैं कि–प्रभु श्री राम जी महाराज की महान 'कृपा' धन्यातिधन्य है जिसे प्राप्त कर मनुष्य शाश्वत आनन्द की प्राप्ति करते हैं। उनके हृदय में अनवरत नवीन प्रभु प्रेम उत्पन्न होता रहता है और अनुपमेय रस धारा सी नित्य प्रवाहित होती रहती है। प्रभु श्री राम जी महाराज के कृपा की जय हो, जय हो, जय हो, जो इन चर्म चक्षुओं से श्री सीताराम जी का दर्शन कराती रहती है तथा उनके जनों को प्रभु के नित्य नवीन कैकर्य में निपुण बनाकर सदैव लगाये रहती है।

सिय राम सुख को मानि सुख, प्रभु चाह निज चाहै गिनैं॥
सुख शान्ति सिंहासन रमत, जेहिं पाइ जन अभयी बनैं।
सुर मुनि प्रशंसत ताहि निज, रघुवर कृपा पाई घनी॥
सिय राम करुणा कोमला, जेहिं लहत कन हरषण बनी॥

श्री राम जी महाराज की कृपा भगवती को प्राप्तकर प्रभु सेवक श्री सीताराम जी के सुख को अपना सुख मान, स्वामी की इच्छा को अपनी इच्छा समझ कर सुख और शान्ति के सिंहासन में विलसते करते रहते हैं। जिस कृपा को प्राप्त कर भक्त जन निर्भय हो जाते हैं और जिसकी प्रशंसा देवता व मुनि नित्य किया करते हैं, मैंने प्रभु श्री सीताराम जी की उसी सघन कृपा को प्राप्त कर लिया है। हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि प्रभु–कृपा श्री राम जी महाराज की करुणा और कोमलता का स्वरूप है, जिसके एक 'कण' को प्राप्त कर भी जीवों का जीवत्व सफल हो जाता है।

सो०–रघुवर कृपा अनूप, जो जन चाह्त छन छनहि।
वरण पात्र बनि रूप, अनुपम निधि रामहिं लहै ॥२४७॥

जो जीव प्रत्येक क्षण श्री राम जी महाराज की अनुपमेय 'कृपा' को प्राप्त करने की कामना करते हैं, वे उसके वरण करने योग्य पात्र बनकर अनुपमेय निधि श्री राम जी महाराज को प्राप्त कर लेते हैं।

यहि प्रकार कहि सखन सुनावा। परमोपाय कृपहिं बतरावा ॥
सुनि सुख लहे सकल निमिवारा। कृपा चाह हिय बढ़ी अपारा ॥

इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने भ्राताओं को प्रभु प्राप्ति का परम उपाय श्री राम जी महाराज की कृपा हैं ऐसा कह कर सुना दिया। जिसे श्रवण कर सभी निमिकुमारों नें सुख प्राप्त किया तथा सभी के हृदय में प्रभु कृपा प्राप्त करने की असीम अभिलाषा बढ़ गयी।

यहिं विधि कुँअर भजन रस रीती। करत बढ़त प्रिय प्रभु पद प्रीती ॥
जबहिं कुँअर सिय राम सँदेशा। नहिं पावैं मन बढ़ै अँदेशा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी इस प्रकार रस–पद्धति के अनुसार भजन कर रहे थे और उनके हृदय में प्रभु श्री राम जी महाराज के चरणों का प्रेम अनुछिन बृद्धिंगत होता जा रहा था। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी जब अपने प्रभु श्री सीताराम जी का समाचार नहीं पाते थे तब उनके हृदय में दुश्चिन्ताएँ बढ़ जाती थीं।

आसन बैठि करहिं प्रभु ध्याना। देखहिं राम चरित विधि नाना ॥
जानि राम कर सुभग चरित्रा। बाढ़ै मन महँ मोद घनित्रा ॥

तब वे अपने आसन में बैठ कर प्रभु श्री राम जी महाराज का ध्यान करने लगते थे और प्रभु श्री राम जी महाराज के विभिन्न प्रकार के चरित्रों का ध्यान में दर्शन करते थे। इस प्रकार से, प्रभु श्री राम जी के सुन्दर चरित्रों को जानकर उनके मन में महान आनन्द बृद्धिंगत हो जाता था।

एक दिवस प्रिय जनक कुमारा। प्रातहिं मन महँ कीन्ह विचारा ॥
राम सियहिं छोड़े आवासा। कैयक मास भये बन वासा ॥

एक दिन प्रिय जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी ने प्रातः काल ही मन में विचार किया कि– श्री सीताराम जी को अपना राज महल त्याग कर वनवास करते हुए कई माह व्यतीत हो गये।

दो0– राम जन्म तिथि सुखद शुचि, नवमी आज पुनीत ।
लली लाल गिरि राजहीं, पितु बच कीन्हे प्रीत ॥२४८॥

आज श्री राम जी महाराज की सुखप्रद व पवित्र जन्म तिथि परम पावन चैत्र शुक्ल की नवमी तिथि है किन्तु श्री जनक लली सिया जू और श्री दशरथ लाल राम जी महाराज, अनुराग पूर्वक अपने श्रीमान् पिता जी के वचनों का पालन करने हेतु हुए गिरि–श्रेष्ठ श्री चित्रकूट में निवास कर रहे हैं।

चिदाकाशमय बनेउ कुमारा । भयो ध्यान रत योग अधारा ॥
देखेव गिरिवर चरित रसाला । पियेउ प्रेम रस विशद विशाला ॥

तब कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी योग का आश्रय ले, ध्यान में लीन होकर चिदाकाश स्वरूप हो गये, और गिरि श्रेष्ठ श्री चित्रकूट के सुन्दर समग्र रसमय चरित्रों का दर्शन कर अतिशय महान प्रेम रस का पान करने लगे।

सो मैं वरणि सुनावौं तोही । सुनु हनुमान कुँअर जिमि जोही ॥
प्रातहिं जन्म दिवस रघुराई । सोचत उरहिं अवध सुधि आई ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा, हे श्री हनुमान जी! मैं आपको वही सम्पूर्ण चरित्र वर्णन कर सुना रहा हूँ जिनका कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने चिदाकाश में दर्शन किया था। जन्म दिवस की प्रातः बेला में, श्री राम जी महाराज के हृदय में विचार करते ही, उन्हें श्री अयोध्यापुरी की स्मृति आ गयी।

झर झर झरन लगे दोउ नैना । आज मातु पहिं पाई चयना ॥
सूनी अवध मोहि बिन देखी । रुदत विरह दुख सही विशेषी ॥

उनके दोनों नेत्रों से निर्झर के समान अश्रु प्रवाहित होने लगे, वे विचार करने लगे कि– हाय! आज मेरी अम्बा श्री कौशिल्या जी सुख नहीं प्राप्त करेंगी, श्री अयोध्यापुरी को मेरे अभाव में सूनी देखकर वे रुदन करती हुई मेरे विशेष वियोग का दुख सहन करेंगी।

होत्यौं आज अवधपुर माहीं । घर घर उत्सव होत महाहीं ॥
करि अभिषेक मोर सब माता । सजतीं भूषण वसन सुहाता ॥

यदि मैं आज श्री अयोध्यापुरी में होता तो वहाँ प्रत्येक भवन में महान उत्सव मनाये जाते। सभी मातायें मेरा अभिषेक कर सुन्दर आभूषण और वस्त्रों से मुझे सजाती।–––

दो0– दान विविध विधि देइ करि, करती मंगल गान ।
विविध वाद्य बाजत घरहिं, नचतीं नारि सुहान ॥२४९॥

–––अनेक प्रकार से दान देकर वे मेरा मंगलानुशासन करतीं। राज महल में विभिन्न प्रकार के वाद्य बजते तथा पौरांगनायें सुन्दर नृत्य करतीं।–––

भ्रात सखा सब मम ढिग आवत। आनँद भरे न हृदय समावत ॥
सहित सखिन शुचि सिया सुहाई । करति सुमंगल दान बधाई ॥

–––मेरे सभी भ्राता और सखागण आनन्दोच्छलित हृदय से मेरे समीप आते। पवित्र व सुन्दर

श्री सिया जू सखियों सहित सुमंगल गान करती हुई दान देती तथा महान बधाई उत्सव करतीं।–––

राम भाव लखि सिय सुकुमारी। अमित अण्ड छन रचनन वारी॥
बोली नाथ शोक जनि करहीं। विधि गति लखि हम सब अनुसरहीं॥

श्री राम जी के हृद्गत भावों को समझकर, एक ही क्षण में असीमित ब्रह्माण्डों की रचना कर देने वाली परम सुकुमारी श्री सिया जू ने कहा– हे नाथ! आप शोक न करें, हम सभी इस समय विधाता की गति का अनुसरण कर रहे हैं।–––

कछु दिन गये समय सो आई। जेहिं लहि बसिहैं अवध अघाई॥
सबहिं देय सुख आपुहिं लहिहैं। भ्रात सकल सेवा विधि गहिहैं॥

–––कुछ दिन पश्चात् वही सुन्दर समय आयेगा जिसे प्राप्त कर आप संतुष्ट हो श्री अयोध्या पुरी में निवास करेंगे तथा सभी को सुख प्रदान करते हुये आप भी सुख प्राप्त करेंगे, आपके भ्रातृगण पुनः विधि पूर्वक आपकी सेवा ग्रहण करेंगे।–––

जाइ करहिं अब प्रभु नित करमा। जासों रहै जगत महँ धरमा॥
प्रिया बचन सुनतहुँ विरहाये। लुढ़कि गये सिय अंक सुभाये॥

–––हे नाथ! अब आप जाकर नित्यकर्मो का अनुष्ठान कीजिये जिससे संसार में धर्म सुरक्षित रह सके। अपनी प्रिया श्री सीता जी के वचनों को सुनकर भी, प्रभु श्री राम जी महाराज अपनी पुरी के विरह में समाये हुए श्री सीता जी की गोद में सहज ही लुढ़क गये।

दो0– विरह सने रघुनाथ प्रभु, लेटे सिय की गोद।
मनहुँ अवध सुख लहन कहँ, गहे शरण भरि मोद॥२५०॥

अपनी पुरी के विरह में डूबे हुए रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज श्री सीता जी की गोद में ऐसे लेट गये मानो श्री अयोध्यापुरी के आनन्द को प्राप्त करने हेतु उन्होंने सुख–पूर्वक श्री सीता जी की शरण ग्रहण की हो।

राम एक रस सुठि सुख धामा। सकल जीव दायक विश्रामा॥
नर लीला कृत भाव बताई। परिजन परिकर प्रीति दिखाई॥

श्री राम जी महाराज तो सदैव एकरस रहने वाले, सुन्दरता और सुखों के धाम हैं जो सम्पूर्ण जीवों को विश्रान्ति प्रदान करने वाले हैं। उन्होंने अपनी मानवी लीला करते हुए ही ऐसे भावों का प्रकटीकरण कर अपने परिजनों व परिकरों के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया है।

तिन कहँ होय कबहुँ नहिं मोहा। जिमि रवि महँ तम कोउ न जोहा॥
विरह विवश रामहिं सिय जानी। निज इच्छा कछु लीला ठानी॥

श्री राम जी महाराज को उसी प्रकार कभी भी मोह नहीं हो सकता जिस प्रकार सूर्य में अंधकार का दर्शन किसी को नही होता। अपने प्राणाधिक प्रिय श्री राम जी महाराज को स्वजनों के विरह के वशीभूत समझ कर, श्री सीता जी ने उस समय अपनी लीला का किंचित विकास किया।

अवध यथावत कनक सुभवना । पौढ़े सिया राम रस छवना ॥
नौबत बजन लगी रस भीनी । सखी सहचरी प्रेम प्रवीनी ॥

तब श्री राम जी महाराज को प्रतीति होने लगी कि– श्री अयोध्यापुरी के 'कनक भवन' में रस निमग्न हुए अपनी प्राण वल्लभा श्री सिया जू के साथ मैं श्री राम लेटा हुआ शयन कर रहा हूँ। प्रातः होते ही रसमयी नौबत बजने लगी। सभी प्रेम पण्डिता सखी और सहचारियाँ–––

नृत्यत गावत भैरव रागी । दम्पति हरषि जगावन लागीं ॥
वीणा वेणु मधुर झनकारी । सुनि जागे रघुवर सिय प्यारी ॥
मंगल आरति भई सुहाई । सखिगण बार बार बलि जाई ॥

–––भैरव राग के अनुसार गीत गाती हुई नृत्य कर नवल दम्पति श्री सीताराम जी को जगाने लगीं। श्री रघुनन्दन जू और श्री निमिनन्दिनी सिया जू वीणा और बाँसुरी की मधुर स्वर लहरी सुन कर जाग गये। पुनः सुन्दर मंगला आरती हुई और अपने स्वामि–स्वामिनी जू का दर्शन कर सखियाँ बार–बार उन पर बलिहार हो रही थीं।

दो0– सखा वृन्द प्रभु दरश हित, पहुँच गये रस छाय ।
दासी दास समेत सब, लीन्ह हरषि रघुराय ॥२५१॥

तदन्तर प्रभु श्री राम जी महाराज के दर्शन करने हेतु, रस में समाहित हुए, सभी सखागण महल में पहुँच गये, श्री राम जी महाराज ने हर्षित होकर दासियों और दासों सहित सभी का सत्कार किया।

मातु दरश हित श्री रघुराई । गये हरषि हिय भाव सुहाई ॥
करत प्रणाम अम्ब लै गोदी । चूमि बदन हिय मानत मोदी ॥

पुनः श्री राम जी महाराज हर्षित हृदय हो सुन्दर भाव पूर्वक अपनी माताओं के दर्शन के लिए गये। अम्बा श्री कौशिल्या जी ने उन्हें प्रणाम करते हुए देख कर अपनी गोद में ले लिया तथा मुख चुम्बन कर हृदय में अत्यन्त आनन्द का अनुभव किया।

बोली लाल जन्म तिथि आजू । चैत मास शित नौमी भ्राजू ॥
मम भलि भाग बढ़ावन हारी । तीन लोक सुख वितरन वारी ॥

अम्बा श्री कौशिल्या जी ने कहा– हे श्री लाल जी! आज आपकी "जन्म तिथि" चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नौमी तिथि है जो मेरे सुन्दर भाग्य वैभव की विवर्धिका तथा त्रिलोक सुख वितरण–कारिका है।

अस कहि सत घट तुरत मँगाई । कोटि तीर्थ जल औषधि नाई ॥
करि उबटन अभिषेक कराई । वेद पढ़ैं द्विज वर समुदाई ॥

ऐसा कह कर श्री अम्बा जी ने शीघ्र ही सौ स्वर्ण–कलश मँगवाये जिनमें करोड़ों तीर्थो का जल और औषधियाँ डाल दी गयीं। तब उस जल से श्री अम्बा जी ने स्वयं उबटन कर, श्री राम जी महाराज का अभिषेक कराया। उस समय श्रेष्ठ ब्राह्मण–समुदाय वेद मंत्रों का पाठ कर रहे थे।

बसन विभूषन विविध प्रकारा । मातु पिन्हाई हाथ सम्हारा ॥
तिलक लगाय माल पहिनाई । प्रेम पगी सब सुधिहिं भुलाई ॥

पुनः श्री अम्बा जी ने अपने हाथों से सम्हाल–सम्हाल कर विभिन्न प्रकार के वस्त्र और आभूषण पहनाये और उनके सुन्दर भाल में तिलक लगा, सुहावनी माला धारण कराकर प्रेम परिप्लुत हो सम्पूर्ण स्मृति भूल गयी।

दो0– गोद बिठाय सुमोद उर, प्रिय पकवान पवाय ।
दै अचमन मुख पोंछि पुनि, दीन्ही पान खवाय ॥२५२॥

अम्बा श्री कौशिल्या जी नें आनन्द परिपूरित हृदय से श्री राम जी महाराज को अपनी गोद में बिठाकर प्रिय पक्वान्न पवाया तथा आचमन कराकर ताम्बूल खिलाया।

गंध देइ नीरांजन कीन्ही । पुनि तृण तोरि बलैंया लीन्ही ॥
मंगल गान करहिं रनिवासा । राम प्रीतिमय मधुर प्रकाशा ॥

अनन्तर श्री अम्बा जी नें सुगन्धित इत्र लगाकर श्री राम जी महाराज की आरती उतारी और तृण को तोड़कर उनकी बलाइयाँ लीं। उस समय सम्पूर्ण रनिवास श्री राम जी महाराज के प्रेम के मधुर प्रकाश में प्रकाशित होकर मंगल गान कर रहा था।

विविध दान विप्रन कहँ देहीं। पूजहिं सुर सब मातु सनेही ॥
आहुति पाय देव सब फूले। आशिष देहिं राम अनुकूले ॥

सभी माताओं ने ब्राह्मणों को विभिन्न प्रकार से दान दिया तथा प्रेम परिप्लुत होकर देवताओं का पूजन किया। उनकी दी हुई 'आहुतियों' को प्राप्त कर देवता प्रफुल्लित हो श्री राम जी महाराज के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त होने का (सदा मंगल होने का) आशीर्वाद प्रदान करते हैं।

गृह गृह ध्वज पताक भल भ्राजैं । चौंक पूरि तोरन शुभ साजैं ॥
जहँ तहँ वृन्द वृन्द मिलि नारी । नृप गृह जाँय मोद मन भारी ॥

अयोध्यापुरी के प्रत्येक भवनों में सुन्दर ध्वजा और पताकाएँ सुशोभित होने लगी, सुन्दर मणिमय चौके पूरी हुई हैं तथा शुभ बन्दनवार सजाये हुए हैं। जहाँ–तहाँ समूह में मिल कर नारियाँ अत्यधिक आनन्दित मन से श्री चक्रवर्ती जी महाराज के महल को जा रही हैं।

मातु गोद लखि रामहिं सिगरी । करहिं आरती प्रिय रस पगिरी ॥
मणि माणिक मुक्ता भरि थारा। करहिं निछावर मोद अपारा ॥

वे सभी पुरांगनायें रस से ओत–प्रोत हुई श्री अम्बा जी की गोद में विराजे हुए श्री राम जी महाराज को देखकर, प्रिय आरती उतारती हैं तथा आनन्द पूर्वक असीमित मणि, माणिक्य और मुक्ता आदि थाल में भर–भरकर उन पर न्योछावर करती हैं।

श्याम सुन्दर पग लेहिं बलैया । निरखहिं छबि तृण तोर रसैया ॥
डगर डगर घर घरन बधावा । बजत सुखद हिय भाव बढ़ावा ॥

गली गली आनद रस माते। हरषि नारि नर आवत जाते ॥

वे सभी श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज के चरणों की बलायें लेती हैं तथा तृण तोड़कर उनकी रसमयी छबि का दर्शन करती है। श्री अयोध्यापुरी के प्रत्येक मार्ग व भवन में सुख प्रदायक व भाव विवर्धक बधावा बज रहा है तथा प्रत्येक गली में आनन्द और रस से मतवाले हुये, हर्ष पूरित स्त्री–पुरुष आ–जा रहे हैं।

दो0– प्रेम पगे नर नारि सब, राम जन्म दिन जान।
विविध भाँति उत्सव करत, उछरहिं लोग लुगान ॥२५३॥

श्री राम जी महाराज का जन्म दिवस जान कर, श्री अयोध्यापुर निवासी सभी स्त्री–पुरुष प्रेम में पगे हुए विभिन्न प्रकार से उत्सव कर रहे हैं तथा आनन्दित हृदय उछल–कूद रहे हैं।

दशरथ प्रेम न जाय बखाना। विप्रन दान देहिं विधि नाना ॥
बाजे बजत अनेक प्रकारे। कविगन विरदावली उचारे ॥

उस समय चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के प्रेम का बखान नहीं किया जा रहा। वे ब्राह्मणों को विभिन्न प्रकार से दान दे रहे हैं। अनेक प्रकार के वाद्य बज रहे हैं तथा कविगण रघुकुल की विरुदावली का बखान कर रहे हैं।

जहँ तहँ श्रुति धुनि विप्र समाजा। करहिं राम हित मंगल काजा ॥
सोहिल गान सकल दिशि छाया। सुनतहिं कोकिल कण्ठ लजाया ॥

जहाँ–तहाँ श्री राम जी महाराज के मंगल हेतु, ब्राह्मणों का समाज सस्वर वेद–ध्वनि कर रहा हैं, सभी दिशाओं में सोहिल गीत गुंजरित हो रहे हैं जिन्हें श्रवण कर कोयल का सुन्दर स्वर भी विलज्जित हो जाता है।

जय जय धुनि शुभ करनि सुहाई। सनी सनेह अवध महँ छाई ॥
गगन चढ़े सब देव विमाना। वरषत पुष्प बजाय निसाना ॥

प्रेम से सनी हुई सुन्दर और शुभ जय–ध्वनि श्री अयोध्यापुरी में छायी हुई है। सभी देवता विमानों में चढ़े हुए आकाश से नगाड़े बजाकर पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं।

नाचहिं गावहिं सब सुर नारी। चड़ी विमान प्रेम रस वारी ॥
अतर अरगजा चन्दन थारी। जहँ तहँ छिड़कहिं नर अरु नारी ॥

सभी देवांगनायें विमानों में चढ़ी हुई प्रेमानन्द में निमग्न हो नाच और गा रही हैं। नगर निवासी स्त्री–पुरुष स्वर्ण थालों में इत्र, अरगजा व चन्दन रखे हुए जहाँ–जहाँ छिड़क रहे हैं।

उडत अबीर कुंकुमा केशर। दधि की कीच मची बहु बेशर ॥
सबहिं लुटावत द्रव्य अपारी। सनी अवध सुख सिन्धु मझारी ॥
भूमि अकाश महा सुख छावा। वरणि न जाय मनहिं मन भावा ॥

अबीर, कुंकुम, और केशर उड़ रही है, दही की महान कीच मची हुई है व सभी लोग असीमित

द्रव्य लुटा रहे हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण श्री अयोध्या पुरी सुख के सागर में डूबी हुई है। भूमि और आकाश सर्वत्र महान आनन्द छाया हुआ है जो मन को अत्यधिक सुखदायी होते हुये भी वाणी से जिसका बखान नहीं किया जा सकता ।

दो0– दशरथ रामहिं गोद लै, बैठ सोह सुख कार।
भरत लखन रिपुशाल सह, आनंद लहत अपार ॥२५४॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज श्री भरत जी, श्री लक्ष्मण कुमार जी व श्री शत्रुघ्न कुमार जी सहित श्री राम जी महाराज को गोद में लेकर सुखपूर्वक विराजे हुए सुशोभित हो रहे थे तथा असीम आनन्द प्राप्त कर रहे थे।

नृत्य गान तहँ होत सुहावा। कहि न जाय दृग कर्णहिं भावा ॥
वशवर्ती बैठे बहु भूपा। लखत राम तन सुभग अनूपा ॥

वहाँ नेत्रों व श्रवणों को अतिशय प्रिय कारी अवर्णनीय व सुन्दर नृत्य–गान हो रहा था। श्री चक्रवर्ती जी के आधीन रहने वाले कई राजा–गण उनके समीप बैठे हुए श्री राम जी महाराज के अनुपमेय शोभा सम्पन्न वपु का दर्शन कर रहे थे।

भेंट निछावरि बहु विधि करहीं । भाव सनेह रीति रस झरहीं ॥
भूप लुटावत मणि गन जाला । याचक गण कहँ करत निहाला ॥

वे राजा गण भाव में भरकर, प्रेम में पगे हुये नियम व आनन्द पूर्वक विविध प्रकार से न्योछावर कर रहे थे। चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज मणियों की राशि लुटा रहे थे तथा मँगनों (याचक गणों) को निहाल कर (पूर्ण काम) रहे थे।

चिरञ्जीवि कहि देहिं अशीषा । राम जियैं शत लाख वरीषा ॥
सखा वृन्द प्रभु दरशन आसा । जाहिं मुदित मन कनक अवासा ।।

वे सभी श्री राम जी महाराज चिरंजीवी हों ऐसा कह कर आशीर्वाद देते थे कि– श्री राम जी महाराज सौ–लाख वर्षों तक जीवित रहें। श्री राम जी महाराज के सखागण उनके दर्शनों की कामना से आन्दित मन श्री कनक–भवन जाते हैं।

राम करैं सनमान बहूता । सब सुख लहैं अगाध अनूपा ॥
जन्म महोत्सव लखि पुरवासी । लहे सुकृत फल आनँद रासी ॥

श्री राम जी महाराज वहाँ उनका बहुत आदर करते हैं जिससे वे अगाध और असीम सुख प्राप्त करते हैं। श्री राम जी महाराज के जन्म महोत्सव को देख कर सभी अयोध्यापुर निवासी आज अपने पुण्यों का फल व आनन्द की राशि प्राप्त कर लिये हैं।

दो0– सुर नर मुनि अरु नाग वर, जन्म महोत्सव देखि ।
गये सकल निज निज थलहिं, साने प्रेम विशेषि ॥२५५॥

इस प्रकार सभी देवता, मनुष्य, मुनि और नाग आदि श्री राम जी महाराज के सुन्दर जन्म महोत्सव का दर्शन कर विशेष प्रेम में सने हुए अपने अपने स्थानों को चले गये।

अस्त दिवस रघुवर सिय वासा। गये मुदित मन भरे हुलासा॥
द्वार भेंटि आरति करि सीता। मिली मुदित मन प्रेम पुनीता॥

तदनन्तर दिन का अवसान होने पर, आनन्द प्रपूरित श्री राम जी महाराज प्रसन्न मन से विदेह राज नन्दिनी श्री सिया जू के निवास गये। श्री सीता जी ने द्वार पर आकर श्री राम जी महाराज की आरती उतारी तथा प्रसन्न–मना, पवित्र प्रीति पूर्वक उनसे भेंट की।

बैठे आसन ललित ललामा। सह सीता रघुवर सुख धामा॥
छड़ी चमर ले सखिगन भ्राजी। सेवहिं युगल रूप सुख साजी॥

पुनः सुख के धाम श्री राम जी महाराज श्री सीता जी के सहित भव्यातिभव्य सुन्दर सिंहासन में विराज गये। सखियाँ छड़ी और चँवर ले कर युगल स्वरूप श्री सीताराम जी की सुखमयी सामग्रियों के द्वारा सेवा करती हुई सुशोभित होने लगीं।

चन्द्रकला दक्षिण दिशि सोही। लिये चँवर सिय रघुपति जोही॥
पृष्ठ भाग लक्षमना सुहावै। छत्र लिये रघुवर मन भावैं॥

श्री चन्द्रकला जी दक्षिण दिशा में चँवर लेकर श्री सीताराम जी की छवि निहारती हुई शोभायमान हो गयीं, श्री राम जी महाराज के मन को अत्यधिक प्रिय लगने वाली श्री लक्ष्मणा जी पृष्ठ भाग में छत्र धारण कर खड़ी हो शोभा संप्राप्त करने लगीं।

सुभगा बाम व्यजन कर धारी। सेवैं युगल रूप मन हारी॥
लसैं चारुशीला प्रभु आगे। वरणति युगल यशहिं अनुरागे॥
वायव्यादिक दिशा मँझारी। सोह रहीं हेमादिक सारी॥

श्री सुभगा जी उत्तर दिशा में व्यजन हाथ में लेकर, मन को हरण करने वाली युगल मूर्ति श्री सीताराम जी की सेवा करने लगीं, श्री चारुशीला जी अनुराग पूर्वक युगल सरकार श्री सीताराम जी के सुशोभन यश का वर्णन करती हुई प्रभु के सामने सुशोभित होने लगीं। वायव्य आदि दिशाओं में श्री हेमा जी आदि सम्पूर्ण सुन्दर सखियाँ शोभायमान हो गयीं।

दो0–पान गन्ध मालादि लै, सेवहिं सखी समाज।
नीरांजन करि प्रेम युत, लेहिं बलैया भ्राज॥२५६॥

पान, इत्र और माला आदि सेवा की उपयोगी सामग्रियों को धारण किये हुए समस्त सखि समाज उनकी सेवा करने लगा। वे उनकी आरती उतार कर प्रेम पूर्वक बलैया लेती हुई सुशोभित हो रही थीं।

सुर किन्नर गंधर्व सुकन्या। राजसुता अहिसुता सुमन्या॥
नाचहिं गावहिं बारहिं बारी। बाद्य बजावहिं विविध प्रकारी॥

देवता, किन्नर, गन्धर्व व नाग जाति की माननीया कन्यायें व राजकुमारियाँ बारम्बार नृत्य व गान करती हुई बिभिन्न प्रकार के वाद्य बजा रहीं थीं।

प्रेम पगी सिय राम रिझाई । करहिं सुमंगल जन्म बधाई ॥
यहि विधि बीति गई बहु रजनी । सिया कहहिं अब सोवहु सजनी ॥

वे सभी प्रेम में पगी हुई सखियाँ श्री सीताराम जी को प्रसन्न करते हुये, सुन्दर मांगलिक जन्म बधाई उत्सव कर रही थीं। इस प्रकार अधिक रात्रि व्यतीत हो गयी तब श्री सीता जी ने कहा– हे सखियो! अब आप सभी शयन कीजिये।

पौढ़े सदन श्याम अरु श्यामा । वरणि न जाय प्रेम अभिरामा ॥
सखिगण निरखि शयन शुचि झाँकी । निज निज भवन गई रस छाँकी ॥

तदनन्तर श्याम सुन्दर रघुनन्दन श्री राम जी और श्यामा सुन्दरी निमिनन्दिनी श्री सिया जू सुन्दर सदन में लेट गये, उनकी पारस्परिक सुन्दर प्रीति अनिर्वचनीय है। सखियाँ श्री सीताराम जी की सुन्दर पवित्र शयन झाँकी का दर्शन कर रस में छकी हुई अपने अपने भवनों को चली गयीं।

सोये रसिक राय रघुराई । जनक लाड़िली सुख सरसाई ॥
जागे प्रात राम सुकुमारे । सहित सिया नैना रतनारे ॥

इस प्रकार रसिक शिरोमणि श्री राम जी महाराज और जनक लड़ैती श्री सिया जू सुख पूर्वक शयन कर गये। पुनः प्रभात काल में परम सुकुमार अरुण नयन श्री राम जी महाराज श्री सिया जू के सहित जागृत हुए।

दो0– राम विलोकत चकित चित, धरे शीश सिय गोद ।
परण कुटी चित्रकूट की, हृदय भरेउ बहु मोद ॥२५७॥

तब श्री राम जी महाराज ने आश्चर्यान्वित चित्त से अपनी प्राण वल्लभा श्री सीता जी के अंक में अत्यानन्द प्रपूरित हो अपना शिर रखे हुए स्वयं को चित्रकूट की पर्णकुटी में देखा।

विस्मित मुद्रा करि तब रामा । बोले प्रियहिं सुनहु सुख धामा ॥
उत्सव आज अवध पुर माहीं । भयो प्रिया कहि जात सो नाहीं ॥

तब विस्मय प्रदायिनी मुद्रा से श्री राम जी महाराज ने कहा कि– हे सुखधाम स्वरूपिणी प्रिये! सुनिये, आज श्री अयोध्यापुरी में ऐसा उत्सव हुआ, जिसका बखान नहीं किया जा सकता।–––

मैं अरु आप लखन सह प्यारी । रहे तहाँ तीनहुँ सुख सारी ॥
सोये रात भवन बिच दोऊ । सखिन सुसेवित मुद महँ मोऊ ॥

–––हे सुखों की सारभूता प्रिये! श्री लक्ष्मण कुमार के सहित आप और हम तीनों वहाँ उपस्थित थे। पुनः आप व हम दोनों कनक–भवन में आनन्द पूर्वक सखियों से सेवित हो शयन भी किये।–––

जागे देखत गिरि चितकूटा । अवध लगत नहिं मति भ्रम कूटा ॥
स्वपन लखौं की प्रिया प्रवीना । भई मोर मति संशय लीना ॥

–––अब जागने पर मैं स्वयं को चित्रकूट गिरि में देख रहा हूँ, यह श्री अयोध्यापुरी नहीं प्रतीत

हो रही अतः मेरी बुद्धि संशय ग्रस्त हो रही है। हे परम प्रवीणा प्रिये! क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ अथवा मेरी बुद्धि संदेह में लीन हो गयी है।———

कीधौं दानव दैत्य कुदेवा । कीन्हे माया कवनेहुँ भेवा ॥
बरबश करि मम मतिहिं भुलाई । अवध उठाय मोहिं इत लाई ॥

———अथवा किसी दानव, दैत्य व दुर्देव ने, किसी विशेष प्रकार की माया के द्वारा मेरी बुद्धि को हठात् विस्मृत कर, श्री अयोध्यापुरी से उठाकर मुझे यहाँ चित्रकूट ले आया है।———

दो0— मइया दाऊ भ्रात सब, स्वजन सखा परिवार ।
दुखी होय फिरिहैं बिकल, तन मन सुधिहिं बिसार ॥२५८॥

———हमारी अम्बा श्री कौशिल्या जी, श्री मान् दाऊ जी, सभी भ्राता, स्वजन एवं परिजन दुखी होकर इधर–उधर व्याकुल हो भटक रहे होंगे तथा शरीर व मन की स्मृति भूल गये होंगे।———

हमहिं तुमहिं जब उत नहिं पइहैं । विरह विवश सब तन तज दइहैं ॥
जानि न जाय समय का आयो । बन महँ पर्‍यो भेद भ्रम छायो ॥

———जब वे लोग हमें और आपको वहाँ नहीं पायेंगे तब विरह के वशीभूत हो वे निश्चित ही अपने प्राण त्याग देंगे। न जाने यह कैसा समय आया है कि— मैं रहस्य व शंका से आच्छादित वन में पड़ा हुआ हूँ।

सुनि सिय कही तबहिं मृदु बानी । चित्रकूट सत है रस खानी ॥
मानि बचन पितु मातहिं केरा । आइ इहाँ प्रभु लीन्ह बसेरा ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के इस प्रकार के वचनों को सुनकर श्री सिया जी ने तभी कोमल वाणी से कहा— हे रस के खानि, प्राण प्रियतम! सत्य ही यह चित्रकूट स्थली है। हे नाथ! आप अपने माता–पिता के वचनों को मान, यहाँ आकर निवास किये हुए हैं।———

भोरहिं उठे नाथ सत आजू । कियो सुरति निज अवध समाजू ॥
वर्ष ग्रन्थि सुधि करि हिय हारे । विरह विवश बहु भये दुखारे ॥

———हे नाथ! सत्य यह है कि— आप, आज प्रातः काल उठकर अपनी श्री अयोध्यापुरी के समाज का स्मरण करने लगे। हे हृदय हार! आप अपनी वर्ष ग्रन्थि का स्मरण कर विरह के वशीभूत हो अत्यधिक दुखी हो गये थे।———

प्रभु संकल्प वृथा नहिं होई । ताते वर्ष ग्रन्थि जिय जोई ॥
करहिं नाथ अब नित्य निबाहा । मंदाकिनि करि शुचि अवगाहा ॥

———परन्तु, हे नाथ! आपके संकल्प वृथा नहीं होते, इसीलिए आपने अपने हृदय में अपनी वर्ष ग्रन्थि उत्सव का दर्शन किया है। हे मेरे प्राण नाथ! अब आप श्री मन्दाकिनी जी में पवित्र स्नान कर नित्य कर्मों का निर्वाह करें।

दो0– प्रिया बचन सुनि राम कर, भ्रम संशय भो दूरि ।
कहेउ धन्य शुभ आगरी, दीन्ही आनन्द भूरि ॥२५९॥

अपनी प्रिया जू के वचनों को श्रवण कर श्री राम जी महाराज के सभी भ्रम और संदेह दूर हो गये तब वे बोले हे– समस्त शुभ लक्षणों की आगरी, आप धन्य हैं जो आपने हमें महान आनन्द प्रदान किया है।–––

तुम्हरी कृपा सिया सुख पावा । देखेउँ अवध अनन्द बधावा ॥
अवध अछत जस आनँद पावत । तैसहिं आज भयो मन भावत ॥

–––हे प्राण प्रिया जू! आपकी कृपा से श्री अयोध्यापुरी में आनन्द बधाई का दर्शनकर, मैंने सुख प्राप्त किया है। श्री अयोध्यापुरी में रहने से जिस प्रकार आनन्द मिलता उसी प्रकार का मन भावना आनन्द आज मुझे प्राप्त हुआ है।

हृदय लाय प्रभु जनक दुलारी। करत प्रशंसा बारहिं बारी ॥
पुनि प्रभु सब नित नेम निबाही। बैठे लखन सिया सँग माही ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज जनक दुलारी श्री सिया जू को हृदय से लगाकर बारम्बार उनकी प्रशंसा कर रहे थे। पुनः प्रभु श्री राम जी महाराज सम्पूर्ण नित्य कर्मो का निर्वाह कर श्री लक्ष्मण कुमार और श्री सिया जू के साथ विराज गये।

आई चहुँ दिशि मुनिन समाजा। प्रेम पगी जन्मोत्सव काजा ॥
मुनि पतनी साथहिं सब आई । मंगल द्रव्य साज शुचि लाई ॥

तब वहाँ चारों दिशाओं से प्रेम में पगा हुआ श्री राम जन्मोत्सव मनाने हेतु मुनियों का समाज आ गया। उनके साथ ही ऋषि पत्नियाँ भी थीं जो अपने साथ पवित्र मंगल द्रव्य सज्जित कर ले आयीं थी।

लखन सिया सह राम कृपाला । कीन्ह प्रणाम सबहिं तेहिं काला ॥
आशिष प्यार पाइ रघुनाथा । कहे मुदित मन नाइ सुमाथा ॥

श्री सीता जी और श्री लक्ष्मण कुमार के साथ कृपालु श्री राम जी महाराज ने उस समय सभी को प्रणाम किया तथा आशीर्वाद और प्यार प्राप्त किया। पुनः श्री राम जी महाराज ने मुदित मना उनके चरणों में अपना शीश झुका प्रणाम कर कहा–

दो0– राउर दरशन पाय भल, सुखी भये अति आज ।
लहि सुप्यार सब मुनिन कर, भूलेउ दशरथ राज ॥२६०॥

हे मुनीश्वरो! आप सभी के सुन्दर दर्शन प्राप्त कर आज हम अत्यन्त आनन्दित हुये तथा आप सभी मुनियों का प्यार पाकर तो हम अपने श्री मान् दाऊ जी और श्री अयोध्यापुरी तक को भूल गये हैं।

सुनि मुनि कहत धन्य रघुराऊ । नहिं अस देखे शील स्वभाऊ ॥
तुम्हरो दरश पाइ रघुनाथा । अभय होय सब भये सनाथा ॥

श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवण कर मुनियों ने कहा, हे रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज, आप धन्य हैं। हमने आपके समान शील स्वभाव का अन्यत्र कहीं दर्शन नहीं किया। हे श्री रघुनाथ जी! आपके दर्शन पाकर हमारे यज्ञादि (हवन) निर्भय होने लगे हैं तथा हम सुरक्षित हो गये हैं।–––

कर न सकहिं कछु तुम्हरी पूजा । केवल शरण गही नहिं दूजा ॥
निज निज भाव भरे मुनि लोगू । बैठे सकल रामसहयोगू ॥

–––हम आपका कुछ भी सत्कार नहीं कर सकते हैं, एकमात्र आपकी शरण ही ग्रहण किये हैं, हमारे अन्य कोई साधन भी नहीं हैं। ऐसा कह कर अपने–अपने भावों से भरे हुये, श्री राम जी महाराज के सहयोगी समग्र मुनि गण बैठ गये।

मुनि मुनि पतनी सुख न समाई । देखत दृगन सिया रघुराई ॥
वर्ष ग्रन्थि उत्सव प्रभु केरा । कीन्हे विधिवत मुनिन घनेरा ॥

समस्त मुनिजन और मुनि पत्नियाँ श्री सीताराम जी का भर नेत्र दर्शन कर सुख से ओत–प्रोत हो रहे थे। अनन्तर मुनियों ने विधि पूर्वक प्रभु श्री राम जी महाराज के वर्ष ग्रन्थि का महान महोत्सव किया।

बनहिं मोद भरि मंगल गाना । ऋषि नारी सब करहिं सुहाना ॥
लोक वेद सब कीन्ही रीती । छाकी सबहिं राम रस प्रीती ॥

सभी ऋषि पत्नियाँ सुन्दर आनन्द में भरकर, वन में ही मांगलिक गान करने लगीं, उन्होने सभी लोक रीति और वेद रीति सम्पन्न की तथा श्री राम जी महाराज के प्रेमानन्द में छक गयीं।

दो0– उमड़ि चल्यो आनन्द अति, चित्रकूट बन माहिं ।
छाई सुन्दर वेद ध्वनि, जय जय शब्द सुनाहिं ॥२६१॥

उस समय चित्रकूट वन–प्रान्त में अत्यानन्द उमड़ पड़ा था सुन्दर सर्वत्र वेद–ध्वनि छायी हुई थी तथा जय–जयकार का मधुर नाद सुनाई दे रहा था।

बन देवी बन देव सम्हारा । सकल मनाये उत्सव प्यारा ॥
कोल किरात भिल्ल बन वासी । सीय राम प्रिय प्रेम पियासी ॥

सभी वन देवियों तथा वन देवताओं ने श्री राम जी महाराज का प्रिय जन्मोत्सव भली प्रकार सम्हाल पूर्वक मनाया। कोल, किरात तथा भील आदि श्री सीताराम जी के प्रिय प्रेम के प्यासे वन वासी–––

जासु प्रेम लखि प्रभु संयोगा । लाजे मिथिला अवधहुँ लोगा ॥
आनँद मगन महोत्सव कीने । नाचहिं गावहिं प्रेम प्रवीने ॥

---जिनके प्रेम व प्राप्त प्रभु जन्मोत्सव के इस संयोग को देखकर श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी के लोग भी लज्जित हो रहे थे। उन सभी ने आनन्द में मग्न हो श्री राम वर्ष ग्रन्थि महोत्सव किया तथा प्रेम प्रवीण वे लोग नाच और गा रहे थे।

अटपट गान बाज सब अटपट । नृत्य कला भाषा सब जटमट ॥
प्रेम विभोर तिनहिं कहँ देखी । विस्मित सुर मुनि नेह विशेषी ॥

उनके गीत तथा वाद्य सभी विलक्षण थे तथा नृत्य-कला और भाषा भी बड़ी विचित्र थी। उस समय उन्हें प्रेम विभोर देखकर सभी देवता और मुनि, विशेष प्रेम पूर्वक आश्चर्य चकित हो रहे थे।

खग मृग जीव मगन सब होहीं । करहिं किलोल परस्पर सोहीं ॥
मानहुँ रघुवर जनम बधाई । करहिं हर्ष सुर नर मुनि भाई ॥

उस समय वन्य पक्षी व पशु आदि सभी जीव अत्यन्त प्रेम मग्न होकर परस्पर किलोल करते हुए इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो देवता, मनुष्य और मुनि आदि सभी हर्षित होकर श्री राम जी महाराज का सुन्दर जन्म बधाई महोत्सव कर रहे हों।

दो0-लता वृक्ष पाषाण गिरि, जानि जन्म रघुवीर ।
श्रवहिं सुरस फल पुष्पयुत, मधुमय झरत सुनीर ॥२६२॥

उस समय लताएँ, वृक्ष व पत्थरों से युक्त पर्वत आदि सभी श्री राम जी महाराज का जन्म दिन समझ कर श्री राम जी महाराज के सम्मुख सुगन्धित पुष्पों की वर्षा कर रहे थे, मधुर व रसमय फल गिरा रहे थे तथा मधु-स्वरूप सुन्दर जल प्रवाहित कर रहे थे।

प्रगटी धातु अनेक प्रकारा । दान देत जनु गिरिहुँ उदारा ॥
मंदाकिनि कल कलत सुहाई । बहत बीचि उछरत छबि छाई ॥

भूमि में उस समय अनेक प्रकार की धातुएँ प्रगट हो गयी थी ऐसा लगता था जैसे श्री राम जन्मोत्सव पर परम उदार श्री कामद गिरि, दान दे रहे हों। श्री मन्दाकिनी जी कलकल नाद करती हुई लहरों से परिपूर्ण प्रसन्नता पूर्वक उछल-उछल कर प्रवाहित होती हुई अत्यन्त सुशोभित हो रही थीं।

यहिं विधि चित्रकूट थल वासी । जड़ चेतन सब प्रेम प्रकाशी ॥
रघुवर जनम मनाइ उछाहा । सुखी होहिं निज भाग सराहा ॥

इस प्रकार श्री चित्रकूट स्थली के जड़-चेतन सभी निवासी जीव आनन्द पूर्वक श्री राम जी महाराज का जन्मोत्सव मनाकर सुखी हो रहे थे तथा अपने भाग्य की प्रशंसा कर रहे थे।

सहित नारि सुर चढ़े विमाना । नृत्यत गावत प्रेम प्रमाना ॥
मुदित बजाइ दुन्दुभी प्यारी । वरषहिं सुरतरु सुमन सुखारी ॥

देवता अपनी नारियों सहित आकाश में विमानो में चढ़े हुये प्रेम पुलकित हो, नाच और गा रहे थे तथा आनन्दित हो प्रियकारी दुन्दुभी बजा कर सुखपूर्वक कल्पवृक्ष के पुष्पों की वरषा कर रहे थे।

जय जय कहत स्तुती करहीं। करि जन्मोत्सव आनँद भरही ॥
मंगल स्तव पढ़हिं बनाये। चाहत मंगल सबहिं सुभाये ॥

वे जय–जयकार करते हुए स्तुति कर रहे थे तथा श्री राम जन्मोत्सव मनाकर आनन्द सें परिपूर्ण हो रहे थे। देवता विधि पूर्वक मांगलिक स्तव पाठ कर रहे थे और सहज ही श्री राम जी महाराज की सुन्दर मंगल कामना कर रहे थे।

दो0– सुर मुनि रक्षा मंत्र करि, अभिमत आशिष दीन्ह।
मंगल मोद उछाह भरि, राम प्यार अति कीन्ह ॥२६३॥

सभी देवताओं और मुनियों ने रक्षा–मंत्र पाठ कर श्री राम जी महाराज को मनोनुकूल आशीर्वाद प्रदान किया तथा उनकी मंगल–कामना से परिपूर्ण हो आनन्द और उत्साह में भर–कर श्री राम जी महाराज का अत्यधिक प्यार–दुलार किया।

बहुरि गये सब निज निज वासा। सीय राम रखि हृदय अकाशा ॥
लखन सिया रघुवर सुख पाये। चित्रकूट गिरि कामद छाये ॥

पुनः वे सभी अपने हृदय के आकाश में श्री सीताराम जी को बसा कर अपने–अपने निवास चले गये। हमारे सदगुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– इस प्रकार श्री लक्ष्मण कुमार जी, श्री सीता जी और श्री राम जी महाराज सुखपूर्वक कामदगिरि श्री चित्रकूट में निवास कर रहे हैं।

चिदाकाश मधि याहि प्रकारा। कुँअर लखा शुभ चरित उदारा ॥
ध्यान जनित सुख हर्षहिं पाई। प्रेम प्रवाह बढ़ेव हिय आई ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने चिदाकाश में श्री राम जी महाराज का इस प्रकार का शुभ और उदार चरित्र दर्शन किया और ध्यान से उत्पन्न सुख और हर्ष को प्राप्तकर उनके हृदय में प्रेम का प्रवाह बृद्धि को प्राप्त हो गया।

उछरि परेउ आनन्द अथोरा। तबहिं जगेउ मिथिलेश किशोरा ॥
प्रियहिं दियो सब चरित सुनाई। सुनत सिद्धि प्रेमाकुल छाई ॥

राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी का हृदय, उस महान आनन्द से उच्छलित हो पड़ा तभी वे जाग्रत हो गये। अनन्तर उन्होंने अपनी प्रिया श्री सिद्धि कुँअरि जी को वह सम्पूर्ण चरित्र सुनाया जिसे सुनकर श्री सिद्धि कुँअरि जी भी प्रेमाकुल हो गयीं।

प्रेम पगे दोउ दम्पति सोहे। कहत परस्पर कथा सुमोहे ॥
राम जन्म नौमी तिथि जानी। उत्सव कीन्ह तहाँ दोउ दानी ॥

प्रेम में पगे हुए दम्पति श्री लक्ष्मीनिधि जी तथा श्री सिद्धि कुँअरि जी दोनों परस्पर श्री राम कथा कहते हुए विमुग्ध हो सुशोभित होने लगे। पुनः श्री राम जी महाराज की जन्म तिथि 'चैत्र–शुक्ल–नौमी' जानकर परम उदार दोनों ने वहाँ महान उत्सव किया।

दो0– मंगल हित रघुनाथ के, जन्मोत्सव रस छाय ।
तप थल कीन्हे प्रेम पगि, आनन्द रूप सुभाय ॥२६४॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँअरि जी नें प्रेम–रस में निमग्न होकर श्री राम जी महाराज की मंगल कामना हेतु अपनी तपस्थली में आनन्द स्वरूप सुन्दर जन्मोत्सव किया।

मिथिला अवध राम हित सबहीं । वर्ष ग्रन्थि कीन्हे मन भवहीं ॥
मंगल पढ़ि सब देव मनाये । रक्षा करहिं बनहिं सत भाये ॥

श्री राम जी महाराज की मंगल कामना हेतु श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी के सभी निवासियों ने मन–भावन वर्ष ग्रन्थि महोत्सव किया तथा सभी ने श्री राम जी महाराज का मंगलानुशासन कर देवताओं को प्रसन्न किया जिससे वन में वे श्री राम जी महाराज की सद्भाव पूर्वक रक्षा करें।

सीय राम कल्याणहिं हेता । देवहिं दान विविध विधि चेता ॥
यहिं प्रकार नौमी तिथि बीती । करत सुरति सिय राम सप्रीती ॥

श्री सीताराम जी के मंगल हेतु सभी नें सजग होकर विभिन्न प्रकार से दान यिा। इस प्रकार श्री राम नौमी तिथि भी श्री सीताराम जी का प्रेम पूर्वक स्मरण करते हुए व्यतीत हो गयी।

कछु दिन गये जानकी नौमी । आई सबहिं देन सुख भौमी ॥
राम जन्म जस भयो उछाहा । मिथिला कामद अवध उमाहा ॥

कुछ दिनोपरान्त सभी जीवों को भूमा सुख प्रदान करने वाली श्री जानकी नौमी आ गयी। जिस प्रकार श्री राम जी महाराज की जन्म तिथि में श्री मिथिलापुरी, श्री कामदगिरि और श्री अयोध्यापुरी में उत्साहपूर्वक आनन्दोत्सव हुआ था।

तैसहिं भो सिय जन्म मँझारी । आनँद दायक प्रेम पसारी ॥
विरहीले सब रघुवर प्रेमी । तदपि तजे नहिं उत्सव नेमी ॥

उसी प्रकार आनन्ददायक, प्रेम परिपूर्ण महोत्सव श्री सीता जी की जन्म तिथि में भी मनाया गया। श्री राम जी महाराज के सभी प्रेमीजन यद्यपि उनके वियोग जनित दुख में डूबे हुये थे तथापि उन्होने उत्सवीय नियमों का परित्याग नहीं किया।

दो0– वेद शास्त्र मर्याद लखि, गुरु जस आयसु देय ।
दोउ पुर कारज करहिं सब, विरह सने प्रभु धेय ॥२६५॥

वे वेद व शास्त्रों की मर्यादाओं का ध्यान रखते हुए, श्री गुरुदेव जी जैसी आज्ञा प्रदान करते थे तदनुसार ही दोनों पुरियों (श्री मिथिला व श्री अयोध्या) के सभी निवासी प्रभु–वियोग में सने हुए श्री राम जी महाराज को लक्ष्य बनाये हुए कार्य किया करते थे।

कछु दिन गये बहुरि निमि वारा । स्वप्न लखेव इक चित्त अधारा ॥
सुरपति पुत्रवधू सुकुमारी । संग अप्सरा रूप सम्हारी ॥

पुनः कुछ दिन व्यतीत हो जाने पर, एक दिन निमिनन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने

चिदाकाश में एक स्वप्न का दर्शन किया कि– अप्सराओं के साथ देवराज इन्द्र की परम सुकुमारी पुत्रवधू अपना श्रृंगार कर–––

चित्रकूट रघुपति के प्रेमा। आई दरशन हित तजि नेमा॥
दरश पाइ अतिशय सुख पाई। जन्म सुफल शुचि समुझि सुभाई॥

–––श्री राम जी महाराज के प्रेम में उनके दर्शन करने के लिए सभी प्रकार (देश, काल व स्थिति) के नियमों का परित्याग कर श्री चित्रकूट गिरि आ गयी। श्री सीताराम जी का दर्शन प्राप्त कर उसने अत्यन्त सुख प्राप्त किया तथा अपने जन्म को सुन्दर, पवित्र और सफल समझने लगी।

अन्तरिक्ष महँ करि प्रिय गाना। नृत्य कला दिखराय महाना॥
पुष्प वरषि बहु सेवा कीन्हीं। चरण प्रेम माँगी प्रभु दीन्ही॥

पुनः उसने अन्तरिक्ष में प्रिय गायन कर अपनी महान नृत्य कला का दिग्दर्शन कराया तथा पुष्पों की वर्षा कर प्रभु श्री राम जी महाराज की विविध प्रकार से सेवा की। तदनन्तर उसनें प्रभु श्री राम जी महाराज के चरणों में प्रेम की याचना की, जिसे प्रभु श्री राम जी महाराज ने प्रदान कर दिया।

सीय राम कहँ निज हिय धारी। बहुरि गगन पथ स्वपुर सिधारी॥
पति सो जाय राम सुधि गाई। सुनत जयन्त भेद मन लाई॥

अनन्तर वह जयन्त–पत्नी, श्री सीताराम जी को अपने हृदय में धारण कर आकाश मार्ग से अपने लोक चली गयी। वहाँ जाकर उसने अपने पति जयन्त से स्मृति करते हुये श्री राम जी महाराज की कीर्ति का गायन किया जिसे सुनकर जयन्त ने अपने मन में 'द्वेष भाव' धारण कर लिया।

दो0– महा मोह भ्रम सानि चित, चहत करन अपराध।
राम सियहिं नर मानि शठ, मानेउ द्वैष अगाध॥२६६॥

उस मूर्ख जयन्त ने श्री सीताराम जी में मानवी बुद्धि आरोपित कर उनसे अत्यन्त भीषण द्वैष कर लिया तथा महान मोह से ग्रसित चित्त से उनका अपराध करने का मन में विचार किया।

फटिक शिला विहरत सियरामा। सरि मन्दाकिनि तीर ललामा॥
चुनि चुनि कुसुम राम रस साने। भूषण विविध बनाइ सुहाने॥

एक दिन श्री सीताराम जी, श्री मन्दाकिनी जी के सुन्दर तट पर स्फटिक सिला में विहार कर रहे थे। वहाँ श्री राम जी महाराज ने प्रेमानन्द में सराबोर होकर पुष्पों का चयन किया तथा विभिन्न प्रकार के सुन्दर पुष्पाभूषणों का निर्माण किया।

सीतहिं निज कर प्रभु पहिराये। भूषित देखि परम सुख पाये॥
सीता श्रमित राम की गोदी। पौढ़ी शिर रखि भरी प्रमोदी॥

पुनः उन पुष्पाभरणों को अपने कर कमलों से श्री राम जी महाराज नें श्री सीता जी के सर्वांग में धारण कराया तथा पुष्पाभरणों से आभूषित हुई उन्हे देख कर परम सुख प्राप्त किये। उस समय श्री सीता जी थकित हो, श्री राम जी महाराज की गोद में अपना शिर रखकर आनन्द पूर्वक लेट गयीं।

स्वस्थ होय बैठी हरषाई । रामहिं आलस तब कछु आई ॥
सिया अंक रखि प्रभु निज शीशा । सोये अकुतोभय जगदीशा ॥

पुनः श्री सीता जी स्वस्थ होकर हर्ष पूर्वक विराज गयीं तब श्री राम जी महाराज को किंचित आलस आ गया। अतः सर्वत्र निर्भय जगदीश्वर श्री राम जी महाराज, श्री सीता जी की गोद में अपना शिर रख कर सो गये।

तेहिं अवसर सुरपति सुत आवा । काक रूप धरि ज्ञान नसावा ॥
चोंच मारि सीतहिं सठ भागा । रुधिर विलोकि रोष प्रभु पागा ॥
यदपि अक्रोध तदपि भगवाना । आश्रित दुख नहिं सहहिं सुजाना ॥

उसी समय देवराज इन्द्र का पुत्र जयन्त अपने ज्ञान को विनष्ट कर कौये का रूप धारण कर वहाँ आया तथा वह मूर्ख! श्री सीता जी को अपनी चोंच मार कर भाग गया। चोंच प्रहार से निकले हुए रक्त को देखकर श्री राम जी महाराज क्रोध से आवेशित हो गये। प्रभु श्री राम जी महाराज यद्यपि सर्वथा क्रोध रहित हैं तथापि परम सुजान सर्वज्ञ प्रभु, अपने आश्रित–जनों के दुखों को किंचित भी नहीं सहन कर पाते हैं।

दो0–सीक धनुष संधानि कर, छोड़े प्रभु रघुवीर ।
ब्रह्म अस्त्र बनि सो चलेउ, कागहु छोड़ेउ धीर ॥२६७॥

रघुकुल के वीर प्रभु श्री राम जी महाराज ने एक सीक को अपने धनुष में आरोपित कर छोड़ दिया तब वह ब्रह्मास्त्र बन कर चल दिया, जिसकी विकरालता को देखकर काक–रूप धारी जयन्त का धैर्य छूट गया।

व्याकुल पितु पुर गयो जयन्ता । अस्त्र तेज तापित दुखवन्ता ॥
बोलेउ रक्षहु पिता हमारे । सुरपति कहेउ हटहु कुल कारे ॥

उस ब्रह्मास्त्र के ताप से जलता हुआ दुखी जयन्त अपने पिता देवराज इन्द्र के लोक गया और बोला– हे पिता जी हमारी रक्षा कीजिए, तब देवराज इन्द्र ने कहा– अरे कुल कलंक जयन्त! तू यहाँ से हट जा।–––

विभु विमुखी रखि निज पुर माहीं । आपन नाश करइहौं नाहीं ॥
देखि मातु मुख रोवत भारी । सोउ कही हटि जाहु अनारी ॥

–––मैं भगवान श्री राम जी के प्रतिकूल आचरण करने वाले को अपने लोक में रखकर अपना विनाश नहीं कराऊँगा। तब वह अपनी माता श्री शची जी को देखकर अत्यधिक रुदन करने लगा परन्तु उसने भी कहा कि– हे आर्य गुणों से विहीन जयन्त! तू यहाँ से हट जा।

नारि विलोकि दुःख बतरावा । सोउ सुनी नहिं बदन छिपावा ॥
जननि जनक जग के सिय रामा । पूरण ब्रह्म सुशक्ति स्वधामा ॥

अपनी पत्नी को देखकर जयन्त ने उससे अपना दुख प्रगट किया परन्तु उसने भी कुछ न सुन कर अपना मुख छुपा लिया और बोली– श्री सीताराम जी परम–पद स्वरूप पूर्ण ब्रह्म और

परमाद्याशक्ति तथा संसार के पिता व माता हैं।———

तिन कर द्रोह अमित दुख दायी । अस कहि नारि शची ढिंग आई ॥
बहुरि जयन्त गयो विधि धामा । राखहु शरण कहेउ लै नामा ॥

———उनसे द्रोह करना असीमित दुखदायी है, ऐसा कहकर उसकी स्त्री अपनी सासू श्री शची जी के पास आ गयी। पुनः जयन्त श्री ब्रह्मा जी के लोक गया और अपना नाम उच्चारण कर उसने शरण में रखने की प्रार्थना की———

दो०— तब ब्रह्मा मुँह फेरि कह, भाग अबहिं सठ जाय ।
नाहित जरिहैं धाम मम, प्रभु द्रोही अपनाय ॥२६८॥

तब श्री ब्रह्मा जी ने उसकी ओर से अपना मुँह मोड़ कर कहा— अरे मूर्ख! तू अभी ही (शीघ्र) भाग जा, नहीं तो प्रभु श्री राम जी महाराज से द्रोह करने वाले को अपनाने के कारण मेरा सम्पूर्ण लोक जल कर भस्म हो जायेगा।———

प्रभु अपराधी असह अपारा। तव मुख पेखे पाप हजारा ॥
हट हट कहि तेहि विधिहुँ भगावा। ब्याकुल शिव लोकहिं सो आवा ॥

———तू प्रभु श्री राम जी महाराज का असहनीय और असीमित अपराध करने वाला है, तेरा मुख देखने से हजारों पाप लग जायेंगे। हट जा, दूर हो जा, ऐसा कह कर श्री ब्रह्मा जी नें भी उसे अपने लोक से भगा दिया तब व्याकुल होकर जयन्त श्री शिव जी के लोक आया।

त्राहि त्राहि कहि कहत पुकारा । बोले रुद्रहुँ भगसि गवाँरा ॥
इष्ट देव मम श्री सिय रामा । जिन कर नाम जपौ अठ यामा ॥

वह, हे श्री शिव जी! आप मेरी रक्षा करो, रक्षा करो कहकर पुकार लगाने लगा तब श्री शिव जी ने भी कहा कि— अरे मूर्ख! तू भाग जा। श्री सीताराम जी तो मेरे इष्ट—देव हैं जिनका नाम मैं आठो—याम जपा करता हूँ।———

तोहि राखि तिन प्रभु अपराधा। करिहौं नाहि असत्य अगाधा ॥
मुख देखत तव पातक लागी । हटसि नही किमि दुष्ट अभागी ॥

———तुम्हारी रक्षा कर मैं अपने उन प्रभु का असीम अपराध झूँठ में भी नहीं करूँगा। तेरा तो मुख देखने में भी पाप लगेगा, अरे भाग्यहीन दुष्ट! तू हट क्यों नहीं रहा।———

मम पुर जरन चहत नतु अबहीं । काग गयो अहिपति ढिंग तबहीं ॥
लखि भो शेषहिं क्रोध अपारा । छोड़ि श्वाँस तब बदन हजारा ॥

———अरे, प्रभु द्रोही! तुम यहाँ से भाग जा नहीं तो अभी—अभी मेरा लोक जलना ही चाहता है। तब इन्द्र पुत्र जयन्त श्री शेष जी के समीप गया, जिसे देखकर श्री शेष जी को असीमित क्रोध हो आया और अपने हजार मुखों से श्वास छोड़कर उन्होंने उसे,———

दो0– फेंकि दियो निज लोक ते, परेउ अनत कहुँ जाय ।
ब्रह्म अस्त्र पीछे चलत, काग दुसह दुख पाय ॥२६९॥

———अपने नाग–लोक से फेंक दिया तब वह कहीं अन्यत्र जा गिरा। वह ब्रह्मास्त्र अभी भी उसके पीछे चल रहा था जिसके ताप से काक–रूप धारी इन्द्र–पुत्र जयन्त असहनीय दुख प्राप्त कर रहा था।

लोकपाल दिग्पालन धामा । सकल जयन्त गयो मति वामा ॥
तीन लोक परदक्षिण दीन्ही । कोउ नहिं शरण ताहि निज लीन्ही ॥

पुनः विपरीत बुद्धि वाला जयन्त अपन रक्षा हेतु सभी लोकपालों और दिग्पालों के लोकों को गया, इस प्रकार उसने तीनों लोकों की परिक्रमा लगा ली परन्तु किसी ने भी उसे अपनी शरण में नहीं रखा, अर्थात् उसकी रक्षा किसी ने भी नहीं की।

राम विमुख सिगरे मुख फेरे । बैठन कहे न मन महँ हेरे ॥
अस बिचारि जे चतुर सयाने । भजहिं राम दिन रैन लुभाने ॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– श्री राम जी महाराज के प्रतिकूल, जयन्त को देखकर उसकी ओर से, सभी ने अपना मुँह मोड़ लिया तथा मन में विचार कर उसे बैठने के लिए भी नहीं बोले। ऐसा विचार कर चतुर व बुद्धिमान जन, दिवा–रात्रि श्री राम जी महाराज में लुब्ध हुए उनका भजन करते रहते हैं।———

बनि प्रपन्न रघुवर अनुकूला। सेवहिं चरण सुमंगल मूला ॥
नाहित दशा जयन्तहिं केरी । पावै जीव सत्य सत टेरी ॥

———वे सभी श्री राम जी के शरणागत होकर उनके अनुकूल बने हुए समस्त सुमंगलों के मूल श्री चरणों की सेवा करते रहते हैं, अन्यथा मैं पुकार कर सत्य–सत्य कह रहा हूँ कि– जीव की दुर्दशा जयन्त के समान ही होती है।———

सुरपति सुत भा विकल विशेषी । नहिं कोउ रक्षक जग महँ पेखी ॥
अशरण जानि दीनता आई । ममता अहं कु गयो बिलाई ॥

जगत में किसी को भी अपना रक्षक न देखकर देवराज इन्द्र का पुत्र जयन्त अत्यन्त ही व्याकुल हो गया। स्वयं को अशरण समझ कर उसमें दीनता आ गई तथा उसके ममकार व अहंकार आदि दुर्विकार विनष्ट हो गये।

दो0– तबहिं कृपा रघुनाथ की, सुखद अहेतु अपार ।
लगी रहत जो जीव के, साथहिं नित्य उदार ॥२७०॥

उस समय श्री राम जी महाराज की सुखप्रद, अकारण, उदार व असीम कृपा जो जीवों के साथ सदैव लगी रहती है।

अशरण गुनि नारद कहँ हेरी । लायी काग समीपहिं प्रेरी ॥
इन्द्र सुतहिं व्याकुल अति देखी । मुनिवर पागे दया विशेषी ॥

वही प्रभु कृपा जयन्त को अशरण (निराश्रय) समझ, श्री नारद जी का अन्वेषण कर, प्रेरणा दे, काक रूप धारी जयन्त के समीप ले आयी। मुनिवर श्री नारद जी, इन्द्र पुत्र जयन्त को अत्यधिक व्याकुल अवस्था में देख विशेष दया से अभिभूत गये।

साधु स्वभाव दीन्ह उपदेशा । अशरण शरण राम अवधेशा ॥
बिनु तिन कृपा न तोर उबारा । सत्य काग यह बचन हमारा ॥

पुनः श्री नारद जी नें साधु स्वभाव के वशीभूत हो उसे उपदेश दिया कि– निराश्रितों की रक्षा करने वाले एक मात्र शारण्य (रक्षक) अयोध्यापति श्री राम जी महाराज ही हैं, तथा बिना उनकी कृपा के, तुम्हारा उबरना (उद्धार) सम्भव नहीं है। हे काग–रूप धारी जयन्त! ये हमारे बचन सर्वथा सत्य है।–––

कोमल चित रघुवर सुख धामा । त्राहि सुनत रखिहैं मन कामा ॥
तव अपराध हृदय नहिं धरिहैं । दीन जानि तोहि अभयी करिहैं ॥

–––श्री राम जी महाराज कोमल चित्त वाले व सुखो के धाम है, वे त्राहि–त्राहि (रक्षा करो, रक्षा करो) शब्द सुनते ही तुम्हारी मनोकामना पूर्ण कर देंगे। वे तुम्हारे अपराध को अपने हृदय में विचार न करेंगे तथा तुम्हे दीन समझ कर निर्भय कर देंगे।

सुनि उपदेश दण्डवत कीन्हा । करि प्रतीति गिरिवर चल दीन्हा ॥
काँप काँव करि रोवत आयो । चाहत शरण दीन दुख छायो ॥

मुनिवर श्री नारद जी के उपदेश को सुनकर जयन्त ने उन्हें दण्डवत किया तथा उनके वचनों में दृढ़ विश्वास कर, गिरि–राज श्री चित्रकूट को चल दिया। वह काँव–काँव करता, रोता हुआ आया तथा यह दीन व दुखी काक आपकी शरण चाहता है ऐसा कहता हुआ–––

दो0– कछुक दूरि रघुवीर के, शरणहिं परेउ जयन्त ।
लज्जावश मुँह फेरि कै, देखी सिय दुखवन्त ॥२७१॥

–––काक रूप धारी जयन्त श्री राम जी महाराज से कुछ दूरी पर, लज्जा के कारण मुँह उल्टा किये हुए प्रभु शरण में गिर पड़ा। तब श्री सीता जी ने देखा कि– यह जयन्त अत्यन्त दुखी है।

शरणागति अनुकूल शरीरा । कियो न काग सिया हिय हेरा ॥
कृपा रूपिणी कृपा विभोरी । लीन्ह उठाय जयन्त किशोरी ॥

श्री सीता जी ने अपने हृदय में विचार किया कि– इस काग रूप धारी जयन्त ने अपना शरीर, शरणागति के अनुकूल श्री राम जी महाराज के सम्मुख नहीं किया अर्थात् श्री चरणों में अपना शिर नहीं रखा। अतएव कृपा स्वरूपिणी ने कृपा विभोर हो जयन्त को अपने कर कमल से उठा कर–––

तासु चोंच रघुपति पद माहीं । राखि प्रपति अनुकूल तहाँही ॥
बोली नेह भरी अतुराई । त्राहि त्राहि काकहिं रघुराई ॥

———उसकी चोंच को शरणागति के अनुकूल श्री राम जी महाराज के चरणों में रख, प्रेम में भरकर आतुरता पूर्वक कहा, हे रघुनाथ जी! इस काग की रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।———

तव सम्मुख यह बनि अति दीना । परेउ नाथ राखिय प्रण चीन्हा ॥
जनक लाड़िली कृपा निहारी । सुर मुनि सब जय जयति उचारी ॥

———हे नाथ! यह काक आपके सामने अत्यन्त दीन बनकर पड़ा हुआ है, आप अपने 'शरणागत रक्षक प्रण' का स्मरण कर इसकी रक्षा कीजिये। जनक लड़ैती श्री सिया जू की महती कृपा को देखकर सभी देवता और मुनि जय हो, जय हो स्वर का उच्चारण करने लगे।———

बरषहिं सुमन देव हरषाये । दुन्दुभि पुनि पुनि हनत सुभाये ॥
धनि धनि कृपामयी शुभ सीता । आश्रय दै करि जीव अभीता ॥
ह्वै नित पुरुषकार सुख दाती । जीव ईश सम्बन्ध बताती ॥

———देवता हर्षित होकर पुष्प वरषाने लगे तथा बार–बार सुन्दर दुन्दुभी नाद करते हुये बोले– हे कृपा स्वरूपिणी, शुभ प्रदायिनी श्री सीता जी! आप धन्यातिधन्य हैं, आप ही जीवों को आश्रय प्रदान कर अभय करने वाली हैं तथा आप ही, नित्य सुख प्रदायक पुरुषकार स्वरूप होकर जीव व ब्रह्म के सनातन सम्बन्ध का परिज्ञान कराती हैं।———

दो0– दूनहु को संयोग शुचि, करती दै उपदेश ।
जय जय जय जगदीश्वरी, करुणा कृपा अशेष ॥२७२॥

———इस प्रकार आप ब्रह्म और जीव दोनों को उपदेश देकर उनका परस्पर पवित्र संयोग कराती है। हे संसार की स्वामिनी श्री सिया जू! आप पूर्ण रूपेण कृपा और करुणा विग्रहा हैं, आपकी जय हो, जय हो, जय हो।

यहि प्रकार स्तुति सुर कीनी । पुनि पुनि वरषहिं पुष्प नवीनी ॥
राम तबहिं सीता हिय लाई । बोले वचन सरस सुखदायी ॥

देवताओं ने इस प्रकार की स्तुति की तथा बार–बार नवीन फूलों की वर्षा करने लगे। तब श्री राम जी महाराज, श्री सीता जी को हृदय से लगाकर रस से भरे हुये सुख प्रदायक वचन बोले–

धन्य दया सागरि शुभ कीती । तुम समान तुम मम हिय जीती ॥
तुम्हरो कियो महा अपराधा । मारन योग तुरत फल साधा ॥

हे दयासागरी, शुभ कीर्ति सम्पन्ना! सीते, आप धन्य हैं। आपके समान तो आप ही हैं, आपने मेरे हृदय को जीत लिया है। यद्यपि इसने आपका महान अपराध किया था और इसके अपराध के परिणाम स्वरूप मैने इसका शीघ्र वध करने हेतु उपाय भी किया था।———

ऐसेउ पापिहिं काकहिं प्यारी । दया धारि कीन्हेव निस्तारी ॥
जयति जनकजा सुता सुनैना । बनी मोंहि अतिशय सुख दयना ॥

———परन्तु हे प्यारी जू! ऐसे, पापी काक रूप धारी जयन्त के ऊपर आपने दया कर इसका

उद्धार किया है। हे श्री जनक जी महाराज और श्री सुनैना जी की श्रेष्ठ आत्मजा आपकी जय हो। आप मुझे अत्यधिक सुख प्रदान करने की हेतु बनी हुई हैं।

अस कहि कागहिं शरणहिं राखी । कीन्हेउ छोह अमित श्रुति साखी ॥
जानि अमोघ अस्त्र तब रामा । एक नयन फोरेउ मति धामा ॥

ऐसा कहकर काक रूप धारी जयन्त को प्रभु श्री राम जी महाराज ने अपनी शरण में रखकर, उस पर असीम कृपा की, जिसकी साक्षी सभी श्रुतियाँ हैं। पुनः श्री राम जी महाराज ने अपने बाण (अस्त्र) को अमोघ समझ कर जयन्त की एक आँख की ज्योति को विनष्ट कर दिया।

दो0—एक सुदृग करि काग कहँ, कहेउ जाहु निज भौन ।
सुर पति सुत तव ह्वै अभय, करि प्रणाम किय गौन ॥२७३॥

इस प्रकार श्री राम जी महाराज ने काक रूपी जयन्त को सुन्दर एक नेत्र वाला बनाकर कहा कि— जयन्त ! अब तुम अपने घर चले जाओ तब देवराज इन्द्र का पुत्र उन्हें प्रणाम कर, सभी प्रकार से, निर्भय हो प्रस्थान कर गया।

रघुपति रक्षित जानि सुरेशा । करन दियो जिन भवन प्रवेशा ॥
सुनु हनुमान शरण हितकारी । प्रभु सम नहि कोउ अंड मझारी ॥

श्री राम जी महाराज से रक्षा किया हुआ जानकर, देवराज इन्द्र ने अपने पुत्र जयन्त को अपने भवन में प्रवेश करने दिया। श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि— हे श्री हनुमान जी! सुनिये, प्रभु श्री राम जी महाराज के समान, शरणागत जीवों का हित करने वाला ब्रह्माण्ड में कोई भी नहीं है।

ऐसेहु अपराधिहुँ पर दाया । शरण जानि कीन्हेउ रघुराया ॥
अस जिय जानि शरण नहिं लेहीं । भजैं न प्रभु कहँ सहित सनेही ॥

श्री राम जी महाराज ने, अपनी शरण में आया हुआ जानकर, ऐसे अपराधी पर भी दया की है उनके ऐसे स्वभाव को जानकर, जो मनुष्य उनकी शरणागति नहीं ग्रहण करते तथा प्रेम पूर्वक उनका भजन नहीं करते।———

सो नर अमित कल्प दुख भागी । महा विपति दिन दिन सँग लागी ॥
अस बिचारि जे चतुर महाना । सीता राम भजै सुख साना ॥

———वे मनुष्य असीमित कल्पों तक दुख के भागी होते हैं तथा उनके साथ प्रतिदिन महान विपत्ति लगी रहती है। अपने मन में ऐसा विचार कर जो महान व चतुर मनुष्य हैं वे सुख में सनकर श्री सीताराम जी का भजन करते रहते हैं।

काक अभय करि रघुवर सीता । प्रविशे पर्ण कुटीर पुनीता ॥
सेवा लखन विविध विधि कीनी । किय विश्राम दोउ सुख भीनी ॥

अनन्तर काक रूपी जयन्त को अभय कर श्री सीताराम जी अपनी पवित्र कुटी में प्रवेश किये, वहाँ श्री लक्ष्मण कुमार जी ने उनकी विभिन्न प्रकार से सेवा की, तदुपरान्त वे दोनों (श्री सीताराम जी) सुख पूर्वक विश्राम किये।

दो0– रक्षहिं सीताराम कहँ, निशिदिन लखन सुजान।
भाव भरे कैंकर्य रत, करहिं धरे धनु बान ॥२७४॥

परम सुजान श्री लक्ष्मण कुमार जी, भाव में भरकर श्री सीताराम जी की सेवा में लगे रहते थे तथा हाथों में धनुर्वाण धारण किये हुए, दिन–रात्रि उनकी रक्षा करते रहते थे।

सुर मुनि सन्त जनन सुखदाई। सीता राम सुभाय सुहाई ॥
नित नव सुन्दर चरित उदारा। करहिं सुखद चितकूट मँझारा ॥

सहज सुन्दर श्री सीताराम जी देवताओं, मुनियों, सन्तजनों तथा अपने भक्तों को सुख प्रदान करने के लिए श्री चित्रकूट गिरि में आनन्द पूर्वक नित्य, नवीन, उदार व सुन्दर चरित्र करते रहते थे।

यहि प्रकार लखि स्वप्न कुमारा। सिद्धिहिं दियो सुनाय सुखारा ॥
सुनत सिद्धि सिय काहिं सराहीं। धन्य दया प्रणतारत पाहीं ॥

राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने इस प्रकार का सुन्दर चरित्र स्वप्न में दर्शन कर, उसे सुख पूर्वक अपनी प्राण–प्रिया श्री सिद्धि कुँअरि जी को सुनाया। श्री सिद्धि कुँअरि जी ने वह चरित्र श्रवण कर, अपनी ननद श्री सीता जी की प्रशंसा की कि– आर्तिपूर्वक शरण में आये हुए जीवों पर दया करने वाली हमारी ननँद श्री सिया जू परम धन्या हैं।

सुमिरि सुमिरि सियराम सुभाऊ। दम्पति प्रेम मगन यश गाऊ ॥
कहहिं कुँअर धनि धनि चितकूटा। अनुपम सुयश जगत बिच लूटा ॥

श्री सीताराम जी के स्वभाव का स्मरण कर दम्पति (कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी और श्री सिद्धि कुँअरि जी) प्रेम में मग्न हो उनका यशोगान करने लगे। पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे प्रिये! श्री चित्रकूट गिरि धन्यातिधन्य है जिसने इस संसार में अनुपमेय व सुन्दर कीर्ति प्राप्त की है।–––

सप्त बड़े जग जो गिरि अहहीं। निशि दिन कामद यश सब कहहीं ॥
तैसहिं सप्त नदी हर्षाई। मन्दाकिनि यश कहहिं सुहाई ॥

–––इस संसार में जो सात महान पर्वत (महेन्द्राचल, व्यंकटाचल, गंधमादन, मन्दराचल, सुमेरु, हिमालय व नीलगिरि) हैं, वे रात–दिन श्री कामद गिरि चित्रकूट की कीर्ति का गायन करते रहते हैं, उसी प्रकार जो सात महान नदियाँ (श्री गंगा जी, श्री यमुना जी, श्री सरस्वती जी, श्री नर्मदा जी, गोदावरी जी, श्री कावेरी जी व श्री सिन्धु नदी) हैं वे हर्षित होकर श्री मन्दाकिनी जी की सुन्दर कीर्ति का गायन करती रहती हैं।–––

दो0– चित्रकूट मंदाकिनिहिं, वरणत सुर दिन रात।
अवध सुसरयू छोड़ि प्रभु, बसत जहाँ अरु न्हात ॥२७५॥

–––गिरि श्रेष्ठ श्री चित्रकूट जी और सरित् प्रवरा श्री मन्दाकिनी जी के महान यश का बखान देवता अहो–रात्रि करते रहते हैं क्योंकि धाम शिरोमणि श्री अयोध्यापुरी और सरित् शिरोमणि श्री

सरयू जी को छोड़ कर, जहाँ प्रभु श्री राम जी महाराज निवास और अवगाहन करते हैं।---

धन्य धन्य धनि गिरिवर वासी। जड़ चेतन सब आनँद रासी॥
पति मुख सुन सियराम कहानी। सिद्धि कुँअरि हिय अति हर्षानी॥

---गिरिवर श्री चित्रकूट जी के चेतन और जड़ सभी निवासी धन्यातिधन्य और आनन्द की राशि हैं। इस प्रकार अपने प्राण वल्लभ, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के मुख से श्री सीताराम जी के चरित्रों का श्रवण कर श्री सिद्धि कुँअरि जी हृदय में अत्यधिक हर्षित हुई।---

राजदूत जे आवत जाता। कहहिं आइ सब प्रभु कुशलाता॥
एक बार भूपति ढिंग आई। कहे दूत सिय राम भलाई॥

राज्य के वे दूत, जो श्री चित्रकूट गिरि आते-जाते रहते थे, आकर प्रभु श्री राम जी की सम्पूर्ण कुशलता सुनाया करते थे। एक बार वे राजदूत श्री जनक जी महाराज के समीप आकर श्री सीताराम जी कुशलता का वर्णन किये।---

परम प्रसन्न लखन सिय रामा। चित्रकूट राजत सुख धामा॥
मुनिन सभा नित होत सुहाई। भगति ज्ञान वैराग्य बढ़ाई॥

---हे महाराज! समस्त सुखों के धाम श्री सीताराम जी व श्री लक्ष्मण कुमार जी परम प्रसन्नतापूर्वक श्री चित्रकूट गिरि में निवास कर रहे हैं। वहाँ मुनियों की भक्ति, ज्ञान व वैराग्य विवर्धनकारी सुन्दर सभायें नित्य होती रहती हैं।---

दरशन करि सब शुचि सिय रामा। होंहि मगन मन मुनि निष्कामा॥
बाँके सिद्ध नाम मुनि एका। प्रभु पद नेह निधान विवेका॥

---यद्यपि सभी मुनिगण आ, आकर श्री सीताराम जी का परम पावन दर्शन कर मन मग्न और निष्काम हो जाते हैं तथापि श्री बाँके मुनि नामक एक सिद्ध मुनि हैं जो प्रभु श्री राम जी के चरणों के प्रेम के भण्डार तथा परम विवेक-वान है।---

दो0- सो नहिं आयो दरश हित, भाव भरेउ मति धीर।
कृपा सिन्धु इत आय मोहिं, दरश देहिं रघुवीर॥२७६॥

---वे परम धीर-बुद्धि मुनिवर श्री बाँके मुनि जी, इस प्रकार के मनोभावों से पूर्ण हो, प्रभु श्री राम जी महाराज के दर्शन के लिए नहीं आये कि- कृपा के सागर श्री राम जी महाराज मुझे यहीं (मेरी कुटिया में) आकर अपना दर्शन प्रदान करेंगे।---

रखिहैं आस मोर रघुराया। विरद गरीब निवाज सुभाया॥
भक्त हृदय कहँ जानन हारे। अवशि आइहैं गेह हमारे॥

---प्रभु श्री राम जी महाराज अवश्य ही मेरी इच्छा पूर्ण करेंगे क्योंकि उनका सुन्दर विरद सहज ही गरीबों की रक्षा करने वाला है। भक्तजनों के हृदय की जानने वाले वे प्रभु अवश्य ही हमारे निवास में आयेंगे।

एक दिवस भक्तन हितकारी। भाव वश्य रघुनाथ अपारी ॥
पूँछेउ बाँके सिद्ध मुनीशा। इहाँ वसत कोउ नययन दीशा ॥

तब एक दिन भक्तों की भावनाओं के अतिशय वशीभूत, भक्तों के हितकारी व रघुकुल के स्वामी, प्रभु श्री राम जी महाराज ने पूछा कि– श्री बाँके मुनि जी नाम के एक सिद्ध मुनिराज यहाँ निवास करते हैं। क्या, किसी ने अपने नेत्रों से उनका दर्शन किया है?

पूरब दिशा लोग बतराये। चले दरश हित राम सुभाये ॥
संग लखन सिय सुठि सुकुमारी। मुनिगन कोल भिल्ल मगकारी ॥

लोगों ने बताया कि– वे पूर्व दिशा में रहते हैं। तब श्री राम जी महाराज उनके दर्शन के लिए सहज ही चल दिये। उनके साथ श्री लक्ष्मण कुमार जी, परम सुन्दरी, कोमलाङ्गी सुकुमारी श्री सिया जू, मुनिगण तथा मार्ग के कोल व भील आदि भी चल पड़े।

बाँके सिद्ध सुनत प्रभु आवत। प्रेम विभोर पुलकि भल भावत ॥
निकसि कुटी अगुआनी हेता। चलेउ हृदय भरि शिष्य समेता ॥

मुनिवर श्री बाँके सिद्ध जी ऐसा सुनते ही कि– प्रभु श्री राम जी महाराज आ रहे हैं, प्रेम विभोर हो, सुन्दर पुलकित शरीर से उनकी अगुवानी करने के लिए, प्रेम मे सराबोर हृदय से अपने शिष्यों के साथ, कुटी से बाहर निकलकर चल दिये।

दो0– नृत्यत गावत हुलसि हिय, कीर्तन सीता राम।
प्रभु स्वभाव सुमिरत मुनी, भूलत निज तन धाम ॥२७७॥

वे मुनि श्रेष्ठ आनन्दित हृदय नाचते गाते हुए श्री सीताराम संकीर्तन करते तथा प्रभु श्री राम जी महाराज के स्वभाव का स्मरण कर अपने शरीर व धाम की स्मृति भूल जाते हैं।

छं0– प्रभु प्रीति सुमिरत प्रेम पगि, भूलत दशा निज देह की।
जल नयन ढारत हर्ष अति, सोचत हृदय गति नेह की ॥
मम नाथ यज्ञ स्वरूप जो, यज्ञेश यग भुक श्रुति कहैं।
मन वेद वाणी पार अज, अविगत अलख इकरस रहैं ॥

मुनिवर श्री बाँके सिद्ध जी श्री राम जी महाराज की प्रीति का स्मरण करते ही प्रेम में पगकर शरीर स्मृति भूल जाते हैं तथा हर्षातिरेक के कारण उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं। वे 'प्रेम की महानता' का अपने हृदय में विचार करने लगते हैं कि–अहा! यज्ञ स्वरूप मेरे स्वामी, जिन्हें श्रुतियाँ यज्ञेश और यज्ञ–भोक्ता कहती हैं, मन, वेद और वाणी के परे, जन्म न धारण करने वाले (अयोनिज), जाने व समझे न जा सकने वाले तथा सदैव एक–रस रहने वाले हैं।–––

मम गृहहिं सो जग ईश आवत, बन अतिथि धनि भाग मम।
विधि शम्भु विष्णू सेव्य जो, मम करन पूजा लेहिं नम ॥

लखि श्याम सुन्दर गात शुभ, सीता लखन युत आज मैं।
धनि धन्य होइहौं लोक मधि, हर्षण कृपा प्रभु पाय मैं॥

———वही सम्पूर्ण संसार के ईश्वर मेरी कुटी में मेरे अतिथि बनकर आ रहे हैं। मेरा सौभाग्य धन्य है। जो प्रभु, श्री ब्रह्मा जी, श्री शंकर जी और श्री विष्णु जी के भी सेव्य (वे सभी जिनकी सेवा करते हैं) हैं, वही प्रभु श्री सीताराम जी विनम्रता पूर्वक आज मेरे हाथों से पूजन और प्रणाम स्वीकार करेंगे। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि— श्री बाँके मुनि जी विचार कर रहे हैं, अहा! आज मैं, श्री सीता जी और श्री लक्ष्मण कुमार के साथ श्री राम जी महाराज के सुन्दर श्याम वर्ण वाले शुभग शरीर का हर्ष पूर्वक दर्शन करूँगा तथा उनकी कृपा प्राप्त कर संसार में धन्यातिधन्य हो जाऊँगा।

सो0—यहि विधि करत विचार, प्रेम मगन बाँके मुनी।
श्रवत हृदय रस धार, सुमिरि सिया रघुनाथ कहँ॥२७८॥

इस प्रकार मुनिवर श्री बाँके सिद्ध जी प्रेम में मग्न हो विचार कर रहे थे तथा श्री सीताराम जी का स्मरण कर उनके हृदय में प्रेम रस की धारा प्रवाहित हो रही थी।

नेह विवश कहुँ गिर भुइँ परहीं। डगमग चलत पैर लरखरहीं॥
शिष्य सँभारत तिन कहँ जाहीं। मुनिवर छके प्रेम पथ माहीं॥

कभी वे प्रेम के वशीभूत हो भूमि में गिर पड़ते हैं तो कभी डगमगाते हुए चलने लगते हैं, उनके पैर लड़खड़ा रहे हैं, यद्यपि उनके शिष्य उन्हें सम्हाल रहे हैं तथापि मुनिराज श्री बाँके सिद्ध जी तो प्रेम—मार्ग में मतवाले हुए चल रहे थे।

सात्विक भाव उदय भे सिगरे। वरषहिं सुमन देव रँग रँगरे॥
रघुपति लखे मुनीशहिं आवत। प्रेम मत्त नाचत अरु गावत॥

उनके शरीर में सभी सात्विक भाव प्रगट हो गये थे। श्री बाँके मुनि जी को प्रेम रंग में रँगे हुए देखकर देवता पुष्पों की वरषा कर रहे थे। श्री राम जी महाराज ने देखा कि— श्री बाँके मुनि जी प्रेमोन्मत्त हो नाचते—गाते हुए आ रहे हैं।

सहित लखन सियराम सुजाना। भये मगन लखि भक्त महाना॥
देखि राम छवि मुनि हरषाने। जाइ गिरे चरणन लिपटाने॥

तब श्री सीता जी और श्री लक्ष्मण जी के सहित सर्वज्ञ श्री राम जी महाराज अपने महान भक्त को देखकर मन मग्न हो गये तथा मुनिवर श्री बाँके सिद्ध जी श्री राम जी महाराज की छवि को देख, हर्षित हो उनके समीप जाकर, प्रभु चरणों से लिपट गये।

तुरत उठाय राम हिय लाई। दीन्हे नेह नीर नहवाई॥
पुनि मुनि सिया चरण गहि लीन्ही। सकुचि मनहिं सोउ आशिश दीन्ही॥
लछिमन चरण नाय पुनि माथा। चलेउ लिवाय कुटिहिं रघुनाथा॥

उस समय श्री राम जी महाराज ने श्री बाँके सिद्ध जी को शीघ्र उठा, हृदय से लगाकर अपने प्रेमाश्रुओं से अवगाहन करा दिया। पुनः श्री बाँके मुनि जी नें श्री सीता जी के चरणों में लिपटकर प्रणाम किया तब मन में संकुचित होकर उन्होंने आशीर्वाद दिया। तदनन्तर श्री लक्ष्मण कुमार जी के चरणों में शिर झुका प्रणामकर श्री बाँके मुनि जी श्री राम जी महाराज को अपनी कुटी में ले चले।

दो0– पावन आश्रम आनि कर, मुनिवर अति हर्षाय ।
पाद्यादिक दै सविधि पुनि, पूजेउ अश्रु बहाय ॥२७९॥

श्री बाँके सिद्ध मुनि जी ने अपने पवित्र आश्रम में प्रभु को पधराकर पाद्यादि निवेदन किया। पुनः उन्होनें प्रेमाश्रु प्रवाहित करते हुए प्रभु की सविधि पूजा की।

रिषयन पूजा पुनि तेहिं कीन्ही । कुशल प्रश्न पूँछेउ रस भीनी ॥
कोल भिल्ल आदिक सनमाने । कहि प्रिय बचन भाव शुचि आने ॥

तदनन्तर उन्होंने समागत ऋषियों की पूजा की तथा रससिक्त हो कुशल प्रश्न पूछा। श्री बाँके सिद्ध मुनि जी ने प्रभु के साथ आये हुए कोल व भील आदि का भी पवित्र भाव पूर्वक प्रिय वचनों से सन्मान किया।

कन्द मूल फल अरपित कीन्हा । पाये सब समाज प्रभु लीन्हा ॥
करि विश्राम बैठ सब कोई । पानि जोरि बोले मुनि सोई ॥

तदुपरान्त श्री बाँके मुनि जी ने कन्द मूल व फल आदि पाने के लिए अर्पित किया जिसे ससमाज प्रभु श्री राम जी महाराज ने ग्रहण किया। पुनः सभी जन आराम करने के उपरान्त जब बैठे तब श्री बाँके मुनि जी हाथों को जोड़ कर बोले–––

सब विधि नाथ मोहि अपनायो । सत्य कियो निज विरद सुहायो ॥
कहँ मैं कहँ प्रभु दीन दयाला । निज प्रण प्रणत पाल प्रभु पाला ॥

–––हे नाथ! आज, आपने मुझे सभी प्रकार से अपना कर अपने सुन्दर विरद को सत्य कर दिया है। कहाँ मैं, और कहाँ दीनों पर दया करने वाले प्रभु श्री राम जी महाराज आप? हे प्रभु! आपने आज आश्रित जन रक्षण व्रत का परिपालन किया है।–––

प्रेमाभक्ति देहु अब मोही । पावौं सेवा बिना विछोही ॥
कीर्तन कथा नाम तब छाकी । प्रेमिन संग सदा बुधि बाँकी ॥

–––अब आप मुझे अपनी प्रेमा–भक्ति प्रदान कीजिए जिससे मैं अबाधित रूप से आपकी सेवा प्राप्त कर सकूँ। आपके कीर्तन, कथा व नाम में मेरी बुद्धि छकी रहे तथा मुझे सदैव आपके प्रेमियों का संग प्राप्त होता रहे।–––

दो0– और न चाहिय नाथ कछु, सब विधि करहु अकाम ।
द्वार पड़े दरशन करत, तुमहिं लखौं सब ठाम ॥२८०॥

हे नाथ! मुझे अब और कुछ भी नहीं चाहिये, मुझे आप सभी प्रकार से कामनाओं से विहीन कर

दीजिए। मैं मात्र आपके दरवाजे में पड़ा, आपका दर्शन करता हुआ सभी स्थानों में आपका ही दर्शन करूँ।

सीता सह प्रभु दूनहु भाई । बसे रहहु नित हिय महँ आई ॥
एवमस्तु कहि रघुकुल वीरा । बोले बचन सुखद गम्भीरा ॥

श्री सीता जी के साथ आप दोनों भाई मेरे हृदय में आकर नित्य निवास किये रहें। 'ऐसा ही होगा' कह कर, रघुकुल के वीर श्री राम जी महाराज सुख प्रदायक गंभीर बचन बोले---

कस न कहहु अस मुनिवर ज्ञानी । जानन योग्य लीन्ह सब जानी ॥
पावन योग्य सबहिं तुम पाये । बाँके सिद्ध नाम सत भाये ॥

---हे परम ज्ञानवान मुनि श्रेष्ठ! आप ऐसा क्यों न कहें? क्योंकि आपको सभी जानने योग्य का (ज्ञातव्य) ज्ञान हो गया हैं तथा सभी प्राप्त करने योग्य (प्राप्तव्य) को आपने प्राप्त कर लिया है इस प्रकार आपने अपने नाम 'बाँके सिद्ध' को सत्य कर लिया है।---

सुन सुन यश नित पावन तोरा । दरश आस मोहि बढ़ी अथोरा ॥
पायउँ आज दरश मुनि राई । सोइ देखा जो सुना सुहाई ॥

---आपका पवित्र यश नित्य श्रवण कर, मुझे आपके दर्शन की अत्यधिक त्वरा ने वरण कर लिया था अतः हे मुनिराज! आज मैंने आपके दर्शन प्राप्त किये तथा आपके सम्बन्ध में मैने जिस प्रकार श्रवण किया था उसी प्रकार ही सुन्दर आपको पाया है।---

पूत भयो मुनि दरशन तोरे । आश्रम जान होय रुचि मोरे ॥
प्रभु मुख सुनि मुनिवर वर वानी । बहु विधि स्तुति कीन्ह सुहानी ॥

---हे मुनिराज जी! आपके दर्शन प्राप्त कर मैं पवित्र हो गया। अब अपने आश्रम जाने की मेरी इच्छा हो रही है। प्रभु श्री राम जी महाराज के मुख विनिश्रित सुन्दर वचनों को श्रवण कर श्री बाँके मुनि जी ने उनकी बहुत प्रकार से सुन्दर स्तुति की।

दो0– प्रभु साथहिं निज चलन कह, कामद दरशन हेत ।
कृपा सिन्धु लै साथ तेहिं, आये परण निकेत ॥२८१॥

श्री बाँके सिद्ध मुनि जी ने प्रभु श्री राम जी महाराज के साथ श्री कामद गिरि चित्रकूट के दर्शन हेतु स्वयं चलने की इच्छा प्रगट की, तब कृपा के सागर श्री राम जी महाराज उन्हें साथ लेकर अपनी पर्ण–कुटी में आ गये।

यहि प्रकार प्रभु कामद राजहिं । मुनिन हिये करि ठाँव सुभ्राजहिं ॥
मुनिवर अभय करहिं नित नेमा । योग योग ब्रत साधन क्षेमा ॥

इस प्रकार मुनियों के हृदय में अपना निवास बनाकर प्रभु श्री राम जी महाराज कामद गिरि श्री चित्रकूट जी में निवास करते हुए सुशोभित हो रहे हैं तथा सभी मुनिगण निर्भय होकर नित्य प्रति अपने नियम, अनुकूल योग, व्रत व साधन कुशलता पूर्वक कर रहे हैं।

बैर विगत सब बनचर जीवा। चित्रकूट रह सुखी अतीवा ॥
मिथिला अवध भाग्य मिलि एकी । कामद गिरि महँ बसी सुटेकी ॥

सभी वन्य प्राणी श्री चित्रकूट गिरि में पारस्परिक शत्रुता भूलकर अत्यन्त सुखी हो निवास कर रहे हैं। श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी दोनों पुरियों का सौभाग्य व वैभव एक साथ मिलकर कामदगिरि श्री चित्रकूट में दृढ़ता पूर्वक निवास कर रहा है।

यहिं विधि सुधि पुर दूत बताई । सुनत भूप सुख शोकहिं छाई ॥
कुँअरहुँ हिय नित प्रेम प्रवाहा । बढ़े चरित सुनि सुनि सिय नाहा ॥

इस प्रकार का समाचार नगर के राजदूत ने बताया जिसे सुनकर श्री जनक जी महाराज सुख और शोक में निमग्न हो गये। श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि हे श्री हनुमान जी! श्री सीता वल्लभ जू के चरित्रों को सुन सुनकर, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में प्रेम का प्रवाह नित्य ही, बृद्धिंगत होता रहता था।

चित्रकूट अरु मिथिला माहीं । भाम श्याल कर दोउ तप काहीं ॥
यदपि रहत इक एक ते दूरी । तदपि प्रेम धारा भरि पूरी ॥

इस प्रकार श्री चित्रकूट गिरि और श्री मिथिलापुरी में, भाम और श्याल श्री राम जी महाराज तथा श्री लक्ष्मीनिधि जी दोनो तपस्या कर रहे थे। यद्यपि वे एक दूसरे से दूर निवास कर रहे थे तथापि उनके बीच प्रेम का अजस्र प्रवाह पूर्ण रूपेण प्रवाहित होता रहता था।

दो0– नित नित बाढ़त नेह नव, कहि न जाय हनुमान ।
श्याल भाम रस रसिक दोउ, एक एक धन धाम ॥२८२॥

हे श्री हनुमान जी! उन भाम और श्याल श्री राम जी महाराज तथा श्री लक्ष्मीनिधि जी में नित्य प्रति नवीन प्रेम बृद्धिंगत होता जाता था जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता तथा वे परस्पर रस व रसिक दोनों एक दूसरे के धन और धाम बने हुए थे।

छं0– सुनि प्रेम पूरण भरत कर, प्रभु प्रेम पावहिं जग नरा ।
वर त्याग अरु लहि पर विरति, परमार्थ पथ होवहिं खरा ॥
लक्ष्मीनिधिहुँ शुचि प्रेम सुनि, होवै रसोदय बीच उर ।
सिय राम नययन बनि पुतरि, हर्षण लहैं आनन्द फुर ॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– श्री भरत लाल जी के पूर्ण प्रेम को श्रवण कर जगत जन प्रभु श्री राम जी महाराज का प्रेम प्राप्त करेंगे, उनके सुन्दर त्याग व श्रेष्ठ वैराग्य को ग्रहण कर परमारर्थ मार्ग के सच्चे पथिक हो जायेंगे। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के पवित्र प्रेम को श्रवण कर तो उनके हृदय में रस का प्राकट्य ही हो जायेगा तथा वे श्री सीताराम जी के नेत्रों की पुतली (अतिशय प्रिय) बनकर शाश्वत आनन्द को प्राप्त करेंगे।

सो0–सीय राम नित धाम, चित्रकूट मिथिला अवध ।
विहरहिं पूरण काम, हर्ष शोक सुख दुख परे ॥२८३॥

श्री चित्रकूट जी, श्री मिथिला पुरी व श्री अयोध्या पुरी, श्री सीताराम जी के नित्य धाम हैं जहाँ हर्ष, शोक, सुख और दुख से परे पूर्ण–काम प्रभु श्री सीताराम जी नित्य विहार करते हैं।

श्लोक– चित्रकूट मनुप्राप्तौ, सीतारामौ सुभक्तितः ।
चित्रकूटाभिधं काण्डमर्पयामि प्रमोदतः ॥

कामद गिरि श्री चित्रकूट जी में शाश्वत प्राप्त होने वाले श्री सीताराम जी महाराज को श्री चित्रकूट नामक यह काण्ड सुन्दर भक्ति व आनन्द पूर्वक समर्पित है।

इति श्री मद् प्रेम रामायणे, प्रेम रस वर्षणे, जन मानस हर्षणे,
सकल कलि कलुष विध्वंसने चित्रकूटो नाम
तृतीयः काण्ड ।।

श्री मद् प्रेम रामायण जी का यह प्रेमानन्द वर्षण कारी, सर्व जन हृदय हर्ष वितरण कारी तथा सकल कलि कालुष्य विध्वंसन कारी चित्रकूट नाम का तीसरा काण्ड समाप्त हुआ।

चित्रकूट काण्ड समाप्त

ॐ नमः श्री सीतारामाभ्यां

॥अथ श्री प्रेम रामायण॥

卐 श्री वन विरह काण्ड 卐

श्लोक– विरहेण समासक्तौ, सीतारामौ परात्परौ ।
सौमित्र वायु पुत्राभ्यां, बोध मानौ नमाम्यहं ॥१॥

अपने स्वजनों (श्री अयोध्यापुरी व श्री मिथिलापुरी) के वियोग में आसक्त हुए परात्पर श्री सीताराम जी को शान्त्वना प्रदान करने वाले सुमित्रा नन्दन श्री लक्ष्मण कुमार जी और पवन नन्दन श्री हनुमान जी को मैं नमन करता हूँ।

हनूमल्लक्ष्मणौ धीरौ, बन्देऽहं करुणाकरौ ।
याभ्यामाश्वासितौ युग्मौ, सीतारामौ वियोगिनौ ॥२॥

परम धीर व करुणाकर श्री हनुमान जी और श्री लक्ष्मण कुमार जी की मैं वन्दना करता हूँ जिनके द्वारा श्री सीताराम जी के विरही भक्त जनों को शान्त्वना प्राप्त होती रहती है।

श्री सीताग्रज कैकेय्यो, राम प्रेमातुरौ सदा ।
विरहेण तदाकारौ, वन्देऽहं मनसा गिरा ॥३॥

श्री सीता जी के अग्रज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी तथा कैकई नन्दन श्री भरत लाल जी की मैं मन और वचन से वन्दना करता हूँ, जो सदैव श्री राम जी महाराज के प्रेम में आतुर व वियोग में तदाकार बने रहते हैं।

सो०–राम विरह रस सार, जा घट जनमेउ प्रभु कृपा ।
अकथ अगाध अपार, लहहिं सुखद सहचर्य सो ॥

श्री राम जी महाराज का रससार स्वरूप 'वियोग' प्रभु कृपा से जिसके हृदय में उत्पन्न हो गया है वही श्री राम जी महाराज का अवर्णनीय, अगाध व असीम सुखप्रद साहचर्य प्राप्त करता है।

जेहिं विधि चित्रकूट भगवाना । बसहिं सुनायों सो हनुमाना ॥
मिथिला कुँअर अवध प्रभु भ्राता । जेहिं विधि बसे विरह रसराता ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि– हे श्री हनुमान जी! परम ऐश्वर्यवान श्री सीताराम जी जिस प्रकार श्री चित्रकूट गिरि में निवास कर रहे थे वह चरित्र मैने आप को सुना दिया तथा श्री मिथिलापुरी में कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी और श्री अयोध्यापुरी में प्रभु श्री राम जी महाराज के अनुज श्री भरत जी जिस प्रकार प्रभु वियोग में समाये हुए निवास कर रहे थे।–––

सो सब कहा सूक्ष्म समुझाई । आगिल दशा सुनहु मन लाई ॥
राम विरह जस दिन अरु राती । रहहिं विभोर कुँअर विलपाती ॥

———वह सम्पूर्ण चरित्र मैंने सूक्ष्मतया आपको समझाकर, बखान किया है अब आप आगे की स्थितियों को एकाग्र चित्त होकर श्रवण कीजिये कि— श्री राम जी महाराज के वियोग में कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अहो—रात्रि जिस प्रकार विभोर हुए विलाप करते रहते थे।

एक दिवस एक सेवक आवा । जो सुधि सीय राम की लावा ॥
करि प्रणाम भूपति सों भाषा । गद् गद् गिरा प्रेम रस चाखा ॥

एक दिन एक सेवक श्री मिथिलापुरी आया जो श्री सीताराम जी का समाचार लेकर आया था। उसने श्री जनक जी महाराज को प्रणाम किया तथा गद्गद वाणी से प्रेमानन्द परिपूर्ण हो कहा———

सुनु विदेह रघुवीर सुजाना । एकान्तिक प्रिय परहित साना ॥
मिथिला अवध भीर नित जाती । बहुरति बहुरि प्रेम रस माती ॥

———हे श्री विदेह राज जी महाराज! सुनिये, सर्वज्ञ श्री राम जी महाराज एकान्त प्रिय और परहित में सदा संलग्न रहने वाले हैं। परन्तु श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी का समाज वहाँ पहुँचता रहता है तथा प्रेमानन्द में मतवाला हो पुनः वहाँ से लौट आता है।

दो0— चित्रकूट वर देशहूँ, जन नित आवत जात ।
अधिक अधिक बढ़ भीर प्रभु, दरश प्यास अकुलात ॥१॥

———उसी प्रकार श्री चित्रकूट प्रान्त का जन समुदाय भी श्री राम जी के समीप नित्य ही आता—जाता रहता था, इस प्रकार प्रभु दर्शन की प्यास से व्याकुल हुआ जन—समूह अधिकाधिक बृद्धि को प्राप्त होता जा रहा था।———

कीन्ह बिचार राम मन माहीं । यहाँ रहब अब मोहिं भल नाहीं ॥
औरहु मुनिन दरश के हेता । जावहुँ तिन थल प्रीति समेता ॥

———अतएव श्री राम जी महाराज नें अपने मन में विचार किया कि— यहाँ (चित्रकूट में) रहना अब मेरे लिए उत्तम नहीं है, अब मैं प्रेम पूर्वक अन्य मुनियों के दर्शन के लिए उनके आश्रमों को जाऊँगा।———

करि प्रवेश दण्डक बन भाई । देखिहौं तासु मनोहरताई ॥
जेहिं विधि सुर मुनि सेवा होई । करिहौं हरषि कार्य तहँ सोई ॥

———मैं अब दण्डक—वन में जाकर उसकी सुन्दरता (मनोहारिता) का दर्शन करूँगा तथा जिस प्रकार से देवताओं और मुनियों की सेवा हो, मैं वहाँ, हर्षित होकर वही कार्य करूँगा।———

अस विचारि सिय लखनहिं रामा । पूँछेउ प्रेम पगे सुख धामा ॥
लहि सम्मति हरषित रघुराया । मुनिन पूँछि पद शीश झुकाया ॥

———ऐसा विचार कर सुख के धाम श्री राम जी महाराज नें श्री सीता जी व श्री लक्ष्मण कुमार से इस कार्य की सहमति माँगी। अनन्तर उनकी सहमति पाकर हर्षित हो श्री राम जी महाराज नें मुनियों से आज्ञा प्राप्त की व उनके चरणों में शिर झुका प्रणाम किया।———

आशिष पाइ सिया रघुवीरा । सहित लखन बन चले गंभीरा ॥
जहँ वसत अत्री अनुसुइया । गये हरषि तहँ रघुकुल रइया ॥
मुनिहिं प्रणमि लहि आशिष रामा । अनुसुइयहिं मिलि किय विश्रामा ॥

–––मुनिगणों की शुभाशीष प्राप्त कर श्री सीताराम जी श्री लक्ष्मण कुमार जी के साथ गहन (भयावह) वन को चल दिये। परम श्रेष्ठ मुनि श्री अत्रि जी और श्री अनुसुइया जी जहाँ निवास कर रहे थे, रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज हर्षित होकर वहाँ गये। श्री राम जी महाराज ने मुनि श्रेष्ठ श्री अत्रि जी को प्रणाम कर आशीर्वाद प्राप्त किया पुनः वे श्री अनुसुइया जी से मिलकर विश्राम किये।–––

दो0– राम दरश लहि अत्रि मुनि, आनँद मगन विभोर।
भाग निरखि बड़ि आपनी, निरखत चन्द्र चकोर ॥२॥

–––श्री राम जी महाराज का दर्शन प्राप्त कर श्री अत्रि मुनि जी आनन्द में मग्न और प्रेम विभोर हो गये, वे अपने सौभाग्य को देखकर प्रभु श्री राम जी महाराज के मुख चन्द्र को चकोर बने निहारने लगे।–––

लहि आतिथ्य कछुक दिन बासा । कीन्हे राम सुप्रेम प्रकाशा ॥
मुनि पतनी सीतहिं सनमानी । दिव्य वसन भूषण दिय आनी ॥

–––श्री राम जी महाराज ने कुछ दिन उनके निवास में रुक कर प्रेम पूर्वक श्री अत्रि जी का आतिथ्य ग्रहण किया। मुनि पत्नी श्री अनुसुइया जी नें श्री सीता जी का सन्मान किया तथा उन्हें दिव्य वस्त्र और आभूषण प्रदान किये।–––

करि प्रणाम सिय लछिमन रामा । गवन किये आगे मति धामा ॥
जहँ जहँ आश्रम मुनियन केरे । जात मुदित मन कृपा के प्रेरे ॥

–––इस प्रकार उन्हें प्रणाम कर श्री सीता जी, श्री लक्ष्मण कुमार जी व बुद्धि के परमागार श्री राम जी महाराज आगे प्रस्थान किये। वहाँ, जहाँ भी मुनियों के आश्रम थे श्री राम जी महाराज अपनी कृपा से प्रेरित हो प्रसन्नमना वहाँ जाते थे।

राक्षस एक मिलेउ मग माहीं । नाम विराध हतेउ प्रभु ताही ॥
उत्तम गति दे ताहिं कृपाला । शरभँग मुनि पहँ गे जनपाला ॥

मार्ग में उन्हें एक विराध नाम का राक्षस मिला, प्रभु श्री राम जी महाराज ने उसका वध कर दिया तथा उन कृपामय नें उसे उत्तम गति प्रदान की। पुनः निज जन प्रतिपालक प्रभु श्री राम जी महाराज श्री शरभंग मुनि के आश्रम गये।

प्रभु दरशन करि मुनि शरभंगा । भयो विभोर राम रस रंगा ॥
प्राकृत देह दीन्ह तहँ छोरी । दिव्य देह गो धाम बहोरी ॥

श्री मुनि शरभंग जी प्रभु श्री राम जी महाराज का दर्शन कर श्री रामजी महाराज के प्रेम की

रसानुभूति में विभोर हो गये तथा अपने प्राकृत शरीर को वहीं छोड़ कर वे पुनः दिव्य शरीर से भगवान के धाम को चले गये।

दो0– तासु प्रेम लखि देव सब, वरषे सुमन अपार ।
जय जय कहि दुन्दुभि हने, करहिं प्रशंसा झार ॥३॥

उनके प्रेम को देखकर देवताओं ने पुष्पों की असीम वरषा की, जयनाद करते हुए दुन्दुभी बजाई और उनकी अत्यधिक प्रशंसा किये।

धनि धनि मुनिवर प्रेम स्वरूपा । राम दरश लहि अकथ अनूपा ॥
प्रेम विभोर त्यागि निज देही । दिव्य धाम लिय सेव सनेही ॥

हे प्रेम स्वरूप मुनि श्रेष्ठ! आप धन्याति धन्य हैं, आपने प्रभु श्री राम जी महाराज का अवर्णनीय तथा अनुपमेय दर्शन प्राप्त किया है तथा उनके प्रेम में विभोर होकर, अपने शरीर को त्याग, दिव्य साकेत धाम में, प्रेम पूर्वक आपने प्रभु सेवा ग्रहण की है।

पुनि प्रभु गये सुतीक्षण पासा । जो सियराम अनन्य उपासा ॥
नृत्यत गावत प्रेम विभोरी । लखि मुख सुखद किशोर किशोरी ॥

पुनः श्री राम जी महाराज श्री सुतीक्षण जी के समीप गये जो श्री सीताराम जी के अनन्य उपासक थे। श्री सुतीक्षण मुनि जी सुख प्रदायक कौशिल्या किशोर श्री राम जी महाराज एवं सुनैना किशोरी श्री सिया जू को देखकर नाचते गाते हुए प्रेम विभोर हो गये।

स्वागत करन देह सुधि नाहीं । मुरछि परेउ रघुपति पद माहीं ॥
राम उठाय ताहि हिय लाई । परशि परशि तन चेत कराई ॥

श्री राम जी महाराज का स्वागत करने की उनके शरीर में स्मृति नहीं थीं। वे मूर्छित होकर श्री राम जी महाराज के चरणों में गिर पड़े। तब श्री राम जी महाराज ने उन्हें उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और उनके शरीर का स्पर्श कर चैतन्यता प्रदान की।

प्रेम मत्त मुनिवर धरि धीरा । गयो लिवाय पवित्र कुटीरा ॥
करि सतकार जानि भल भागा । वारि बहावत अति अनुरागा ॥

प्रभु–प्रेम में मतवाले हुए मुनिवर श्री सुतीक्षण जी धैर्य धारण कर श्री राम जी महाराज को अपनी पवित्र कुटिया ले गये, वहाँ अपना सौभाग्य समझ कर अत्यन्तानुराग पूर्वक नेत्रों से प्रेमाश्रु बहाते हुए उनका सत्कार किये।

दो0– प्रेम विवश मुनिवर कियो, लखन सीय रघुराय ।
राखेउ कछु दिन आश्रमहिं, करि आपन चित चाय ॥४॥

श्री लक्ष्मण कुमार, श्री सीता जी और श्री राम जी महाराज को श्री सुतीक्षण मुनि जी ने अपने प्रेम के वशीभूत कर प्रसन्न चित से अपने आश्रम में कुछ दिन तक रखा।

स्तुति करि मुनि विविध प्रकारा । प्रेमा भक्ति लीन्ह सुख सारा ॥
दरश परश कैंकर्य अनूपा । माँगि लियो नित्त सहज सरूपा ॥

परम प्रभु श्री राम जी महाराज की विभिन्न प्रकार से स्तुति कर श्री सुतीक्षण मुनि जी ने सभी सुखों की सारभूता प्रेमा–भक्ति तथा उनका दर्शन, स्पर्श व सहज स्वरूपानुरूप नित्य अनुपमेय कैंकर्य माँग लिया।

राम लखन सिय साथहि माहीं । गये सुतीक्षण निज गुरु पाहीं ॥
मुनि अगस्त रघुनाथहिं देखी । नयन सुफल जाने जिय लेखी ॥

पुनः श्री सुतीक्षण मुनि जी श्री राम जी महाराज, श्री सीता जी और श्री लक्ष्मण कुमार जी के साथ अपने गुरुदेव श्री अगस्त जी के समीप गये। रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज का दर्शन कर, अपने हृदय में मुनिश्रेष्ठ श्री अगस्त जी ने स्वयं को नेत्रवन्त समझ लिया।

सीय लखन युत रघुवर रामा । कीन्ह प्रणाम शील सुख धामा ॥
प्रेम पूर्ण मुनि लीन्ह उठाई । राखे रामहिं हिय छपकाई ॥

महान शील और सुख के धाम रघुनन्दन श्री राम जी महाराज ने श्री सीता जी और श्री लक्ष्मण कुमार जी के सहित मुनिश्रेष्ठ श्री अगस्त जी को प्रणाम किया। मुनिवर श्री अगस्त जी ने प्रेमपरिपूर्ण हो उठाकर श्री राम जी महाराज को हृदय से लगा लिया।

शीष सूँघि आशिष पुनि दीन्हे । राम लखन सिय आतिथ कीन्हे ॥
आश्रम सुभग अगस्त्य सुहावा । अबलौं बसत राम सुख छावा ॥
चित्रकूट ऋषियन मुख तेरे । राम चरित जस सुने सो टेरे ॥

पुनः मुनिश्रेष्ठ श्री अगस्त जी ने श्री राम जी महाराज का शिर सूँघ कर आशीर्वाद दिया और श्री सीताराम जी व श्री लक्ष्मण कुमार जी का स्वागत सत्कार किया। दूत ने कहा कि– अभी तक, श्री राम जी महाराज सुख पूर्वक श्री अगस्त्य जी के अत्यन्त सुन्दर और सुहावने आश्रम में निवास कर रहे हैं। हे श्री महाराज! हमने श्री चित्रकूट पर्वत में ऋषियों के मुख से, श्री राम जी महाराज का जैसा चरित्र सुना था, उसे आपको सुना दिया।

दो0– निज नयनन देखे नहीं, सब विधि परम अभाग ।
प्रविशे वन बेहड़ दुखद, कठिन सुधिहुँ अब लाग ॥५॥

हे श्री महाराज! हमारा दुर्भाग्य है कि– हमने श्री सीताराम जी का अपने नेत्रों से दर्शन नहीं प्राप्त किया। हमारे सर्वस्व ऐसे अत्यन्त दुखप्रद व घने वन में प्रवेश कर गये हैं कि– अब उनका समाचार मिलना भी अत्यन्त कठिन हो गया है।

कम्पत बदन नयन बह आँसू । चुपहि रहेउ सो हृदय हरासू ॥
विन्ध्य पृष्ठ चढ़िगे बहु दूरी । राम लखन सब आशा तूरी ॥

हे महाराज! प्रभु श्री राम जी व लक्ष्मण कुमार विन्ध्याचल पर्वत की पहाड़ियों में चढ़ते हुए हम लोगों की सम्पूर्ण आशाओं को तोड़ कर बहुत दूर चले गये हैं। ऐसा कहकर उस दूत का शरीर काँपने

लगा तथा नेत्रों से अश्रु बहाते हुये वह हृदय में अत्यन्त दुखी हुआ चुप हो गया।

प्रेम विवश जल्पत निमिराऊ। कठिन खवरि मिलिबो रघुराई॥
जो नहिं कामद आते जाते। मिथिला अवध लोग रति राते॥

देत के बचनो का श्रवण कर प्रेम के विवश हो निमिराज श्री जनक जी प्रलाप करने लगे कि– हाय! अब श्री रघुनन्दन जू का समाचार मिलना भी दुर्लभ हो जायेगा। यदि श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी के निवासी उनके प्रेम में अनुरक्त हुए श्री कामदगिरि नहीं आते–जाते–––

तौ नहिं अनत जात रघुराई। चित्रकूट बसते सुखछाई॥
मन उकताय दूर बन देशा। गहन दुखद महँ कीन्ह प्रवेशा॥

–––तो श्री राम जी महाराज अन्यत्र नहीं जाते और श्री चित्रकूट में ही सुखपूर्वक निवास करते। वे मन में ऊब कर ही दूर, घने व दुख प्रदायक वन–प्रदेश में प्रवेश किये हैं।

सो सब दोष मोर सत अहई। या महँ संशय नेक न गहई॥
प्रीति विवश सुधि लेवन हेता। रहे पठावत दूत अचेता॥

श्री राम जी के गहन वन जाने में, सत्य ही मेरा दोष है, इसमें किंचित संदेह का स्थान नहीं है। मैं ही उनके प्रीति परवश हो, समाचार लेने हेतु, अधीर हो कर दूत भेजता रहा हूँ।

दो0– भीर देखि रघुनाथ प्रिय, ह्वै उदास मन माहिं।
छोड़िं दियो कामद गिरिहिं, सुख दुख परे सो आहिं॥६॥

अतः सुख–दुख से परे, सर्व–प्रिय, रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज ने नर–नारियों की भीड़ देखकर ही उदास मन से श्री कामदगिरि का त्याग कर दिया है।

दशरथ राउ दियो वनवासा। बन सो बन मैं कियो उदासा॥
कोमल कमल अमल अरुणारे। चरण राम सिय भये दुखारे॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने तो उन्हें मात्र बनवास ही दिया था परन्तु मैं तो उन्हे वन से अन्य गहन वन में भेज कर अधिक उदास कर दिया। मेरे इस कृत्य से कोमल, निर्मल, अरुण वर्ण के चरण कमलों से संयुक्त श्री सीताराम जी अत्यन्त ही दुखी हुए हैं।

विरह विवश नृप नयन बहाई। मुरछि परे महि सुधि बिसराई॥
बहुरि चेत लै अन्तःवासा। जाय भूप सब चरित प्रकासा॥

श्री जनक जी महाराज श्री सीताराम जी के विरह के वशीभूत हो नेत्रों से अश्रु बहाते हुए सुध–बुध भूलकर चेतनाहीन हो भूमि में गिर पड़े। पुनः स्मृति से युक्त हो अन्तःपुर में जाकर श्री राम जी का सम्पूर्ण चरित्र कह सुनाये।

सुनत सुनैना भई दुखारी। सोचत शोक दाह उर भारी॥
कहि कहि श्यामा श्याम अचैना। प्रलपति आह भरे मुख बयना॥

जिसे सुनते ही अम्बा श्री सुनैना जी अत्यन्त दुखी हो गयी तथा गम्भीर वन के दुखों का

चिन्तन कर उनके ह्रदय में शोकाग्नि का ताप अत्यधिक वृद्धि को प्राप्त हो गया। तब वे हे श्याम सुन्दर रघुनन्दन श्री राम जी महाराज व हे श्यामा किशोरी लाड़िली श्री सिया जू कह कहकर दुखी हो, मुख से आह–पूर्ण वचन कहती हुई प्रलाप करने लगीं।

जानि गरू रघुपति रस लीला। धीर धरति हिय भाव सुमीला ॥
कुँअरहु जानि असह दुख पागे । सहित सिद्धि विरहानल दागे ॥

पुनः श्री राम जी महाराज की लीला को अत्यन्त रसमयी व गम्भीर समझकर उन्होने ह्रदय में सुन्दर भाव पूर्वक धैर्य धारण कर लिया। यह समाचार जानकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भी दुख में डूब गये तथा श्री सिद्धि कुँअरि जी के सहित प्रभु श्री सीताराम जी की वियोगाग्नि में जलने लगे।

दो0– करत बात इक एक सों, दूनहु भये अचेत ।
कथा बनै नहि कहत कछु, सीयराम के हेत ॥७॥

परस्पर में श्री सीताराम जी की प्रेममयी वार्ता करते हुए वे दोनों मूर्छित हो गये। उनकी श्रीसीताराम जी के प्रति प्रेमावस्था का किंचित भी वर्णन नहीं किया जा सकता।

कछुक काल लहि जब सुधि आई । सिद्धिहिं बोले कुँअर जगाई ॥
मम अभाग बड़ रूप बनाई । प्रकट भई अब अति दुखदाई ॥

कुछ समय में जब उन्हें चैतन्यता आयी तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सिद्धि कुँअरि जी को जगा कर बोले कि–मेरा दुर्भाग्य ही, विराट रूप धारण कर, प्रभु श्री राम जी को गहन वन में ले जाकर अब मुझे अत्यन्त दुख देने हेतु प्रगट हुआ है।

सीयराम सुधि अब लौं पाये । शान्ति लहत कछु धीरज आये ॥
सिद्धि सुनहु अब कौनेहु यतना । सुधि न मिलिहिं कस होइहि पतना ॥

क्योंकि अब तक श्री सीताराम जी का समाचार पाकर हमें कुछ शान्ति मिल जाती थी और धैर्य हो जाता था। परन्तु हे श्री सिद्धि कुँअरि जी! अब किसी भी प्रयत्न से हमारे प्राणाधारों का समाचार नहीं मिलेगा, हाय! हमारी किस प्रकार से अधोगति हुई है।–––

राम विचार इहै मन माहीं । मिथिला अवध लोग इत आहीं ॥
सहज एक प्रभु देश विविक्ता । गये सुखद कामद करि रिक्ता ॥

–––सहज ही एकान्त प्रिय प्रभु श्री राम जी महाराज अपने मन में यही विचार कर कि– श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी के नर–नारी यहाँ आते–जाते रहेंगे, श्री कामदगिरि को रिक्त कर निर्जन प्रान्त में सुखपूर्वक चले गये हैं।–––

तिन इच्छहिं को मेटन हारा । लेहु प्रिया निज ह्रदय विचारा ॥
सुधिहुँ मिलब तिनकी कठिनाई । तो कत देह रहै जग लाई ॥

–––हे प्रिया जी! उनकी इच्छा को मिटाने वाला कौन है इस बात को अपने ह्रदय में आप स्वयं विचार कर लीजिये। अब जब उनका समाचार मिलना भी दुष्कर है तब यह शरीर संसार में किस लिए जीवित रहे।

दो0– कहि अस कुँअर अचेत भे, सिद्धि अंक निज लीन ।
शीष परशि उपचार करि, दीन्ह जगाय प्रवीन ॥८॥

ऐसा कहकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी स्मृति शून्य हो गये तब परम प्रवीणा श्री सिद्धि कुँअरि जी ने उन्हें अपनी गोद में ले कर शिर स्पर्श एवं उपचार द्वारा जागृत किया।

बोली हे मम जीवन नाथा । तन मिथिला मन रघुवर साथा ॥
तदपि जरत सो विभु विरहागी । जानि न जाय कौन गति लागी ॥

तदनन्तर श्री सिद्धि कुँअरि जी नें कहा– हे मेरे जीवन स्वामी! यद्यपि आपकी मात्र काया ही श्री मिथिला पुरी में है, मन तो श्री रघुनन्दन जू के साथ में नित्य ही रहता है, तथापि आपका शरीर प्रभु वियोग में दग्ध हुआ जा रहा है न जाने अब आगे इसकी क्या गति होगी।

मूरति मधुर बसति उर धामा । युगल किशोर श्याम अरु श्यामा ॥
तदपि सदा व्याकुल दुख मोई । निकसन चहत प्राण तन खोई ॥

युगल किशोर श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज तथा श्यामा सुन्दरी श्री सिया जू की मधुर मूर्ति आपके हृदय प्रदेश में सदैव निवास करती है फिर भी आप सदैव विषाद–ग्रस्त हो व्याकुल रहते हैं मानों प्राण ही शरीर को छोड़कर निकलना चाहते हों।

यदपि नयन झूलत युग तारे । सीय राम मणि मौर सुधारे ॥
तदपि दरश हित तरसत नैना । ढारत रहत वारि बिन चयना ॥

यद्यपि सुन्दर मणियों की मौरी और मौर धारण किये हुए श्री सीताराम जी नयन पुत्तलियों की भाँति हमारे नेत्रों में नित्य झूलते रहते हैं तथापि उनके प्रत्यक्ष दर्शनों के लिए नेत्र लालायित हो अविराम अश्रु विमोचन करते रहते हैं।

युगल शरीर गन्ध नित घ्राना । आवत रहत पदुम रस साना ॥
तदपि लेन चह गंध अनूपी । नासा बनि आसक्ति स्वरूपी ॥

यद्यपि श्री सीताराम जी के युगल शरीर की सुन्दर कमल रस से सनी हुई (आपूरित) सुगन्धि सदैव हमारी नासिका का विषय बनी रहती है तथापि उनके दिव्य वपु की अनुपमेय सुगन्धि प्राप्त करने हेतु हमारी नासिका आसक्ति की स्वरूपा बनी रहती है।

दो0– श्रवण सुनहिं सिय राम बच, मधुर मधुर मधुदानि ।
कहुँ कहुँ पिय प्रत्यक्ष सम, कहहुँ न वृथा बखानि ॥९॥

हमारे श्रवण यद्यपि श्री सीताराम जी के मधुरातिमधुर मधु–प्रदायी बचन नित्य सुनते रहते हैं। कभी कभी तो वे वचन साक्षात् के समान ही प्रतीत होते हैं। हे प्रिय! मैं असत्य–वार्ता नहीं कर रही हूँ।

तदपि मधुर अमृत रस सानी । चाहत श्रवण सुनन प्रभु बानी ॥
परश लहत त्वक नित सियरामा । होत सुनिश्चय मम हिय धामा ॥

तथापि श्री सीताराम जी की मधुर व अमृत रस से सनी हुई वाणी श्रवण करने हेतु हमारे कर्ण

त्वरान्वित बने रहते हैं। यद्यपि हमारी त्वचा नित्य ही श्री सीताराम जी का स्पर्श प्राप्त करती रहती हैं और मेरे हृदय में उसकी पूर्ण प्रतीति भी होती है।

तदपि चाह बहु बाढ़त जाई । परश करन रघुवर तन भाई ॥
जीह लहत नित स्वाद प्रसादी । तदपि सनी लालच अहलादी ॥

तथापि हमारे हृदय में श्री राम जी महाराज के दिव्य शरीर का स्पर्श करने की लालसा बढ़ती ही जाती है। यद्यपि हमारी जिह्वा नित्य उनके प्रसाद का ही स्वाद ग्रहण करती है तथापि वह आह्लाद पूर्वक उनके प्रसाद के स्वाद की लोलुप बनी रहती है।

समुझि परै नहि कछु प्रिय बाता । मिले रहत बिन मिले दिखाता ॥
सीय राम बन तो किन प्यारे । इन्द्रिय अनुभव बने हमारे ॥

हे नाथ! मुझे यह बात समझ नहीं आती कि–अनुभव में तो हमारे प्रभु हमसे मिले हुए हैं परन्तु प्रत्यक्षतः बिना मिले हुए दिखाई पड़ते हैं। हे प्यारे! यदि श्री सीताराम जी वन में हैं तो वे हमारी इन्द्रियों के अनुभव के विषय किस प्रकार बने हुए हैं।

अनुभव सत्य हृदय कत जरई । विरह बह्नि बिनु धीरज धरई ॥
श्रीधर कुँअरि कहति अकुलाई । गिरी भूमि बेली कुम्हलाई ॥

हे प्राणप्रिय! यदि अपना अनुभव सत्य है तो उनकी विरहाग्नि में अधीर होकर हमारा हृदय क्यों जलता है, वह विरहाग्नि में जले बिना धीरज क्यों नहीं धारण करता। ऐसा कहती हुई श्री सिद्धि कुँअरि जी प्रेमाकुल हो कुम्हलाई हुई लता के समान स्मृतिहीन हो भूमि में गिर पड़ीं।

दो0– धीर धरे तब कुँअर कछु, सिद्धिहिं तुरत उठाय ।
प्रेम पगे करि प्यार बहु, लीन्ह हृदय छपकाय ॥१०॥

अपनी प्रिया श्री सिद्धि कुँअरि जी के वचनों को सुन, कुछ धैर्य धारण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सिद्धि कुँअरि जी को शीघ्रता से उठा लिया और प्रेममग्न हो अतिशय प्यार करते हुए हृदय से लगा लिया।

करि उपाय चित चेत करायव । बोलेव प्रिया आपु सत गायव ॥
प्रेम कथा की पीर अतीवा । जानत प्रेमी कै तेहिं सीवा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी नें प्रयत्न पूर्वक (उपचारों के द्वारा) उनके चित्त को चैतन्य कराकर कहा– हे प्रिया जू! आपने सत्य ही कहा है, परन्तु प्रेम कथा की मर्मान्तक व्यथा को या तो प्रेम करने वाला प्रेमी जानता है या उसका प्रेमास्पद (जिसे प्रेम किया जाय) ही जानता है।

कहनी महँ कैसेहु नहिं आवै । सूक्ष्म सूक्ष्म अनुभव रस छावै ॥
सिद्धि सुनहु सिय राम सुप्रीती । हमरी तुम्हरी सहज अतीती ॥

प्रेम की वह पीड़ा किसी प्रकार वाणी का विषय नहीं बन सकती क्योंकि वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म, अनुभव में आने वाली तथा रस–स्रावी होती है। हे श्री सिद्धि कुँअरि जी! आप सुनिये, श्री सीताराम जी के प्रति हमारी और आपकी प्रीति सहज और शाश्वत है।

छोरतहूँ नहिं जावै छोरी । चाहे करहिं उपाय करोरी ॥
अगिनी केर ऊषमा कोऊ । पृथक सकै नहिं करि जिय जोऊ ॥

वह करोड़ों उपाय करके छोड़ने पर भी हमसे छोड़ी नहीं जा सकती। आप हृदय में विचार कर लीजिये कि– कोई भी अग्नि से उसकी ऊष्मा (गर्मी) को, अलग नहीं कर सकता।

अहंकार ममकार नशाना । श्यामा श्याम बसे मन आना ॥
त्यागव ग्रहण बनै तहँ नाहीं । सहज प्रीति छलकै हिय माहीं ॥
विरह व्यथा छुटि जाय शरीरा । तब जानहु प्रेमी पथ बीरा ॥

जब जीवों का अहंकार और ममकार नष्ट हो जाता है और उनके मन में आकर श्यामा सुन्दरी श्री सिया जू और श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज निवास करने लगते हैं, तब वहाँ प्रीति का त्याग व ग्रहण करते नहीं बनता, क्योंकि वहाँ उनके हृदय में सहज ही प्रीति छलकती रहती है। अतः विरह की पीड़ा से जब यह शरीर छूट जाय तब जानना चाहिए कि– वह प्रेम पथ में चलने वाला प्रेमी शूरवीर है।

दो0– जरत बरत निशि दिन रहै, विरह वह्नि के बीच ।
हमरो यहै स्वरूप सत, जग सुख दुख सब नीच ॥११॥

अतः हे प्रिया जी! हमारा यथार्थ स्वरूप तो प्रभु विरह की अग्नि में रात–दिन जलते रहना ही है फिर ये सांसारिक सभी सुख और दुख तो हमारे लिये अत्यन्त ही नगण्य हैं।

यहि प्रकार दोऊ विरहाये । करत बतकही दृग रस छाये ॥
विरहातुर दिन बीतत जाहीं । निमिष कल्प सम लग मन माहीं ॥

प्रभु वियोग में दुखी वे दम्पति नेत्रों से अश्रु बहाते हुए परस्पर इस प्रकार की बाते करते रहते थे। उनके दिन विरह में आतुर हुए व्यतीत होते जा रहे थे। उन्हें मन में एक पल का समय कल्प के समान दुखदायी प्रतीत हो रहा था।

हा सिय हा रघुवर उच्चरहीं । छिन छिन दूनहु आहें भरहीं ॥
बहत नयन अति हिय अकुलाई । भूख प्यास सब गयी बिलाई ॥

वे दोनों, हा श्री सिया जू! हा मेरे रघुनन्दन जू! उच्चारण करते हुए प्रत्येक क्षण आहें भरते रहते थे। उनकी आँखों से सदा ही अश्रु बहते रहते तथा हृदय अत्यन्त अकुलाया रहता था, उनकी भूख तथा प्यास समाप्त हो गयी थी।

कबहुँ कबहुँ सिद्धिहिं के प्रेरे । लेहिं कुँअर प्रसाद हिय हेरे ॥
दिन दिन होवै शित शरीरा । छन छन बढ़त विरह बहु पीरा ॥

कभी–कभी श्री सिद्धि कुँअरि जी के आग्रह पर ही, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने हृदय में विचार कर कुछ प्रभु प्रसाद ग्रहण कर लेते थे। उनका शरीर दिन प्रतिदिन कृशित होता जाता तथा प्रत्येक क्षण विरह की तीव्र पीड़ा बृद्धिंगत होती जाती थी।

कहुँ कहुँ आती मातु सुनैना । देखि दशा हिय होत अचैना ॥
गोद बिठाय सुतहिं समुझाती । स्वयं विरह रस सनी सुभाती ॥

कभी–कभी श्री सुनैना अम्बा जी उनके समीप आतीं थीं, तब उनकी स्थिति को देखकर श्री अम्बा जी का हृदय अत्यन्त दुखी हो जाता था तथा वे प्रभु विरह रस में स्वयं सनी हुई अपने पुत्र कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को गोद में बिठा कर समझाया करती थीं।

दो0– सीय राम यश मातु मुख, सुनत हृदय कछु शान्ति ।
तदपि रहहिं विरही बने, छाये मुख रस कान्ति ॥१२॥

यद्यपि उस समय श्री अम्बा जी के मुख से श्री सीताराम जी का यशोगान श्रवण करने से कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में कुछ शान्ति प्राप्त होती थी तथापि वे प्रभु वियोग में विरहीले बने रहते थे तथा उनका मुखमण्डल भगवत्प्रेम रस की कान्ति से उद्भासित रहता था।

भूपति आय कबहुँ समुझाई । देहिं कुँअर कहँ धीर बँधाई ॥
कहुँ कहुँ यागबलिक मुनि आवैं । कुँअर हिये पर बोध करावै ॥

कभी श्री मिथिलेश जी महाराज आकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को समझाकर धैर्य बँधाते थे तो कभी निमिकुल आचार्य श्रेष्ठ श्री याज्ञवल्क्य जी आते तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में श्री सीताराम जी के परत्व का बोध कराते रहते थे।

पूर सरित जिमि तृण बहि जाई । विरह उदधि तिमि ज्ञान बहाई ॥
सिद्धि लखति जब अति विरहीला । पियहिं सुनावति रघुवर लीला ॥

परन्तु जिस प्रकार जल से पूर्ण रूपेण भरी हुई नदी में तिनका प्रवाहित हो जाता है उसी प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रभु वियोग का महासागर सभी प्रकार के ज्ञान को बहा (किनारे कर) देता था। श्री सिद्धि कुँअरि जी जब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को विरह में अत्यन्त पीड़ित देखतीं तो वे अपने स्वामी को श्री राम जी महाराज का चरित्र सुनाने लगती थी।

कबहुँ कीर्तन प्रेम विभोरी । सुखद सुनावति श्रीधर छोरी ॥
लै वीणा गावति पद भाये । सीय राम यश भरे सुहाये ॥

कभी श्री श्रीधर नन्दिनी सिद्धि कुँअरि जी प्रेम विभोर हो, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को सुख प्रदायक संकीर्तन सुनातीं तो कभी वीणा लेकर श्री सीताराम जी की कीर्ति से समन्वित सुन्दर भाव पूर्वक पद गाने लगतीं थीं।

सुनि सुख लहहिं सुभूप किशोरा । पाइ शान्ति धरि धीरज थोरा ॥
कहहिं प्रिया धनि धनि तै मोरी । चरित सुधा जो प्यावति घोरी ॥

जिन्हें श्रवण कर नृपति किशोर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी शान्ति प्राप्त कर किंचित धैर्य धारण करते और कहते थे– हे प्रिया जू! आप धन्यातिधन्य हैं जो हमें प्रेम रस में घोल कर, प्रभु चरितामृत पान कराती रहती हैं।

दो0— पीवत तृप्ती होत नहिं, बढ़े प्यास जिय माहिं ।
ताते मोहिं सींचत रहहु, नाहिंत जीवन जाहिं ॥१३॥

परन्तु इन्हे पीकर भी तृप्ति नहीं होती वरन् अधिक–अधिक पीने की त्वरा ह्रदय में बढ़ती रहती है, इसलिए आप, मेरे श्रवणों में प्रभु चरितामृत रस का सिंचन करती रहिये नहीं तो यह जीवन समाप्त हो जायेगा।

तुमहिं दियो मोहिं ईश प्रसादी । भयो पाय अतिशय अहलादी ॥
राम सिया चरितामृत धारा । रहहु बहावति शशि मुख प्यारा ॥

परमात्मा ने मुझे कृपा प्रसाद स्वरूप आपको प्रदान किया है जिसे पाकर मैं अत्यन्त ही आह्लादित हुआ हूँ। अतः आप अपने प्रिय चन्द्रानन से श्री सीताराम चरितामृत की धारा प्रवाहित करते रहिये।

तव मुख निश्रृत मधु रस पीई । रहत सदा प्यारी हौं जीई ॥
खंजन नयनि बिलोकनि तोरी । प्रेम रसीली जीवन मोरी ॥

आपके मुख के निकला हुआ श्री राम चरित्र का 'मधु–रस' (अमृत) पी पीकर ही मैं सदैव जीवित रहता हूँ। हे खंजन पक्षी के समान नेत्रों वाली प्रिये! आपकी रसमयी दृष्टि ही मेरा जीवन है।

पेखत प्रेम अश्रु दृग तोरे । लली लाल के नेह अथोरे ॥
प्रेम उदीपन मम हिय होई । ताते तुमहिं रहौं नित जोई ॥

जनक लली श्री सिया जू और दशरथ नन्दन श्री राम जी महाराज की महान प्रीति में आपके नेत्रों से निकले हुए प्रेमाश्रुओं को देखकर मेरे ह्रदय में प्रेम का उद्दीपन हो जाता है, इसीलिए मैं नित्य ही आपको देखता रहता हूँ।

अंग अंग लखि सत तव प्यारी । उपजे सीय राम रस भारी ॥
प्रेम मूर्ति उद्दीपन हेता । दियो मोहि प्रभु पा निकेता ॥

हे प्यारी जू! आपके प्रत्येक अंग को देखकर सत्य ही श्री सीताराम जी का महान 'प्रेम–रस' मेरे ह्रदय में उत्पन्न होता है, 'कृपा के आगार परमात्मा ने मुझे, प्रभु प्रेमोद्दीपन के हेतु ही "प्रेम की मूर्ति" आपको प्रदान किया है।

दो0— प्रेम सुवर्धन नित्य जो, सीयराम पद माहिं ।
प्रेमिन कहँ सो राम सम, लगत प्यार सरसाहिं ॥१४॥

श्री सीताराम जी के चरणों में जो भी, नित्य–प्रति सुन्दर प्रीति विवर्धन करने वाले होते हैं, वे प्रभु प्रेमियों को श्री राम जी महाराज के समान ही प्रतीत होते हैं तथा वे उन्हें आनन्द में समाये हुए प्यार करते रहते हैं।

भूषण वसन प्रिया लखि तोरा । उपजत उरहिं प्रेम रस बोरा ॥
प्रभु प्रसाद लहि तुम कहँ प्यारी । भयो धन्य मैं जगत मझारी ॥

हे प्रिया जू! आपके आभूषण और वस्त्रों को देखकर मेरे हृदय में भगवद्रस समन्वित प्रेम उत्पन्न होता है, प्रभु प्रसाद स्वरूप आपको प्राप्त कर मैं संसार में धन्य हो गया।

ताते रहहुँ तुमहिं हिय लाई । प्रभु प्रसाद महिमा बड़ गाई ॥
प्रभु अनुकूल तुमहिं मैं भोगूँ । बिना अहं श्रुति शास्त्र नियोगू ॥

आपको अपने हृदय से मैं इसीलिए लगाये रहता हूँ क्योंकि प्रभु प्रसाद की महिमा अत्यन्त विशद वर्णन की गयी है। प्रभु श्री सीताराम जी के अनुकूल होने से ही मैं, श्रुतियों और शास्त्रों की आज्ञानुसार अहंकार रहित हो, आपका समुपभोग करता हूँ।

वास्तव भोक्ता अरु सब भोगा । रामहिं अहै जीव नहिं योगा ॥
दम्पति लीला मोर तुम्हारी । प्रभु कैंकर्य गिनहु रसवारी ॥

हे प्रिया जी! यथार्थतः सभी भोगों के भोक्ता तो श्री राम जी महाराज ही हैं, यह जीव भोक्ता बनने योग्य नहीं है। अतः हे रस विग्रहा प्यारी जू! आप, हमारी दाम्पत्य लीला को भी, प्रभु श्री राम जी महाराज का कैंकर्य ही समझिये।

पति पतनी शुचि भाव सुखारा । प्रभु सुख हेतु हमार तुम्हारा ॥
ममता अहं बिना रस पागे । प्रेमाधिक विलसैं अनुरागैं ॥
सीय राम पथ प्रेम मझारी । चलत रहहिं दोऊ हम प्यारी ॥

हमारा और आपका यह पति और पत्नी का पवित्र सुखमय भाव भी, प्रभु श्री राम जी महाराज के सुख के लिए ही है। अतएव ममता और अहंकार को त्याग कर अनुराग पूर्वक प्रेमाधिक्य में विलास करते हुए, हे प्रिया जू! हम दोनों श्री सीताराम जी के प्रेम मार्ग का अनुसरण करते रहें।

दो0– इक इक करत सहाय शुभ, चखै राम रस स्वाद ।
परमानन्दहिं मगन ह्वै, पावैं अति अहलाद ॥१५॥

आप और हम दोनों एक दूसरे की मंगलमयी सहायता करते हुए श्री राम जी महाराज के प्रेम–रस का स्वाद ग्रहण करते रहें तथा परमानन्द में निमग्न होकर अत्याह्लाद प्राप्त करते रहे।

भगिनि भाम मोहिं श्री सियरामा । मिले सच्चिदानन्द प्रधामा ॥
हमहिं तुमहिं बाकी का रहऊ । आपन जिन्हैं राम सिय कहऊ ॥

मुझे सच्चिदानन्दमय और परम पद स्वरूप श्री सीताराम जी बहन और बहनोई के रूप में प्राप्त हुए हैं। अतः जिन्हें श्री सीताराम जी अपना कहते है, ऐसे सौभाग्यशाली हमारे और आपके लिए, संसार में क्या प्राप्तव्य शेष रहा।

इतना कहत बहुरि सुधि आई । गये बनहिं सिय सह रघुराई ॥
हिचकि हिचकि रोवन तब लागे । कुँअरि कुमार प्रेम रस पागे ॥

इतना कहते ही उन्हें पुनः स्मरण आ गया कि– श्री सीता जी के सहित प्रभु श्री राम जी

महाराज वन को चले गये हैं, तब श्री सिद्धि कुँअरि जी तथा कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी हिचकियाँ ले लेकर रुदन करने लगे और प्रेमानन्द में पग गये।

करि कार्पण्य प्रलापहिं करई । कुँअर विरह वश धीर न धरई ॥
अधम जानि मोहि रघुवर रामा । सेवा महँ नहि लिये अकामा ॥

उस समय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी विरह के कारण धैर्य न धारण कर, दैन्यता पूर्वक प्रलाप करने लगे– परम निष्काम प्रभु श्री राम जी महाराज नें अधम समझ कर ही मुझे अपनी सेवा में नहीं लिया।

सेवा योग भाग नहिं मोरा । छोड़ दियो हा अवध किशोरा ॥
राम सेव बिन रे मम प्राना । कस तन रहैं लाज नहिं आना ॥

उनकी सेवा करने के योग्य मेरा भाग्य ही नहीं था। हाय! अयोध्या नरेश कुमार श्री राम जी महाराज ने मेरा त्याग कर दिया है। हे मेरे प्राण! श्री राम जी महाराज की सेवा के बिना तुम किस प्रकार शरीर में रह रहे हो, तुम्हें लज्जा क्यों नहीं लगती।

दो0– राम सिया वन वन फिरहिं, सुख सोवै घर माहिं ।
राम प्राण को प्राण बनि, महा कृतघ्न लखाहिं ॥१६॥

हाय, हाय! हमारे प्राणधार श्री सीताराम जी जंगल–जंगल में भटकते फिर रहे हैं और तू श्री राम जी के प्राणों का प्राण बना हुआ भी गृह सुखों का समुपभोग कर रहा है, तुम तो महान कृतघ्नी समझ आ रहे हो।

राम श्याल जग महँ कहवाई । सीय भ्रात बनि लही बड़ाई ॥
प्रभु प्रेमी जग बीच कहायो । रे जिय दम्भी लाज न आयो ॥

संसार में प्रभु श्री राम जी महाराज के श्याल कहलाकर, श्री सीता जी के भैया बने हुए प्रशंसा प्राप्त कर रहे हो तथा संसार में भगवत्प्रेमी बनकर रहते हुए भी, मेरे दम्भी हृदय! तुझे लज्जा नहीं आ रही।

कुसमय सीय राम के पापी । काम न आयो वृथा प्रलापी ॥
अस कहि निज कर छातिहिं घाती । पीटत शिरहिं दुखहिं दुख राती ॥

अरे पापी! तू कठिन समय में श्री सीताराम जी के रंच–मात्र भी काम नहीं आ सका, व्यर्थ ही प्रलाप करता रहा। ऐसा कह कर वे अपने हाथों से वक्ष और शिर में प्रहार करते हुए शोक संतप्त हो गये।

तलफत निकसत मुख महँ फेना । कहरत कुँअर परे विरहैना ॥
सखा भ्रात बहु करैं सम्हारी । धीर न आवत दुसह दुखारी ॥

ऐसा कहते हुए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी तड़पने लगे, उनके मुँख से फेन (थूक) निकलने लगा और कराहते हुए प्रभु विरह में दुखी होकर वे गिर पड़े। यद्यपि उनकी सम्पूर्ण सम्हाल उनके सखा व भ्रातृगण कर रहे थे तथापि उन्हें धैर्य नहीं आ रहा था और वे प्रभु वियोग जनित असहनीय दुख में

दुखी हो रहे थे।

कीर्तन करन लगे सब कोई। प्रेम सहित मन मगनहिं होई ॥
कीर्तन सुधा परी जब काना। कुँअर लहे चित चेत सुजाना ॥

तब सभी सखा व भ्रातृगण प्रेम पूर्वक, मन मग्न हो, प्रभु नाम संकीर्तन करने लगे। जब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के कर्णों में कीर्तन का अमृत रस प्रविष्ट हुआ तब वे सुजान कुमार, चित्त में चैतन्यता को प्राप्त हुए।

दो0— सिद्धि तबहिं सिंचुवाइ मुख, आसन पिय बैठाय।
पति सुख कहँ सुख गिनत मन, लै वीणा यश गाय ॥१७॥

तभी अपने स्वामी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के मुख में जल सिंचन करवा कर (मुख धुलाकर) श्री सिद्धि कुँअरि जी ने आसन में बैठा दिया और अपने मन में पति के सुख को ही अपना सुख समझते हुये प्रभु श्री राम जी महाराज का यशोगान करने लगीं।

मास पारायण इक्कीसवाँ विश्राम

प्यारी मुख रघुवर यश गाना। सुनि सुख लहे कुँअर मतिमाना ॥
यहि विधि विरह व्यथा बहुताई। छिन छिन नव नव बाढ़त जाई ॥

अपनी प्रिया श्री सिद्धि कुँअरि जी के मुख से श्री राम जी महाराज का यशोगान सुनकर परम बुद्धिमान कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने सुख प्राप्त किया। इस प्रकार उनका अत्यधिक, नवीन–नवीन प्रभु विरह विषाद प्रत्येक क्षण विवर्धित होता रहता था।

चित महँ चिन्ता रही समाई। चिन्तहिं चिन्तामणि रघुराई ॥
चिन्तन करत चित्त लय लयऊ। तदाकार वृत्ती जिय जयऊ ॥

उनके चित्त में श्री सीताराम जी की ही चिन्ता बनी रहती थी और वे 'चिन्तामणि 'स्वरूप श्री राम जी महाराज का चिन्तन करते रहते थे। चिन्तन करते समय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का चित्त विलीन हो जाता तथा उनके हृदय में तदाकारिता की वृत्ति उत्पन्न हो जाती थी।

बोल यकायक जनक कुमारा। हौं ही अहौं श्याम सुकुमारा ॥
कैसो मेरो श्यामल अंगा। लाजै लखि लखि अमित अनंगा ॥

उस समय कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अचानक बोलने लगते कि– परम सुकुमार श्याम सुन्दर श्री राम मैं ही हूँ। मेरा शरीर किस प्रकार सुन्दर श्याम वर्ण वाला है जिसे देख–देखकर असीमित कामदेव भी लज्जित होते हैं।

धनुर्बाण मम सुन्दर हाथा। खेलौं अवध बालकन साथा ॥
कहत कहत करि कन्दुक फूला। लगे उछारन मंगल मूला ॥

मेरे हाथों में सुन्दर धनुष और बाण सुशोभित हैं तथा मैं श्री अयोध्यापुरी में बाल सखाओं के साथ खेल रहा हूँ। ऐसा कहते कहते मंगलों के मूल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, पुष्पों को गेंद के समान उछालने लगे।

दो0– भरत लखन रिपु सूदनहिं, कहत पुकारि पुकारि ।
भैया खेलहु सखन सँग, आनँद होय अपारि ॥१८॥

वे पुकार–पुकार कर, श्री भरत जी, श्री लक्ष्मण कुमार जी और श्री शत्रुघ्न जी को कहते कि हे भैया! आप सभी, सखाओं के साथ खेलिये जिससे असीम आनन्द की प्राप्ति हो।

खेलत दौड़ि दौड़ि निमिवारा। मनहु राम निज अवध मझारा ॥
कुँअर सखा अरु भ्राता सिगरे। सिद्धि कुँअर सह विस्मय पगरे ॥

निमिनन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी इस प्रकार दौड़–दौड़कर खेल रहे थे मानों श्री राम जी महाराज ही श्री अयोध्यापुरी में क्रीड़ा कर रहे हों। उस समय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सखा और सभी भ्रातृगण श्री सिद्धि कुँअरि जी के सहित आश्चर्य में डूबे हुए थे।

लखि लखि कुँअर केर आवेशा । भूले सबहिं काल अरु देशा ॥
राम स्वरूप कुँअर तन देखी । सुन्दर श्याम मनोहर वेशी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रेमावेश को देख–देखकर सभी, देश और काल की स्थिति भूल गये थे। वे श्री राम जी महाराज का सुन्दर मनोहर श्याम स्वरूप कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के शरीर में देख रहे थे।

कर कन्दुक इत उत तहँ फेकी । छीनत चित्त नारि नर छेकी ॥
भूलि अपनपौ खेलन लागे । सखा भ्रात सिगरे रस पागे ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की हाथों से गेंद को इधर–उधर फेंकने की कला पुरुष और स्त्रियों को रोककर उनके चित्त को छीने ले रही थी। उस समय उनके सभी सखा और भ्रातृगण रस में पगे हुए अपना आपा भूलकर उनके साथ खेलने लगे।

सिद्धिहुँ भूलि गयीं बनवासा। खेलत गेंद गिनै प्रभु पासा ॥
पेखि प्रेम वरषहिं सुर फूला। हनत दुन्दुभी आनँद मूला ॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी भी उस समय श्री राम जी महाराज का वनवास भूल गयी थीं तथा प्रभु श्री राम जी महाराज को गेंद खेलते हुए अपने समीप ही समझने लगीं। उनके प्रेम को देखकर देवता पुष्प वरषाने लगे तथा आनन्द की मूल दुन्दुभी बजाने लगे।

दो0– जय जय बदत विभोर ह्वै, धनि धनि सुवन महीप ।
रामाकारहिं चित्त करि, राम बन्यो कुल दीप ॥१९॥

देव–गण प्रेम विभोर हो श्री जनक जी महाराज के कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी की जय हो, वे धन्यातिधन्य हैं जो अपने चित्त को रामाकार करके कुल को प्रकाशित करने वाले श्री राम जी महाराज ही बने हुए हैं।

छं0– सुर बृन्द बोलत धनि कुँअर, निमिवंश जायो दीप है ।
नर देह धारे प्रेम जनु, नेहीन मध्य महीप है ॥

कछु काल माते प्रेम रस, भरि भाव रघुवर राम के ।
रस सानि क्रीडत गेंद प्रिय, वर कुँअर भूले नाम के ॥

देवगण एक स्वर में कह रहे थे कि– श्री कुँअर लक्ष्मीनिधि जी धन्य हैं जो श्री निमिकुल को प्रकाशित करने हेतु जन्म धारण किये हुए हैं। उन्हे देखकर ऐसी प्रतीति हो रही थी मानों भगवत्प्रेम ही मनुष्य रूप धारण किये हुए प्रेमियों के मध्य प्रेम राज्य का सम्राट बना हुआ हो। इस प्रकार कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी कुछ समय तक श्री राम जी महाराज के भाव में भावित–प्रेम रसोन्मत्त होकर रस–निमग्न, अपने अस्तित्व को भुलाए हुए प्रियकर कन्दुक (गेंद) क्रीड़ा करते रहे।

जागे बहुरि सुधि तन लही, सकुचे सुआसन बैठि निज ।
कह बात मधुरी सुनु प्रिया, अटसट बका आवेश भिंज ॥
मम सखा भ्राता सहित निज, सहती विविध विधि क्लेश तुम ।
मोहिं हेतु प्यारी किमि कहौं, हर्षण रहैं पगलान झुम ॥

पुनः श्री कुँअर लक्ष्मीनिधि जी शरीर में स्मृति आने पर जागृत हुए तथा संकुचित होकर अपने आसन में बैठ गये और सिद्धि कुँअरि जी से मधुर वाणी में बोले– हे प्रिया जी! सुनिये, हमने प्रेमावेश में आकर आपको बहुत सी निरर्थक बातें कह दी हैं। जबकि आप हमारे सखाओं और भ्राताओं के सहित नित्य ही हमारे लिए विभिन्न प्रकार के दुख सहन करती रहती हैं। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री रामहर्षण दास जी महाराज बखान करते हैं कि–कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी कहते हैं कि– हे प्यारी जू ! हम किस प्रकार कहें कि–प्रभु वियोग में पागल बने हुए हम झूमते रहते हैं।

सो0–प्यारी प्राण अधार, चारु चरित रघुवर कहहु ।
भरहु सुअमृत धार, श्रवण सरोवर बीच प्रिय ॥२०॥

अतः हे मेरी प्राणाधार प्यारी जू! आप, श्री रघुनन्दन जी के सुन्दर चरित्रों का बखान कीजिये तथा मेरे कर्ण रूपी सरावरों को प्रभु चरितामृत की धारा से आपूरित कर दीजिये।

कहति सिद्धि पागल प्रभु नाहीं । महाभाव रस रूप सुहाहीं ॥
अमित भाग रह मोर सुहाई । पायउँ तुमहिं साथ सुखदाई ॥

अपने प्राणधन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की बातें सुनकर श्री सिद्धि कुँअरि जी कहतीं हैं कि– हे मेरे स्वामी! आप पागल नहीं हैं। यह तो प्रभु प्रेम की अति उच्चतम अवस्था "महाभाव" का सुन्दर रसमय स्वरूप है। मै तो, असीम सौभाग्यवती हूँ जो मुझे आपका सुख प्रदायक साहचर्य प्राप्त हुआ है।–––

शेष शारदा रमा भवानी । कहि न सकहिं मम भाग महानी ॥
श्यामल सुभग राम कर रूपा । तव तन लखा सुभाग अनूपा ॥

–––श्री शेष जी, श्री सरस्वती जी, श्री लक्ष्मी जी और श्री पार्वती जी भी मेरे सौभाग्य की महानता का वर्णन नहीं कर सकती हैं। मेरा परम सौभाग्य था जो मैंने आपके वपु में अनुपमेय सुन्दर श्याम वर्ण वाले श्री राम जी महाराज के नयनाभिराम स्वरूप का दर्शन किया।

अस कहि पियहिं सुबीण बजाई । सहित सखिन प्रभु यशहिं सुनाई ॥
सुनत कुमार प्रेम रस पागे । सजल नयन उर अति अनुरागे ॥

ऐसा कहकर अपने स्वामी राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को सुन्दर वीणा वादन कर श्री सिद्धि कुँअरि जी ने अपनी सखियों के सहयोग से प्रभु श्री राम जी महाराज का यशोगान सुनाया। जिसे श्रवण करते ही कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी का हृदय अत्यानुराग प्रपूरित हो, नेत्रों में प्रेमाश्रु भरकर प्रेमरस में ओतप्रोत हो गया।

यहि विधि बीतत दिन लग भारी । नींद न आवति निशा मँझारी ॥
हा हा सिय हा रघुवर रामा । टेरत कुँअर विदेह ललामा ॥

इस प्रकार प्रभु विरह दुख से अत्यन्त बोझ प्रतीत होते हुये दिन तो व्यतीत हो जाते थे परन्तु रात्रि में उन्हें निद्रा नहीं आती थी तब श्री विदेहराज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी, हे श्री सिया जू, हा रघुनन्दन, हा रामभद्र जू इस प्रकार की पुकार लगाते रहते थे।

दो0– विरह व्यथा हिय महँ बसी, रह रह जिय अकुलाय ।
कुँअर प्रिया लखि लखि तहाँ, सेवहिं पतिहिं बनाय ॥२१॥

उनके हृदय में भगवद्विरह की अत्यन्त पीड़ा बसी हुई थी जिससे प्रतिक्षण उनका हृदय व्याकुल हो जाता था। उस समय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रिया श्री सिद्धि कुँअरि जी उनकी अवस्था देख–देखकर सम्हाल करती हुई सेवा किया करती थीं।

नींद न आवति जानि कुमारी । पियहिं पियावति चरित सुधारी ॥
कही प्राण प्रिय परम पवित्रा । सुनहु सिया कर सुभग चरित्रा ॥

एक रात्रि, अपने प्राण वल्लभ को निद्रा न आती हुई समझ कर, श्री सिद्धि कुँअरि जी, उन्हें प्रभु चरितामृत का पान कराने लगीं, उन्होंने कहा– हे मेरे प्राण प्रियतम! आप परम पवित्र श्री सिया जू के सुन्दर चरित्र को श्रवण कीजिये।

एक समय मिथिलेश दुलारी । सहित सखिन मम सदन सिधारी ॥
सुन्दर लिये पुष्प वर हारा । निज कर गूँथो सुभग अपारा ॥

एक समय अपनी सखियों सहित, श्री मिथिलेश दुलारी सिया जू, स्वकर गुन्थित असीम सुन्दर पुष्पों का श्रेष्ठ हार लिए हुए मेरे भवन में पधारी।

करि सत्कार गोद बैठारी । पूँछी ललिहिं बात सुखकारी ॥
परम सुगन्धित दिव्य सुमाला । लियो लली केहिं हेतु विशाला ॥

मैंने उनका सत्कार कर गोद में बिठा सुखपूर्वक प्रश्न किया कि– हे श्री लाड़िली जू! आप यह परम सुगन्धि परिपूर्ण महान दिव्य सुन्दर हार किस हेतु ग्रहण की हैं।

कही सिया भ्राता हित भाभी । लाई माल बनाय स्वलाभी ॥
देखि हार भैया गल माहीं । होइहौं आनँद मगन अथाहीं ॥

श्री सिया जू ने कहा– हे श्री भाभी जी! यह हार मैं अपने श्री मान् भैया जी को पहनाने के हेतु स्वयं के सुख रूपी लाभ की इच्छा से बनाकर लायी हूँ। मैं अपने श्री मान् भैया जी के गले में यह फूलों का हार देखकर अत्यानन्द में निमग्न हो जाऊँगी।

दो0– याही हित भाभी सुनहु, लाई माल बनाय।
कहहु कहाँ भैया अहैं, देऊँ गल पहिनाय ॥२२॥

हे श्री भाभी जी! मैं इसी हेतु यह हार बना कर लाई हूँ, आप कहिये कि मेरे श्री मान् भैया जी कहाँ हैं? ताकि मैं उनके गले में यह हार धारण करा सकूँ।

भ्रात प्रेम सुनि सिय मुख हर्षी। भाव भरे नैनन में परसी ॥
नृप निदेश कहुँ कारज लागी। भैया तुम्हरे गे अनुरागी ॥

श्री सिया जू के मुख से अपने भैया जी के प्रति प्रेम को श्रवण कर मैं अत्यन्त हर्षित हुई तथा भाव में भरकर, उस हार को, अपने नेत्रों से लगाकर मैंने कहा– कि आपके अनुरागी श्री भैया जी श्री मान् महाराज की आज्ञा से किसी कार्यवश कहीं गये हुए हैं।

सुनि मम बैन हृदय बेचैना। भयो सिया कर श्रव शुचि नयना ॥
कह मम व्यर्थ भयो संकल्पा। जो यह हार भ्रात हित कल्पा ॥

मेरे वचनों को सुनकर श्री सिया जू का हृदय व्याकुल हो गया और उनके नेत्रों से पवित्र अश्रु बहने लगे। उन्होंने कहा कि–हे श्री भाभी जी! तब तो मेरा संकल्प ब्यर्थ हो गया, जो इस हार को मैंने अपने श्री मान् भैया जी को पहनाने की कल्पना की थी।

ताते दैहौं तुमहिं पिन्हाई। होहिं सुफल श्रम व्यर्थ न जाई ॥
अस कहि माल पिन्हावन लागी। लीन्हीं पकड़ि हमहुँ अनुरागी ॥

अतः मैं यह हार आपको पहनाऊँगी जिससे मेरा परिश्रम व्यर्थ न हो और मैं सफल मनोरथा हो जाऊँ। ऐसा कह कर श्री सिया जू वह हार मुझे पहनाने लगीं तब मैंने अनुराग पूर्वक उस हार को पकड़ लिया।

सिया योग लखि सिय गल डारी। शोभित भई महा रस बारी ॥
सखियन बीच सोह सुखकन्दा। मनहुँ नखत बिच पूरण चंदा ॥

अनन्तर उस हार को श्री सिया जू के योग्य समझ कर मैंने उन्हीं के गले में पहना दिया। उस हार को धारण कर वे महान रस परिपूर्णा श्री सिया जू अत्यन्त ही सुशोभित हुई। सुखों की मूल स्वरूपा वे अपनी सखियों के मध्य उसी प्रकार सुशोभित हो रही थीं मानो नक्षत्रों के बीच पूर्ण चन्द्र सुशोभित हो रहा हो।

दो0– पुनि सुन्दर मणि थार लै, आरति करति सुरागि।
तबहिं नाथ बैठे लखी, तुमहिं भगिनि रस पागि ॥२३॥

पुनः मैं मणि–थाल लेकर अनुराग पूर्वक उनकी आरती उतारने लगी। तभी मैने श्री सिया जू

के स्थान में, अपनी बहन (श्री सिया जू) के प्रेमरस में डूबे हुए, आपको बैठे हुए दर्शन किया।

राउर रूप देखि मोहिं प्यारे । विस्मय भयो कहत नहिं पारे ॥
चहुँ दिशि देखि सिया नहिं पाई । बैठे एक आप सुख दाई ॥

हे मेरे प्राण प्रिय! आपका स्वरूप देखकर मुझे जो आश्चर्य हुआ वह कहा नहीं जा सकता। मैंने वहाँ चारो दिशाओं में देखा परन्तु श्री सिया जू को नहीं पाया वहाँ परम सुख प्रदायक एकमात्र आप ही विराजे हुए थे।

आरति करि पुनि कीन्ह प्रणामा । आपु उठायो मोहिं अभिरामा ॥
निज दिशि बाम बिठाय पियारा । दीन्हेव माल मोर गल डारा ॥

पुनः मैंने आरती उतार कर जब प्रणाम किया तब हे नयनाभिराम! आपने मुझे उठाकर अपने अपने बाँये भाग में बैठा लिया और उस हार को मेरे गले में डाल दिया।

पिय प्रसन्न ह्वै तव मुख पेखी । सिया दरश मोहि भयो विशेषी ॥
जानि न परेउ आपु कहँ गयऊ । भ्रम वश चित्त मोर अति भयऊ ॥

हे नाथ! उस हार को धारण कर, प्रसन्न हो मैने जब आपका मुख दर्शन किया तो मुझे वहाँ श्री सिया जू का दर्शन हुआ। मेरी समझ में नहीं आया कि– आप कहाँ चले गये? उस समय मेरा चित्त अत्यन्त ही भ्रमित हो गया था।

विस्मय देखि लली मुसकाई । बोली अधिक सनेह जनाई ॥
भयउ मनोरथ सुफल हमारा । भाभी पहिरि रही हिय हारा ॥

उस समय मुझे विस्मित देखकर श्री लाड़िली जू अत्यधिक स्नेह प्रदर्शित करती हुई बोलीं कि हमारी मनोभिलाषा सफल हो गयी जो श्री भाभी जी ने इस हार को अपने ह्रदय में धारण कर लिया।

दो0– भैयहिं पहिरे हार तुम, भ्रम वश भइ किमि देखि ।
जानि मनोरथ भ्रात मम, पहुँचे इहाँ विशेषि ॥२४॥

हे श्री भाभी जी! आप यह हार श्री मान् भैया जी को धारण किये हुए देखकर भ्रम में क्यों पड़ गयीं थीं? मेरी मनोभिलाषा जानकर मेरे श्री मान् भैया जी यहाँ विशेष रूप से पहुँच गये थे।

मम कर हार पहिरि गल माहीं । दीन्हे तुम्हहिं प्रसाद तहाँहीं ॥
गये कार्य हित तुरत सिधारे । अस भैया मम प्राण पियारे ॥

पुनः मेरे हाथों से अपने गले में हार धारण कर, वहाँ आपको अपनी प्रसाद स्वरूप माला पहना दिये और शीघ्र ही अपने कार्य में चले गये। मेरे प्राण प्यारे भैया ऐसे महान हैं जो मेरे मनोरथ को पूर्ण कर दिये।

सुनि सिय बचन कही हरषाई । महिमा लली अमित तव गाई ॥
भैया पृथक आपु कहुँ नाहीं । तुम सो पृथक न भ्रात लखाहीं ॥

श्री सिया जू के वचनों को श्रवण कर मैंने हर्ष में भर कर कहा– हे श्री लाड़िली जू! आपकी

महिमा असीम है ऐसा बखान किया गया है। आप श्री अपने श्री मान् भैया जी से कभी भी पृथक नहीं है और न आपके श्री मान् भैया जी ही आपसे पृथक हैं।

एकहिं बनि भगिनी अरु भइया। रहत सने दोऊ छवि छइया ॥
तव संकल्प सत्य श्रुति गाई। तेहिं ते भैया तन दिखराई ॥

परम सुन्दर बहन और भाई आप दोनो एक ही हैं, दो बनकर एक दूसरे के प्रेम में सरसाये रहते है। आपका संकल्प सदैव सत्य है ऐसा श्रुतियों ने गायन किया है, इसीलिए हे श्री सिया जू! आपने अपने शरीर में अपने श्री मान् भैया जी का मुझे दर्शन कराया है।

सोही धरे सुभग गल माला। भैया वेष जनक की बाला ॥
दै प्रसाद मोहि रूप छिपाई। आपुन स्वयं बैठि सुखदाई ॥
धनि धनि चरित तुम्हार किशोरी। भ्रात नेह वश रहत विभोरी ॥

अपने श्री मान् भैया जी के वेष में श्री जनक नन्दिनी जू ही कण्ठ में सुन्दर पुष्प हार धारण किये हुए सुशोभित हो रही थीं। मुझे प्रसाद देकर आपने अपने भैया जी का रूप छिपा दिया तथा स्वयं सुख पूर्वक विराजी रहीं। हे श्री किशोरी जू! आपका चरित्र धन्यातिधन्य है। आप श्री अपने भइया जी के प्रेम के वशीभूत हो विभोर बनी रहती हैं।

दो0— सुनि मम बैन कृपालु सिय, तुरतहिं मोहिं लपटाय।
बोरेउ आनन्द सिन्धु महँ, सिगरी सुधि बिसराय ॥२५॥

मेरे वचनों को सुन कर परम कृपालुनी श्री सिया जू ने मुझे तुरन्त ही हृदय से लिपटाकर आनन्द के सागर में डुबा दिया उस समय मुझे अपनी सम्पूर्ण स्मृति भूल गयी थी।

निज प्रति परम प्रेम सिय केरा। सुनत कुँअर रस सने घनेरा ॥
प्रेम प्रवाह वरणि नहिं जाई। श्रवत नयन कँपकपी सुहाई ॥

अपने प्रति श्री सिया जू के परम प्रेम को सुनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अविरल प्रेमरस में डूब गये। उनके नेत्रों से प्रेम का अवर्णनीय प्रवाह प्रवाहित होने लगा व उनका सुन्दर वपु प्रकम्पित होने लगा।

सात्विक भाव प्रेम के सिगरे। उदय भये तन मन महँ पगरे ॥
बोलत प्रियहिं कहाँ गइ सीता। भ्रात नेह नित पगी पुनीता ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के शरीर में प्रेम के सभी सात्विक भाव उदय हो गये तथा मन में वे श्री सिया जू के प्रेम से पग गये। उन्होंने कहा कि हे प्रिया जी! अपने भैया के (मेरे) स्नेह में नित्य पगी रहने वाली पवित्र श्री सीता जी अब कहाँ चली गयीं।

निज कर गूँथी माल सलोनी। मोरे हित अस भगिनि न होनी ॥
लावहु प्रिया मणिन कर हारा। दहहौं सीतहिं प्रेम पसारा ॥

अपने सुकोमल हाथों से जिसने मेरे लिए सुन्दर पुष्प–हार बनाया है, ऐसी बहन सर्वथा अप्राप्त

है। हे प्रिया जू! आप मणियों का सुन्दर हार लाइये, मैं उसे प्रेम पूर्वक श्री सीता जी को दूँगा।

जाय भवन बहु भाँति दुलारी। अइहौं प्रिया बेगि सुखकारी॥
अस कहि परण कुटी के बाहर। आये कुँअर चलन हित धा कर॥
गुणनिधि प्रेमनिधी तहँ आई। पकड़े चरण सुनहिं बड़ भाई॥

हे प्रिया जी! मैं उनके महल जा, विविध प्रकार से दुलारकर शीघ्र ही सुख पूर्वक आ जाऊँगा। ऐसा कहकर वे श्री सिया जू के समीप चलने के लिए दौड़कर पर्ण कुटीर के बाहर आ गये। तब उनके अनुज श्री गुणनिधि जी एवं श्री प्रेमनिधि जी वहाँ आकर, उनके चरण पकड़ लिये और बोले— हे श्री मान् बड़े भइया जी! सुनिये,———

दो0— बीत गयी बहु रात प्रिय, सिया गयी गृह सोय।
तौ कत दरशन होइगो, लेवहिं निज हिय जोय॥२६॥

———अब तो बहुत रात्रि बीत गयी है तथा हमारी प्रिय बहन श्री सिया जू महल में शयन कर गई हैं। इसलिए आप अपने हृदय में स्वयं ही विचार कर लीजिये कि— अब उनके दर्शन किस प्रकार हो पायेंगे?———

जो कहुँ जाय जगैहौ तेही। निद्रा सुख छूटी बैदेही॥
निज सुख हेतु उचित नहिं ताता। गवनब तहँ पुनि होत प्रभाता॥

———यदि कहीं आप जाकर उन्हें जगायेंगे तो श्री विदेहराज नन्दिनी सिया जू का निद्रा सुख भंग हो जायेगा। अतः अपने सुख के लिए ऐसा करना उचित नहीं है। सबेरा होते ही हम लोग वहाँ चलेंगे।

अस कहि कुँअरहिं दोउ लौटाये। शयन साथरी पुनि पौढ़ाये॥
जानि भगिन सुख निद्रा भंगा। कुँअर गयो नहिं रँगेउ सुरंगा॥

ऐसा निवेदन कर उन दोनों राजकुमारों ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को लौटा लिया तथा कुश के शयनासन में लिटा दिये। यद्यपि कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी बहन के सुख और निद्रा भंग होने के भय से वहाँ नहीं गये तथापि वे उन्हीं के सुन्दर प्रेमरंग में रँगे रहे।

होत बिहान देह सुधि आई। छायो विरह विशद दुखदाई॥
यहिं प्रकार आवेश स्वरूपा। तदाकार बनि कुँअर अनूपा॥

प्रातः होते ही उन्हें अपने शरीर की स्मृति आ गयी तब वे उनके दुख प्रदायक महान विरह में डूब गये। इस प्रकार अनुपमेय आवेश में आवेशित होकर, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी तदाकार हो जाते थे।

लागत करन तैसहीं लीला। बिसरे सुधि बुधि नेह रसीला॥
कबहुँ कबहुँ उदवेग महाना। होत कुँअर तन तलफत प्राना॥

उस समय वे सुधि—बुधि भूल कर तदनुसार ही रसमयी लीला करने लगते थे। कभी—कभी जनक कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के शरीर में महान उद्विग्नता (व्याकुलता) हो जाती था तब उनके प्राण

विरह व्यथा से तड़पने लगते थे।

दो०– परत चैन नहिं नेक मन, अधिक अधिक अकुलात।
सोवत जागत रैन दिन, बैठत उठत जम्हात ॥२७॥

उनके मन में शयन करते, जागते, बैठते, उठते तथा जम्हाई आदि क्रियाओं के करते समय रात और दिन कभी भी किंचित शान्ति नहीं प्राप्त होती थी बल्कि उत्तरोत्तर अधिक व्याकुलता बढ़ती जाती थी।

भीतर बाहर नहिं रहि जाई। अति उदवेग रहेउ उर छाई ॥
निकसि कुटीर कुँअर चलि दीन्हे । कमला सम्मुख अति दुख कीन्हे ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी को अन्तर्बाह्य कहीं भी विश्रान्ति नहीं प्राप्त हो रही थी तथा उनके हृदय में अत्यधिक उद्विग्नता (बेचैनी) छाया हुई थी। अतः वे अपनी कुटिया से निकलकर अत्यन्त शोकार्त हो श्री कमला जी के सम्मुख चल दिये।

लागत देवहुँ छोड़ि शरीरा । सही न जात विरह विष पीरा ॥
भ्रात सखा बहु विधि समुझाये । कुँअरहिं कुटी प्रवेश कराये ॥

उन्हें ऐसा लग रहा था कि– इस शरीर को त्याग दूँ क्योंकि अब यह प्रभु वियोग रूपी विष की पीड़ा सहन नहीं की जा रही। उस समय उनके भ्राताओं व सखागणों ने उन्हें बहुत प्रकार से समझा कर कुटी के भीतर प्रवेश करा दिया।

सिद्धि दशा लखि प्रिय पति केरी । भयी शोक वश विरह बढ़ेरी ।।
धरि धीरज सोचत मन माहीं । केहिं विधि सुखी करहु इन काहीं ।।

श्री सिद्धि कुँअरि जी अपने प्रिय स्वामी श्री लक्ष्मीनिधि जी की अवस्था देखकर विरह की बृद्धि हो जाने से शोक संतप्त हो गयीं तथा धैर्य धारण कर विचार करने लगीं कि– अब मैं इन्हें किस प्रकार से सुखी करूँ?

प्राण नाथ जेंहि विधि सुख लहहीं । सोइ मम धर्म वेद अस कहहीं ॥
करि विचार श्री सिद्धि कुमारी । योग प्रभाव कछुक विस्तारी ॥

मेरे प्राणनाथ जिस प्रकार से सुख प्राप्त करें वही करना मेरा धर्म हैं, ऐसा वेद निरूपित करते हैं। ऐसा विचार कर श्री सिद्धि कुँअरि जी ने अपने योग प्रभाव का किंचित विस्तार किया।

दो०– रतनमयी लीला थली, शोभित विविध प्रकार।
लीला साज समाज सब, प्रगटेसि रुचि अनुसार ॥२८॥

उन्होंने विभिन्न प्रकार से सुशोभित सुन्दर रत्नभयी लीला–स्थली, लीला–सामग्री एवं लीला–समाज आदि को अपनी इच्छा के अनुसार प्रगट किया।

नाट्य पात्र सब दिव्य अनूपे। जस चाही तस सहज स्वरूपे ॥
पियहिं बुलाय चरित थल माहीं। बैठारेउ करि विनय सुहाहीं ॥

उनकी अभिनय–लीला के सभी पात्र दिव्य, अनुपमेय, नाट्यानुरूप एवं सहज स्वरूपवान थे। श्री सिद्धि कुँअरि जी नें अपने प्राण वल्लभ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को बुला, सुन्दर प्रार्थना कर लीला स्थल में विराज दिया।

आपहुँ बैठि गयी तिन पासा। पति पद प्रेम परम परकाशा॥
राम जन्म लीला सुख दायी। होवन लगी जनन मन भाई॥

स्वपति पद प्रेम परिपूर्णा वे स्वयं भी उनके समीप ही बैठ गयीं। तब वहाँ श्री राम जी महाराज के जन्म की जन–मन भावनी सुखदायी लीला होने लगी।

नौबत बाजत होत बधाई। मणिगन दशरथ रहे लुटाई॥
आनन्द सिन्धु मगन महतारी। सोहिल गान करहिं सब नारी॥

वहाँ सुन्दर नौवतें बजनें लगीं और बधाई उत्सव होने लगा। चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज मणियाँ लुटा रहे हैं, मातायें आनन्द के सागर में मग्न हैं तथा सभी नारियाँ सोहित गीत गा रही हैं।

चढ़े विमान देव जय बोलैं। शिव अरु काग मगन महिं डोलैं॥
वरसत सुमन निशान बजाई। नचत गगन सुर नारि सुहाई॥

देवता, विमानों में चढ़े हुए जय जयकार कर रहे हैं, भूत–भावन श्री शंकर जी और श्री काग–भुसुण्डि जी प्रेम मग्न हो भूमि में विचरण कर रहे हैं। देवगण नगाड़े बजाकर पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं तथा आकाश में देवांगनाएँ सुन्दर नृत्य कर रही हैं।

दो0– लखतहिं लीला सुखद शुचि, राम रूप शिशु नैन।
आनन्द मगन कुमार प्रिय, चित्त भयो सुख ऐन॥२९॥

उस सुन्दर सुखप्रद और पवित्र अभिनय लीला तथा श्री राम जी महाराज के शिशु स्वरूप का नेत्रों से दर्शन करते ही प्रिय कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी आनन्द में मग्न हो गये तथा उनका चित्त सुख का भवन हो गया।

छं0– भरि भाव आनँद मग्न तब, सरवस्व कुँअर लुटावते।
कहि जात सो सुख रंच नहिं, रस बिन्दु नयनन लावते॥
सुधि भूलि सिगरी प्रेम पगि, लखि लखि अवध आनँद महा।
नव नव रसैं दम्पति रसहिं, हिय होत लोचन फल लहा॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–उस समय भाव में भर, आनन्द मग्न होकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपना सर्वस्व लुटाने लगे। उस आनन्द का किंचित भी वर्णन नहीं किया जा सकता, उसका स्मरण मात्र ही नेत्रों में प्रेमाश्रु प्रवाहित कर देता है। उस अभिनय ली ला में श्री अयोध्यापुरी के महान आनन्द का दर्शन कर दम्पति श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँअरि जी स्मृति भूल, प्रेम में पग, नवीन–नवीन प्रेमरस में समाहित हो रहे थे। उनका हृदय नेत्रों का फल प्राप्त कर अत्यानन्दित हो रहा था।

पुनि दोउ नृत्यन लागि रस, करि गान पिकहिं लजावहीं ।
दिशि चार छायो सुख अमित, त्रिभुवन लहर लहरावहीं ॥
कह कुँअर प्यारी लाव शिशु, हिय तनिक तेहिं लावन चहौं ।
सुनि सिद्धि जननी गोद लै, हर्षण अरपि कह शिशु लहौ ॥

पुनः वे दोनों कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँअरि जी प्रेमरस में डूब कर नृत्य करते हुए गायन कर मृदु सुभाषिणी कोयल को भी लज्जित करने लगे। उस समय चारों दिशाओं में असीम आनन्द व्याप्त हो गया और तीनों लोकों में आनन्द की लहर लहराने लगी। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे प्यारी जू! आप शिशु को लाइये, मैं उसे कुछ समय के लिए अपने हृदय में लगाना चाहता हूँ। उनकी बात सुनकर श्री सिद्धि कुँअरि जी ने, श्री अम्बा जी की गोद से श्री राम शिशु को लेकर हर्षित हो उन्हें देते हुए कहा कि– लीजिए, प्यारे शिशु को लीजिए।

सो0–लियो कुँअर हरषाय, सुन्दर श्याम स्वरूप शिशु।
लीन्हो हृदय लगाय, सो सुख वरणत नहि बनै ॥३०॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उस श्याम स्वरूप वाले सुन्दर शिशु को हर्षित होकर अपने करों में ले लिया तथा अपने हृदय से लगा लिया। उस समय के उनके आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता।

भये मगन मन सुधि बिसराई । सुखदा शान्ति समाधि समाई ॥
जागे नाहिं कुँअर रस पागे । परमाकाश रूप अनुरागे ॥

अभिनय के श्री राम शिशु को गोद में लेकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी स्मृति भूलकर मन मग्न हो गये तथा सुख प्रदायक शान्ति स्वरूपी समाधि में समाहित हो गये। रस में पगे हुए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने परमाकाश (चित्ताकाश) में श्री राम रूप में अनुरक्त होने के कारण चैतन्य नही हो सके।

शिशुहिं विलग करि सिद्धि कुमारी । लीला कीन्ह विराम विचारी ॥
कुँअर जगावन उचित न जानी । सेवहिं सिद्धि बैठि रस सानी ॥

तब श्री सिद्धि कुँअरि जी ने 'शिशु' को उनसे अलग कर विचार पूर्वक लीला को विराम दिया तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को जगाना उचित न समझ, रस निमग्ना वे बैठ कर उनकी सेवा करने लगीं।

सखा भ्रात सब नित अकुलाहीं । बिना कुँअर बोले सुख नाहीं ॥
कहति सिद्धि जनि होहु दुखारा । कुँअर जगाये हानि अपारा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सभी सखा व भ्रातृगण नित्य ही व्याकुल रहते थे, उन्हें कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के वचन श्रवण किये बिना सुख नहीं प्राप्त होता था। उनके सखा व भ्रातृगणों को दुखी देखकर श्री सिद्धि कुँअरि जी ने कहा कि– आप लोग दुखी मत होइए, युवराज कुमार को जगा देने पर महत् हानि होने की सम्भावना है।

अपनेहि ते जगिहैं मम प्यारे । तब नहिं शंका नेक हमारे ॥
अति सुख सने समाधि सुलागी । चिदाकाश प्रभु रस महँ पागी ॥

जब मेरे प्यारे प्राण धन! अपने आप जागृत होंगे तब हमें किंचित भी आशंका नहीं रहेगी। क्योंकि ये चिदाकाश में प्रभु प्रेमरस में डूबे हुए अत्यधिक सुख से ओत–प्रोत है अतः इनकी सुन्दर भाव–समाधि लगी हुई है।

दो0– एकाएक जगाय दें, मम जिय संशय होय ।
परमा सुख सों विलग होय, कहुँ हिय गति नहिं खोय ॥३१॥

मेरे हृदय में शंका होती है कि– इन्हें सहसा जगा देने पर परमानन्द से वियुक्त हो जाने के कारण इनका हृदय कहीं अपनी गति को ही, न समाप्त कर दे।

कुँअरि बात सुन सखा सुभ्राता । त्यागे चेत करन की बाता ॥
लक्ष्मीनिधि तन रक्षहिं सिगरे । साने प्रीति रीति रस पगरे ॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी की मुख विनिश्रिता वार्ता को श्रवणकर उनके सखा और भ्रातृगणों ने कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधि जी को चैतन्य कराने की बात छोड़ दी तथा उनके शरीर की रक्षा प्रीति व रीति पूर्वक रस में डूबे हुए करने लगे।

जनक सुनैना सब सुधि पाई । देखे दशा तहाँ तब आई ॥
आनन्द मगन जानि तेहिं राजा । नहिं मत दियो जगावन काजा ॥

श्री जनक जी महाराज और श्री सुनैना अम्बा जी ने जब यह सभी समाचार प्राप्त किया तब वे वहाँ आकर उनकी स्थिति का अवलोकन किये। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को आनन्द में मग्न जानकर, श्री जनक जी महाराज ने उन्हें जगाने हेतु सहमति नहीं दी।

देश काल लखि तन रखवारी । सबहिं सिखायो नृपति हँकारी ॥
आवत जात मातु पितु दोऊ । जागन आस हिये अति होऊ ॥

श्री विदेहराज जी महाराज ने देश और काल के अनुसार उनके देह की रक्षा करने के लिए सभी को बुलाकर शिक्षा प्रदान की। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की अम्बा जी व श्री मान् दाऊ जी दोनों, अपने हृदय में कुमार के जाग्रत होने की तीव्रतर लालसा लिए उनके कुटीर में आते–जाते रहते थे।

यहि विधि कुँअर लगाय समाधी । आनँद मगन विरह बिन व्याधी ॥
युगल वर्ष बीते पुनि जागे । सीता राम कहत अनुरागे ॥

इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भाव–समाधि लगाये हुए प्रभु वियोग की व्याधि से रहित आनन्द में मग्न थे। पुनः वे दो वर्ष बीत जाने पर जाग्रत हुए तथा अनुराग पूर्वक श्री सीताराम नाम का उच्चारण करने लगे।

दो0– प्राण नाथ जागे लखी, सिद्धि कुँअरि हरषाय ।
आतुर ह्वै चरणन गिरी, लिये कुँअर लपटाय ॥३२॥

अपने प्राणनाथ को समाधि से जाग्रत होते देखकर श्री सिद्धि कुँअरि जी अतिशय हर्षित हुई और त्वरान्वित हो उनके चरणों में गिर पड़ी, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी नें उन्हें अपने हृदय से लिपटा लिया।

सिद्धि कुँअरि पति प्रेम प्रवीनी । लहेउ महा सुख हिये नवीनी ॥
भ्रात सखा चरणन सिर नाये । लक्ष्मीनिधि सबहिन हिय लाये ॥

उस समय पति प्रेम पारंगता श्री सिद्धि कुँअरि जी ने अपने हृदय में नवीन और महान सुख प्राप्त किया। कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के भ्रात और सखागणों ने उनके चरणों में शिर झुका प्रणाम किया तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने सभी लोगों को अपने हृदय से लगा लिया।

पूँछे कुँअर कहाँ शिशु रामा । रुको दिखत उत्सव अभिरामा ॥
हमहिं दिखाय इतै नहिं कोऊ । कारण कहहु प्रिया तुम सोऊ ॥

पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने पूछा कि– 'शिशु श्री राम जी' कहाँ हैं। वह सुन्दर उत्सव रुका हुआ दिखाई दे रहा है। इस समय हमें यहाँ कोई भी नहीं दिखाई पड़ रहा। हे प्रिया जी! आप ही इस का कारण कहिये।

सिद्धि कुँअरि कह हे रस शीला । तेहिं जानहिं अनुकरणहिं लीला ॥
ताही समय जनक तहँ आये । सहित सुनैना लखि सुख पाये ॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी ने कहा हे रसज्ञ कुमार! उस उत्सव को आप, अनुकरण लीला ही जानिये। उसी समय श्री मिथिलेश जी महाराज श्री सुनैना अम्बा जी सहित वहाँ आ गये तथा कुमार को देखकर सुख प्राप्त किये।

देखत कुँअर दण्डवत कीन्हा । दम्पति हिय लगाय सुख दीन्हा ॥
शीश सूँघि आशिष बहु दीन्ही । जागे कुँअर पेखि सुख लीन्ही ॥

उन्हें देखते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने दण्डवत किया। दम्पति श्री जनक जी महाराज ने उन्हें अपने हृदय से लगाकर सुखी करते हुए, शिरो घ्राण कर बहुत सा आशीर्वाद दिया और समाधि से जागृत हुए अपने कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखकर सुख प्राप्त किया।

दो०–जगे समाधिहिं ते कुँअर, उत्सव कीन्हे भूप ।
दान विविध विप्रन दिये, पूजे देव स्वरूप ॥३३॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी समाधि से जाग्रत हुए हैं, इस उपलक्ष्य में श्री जनक जी महाराज ने विशेष उत्सव किया जिसमें देव–स्वरूप ब्राह्मणों का उन्होने पूजन किया और विभिन्न प्रकार से दान दिया।

पूछे कुँअर प्रियहिं अतुराई । उत्सव कारण कहहु बुझाई ॥
बोली सिद्धि सुनहु मम प्यारे । लीला लखि प्रभु सुरति बिसारे ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उत्सव का दर्शन कर अपनी प्रिया श्री सिद्धि कुँअरि जी से आतुर हो प्रश्न किया कि– आप उत्सव का कारण समझाकर कहिये। तब श्री सिद्धि कुँअरि जी ने कहा–

हे मेरे प्यारे! सुनिये, आप अनुकरण लीला का दर्शनकर अपनी स्मृति भूल गये थे।–––

राम रूप शिशु हृदय लगायी। राउर लगी समाधि सुहाई ॥
जागे नाथ वरष द्वै बीते। देख सबहिं सुख भयो अतीते ॥

–––श्री राम जी महाराज के शिशु–स्वरूप को हृदय से लगाने पर आप की सुन्दर समाधि लग गयी थी। आज मेरे स्वामी दो वर्ष बीत जाने पर जाग्रत हुए हैं। यह देखकर सभी को महान सुख की प्राप्ति हुई है।–––

सो उत्सव करवावत दाऊ। सबहिन हृदय बढ़ेउ अति चाऊ ॥
चिन्तित रहे सदा सब कोई । जगिहैं कुँअर कौन दिन होई ॥

–––उसी कारण से श्री मान दाऊ जी उत्सव करवा रहे हैं तथा सभी के हृदय में अत्यधिक उत्साह बढ़ा हुआ है। उस समय (समाधि काल में) सभी लोग सदैव चिन्तित रहते थे कि– ऐसा कौन सा दिन होगा जब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी समाधि से जाग्रत होंगे।–––

देखि बदन सुनि सुनि मृदु बानी । लहिहैं आनँद नित्य महानी ॥
मोहिं समेत सबकी मन कामा। पूजी आज नयन अभिरामा ॥

उस समय कुमार के प्रिय दर्शन मुखारविन्द को देख–देख तथा प्रिय वाणी श्रवण कर हम नित्य महान आनन्द प्राप्त करेंगे। अतः हे नयनाभिराम! मुझ सहित सभी की मनोकामना आज परिपूर्ण हुई है।

दो0– सुनु कारण विस्मय कुँअर, कहत प्रिया सन बात ।
मोहिं लगत शिशु राम कहँ, अबहिन रहेउँ खेलात ॥३४॥

उत्सव का कारण श्रवण कर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी आश्चर्यान्वित हो अपनी प्रिया श्री सिद्धि कुँअरि जी से कहने लगे कि– मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि– मैं सम्प्रति श्री राम शिशु को प्यार दुलार कर रहा था।

समुझि न परै प्रिया तब बानी । होइहिं सत्य करैं का जानी ॥
जागे कुँअर एक पखवारा । भयो तदपि नहि चेत सँभारा ॥

हे प्रिया जी! आपके बचन मुझे समझ नहीं आ रहे, वे सत्य हो सकते हैं परन्तु हम क्या करें, हम कुछ भी नहीं जानते। यद्यपि कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को जाग्रत हुए एक पखवाड़ा (पन्द्रह दिन) व्यतीत हो गया था तथापि उन्हें चैतन्यता नहीं प्राप्त हो रही थी।

लीला मगन राम बनवासा। भूल्यो विरह क्लेश नहिं भासा ॥
षोडसवें दिन तन सुधि आई । सिद्धिहिं बोलि कुँअर अतुराई ॥

वे श्री राम जी महाराज की अनुकरणी शैशव लीला में मग्न थे उन्हें श्री राम जी महाराज का वनवास भूला हुआ था तथा प्रभु वियोग का दुख किंचित भी प्रतीत नहीं हो रहा था। जब सोलहवें दिन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को शरीर की स्मृति आई तब वे व्याकुल हो श्री सिद्धि कुँअरि जी से बोले–

प्रिया जटा धारे हम माथे। कारण कौन रही तुम साथे ॥
कवने समय न सूझै मोही। पूँछहुँ बार बार मैं तोही ॥

हे प्रिया जी! क्या कारण है कि—हम शिर में जटायें धारण किये हैं, आप तो हमारे साथ ही रह रही हैं। यह कौन सा समय है? मुझे समझ नहीं पड़ रहा, इसलिए बार बार आपसे पूछ रहा हूँ।

आपन सदन छोंड़ि कहँ आये। बन महँ बसे पर्ण गृह छाये ॥
बोली सिद्धि राम सिय हेता। छोड़ि दियो प्रभु सुखद निकेता ॥
हेतू कौन प्रिया बतराई। सीताराम कहिय कुशलाई ॥

हम अपने भवन छोड़ कर कहाँ आये हुए हैं तथा वन में पर्ण कुटी बना कर क्यों निवास कर रहे हैं? अपने प्राणाधार के वचनों को श्रवण कर श्री सिद्धि जी ने कहा कि— मेरे स्वामी ने श्री सीताराम जी के हेतु ही अपने सुखप्रदायक भवन का त्याग कर दिया है। पुनः उन्होने कहा—हे प्रिया जू! इसमे श्री सीताराम जी का कौन सा हेतु है? आप श्री सीताराम जी की कुशलता का वर्णन कीजिये।

दो0—की मिथिला की अवध बस, सुन्दर युगल किशोर।
देते सुख परिकरन कहँ, अनुपम श्यामल गौर ॥३५॥

अनुपमेय सुन्दर, श्याम और गौर वर्ण वाले युगल किशोर श्री सीताराम जी अपने परिकरों को सुख प्रदान करते हुए इस समय, श्री मिथिलापुरी में अथवा श्री अयोध्यापुरी में कहाँ निवास कर रहे हैं ?

भरि जल नयन सिद्धि तब बोली । सुनहु कहहुँ कारण सब खोली ॥
सीय राम करते बनवासा। जटा जूट धारे सहुलासा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के वचनों को सुनकर, श्री सिद्धि कुँअरि जी अपने नेत्रों में अश्रु भरकर बोलीं— हे नाथ! मैं सभी कारण स्पष्ट कर बतला रही हूँ। सुनिये, श्री सीताराम जी जटाजूट धारण किये हुए आनन्दपूर्वक वन में निवास कर रहे हैं।———

ताते आपहुँ जटा सम्हारी। पर्ण कुटीर बसत तपकारी ॥
बारह वर्ष पूजने आये। हमहिं तुमहिं तपते सत भाये ॥

———इसीलिए आप भी जटायें धारण कर पर्ण—कुटी में तपस्या करते हुए निवास कर रहे हैं। हमें और आपको सद्‌भाव पूर्वक तपस्या करते हुए बारह वर्ष पूर्ण होने वाले हैं।

प्रिया बचन सुनि सब सुधि जागी। लुढ़कि परे महि रोवन लागी ॥
हा सिय हा रघुनन्दन प्यारे। कहत कुँअर विलपत दुख भारे ॥

अपनी प्रिया श्री सिद्धि कुँअरि जी के वचनों को सुनकर, कुमार की सम्पूर्ण स्मृति जाग्रत हो गयी तब वे भूमि में लुढ़क पड़े व हाय! सिया जू, हाय! प्यारे रघुनन्दन जू, कह—कहकर महान दुख में डूब, विलाप करते हुये रुदन करने लगे।

छोड़ि गये कहँ हे मन चोरा। लिये संग नहिं अवध किशोरा ॥
परम पालु भगिनि मम सीते। गई कहाँ तजि मोहि मन चीते ॥

हे मेरे मन को चुराने वाले, अयोध्या के राज किशोर श्री राम जी महाराज! आप मुझे कहाँ छोड़ गये हैं, मुझे अपने साथ क्यों नहीं लिये? हे मेरी परम कृपालुनी अनुजा श्री सिया जू! आप मुझे अपने मन और चित्त से विलग कर कहाँ चली गयी हैं।

दो०— यदपि विरह रस मे पगी, स्वयं सिद्धि अकुलात।
तदपि पियहि समुझावती, कहि कहि सुन्दर बात ॥३६॥

यद्यपि श्री सिद्धि कुँअरि जी स्वयं भी प्रभु वियोग रस में डूबी हुई व्याकुल रहती थीं तथापि वे अपने प्राणधन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को सुन्दर वार्ता का विनियोग करती हुई, समझाती रहती थीं।

प्रिया बचन सुनि कछु धरि धीरा। जपहिं राम भरि नयनन नीरा ॥
जब जब होय हृदय उदवेगा। तब तब कुँअर जानि संवेगा ॥

अपनी प्रिया श्री सिद्धि कुँअरि जी के बचनों को सुनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी किंचित धैर्य धारण करते और आँखों में अश्रु भरकर श्री राम जी महाराज के नाम का जप किया करते थे। इस प्रकार जब–जब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में उद्विग्नता (व्याकुलता) हो जाती तब–तब श्री सिद्धि कुँअरि जी उनके आवेग को समझ कर,———

देवति लीला ललित दिखाई। मिथिला काण्ड केर सरसाई ॥
शान्ति लहहिं तब देखि कुमारा। पुनः पगैं रस विरह मझारा ॥

———श्री मिथिला काण्ड में वर्णित रसमयी सुन्दर लीलाओं का आनन्द पूर्वक अभिनय कर दर्शन करा देती थीं जिन्हें देखकर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी शान्ति प्राप्त करते थे परन्तु वे कुछ ही समय में पुनः प्रभु विरह में पग जाते थे।

छिन छिन विरह तरंगिनि बाढ़ी। बोरत कुँअरहिं कढ़ै न काढ़ी ॥
शित भये अति जनक कुमारा। अस्थि चर्म अवशेष अकारा ॥

इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को प्रभु विरह की सरिता प्रत्येक क्षण अपने प्रवाह में डुबाती रहती थी जिससे वे श्री सिद्धिकुँअरि जी के प्रयत्न पूर्वक निकालने पर भी नहीं निकल पाते थे। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का शरीर अत्यन्त ही दुर्बल हो गया था जो हड्डी और चमड़े का अवशिष्ट आकार मात्र रह गया था।

चीन्ह न जाँय खीन तन नामा। निकसत अहनिशि मुख सियरामा ॥
अविरल बहे आँसु अति धारा। चित्त मगन सिय राम मझारा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी पहचाने नहीं जाते थे, उनका शरीर अत्यन्त ही दुर्बल होकर नाम मात्र का रह गया था परन्तु उनके मुख से अहो–रात्रि श्री सीताराम नाम निकलता रहता था। उनके नेत्रों से लगातार आँसुओं की अत्यधिक धारा बहती रहती थी और उनका चित्त श्री सीताराम जी के नाम, रूप, लीला व धाम में मग्न रहता था।

दो०—चर्म चढ़े कंकाल सम, लागत जनक कुमार।
देखि दशा सुर जय बदत, बरषत सुमन अपार ॥३७॥

उस समय जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ऐसे दिखाई दे रहे थे जैसे हड्डियों के ढाँचें में चमड़ा चढ़ा हुआ हो। उनकी ऐसी अवस्था देखकर देवता जय घोष करते हुए पुष्पों की विपुल वर्षा कर रहे थे।

कुँअर प्रेम दिवि देव सराहैं। होत मगन मन भरैं उछाहैं॥
आँख धँसी का कहिय शरीरा। उठत झमत उर अन्तर पीरा॥

देव–गण कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के दिव्य राम प्रेम की प्रशंसा करते थे तथा उत्साह भरे हुए मन में मग्न हो रहे थे। राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के शरीर का क्या कहा जाय? आँखे धँसी हुई थीं, हृदय में प्रभु वियोग की पीड़ा अपना निवास बनाये थी जिससे उठने पर वे चक्कर खाकर गिर पड़ते थे।

इक दिन आई मातु सुनैना। कुँअर गोद लै बोली बैना॥
तात सुखाय गये सब भाँती। केवल स्वाँसा आवत जाती॥

उनकी ऐसी अवस्था श्रवणकर एक दिन अम्बा श्री सुनैना जी आयीं और कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को गोद में लेकर बोलीं– हे तात श्री लक्ष्मीनिधि! आप सभी प्रकार से अत्यन्त कृशित हो गये हैं, अब तो आपके शरीर में केवल श्वाँस ही आ–जा रही है।–––

जल लौं लेत नहीं तुम बारे। मेटिहौ अवधि दिवस कत प्यारे॥
वर्ष द्वैक बाकी रह गयऊ। शित शरीर तात अति भयऊ॥

–––हे लाल! इस समय, आप जल तक ग्रहण नहीं कर रहे, फिर, आप किस प्रकार से श्री राम–वनावधि के दिनों को व्यतीत कर पायेंगे। हे तात्! अभी तो लगभग दो वर्ष शेष हैं और आपका शरीर अत्यन्त ही क्षीण हो गया है।–––

भेंटहु सीय राम सुखदाई। करहु वत्स सुठि सोइ उपाई॥
सिद्धिहुँ क्षीन भयी मम प्यारी। तन अनुसार छाँह जिमि चारी॥

–––हे वत्स! आप परम सुख–प्रदायक श्री सीताराम जी से भेंट कर सकें इस हेतु वैसा ही सुन्दर उपाय कीजिये। मेरी प्रिय पुत्र–वधू श्री सिद्धि कुँअरि जी भी उसी प्रकार अत्यन्त क्षीणकाय हो गयी हैं जिस प्रकार शरीर का अनुकरण उसकी छाया करती है।–––

दो0– देखि दशा तव लाल मोहिं, होत अधिक संताप।
एक आँख इक पूत की, कुदशा नहिं सहि जात॥३८॥

–––हे मेरे प्राणाधिक प्रिय लालन! आपकी यह अवस्था देख कर मुझे अत्यधिक दुख होता है, क्योंकि एक आँख और एक पुत्र की दयनीय स्थिति रंचमात्र भी नही सहन की जाती।–––

भोजन पावहु कछुक सुहाता। पुरवहु व्रत अपनो सुखदाता॥
विरह पीर धरि धीर सम्हारी। वितवहु लालन दिन दुखकारी॥

–––अतः आप कुछ रुचिकर सुन्दर भोजन कीजिये और अपने सुख प्रदायक व्रत को पूर्ण कर लीजिये। हे लाल! धैर्य धारण कर आप श्री सीताराम जी के विरह की पीड़ा को सम्हाले हुए इन

दुख के दिनों को व्यतीत कीजिये।———

बीते अवधि भेंटि सिय रामा। पावहु परमानन्द ललामा॥
यह अभिलाष मोर भलि ताता। पुरवहु जानि आपनी माता॥

———जिससे वनवास की समय सीमा समाप्त होने पर श्री सीताराम जी से भेंट कर आप सुन्दर परमानन्द प्राप्त कर सकें। हे तात! मुझे अपनी माता समझ कर, आप मेरी इस सुन्दर इच्छा को पूर्ण कर दीजिये।

सुनत कुँअर पद शीश झुकाई। बोले बचन विरह रस छाई॥
काह कहौं री मम प्रिय मैया। यह सब श्यामा श्याम सहैया॥

अपनी अम्बा जी के वचनों को सुनते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री अम्बा जी के चरणों में शीश झुका प्रणाम कर प्रभु विरह रस में डूबे हुए बचन बोले– हे मेरी प्रिय श्री अम्बा जी! मैं क्या कहूँ? यह सभी कुछ, वे श्यामा–श्याम श्री सीताराम जी ही मुझे सहन करा रहे हैं।———

हृदय नयन धँसि खाय न देहीं। डारत कौर रोकि जनु लेहीं॥
भीतर देश जान नहि पावैं। यद्यपि कीन्हे कोटि उपावै॥

———वे हमारे हृदय और नेत्रों में बैठकर भोजन नहीं करने देते, कवल डालते ही मानो उसे रोक लेते हैं। यद्यपि इसके निवारण हेतु हमने करोड़ों उपाय किये हैं फिर भी हमारे उदर के भीतर भोजन जाने ही नहीं पाता।———

दो0– विरह अग्नि फोड़ा परेउ, बढेउ हृदय के बीच।
नयन गली पानी बहत, छिन छिन मम तन सींच॥३९॥

———मेरे हृदय में विरह रूपी अग्नि की दाह से फफोला पड़ गया है जो अत्यधिक बढ़ गया है, जिसके कारण नेत्रों के मार्ग से उसका पानी निकलता हुआ प्रत्येक क्षण मेरे शरीर को सींचता रहता है।———

व्रण कुनीर जब लगा शरीरा। बहिरहु व्याधि भई करि पीरा॥
रोम रोम व्यापेउ यह रोगा। छुआछूत ते बढ़ेउ स्वभोगा॥

———उस फफोले का विकार युक्त पानी जब शरीर में लगता है तो शरीर के बाहरी अंगों में भी व्याधि उत्पन्न हो कर अत्यधिक पीड़ा करती है। इस प्रकार मेरे रोम–रोम में यह रोग व्याप्त हो गया है जिसकी पीड़ा अपने सुन्दर भोग रूपी छुआ–छूत के कारण अत्यधिक बढ़ गयी है।———

मोहि तपावै हे महतारी। यथा धातु अगिनी बिच डारी॥
सीयराम बिन मिले हमारे। जाय न रोग मातु उर धारे॥

———हे श्री अम्बा जी! यह रोग मुझे उसी प्रकार अत्यधिक ताप (जलन) देता है जिस प्रकार कोई धातु अग्नि के मध्य पड़ी हुई जलती रहती है। हे श्री अम्बा जी! आप अपने हृदय में यह बात धारण कर लीजिए कि– श्री सीताराम जी के मिले बिना हमारे हृदय का यह रोग समाप्त नहीं होगा।———

मातु रजाय सदा मम शीशा । जानहिं सत्य राम जगदीशा ॥
काह करौं मैं विवश अपारा । चाहौं कीन्ह न होय बिचारा ॥

———हे अम्बा जी! आपकी आज्ञा मुझे सदैव शिरोधार्य है, इस सत्य बात को जगदीश्वर श्री राम जी महाराज जानते हैं, परन्तु मैं क्या? करूँ, मैं अत्यन्त ही विवश हूँ, विचार (इच्छा) करने पर भी मैं अपना मनचाहा नही कर पाता।———

ताते छमिय मोर अपराधा । संशय तजहु न मम तन बाधा ॥
गुरु अशीष मोरे शिर माता । मिलिहैं सीयराम सुखदाता ॥

———इसलिए आप मेरे अपराध को क्षमा कर, अपने मन से संदेह को त्याग दीजिए, मेरे शरीर में कोई व्याधि नहीं है। हे श्री अम्बा जी! श्री गुरुदेव जी का शुभाशीर्वाद मेरे शिर पर है अतः मुझे अवश्य ही सुख प्रदायक श्री सीताराम जी प्राप्त होंगे।———

दो0— अस बिचारि सुनु मातु मम, करहु मोर जनि सोच ।
राम सिया मंगल नितहिं, चहति रहहु दुख मोच ॥४०॥

———हे श्री अम्बा जी! सुनिये, आप ऐसा का विचार कर मेरी चिन्ता मत कीजिये और दुख को मिटाकर कर नित्य श्री सीताराम जी की मंगल कामना करते रहिये।———

जो पै राम सीय कुशलाता । अमिट रही नित हे मम माता ॥
तौ जानहु सब कुशल हमारा । आनँद मगन रही तव प्यारा ॥

———हे श्री अम्बा जी! यदि श्री सीताराम जी की कुशलता शास्वत बनी रहेगी तभी हमारी समग्र कुशलता समझिये और तभी यह आपका पुत्र आनन्द में मग्न रहेगा।

माता पुत्र प्रेम रस साने । प्रभु चर्चा करि हिय सुख माने ॥
पुनि निज भवन सुनैना गवनी । शोचत कुँअर जनक प्रिय रवनी ॥

इस प्रकार अम्बा श्री सुनैना जी और उनके पुत्र श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम रस में डूबे, प्रभु श्री राम जी महाराज की चर्चा करते हुए हृदय में सुखानुभव कर रहे थे। श्री जनक जी महाराज की प्रिय महारानी श्री सुनैना जी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का चिन्तन करती हुई अपने भवन को प्रस्थान कर गयीं।

सिद्धि कुँअरि अरु कुँअर सुजाना ।काटत दिवस विरह रस साना ॥
फफकत सिसकत रुदत अचैना ।राम बिना नहि कछु दिन रैना ॥

इस प्रकार विरह रस में मग्न श्री सिद्धि कुँअरि जी और परम सुजान कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी, अपने दिन व्यतीत कर रहे थे। वे प्रभु वियोग में फफकते, सिसकते और बेचैन होकर रुदन करते रहते थे, उन्हें श्री राम जी महाराज के बिना दिन—रात्रि कुछ भी अच्छा नहीं लगता था।

मलिन वसन अरु मलिन शरीरा । भयो कुँअर मन लहत न धीरा ॥
फेचकुर चुअत विकल जब रोवत । भयो मलिन मुख यद्यपि धोवत ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के वस्त्र और शरीर म्लीन हो गये थे तथा उनका मन धैर्य धारण नहीं कर रहा था। रुदन करते समय उनके मुख से फेचकुर (थूक और लार आदि) बहने लगता था और बार–बार धोते रहने के बाद भी मुख कान्तिहीन दिखाई देता था।

प्रेम चिन्ह तन छूट पसीना। मलिन कुमार लगै रस भीना॥
रोवत रोवत विवरण भयऊ। मलिन काय मन उज्जवल ठयऊ॥

उनके शरीर में प्रेम के सभी चिन्ह प्रकट हो गये थे, स्वेद (पसीना) बहता रहता था तथा कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी विरह रस में सने हुए मलिन–काय प्रतीत हो रहे थे। रोते रोते यद्यपि उनकी काया विवर्ण व मलीन पड़ गयी थी तथापि उनका मन अत्यन्त ही उज्जवल था।

दो0– राख छिपी पावक यथा, बादल ओटहिं भान।
मलिन बदन तिमि कुँअर लस, करत राम सिय ध्यान॥४१॥

जिस प्रकार राख में छिपी हुयी अग्नि और बादलों की ओट में सूर्य दिखाई पड़ते हैं उसी प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी मलिन मुख, श्री सीताराम जी का ध्यान करते हुए सुशोभित हो रहे थे।

विरहिन की गति सुनु हनुमाना। विधि हरि हर नहि सकैं बखाना॥
राम प्रेम मद मत्त मदीले। रंगे रहैं रंग नीले पीले॥

हे श्री हनुमान जी! सुनिये, प्रभु विरह में संतप्त जनों की स्थिति का वर्णन श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी और श्री शंकर जी भी नहीं कर सकते। वे प्रभु वियोगी प्रेमीजन श्री राम जी महाराज के प्रेम–मदिरा में मतवाले हुए सुन्दर पीत व श्याम वर्ण वपु वाले श्री सीताराम जी के प्रेम रंग में रँगे रहते हैं।

कुँअरहिं मलिन देखि सब भ्राता। होहिं दुखी बहु व्याकुल गाता॥
एक दिवस सब मनहिं बिचारी। भैयहि सेवहिं सकल सँभारी॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को विवर्ण (मलिन) गात देखकर उनके सभी भ्रातृगण व्याकुल वदन व अत्यधिक दुखी होते थे। एक दिन सभी ने मन में विचार किया कि– हम सभी भैया श्री लक्ष्मीनिधि जी की सेवा तो सम्हाल पूर्वक करते हैं।

जोगवहि सकल भाव सरसाई। तदपि मलिनता दूरि न जाई॥
भ्रातु प्रेमवश बहु दुख पागे। गये एक दिन तेहि के आगे॥

हम सभी भाई, यद्यपि श्री मान् भैया जी की अंगसेवा भाव रस में पगे हुए करते हैं तथापि इनकी मलीनता दूर नहीं होती। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के भ्रातृ–गण उनके प्रेम के वशीभूत हो अतिशय दुख में पगे रहते थे। एक दिन जब वे सभी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सामने गये।

चिदानन्दमय देहहिं देखे। लक्ष्मीनिधि तप तेज विशेषे॥
अमित भानु सम परम प्रकाशा। कोटिन काम विमोहन भाषा॥

उस समय, उन्होंने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की तपःपूत, विशेष तेज से परिपूर्ण व सच्चिदानन्दमयी देह का दर्शन किया। उनका शरीर असीमित सूर्यो के समान परम प्रकाशवान और

करोड़ों कामदेवों को भी विमोहित करने वाला प्रतीत हो रहा था।

दो0– कनक सिंहासन राजहीं, दम्पति आनँद रूप ।
सखी सखा सेवहिं सुभग, सिगरे दिव्य अनूप ॥४२॥

उन्होने देखा कि आनन्दस्वरूप दम्पति श्री लक्ष्मीनिधि जी स्वर्ण सिंहासन में विराज रहे हैं व उनकी सेवा में सभी दिव्य, अनुपमेय व सुन्दर सखियाँ और सखागण संलग्न हैं।

छत्र चमर लै सेवा साजा । ठाढ़े सकल कुँअर हित काजा ॥
नृत्यहिं गावहिं दिव्य सुनारी । सीय राम यश वरणि अपारी ॥

वे सभी छत्र, चवँर और अन्य सेवा सामग्री लिए हुये कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सेवा कार्य हेतु खड़े हैं। दिव्य व सुन्दर अङ्गनायें श्री सीताराम जी के असीमित महद्यश का वर्णन कर नृत्य और गान कर रही हैं।

जनक कुँअर अरु सिद्धि कुमारी । सुनि सुख लहहिं प्रेम रस गारी ॥
देखे बहुरि सीय लै गोदे । बैठे कुँअर दुलार प्रमोदे ॥

श्री जनक नन्दन लक्ष्मीनिधि जी और श्री श्रीधर नन्दिनी सिद्धि कुँअरि जी प्रेम रस में निमग्न हुये, उसे श्रवणकर सुख सम्प्राप्त कर रहे हैं। पुनः भ्रातृ गणों ने देखा कि– कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी अनुजा श्री सिया जू को गोद में लेकर बैठे हुए आनन्द पूर्वक दुलार कर रहे हैं।

भ्रात अंक सीता सुख मानी । लिपटि रही गल हिय हुलसानी ॥
भ्रात भगिनि अतिशय सुख पागे । रहे बताय भाव अनुरागे ॥

श्री सीता जी अपने श्री मान् भैया जी की गोद में अत्यधिक सुखानुभव करती हुई आनन्द पूर्ण ह्रदय से उनके गले से लिपटी हुई हैं तथा भाई व बहन दोनों असीम सुख में पगे हुए भाव भरे, प्रेम पूर्वक बातें कर रहे हैं।

तीसर दृश्य लखे सब भ्राता । बैठे कुँअर राम हरषाता ॥
भुज गल मेलि कपोलहिं मेली । छके प्रेम रस विरह ढकेली ॥

सभी भ्राताओं ने तृतीय दृश्य का दर्शन किया कि– कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी और श्री राम जी महाराज हर्ष पूर्वक गले में परस्पर बाँहे डाले हुए, कपोल से कपोल मिलाये, विरह को दूर भगा कर प्रेमानन्द में छके विराजे हुए हैं।

दो0– प्राण सखे इक एक कहँ, कहत दोउ रस पाग ।
मिले रहत जनु अबहिं मिलि, लेत स्वाद अनुराग ॥४३॥

वे प्रेम रस से आपूरित हुए, परस्पर हे प्राण सखे! हे आत्माधार! सम्बोधन करते हुए इस प्रकार मिले हुए अनुराग पूर्वक मिलन का आस्वाद ग्रहण कर रहे हैं मानो अभी ही मिले हों।

सेवति श्रीधर पुत्रि नवेली । नृत्यहिं गावहिं सखी सहेली ॥
यहि प्रकार लखि सिगरे भ्राता । आनन्द पूरे पुलकित गाता ॥

परम नवेली श्री श्रीधर नन्दिनी सिद्धि कुँअरि जी उन युगल राज कुमारों की सेवा कर रही हैं तथा उनकी सखियाँ और सहेलियाँ नृत्य व गायन कर रही हैं। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सभी भ्रातागण इस प्रकार के दृश्यों का दर्शन कर पुलकित शरीर और आनन्द से परिपूर्ण हो गये।

कछुक काल महँ दृश्य दुरायो। सखा भ्रात विस्मय बड़ पायो॥
जाने कुँअर प्रभाव अनूपा। देखे तिन कर सहज स्वरूपा॥

कुछ समय में वह दृश्य दूर हो गया तब उनके सखा और भ्रातागण अत्यन्त आश्चर्य को प्राप्त हुए। उन्होंने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के अनुपमेय प्रभाव को समझ कर उनके सहज स्वरूप का दर्शन प्राप्त कर लिया।

राम सीय नहिं कबहुँ वियोगा। जिमि घृत क्षीर लखैं सब लोगा॥
लीला मात्र बने विरहीले। सदा एक रस राम रँगीले॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से श्री सीताराम जी का वियोग कभी नहीं होता, सभी इनका दर्शन उसी प्रकार अभिन्न रूप से करते हैं जिस प्रकार दूध में घी। ये तो मात्र भगवल्लीला के लिए ही प्रभु–विरही बने हुए हैं अन्यथा श्री सीताग्रज सदैव श्री राम जी महाराज से एकरस व उनके प्रेम रंग के रसिक बने रहते हैं।

इक के तीन तीन के एका। बनि विलसैं कर चरित अनेका॥
कुँअर सिया रघुनाथ पियारे। तीनहुँ एक तत्व लखि पारे॥

रघुनन्दन श्री राम जी, जनक नन्दिनी श्री जानकी जू और कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी एक के तीन और तीन के एक बन कर अनेक प्रकार के चरित्र करते हुए अपनी रुचि के अनुसार सुखोपभोग करते रहते हैं। ये तीनों (कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, श्री सीता जी तथा प्रिय श्री राम जी महाराज) एक ही तत्व समझ आते हैं।

दो0– इक इक सो नहिं अलग कहुँ, रहैं सदा इक साथ।
अनुपम दरशन पाय हम, सब विधि भये सनाथ॥४४॥

ये एक दूसरे से कभी भी अलग नहीं होते, सदैव एक साथ रहते हैं। आज यह अनुपमेय दर्शन प्राप्त कर हम सभी प्रकार से सनाथ हो गये।

भरि भल भाव चरण शिर नाये। लक्ष्मीनिधि निज हृदय लगाये॥
सिद्धिहिं पुनि सब किये प्रणामा। दीन्ह अशीष सो प्रेम प्रधामा॥

वे सभी भ्राता व सखागण कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के चरणों में सुन्दर भाव पूर्वक शिर झुका प्रणाम किये तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने सभी को अपने हृदय से लगा लिया। पुनः सभी नें श्री सिद्धि कुँअरि जी को प्रणाम किया और उन प्रेमालया ने सभी को आशीर्वाद प्रदान किया।

दृश्य बात पुनि तहाँ चलाई। भ्रात सखा जस लखे अमाई॥
कुँअर कहेउ हौ सब बड़ भागी। पायो राम दरश अनुरागी॥

पुनः कुँअर के भ्राताओं और सखाओं ने उन दृश्यों की बात चलाई, जिन अलौकिक दृश्यों का

उन्होने दर्शन किया था। तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे अनुरागियो! आप सभी बड़ भागी हैं जो श्री राम जी महाराज के दर्शन प्राप्त किये।–––

मोकहँ तो वियोग प्रभु दीन्हा । कब मिलिहैं पुनि राम रसीना ॥
इतना कहि लोचन झरि लाई । कुँअर गयेउ रस सिन्धु समाई ॥

–––मुझे तो प्रभु श्री राम जी महाराज ने अपना वियोग ही प्रदान किया है, अब न जाने वे रस विग्रह श्री राम जी महाराज मुझे कब मिलेंगे। ऐसा कहते ही उनके नेत्रों ने अश्रुओं की झड़ी लगा दी तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी रस के सागर में समाहित हो गये।

यहि प्रकार दिन दिन विरहाने । छन छन देखहिं दृश्य महाने ॥
प्रकटत भाव अनेक प्रकारा । तथा करत लीला सुकुमारा ॥

इस प्रकार प्रत्येक दिन प्रभु–विरह में समाये हुए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रतिक्षण प्रभु लीला के महान दृश्यों के दर्शन करते हुए अनेक प्रकार के भाव प्रगट करते रहते थे तथा तदनुसार ही चरित्र किया करते थे।

दो0– तनिक खबरि नहि देह की, जग सब गयो बिलाय ।
जित देखें तित प्रभु दिखैं, रहेव श्याम रँग छाय ॥४५॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अपने शरीर का रंच मात्र स्मरण नहीं रहता था, उनका सम्पूर्ण संसार विनष्ट हो गया था, वे जहाँ भी दृष्टिपात करते थे उन्हें प्रभु श्री राम जी महाराज ही दिखाई पड़ते थे तथा उनका मन श्याम रंग में डूब गया था।

एक दिवस मिथिलेश कुमारा । बैठ इकान्त कुटीर मझारा ॥
ध्यावत रहेव राम रघुराई । ताही समय सिद्धि तहँ आई ॥

एक दिन मिथिलेश कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी एकान्त में अपनी कुटिया के मध्य श्री राम जी महाराज का ध्यान कर रहे थे उसी समय वहाँ श्री सिद्धि कुँअरि जी आ गयीं।

देखत कुँअर सीय रस पागे । सुधि बुधि भूलि गये अनुरागे ॥
सिया समुझि सिद्धिहिं लै गोदा । करत प्यार उर भरे प्रमोदा ॥

उन्हें देखते ही परम अनुरागी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सीता जी के प्रेम रस में पगे हुए स्मृति भूल गये और श्री सिद्धि कुँअरि जी को श्री सीता जी समझ कर गोद में ले आनन्द परिपूर्ण हृदय से, उनका प्यार–दुलार करने लगे।

हाय भगिनि मम प्राण पियारी । अब लगि रही कहाँ सुकुमारी ॥
तलफत रहे तोहि बिन सीते । आजु मिली मोहि प्राण पिरीते ॥

हाय! मेरी प्राण प्यारी अनुजा, सुकुमारी श्री सिया जू! आप अब तक कहाँ थी। हे श्री सिया जू! मेरे प्राण आपके बिना तड़प रहे थे, हे मेरी प्राण प्रियतरा सीते! आप मुझे आज प्राप्त हुई हैं।–––

कत शरीर कृश भयो महाना । हाय कहत बहु रुदत सुजाना ॥
सिय शता हिय सहेव न जाई । मुरछि परेउ अवनी अकुलाई ॥

———हाय! आपकी देह किस प्रकार कृशित हो गयी है ऐसा कहकर वे परम सुजान कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी बहुत रुदन करने लगे। उनके हृदय को श्री सिया जू की दुर्बलता सहन नहीं हो रही थी अतः वे व्याकुलतावश मूर्छित होकर भूमि में गिर पड़े।

दो0—सिद्धि जगावति कुँअर कहँ, करि अनेक उपचार ।
कछुक काल महँ सुधि लही, श्रवत नयन जल धार ॥४६॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को विविध उपचारों के द्वारा जागृत कराती हैं तब वे नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की धारा बहाते हुए कुछ समय में स्मृति को प्राप्त करते हैं।

बोली सिद्धि सुनहिं मम प्यारे । सीता इतै नहीं पगु धारे ॥
हमहिं रही तव सन्मुख आई । सिया समुझि मोहि देह भुलाई ॥

उन्हें चैतन्य देखकर श्री सिद्धि कुँअरि जी ने कहा— हे मेरे प्यारे! सुनिये, आपकी अनुजा श्री सीता जी यहाँ नहीं हैं, आपके सामने मैं ही आयी थी तथा आप मुझे ही श्री सीता समझ कर अपनी शरीर स्मृति भूल गये थे।

सीता राम संग सहुलासा । करति विपिन महँ सुख सह वासा ॥
सुनि बनवास कुमार भुआरा । लागेउ करन प्रलाप अपारा ॥

श्री सीता जी तो सोत्साह श्री राम जी महाराज के साथ वन में सुखपूर्वक निवास कर रही हैं। श्री सीता जी का वन निवास सुनकर श्री जनक जी महाराज के कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अतिशय विलाप (रुदन) करने लगे।

हा सीते बन बसत दुखारी । सेवा नहिं कछु कियो तुम्हारी ॥
मैं बनि सीता रघुवर साथा । जातेव बनहिं भजत रघुनाथा ॥

हाय, श्री सिया जू! आप दुखपूर्वक वन में निवास कर रही हैं, मैं आपकी कुछ भी सेवा नहीं कर सका। हे श्री सिया जू! मैं ही श्री सीता बनकर श्री राम जी महाराज के साथ उनका भजन करता हुआ वन चला जाता।

तुम्हरे बद मैं बन दुख भोगी । रहतो सुखी न मन कछु रोगी ॥
तुम बनि रूप हमारो सीता । बसतीं मिथिला सुख संप्रीता ॥

हे श्री सिया जू! मैं आपके स्थान पर वन के दुखों को सहन करते हुए स्वस्थ मन से सुखी रहता और आप हमारा रूप बनाकर श्री मिथिलापुरी में सुख और प्रेम पूर्वक निवास करती रहतीं।

दो0—पुजती मोरी आश शुभ, हे मिथिलेश कुमारि ।
अवसर चूकेव हाय मैं, खोयो निधी सुखारि ॥४७॥

इस प्रकार हे श्री मिथिलेश नन्दिनी सिया जू! मेरी शुभ—मनोकामना पूर्ण हो जाती परन्तु हाय!

हाय ! अब तो वह शुभ समय हाथ से निकल गया है तथा मैं अपनी अतिशय सुखकारी निधि श्री सिया जू को हाथ से गँवा चुका हूँ।

हा रघुनन्दन बनहिं सिधाये । मो कहँ पहले नाहिं बताये ॥
जनत्यों प्रथमहिं तव बनवासा । जाइ अवध हे राम हुलासा ॥

हाय! रघुनन्दन श्री राम जी महाराज! आप वन को चले गये और मुझे यह बात पहले नहीं बतायी। यदि मैं पूर्व से आपके वनवास को जान जाता तो हे श्री राम जी महाराज! मैं आनन्दपूर्वक श्री अयोध्यापुरी पहुँच———

मैं बनि रूप तुम्हार पियारे । जातो बनहिं सप्रेम सुखारे ॥
तुमहिं बनाय आपनो रूपा । मिथिला भेजतो रघुकुल भूपा ॥

———हे प्यारे! मैं आपका रूप बनाकर प्रेम सहित सुखपूर्वक वन को चला जाता तथा हे रघुकुल नरेश! आपको अपना रूप धारण करा कर, श्री मिथिलापुरी भेज देता।

हाय दुसह दुख पावत रामा । नहि बन दीखे तनिक अरामा ॥
अबहुँ जाय बन रामहिं फेरौं । आपन रूप बनाय के प्रेरौं ॥

हाय, हाय श्री राम जी महाराज अत्यन्त ही असहनीय दुख प्राप्त कर रहे हैं क्योंकि वन में मुझे किंचित भी आराम (सुख) नहीं दिखाई देता। मुझे ऐसा लगता है कि– मैं अभी भी वन में जाकर, श्री राम जी महाराज को अपना रूप धारण करा, प्रेरित कर वन से वापस कर दूँ।

मैं बनि राम बसौं बन माहीं । रघुवर फिरे बिना सुख नाहीं ॥
अस कहि कुँअर निकसि चलि दयऊ । करत प्रलाप देह सुधि गयऊ ॥

मैं स्वयं श्री राम बन कर वन में निवास करूँ क्योंकि श्री राम जी महाराज के वापस हुए बिना मुझे सुख नहीं है। ऐसा कहकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, कुटिया से निकलकर चल दिये तथा प्रलाप करते–करते उनकी देह स्मृति भूल गयी।

छं0– तन भूलि रेंगत रसि कुँअर, बनि राम द्रुत फेरन चले ।
बहु बदत अटपट वाक तहँ, आवेश बोलत मन भले ॥
कहुँ रुदत हिचकत गिरत पथ, चित राम फेरन में रँगा ।
लखि सिद्धि रोकत भ्रात सब, हर्षण कुँअर विरहहिं पगा ॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी शरीर स्मृति भूलकर प्रभु वियोग में समाये हुए इस प्रकार चल रहे है जैसे स्वयं श्री राम बन कर, श्री राम जी महाराज को, वन से लौटाने हेतु शीघ्रता पूर्वक जा रहे हों। वे प्रेमावेश में आवेशित होकर अपने मन में बहुत सी सुन्दर अटपटी बातें कर रहे हैं। कभी वे हिचकियाँ लेकर रुदन करते हैं तो कभी मार्ग में गिर पड़ते हैं, उनका चित्त श्री राम जी महाराज को वापस लौटाने में लगा हुआ था उनकी स्थिति देखकर श्री सिद्धि कुँअरि जी और कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सभी भ्रातागण उन्हें रोकते है, परन्तु कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु श्री राम जी महाराज के विरह में पूर्ण

रूपेण डूबे हुए हैं।

सो0–कुँअर पकरि सब कोय, लाये कुटिया बीच महँ।
समुझावत तहँ लोय, कुँअर हृदय समुझत नहीं ॥४८॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को पकड़ कर वे सभी कुटिया में ले आये तथा वहाँ उन्हें विविध प्रकार से समझाने लगे, परन्तु कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का हृदय समझ नहीं रहा था।

सिद्धि कही सुनु जीवन नाथा। आपहि ऐहैं फिरि रघुनाथा॥
कछुक काल बाकी रह गयऊ। अइहैं अवधि बिते मन भयऊ॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी ने कहा– हे मेरे जीवन नाथ! रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज स्वयं ही वापस आयेंगे, क्योंकि अब उनकी वनावधि का थोड़ा समय ही शेष बचा है, समय सीमा समाप्त होते ही हमारे मन–भावन रघुनन्दन वापस आ जायेंगे।

बीहड़ बन बहु दक्षिण दूरी। हेरे मिलै न रघुवर धूरी॥
जइहैं कहाँ नाथ बन घोरा। आपुहिं ऐहैं अवध किशोरा॥

यहाँ से दक्षिण दिशा में दूर–दूर तक फैला हुआ अत्यन्त ही बीहड़ जंगल है जहाँ श्री राम जी महाराज की धूल तक ढूँढने से अप्राप्त रहेगी (कोई भी समाचार नहीं मिलेगा)। अतः मेरे स्वामी इस घनघोर वन में कहाँ आप कहाँ जायेंगे, अवध किशोर श्री राम जी महाराज समय सीमा समाप्त होने पर स्वयं ही वापस आ जायेंगे।

सम्भव ढूँढन जब प्रभु जइहैं। सीयराम कहुँ ते इत अइहैं॥
नाथ न पैहैं नेक प्रकाशा। ताते रहहिं इतहिं करि वासा॥

जब तक मेरे प्राणनाथ आप, उन्हें खोजने जायेंगे तब तक सम्भव है कि श्री सीताराम जी कहीं से यहाँ आ जायें तब मेरे स्वामी वन में कहीं भी उनका किंचित समाचार नही प्राप्त कर सकेंगे, इसलिए आप यहीं निवास किये रहिये।

अस कहि सिद्धि कुँअरि सुखदाई। गावन लागी बीन बजाई॥
कुँअर चित्त भो प्रभु यश लीना। उतरी बात गवन वन झीना॥

ऐसा कह कर सुख–प्रदायिका श्री सिद्धि कुँअरि जी बीणा बजाकर भगवद्यश का गायन करने लगीं। जिसे श्रवण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का चित्त प्रभु श्री सीताराम जी के यश में लीन हो गया और घने वन में जाने की बात उनके चित्त से उतर गयी।

दो0– यहिं विधि शीरध्वज कुँअर, प्रेम ध्वजा फहराय।
आकुल व्याकुल बसत तहँ, बिरह वरणि नहिं जाय ॥४९॥

इस प्रकार महाराज शीलध्वज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रेम की पताका फहरा रही थी और वे अपनी कुटिया में प्रभु प्रेम व विरह से व्याकुल हुए निवास कर रहे थे, उनके प्रबल प्रभु विरह का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

बाढ़ेव हृदय महा उन्मादा। कहि न जाय सो दशा विषादा॥
कबहुँ विरह बहुतहिं जिय जागे। रोवत विलपत अति दुख दागे॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि हे श्री हनुमान जी– कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में अब महान उन्माद (चित विभ्रम) बढ़ा हुआ था, उनकी उस दुखपूर्ण अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता। कभी–कभी तो उनके हृदय में अत्यन्त विरह जाग्रत हो जाता था तब वे रोते, विलाप करते तथा महान दुख में जलते रहते थे।

प्रभु स्वभाव सुनि कहुँ हरषाई। हँसन लगे हँसतो रह जाई॥
प्रभु गुन लागैं कबहुँक गावन। उच्च स्वरहिं मन मोद बढ़ावन॥

वे प्रभु श्री राम जी महाराज के स्वभाव का श्रवणकर, कभी हर्षित होकर हँसने लगते तो हँसते ही रह जाते थे। कभी वे ऊँचे स्वर से मन में आनन्द विवर्धित करते हुए गाने लगते।

नाचन लगैं कबहुँ अनुरागी। करतल ताल बजाय सुभागी॥
कबहुँ लगै तेहिं प्रभु मम पासा। बैठे आनँद भरे अवासा॥

कभी वे सौभाग्यशाली कुँअर अनुराग पूर्वक ताली बजाकर नाचने लगते थे तो कभी उन्हें लगता कि– प्रभु श्री राम जी महाराज मेरे समीप ही महल में आनन्दपूर्वक विराजे हुए हैं।

कहैं कुँअर हे रघुकुल रामा। खेली चौपड़ मन अभिरामा॥
अस कहि देवैं खेल मचाई। लै मनमानीं साज सुभाई॥
बादत हँसत ठठाय विभोरा। जनु सत खेलत अवध किशोरा॥

उस समय, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी कहते हैं कि– हे रघुकुल नन्दन श्री राम जी महाराज! आप सुन्दर चौपड़ खेल खेलिये। ऐसा कहकर वे मनमानी सुन्दर वस्तुएँ लेकर खेल मचा देते थे। वे ताली बजाते हुए ठट्ठा मारकर हँसते और ऐसे विभोर हो जाते थे जैसे सत्य ही श्री राम जी महाराज उनके साथ खेल रहे हों।

दो0– कबहुँक कहतो कुँअर वर, बिहरन चलियहु राम।
अँगुरी पकड़न भाव करि, लै चलतो सुखधाम॥५०॥

कभी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी कहते कि– हे श्री राम जी महाराज चलिये, आज विहार करने हेतु चला जाय, इस प्रकार अँगुली पकड़ने का भाव कर वे सुख के धाम श्री राम जी महाराज को विहार के लिये ले चलते थे।

कबहुँक फूलन गेंद बनाई। खैलें राम संग बतराई॥
कबहुँ बैठि इक आसन माहीं। कहहिं लखौ सिधि रघुवर काहीं॥

कभी वे फूलों को गेंद बनाकर श्री राम जी महाराज के साथ बाते करते हुए खेलने लगते, कभी वे एक आसन में बैठ कर कहते कि– हे श्री सिद्धि कुँअरि जी! आप श्री राम जी महाराज का दर्शन कीजिये।

गान करहु कछु बीन बजाई । सुनि सुख लहहिं राम रघुराई ॥
कबहुँक सीतहिं लिये सुकनियाँ । चूमि रहे जनु बदन लुभनिया ॥

हे प्रिये! आप बीणा बजाकर कुछ गायन कीजिये जिसे श्रवण कर रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज सुख प्राप्त करें। कभी वे ऐसी कियायें करते मानो श्री सीता जी को अंक में लिये हुए उनके मनोमुग्धकारी मुख कमल का चुम्बन कर रहे हैं।

लली लली कहि फूलन तोरी । देते मन महँ प्रीति अथोरी ॥
जो मन आवत भाव सुहावा । अरु जस दृश्य हृदय दरशावा ॥

कभी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, हे लली जू, हे लाड़िली जू पुकारते हुए अपने मन में पुष्प चयन कर अत्यधिक प्रीति पूर्वक उन्हे देने लग जाते थे। उस समय उनके मन में जो भी सुन्दर भाव आते थे तथा हृदय में उन्हें जैसे दृश्यों के दर्शन होते थे———

तैसहिं चेष्टा करहिं कुमारा । लोक लाज सब गई सिधारा ॥
हिय उन्माद अलौकिक जागा । महा भाव रस रँगे सुभागा ॥

———युवराज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी तदनुसार चेष्टायें करने लगते थे। उनकी सांसारिक लज्जा समाप्त हो गयी थी तथा उनके हृदय में अलौकिक उन्माद जाग्रत हुआ था जिस कारण परम सौभाग्यवान कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी महाभाव रस अर्थात् प्रेम की अत्यन्त उच्चतम अवस्था में रँगे हुए थे।

दो0— महाभाव रस कुँअर को, विधि हरि हर सब देख ।
रहैं चकित चित भाव भरि, रक्षहिं तिन्हहि विशेष ॥५१॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के महाभाव की अवस्था (प्रेम की सर्वोच्च अवस्था) को देखकर श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शंकर जी आदि सभी देवता भाव में भरे हुए आश्चर्य में डूबे रहते थे तथा उन प्रभु प्रेमी की विशेष रक्षा करते रहते थे।

मंगल शासन सब सुर करहीं । रिषि मुनि सिद्ध नाग मन भरहीं ॥
कबहुँक उठि कर दौड़न लागत । कुँअर भाव भरि सोवत जागत ॥

सभी देवगण, ऋषि, मुनि, सिद्ध एवं नाग आदि मन में प्रसन्न होकर, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का मंगलानुशासन करते थे। कभी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सोते व जागते दोनो अवस्थाओं में भगवद्भाव में भावित हो, उठकर दौड़ने लगते थे।

न्हाब खाब सब नेम भुलाना । पागल सम अमृत रस साना ॥
कबहुँक नग्न कबहुँ तन ढाँकी । कबहुँक धूरि लपेटै छाकी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अपना स्नान, भोजन तथा सभी नियम आदि विस्मृत हो गये थे तथा वे नित्य अमृत रस में सने हुए उन्मादी (पागल) के समान प्रतीत होते थे। कभी वे नग्न हो जाते तो कभी वस्त्र से शरीर ढँक लेते तो कभी प्रभु प्रेम में छके हुए, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने शरीर

में धूल लपेट लेते थे।

कबहुँ कुटी कहुँ वृक्षन तीरा। बैठहिं कुँअर भाव गम्भीरा॥
कबहुँ शान्त स्तब्ध महाना। बैठहिं विशद भाव उर आना॥

कभी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी कुटी में तो कभी वृक्षों के किनारे गम्भीर भाव पूर्वक बैठे रहते थे। कभी वे अत्यधिक निष्चेष्ट से हुए शान्त होकर हृदय में महान भाव धारण किये बैठे रहते थे।

कबहुँक आत्मा रमैं कुमारा। चिन्तैं चरित कबहुँ रस वारा॥
हिय आवेश तबहिं सोइ आवै। सुखद दुखद चेष्टा दरशावै॥
नील पीत लखि वस्तु सुहाई। रँगै राम रँग विरह समाई॥

कभी कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी आत्मा में रमण करते तो कभी रस–स्वरूप श्री राम जी महाराज के चरित्रों का चिन्तन करते थे, उस समय उनके हृदय में उसी प्रकार का आवेश हो जाता जैसा वे चिन्तन करते थे तब वे बाहर से भी उसी प्रकार की सुख व दुख प्रदायक चेष्टायें करने लगते थे। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्याम व पीत रंग की सुन्दर वस्तुओं को देखकर श्री सीताराम जी महाराज के रंग में रँगे हुए वियोग में समाहित हो जाते थे।

दो0– कबहुँ सुरति बनवास की, जागै हिये मझार।
विरह सने अति ही विकल, गिरैं पछारि पछार॥५२॥

कभी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में प्रभु वनवास की स्मृति जाग्रत हो जाती तब वे प्रभु विरह में डूबे हुए अत्यन्त व्याकुल होकर स्मृति भूल, खड़े–खड़े ही (पछाड़ खाकर) भूमि में गिर पड़ते थे।

रोवत हिचकत निज शिर कूटी। गिरत परत तन जावत फूटी॥
रोवत रोवत प्राण अपाना। सहज गती छोड़हिं उलटाना॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने शिर में आघात कर–कर हिचकियाँ लेते हुए रुदन करते और गिर पड़ते थे जिससे उनके शरीर में कई स्थानों पर घाव हो जाते थे। रोते–रोते उनकी प्राण–वायु व अपान–वायु अपनी सहज गति को छोड़ कर विपरीत हो जाती थी।

विकृत रूप धरि वायु विगारी। पित्त कुपित ह्वै करै दुखारी॥
नाना व्याधि भई तन माहीं। यदपि कुँअर चित तहाँ न जाहीं॥

इस पुकार उनकी वायु बिगड़ कर विकृत रूप धारण कर चुकी थी, पित्त क्रोधित होकर उन्हें दुखी कर रहा था। यद्यपि कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का चित्त उनकी ओर नहीं जाता था तथापि उनके शरीर में अनेक प्रकार की व्याधियाँ हो गयी थीं।

सकल शरीर जलन सम लागा। नस नस पीरा भइ जिय जागा॥
ताप रहत अहिनिशि दुखदाई। शिर हृदि पीर बरणि नहिं जाई॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का सम्पूर्ण शरीर जलने सा लग रहा था तथा उनके प्रत्येक नस में अतिशय पीड़ा होती थी, जो हृदय को भी दुखी करती थी। उन्हें दिन–रात दुखदायी ताप बना रहता था और उनके शिर व हृदय की पीड़ा का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता।

पीला परेउ शरीर कुमारा। पाण्डु रोग सम करत दुखारा॥
नयनन ज्योति गयी नहिं सूझा। विरह दशा की गती अबूझा॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी का सम्पूर्ण शरीर पाण्डु रोग के समान पीला पड़ गया था जो अत्यन्त ही दुख प्रदान करता था। उनके नेत्रों की ज्योति समाप्त सी हो गयी थी। उस समय उनकी भगवद् विरह जन्य अवस्था अत्यन्त ही अगम्य थी।

दो0– नाना व्याधिहिं ग्रसि रहे, श्री मिथिलेश कुमार।
तदपि बहिर्मुख कबहुँ नहिं, बहे विरह सरि धार॥५३॥

यद्यपि मिथिलेश कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को अनेक प्रकार की व्याधियाँ ग्रसित किये हुए थीं तथापि वे कभी भी अपनी बाह्य अवस्था की ओर दृष्टिपात नहीं करते थे क्योंकि प्रभु विरह की सरिता के प्रबल प्रवाह में वे प्रवाहित हो रहे थे।

धन्य भयो जग सो हनुमाना। जो यहि व्याधिहिं दिय तन थाना॥
प्रेम पथिक दुख हूँ सुख जानेव। रहत सदा प्रभु रस लपटानेव॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि–हे श्री हनुमान जी! इस संसार में वे ही धन्य है जिन्होने अपने शरीर में इन प्रभु प्रेम की व्याधियों को स्थान दिया है। क्योंकि प्रेम मार्ग के पथिक तो अपने दुख को भी सुख समझते हैं तथा भगवद्रस से ओत–प्रोत रहते हैं।

कुँअर कहहिं नहिं कछु तन पीरा। तदपि सिद्धि जानति मति धीरा॥
जब तन परश गरम लगि ताही। शोचति ताप भयो पिय पाहीं॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी यद्यपि अपने शरीर की किसी भी व्याधि का वर्णन नहीं करते थे तथापि परम धीर–बुद्धि सम्पन्ना श्री सिद्धि कुँअरि जी उन्हें जान जाती थीं। जब उन्हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के शरीर का स्पर्श गरम लगता तब वे सोचती थीं कि– मेरे स्वामी को ताप हुआ है।

ऐसहिं औरहुँ रोग विचारी। जानि गयी निज हिये मझारी॥
सासुहिं देवैं सकल बताई। जनक करैं उपचार अमाई॥

इसी प्रकार श्री सिद्धि कुँअरि जी अपने प्राणनाथ की अन्य व्याधियों को भी बिचारकर अपने हृदय में जान गयी थीं और अपनी सासू श्री सुनैना जी को उन्होने सभी कुछ बता देती थीं जिससे उनके निवारण के लिये श्री जनक जी महाराज निरासक्त हो उपचार करते रहते थे।

कुँअरहिं सुधिहुँ न औषधि केरी। विरह विवश बुधि भुली भलेरी॥
इक दिन कुँअरहिं कमला पाहीं। चले लिवाय जनक सुधि नाहीं॥

परन्तु कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को औषधि की स्मृति नहीं रहती थी क्योंकि प्रभु विरह के

वशीभूत हो उनकी बुद्धि सम्यक प्रकारेण विस्मृत हो गयी थी। एक दिन श्री जनक जी महाराज अपने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को स्मृतिहीन अवस्था में सरित्प्रवरा श्री कमला जी ले चले।

दो0— वैद्य मते औषधि मलन, सरुज शरीरहिं माहिं ।
पुनि स्नापन हेतु तहँ, पहुँचे सुत हित चाहि ॥५४॥

वैद्यों के मतानुसार उनके व्याधि ग्रस्त शरीर में औषधि लगाने के पश्चात् स्नान कराने हेतु अपने पुत्र कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की मंगल कामना के लिए श्री जनक जी महाराज श्री कमला तट पर पहुँच गये।

कैयक बार औषधी लागी। कैयक भे स्नान सुभागी ॥
वैद्य क्रिया इत लोगन कीन्हा। कुँअर भये रघुवर रस लीना ॥

श्री कमला जी के तट पर उनके शरीर में कई बार औषधि लगाई गयी और कई स्नान कराये गये। लोगों ने इधर तो वैद्य की प्रक्रिया पूरी की परन्तु कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज के भाव–रस में लीन हो गये।

करत राम यहि सरित विहारा। हमरे साथ भाव उर धारा ॥
जल क्रीड़ा तहँ हौवैं लागी । उलचैं जलहिं कुँअर अनुरागी ॥

उन्होंने अपने ह्रदय में यह भाव धारण कर लिया कि– इन श्री कमला जी में श्री राम जी महाराज हमारे साथ जल कीड़ा कर रहे हैं, फिर क्या था? वहाँ जल क्रीड़ा होने लगी और कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अनुराग पूर्वक जल को उछालने लगे।

क्रीड़त क्रीड़त नीर अगाधा। गये कुँअर तुरतहिं बिन बाधा ॥
यद्यपि रक्षक रहे तहाँही । तदपि वेगवश लखे न ताही ॥

इस प्रकार क्रीड़ा रत कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी बिना किसी रोक–टोक के अत्यधिक गहरे जल में चले गये। यद्यपि वहाँ रक्षकगण उपस्थित थे तथापि उनके संवेग के कारण वे नहीं समझ सके।

तैरन सुधि नहिं रही कुमारैं। बूड़ि गयो द्रुत जलहिं मझारैं ॥
भयो तुरत तहँ हाहाकारा। दौरे केवट करत सम्हारा ॥

प्रभु प्रेमाधिक्य के कारण कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को तैरने की स्मृति नहीं रही। अतः वे शीघ्र ही जल के मध्य में डूब गये। तब वहाँ तुरन्त ही हाहाकार मच गया, नाविक गण दौड़ पड़े तथा उनकी खोज करने लगे।

दो0— जाय कुँअर तल बैठगो, कमला जल गंभीर ।
भाव समाधिहिं मगन मन, छुटेव न भोग शरीर ॥५५॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी शीघ्र ही श्री कमला जी के अत्यन्त गहरे धरातल में भाव समाधि में मन मग्न हो बैठ गये, भाव समाधि में मन मग्न होने से उनका भोग शरीर नहीं छूटा।

जल क्रीड़ा रत जनक कुमारा। भाव भरेउ हिय हर्ष अपारा ॥
चारहुँ भ्रात राम की झाँकी । हृदय पटल पावत प्रिय बाँकी ॥

जल क्रीड़ा करते हुए जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी का हृदय असीमित हर्ष से आप्लावित हो गया था, अपने हृदयाकाश में वे चारों भ्राताओं सहित श्री राम जी महाराज की बाँकी झांकी का दर्शन प्राप्त कर रहे थे।

केवट गण द्रुत ढूँढ़त पाई । लाये कुँअरहिं जल उपराई ॥
नाव बिठाय किनारेहिं लाये । जनक बहुत उपचार कराये ॥

शीघ्र ही नाविक गण अन्वेषण करने पर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को पा गये और जल के ऊपर ले आये। वे उन्हें नाव में बैठाकर तट पर ले आये जहाँ श्री जनक जी महाराज ने उनका बहुत सा उपचार कराया।

कीर्तन भयो राम रस छायी। धुनि सुनि जगे कुँअर अतुराई ॥
सबहिं लहेव आनंद अपारा। देखि कुँअर नृप भये सुखारा ॥

वहाँ प्रेमानन्द पूर्वक श्री सीताराम नाम का संकीर्तन हुआ, तब संकीर्तन ध्वनि श्रवणकर आतुरता पूर्वक कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी जाग्रत हो गये। उस समय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखकर श्री जनक जी महाराज अतिशय आनन्दित हुए और सभी उपस्थित जनों ने भी असीम आनन्द की प्राप्ति की।

कुँअर दशा नित नई विलोकी । जनक सुनैना रहत सशोकी ॥
चिन्तित लखि नभ गिरा सुहाई । भई सत्य सुनु हे नृपराई ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की नित्य प्रति की ऐसी नवीन अवस्था देखकर श्री जनक जी महाराज और श्री सुनैना महारानी जी अत्यन्त दुखी रहते थे, उन्हें चिन्तित देखकर सत्य व सुन्दर आकाश–वाणी हुई– हे श्री जनक जी महाराज सुनिये,–––

कुँअर शोच त्यागहु सब भाँती। देख विरह वश दिन अरु राती ॥
निमिकुल भूषण तनय तुम्हारा। सीयराम हिय बसत भुआरा ॥

–––आप लोग कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को दिन–रात प्रभु विरह के वशीभूत हुये देख कर सभी प्रकार से चिन्ता त्याग दें क्योंकि आपके पुत्र तो श्री निमिकुल के आभूषण हैं और श्री सीताराम जी के हृदय में निवास करने वाले हैं।

दो0– प्रगटि प्रेम सब जगत कहँ, दीन्ह अमित उपदेश ।
विधि हरि हर तेहिं भाव को, जानि सकैं नहिं शेष ॥५६॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने शरीर में प्रभु–प्रेम को प्रगट कर सम्पूर्ण संसार को असीमित शिक्षा प्रदान की है। इनके भाव को तो श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शंकर जी तथा श्री शेष जी भी नहीं जान सकते।

कछु दिन गये भेंटि सिय रामा । कुँअर लही सब भाँति अरामा ॥
त्रिभुवन यश छायी तेहिं केरा। राम प्राण प्रिय रही उजेरा ॥

कुछ दिवसोपरान्त श्री सीताराम जी से मिलकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सभी प्रकार से विश्रान्ति प्राप्त करेंगे। इनकी महान कीर्ति तीनों लोकों में परिव्याप्त हो जायेगी तथा निमिवंश प्रदीप कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज के प्राण प्रिय बने रहेंगे।–––

मातु पिता गुरु तोषनि हारा । प्रभु सेवा गुनि करि व्यवहारा ॥
तिरहुत राज सिंहासन सोही । ज्ञान भक्ति सुनिहैं मुनि मोही ॥

–––अपने माता–पिता और श्री गुरुदेव जी को पूर्णतया संतुष्ट करने वाले ये कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी संसार के सभी कार्य प्रभु श्री राम जी महाराज की सेवा समझते हुए व्यवहार रूप में कर, श्री तिरहुत प्रदेश के राज्य सिंहासन में सुशोभित होगें तथा सभी मुनिगण विमोहित हुए इनसे ज्ञान और भक्ति का विवेचन श्रवण करेंगे।–––

सकल लोक प्रिय चन्द्र समाना । रही अहँ बिन कुँअर महाना ॥
सुनि नभ गिरा जनक आनन्दे । शीश झुकाय रहे पद बन्दे ॥

–––अहंकार से सर्वथा विहीन महान कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सम्पूर्ण लोकों में चन्द्रमा के समान प्रियकर बने रहेंगे। ऐसी आकाशवाणी सुनकर श्री जनक जी महाराज आनन्दित हुए और सिर झुकाकर देवताओं को प्रणाम किये।

यहिं प्रकार बीतत दिन जाहीं। कुँअर पगे रस बिरह सुहाहीं ॥
जस जस निकट अवधि दिन आवै। तस तस विरहा आय दबावै ॥

इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के दिन श्री सीताराम जी के वियोग रस में पगे हुए व्यतीत होते जा रहे थे। ज्यों–ज्यों प्रभु संयोग की समय सीमा समीप आती जाती थी त्यों–त्यों उन्हें भगवद्विरह का दुख अधिकाधिक रूप से ग्रसित कर रहा था।

दो0– विरह पीर बाँकी कसक, जानत विरही लोग ।
दुखद अहै पर अति सुखद, है वियोग संयोग ॥५७॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–प्रभु विरह जन्य पीड़ा की मीठी टीस (चुभन) को तो प्रभु वियोगी जन ही जानते हैं। उनके लिए प्रेमास्पद का वियोग तो अत्यधिक दुखदायी होता ही है परन्तु वियोग जनित संयोग महान सुख प्रदान करने वाला भी होता है।

विरह मोह वश निमिकुल वारा। सब विधि भूलत ज्ञान अपारा ॥
प्रेमी प्रेमास्पद अरु प्रेमा । त्रिपुटी विनसि रहेउ रस नेमा ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के विरह के कारण व्यामोहित हुए निमिकुल नन्दन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सभी प्रकार से अपना असीम ज्ञान भूल जाते थे। उनमें रस पद्धति के अनुसार प्रेमी, प्रेमास्पद और प्रेम की त्रिपुटी का विलीनीकरण हो गया था।

भयो कुँअर हिय रस कर रूपा । अकथ अगाध अगम्य अनूपा ॥
बुद्धि क्रिया सब गयी बिलाई । रहेउ राम रस चित्तइ छाई ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का हृदय अकथनीय, गंभीर, अथाह व अनुपमेय रस का स्वरूप बना हुआ था, उनकी सभी बौद्धिक क्रियायें विलीन हो गई थी तथा श्री राम जी महाराज का प्रेम–रस ही उनके चित्त में समाया हुआ था।

एक दिवस विरहाकुल होई । चिन्तित कुँअर हृदय प्रिय सोई ॥
लागे करन बिचार बिचारा । जो नहिं होतो वन दुखकारा ॥

एक दिन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु–विरह में अतिशय व्याकुल हो, हृदय में अपने प्रिय प्रभु श्री राम जी महाराज का चिन्तन करते हुए बार–बार विचार करने लगे कि– यदि दुखदायी वन होते ही नहीं,–––

तौ कत जात राम बन काहीं । भोगत दुख चलि पथरन माहीं ॥
अति दुखदायक वन संसारा । काटौं ताहि राम हित धारा ॥

–––तो श्री राम जी महाराज किस प्रकार वन को जाते तथा पत्थरों में चलते हुए दुख सहन करते? संसार के ये वन श्री राम जी महाराज को महान दुख प्रदान करने वाले हैं। अतः मैं श्री राम जी महाराज का हित चिन्तन करते हुये इन्हें काट डालूँगा।

दो0– करत विचारहिं क्रोधमय, कह्यो कुँअर तेहिं काल ।
नाशौं अबहीं सकल वन, विरचहुँ नगर विशाल ॥५८॥

उस समय ऐसा विचार करते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी क्रोधावेशित होकर बोले, कि– मैं अभी सम्पूर्ण वनों को नष्ट कर डालूँगा और वहाँ सुन्दर विशाल नगरों का निर्माण करूँगा।–––

मिथिला अवधहिं सकल वसाई । मेटहुँ विश्व नाम दुखदाई ॥
तब जहँ चहैं रहैं सियरामा । युगल पुरी लखि ठामहि ठामा ॥

इस प्रकार मैं सम्पूर्ण स्थानों में श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी बसा कर संसार से दुख प्रदायक वनों का नाम ही मिटा दूँगा। तब सर्वत्र अपनी दोनों पुरियों को देखकर, श्री सीताराम जी की जब जहाँ इच्छा होगी वहीं निवास करेंगे।

अति संतोष होय मन मोरे । ताते काटौं बन श्रम थोरे ॥
निकसि कुटी के बाहर गयऊ । निकटहिं वृक्ष विलोकत भयऊ ॥

ऐसा करने से ही मेरे मन में अतिशय संतोष होगा, इसलिए मैं अल्प परिश्रम से ही वनों को काट डालूँगा। ऐसा विचार कर वे अपनी कुटिया से बाहर निकल गये और समीप ही एक पेड़ को देखा।

दाँतन पकड़ि छाल तेहिं केरी । काटन लगेव कुँअर बिन देरी ॥
कबहुँक कर नख तेहिं पर मारी । नोचै छाल वृक्ष की भारी ॥

उसे देखते ही अविलम्ब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी दाँतों से उस वृक्ष की मोटी छाल पकड़ कर काटने लगे, कभी वे हाथों के नाखून उस वृक्ष पर मारते और उसकी अत्यन्त कठोर छाल नोचनें लगते।

जिमि कुश बोरि छिड़कि जल तहँवा । उदधि सुखावन चहँ मति दहवाँ ॥
तिमि कुमार वश विरह विमोही । मुख सो काटत वृक्ष कुजोही ॥

जिस प्रकार कोई मन्द–बुद्धि व्यक्ति कुश को डुबा कर छिड़क–छिड़क कर समुद्र को सुखाना चाहता है उसी प्रकार कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी विरह के वशीभूत व्यामोहित चित्त हुये, मुख से वृक्ष काटते हुए दिखाई पड़ रहे थे।

दो0– मुख मण्डल उधरेउ तबहिं, बहत रक्त की धार ।
हाथहुँ विदरे नख टुटे, विरह करेजे मार ॥५९॥

ऐसा करने से कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी का मुख कमल छिल गया, वहाँ से रक्त ही धारा बहने लगी, हाथ फट गये, नाखून टूट गये और हृदय विरह के आघात से दुखी हो गया।

सिद्धि कुँअरि लखतहिं यह चरिता । दौड़ गई तहँ द्रुत रस झरिता ॥
भ्रातहुँ सखा सकल तहँ धाये । पकड़ कुमारहिं अलग कराये ॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी उनके इस चरित्र को देखकर नेत्रों से अश्रु बहाते हुए शीघ्र ही दौड़ कर उनके समीप गयीं। उनके सभी भ्राता और सखागण भी दौड़कर वहाँ पहुँचे और कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को पकड़कर पेड़ से अलग कर दिये।

कहत कुँअर है मम संकल्पा । बन संसार रहैं नहि अल्पा ॥
मिथिला अवध रहैं युग पुरियाँ । सकल अण्ड भरि बसैं सुभुरियाँ ॥

तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा कि– मेरा संकल्प है कि–संसार में थोड़े भी वन नहीं रहने पायें। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में केवल दोनों सुन्दर पुरियाँ (श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी) ही बसायी जाएँगी।

ताते मो कहँ काटन देहू । सिगरे आप सहायक होहू ॥
कहत भ्रात सिगरे सुनु भैया । तव संकल्प वृथा नहिं जैया ॥

इसलिए मुझे इन वनों को काटने दीजिये तथा आप सभी मेरी सहायता कीजिये। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की बातें सुनकर सभी भ्राता कहने लगे कि– हे श्री भैया जी! आपका संकल्प कभी भी व्यर्थ नहीं जायेगा,–––

पै रामहिं वन बहुत पियारा । विहरत मानत मोद अपारा ॥
निज प्रियतम प्रिय वस्तुहिं काटन । तुम कत चल्यो भ्रात अति डाटन ॥

परन्तु ये वन तो श्री राम जी महाराज को बहुत ही प्रिय हैं तथा इनमें विहार करते हुए वे असीम आनन्द का अनुभव प्राप्त करते हैं। अतः आप, अपने प्रियतम की प्रिय वस्तु को रोष पूर्वक विनष्ट करने हेतु आप कैसे चल दिये?–––

दो0– जो रामहिं प्रिय बन अहैं, तो बन अवध स्वरूप ।
अस बिचारि प्रिय हेतु हित, त्यागहु क्रोध अनूप ॥६०॥

–––क्योंकि यदि श्री राम जी महाराज को वन प्रिय हैं तो वन ही उनके लिए श्री अयोध्या पुरी के स्वरूप हैं, अतः ऐसा विचार कर हे परम अनुपमेय श्री भइया जी अपने प्रिय श्री राम जी महाराज के हित के लिए आप अपने क्रोध को त्याग दीजिये।

जो बन अवध राम इक मानी । तौ कहँ रहा दुखद सत जानी ॥
अवधहिं अवध पूरि सब ठौरा । जानहुँ भ्रात हियहिं नहि औरा ॥

यदि श्री राम जी महाराज वन और श्री अयोध्यापुरी को एक समान मानते हैं तो आप सत्य समझिये कि– वे वन उन्हे दुख प्रदायक कहाँ रहे? अतः हे श्री मान् भइया जी! आप अपने हृदय में सर्वत्र श्री अयोध्यापुरी ही जानिये, अन्य कुछ भी नहीं।

राम जगत बन डारे काटी । प्रथमहिं तुम्हरे हेतु उपाटी ॥
जिन्ह वृक्षन काटहु तुम भाई । इन कहँ चाहत राम गोसाई ॥

अतः आप ऐसा समझिये कि– श्री राम जी महाराज ने आपके हित के हेतु, आपसे पूर्व ही संसार रूपी वन को काट कर समाप्त कर दिया है। हे श्री मान् भइया जी! आप जिन वृक्षों को काट रहे हैं, इन्हें श्री राम जी महाराज अत्यधिक प्रेम करते हैं।

मिथिलापुर वीरुध अति प्यारे । सीय राम कहँ करत सुखारे ॥
समुझि राम प्रिय कुँअर अवेशा । उतरि गयो बैठेउ कुटि देशा ॥

श्री मिथिलापुरी के वृक्ष श्री सीताराम जी महाराज को अत्यधिक प्रिय और सुखी करने वाले हैं। वनों को श्री राम जी महाराज के प्रिय जानकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का आवेश शान्त हो गया और वे वृक्षों को काटना छोड़कर अपनी कुटी में जाकर बैठ गये।

सिद्धि कुँअरि प्रभु चरित सुनाई । सरस राग रसि बीन बजाई ॥
पायो कुँअर कछुक संतोषा । सुनत अघात न उर कर कोषा ॥

पुनः श्री सिद्धि कुँअरि जी रस परिपूर्ण राग में, मधुर–मधुर वीणा वादन करते हुये, प्रभु चरितामृत सुनाने लगी। जिसे श्रवण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी किंचित संतोष प्राप्त किये, प्रभु चरित्रों को सुनते हुये भी उनके हृदय का कोष कभी भी संतृप्ति नहीं प्राप्त करता था।

दो0– यहि प्रकार प्रिय कुँअर कर, विरह सना मन मोह ।
भूलेव बुद्धि विवेक सब, तदपि हृदय अति सोह ॥६१॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि– हे श्री हनुमान जी! इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का भगवद्विरह में पगा हुआ, व्यामोहित मन अपनी प्रज्ञा व ज्ञान सभी कुछ भूल गया था फिर भी उनका हृदय प्रभु प्रेम पूरित व अत्यधिक सुशोभन बना रहता था।

छं0– अति सोह हिय महँ वर कुँअर, तहँ बहत धारा रस घनी ।
इक साथ विरही वर दशा, तन बीच प्रगटहिं तलफनी ॥
कह कौन ताकी गति कवी, अनुभव बिना सब दम्भ है ।
निमि राज बालक धन्य जग, प्रभु प्रेम पूरण खम्भ है ॥

भगवत्प्रेमियों में श्रेष्ठ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के अतिशय सुशोभन हृदय में रस का अविरल प्रवाह प्रवाहित होता रहता था तथा एक साथ ही सुन्दर संतप्त करने वाली विरह की अवस्थाएँ उनके शरीर में प्रगट होती रहती थीं। उनकी स्थिति के सम्बन्ध में कौन कवि वर्णन कर सकता है क्योंकि अनुभव के अभाव में कुछ भी कहना दम्भ ही कहलाता है। निमिकुल नरेश श्री जनक जी महाराज के पुत्र इस संसार में धन्यातिधन्य हैं जो प्रभु श्री राम जी महाराज के पूर्ण प्रेम के स्तम्भ हैं।

दिन रैन बाढ़ति सो दशा, बूझत बुझाये नहिं कुँअर ।
जग भान भूल्यो बीज नशि, सुधिहूँ दिवाये नहि खबर ॥
गति ग्यान योग विराग वर, कुँअरहिं विलोकत भावते ।
धनि धन्य मानहिं आपु कहँ, हर्षण लखै रस चावते ॥

उनकी वह विरहावस्था अहो–रात्रि बृद्धि को प्राप्त हो रही थी तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी समझाने पर भी नहीं समझ पाते थे। उन्हें बीज नष्ट हो जाने से संसार का भान, भूल गया था और स्मरण कराने पर भी संसार स्मृति में नहीं आता था। ज्ञान, योग और वैराग्य की श्रेष्ठ स्थितियाँ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का भाव पूर्वक दर्शन कर रही थीं। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– उपरोक्त सभी श्रेष्ठ स्थितियाँ अपने आपको धन्य मान रही थी तथा आनन्द परिपूर्ण व रस में समाविष्ट होकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को निहार रही थीं।

दो0– रसद रसोदधि देख, पुलक गात दोउ दृग सजल ।
हर्षण हृदय विशेष, त्रिभुवन न्हायो भाव भरि ॥६२॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते है कि कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में भगवद्रस प्रदान करने वाला, रस का महासागर देखकर त्रिलोक निवासी पुलकित शरीर व दोनों नेत्रों से अश्रुपूरित हो गये तथा भाव में भरकर उसमें अवगाहन करने लगे।

दिन दिन छिन छिन विरह विहारा । बढ़त कुँअर हिय अनुप अपारा ॥
सीय कहत मुरछा तन आवै । राम शब्द भीतर रहि जावै ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का हृदय प्रतिदिन, प्रतिक्षण अनुपमेय प्रभु–विरह की असीम व्यथा से व्याप्त रहता था। श्री सीताराम नाम के 'श्री सीता' शब्द कहते ही उनके शरीर में मूर्छा आ जाती थी और 'श्री राम' शब्द तो उनके हृदय के भीतर ही रह जाता था अर्थात् वे श्री सीताराम नाम के उच्चारण में भी असमर्थ हो गये थे।

रूप ध्यान तनि जो हिय आई । ठाढ़े गिरैं न सुधिहिं रहाई ॥
चिन्तन करतहिं रघुवर लीला । भूलि जाय सब कुँअर रसीला ॥

श्री सीताराम जी के स्वरूप का किंचित भी ध्यान हृदय में आने से वे खड़े–खड़े ही भूमि में गिर पड़ते थे, शरीर स्मृति नहीं रहती थी तथा श्री राम जी महाराज की लीला का चिन्तन करते ही रस–स्वरूप कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सभी कुछ भूल जाते थे।

मिथिला अवध धाम सुख सुमिरी । कुँअर विहाल गिरैं रस पगरी ॥
मरण तुल्य सब शिथिल शरीरा । दश दश दिवश परे भुइँ वीरा ॥

श्री मिथिला व श्री अयोध्या धाम के संयोग सुखों का स्मरण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी विह्वल तथा रस–सिक्त होकर गिर पड़ते थे। उनका सम्पूर्ण शरीर मृत्यु के समान शिथिल हो जाता था और वे निमिकुल वीर श्री लक्ष्मीनिधि जी स्मृतिहीन होकर दस–दस दिनों तक भूमि में पड़े रहते थे।

श्वासहुँ चलत न देय दिखाई । ब्रह्म पुरिहिं रस प्राण थिराई ॥
दिव्य कान्ति नहिं छोड़ति साथा । अतिहिं विचित्र कुँअर रस गाथा ॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–उस अवस्था में कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के शरीर में श्वाँस भी चलती हुई नहीं समझ पड़ती थी, उनके प्राण ब्रह्मपुर में स्थिर हो गये थे, इतने पर भी दिव्य कान्ति उनका साथ कभी नहीं छोड़ती थी। मिथिलेश कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी का रसमय चरित्र इस प्रकार अत्यन्त ही अनोखा है।

दो0– जनक सुनैना सिद्धि सह, और सकल परिवार ।
देखत रहहिं सुभ्रात गण, मन महँ शोच अपार ॥६३॥

श्री जनक जी महाराज, श्री सुनैना अम्बा जी व श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का सम्पूर्ण परिवार और सभी भ्रातागण उनकी यह अवस्था देख–देखकर मन में अतिशय चिन्तित रहते थे।

जे बैठत लक्ष्मीनिधि पासा । सुनत शब्द शुचि परम प्रकाशा ॥
नख शिख कुँअर शरीरहिं तेरे । निकसत राम नाम बिनु प्रेरे ॥

उस समय जो लोग कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के समीप बैठते थे उन्हे परम पावन श्री सीताराम नाम के दिव्य व पवित्र शब्द सुनाई पड़ते थे जो उनके शरीर से बिना उच्चारण किये सहज ही निकलते रहते थे।

राम राम प्रति रोम उचारा । सीता नाम सुखद सुठि प्यारा ॥
अति स्पष्ट मधुर मधु दानी । सुखमय शब्द न जाय बखानी ॥

उनके रोम–रोम से सुख प्रदायक सुन्दर और प्रिय श्री सीताराम नाम का उच्चारण होता रहता था जो अत्यन्त ही स्पष्ट मधुर व मधु प्रदायक था। वह सुख–स्वरूप शब्द वर्णनातीत था (जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता)।

चर्चा चलति सकल पुर माहीं । आवहिं लोग सुनन हित ताहीं ॥
सुनि सुनि सकल प्रेम रस साने । कुँअर यशहिं हरषाय बखाने ॥

इस प्रकार की वार्ता सम्पूर्ण श्री मिथिलापुरी में फैल गयी थी और कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के शरीर से बिना उच्चारण किये निकलते हुये श्री सीताराम नाम शब्द को सुनने के लिए सभी आते रहते थे। उस सुन्दर श्री सीताराम शब्द को सुनकर सभी प्रेमानन्द में समाविष्ट हो जाते थे तथा हर्षित हो कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की महान कीर्ति का बखान करने लगते थे।

सीताराम कहन सब लागैं । भूलि अपनपौ आनन्द पागैं ॥
सुर मुनि गुरु सब संत समाजा । नर अरु नाग सुनन के काजा ॥

श्री सीताराम नाम के उस शब्द का श्रवण कर सभी अपने अस्तित्व को भूल, आनन्द में पगकर श्री सीताराम नाम का उच्चारण करने लगते थे। देवता, गुरुजन, सम्पूर्ण संत समाज, मनुष्य और नाग आदि सम्पूर्ण जीव उस श्री सीताराम नाम शब्द को सुनने हेतु–––

दो0– मिथिला पुर आवहिं सकल, यथा समय शुचि भाव ।
कुँअर दरश करि प्रेम युत, सुनहिं नाम अति चाव ॥६४॥

–––समय–समय पर पवित्र भाव पूर्वक श्री मिथिलापुरी आते रहते थे तथा प्रेम परिप्लुत हो कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि का दर्शन कर अत्यन्त उत्साह में भर, उस 'श्री सीताराम नाम' ध्वनि को सुनते रहते थे।

जेहिं के नित अँग अंगन तेरे । निकसत राम राम सुख सेरे ॥
योगी परम सबहिं तेहिं जानी । मंगल शासन करहिं सुबानी ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि हे श्री हनुमान जी– जिन कुमार के सम्पूर्ण अंगो से नित्य ही सुख–पूर्वक श्री सीताराम नाम निकलता रहता था उन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को सभी लोग महान योगी समझ कर, उनका सुन्दर वाणी से मंगलानुशासन करते थे।

रक्षा मंत्रहिं पढ़ि सरसाई । आशिष देहिं देव समुदाई ॥
आश्वासन दे भूपति काँही । जावहिं सब निज निज थल माहीं ॥

सम्पूर्ण देवता आनन्द में सरसाये हुए रक्षा मंत्र पाठ कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को शुभ आशीष प्रदान करते और श्री जनक जी महाराज को आश्वासन देकर अपने–अपने लोकों को प्रस्थान कर जाते थे।

कीर्तन कथा सिद्धि नित करई । कुँअर सुचेत हेतु चित चरई ॥
जब जागैं दिन कैयक माहीं । कहि न जात सुख सो मोहि पाहीं ॥

उस समय श्री सिद्धि कुँअरि जी, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की चैतन्यता हेतु आनन्द पूर्वक सजग होकर, नित्य ही प्रभु नाम संकीर्तन एवं प्रभु चरित्रों का गायन किया करती थीं। जब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी कई दिनों के उपरान्त जाग्रत होते थे उस समय उन्हे जो सुख होता था उसका बखान मुझसे नहीं किया जा रहा।

जनक सुनैना सिद्धि पियारी । भ्रात सखा सब कुँअर निहारी ॥
पाइ परम निधि जनु सब हरषैं । प्रेम पगे लोचन जल वरषैं ॥

श्री जनक जी महाराज, श्री सुनैना अम्बा जी, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रियतमा श्री सिद्धि कुँअरि जी, उनके भ्राता व सखागण, उन्हे स्वस्थ देख–देखकर परम निधि प्राप्त करने के समान हर्षित होते थे और प्रेम में पगे हुए अपने नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की वर्षा करते थे।

दो0– यहिं प्रकार जब तब कुँअर, जियत मरत रस पाग ।
अकथ कहानी विरह रस, समुझि सकैं बड़ भाग ॥६५॥

इस प्रकार जब तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भगवद्विरह रस में डूबे हुए मृतप्राय से हुये जीते रहते हैं। उनकी इस अकथनीय प्रभु–विरह की गाथा को परम सौभाग्य शाली वे जन ही समझ सकते हैं जिन्हे प्रभु कृपा से ऐसी अवस्था प्राप्त हो गयी है।

राम सिया अरु हम हनुमाना । स्वप्न लखहिं बन महँ विरहाना ॥
चरचा करहिं कुँअर गति केरी । प्रीति रीति अनुभव हिय हेरी ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि– हे श्री हनुमान जी! श्री राम जी, श्री सीता जी और मैं (श्री लक्ष्मण कुमार जी) वन में कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की वियोग जनित अवस्था का स्वप्न में दर्शन करते थे तथा उनकी स्थिति की चर्चा, परस्पर में प्रीति–रीति एवं हृदय में अनुभव करते हुए करते–रहते थे।

मोहि समेत नित राम अचयना । कुँअर विरह ढारत जल नयना ॥
भ्रातृ प्रेमवश सिय दुख पागी । रोवति वदति सुरति जिय जागी ॥

मेरे सहित प्रभु श्री राम जी महाराज नित्य ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के विरह में दुखी होकर अश्रु विमोचन करते रहते थे। श्री सीता जी के हृदय में कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की स्मृति आते ही, वे अपने भैया जी के प्रेम के वशीभूत हो, शोक संतप्त हुई, रुदन व प्रलाप करती रहती थीं।

कहत राम मोहि बिन निमि वारे । होइहैं सहत विरह दुख भारे ॥
कहतहिं होवत शिथिल शरीरा । भूलत सुधि बुधि नेह गम्भीरा ॥

श्री राम जी महाराज कहते थे कि– निमिनन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी मेरे बिना महान दुख सहन कर रहे होंगे। ऐसा कहते–कहते वे शिथिल शरीर हो जाते तथा प्रेम गाम्भीर्य के कारण अपनी सुधि–बुधि भूल जाते थे।

हौं समुझाय राम सिय काहीं । रहे धरावत धीर तहाहीं ॥
सुनि हनुमान नयन जल छाई । कहत कुँअर की प्रीति सुहाई ॥

उस समय वहाँ हम, श्री सीता जी व प्रभु श्री राम जी दोनो को समझाकर धैर्य धारण कराते थे। श्री लक्ष्मण कुमार जी के वचनों को सुनकर श्री हनुमान जी के नेत्रों में अश्रु छा गये और वे बोले– कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रीति धन्य है।

दो0– लखन कहा आगे सुनहु, कुँअर चरित्र उदार ।
प्रेम प्रदायक प्रभु पदहिं, निर्मल अकथ अपार ॥६६॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे श्री हनुमान जी ! अब आप कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का आगे का उदार चरित्र सुनिये, जो निर्मल, अकथनीय, असीम तथा प्रभु श्री राम जी महाराज के चरणों में प्रेम प्रदान करने वाला है।

कुँअर सँदेश अवधपुर माहीं । पहुँचत रहेव गुरू के पाहीं ॥
सुनि सुनि सकल लोग दुख पागैं । मातु मंत्रि गुरु भरत सुरागैं ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का समाचार श्री अयोध्यापुरी में हमारे परम पूज्य गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी के समीप पहुँचता रहता था जिसे श्रवणकर सभी मातायें, सचिव, श्री गुरुदेव जी व श्री भैया भरत जी आदि सभी जन उनके अनुराग में रँग कर विषाद में डूब जाते थे।

जनक जाय कहुँ स्वयं बताई । सुनत सबहिं बहु विस्मय पाई ॥
रिपुसूदन कहुँ देखन आवत । बहुत भाँति कुँअरहिं समुझावत ॥

कभी–कभी तो श्री विदेह राज जी महाराज स्वयं ही श्री अयोध्यापुरी जाकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का समाचार बतलाते थे जिसे सुनकर सभी अत्यन्त आश्चर्य मानते थे। कभी–कभी श्री शत्रुघ्न कुमार जी स्वयं कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखने हेतु श्री मिथिलापुरी आते थे व विविध प्रकार से कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को समझाया करते थे।

जाय अवध सोउ दशा कहाँहीं । सनै कुँअर दुख सबै तहाँही ॥
गिनै अवधि दिन प्रति नित लोगा । बाढ़त जात विरह बहु शोगा ॥

तब श्री अयोध्यापुरी जाकर वे भी, उनकी अवस्था का वर्णन कर सभी समाचार सुनाते थे जिसे सुनकर वहाँ के सभी लोग कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के दुख में डूब जाते थे। सभी अयोध्या व मिथिलापुर वासी नित्य प्रति वनावधि के दिनों की गणना करते रहते थे तथा सभी के हृदय में प्रत्येक दिन तीव्रतर विरह व शोक बृद्धिंगत होता जाता था।

अवधि आस कुअरहुँ कर प्राना । तन महँ टिके विकल विरहाना ॥
मृतक समान देह सुधि भूले । रहत कुमार राम अनुकूले ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के विरही शरीर में प्राण, प्रभु वनवास की सीमा पूर्ण होने की आशा में ही निवास किये हुए थे। वे श्री राम जी महाराज की अनुकूलता धारण किये हुये मृतक व्यक्ति के समान देह स्मृति भूले हुए थे।

दो0– गिनत गिनत सब दिन कटे, बचे दिवस अब सात ।
जनक समाजहिं साज के, चलन अवध बतियात ॥६७॥

इस प्रकार दिनों की गणना करते–करते वनवास काल के सभी दिन व्यतीत हो गये, मात्र सात दिन ही शेष रहे, तब श्री जनक जी महाराज अपने समाज को लेकर श्री अयोध्यापुरी चलने की बातें करने लगे।

गुरु निदेश लहि जनक तुरन्ता । आय कुँअर ढिग कह मतिवंता ॥
बचे अवधि दिन केवल साता । चलहु अवध अब सुवन सुभाता ॥

अनन्तर गुरुदेव श्री याज्ञबल्क्य जी की आज्ञा लेकर परम प्रज्ञ श्री जनक जी महाराज शीघ्र ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के समीप आकर बोले– हे कुमार! वन की समय सीमा के केवल सात दिन ही शेष हैं। अतः अब आप, मनभावनी–सुन्दर पुरी श्री अयोध्या को चलिये।

सुनत कुँअर जल नयनन ढारी । चितये पितु कहँ आँख उघारी ॥
सुन्दर रथहिं नरेश मँगाई । दिये सिद्धि सह कुँअर चढ़ाई ॥

अपने श्रीमान् पिता जी वचनों को सुनते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी नेत्रों से अश्रु बहाते हुए उनकी ओर नेत्र खोल कर देखे। अनन्तर श्री जनक जी महाराज ने सुन्दर रथ मँगवा कर श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को उसमें चढ़ा दिया।

सचिव विप्र पुरजन परिवारा । गुरु मुनि संत सुभट जन धारा ॥
सबहिं साथ लै सह रनिवासा । चले अवधपुर नृपति पियासा ॥

इस प्रकार मन्त्रियों, ब्राह्मणों, पुरजनों, परिजनों, श्री गुरुजनों, मुनियों, संतो, महावीरों तथा जन–समूह को साथ ले, श्री राम जी महाराज के दर्शनों के प्यासे श्री जनक जी महाराज, रनिवास सहित श्री अयोध्यापुरी को प्रस्थित हुए।

करत वास पुनि पहुँचे भूपा । अवधपुरी सब भाँति अनूपा ॥
कुँअरहिं सरयू महँ नहवाई । सब समाज सह स्वयं नहाई ॥

मार्ग के बीच–बीच में निवास करते हुए श्री जनक जी महाराज सभी प्रकार से अनुपमेय श्री अयोध्यापुरी पहुँच गये। वहाँ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को ब्रह्म–द्रवा श्री सरयू जी में स्नान करवा कर सम्पूर्ण समाज सहित वे स्वयं स्नान किये।

सरयुहिं देखि कुँअर बनि सरजू । प्रेम प्रवाह बहेउ दुखहर जू ॥
हृदय लालसा राम मिलन की । को जानै गति कुँअर सुमन की ॥

प्रभु प्रेमाश्रु विनिश्रता श्री सरयू जी को देखकर, दुखों का हरण करने वाले श्री राम जी महाराज के प्रति कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के नेत्रों से प्रेमाश्रुओं का ऐसा प्रवाह उमड़ा कि वे स्वयं श्री सरयू जी के स्वरूप हो गये। उनके हृदय में श्री राम जी महाराज से मिलने की अत्यधिक त्वरा समायी हुई थी। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सुन्दर मन की स्थिति को कौन जान सकता है अर्थात उसका कोई अनुमान भी नही कर सकता।

दो0– जनक आगमन सुनत सब, रिपुहन सचिव सुलोग ।
आये मिलन सुप्रेम युत, मिले यथा विधि योग ॥६८॥

श्री अयोध्या पुरी में, श्री जनक जी महाराज का आगमन श्रवणकर मन्त्रियों व अन्य सभी गणमान्य जनों सहित श्री शत्रुघ्न कुमार जी सुन्दर प्रेम पूर्वक भेंट करने हेतु आये और सभी से यथा–रीति व यथा–योग्य भेंट किये।

कुँअर शरीर परै नहिं चीन्हा । सुधि बुधि रहित विरह लय लीन्हा ॥
देखि लोग भे परम दुखारी । प्रेम पगे जावैं बलिहारी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का कृश शरीर तो पहचाना ही नहीं जा रहा था। वे अपनी सम्पूर्ण स्मृति भूले हुये, प्रभु वियोग में लीन थे। उन्हें देखकर सभी अत्यन्त दुखी हो, उनके प्रेम में डूब, उन पर बलिहार हो रहे थे।

नन्दि ग्राम लै जनक समाजा । बसे जाय निमिकुल मणि राजा ॥
मैथिल मिले भरत कहँ जाई । जनक नारि युत नेह नहाई ॥

निमिकुल मणि श्री जनक जी महाराज अपने सम्पूर्ण समाज को लेकर श्री नन्दिग्राम में निवास किये। सभी मिथिला पुर–वासियों एवं अपनी महारानी श्री सुनैना जी के सहित श्री जनक जी महाराज श्री भरत जी के स्नेह में अवगाहन करते हुये उनसे भेंट किये।

भरतहिं देखि विरह रस साने। बूड़े प्रेम सिन्धु अकुलाने ॥
समुझाये निमिकुल गुरु ज्ञानी। धीरज धरे सकल दुख सानी ॥

श्री भरत जी को प्रभु–विरह रस में डूबे हुए देखकर श्री जनक जी महाराज व्यग्र हो प्रेम के सागर में समाहित हो गये। उस समय परम ज्ञानी निमिकुल आचार्य श्री याज्ञवल्क्य जी ने समझाया तब दुख में सने हुए सभी ने धैर्य धारण किया।

तहँ बशिष्ठ पद सबहिन बन्दे । जनक समेत विरह दुख कन्दे ॥
कुँअरहिं लै पुनि जनक भुआरा । गुरु वशिष्ठ शुभ चरणन डारा ॥

वहाँ श्री राम–विरह–विषाद ग्रसित श्री जनक जी महाराज सहित सभी मिथिलापुर वासियों ने रघुकुल आचार्य श्री वसिष्ठ जी के चरणों की वन्दना की, पुनः श्री जनक जी महाराज ने अपने कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को लेकर गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी के शुभ चरणों में दण्डवत प्रणाम करने हेतु लिटा दिया।

दो0– मुनि लखि विलखे प्रेम पगि, बहत नयन बहु धार ।
बहुरि बिठायो अंक तेहिं, सूँघत शीश सुखार ॥६९॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखकर मुनिवर श्री बसिष्ठ जी व्याकुल हो विलाप करने लगे, उनके नेत्रों से अश्रुओं की अविरल धारायें बहने लगीं। पुनः श्री बसिष्ठ जी नें कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अपनी गोद में बिठाकर, सुख पूर्वक उनका शिरोघ्राण किया।

कुँअर विरह दुख दुखित अपारा । ढारत आँसु न देह सँभारा ॥
लुढ़कि परेउ श्री गुरु पद माहीं । निकस्यो बचन एक मुख नाहीं ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु विरह के असीमित दुख में दुखी हो अश्रु बहा रहे थे तथा अपने शरीर को नहीं सँभाल पा रहे थे। इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री गुरुदेव बसिष्ठ जी के चरणों में लुढ़कर गिर पड़े तथा उनके मुख से एक भी शब्द नहीं निकल सके।

जनक उठाय गये लै वासा । जोगवति सिद्धि सहित रनिवासा ॥
कुँअरहिं देखन भरत सिधाये । भूप सुतहिं तब चेत कराये ॥

उस समय श्री जनक जी महाराज उन्हें उठाकर अपने निवास ले गये वहाँ सम्पूर्ण रनिवास सहित श्री सिद्धि कुँअरि जी उनकी देख–भाल करने लगीं। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का दर्शन करने के लिए श्री भरत जी पधारे तब श्री जनक जी महाराज ने अपने कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को चैतन्य कराया।

भरत आगमन सुनत कुमारा । प्रेमातुर निज नयन उघारा ॥
भरतहिं देखि मिलन मन चाहा । उठत यतन करि प्रेम प्रवाहा ॥

श्री भरत जी का आगमन सुनकर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने प्रेमातुर हो अपने नेत्र खोल दिये, श्री भरत जी को देखकर कुमार के मन में उनसे भेट करने की इच्छा हुई तथा वे प्रेमाश्रुओं की धार बहाते हुए उठने के उपाय करने लगे।

भरत तुरत कुँअरहिं हिय लाये। प्रेमातुर दृग वारि बहाये ॥
छपकि रहे दोउ एकन एकी । भूले तन मन बुद्धि विवेकी ॥
रहे एक एकन नहवाई । नयन धार वरषत रस छाई ॥

तब प्रभु प्रेम–विह्वल हो अश्रु बहाते हुए श्री भरत जी ने शीघ्र ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को हृदय से लगा लिया और दोनों राज कुमार (श्री भरत जी ने व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी) अपने–अपने शरीर, मन, बुद्धि और विवेक को भूलकर एक दूसरे से लिपट गये तथा रस परिपूर्ण हो, नेत्रों के प्रेमाश्रु–प्रवाह से एक दूसरे को अवगाहन कराने लगे।

दो0– दूनहु हिय अस लगत जनु, राम भेंट मैं आज ।
परमानन्द समाय पुनि, प्रेम सिंहासन भ्राज ॥७०॥

उस समय दोनों के हृदय में ऐसी प्रतीति हो रही थी जैसे आज उनकी श्री राम जी महाराज से भेंट हुई हो। वे दोनो श्री भरत जी व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी परमानन्द मे मग्न हो कर पुनः प्रभु प्रेम के सिंहासन में सुशोभित हो गये।

युगल भागवत प्रेम स्वरूपा । मिलत माँहि सुख सने अनूपा ॥
लिपटि रहे नहि छोड़न चाहे। आनन्द धार गये दोउ बाहे ॥

प्रेम स्वरूप परम भागवत दोनों श्री भरत जी व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भेंट करते समय अनुपमेय सुख में निमग्न हो लिपटे हुए थे तथा एक दूसरे को अलग नहीं करना चाहते थे, वे दोनो आनन्द की धारा में प्रवाहित हो गये थे।

लखि सुर वर्षत सुर तरु फूला । जय जय कहत मोद मन भूला ॥
होइ मन मगन बजाइ निसाना । कहत धन्य युग प्रेम निधाना ॥

उन्हें देखकर देवता आनन्द पूर्वक, मन विस्मृत कर कल्प वृक्ष के पुष्पों की वर्षा करते हुए जय–जय नाद कर रहे थे तथा मग्न मना नगाड़े बजाकर कह रहे थे कि– प्रेम के निधान दोनों

राजकुमार श्री भरत जी व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी धन्य हैं।

राम प्रेम भाजन दोउ भयऊ। त्रिभुवन प्रेम पाठ दै दयऊ ॥
सीता राम हृदय दोउ बसहू। दोउ उर बसहिं सिया सरवसहू ॥

ये दोनों राज कुमार श्री राम जी महाराज के प्रेम पात्र हैं तथा अपने चरित्र से तीनों लोकों को प्रेम की शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। ये दोनों नरपति कुमार श्री भरत जी व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज के हृदय में निवास करते हैं तथा दोनों के हृदय में श्री सिया जू के सर्वस्व श्री राम जी महाराज का निवास है।

प्रेमाकार सदा रस भीने। कुल सह जगत सुपावन कीने ॥
श्याम गौर दोउ रसिक सुजाना। चेत लहे नहि समय बिताना ॥

ये दोनों ही प्रेम स्वरूप हैं तथा सर्वदा रस में निमग्न रहते हैं। इन दोनो ने अपने कुलों के सहित सम्पूर्ण संसार को सुन्दर व पवित्र कर दिया है। श्याम और गौर वर्ण वाले रसिक–श्रेष्ठ श्री भरत जी व श्री लक्ष्मीनिधि जी बहुत समय व्यतीत होने पर भी जब चैतन्यता नहीं धारण किये।

दो0– हरि कीर्तन होवन लगेउ, धुनि छाई चहु ओर ।
सुनतहिं जागे युगल प्रिय, तद्यपि प्रेम विभोर ॥७१॥

तब वहाँ भगवन्नाम संकीर्तन होने लगा जिसकी सुन्दर ध्वनि चारों दिशाओं में परिव्याप्त हो गयी। यद्यपि संकीर्तन ध्वनि श्रवण करते ही दोनों प्रिय राज कुमार श्री भरत जी और श्री लक्ष्मीनिधि जी जाग्रत हो गये तथापि वे प्रभु प्रेम में विभोर थे।

मास पारायण बाइसवाँ विश्राम

कुँअर शरीर परै नहिं चीन्हा। अस्थि मात्र श्वासा धन लीन्हा ॥
विस्मय भरत प्रेम लखि तासू। अधिक नेह वश ढारत आँसू ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का शरीर पहचान में नहीं आ रहा था मानो वह श्वाँस रूपी धन ग्रहण किये हुए अस्थियों का कंकाल हो। श्री भरत जी उनके प्रेम को देखकर विस्मित हो गये तथा प्रेम प्राबल्य के कारण अश्रु बहाने लगे।

धरि धीरज बोलेउ सुनु प्यारे। बीती अवधि काल दुख भारे ॥
परसौं दिवस नाथ जन जानी। दैहैं दरश प्रतीत समानी ॥

पुनः श्री भरत जी धैर्य धारण कर बोले– हे प्यारे, कुँअर जी! सुनिये, महान दुख प्रदायक समय कल समाप्त हो जायेगा, परसों दिन हमारे स्वामी श्री राम जी महाराज, अपना सेवक समझकर हमें दर्शन प्रदान करेंगे, ऐसी प्रतीति मेरे हृदय में समायी हुई है।

नाशी विपति हमार तुम्हारी। पूजी प्रिय अभिलाष सुखारी ॥
ताते धरहु धीर करि चेतू। कुँअर लहेव सुख सुनत सुहेतू ॥

इस प्रकार हमारे व आपके दुःखों की निवृत्ति हो जायेगी और हमारी प्रिय व सुखकर

मनोभिलाषा पूर्ण हो जायेगी। अतः आप चैतन्य होकर धैर्य धारण करें। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री भरत जी की वाणी से धैर्य धारण करने का सुन्दर कारण श्रवणकर सुख प्राप्त किया।

बहु समुझाय भरत मतिमाना । पोंछत आँसु परम प्रिय जाना ॥
कुँअर उतर जल नयनन द्वारा । भरतहिं देत स्वबुद्धि खुआरा ॥
सिद्धिहिं निरखि राम रस रूपी । कहत भरत धनि प्रेम अनूपी ॥

इस प्रकार परम बुद्धिमान श्री भरत जी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को बहुत प्रकार से समझाते हुए अपने प्रभु श्री राम जी महाराज के अत्यधिक प्रिय जानकर उनके अश्रु प्रोच्छण करते हैं। उस समय अपनी बुद्धि को विस्मृत किये हुए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी नेत्रों के प्रेमाश्रुओं के द्वारा श्री भरत जी को उत्तर दे रहे थे। श्री सिद्धि कुँअरि जी को, श्री राम जी महाराज के राम प्रेम रस में परिप्लुत देखकर श्री भरत जी ने कहा— आप अनुपमेय, प्रेम—स्वरूपा व धन्य हैं।

दो0—पूँछि जनक कहँ भरत पुनि, गवने निजहिं कुटीर ।
कुँअरहुँ पागे विरह बहु, कसकति हिय अति पीर ॥७२॥

पुनः श्री भरत जी, श्री जनक जी महाराज से आज्ञा लेकर अपनी पर्ण कुटी चले गये तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भी प्रभु के महान विरह में डूब गये, उनका हृदय प्रभु वियोग की पीड़ा से अतिशय कसक रहा था।

राम मातु कौशिल्या आई । सखिन समेत मिलन रस छाई ॥
मातु सुनैना करि अगुवानी । मिली यथा विधि प्रेम समानी ॥

प्रेम रस में सराबोर हो श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी अपनी सखियों सहित मिलन (भेंट करने) हेतु श्री जनक जी महाराज के रनिवास में आयीं तब अम्बा श्री सुनैना जी नें उनकी अगुवानी कर प्रेम परिप्लुत हो विधि पूर्वक भेंट की।

कुशल कहत जहँ रहे कुमारा । गवनी सकल युगल नृप दारा ॥
देखि कुँअर कहँ गई सुखाई । कृषित शरीर रहेव अकुलाई ॥

कुशल समाचार कहते—सुनते हुए दोनों महारानियाँ श्री कौशिल्या जी तथा श्री सुनैना जी सभी के साथ वहाँ गई, जहाँ प्रभु वियोगी कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी रह रहे थे। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखते ही वे स्तम्भित हो गयीं। कुमार का शरीर अत्यन्त ही दुर्बल हो गया था और वे अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे।

कुँअरहिं कही बुझाय सुनैना। आयीं राम मातु तब ऐना ॥
राम मातु कर परशहिं पाई। चितये कुँअर सुनैन उठाई ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को समझाकर श्री सुनैना अम्बा जी ने कहा कि— हे कुमार! आपके निवास में श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी पधारी हुई हैं तब श्री राम जी महाराज की मातु श्री का कर—स्पर्श प्राप्त कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने नेत्रों को उठाकर उनका दर्शन किये।

ढारत दृगन चरण शिर दीन्हा । मातु उठाय गोद निज लीन्हा ॥
बड़ी बार लगि हृदय लगाई । सुखी भई जस रामहिं पाई ॥

अश्रु बहाते हुए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी नें अम्बा श्री कौशिल्या जी के चरणों में अपना शिर रख दिया तब अम्बा श्री कौशिल्या जी ने उन्हें उठाकर अपनी गोद में ले लिया। वे बड़ी देर तक तक उन्हे हृदय से लगाये रहीं तथा उसी प्रकार सुखी हुई जैसे श्री राम जी महाराज को प्राप्त कर ली हों।

दो0– प्रेम वारि मोचत दृगन, राम मातु तेहिं देख ।
राम रसिक जान्यो प्रवर, पूरी प्रेम विशेष ॥७३॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की स्थिति को देखकर अम्बा श्री कौशिल्या जी अपने नेत्रों से अश्रु बहाने लगी तथा उन्हें श्री राम जी महाराज का श्रेष्ठ रसिक समझकर विशेष प्रेम से परिपूर्ण हो गयीं।

सिद्धि कुँअरि अति कृशित सुहाई । पतिव्रत धर्म धुरीण महाई ॥
कौशिल्या चरणन लपटानी । विरह सनी नहि जाय बखानी ॥

अनन्तर अत्यन्त कृशित हुई, पतिव्रत धर्म धुरीणा, परम सुशोभना व महान श्री सिद्धि कुँअरि जी अवर्णनीय प्रभु विरह में डूबी हुई अम्बा श्री कौशिल्या जी के चरणों में लिपट गयीं।

रघुवर मातु प्रेम अति कीन्ही । शीश सूँघि बहु आशिष दीन्हीं ॥
पति पत्नी कर प्रेम महाना । देखि मातु अचरज अति माना ॥

तब श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी ने उन्हें अत्यधिक प्रेम किया और उनका शिर सूँघकर बहुत सा आशिर्वाद प्रदान किया। पति और पत्नी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँअरि जी (दोनों) के महान राम–प्रेम को देखकर अम्बा श्री कौशिल्या जी ने अत्यधिक आश्चर्य माना।

राम सिया कर दम्पति प्राना । काहे होहु न प्रेम निधाना ॥
कहति मातु अस पुनि समुझाई । परसौं दिन आवन रघुराई ॥

ये प्रेम के निधान दम्पति श्री सीताराम जी के प्राण क्यों न हों। कहते हुये अम्बा श्री कौशिल्या जी ने उन्हें समझाकर कहा कि– 'परसों दिन' श्री राम जी का मंगलमय आगमन है।–––

विधि हरि हर जो पुरब मनोरथ । होवहिं सब कृत कृत्य यथारथ ॥
लक्ष्मीनिधि धारहु हिय धीरा । मातु कहति मिलिहैं रघुवीरा ॥

–––यदि श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी और श्री शंकर जी हमारे मन की अभिलाषा को पूर्ण कर दें तो हम सभी यथार्थतया कृत–कृत्य हो जायेंगी। अम्बा श्री कौशिल्या जी ने आगे कहा– हे कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप अपने हृदय में धैर्य धारण कीजिये, आपको अवश्य ही श्री राम जी की प्राप्ति होगी।

दो0– उतर न आवत कुँअर कहँ, ढारत दुहुँ दृग नीर ।
प्रभु आवन भावत मनहिं, भूलत सुधिहुँ शरीर ॥७४॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को उस समय कोई भी उत्तर नहीं सूझ रहा था, वे दोनों नेत्रों से अश्रु बहा रहे थे, उनके मन को मात्र प्रभु श्री राम जी महाराज का आ जाना ही अच्छा लग रहा था तथा उन्हे शरीर स्मृति भूली हुई थी।

माण्डवि श्रुतिकीरति उरमीला । भेंटी सबहिं प्रेम रस शीला ॥
विरह सनी सोउ राम सिया के । कहि न जाय परिताप हिया के ॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– पुनः, प्रेम और रस परिपूर्णा श्री माण्डवी जी, श्री श्रुतिकीर्ति जी तथा श्री उर्मिला जी नें सभी से भेंट की। वे सभी श्री सीताराम जी के विरह में डूबी हुई थीं, उनके हृदय के महान दुख का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

भाभी भ्रात देखि दुख पागी । ढारत आँसु पिता पुर रागी ॥
कौशिल्या पुनि सबहिं लिवाई । हिलि मिलि गई अवध विरहाई ॥

वे अपनी भाभी श्री सिद्धिकुँअरि जी और श्री मान् भैया जी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखकर विषाद ग्रस्त हो गयी थीं तथा अपनी पितृ–पुरी 'श्री मिथिलापुरी' के प्रेम में रँगी हुई अश्रु बहा रही थीं। अनन्तर अम्बा श्री कौशिल्या जी सबसे हिल–मिल कर विरह में समायी हुई उन सभी को लेकर श्री अयोध्यापुरी प्रस्थान कर गयीं।

भरत सुगुरु माता पुरवासी । जे जे देखे कुँअर प्रकाशी ॥
सुने सबहिं सिय रघुवर नामा । रोम रोम निकसत अभिरामा ॥

श्री भरत जी, गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी, सभी अम्बाओं और पुरवासियों आदि जिसने भी परम प्रकाश स्वरूप कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के दर्शन किये थे, उन सभी ने उनके रोम–रोम से निकलती हुई सुन्दर श्री सीताराम नाम ध्वनि को श्रवण किया।

अति स्पष्ट मधुर मधु रूपा । रसमय सुखमय भाव अनूपा ॥
कुँअरहिं कहत सकल पुर लोगा । राम सिया कर रूप प्रयोगा ॥

वह नाम ध्वनि अत्यन्त ही स्पष्ट, मधुरातिमधुर, रस स्वरूप, सुखमय एवं अनुपमेय भाव से परिपूर्ण थी। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के ऐसे प्रभाव को देखकर, श्री अयोध्या व मिथिला पुरी के सभी निवासी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को श्री सीताराम जी का अभिन्न व भली प्रकार से सम्मिलित स्वरूप कह रहे थे।

दो0– एक राम धरि युगल तनु, श्याम गौर सुख धाम ।
एक अवध विहरन हितै, दूसर मिथिला काम ॥७५॥

एक श्री राम जी महाराज ही, स्वयं श्याम और गौर वर्ण के, सुख के धाम दो स्वरूप, एक श्री अयोध्यापुरी में विहार करने हेतु और दूसरा श्री मिथिलापुरी में उनके कार्य साधन हेतु धारण किये हुए हैं।

इक तन भाम द्वितिय तन श्याला । बने लखे नहिं कोउ नृप बाला ॥
युगल भाव रस रसिया रामा । चखत रसहिं तन धरे ललामा ॥

वे एक शरीर से बहनोई और एक शरीर से श्याल बने हुए दो राज कुमार हैं जिन्हें कोई भी नहीं समझ पाया। वे श्री राम जी महाराज रस और रसिक नामक दो भावों में भावित हो सुन्दर शरीर धारण किये हुए परस्पर रस पान करते रहते हैं।

यहि प्रकार सब करहिं प्रशंसा। धन्य विमल निमिकुल अवतंसा ॥
बीत गयो पुनि वासर सोऊ। किय विश्राम रात जिय जोऊ ॥

इस प्रकार सभी पुरवासी उनकी प्रशंसा कर रहे थे कि– परम विमल श्री निमिकुल के आभूषण कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी धन्य हैं। इस प्रकार से वह दिन भी व्यतीत हो गया तथा हृदय में भगवच्चिन्तन करते हुए रात्रि में सभी ने विश्राम किया।

ब्रह्म मुहूरत उठि सब लोगू। आह्निक क्रिया किये जस योगू ॥
राम दरश हित जनपद लोगा। आये अवध न सहत वियोगा ॥

पुनः सभी ने ब्रह्म मुहूर्त में जागकर यथा योग्य नित्य क्रियाओं का सम्पादन किया। श्री अयोध्या जनपद के निवासी, श्री राम जी महाराज के वियोग को न सह पाने के कारण, उनके दर्शनों के लिए श्री अयोध्यापुरी चले आये।

देश देश लै नृपति समाजा। आये बहुत दरश के काजा ॥
महा भीर भइ अवध मँझारा। सब कर भयो सुखद सतकारा ॥

सभी देश–देशान्तरों से भी बहुत से राजागण अपने–अपने समाज को लेकर श्री राम जी महाराज के दर्शन के लिए आये। इस प्रकार श्री अयोध्यापुरी में अत्यन्त भीड़ हो गयी और वहाँ सभी का सुखदायी सत्कार हुआ।

छं0– सतकार भूपति पाइ सब, जनपद सकल जे नारि नर।
सिय राम लछिमन दर्श हित, सब कोउ किये अभिलाष वर ॥
हिय चैन आवत नहिं तनिक, अब लग न सुधि है कछु मिली।
बस आज अन्तिम द्यौस है, हर्षण बिती अवधिहुँ गली ॥

वहाँ समागत राजागण व श्री अयोध्या जनपद के स्त्री–पुरुष सभी ने प्रियकर सत्कार प्राप्त किया तथा वे सभी अपने हृदय में श्री सीताराम जी और श्री लक्ष्मण कुमार के दर्शनों की सुन्दर अभिलाषा किये हुए थे। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते है कि– किसी के हृदय में किंचित भी शान्ति नहीं हो रही थी क्योंकि आज श्री सीताराम जी के वनवास का अन्तिम दिन है और अभी तक प्रभु का कुछ भी समाचार नहीं प्राप्त हो सका है। अब तो वनवास की समय सीमा भी व्यतीत हो गयी है।

सो0–मन महँ महा खभार, जहँ तहँ सोचत नारि नर।
सुधि नहि मिली उदार, रघुपति आवन की कछुक ॥७६॥

जहाँ–तहाँ सभी स्त्री–पुरुष, अतिशय दुख पूर्वक, विचार कर रहे थे कि– परम उदार श्री राम

जी महाराज के आगमन का कुछ भी समाचार अभी तक नहीं प्राप्त हुआ है।

सोचत मिथिला अवध समाजा। पूरी आज अवधि रघुराजा॥
नहि आये सुख करण कृपाला। आरत हरण प्रणत जन पाला॥

श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्या पुरी का सम्पूर्ण समाज अपने मन में यही विचार कर रहा था कि– आज रघुराज राम जी महाराज की वनवास अवधि पूर्ण हो गयी, परन्तु सुख प्रदायक, कृपालु–मौलि, आर्ति हरण करने वाले व आश्रित जन प्रतिपालक श्री राम जी महाराज नहीं आये हैं।

अवधि बिते रघुवर रस छावा। जो करि कृपा काल नहिं आवा॥
अवशि भरत तन देहैं छोरी। कुँअरहिं प्राण रही नहिं भोरी॥

अवधि समाप्त होने पर भी यदि रसस्वरूप श्री राम जी महाराज कृपा कर कल नहीं आते हैं तो श्री भरत जी अपना शरीर छोड़ देंगे तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्राण भी भूल कर भी उनके शरीर में नहीं रह पायेंगे।

औरहुँ जाने नहिं का होई। मिथिला अवध गती दुख मोई॥
नहि जानैं केहिं केहिं कर प्राना। छूटी अवधि बिते विरहाना॥

न जाने, इससे अधिक भी क्या हो जायेगा? श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी की अवस्था अत्यन्त दुखमय हो जायेगी तथा अवधि व्यतीत हो जाने पर विरह–दुख से न जाने किस–किस के प्राण छूट जायेंगे।

हमरे समझ दुहूँ कुल अन्ता। जो नहिं आवैं कल्ह सियकंता॥
महा बिपति जग माँहि समाई। समय न अइहैं जो रघुराई॥

हमारे समझ में यदि सीताकान्त श्री राम जी महाराज कल नहीं आते हैं तो निमिकुल व रघुकुल दोनों कुलों का अन्त ही हो जायेगा। यदि समय के रहते श्री राम जी महाराज का आगमन नहीं होता तो संसार में महान दुख व्याप्त हो जायेगा।

दो0– सुर नर मुनि सब दुखित ह्वै, छोड़िहैं श्वास प्रश्वास।
त्रिभुवन हाहाकार मचि, जाई सब सुख नास॥७७॥

देवता, मनुष्य और मुनि आदि सभी जन, अतिशय दुखित होकर श्वाँस लेना व छोड़ना भी त्याग देंगे, तीनों लोकों को में हाहाकार मच जायेगा तथा सभी के सम्पूर्ण सुख विनष्ट हो जायेंगे।

करत विचार फरक शुभ अंगा। शुभद सुखद मन करन सुरंगा॥
विविध सगुन सब काहि जनाहीं। मन प्रसन्न मुख कान्ति सुहाहीं॥

ऐसा विचार करते ही उनके शुभ प्रदायक, सुखदायी व मन को आनन्दित करने वाले शुभ अंग फड़कने लगे, सभी लोंगों को विभिन्न प्रकार के सगुन समझ आने लगे, उनके मन प्रसन्न तथा मुख सुन्दर कान्ति प्रपूरित हो गये।

सोह अवध सरि सरयू वारी । त्रिविध समीर बहै सुखकारी ॥
मेघ रहित अति शुभ्र अकाशा । शोभित हिय जिमि रघुवर दासा ॥

श्री अयोध्यापुरी सुशोभित हो गयी, श्री सरयू जी जल परिपूर्ण हो गयीं, तीनों प्रकार का (शीतल, मन्द व सुगन्धित) सुखकारी वायु प्रवाहित होने लगा तथा बादलों से रहित निर्मल आकाश उसी प्रकार सुशोभित हो गया जैसे श्री राम जी महाराज के सेवकों का सर्वथा अविकारी हृदय।

दस दिशि लागत आनन्द रूपा । आजु पुरी भई प्रथम स्वरूपा ॥
करत विचार सबहिं कोउ आई । कहन चहत आवत रघुराई ॥

दसों दिशाएँ आनन्द स्वरूपा प्रतीत होने लगीं हैं तथा श्री अयोध्यापुरी आज अपने पूर्व के समान स्वरूप वाली हो गयी है। सभी के मन में यही बिचार आ रहे हैं कि– कोई आकर यह कहना ही चाह रहा है कि– रघुकुल के राजा श्री राम जी महाराज आ रहे हैं।

निश्चय करत सकल नर नारी । मिलिहैं अवशि राम धनुधारी ॥
पूर्ण मनोरथ सब कोउ होई । होइहैं सुखी राम मुख जोई ॥

सभी स्त्री–पुरुष यही निश्चय कर रहे हैं कि– धनुर्धर श्री राम रघुनन्दन जी से हमारा अवश्य ही संप्रयोग होगा तथा हम सभी श्री राम जी महाराज का मुख चन्द्र दर्शन कर सुखी व पूर्ण मनोरथ हो जायेंगे।

दो0– कहत परस्पर लोग सब, प्रभु दर्शन की बात ।
बिना दरश रघुराज के, निमिष कल्प सम जात ॥७८॥

इस प्रकार सभी स्त्री–पुरुष आपस में प्रभु श्री राम जी महाराज के दर्शनों की ही बात कर रहे थे तथा उनका एक पल का समय रघुकुल के राजा श्री राम जी महाराज के अदर्शन से कल्प के समान व्यतीत हो रहा था।

बैठ भरत निज पर्ण कुटीरा । राम कहत ढारत दृग नीरा ॥
करत बिचार मनहिं मन माहीं । अब लौं मिली राम सुधि नाहीं ॥

प्रेम मूर्ति श्री भरत जी अपनी पर्ण कुटी में बैठकर श्री राम–राम उच्चारण करते हुए नेत्रों से अश्रु बहाते हुए मन में विचार कर रहे थे कि– अब तक मुझे श्री राम जी महाराज का कोई समाचार प्राप्त नहीं हुआ।

पाप शिरोमणि गिन रघुवीरा । नहिं अइहैं विधि का मम तीरा ॥
प्रणत पाल जन अवगुण हारी । दीन बन्धु करुणाकर भारी ॥

हे विधाता! क्या? मुझे पापियों का शिरमौर समझ कर श्री राम जी महाराज मेरे समीप नहीं आयेंगे? परन्तु वे तो आश्रित जनों का पालन करने वाले, अपने सेवकों के दोषों का हरण करने वाले, दीनों के बन्धु तथा करुणा के महासागर हैं।

जो मोहिं तजहिं ठौर कहुँ नाहीं । हाय अभाग मोर बड़ आही ॥
बाकी रह्यो दिवश द्वै दण्डा । बीति गयी सब अवधि अखण्डा ॥

यदि मेरे प्रभु मेरा त्याग करते हैं तो फिर मुझे कहीं भी स्थान नहीं है। हाय! हाय! यह तो मेरा बड़ा ही दुर्भाग्य होगा। वह १४ वर्षों की अखण्ड अवधि तो सम्पूर्ण व्यतीत हो गयी है अब मात्र दो दण्ड (४८ मिनट) ही दिन शेष है।

मोर अभाग जियाइसि मोही। मरिहौं बिना दरश अब जोही ॥
अस कहि भरत महा दुख पागे। मूर्छित गिरे विरह शर दागे ॥

मेरी दुर्भाग्य ही मुझे अभी तक जीवित किये हुए है, अब तो ऐसा दिख रहा है कि मैं अपने प्रभु श्री राम जी के दर्शनों के अभाव में ही मृत्यु को प्राप्त करूँगा। ऐसा कहकर श्री भरत जी महान दुख में डूब गये और विरह बाण के द्वारा दग्ध हुए, मूर्छित होकर गिर पड़े।

दो0– तेहिं अवसर मिथिलेश नृप, आये भरत सकासु ।
भरतहिं देखे अति विकल, धरे अंक शिर तासु ॥७९॥

उसी समय श्री मिथिलेश जी महाराज श्री भरत जी के समीप आ गये तथा श्री भरत जी को अत्यधिक व्याकुल देखकर उनका शिर अपनी गोद में रख लिये।

बहु समझाइ सचेत कराई । रहे नृपति भरतहिं हिय लाई ॥
बोले भरत आज के बीते । काल नृपति जग करिहौं रीते ॥

पुनः श्री जनक जी महाराज ने श्री भरत जी को बहुत प्रकार से समझा कर सचेत किया और अपने हृदय से लगा लिये। तब श्री भरत जी ने कहा– हे श्री महाराज! आज के व्यतीत हो जाने पर यदि प्रभु श्री राम जी महाराज का दर्शन नही हुआ तो कल मैं, स्वयं से संसार को रिक्त कर दूँगा अर्थात् प्राण त्याग दूँगा।

निकसन प्राण अबहिं को चाहैं। सम्भव दरश आस रहि जाहैं ॥
बीते रात राम नहिं भेंटे। तो न जिऔं यह बात अमेटे ॥

मेरे प्राण तो सम्प्रति ही निकल जाना चाहते हैं, परन्तु सम्भव है कि वे प्रभु दर्शन की लालसा में रुक जायें। परन्तु यदि आज की रात व्यतीत होने पर मुझसे श्री राम जी महाराज भेंट नहीं करते तो यह बात अमिट है कि– मैं जीवित नहीं रहूँगा।

अस कहि प्रेम प्रवाह समाने । हिचकि हिचकि रोवत अकुलाने ॥
लागत प्राण अबहिं जनु छूटी। जियत राम सिय नाम सुबूटी ॥

ऐसा कहकर श्री भरत जी प्रेम के प्रवाह में समा गये तथा हिचकियाँ ले लेकर व्याकुल हो रुदन करने लगे। उस समय ऐसा लग रहा था जैसे उनके प्राण अभी ही छूट जायेंगे, वे श्री सीताराम नाम रूपी संजीवनी बूटी के सहारे ही जी रहे हों।

भरत विरह कहि जाय न पारा । विरही लागत सब संसारा ॥
सगुन समुझि सब लोग बुझावत । तदपि हृदय नहि धीरज आवत ॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–प्रेम–विग्रह श्री भरत जी के प्रभु विरह का वर्णन नहीं किया जा सकता, उन्हें देखकर सम्पूर्ण संसार ही विरह मग्न प्रतीत हो रहा था। शुभ सगुनों का अनुभव कर सभी, उन्हें समझाते थे फिर भी उनके हृदय में धैर्य नहीं होता था।

सो0–आये तबहिं सुदास, पवन तनय प्रभु राम के ।
सीता राम प्रकाश, अमृत लाये जियन हित ॥८०॥

उसी समय प्रभु श्री राम जी महाराज के सुन्दर सेवक, पवन नन्दन श्री हनुमान जी श्री भरत जी के जीवन धारण करने के लिये श्री सीताराम जी का अमृत स्वरूप प्रकाश (समाचार) ले कर आ गये।

देखि विकल भरतहिं हनुमाना। प्रेमातुर भूल्यो तन भाना ॥
परेउ लकुटि इव भरत के चरणा। विप्र रूप बनि प्रीति अवरणा ॥

श्री भरत जी को प्रभु–विरह में व्याकुल देखकर, ब्राह्मण रूप धारण किये हुये श्री हनुमान जी, प्रेमातुर हो शरीर स्मृति भूल गये और श्री भरत जी के चरणों में अवर्णनीय प्रेम पूर्वक दण्ड के समान गिर पड़े।

पूँछे भरत कहाँ ते आये । द्विज ह्वै तुम मोहि शीश नवाये ॥
वैसेहिं अकथ अगाध अपारा । मोर पाप अवनी कर भारा ॥

उन्हें देखकर श्री भरत जी ने पूछा कि– आप कहाँ से आये हैं और ब्राह्मण होकर भी आपने मुझे क्यों शिर झुकाया है? मेरे पाप तो वैसे ही अकथनीय, अगाध, असीम व भूमि के भार स्वरूप हैं।

जेहिं कारण रघुवर मोहिं छोरी । बसे बनहिं सह लखन किशोरी ॥
प्रायश्चित भो अजहूँ नाहीं । सुधि नहिं दिये राम मोहिं काहीं ॥

जिसके कारण हे ब्रह्मण देवता! प्रभु श्री राम जी महाराज मुझे छोड़कर श्री लक्ष्मण कुमार और जनक किशोरी श्री सिया जू के सहित बन में वसे हुए हैं। मेरे पापों का प्रायश्चित अभी तक नहीं हो पाया क्योंकि श्री राम जी महाराज ने मुझे अपना समाचार तक नहीं दिया।

राम विमुख बिन दरशन पाये । छुटिहैं प्राण पाप फल लाये ॥
तेहिं पै मोहि प्रणाम द्विज कीन्हा । परम पाप मम शिर धरि दीन्हा ॥
प्रभु ब्रह्मण्य राम सुनि मोही । आवत हूँ नहिं अइहैं जोही ॥

श्री राम जी महाराज के विमुखी मेरे प्राण, अपने पापों का परिणाम प्राप्त कर उनके दर्शन पाये बिना ही छूट जायेंगे, उस पर भी एक ब्राह्मण ने मुझे प्रणाम कर मेरे शिर में महान पाप रख दिया है। ब्राह्मणों पर अतिशय श्रृद्धा करने वाले मेरे प्रभु श्री राम जी महाराज अब यदि आ भी रहे होंगे तो ऐसी अनीति सुनकर नहीं आयेंगे।

दो0– भरत बचन सुनि पवन सुत, जानि सहज द्विज प्रेम ।
बानर तन सुन्दर सुखद, धरेउ भूलि सब नेम ॥८१॥

श्री भरत जी के वचनों को सुन एवं उनकी ब्राह्मणों के प्रति सहज प्रीति को देखकर पवन तनय श्री हनुमान जी सभी नियमों को भूल गये तथा सुख प्रदायक सुन्दर बानर शरीर धारण कर लिये।

बोलेउ बहुरि सुनहु मम नाथा । देखि चरण तव भयो सनाथा ॥
परम भागवत प्रेम अनूपा । विधि हरि हर वन्दित रस रूपा ॥

पुनः वे बोले हे मेरे स्वामी! सुनिये, आपके श्री चरणों का दर्शन कर मैं सनाथ हो गया। आप श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शंकर जी आदि से स्तुत्य, अनुपमेय प्रेम से परिपूर्ण व रस स्वरूप परम भागवत हैं।

चारहु वरण पूज्य प्रभु प्रेमी । शास्त्र पुराण बतावत नेमी ॥
हौं तो प्रभु तव दासन दासा । रघुपति किंकर प्रेम पियासा ॥

हे नाथ! यद्यपि प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रेमी भक्तजन, चारों वर्णो (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और सूद्र) से भी पूज्य हैं, ऐसा ही नियम शास्त्र व पुराण बतलाते हैं तथापि हे नाथ! मैं तो आपके सेवकों का भी सेवक व श्री राम जी महाराज का प्रेम–पिपासित तुच्छ दास हूँ।–––

वानर जाति नाम हनुमाना । सत्य कहौं सुनु भरत सुजाना ॥
खबरि लेन मोहिं राम पठाये । दरशन हित तेहिं ते इत आये ॥

–––मेरी जाति वानर और मेरा नाम 'हनुमान' है। हे श्री सुजान भरत जी! सुनिये मैं सत्य कह रहा हूँ कि– श्री राम जी महाराज ने आपका समाचार लेने के लिए ही मुझे भेजा है इसलिये में आपके दर्शन करने यहाँ आया हूँ।

सुनत भरत रघुपति कर दासा । तुरत उठे भेटे भुज पासा ॥
बड़ी बार लगि हृदय लगाई । नेह नीर दीन्हे नहवाई ॥

श्री राम जी महाराज का दास हूँ यह शब्द सुनते ही श्री भरत जी शीघता पूर्वक उठकर श्री हनुमान जी को अपनी भुजाओं के बन्धन में बाँध लिये और बहुत देर तक हृदय से लगाये हुए उन्हें प्रेमाश्रुओं से अवगाहन कराते रहे।

दो0– प्रभु दूतहिं बैठाय पुनि, भरत हृदय रस छाय ।
राम कुशल पूछे हरषि, कही पवन सुनत गाय ॥८२॥

पुनः श्री भरत जी नें श्री राम दूत हनुमान जी को रसप्लावित हृदय से बिठाया व हर्षित होकर श्री राम जी महाराज की कुशलता पूँछी, तब पवन नन्दन श्री हनुमान जी, प्रभु श्री राम जी महाराज का समाचार वर्णन कर सुनाने लगे।

आपु विरह रघुवर विरहीले । बने रहैं निशि वासर ढीले ॥
जपत नाम तव आँसु गिराई । प्रेम मगन सुधि सकल भुलाई ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज आपके वियोग में वियोगी (दुखी) बने हुए रात्रि–दिन शिथिल रहते हैं। वे प्रेममग्न हो, सम्पूर्ण स्मृति भुला कर आपका नाम जपते हुए अश्रु बहाते रहते हैं।

सोवत भरत जपत विलखाये । अष्टयाम रह चित्त लगाये ॥
सुनत भकार भरहिं अनुरागा । राम जात रउरे रस पागा ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज शयन करते समय भी बिलखते हुए भरत–भरत जपते रहते हैं तथा आठो–याम आप में अपने चित्त को लगाये रहते हैं। वे आपके नाम भरत के प्रथम अक्षर ('भ') को सुनते ही अनुराग प्रपूरित होकर आपके रस में डूब जाते हैं।

सिया लखन करि तैसहिं प्रीती । कुशल अहहिं तीनहुँ दुख जीती ॥
भक्त सखा राखन बहु चाहे । तिन सो राम कहे रस बाहे ॥

अम्बा श्री सीता जी और श्री लक्ष्मण कुमार जी भी आपसे उसी प्रकार प्रेम करते हैं। सभी दुःखों पर विजय प्राप्त किये, वे तीनों श्री राम जी महाराज, श्री सीता जी व श्री लक्ष्मण कुमार जी कुशल पूर्वक हैं। श्री राम जी महाराज के भक्त तथा सखागण उन्हे बहुत रोकना चाह रहे थे परन्तु आपके प्रेम रस प्रवाह में बहते हुए श्री राम जी महाराज ने उनसे कहा–

अवधि बीत बिन भरतहिं देखे । मै न जिऔं जिय गुनहुँ विशेषे ॥
भरतहुँ बिनु मम दर्शन पाये । छोड़िहैं प्राण अवधि बित जाये ॥
तिन बिन निमिष कल्प सम जाई । ताते अब नहिं रहिहौं भाई ॥

आप सभी विशेष रूप से अपने हृदय में यह समझ लीजिये कि– वन की समय सीमा समाप्त होने के बाद अपने प्रिय भैया श्री भरत जी को देखे बिना मैं जीवित नहीं रह पाऊँगा तथा 'प्रिय भरत' भी वनवास का समय बीत जाने पर मेरा दर्शन पाये बिना अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देंगे। उनके बिना मेरा एक–एक पल का समय कल्प के समान व्यतीत हो रहा है। अतः हे भाइयो! मैं अब नहीं रह पाऊँगा।

दो0– आज प्रहर दिन रहत ही, पहुँचे पावन प्राग ।
भरद्वाज आश्रम टिके, साने मुनि अनुराग ॥८३॥

श्री राम जी महाराज आज एक प्रहर दिन रहते ही पवित्र श्री प्रयाग–राज में पहुँच गये थे तथा मुनिवर श्री भरद्वाज जी की प्रीति में सराबोर हुए उनके आश्रम में रुक गये हैं।

आज उचित नहिं आवन जानी । अवधिहिं भीतर रात समानी ॥
ताते रात अवधि बिन पूरे। बसे राम मुनिवर के कूरे ॥

रात्रि को अवधि के भीतर ही समाहित जान कर, प्रभु ने आज आना उचित नहीं समझा इसलिए अवधि पूर्ण न होने के कारण ही श्री राम जी महाराज आज मुनिवर श्री भरद्वाज जी के आश्रम में निवास किये हैं।

अइहैं काल अर्ध दिन भीतर । मिलिहैं सबहिं प्राण प्रिय मीतर ॥
सुनि सुख लहे भरत अधिकाई । जानि राम की कृपा भलाई ॥

वे कल मध्याह्न पूर्व ही यहाँ आ जायेंगे तथा आप सबके प्राण प्रिय सुहृद श्री राम जी महाराज सभी से भेंट करेंगे। श्री हनुमान जी के वचनों को श्रवण कर व श्री राम जी महाराज की कुशलता और कृपा को समझ कर श्री भरत जी नें अत्यधिक सुख प्राप्त किया।

चौदह वरष दुःख सब भूले। आवत जानि राम अनुकूले ॥
जनकहिं निरखि कहा मृदु बानी । सुनियो पवन तनय गुण खानी ॥

अनुकूल हुये श्री राम जी महाराज को आते हुए जान कर श्री भरत जी को चौदह वर्षो के सभी दुःख भूल गये। पुनः श्री जनक जी महाराज की ओर देखकर श्री भरत जी ने कोमल वाणी से कहा– हे गुणों के समूह, पवन नन्दन श्री हनुमान जी! सुनिये,

ज्ञान शिरोमणि श्री सिय दाऊ । येइ अहैं सुनतहिं कपिराऊ ॥
परि नृप चरण दण्डवत कीन्हा । परम पूज्य तिन कहँ हिय चीन्हा ॥
प्रथम दरश कर प्रेम प्रवाहा । कपि हिय बढ़ेउ कहै कवि काहा ॥

श्री सिया जू के श्री मान् पिता जी ज्ञान शिरोमणि श्री जनक जी महाराज ये ही हैं, यह सुनते ही श्री हनुमान जी ने अपने हृदय में श्री जनक जी महाराज को अत्यधिक पूज्य समझ, उनके चरणों में लेट कर दण्डवत प्रणाम किया। उस समय श्री हनुमान जी के हृदय में श्री विदेहराज जी महाराज का प्रथम दर्शन करने से जैसा प्रेम प्रवाह बृद्धिंगत हुआ उसे कोई कवि कैसे वर्णन कर सकता है ?

दो0– जनक रहे उर लाय बहु, पूँछे अंजनि लाल ।
मम मातुल तव कुँअर कित, सिया भ्रात रस शाल ॥८४॥

श्री जनक जी महाराज श्री हनुमान जी को बहुत समय तक हृदय से लगाये रहे। पुनः अंजनी नन्दन श्री हनुमान जी ने पूछा कि– आप के प्रिय कुमार, मेरे मामा तथा श्री सिया जू के बड़े भ्राता रसस्वरूप कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी कहाँ है?

जिन कहँ सुमिरत श्री सिय रामा। कहि न जाय भल भाव ललामा ॥
विरहातुर नित रहत किशोरी। तैसहिं राम लखण रस बोरी ॥

श्री सीताराम जी महाराज जिनका सुन्दर, अवर्णनीय भाव पूर्वक, स्मरण करते हैं। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के विरह में नित्य ही अम्बा श्री सीता जी व्याकुल रहा करती हैं तथा उसी प्रकार ही श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार जी भी विरह रस में निमग्न रहते हैं।

एक दिवस स्वपने रघुराई। सिय भ्रातहिं देखे अकुलाई ॥
परे मृतक सम सब सुधि भूले। हमरे विरह सशोक अतूले ॥

एक दिन श्री राम जी महाराज ने श्री सिया जू के भैया, श्री लक्ष्मीनिधि जी को स्वप्न में देखा कि– वे हमारे विरह में व्याकुल हो, सभी सुधि विस्मृत किये हुए, मृतक (मरे हुए व्यक्ति) के समान अतुलनीय दुख में घिरे हुए पड़े हैं।–––

घेरि रहे पुर वासी सारे । बीत गये दस दिन दुखकारे ॥
इतना देखि जागि पुनि रामा । परे विकल मुर्छित महि धामा ॥

———उन्हें सभी श्री मिथिलापुर निवासी घेरे हुए हैं, इस प्रकार दुख पूर्ण दस दिन व्यतीत हो गये हैं। स्वप्न में ऐसा देखकर श्री राम जी महाराज जागकर व्याकुल हो गये और मूर्छित हो भूमि में गिर पड़े।

हाय कुँअर कहि ढारत आँसू । भूले सुधि बुधि हृदय हरासू ॥
करि उपचार लखन समुझायो । रामहिं तब कछु धीरज आयो ॥

वे हाय, कुमार!, हाय सखे ! कहते हुए सुधि–बुधि भूलकर, हृदय में दुखी हो, अश्रु बहाने लगे। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने उपचार कर जब उन्हें समझाया तब श्री राम जी महाराज को कुछ धैर्य हुआ।

काह कहौं सिय प्रीति अपारी । भ्रात वसल सहजहिं सुखकारी ॥
लखनहुँ कुँअर प्रीति रस पागे । छके रहत निशि दिन अनुरागे ॥

मैं कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रति श्री सिया जू का परम सुखदायी, सहज वात्सल्य और असीम प्रेम को क्या कहूँ? श्री लक्ष्मण कुमार जी भी, कुँअर के प्रेम–रस में डूबे हुए अनुराग पूर्वक रात–दिन छके रहते हैं।

दो0– सुनतहिं बोले जनक नृप, कुँअर परेउ निज वास ।
सुधि बुधि भूले विरह वश, छोड़े जीवन आस ॥८५॥

श्री हनुमान जी की बातें सुनते ही श्री जनक जी महाराज ने कहा कि– कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी, अपने निवास में प्रभु विरह के वशीभूत, अपने जीवन की आसा छोड़, सुधि–बुधि भूले हुए पड़े हैं।

बोले भरत भूल मोहिं भयऊ । प्रथमहिं जो न कुँअर ढिंग गयऊ ॥
शोक विवश कछु चेत न आवा । अस कहि उठे करत पछितावा ॥

श्री भरत जी ने कहा कि– मुझसे भूल हो गयी जो हम पहले ही कुँअर लक्ष्मीनिधि जी के समीप नहीं गये। शोक के विवश होने के कारण मुझे कुछ भी ध्यान न रहा, ऐसा कहकर वे पछताते हुए उठ पड़े।

भरत पकड़ि कर हनुमत केरा । चले लिवाय कुँअर के डेरा ॥
पहुँचि पवन सुत कुँअरहिं देखा । अस्थिमात्र अरु प्राण सुरेखा ॥

श्री भरत जी, श्री हनुमान जी का हाथ पकड़ कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के निवास ले चले। वहाँ पहुँच कर पवन नन्दन श्री हनुमान जी ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का दर्शन किया उस समय वे ऐसे दिखाई दिये मानो अस्थियों के ढाँचें में प्राण वायु चल रही हो।

परे अचेत देह सुधि नाहीं । प्राण कहत अब निकसन काहीं ॥
सीय राम निकसत मुख तेरे । बहत धार दोऊ दृग हेरे ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी स्मृति–हीन हो पड़े हुए थे, उन्हें शरीर की सुधि नहीं थी, उनके प्राण अब शरीर से निकलने के लिये कह रहे थे, उनके मुख से सुन्दर श्री सीताराम नाम निकल रहा था तथा दोनों नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित होते हुए दीख रहे थे।

रोम रोम निकसत प्रभु नामा। पवन तनय सुनि लह विश्रामा॥
परम विलक्षण प्रेमहिं पेखी। जाने विरही भक्त विशेषी॥
परम भागवत प्रेम स्वरूपा। गति अनन्य सब भाँति अनूपा॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के रोम–रोम से प्रभु श्री राम जी महाराज का नाम उच्चरित हो रहा था जिसे सुनकर पवन तनय श्री हनुमान जी ने परम विश्राम को प्राप्त किया। श्री हनुमान जी ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी में परम विलक्षण प्रभु प्रेम का दर्शन कर समझ लिया कि ये प्रभु के विशेष विरही भक्त, प्रेम स्वरूप, अनन्य गति, सभी प्रकार से अनुपमेय व परम भागवत हैं।

छं०– गति राम जानकि जेहिं अहैं, वर कुँअर प्रेम स्वरूप हैं।
सिय राम भइया श्याल जो, महिमाहि अमित अनूप हैं॥
प्रभु नाम बोलत रोम सब, ताते कुँअर सत राम तनु।
हम पाय दर्शन धन्य बनि, हर्षण जगावहिं कीर्ति भनु॥

जिनकी एकमात्र गति श्री राम जी महाराज और श्री जानकी जी हैं, वे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी तो प्रभु प्रेम के साक्षात् विग्रह ही हैं, पुनः जो कुमार श्री सीता जी के अग्रज और श्री राम जी महाराज के प्रिय श्याल है उनकी महिमा तो असीमित और अनुपमेय है। जिनके रोम–रोम प्रभु श्री राम जी महाराज का परम पावन नाम उच्चारण रहे है वे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी तो श्री राम जी महाराज के साक्षात् विग्रह ही हैं। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज बखान कर रहे हैं– कि श्री हनुमान जी कह रहे हैं कि–मुझे ऐसी प्रतीति हो रही है कि– प्रभु श्री राम जी महाराज स्वयं ही कुमार के शरीर में प्रविष्ट हो, ऐसा कर, अपने प्रिय कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी की अक्षय कीर्ति का जगत में प्रकटीकरण कर रहे हैं। ऐसे कुमार का दर्शन प्राप्त कर हम धन्य हो गये हैं।

सो०–पवन तनय रस छाय, लागे कीर्तन प्रिय करन।
मधुर मधुर स्वर गाय, नृत्यत नेह विभोर बनि॥८६॥

पवन नन्दन श्री हनुमान जी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रेम में सराबोर होकर, प्रिय श्री सीताराम नाम संकीर्तन मधुर स्वर से गान करते हुये, प्रेम विभोर हो नृत्य करने लगे।

अन्तिम जीवन घरी बिचारी। कीर्तन सुधा पियावत प्यारी॥
प्रेम मत्त श्री पवन कुमारा। जय सिय रामहिं कहत पुकारा॥

इधर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के जीवन का अन्तिम समय विचार कर उनकी प्राण प्रिया श्री सिद्धि कुँअरि जी उन्हे प्रभु कीर्तन अमृत का पान करा रही थीं उधर पवन नन्दन श्री हनुमान जी प्रेमोन्मत्त हो पुकार–पुकार कर श्री सीताराम जी का जय घोष कर रहे थे।

भरत कुँअर शिर अंकहि लीन्हे। परशत बदन प्रेम रस भीने॥
भरत परश कीरतन परभावा। प्राण अपान स्वपथ महँ आवा॥

श्री भरत जी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के शीश को अपनी गोद में लिये, प्रेम–रस में भीगे हुए उनका मुख स्पर्श कर रहे थे। तब श्री भरत जी के स्पर्श व श्री सीताराम नाम संकीर्तन के प्रभाव से कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की 'प्राण वायु' व 'अपान वायु' अपने मार्ग में आ गये।

कहत भरत ये अंजनि लाला। कीर्तन रंग रँगे यहि काला॥
राम लखन अरु सिय सुधि लाये। अइहैं काल्ह अवध सति भाये॥

तब श्री भरत जी ने कहा–हे कुमार! ये अंजनी नन्दन श्री हनुमान जी हैं जो इस समय संकीर्तनानन्द में रँगे हुए हैं, ये ही श्री राम जी महाराज, श्री सिया जू और श्री लक्ष्मण कुमार का समाचार लाये हैं कि– वे सत्य ही कल श्री अयोध्यापुरी आयेंगे।

जागहु राम मिलन के हेता। करहु तयारी ह्वै चित चेता॥
आवत राम पर्‌यो जब काना। राम कृपा दृग खोलि सुजाना॥

अतः आप जागकर, श्री राम जी महाराज से भेंट करने हेतु चित में चैतन्यता पूर्वक तैयारी कीजिये। 'श्री राम जी आ रहे हैं' ये शब्द जब उनके श्रवणों में पड़े तब श्री राम जी की कृपा से परम सुजान कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने नेत्र खोल दिये।

दो0–भरतहिं देखत नयन भरि, मातु सुनैना लाल।
पौढ़े पौढ़े तासु गल, दीन्ही युग भुज डाल॥८७॥

श्री भरत जी का भर नेत्र दर्शन करते हुए, श्री सुनैना नन्दन कुमार लक्ष्मीनिधि जी लेटे–लेटे ही उनके गले में अपनी दोनों भुजाएँ डाल दिये।

भरत कुँअर को प्रेम महाना। अनुभव गम्य न जाय बखाना॥
भरत कीर्तन हनुमत केरी। रोक दियो कछु कारण हेरी॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– श्री भरत जी और कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का पारस्परिक प्रेम महान व अनुभवीय है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अनन्तर श्री भरत जी ने कुछ कारण समझ कर श्री हनुमान जी के कीर्तन को रोक दिया।

कीर्तन कबहुँ चेत में लावै। कहुँ कहुँ चेत अचेत बनावै॥
पवन तनय प्रभु के प्रिय प्यारे। लखे कुँअर कहँ नयन उघारे॥

क्योंकि प्रभु नाम संकीर्तन कभी तो प्रेमियों को चैतन्यावस्था में ले आता है और कभी कभी चैतन्य प्रेमियों को स्मृति–शून्य बना देता है। प्रभु श्री राम जी महाराज के परम प्रिय कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी का जब पवन नन्दन श्री हनुमान जी ने नेत्र खोले हुए दर्शन किया।

प्रेम मगन रस सिन्धु हिलोरे। कीन्ह दण्डवत भाव विभोरे॥
भरत कहे पुनि ये हनुमाना। तुमहिं दण्डवत करत सुजाना॥

तब प्रेम मग्न हो रस–सागर में निमज्जन करते हुए, भाव विभोर हुये श्री हनुमान जी ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को दण्डवत किया। उस समय श्री भरत जी ने कहा कि हे सुजान कुमार! ये श्री हनुमान जी, आपको दण्डवत कर रहे हैं।

राम सुधिहिं ये इहाँ लियाये । आवत अवध राम भल भाये ॥
कीर्तन अमृत येइ पियाई । मरत दिये तुम काहिं जियाई ॥

ये श्री पवन नन्दन जी ही यहाँ श्री राम जी महाराज का संदेश लेकर आये हैं कि– सुन्दर भाव में भरे हुए श्री राम जी महाराज श्री अयोध्यापुरी पधार रहे हैं। इन श्री हनुमान जी नें ही मृत प्राय आपको संकीर्तनामृत पिलाकर जीवन प्रदान किया है।

दो0– सुनत कुँअर चाहत उठन, भरत दिये बैठाय ।
पवन सुतहिं हिय लायऊ, दृग जल दिय नहवाय ॥८८॥

श्री भरत जी के वचनों को श्रवण करते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी उठना चाहते थे, तब तक श्री भरत जी ने उन्हें उठाकर बिठा दिया। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने पवन तनय श्री हनुमान जी को हृदय से लगाकर अपने प्रेमाश्रुओं से अवगाहन करा दिया।

सब गुण धाम राम जन पाई । कुँअर न छोड़त हिय लपटाई ॥
हनुमत हूँ निज सुरति भुलाये । कुँअर मिले परमानँद पाये ॥

समस्त गुणों के धाम श्री राम जी महाराज के प्रिय भक्त श्री हनुमान जी को पाकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी हृदय से लिपटा लिये उन्हे वे विलग नहीं कर पा रहे थे। श्री हनुमान जी भी अपनी स्मृति भुलाये हुए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से भेंट कर परमानन्द प्राप्त कर रहे थे।

प्रभु इच्छा बीते कछु काला । छोड़े इक एकहिं युग लाला ॥
कह कपि भयउँ आज बड़ भागी । पायो मातुल दरश विरागी ॥

कुछ समय व्यतीत हो जाने पर भगवदिच्छा से जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी और पवन नन्दन श्री हनुमान जी दोनों एक दूसरे से पृथक हुए। तब श्री हनुमान जी ने कहा, मैं आज अत्यन्त ही सौभाग्यशाली हो गया जो परम वैराग्यवान अपने 'मामा' जी का दर्शन प्राप्त किया हूँ।

जाकर ध्यान राम सिय करहीं । सुमिरि सुमिरि शुचि रागहि भरहीं ॥
साने विरह रहैं दोउ मगना । ह्वै स्तब्ध बने जिमि गगना ॥

जिनका ध्यान श्री सीताराम जी करते हैं तथा जिनका स्मरण करते हुए वे पवित्र अनुराग में भर जाते हैं। श्री सीताराम जी जिनके विरह में सने हुए आकाश के समान स्तम्भित बने हुए मन मग्न रहते हैं।

राम श्याल सीता बड़ भैया । देखि लहेउँ सुख जात न गैया ॥
धीरज मातुल मन मह धारैं । रात बिते सुख लहैं अपारैं ॥

उन श्री राम जी महाराज के प्रिय श्याल तथा श्री सीता जी के बड़े भैया आप श्री का दर्शन प्राप्तकर मैने जो सुख प्राप्त किया है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मेरे मामा श्री मन में

धैर्य धारण करें रात्रि व्यतीत होते ही आप असीमित सुख प्राप्त करेंगे।

दो0– प्रातहिं रघुवर आइहैं, सीता लखन समेत ।
रात त्रिवेणी वास करि, देखिहैं अवध निकेत ॥८९॥

अम्बा श्री सीता जी और कुमार श्री लक्ष्मण जी सहित प्रभु श्री राम जी महाराज, प्रातः काल ही आ जायेंगे। वे आज की रात श्री प्रयाग राज (त्रिवेणी संगम) में निवास कर कल अपने धाम श्री अयोध्यापुरी का दर्शन करेंगे।

राम लखन सिय दर्शन देई । करिहैं सुखी सबहिं सत गेई ॥
सुनि मन आनन्द भयो महाना । कुँअर हृदय नहि जाय बखाना ॥

श्री राम जी महाराज, श्री लक्ष्मण कुमार और श्री सीता जी अपना दर्शन दान देकर सभी को सुखी करेंगे, ये मेरे वचन सर्वथा सत्य हैं। श्री हनुमान जी के वचनों श्रवणकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में ऐसा महान आनन्द हुआ जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

नवल शक्ति छन छन संचारा । होवन लगी शरीर मँझारा ॥
कुँअर कहे धनि पवन कुमारा । मोहिं जियायो अमृत धारा ॥

उनके शरीर में प्रतिक्षण नवीन शक्ति का संचार होने लगा। पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे पवन कुमार श्री हनुमान जी! आप धन्य हैं, जो मुझे संकीर्तनामृत पिला कर जीवित कर लिये।

अमित कियो कपि मम उपकारा । प्रभु सुधि सरिस न जगत निहारा ॥
अतिहिं अकिंचन मैं कपि राया । काह देहुँ का करौं उपाया ॥

पुनः है कपि प्रवर! आपने मुझ पर असीमित उपकार किया है क्योंकि प्रभु श्री राम जी महाराज के संदेश के समान संसार में कोई भी वस्तु मुझे नहीं दिखायी पड़ती। हे कपिराज हनुमान जी! मैं तो अत्यन्त ही अकिंचन हूँ, आप को क्या दूँ और कौन सा उपाय कर आपको प्रसन्न करूँ?

हौं नहि उत्रृण कबहुँ जिय जोही। ताते शीश झुकावौं तोही ॥
सुनत पवनसुत भाव विभोरा । कहत धन्य तुम जनक किशोरा ॥

मैने अपने हृदय में विचार कर देख लिया है कि– मैं आपसे कभी भी उत्रृण नहीं हो सकता, इसलिए आपको शिर झुका प्रणाम कर रहा हूँ। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के देन्य व भाव भरे वचनों को सुनते ही पवन नन्दन श्रीहनुमान जी भाव विभोर हो बोले– हे श्री जनक जी महाराज के प्रिय राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप धन्य हैं।–––

दो0–जनक सुनैना पुत्र प्रिय, सिया लाड़िली भ्रात ।
राम श्याल अचरज नहीं, विनय भाव शुचि तात ॥९०॥

–––हे तात्! आप श्री विदेह राज जी महाराज व महारानी श्री सुनैना जी के प्रिय पुत्र, अम्बा श्री सिया जू के बड़े भैया तथा प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रिय श्याल हैं, आपमें इस प्रकार के विनय व पवित्र भावों का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।–––

छं0– भल भाव कोमल दैन्य यह, होवै न काहे निमि प्रवर ।
सुत ज्ञान भूषण राउ के, सुन्दर सुलोचनि सुव सुघर ॥
पति देव सिधि के प्राण सम, जो प्रेम योग सुमूर्ति है ।
निशिदिन सुनावति प्रभु चरित, निष्काम जाकी पूर्ति है ।।

–––हे निमि श्रेष्ठ कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! आपमें इस प्रकार के सुन्दर भाव और ऐसी दैन्यता क्यों न हों? क्योंकि आप ज्ञान के आभूषण श्रीमान् मिथिलेश जी महाराज और सुन्दर नेत्रों वाली अम्बा श्री सुनैना जी के परम सुशोभन पुत्र हैं तथा प्रेम और योग की प्रतिमा श्री सिद्धि कुँअरि जी के पतिदेव हैं जो आपको निष्काम भाव से अहोरात्रि श्री सीताराम चरितामृत श्रवण पुटों से पान कराती रहती हैं।–––

प्रिय भ्रात सीता तात तुम, त्रिभुवन करी जो शक्ति है ।
धनि श्याल राघव ब्रह्म के, धनि धनि तुम्हारी भक्ति है ॥
धनि भरत प्रेम स्वरूप के, प्रेमी बसे नयनन रहत ।
तेहिं आनि लखनहुँ निज हृदय, रघुवर चरित गुप्तहुँ कहत ॥

–––हे तात्! आप तो, उन अम्बा श्री सीता जी के बड़े भ्राता हैं जो परमाद्या शक्ति व तीनों लोकों का सृजन, संरक्षण और संहार करती हैं। पूर्णतम परब्रह्म रघुनन्दन श्री राम जी महाराज के प्रिय श्याल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप धन्य हैं और आपकी भक्ति धन्यातिधन्य हैं। प्रेम विग्रह कुमार श्री भरत जी के महान प्रेमी व उनके नेत्रों में निवास करने वाले हे राज कुमार! आप धन्य हैं। आपको कुमार श्री लक्ष्मण जी अपने हृदय में धारण किये हुए श्री राम जी महाराज के परमैकान्तिक चरित्रों का वर्णन किया करते हैं।–––

पुनि लाल रिपुहन षट रिपुन, प्रभु प्रेम रोधक जे अहैं ।
नशि दीन्ह आपन मानि तोहि, निश्चित किये शुचि सुख लहैं ॥
शिव देव वारेहिं ते सदा, रक्षहिं तुम्हे प्रभु भक्त गुन ।
जा कहँ मिले योगीश गुरु, हरषण सिखाये प्रेम धुन ॥

–––पुनः राजकुमार श्री शत्रुघ्न जी नें अपना प्रिय मानकर, प्रभु प्रेम प्राप्ति में बाधक, आपके सभी छः शत्रुओं (काम, क्रोध, लोभ, मोह,मद व मत्सर) को विनष्ट कर आपको निश्चिन्त बना दिया है जिससे आप परम पावन शाश्वत सुख प्राप्त करते रहते हैं। भगवान श्री शिव जी ने बाल्यकाल से ही आपको प्रभु भक्त समझकर आपकी सदैव रक्षा की है तथा जिन्हें योगि–राज श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज, आचार्य रूप में प्राप्त हुए है जिन्होने हर्ष परिपूरित हो आपको प्रभु–प्रेम की शिक्षा प्रदान की है।–––

सो0–जन्मत सीता राम, प्रेम सहित उचरण कियो ।
कछु नहिं अचरज काम, ता कहँ कहिबो कुँअर अस ॥९१॥

———जिन्होने जन्म धारण करते समय ही प्रेम पूर्वक श्री सीताराम नाम का उच्चारण किया है उन आप, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के लिए ऐसा कहना कोई आश्चर्य जनक कार्य नही है।———

सब विधि राम प्रेम अवतारा। प्रगट भयो सत अवनि मँझारा ॥
तुम समान तुम ही जग ताता। निज सेवा रघुपति सुख दाता ॥

———आप यथार्थ में सभी प्रकार से श्री राम जी महाराज के प्रेम के अवतार–स्वरूप ही भूमि में प्रगट हुए हैं। हे तात! इस संसार में अपनी सेवा से रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज को सुख प्रदान करने वाले, आपके समान आप ही हैं।

कुँअर कहेउ हे मारुत पूता। रघुपति चरित कहहु रस चूता ॥
चित्रकूट गिरि ते जब गयऊ। राम लखन सिय सुधि नहिं पयऊ ॥

अनन्तर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे मारुत नन्दन श्री हनुमान जी! आप श्री राम जी महाराज का रस वर्षण कारी चरित्र बखान कीजिये। वे जब से श्री चित्रकूट गिरि से प्रस्थित हुए थे तबसे मुझे श्री राम जी महाराज, श्री लक्ष्मण कुमार और श्री सिया जू का कोई समाचार प्राप्त नहीं हुआ।———

कृपा दृष्टि करि मोहि जियाई। तैसहिं प्रभु यश देहु सुनाई ॥
कहत कुँअर पुनि विरह विभोरा। भये सुरति सिय अवध किशोरा ॥

———आपने अपनी कृपा दृष्टि से जिस प्रकार मुझे जीवित किया है उसी प्रकार मेरे स्वामी श्री राम जी महाराज की सुन्दर कीर्ति मुझे श्रवण करा दीजिए। ऐसा कहते ही, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सीताराम जी की स्मृति में पुनः विरह–विभोर हो गये।

तबहिं पवनसुत परशि उठाई। कहेउ सुनहु यश चित्त लगाई ॥
लागे सुनन कुँअर भरि भाऊ। वरणन करत कपी अति चाऊ ॥

तब पवन नन्दन श्री हनुमान जी ने उन्हें स्पर्श कर उठा लिया और कहा कि– हे कुमार! आप प्रभु श्री राम जी महाराज का यशोगान समाहित चित्त से श्रवण कीजिये। श्री हनुमान जी अत्यन्त उत्साह पूर्वक श्री राम जी महाराज की यश–गाथा का वर्णन करने लगे जिसे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भाव में भरकर श्रवण किये।

दो0– सोइ प्रभु चरित सुनावहूँ, श्रोता सुनहु सुजान ।
जेहिं विधि हनुमत कुँअर सन, कहे समास बखान ॥९२॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–हे सुजान श्रोतागणों! मैं प्रभु श्री राम जी महाराज का वही चरित्र आपको सुना रहा हूँ जैसा कि श्री हनुमान जी ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से विस्तार पूर्वक वर्णन किया था।

कामद तजि प्रभु अत्रि सुआश्रम। वरणि सुनायेउ गये यथा क्रम ॥
लहि सतकार मुनिहिं कर जैसे। पथ महँ बधे बिराधहिं तैसे ॥

कामद गिरि श्री चित्रकूट को त्यागकर प्रभु श्री राम जी महाराज जिस प्रकार मुनिवर श्री अत्रि

जी के आश्रम गये थे, क्रमानुसार वह सम्पूर्ण चरित्र श्री हनुमान जी ने वर्णन कर सुना दिया। पुनः मुनिराज श्री अत्रि जी से सत्कार ग्रहण कर मार्ग में प्रभु श्री राम जी महाराज नें जिस प्रकार विराध नामक राक्षस का वध किया, उसी प्रकार का चरित्र श्री हनुमान जी ने सुनाया।

ऋषि शरभंग भेंट पुनि वरणी । तजि तन गये यथा मुनि करणी ॥
बहुरि सुतीक्षण मिलन बखाना । प्रीति रीति कीन्हे गुण गाना ॥

अनन्तर श्री हनुमान जी ने ऋषि प्रवर श्री शरभंग जी की भेंट व उनके शरीर त्याग कर परम धाम जाने की क्रिया का वर्णन किया। पुनः उन्होंने श्री सुतीक्षण जी की प्रभु से भेंट का, उनकी प्रीति रीति का गुणगान करते हुए वर्णन किया।

मुनि अगस्त आश्रम जिमि गवने । लहे मंत्र जिमि रघुपति पवने ॥
मुनि सत्कार विविध विधि गायो । पंचवटी प्रभु जाब सुनायो ॥

जिस प्रकार प्रभु श्री राम जी महाराज मुनि–श्रेष्ठ श्री अगस्त जी के आश्रम गये और वहाँ राक्षसों को संहार करने का मंत्र ग्रहण किये, वह सभी वृतान्त और मुनिवर श्री अगस्त जी के स्वागत सत्कार को विभिन्न प्रकार से श्री हनुमान जी ने बखान किया। पुनः उन्होनें प्रभु श्री राम जी महाराज का पंचवटी प्रस्थान सुनाया।

गीध जटायू मैत्री कहि कै । कहेसि कुटी को रहब सुचहिकै ॥
पंचवटी रघुवीर विहारा । कहेउ पवन सुत चरित उदारा ॥

गृद्ध राज श्री जटायु जी की मित्रता का वर्णन कर, श्रीराम जी महाराज की कुटी बनाकर निवास करने की इच्छा का श्री हनुमान जी ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से वर्णन किया। अनन्तर पवन नन्दन श्री हनुमान जी ने श्री सीताराम जी के पंचवटी विहार के उदार चरित्रों का भी वर्णन किया।

दो0– सूर्पनखा की गति कही, वध खर दूषण केर ।
रावण सुधि पाई यथा, गो मारीचहिं खेर ॥९३॥

श्री हनुमान जी ने सूर्पणखा की स्थिति तथा खरदूषण आदि राक्षसों के वध का वर्णन किया। पुनः रावण ने जिस प्रकार यह समाचार प्राप्त किया और मारीच के निवास गया।

बनि मारीच कपट मृग रूपा । कनक वर्ण सब भाँति अनूपा ॥
पंचवटी गो रावण संगा । वरणे हनुमत सकल प्रसंगा ॥

पुनः मारीच नामक राक्षस सभी प्रकार से अनुपमेय सोने के वर्ण का झूठा मृग बन कर रावण के साथ पंचवटी गया वह सभी प्रसंग श्री हनुमान जी ने वर्णन किया।

इहाँ राम जस सीता काहीं । अरप्यो अगिन देव के पाहीं ॥
माया सीता रूप बनाई । पर्णकुटी राख्यो छबि छाई ॥

यहाँ श्री राम जी महाराज ने जिस प्रकार श्री सीता जी को श्री अग्निदेव के पास समर्पित किया व अपनी माया से श्री सीता जी का सुन्दर रूप बना कर पर्ण कुटी में रखा।

सो सब वरणे कपि हनुमाना । पुनि मारीच कुटी कहँ आना ॥
माया सीता जिमि हरषाई । माया मृग कहँ लखत लुभाई ॥

वह सम्पूर्ण चरित्र वानर श्रेष्ठ श्री हनुमान जी ने वर्णन किया। पुनः झूठा मृग मारीच का श्री राम कुटी में आगमन तथा जिस प्रकार से माया निर्मित श्री सीता जी ने हर्षित होकर झूठे मृग को ललचायी दृष्टि से देखा।

प्रेरित राम धनुष धरि धाये । कपट मृगहिं शर मारि गिराये ॥
लक्ष्मण कहँ कहि बचन कठोरा । प्रेरेउ सीता जिमि बरजोरा ॥

श्री सीता जी की प्रेरणा से श्री राम जी महाराज धनुष धारण कर दौड़े और कपटी मृग को बाण मारकर गिरा दिये, श्री लक्ष्मण जी को कठोर बचन कह कर श्री सीता जी ने जिस प्रकार उन्हे हठपूर्वक प्रेरित किया।

दो0– लखन चले जिमि राम पहँ, रावण आयो गेह ।
माया सीतहिं हरण किय, वरणे कपि वर एह ॥९४॥

पुनः जिस प्रकार श्री लक्ष्मण कुमार जी, श्री राम जी महाराज के समीप गये, रावण कुटी में आया और माया सीता का हरण कर लिया यह सम्पूर्ण चरित्र पवन नन्दन श्री हनुमान जी ने वर्णन किया।

सीतहिं लै जिमि रावण भागा । वरणेसि गीधराज अनुरागा ॥
निशिचर गीध कहेसि संग्रामा । पंख काटि जिमि पहुँचेउ धामा ॥

पुनः जिस प्रकार श्री सीता जी का अपहरण कर दैत्यराज रावण भागा वह चरित्र और श्री गृद्धराज जटायु जी के प्रेम का उन्होंने बखान किया। श्री हनुमान जी ने राक्षसराज रावण व गृद्धराज जटायु के युद्ध का वर्णन किया पुनः जिस प्रकार रावण ने जटायु के पंख काट डाले और वह परम पद प्राप्त किया।

बन अशोक राखी सिय माया । निशिचर नारिन यतन कराया ॥
इत मग लखनहिं राम निहारी । चिन्तित आये कुटी मझारी ॥

तदुपरान्त रावण ने अशोक वन में राक्षसियों के बीच प्रयत्न पूर्वक 'माया–सीता' को रखवाया, यहाँ रास्ते में श्री लक्ष्मण कुमार को देख कर श्री राम जी महाराज चिन्तित हुए व अपनी कुटिया में आये।

कौतुक प्रिय श्री अवध किशोरा । सीता बिन ह्वै गये विभोरा ॥
इत उत दोउ गोदावरि ढूँढा । दुखी भये विलपत जिमि मूढ़ा ॥

परम क्रीड़ा प्रिय श्री राम जी महाराज श्री सीता जी के बिना विह्वल हो गये, दोनों भाइयों ने यहाँ–वहाँ व श्री गोदावरी जी में श्री सीता जी का अन्वेषण किया पुनः दुखी होकर अज्ञानियों की भाँति रुदन करने लगे।

लता वृक्ष पूँछत जिमि गवने । सो सब कहे पुत्र श्री पवने ॥
गीध सराध किये जिमि रामा । प्रीति दिखाय दीन्ह तिन धामा ॥

जिस प्रकार लताओं व वृक्षों से श्री सीता जी का पता पूँछते हुए श्री राम जी महाराज आगे चले वह सम्पूर्ण चरित्र पवन पुत्र श्री हनुमान जी ने बखान किया। गृद्धराज जटायु जी का जिस प्रकार श्री राम जी ने श्राद्ध कर्म किया और अपनी प्रीति का प्रकटीकरण कर अपना धाम प्रदान किया।

आगे चलि कबंध जिमि मारा । सो सब वरणेव पवन कुमारा ॥
सबरी प्रीति मिलन पुनि गाई । तजि शरीर साकेत सिधाई ॥

पुनः श्री राम जी महाराज ने आगे चलकर जिस प्रकार कबन्ध नामक राक्षस का वध किया वह सम्पूर्ण चरित्र पवन पुत्र श्री हनुमान जी नें वर्णन किया। पुनः उन्होंने श्री सबरी जी की भेंट, प्रेम एवं शरीर त्यागकर साकेत धाम गमन का वर्णन किया।

दो0– पंपासर स्नान जिमि, कीन्हे कृपा निकेत ।
नारद मिलन प्रसंग सब, कहे पवन सुत चेत ॥९५॥

कृपा के धाम श्री राम जी महाराज ने जिस प्रकार पंपा सरोवर में स्नान किया तथा श्री नारद जी से भेंट आदि का प्रसंग श्री पवन नन्दन हनुमान जी ने सजगतया कह सुनाया।

ऋष्यमूक गवने रघुराया । लखि सुग्रीव यथा भय पाया ॥
आपन मिलन बहुरि हनुमाना । राम सुकण्ठ सुप्रीति बखाना ॥

श्री राम जी महाराज जिस प्रकार ऋष्यमूक पर्वत पर गये, श्री सुग्रीव जी का श्री राम जी महाराज को देखकर भयभीत होना, पुनः श्री राम जी महाराज से अपनी ब्लस्वयं कील्ब भेंट तथा श्री सुग्रीव जी की सुन्दर प्रीति का वर्णन श्री हनुमान जी ने किया।

बालि और सुग्रीवहुँ केरा। वरणेसि सब विधि द्वेष घनेरा ॥
बालिहिं मारन प्रभु प्रण कीन्हा । दुंदुभि अस्थि ताल नश दीन्हा ॥

उन्होंनें बालि और श्री सुग्रीव जी के सभी प्रकार से पारस्परिक घनी शत्रुता का वर्णन किया। पुनः श्री राम जी महाराज ने जिस प्रकार बालि को मारने की प्रतिज्ञा की और "दुंदुभि" नामक राक्षस की अस्थियों के समूह व ताड़ के वृक्षों को नष्ट कर दिया,

बालि सुकण्ठ लड़ाई बरनी । मारे राम एक सर मरनी ॥
सौंपि अंगदहिं प्रभु पद बाली । छोड़ेउ प्राण कहा कपि पाली ॥

बालि व श्री सुग्रीव जी के युद्ध का वर्णन, श्री राम जी महाराज का बालि को एक बाण से मारना, तथा अंगद को प्रभु चरणों में सौंप कर बालि का अपने प्राण त्यागना व बालि का मृत्यु संस्कार आदि सभी चरित्र वानरों के पालक श्री हनुमान जी ने वर्णन किया।

पुनि सुग्रीव राज जिमि पाये। राम प्रवर्षण पर्वत छाये ॥
वरणेसि श्री सुग्रीव प्रमादा। राम कोप लक्ष्मण संवादा ॥

पुनः श्री सुग्रीव जी ने जिस प्रकार किष्किन्धा का राज्य पद प्राप्त किया, श्री राम जी महाराज प्रवर्षण गिरि में निवास किये, श्री सुग्रीव जी का अम्बा श्री सीता जी की खोज करने में आलस्य, श्री राम जी महाराज का सुग्रीव पर क्रोध और श्री लक्ष्मण कुमार जी के संवाद का उन्होंने वर्णन किया।

दो0– लखन गये सुग्रीव पहँ, लाये यथा लिवाय ।
देश देश कपि आगमन, दीन्हो सबहिं सुनाय ॥९६॥

पुनः जिस प्रकार श्री लक्ष्मण कुमार जी सुग्रीव के समीप गये और उन्हे भयभीत कर लिवा लाये तथा सभी देशों से बानरों का आना आदि सभी चरित्र वर्णन कर श्री हनुमान जी ने सुनाया।

कपि निदेश जिमि चारहु ओरी। गवने बानर अमित करोरी ॥
जामवंत अंगद हनुमाना । नल नीलादिक कपि बलवाना ॥

श्री सुग्रीव की आज्ञा से जिस प्रकार चारों दिशाओं में असीमित करोड़ों बन्दर श्री सीता जी की खोज हेतु प्रस्थान किये, श्री जामवन्त जी, श्री अंगद जी, श्री हनुमान जी, श्री नल जी और श्री नील जी आदि बलशाली बन्दर,

गवने ढूँढन दक्षिण आसा। जनक ललिहिं सब भरे हुलासा ॥
कहेउ सबहिं प्रिय अंजनि लाला । बहुरि मिलन सम्पाति विशाला ॥

जिस प्रकार जनक नन्दिनी श्री सिया जू का अन्वेषण करने की अभिलाषा से उत्साह में भरे हुए दक्षिण दिशा गये वह सभी चरित्र अंजनी कुमार प्रिय श्री हनुमान जी ने बखान किया। पुनः विशाल गृद्ध संपाती की वानरों से भेंट,

जमे गीध के जेहि विधि पाँखा । दियो दिखाय सियहिं सो भाखा ॥
जामवन्त जस प्रेरक भयऊ। पवन तनय कहँ आयसु दयऊ ॥

सम्पाती नामक गृद्ध के जिस प्रकार पंख निकल आये तथा सम्पाती द्वारा अशोक वृक्ष के नीचे श्री सीता जी को दिखा देना आदि सभी चरित्र उन्होने बखान कर दिया। श्री जामवन्त जी जिस प्रकार उनके प्रेरणा करने वाले हुए और पवन तनय श्री हनुमान जी को लंका जाने की आज्ञा प्रदान किये।

पार कियो जस उदधि महाना। सो तस वरण्यो कपि हनुमाना ॥
लंकहि करि प्रवेश अँधियारे। तिल तिल ढूँढत सीतहिं हारे ॥

अनन्तर जिस प्रकार स्वयं (श्री हुनमान जी), सौ योजन विस्तार वाले विशाल समुद्र को पार किये वे सभी चरित्र वानर श्रेष्ठ श्री हनुमान जी ने उसी प्रकार से वर्णन कर सुना दिया। पुनः जिस प्रकार अंधेरे में ही लंका में घुस कर उन्होने तिल–तिल श्री सीता जी का अन्वेषण करते हुए वे निराश हो गये।

दो0– वन अशोक पादप तर, जेहिं विधि सीतहिं देख ।
पवन पुत्र प्रमुदित भये, वरणेव तथा विशेष ॥९७॥

अशोक वन में, अशोक वृक्ष के नीचे जिस प्रकार श्री सीता जी को देख कर स्वयं पवन पुत्र

श्री हनुमान जी आनन्दित हुए वह सभी चरित्र उन्होंने विशेषतया वर्णन किया।

सीतहिं दियो सँदेश सुनाई। राम कथा कहि प्रिय कपि राई ॥
कर मुद्रिका दीन्ह सहिदानी। कपिवर सो सब कहा बखानी ॥

श्री राम जी महाराज का चरित्र कह कर वानर राज श्री हनुमान जी ने जिस प्रकार श्री सीता जी को श्री राम जी महाराज का संदेश सुनाया और साक्षी रूप में श्री राम जी महाराज की अँगूठी प्रदान की वह सभी चरित्र श्री हनुमान जी ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को वर्णन कर सुनाया।

चूणामणिहिं यथा दिय सीता। सो सब वरणे कपी पुनीता ॥
दियो उजारि असुर प्रिय बागा। निशिचर मारे अमित सुभागा ॥
सीता कथित राम संदेशा। लिये सकल हनुमान विशेषा ॥

श्री सीता जी के द्वारा श्रीराम जी के लिए कहा हुआ सम्पूर्ण संदेश श्री हनुमान जी ने विशेष रूप से ग्रहण किया तथा श्री सीता जी ने उन्हे (श्री हनुमान जी को) जिस प्रकार 'चूड़ामणि' प्रदान की वह सभी पवित्र चरित्र श्री हनुमान जी ने वर्णन किया। परम सौभाग्यशाली श्री हनुमान जी ने वह चरित्र भी कह सुनाया, जिस प्रकार उन्होंने राक्षसों का प्रिय बाग उजाड़ कर नष्ट कर दिया तथा असीमित राक्षसों को मार डाला।

बाँधेव इन्द्रजीत विधि फाँसा। लायो रावण ढिगहिं हुलासा ॥
भयो यथा रावण सम्वादा। आसुर खीझो कहि दुर्वादा ॥
पूँछ जरन हित अगिनि लगाई। दीन्हे हनुमत लंक जराई ॥

इन्द्रजीत मेघनाद ने उन्हें जिस प्रकार 'ब्रह्मास्त्र की नाग–पास' में बाँध लिया तथा आनन्दपूर्वक रावण के समीप ले आया, श्री हनुमान जी का और रावण का वार्तालाप हुआ, राक्षसराज रावण ने खीझकर उन्हें (श्री हुनमान जी को) दुर्बचन कह उनकी पूँछ जलाने के लिए आग लगवायी और श्री हनुमान जी ने जिस प्रकार लंका जला दी।

दो0– सो सब वरणे पवन सुत, लंका हाहाकार।
सीतहिं धीरज देइ जिमि, आये सिन्धुहिं पार ॥९८॥

लंकापुरी में हाहाकार मच गया और जिस प्रकार श्री सीता जी को धैर्य बँधाकर वे समुद्र के इस पार आ गये वह सभी चरित्र पवन सुत श्री हनुमान जी ने वर्णन किया।

सीता सुधि सब कपिन सुनाई। मधुवन फल जिमि सिगरे खाई ॥
बहुरि जाय रघुपति सिर नाये। सीता सुधि हनुमान बताये ॥

पुनः जिस प्रकार सभी वानरों को श्री सीता जी का समाचार सुनाकर सभी ने 'मधुवन' के फलों का भक्षण किया पुनः जाकर श्री राम जी महाराज के चरणों में शिर झुका प्रणाम किये और श्री हनुमान जी ने श्री राम जी महाराज को श्री सीता जी का समाचार बताया।

अमित सेन कपि भालुन केरी। लै गवने रघुपति बिन देरी ॥
जाय सिन्धु तट डेरा कीन्हा। राम स्वशरण विभीषण लीन्हा ॥

तब बन्दरों और भालुओं की असीमित सेना लेकर रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज अविलम्ब समुद्र के तट पर पहुँच कर निवास किये तथा अपनी शरण में श्री विभीषण जी को ग्रहण किये।

बाँधे सेतु बृहद नल नीला। थापि शम्भु सुख कर सुखशीला॥
सेन सहित रघुवीर प्रधामा। प्रविशे लंका पूरण कामा॥

श्री नल और नील जी नें समुद्र पर विशाल पुल का निर्माण किया, परम सुखकारी प्रभु श्री राम जी महाराज ने सुख पूर्वक जिस प्रकार श्री शिव–लिंग की स्थापना की, पुनः सेना के सहित पूर्ण काम श्री राम जी महाराज लंका पुरी में प्रवेश किये,

रावण ढिंग कपि अंगद काहीं। भेजे दूत राम हित चाही॥
अंगद रावण भो सम्वादा। वरणे कविवर जुत अहलादा॥

रावण के समीप उसके हित की कामना से श्री राम जी महाराज ने श्री अंगद जी को दूत बनाकर भेजा और जिस प्रकार अंगद और रावण का संवाद हुआ वह सभी चरित्र वानर श्रेष्ठ श्री हनुमान जी ने आह्लाद पूर्वक वर्णन किया।

दो0– निशिचर वानर युद्ध बहु, थोरे महँ कपि गाय।
कुम्भ करण अरु इन्द्रजित, मरणहिं दियो सुनाय॥९९॥

पुनः श्री हनुमान जी ने राक्षसों और बन्दरों का विशाल युद्ध संक्षेप में वर्णन कर कुम्भकर्ण और इन्द्र–जयी मेघनाद की मृत्यु कह सुनायी।

रघुवर रावण विविध लड़ाई। हनुमत कुँअरहिं दिये सुनाई॥
यथा राम रावण वध कीन्हा। मन्दोदरि कहँ ज्ञान सुदीन्हा॥

श्री हनुमान जी ने श्री राम जी महाराज और राक्षस राज रावण के मध्य हुए विभिन्न प्रकार के युद्ध का वर्णन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से किया पुनः श्री राम जी महाराज ने जिस प्रकार रावण का वध किया व मन्दोदरी को तत्व ज्ञान का उपदेश दिया,

सुर स्तुति विधि हरि हर साथा। कीन्हे यथा नाइ पद माथा॥
राम सकुच मन महँ मुसकाई। रहे यथा निज शीश झुकाई॥

श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शंकर जी के साथ सभी देवताओं ने श्री राम जी महाराज के चरणों में जिस प्रकार मस्तक झुका कर स्तवन किया व श्री राम जी महाराज संकोच पूर्वक जिस प्रकार शिर–नत बने रहे,

माया सीतहिं हनुमत लाये। यथा अगिनि प्रविशीं रुख पाये॥
सो सब हनुमत वरणि सुनायो। सत्य सियहिं लै अगिनि सुहायो॥

माया स्वरूपिणी श्री सीता जी को जिस प्रकार श्री हनुमान जी अशोक वाटिका से ले आये तथा वे प्रभु श्री राम जी महाराज की इच्छा जानकर अग्नि में प्रवेश कर गयीं इत्यादि समग्र चरित्र श्री हनुमान जी ने वर्णन कर सुनाया। तदनन्तर जिस प्रकार श्री अग्निदेव, वास्तविक श्री सीता जी को

लेकर सुशोभित हुए व––

थाती दियो राम कहँ आई। हरषित सुर दुंदुभी बजाई ॥
वरषहिं सुमन अनेक प्रकारा। जय जय उचरहि बारम्बारा ॥

–––श्री राम जी महाराज की धरोहर परम पुनीत सत्य सीता उन्हें सौंप दिये, देवताओं ने हर्षित हो दुन्दुभी बजायी व बारम्बार जयकार करते हुए अनेक प्रकार से पुष्पों की वर्षा की,

दो0– वाम दिशा रघुवीर के, शोभित सिय सुख दानि।
ब्रह्मादिक स्तुति करत, युग गुण करहिं बखानि ॥१००॥

अनन्तर सुख प्रदायिनी श्री सीता जी श्री राम जी महाराज के वाम भाग में सुशोभित होने लगीं, श्री ब्रह्मा जी आदि देवता स्तुति करते हुए युगल सरकार श्री सीताराम जी के गुणों का बखान करने लगे,

तिलक विभीषण कर कपि गावा। राखन हित सो विनय सुनावा ॥
भरत विरह रघुवर रस पागे। रहि न सके तहँ अति अनुरागे ॥

तत्पश्चात् जिस प्रकार श्री विभीषण जी का राज्याभिषेक हुआ वह सम्पूर्ण चरित्र श्री हनुमान जी ने बखान किया। पुनः श्री राम जी महाराज से श्री विभीषण जी ने अपने यहाँ निवास करने हेतु प्रार्थना की किन्तु श्री भरत जी के वियोग रस में डूबे हुए प्रभु श्री राम जी महाराज अत्यानुराग के कारण वहाँ नहीं रुक सके,

चढ़ि विमान पुष्पक रघुवीरा। चले सखन सह प्रेम अधीरा ॥
भरद्वाज आश्रम अति पावन। जेहिं विधि पहुँचे प्रभु मन भावन ॥

प्रेमातुर हो श्री राम जी महाराज सखाओं सहित पुष्पक विमान में विराज कर चल दिये एवं जिस प्रकार मन भावन प्रभु श्री राम महाराज मुनिवर श्री भरद्वाज जी के अत्यन्त पवित्र आश्रम पहुँचे,

हनुमत वरणि समास सुहायो। आगे राम सँदेश सुनायो ॥
प्रभु मोहिं कह्यो जाहु हनुमाना। भरतहिं धीरज दिहौ प्रमाना ॥

वह सम्पूर्ण सुन्दर चरित्र वर्णन करने के पश्वात् श्री हनुमान जी ने श्री राम जी महाराज का प्रिय संदेश सुनाया, कि– प्रभु श्री राम जी महाराज ने मुझे आज्ञा दी, हे श्री हनुमान जी! मेरे आगमन के प्रमाण स्वरूप आप जाइये और श्री भरत जी को धैर्य धारण करवाइये।

देखेउँ आय युगल तव चरणा। प्रभु अति कृपा मोहि लिय वरणा ॥
प्रभु सो अधिक दास कर दर्शन। शास्त्र पुराण कहहिं सुख सरसन ॥

मेरे ऊपर प्रभु श्री राम जी महाराज ने अत्यन्त कृपा की जो यहाँ आने के लिए उन्होने मेरा वरण किया जिससे मैंने आप दोनों महान भागवतों के चरणों का दर्शन प्राप्त किया। क्योंकि भगवान के दर्शन से अधिक सुखकर उनके सेवकों का दर्शन होता हैं ऐसा शास्त्र और पुराण कहते हैं।

दो0– प्रभु प्रेमी युग रूप लखि, भयों तारथ आज ।
मो सम दिखै न लोक तिहुँ, महा भाग कृत काज ॥१०१॥

आज आप दोनों प्रभु प्रेमियों का दर्शन कर मैं कृतार्थ हो गया, तीनों लोकों में आज कोई भी मेरे समान महान सौभाग्यशाली व पूर्ण–काम मुझे दिखाई नहीं दे रहा।

कुँअर कहेव धनि राम पियारे । बूड़त मोकहँ लिये उबारे ॥
सदा करहु रघुपति ढिंग वासा । गति अनन्य सिय राम सुदासा ॥

पवन नन्दन श्री हनुमान जी के श्री मुख से श्री रामकथा श्रवण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– प्रभु श्री राम जी महाराज के परम प्रिय, हे श्री हनुमान जी! आप धन्य हैं आपने प्रभु विरह के सागर में डूबते हुए मुझे उबार लिया है। आप तो नित्य श्री राम जी महाराज के समीप रहने वाले अनन्य–गति व श्री सीताराम जी के सुन्दर सेवक हैं।

राम चरित बल वर्धन बूटी । करि अति कृपा पिलायो घूँटी ॥
जीवन दानि पाय कपि तोही । देव न सूझै कछु मन मोही ॥

आपने अत्यन्त कृपा कर मुझे श्री राम जी महाराज की चरित्र रूपी बल बर्धिका बूटी घिस कर पिला दी है। हे वानर श्रेष्ठ! आपको मैंने अपने जीवन–दाता के रूप में प्राप्त किया है। अतः मेरे मन में आपको देने के लिए मुझे कुछ भी समझ नहीं आ रहा।

राम कृपा अतुलित तुम पाये । सिय को नेह कहौं का गाये ॥
काह नहीं तुम्हरे हनुमाना । जो मैं देउँ लाय इत आना ॥

आपने श्री राम जी महाराज की अतुलनीय कृपा प्राप्त की है तथा आपके प्रति अनुजा श्री सिया जू के अपार प्रेम को मैं क्या वर्णन करूँ? हे श्री हनुमान जी! आपके पास क्या नहीं है? जो मैं यहाँ लाकर आपको दे सकूँ।

श्यामा श्याम सुखद सुठि छोहा । पावत रहहु सदा मन मोहा ॥
इहै कामना इक मन मोरे । नहिं चाहौं कछु और किशोरे ॥

आप चिर श्यामा श्री सिया जू और श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज की सुख प्रदायिनी व मन मोहिनी सुन्दर कृपा प्राप्त करते रहें। हे केशरी किशोर श्री हनुमान जी! मेरे मन में यही एक इच्छा है, इसके अतिरिक्त मैं आपके लिये अन्य कुछ भी नहीं चाहता।

दो0– कुँअर बचन अनुरूप सुनि, हिय हरषे हनुमान ।
परमानन्दहिं मगन अति, भूल्यो सब विधि ज्ञान ॥१०२॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के अनुकूल वचनों को सुन कर श्री हनुमान जी हर्षित हो गये तथा परमानन्द में भली प्रकार मग्न हो सभी प्रकार का ज्ञान भूल गये।

केहिं विधि कोउ कवि भाव बतावै । जेहि हिय उपजै ताहि लखावै ॥
पुनि हनुमान भरत शिर नाई । जान कहे जहँ प्रभु रघुराई ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–श्री हनुमान जी के हृदय के भाव को कोई कवि किस प्रकार से वर्णन कर सकता है। क्योंकि वह भाव तो जिसके हृदय में उत्पन्न होता है उसी की समझ में आता है। पुनः श्री हनुमान जी भइया श्री भरत जी के चरणों में शिर झुका प्रणाम कर वहाँ जाने की आज्ञा चाहे, जहाँ प्रभु श्री राम जी महाराज निवास किये थे।

भरत कहेउ हे पवन कुमारा । देखि तोहि सुख लहेउँ अपारा ॥
प्रभु संदेश जो मोहिं सुनाये । ता उपमा तिहुँ लोक न पाये ॥

श्री भरत जी ने कहा– हे पवन कुमार श्री हनुमान जी! आपको देखकर मैने असीमित सुख प्राप्त किया है तथा आपने प्रभु श्री राम जी महाराज का जो यह समाचार सुनाया है उसकी तुलना में आपको देने के लिए मुझे तीनों लोकों में कुछ भी प्राप्त नहीं हो रहा।

अपनो सरवस सहित स्वप्राणा । अरपित अहैं तोहि हनुमाना ॥
जो चाहहु निज सेवा लेहू । यामहँ संशय नाहि करेहू ॥

हे श्री हनुमान जी! आपको मेरे प्राणों सहित मेरा सर्वस्व समर्पित है। आपको जो भी चाहिये उसे अपनी सेवा में ग्रहण कर लीजिये, इस बात में किंचित भी संदेह मत कीजियेगा।

कह हनुमान दरश तव पाई । तापै कृपा अमित दिखराई ॥
काह न पायो नाथ बतावहु । परम भागवत जगत कहावहु ॥

श्री भरत जी के वचनों को सुनकर श्री हनुमान जी ने कहा– मैंने आपके दर्शन प्राप्त किये पुनः आपने मुझ पर अपनी असीम कृपा दृष्टि की है, हे नाथ! अब आप ही बताइये कि– मैंने क्या? नहीं प्राप्त किया। आप तो संसार में परम भागवत जाने जाते हैं।

दो0– त्यागि भागवत की कृपा, जो नर चाहै भोग ।
अमृत तजि विष लेत हैं, मृत्यु जन्म बढ़ रोग ॥१०३॥

भागवत–जनों की कृपा को त्याग कर जो लोग भोगों की कामना करते हैं वे अमृत को त्याग विष ही अपनाते है तथा वे जन्म व मृत्यु रूपी महान रोग की ही वृद्धि करते हैं।

परम भागवत आप कृपाला। रह प्रसन्न मो पर सब काला ॥
चहौं न और सुनहु सत नाथा । भक्त कृपा चाहहुँ प्रभु साथा ॥

हे कृपालु स्वामिन! आप तो परम भागवत हैं, आप सभी समय मुझ पर प्रसन्न रहें, इसके अतिरिक्त हे नाथ! सत्य ही मैं अन्य कुछ नहीं चाहता। मुझे तो प्रभु श्री राम जी महाराज की कृपा के साथ उनके भक्तजनों की कृपा ही अभीप्सित है।

अस कहि चरणन शीश झुकाये। भरतहुँ द्रुत निज हृदय लगाये ॥
बोले रात भई अब प्यारे। कस जैहौ दुख होत हमारे ॥

ऐसा कह कर श्री हनुमान जी ने श्री भरत जी के चरणों में शीश झुकाकर प्रणाम किया तब शीघ्र ही श्री भरत जी ने उन्हें हृदय से लगाकर कहा– हे प्रिय श्री हनुमान जी! अब तो अधिक रात हो गयी है। हमें अत्यन्त कष्ट हो रहा है कि– आप किस प्रकार प्रभु के समीप जायेंगे?

कह कपि मन के वेग समाना । जइहौं छन महँ सुनहु सुजाना ॥
जाव उचित मोहिं राम रजाई । जेहिं आवहिं प्रातहिं रघुराई ॥

श्री हनुमान जी ने कहा– हे परम सुजान श्री भरत लाल जी! सुनिये, मैं एक ही क्षण में मन के वेग के समान वहाँ चला जाऊँगा, मुझे श्री राम जी महाराज की यही आज्ञा है अतः मेरा जाना उचित ही है जिससे श्री राम जी महाराज कल प्रातः काल यहाँ आ पायेंगें।

अस कहि भरतहिं किये प्रणामा । पुनि कुमार भेंट्यो सुख धामा ॥
जनकहिं पुनि पुनि शीश नवाई । गये पवनसुत विदा कराई ॥

ऐसा कहकर श्री हनुमान जी ने श्री भरत जी को प्रणाम किया, पुनः सुख के भवन कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी से भेंट की तथा बार–बार श्री जनक जी महाराज को शिर झुका प्रणाम कर सभी से विदा लेकर पवन नन्दन श्री हनुमान जी प्रस्थान कर गये।

दो0– जनक भरत अरु कुँअर कर, करि दर्शन हनुमान ।
होत मगन मन भाव भरि, मधुर सुयश कर गान ॥१०४॥

श्री जनक जी महाराज, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी तथा भैया श्री भरत जी के दर्शन कर श्री हनुमान जी प्रेम भाव में भर कर मन में मग्न हो रहे थे तथा मधुर स्वर से उनकी सुन्दर कीर्ति का गायन कर रहे थे।

जनक कुँअर अरु भरत सुमन में । आनँद बढ़त नवल छन छन में ॥
धीरज शक्ति बढ़त बहु जाही । दरश लालसा अति हिय माही ॥

श्री सीताराम जी का आगमन श्रवणकर, विदेह राज नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी और चक्रवर्ती नन्दन श्री भरत जी के सुन्दर मन में प्रत्येक क्षण नवीन आनन्द वृद्धिंगत हो रहा था। उनके हृदय में धैर्य और शक्ति उत्तरोत्तर परिवर्धित होती जा रही थी तथा प्रभु श्री राम जी महाराज के दर्शनों की त्वरा तीव्रतर हो रही थी।

रातहिं भरत अवधपुर आये । राम मातु कहँ शीश नवाये ॥
आवत मातु सुखद मम नाथा । मोकहँ सब विधि करन सनाथा ॥

रात्रि में ही श्री भरत जी श्री अयोध्यापुरी आ गये और श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी के चरणों में शीश झुकाकर बोले– हे श्री अम्बा जी! मेरे सुख प्रदायक स्वामी श्री राम जी महाराज मुझे सभी प्रकार से सनाथ करने हेतु आ रहे हैं।

छमि अपराध मोर सब रामा । सीता लषण सहित सुख धामा ॥
बीते रात दरश दिवि दैहैं । सब विधि मातु मोहिं अपनैहैं ॥

हे श्री अम्बा जी! सुख के धाम श्री राम जी महाराज मेरे सभी अपराधों को क्षमा कर, अम्बा श्री सीता जी और अनुज श्री लक्ष्मण कुमार के सहित रात्रि व्यतीत होते ही अपने दिव्य दर्शन प्रदान करेंगे तथा मुझे सभी प्रकार से अपना लेंगे।

वसे प्रयाग आज रघुवीरा। पुष्पक चढ़ि अइहैं पुर तीरा ॥
पवन तनय साँची सुधि लाये। सुनत मातु हर्षी रस छाये ॥

मेरे प्रभु श्री राम जी महाराज आज श्री प्रयाग राज में निवास किये हुए हैं तथा वे पुष्पक विमान में सवार होकर श्री अयोध्यापुरी के किनारे आयेंगे। यह सत्य समाचार पवन पुत्र श्री हनुमान जी लाये हैं। इतना सुनते ही अम्बा श्री कौशिल्या जी हर्ष में भर कर वात्यल्य रस से परिपूर्ण हो गयीं।

भरतहिं भरी राम के भाये। रही कौशिला हिय छपकाये ॥
बहुरि भरत कुल गुरुहिं सुनाये। आवत काल राम रस छाये ॥

उस समय अम्बा श्री कौशिल्या जी ने श्री भरत जी को श्री राम जी महाराज के भाव से अंक में भर कर हृदय से लिपटा लिया। श्री भरत जी ने पुनः रघुकुल आचार्य श्री वसिष्ठ जी को समाचार सुनाया कि– रस में सराबोर हुए श्री राम जी महाराज कल आ रहे हैं।

दो0– कुल गुरु सचिव समेत सब, अवध पुरी नर नारि।
राम आगमन श्रवण सुनि, आनन्द लहे अपारि ॥१०५॥

रघुकुल गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी तथा मन्त्रियों के सहित श्री अयोध्यापुरी के सम्पूर्ण स्त्री व पुरुष अपने कर्णो से श्री राम जी महाराज का आगमन श्रवणकर असीम आनन्द प्राप्त किये।

छं0– सुनि कान आवत राम सिय, लछिमन सहित सुख सो अहैं।
सब सुहृद श्री रघुवीर के, रिपुहन सहित आनँद लहैं ॥
सिय भगिनि सिगरी प्रेम पगि, पलकैं बिछाये दर्श हित।
पुर वृद्ध बालक नारि नर, जड़ चेतनादिक हर्ष चित ॥

श्री लक्ष्मण कुमार के सहित सुखपूर्वक श्री सीताराम जी आ रहे हैं यह समाचार अपने श्रवणों से सुन कर श्री शत्रुघ्न कुमार जी के सहित श्री राम जी महाराज के सभी मित्र व सखागणों ने अपार आनन्द प्राप्त किया। प्रेम में पगी हुई श्री सीता जी की सभी बहने उनके दर्शनों के लिए अपनी पलकें बिछाये हुये थीं तथा श्री अयोध्यापुरी के बालक, बृद्ध, स्त्री व पुरुष सहित सभी चराचर (चेतन और जड़) प्रसन्न चित्त थे।

सुख सिन्धु होते मग्न सब, प्रिय दरश आशा चित घनी।
नहिं नींद लीन्हे कोउ पुर, सुख शान्ति हिरदय छनमनी ॥
धनि धन्य पुर के लोग सब, रामहिं गिनत नित आपने।
करि पार विरहहिं अति कठिन, हर्षण रसे रस थापने ॥

श्री अयोध्या पुरी के सभी स्त्री–पुरुष सुख के सागर में मग्न हो रहे थे तथा उनके चित्त में श्री राम जी महाराज के प्रिय दर्शनों की सघन आशा समायी हुई थी। उस रात्रि श्री अयोध्यापुरी में किसी नें भी नींद नहीं ली, क्योंकि उनके हृदय सुख और शान्ति से उल्लसित हो रहे थे। श्री

अयोध्यापुरी के सभी निवासी धन्यातिधन्य हैं जो नित्य श्री राम जी महाराज को अपना मानते हैं। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– आज उन्होंने अत्यन्त कठिन भगवद्विरह को पार कर लिया है और हर्ष प्रपूरित हो हृदय में प्रभु संयोगानन्द रस को स्थापित कर रहे हैं।

सो0–कौशल पुर नर नार, प्रेम मगन रघुवीर के ।
भये विरह तम पार, भानु उगन तुरतहिं चहत ॥१०६॥

कौशलपुरी श्री अयोध्या के सभी स्त्री–पुरुष श्री राम जी महाराज के प्रेम में मग्न हो प्रभु–विरह के सघन अन्धकार को पार कर लिये हैं तथा उनके हृदय में शीघ्र श्री "राम–रवि" उदय ही होना चाहते है।

लक्ष्मीनिधि अरु जनक भुआरा । पगे प्रेम कहि जाय न पारा ॥
सिद्धि सुनैना सिगरी रानी । भई सरस सुख सागर सानी ॥

कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी और श्री जनक जी महाराज प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रेम में इतने डूबे हुए हैं कि– उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। श्री सिद्धि कुँअरि जी व श्री सुनैना जी सहित सम्पूर्ण महारानियाँ रस से परिपूर्ण सुख के सागर में समायी हुई हैं।

मिथिलापुर वासी नर नारी । भये मगन आवत धनुधारी ॥
करहिं जागरण सिय यश गाई । सहित सुभग दोउ बन्धु बड़ाई ॥

श्री मिथिलापुरी के निवासी सभी पुरुष और स्त्री श्री राम जी महाराज का आगमन जानकर सुख में मग्न हो गये हैं। वे सभी दोनों सुन्दर भ्राताओं श्री राम जी और श्री लखन लाल जी के महान सुयश से परिपूर्ण श्री सिया जू की अविचल कीर्ति का गायन करते हुए रात्रि में जागरण कर रहे हैं।

चहहिं भोर कब होइहिं प्यारा । दरश मिली प्रभु कर सुख सारा ॥
सब भरि दृगन देखि रघुराया । करिहैं जन्म सुफल मन भाया ॥

वे सभी चाहते थे कि– कब प्रिय प्रभात होगा और समस्त सुखों के सार प्रभु श्री राम जी महाराज के दर्शन प्राप्त होंगे। हम सभी भर नेत्र श्री राम जी महाराज के मनोभिलषित दर्शन कर अपने जन्म को सफल करेंगे।

विरह विपति सब दूरि भगाई । भेंटब सिया लखन रघुराई ॥
सुख समुद्र उमड़ाय अपारा । बोरी मिथिला अवध करारा ॥

प्रभु–विरह के अपने सभी दुख दूर कर हम परम सुकुमारी श्री सिया जू, राजकुमार श्री लक्ष्मण जी और अतिशय सुशोभन श्री राम जी महाराज से भेंट करेंगे। उस समय असीम सुख का सागर उमड़ कर श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी को पूर्ण रूपेण आत्मसात कर लेगा।

दो0– जग समेत दोऊ पुरी, पइहैं नित बड़ भाग ।
सीता रमण सुदर्श करि, जइहैं सुख महँ पाग ॥

उस समय इस संसार के सहित दोनों पुरियाँ (श्री मिथिला व श्री अवध) नित्य ही महान सौभाग्य प्राप्त करेंगी तथा उनके निवासी, सीताकान्त श्री राम जी महाराज के सुन्दर दर्शन कर सुख में डूब जायेंगे।

सो0–होवै प्रेम पसार, विरह दशा सुनि कुँअर की।
लहैं कृपा रस प्यार, सिय प्रभु कर सुन्दर सुखद ॥१०७॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की विरही अवस्थाओं को श्रवण कर जीवों के हृदय में प्रभु प्रेम का अवश्य ही प्रसार होगा और वे सीताकान्त श्री राम जी महाराज की सुन्दर व सुख प्रदायिनी कृपा, प्रीति और प्रेम–रस को प्राप्त करेंगे।

श्लोक– इदं विरह काण्डंतु, प्रेमोत्कर्ष प्रदायकम्।
पुष्प रूपं करे धृत्वा, श्री रामेस्तु समर्पितम् ॥

जन जन के हृदय में प्रभु श्री सीताराम जी का प्रेमोत्कर्ष प्रदान करने वाला यह वन विरह काण्ड मैं पुष्प के समान हाथों में धारण किये हुए श्री राम जी महाराज को समर्पित करता हूँ।

इति श्रीमद् प्रेम रामायणे, प्रेम रस वर्षणे,
जनमानस हर्षणे, सकल कलि कलुष
विध्वंसने वन विरहो नाम
चतुर्थ काण्ड

यह श्री मद् प्रेम रामायण जी का प्रेमानन्द वर्षण कारी, सर्व जन हृदय हर्ष वितरण कारी तथा सकल कलि कालुष्य विध्वंसन कारी वन विरह नाम का तीसरा काण्ड समाप्त हुआ।

–: वन विरह काण्ड समाप्त :–

ॐ नमः श्री सीतारामाभ्यां

॥अथ श्री प्रेम रामायण॥

卐 श्री सम्प्रयोग काण्ड 卐

श्लोक– प्रेम पूर्णौ रसाकारौ, श्री राम भरतौ सदा ।
ध्यायेहं प्रयतो भूत्वा, सम्प्रयोग क्रिया करौ ॥१॥

अपने विरह से संतप्त प्रिय अनुज श्री भरत जी के साथ सम्प्रयोग (प्रेम परिपूर्ण भेंट) क्रिया करने में तत्पर, एक दूसरे के भुज–पाश में बन्धे हुए, प्रेम से परिपूर्ण और रस के धाम श्री राम जी महाराज तथा श्री भरत जी की मैं सदैव वन्दना करता हूँ।

रामस्य दर्शनाह्लादं, मग्नं लक्ष्मीनिधिं परम ।
रामेणालिंङ्गितं दिव्यं, वन्दे प्रेम पयोनिधिम् ॥२॥

परम प्रभु श्री राम जी महाराज के दर्शनों के आह्लाद में अत्यन्त निमग्न तथा श्री राम जी महाराज के दिव्य आलिंगन मे बँधे हुए प्रेम के सागर श्री लक्ष्मीनिधि जी की मैं वन्दना करता हूँ।

लक्ष्मणाञ्जनि–सूनूच, प्रेमालाप करौ सदा ।
चरिताम्बुधि मग्नौतु, भावयामि सदा प्रियौ ॥३॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के चरित्र रूपी महा सागर में मग्न तथा सदैव परस्पर में प्रभु प्रेम की चर्चा करने में लगे हुए सुमित्रा नन्दन श्री लक्ष्मण कुमार जी व अंजनी कुमार श्री हनुमान जी की मैं भाव पूर्वक वन्दना करता हूँ।

सो0–राम प्रेम जग सार, जानहु और असार सब ।
करि निज हृदय विचार, प्रेम सुधा पी पी जियहु ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–इस संसार में श्री राम जी महाराज का प्रेम ही सार है और शेष सभी कर्म–ज्ञानादि सारहीन है इस प्रकार का विचार अपने हृदय में धारण कर प्रभु प्रेमामृत पान कर जीवन धारण किये रहना चाहिए।

राम आगमन अमित तयारी । लगी होन रातहिं रसकारी ॥
अवधपुरी सब विधि सजवाई । मंगल रचना विविध रचाई ॥

श्री राम जी महाराज के आगमन की असीमित रसमयी तैयारियाँ (सजावट) रात्रि से ही होने लगी थी। श्री अयोध्यापुरी को सभी प्रकार से सजाकर विभिन्न प्रकार की मांगलिक रचनायें बनायी गयी थीं।

राजमार्ग सब गली सुहाई । इतरन सिंची सुमन बिछवाई ॥
नन्दि ग्राम कर मार्ग अनूपा । राज सदन लौ सुभग स्वरूपा ॥

राजमार्ग और सभी गलियाँ इत्र आदि सुगन्धित द्रव्यों से सिंचित और पुष्प बिछी हुई सुशोभित

हो रही थीं। सुन्दर श्री नन्दिग्राम के अनुपमेय मार्ग में राजमहलों तक–––

सुरतरु फूल बिछे भरि इत्रा । मणियन चौक पुरी वर चित्रा ॥
माणिक मरकत मणिमय घइला । सजे सुभग दुहुँ ओर सुगइला ॥

–––देव वृक्ष (कल्प वृक्ष) के अतिशय सुगन्धित व इत्र से भरे हुए पुष्प बिछे थे तथा सुन्दर चित्रकारी से युक्त मणियों की चौके पूरी हुई थी। माणिक्य और मरकत–मणि जटित बड़ै–बड़े स्वर्ण कलश मार्ग के दोनों ओर सुन्दर सजे हुए थे।

तिन महँ खिले सुगन्धित फूला । लगे लुभावत सुर मन भूला ॥
जहँ तहँ कृत्रिम तरु लगवाये । नव रतनन के बने सुहाये ॥

जिनमें खिले हुए सुगन्धित फूल लगे हुए थे जो अत्यन्त ही लुभावने थे तथा जिन्हें देखकर देवताओं का मन भी विस्मृत हो जाता है। जहाँ–तहाँ नवीन रत्नों के बने हुए सुन्दर कृत्रिम पेढ़ भी लगवाये गये थे।

दो0– कृत्रिम शशि सूरज सुखद, जहँ तहँ करत प्रकाश ।
मुनि मन मोहत मार्ग महँ, होवत भ्रम लखि तास ॥१॥

मार्ग में जहाँ–तहाँ अतिशय सुखदायी कृत्रिम चन्द्रमा और सूर्य प्रकाश विखेर रहे थे जो मुनियों के मन को भी मोहित कर रहे थे, उन्हें देखकर साक्षात का भ्रम होने लगता था।

चौहट हाट विशाल सुरम्या । अनुपम शोभित कहत अगम्या ॥
बन्दनवार पताका फहरत । विद्युत छटा जहाँ तहँ छहरत ॥

अयोध्या पुरी के चौराहे व बाजार अत्यन्त विशाल, परम सुन्दर व अनुपमेय साज–सज्जा से सुशोभित हो रहे थे जिनकी शोभा अवर्णनीय थी। बन्दनवार और पताकायें फहरा रही थीं तथा जहाँ–तहाँ बिजली के सजावट की शोभा छहरा रही थी।

घर घर चौक मणिन की राजी । स्वर्ण कलश दीपक युत साजी ॥
गृह गृह मंगल गान सुहाये । बजन लगे सुख देन बधाये ॥

प्रत्येक घर में मणियों की सुन्दर चौके सुशोभित हो रही थी तथा दीप युक्त सुवर्ण के कलश सजाये हुए थे। प्रत्येक गृह में सुन्दर मांगलिक गीत हो रहे थे और सुख प्रदायक बधावा बजने लगे थे।

अवध पुरी पुलकित अति भारी । जिमि सुहाग रजनी नव नारी ॥
शोभा मुनि मन मोहन कारी । सुभग नारि जिमि रूप सम्हारी ॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–श्री राम जी महाराज के आगमन को सुनकर श्री अयोध्यापुरी उसी प्रकार अत्यधिक पुलकित हो रही थी जिस प्रकार 'सौभाग्य रजनी' में कोई नवीन स्त्री। उस समय पुरी की शोभा मुनियों के मन को भी मोहित करने वाली उसी प्रकार थी जिस प्रकार अपने पति के मन को मोहित करने के लिए श्रृंगार की हुई सुन्दर पत्नी।

राम मिलन हित छन छन देखी। पति परसन जनु कामिनि पेखी॥
सुनि प्रभु आवन पुरि हिय हरषी। कहि न जाय सुख आनँद करषी॥

श्री राम जी महाराज के मिलन के लिए समुत्सुका श्री अयोध्यापुरी उसी प्रकार प्रत्येक क्षण उनका मार्ग ऐसे देख रही थी जैसे कोई पत्नी अपने पति के स्पर्श का वाट देखती है। श्री राम जी महाराज के आगमन को श्रवणकर श्री अयोध्यापुरी अपने हृदय में अत्यन्त हर्ष को प्राप्त हुई थी, उसके सुख का वर्णन नहीं किया जा सकता वह तो स्वयं आनन्द को भी आकर्षित करने वाली थी।

दो0– मनहुँ रसिकनी नारि प्रिय, पतिव्रत धर्म धुरीन।
पतिहिं प्रदेशहिं आव सुनि, हरषी अमल अधीन॥२॥

उस समय श्री अयोध्या पुरी ऐसे ही हर्षित हो रही थी मानो कोई पातिव्रत धर्म परायणा प्रिय रसिकिनी पत्नी अपने विदेस गये पति को अपने समीप आते हुए सुनकर प्रेम के वशीभूत हो हर्ष प्रपूरित हो जाती है।

सरयू बहति सुनिरमल नीरा। लहरि उछारि भिगावति तीरा॥
बन कुशुमित फल भरे सुहाये। ऋतु अनऋतु नहिं भेद लखाये॥

श्री सरयू जी सुन्दर व स्वच्छ जल से भरी हुई प्रवाहित हो रही थीं तथा वे आनन्द प्रपूरित हो लहरों को उछाल–उछाल कर अपने तटवर्ती प्रदेश को भिगा रही थीं। अयोध्या पुरी के सभी वन फलों व फूलों से भरे हुए सुशोभित हो रहे थे उनमे ऋतु और अनऋतु (काल) का भेद नहीं समझ पड़ रहा था।

त्रिविध समीर वहति सुख छावनि। कहि न जाय सो समय सुहावनि॥
निर्मल गगन सुहावन लागा। रवि शशि नखत विमल प्रिय पागा॥

तीनों प्रकार की (शीतल, मन्द व सुगन्धित) सुख–प्रदायिनी वायु प्रवाहित हो रही थी, उस सुहावने समय का वर्णन नहीं किया जा सकता। आकाश अत्यन्त ही स्वच्छ और सुन्दर प्रतीत हो रहा था जिसमें परम तेज से परिपूर्ण सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र आदि शोभा प्राप्त कर रहे थे।

होम अगिनि निर्धूम सुहानी। परम तेज कहि जाय न वानी॥
धरनि सुकोमल सुखद सुहाई। पति हित मनहुँ नारि छबि छाई॥

हवन की अग्नि धूम्र रहित, सुन्दर और अत्यधिक तेजोमय हो गयी थी जिसका वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता। भूमि सुन्दर, सुकोमल और सुख प्रदायिनी उसी प्रकार प्रतीत हो रही थी जैसे अपने पति के लिए कोई सुशोभना पत्नी।

खग मृग जीव जन्तु जे अहहीं। जलचर थलचर नभचर कहहीं॥
परम प्रसन्न किलोल कराहीं। जानि राम आवन हरषाहीं॥

श्री अयोध्या पुरी में जो भी पशु–पक्षी आदि जीव–जन्तु हैं जो जल में रहने वाले (जलचर), स्थल में रहने वाले (थल चर) और आकाश में रहने वाले (नभचर) कहलाते हैं वे सभी श्री राम जी महाराज का आगमन जान कर हर्षित हो अत्यधिक प्रसन्नता के साथ किलोल कर रहे

थे।

दो0– शुक सारिक पिक मोरगन, कूजत नृत्यत भोर ।
मनहुँ बधाई देत सब, प्रेम मगन सुख बोर ॥३॥

तोता, मैना, कोयल और मोर आदि सुन्दर पालतू पक्षी कुहुकते हुए शरीर सुधि भूल कर नाच रहे थे मानों वे सभी प्रेम और सुख में डूबे हुए अपने स्वामी श्री राम जी महाराज के शुभागमन की परस्पर में बधाई दे रहे हों।

हय गय गाय अवध पशु जेते । हरषे रघुपति आवत तेते ॥
पुरी विराजिति परम प्रसन्ना । उत्फुल मुख सब नहिं कोउ खिन्ना ॥

घोड़े, हाथी, गाय आदि जितने भी श्री अयोध्यापुरी के पशु थे वे सभी श्री राम जी महाराज के आगमन को जानकर हर्षित हो गये थे तथा वे सभी श्री अयोध्यापुरी में अत्यधिक प्रसन्न और विकसित मुख सुशोभित हो रहे थे, कोई भी दुखी नहीं थे।

जस जस समय निकट चलि आवै । तस तस हिय अति मोद जनावै ।।
भरत सुधिहिं दै रातहिं आये। नन्दि ग्राम निज कुटी सुहाये ।।

जैसे–जैसे प्रभु के आगमन का समय समीप आता जा रहा था वैसे–वैसे सभी के हृदय में अत्यधिक आनन्द व्याप्त होता जा रहा था। श्री अयोध्या पुरी में श्री राम आगमन का समाचार देकर श्री भरत जी रात्रि में ही अपनी सुन्दर पर्ण–कुटी श्री नन्दिग्राम आ गये थे।

प्रात क्रिया करि जन समुदाया। नित्य निबाहि सूक्ष्म हरषाया ॥
मिलन हेतु अति ही अनुरागे। काल प्रतीक्षा करनेहि लगे ॥

प्रभात का समय होते ही सभी जन–समुदाय अपनी प्रातः–क्रियायें कर सूक्ष्म में नित्य–नियमों का निर्वाह किये और हर्षित हो अत्यन्त अनुराग पूर्वक श्री राम जी महाराज से भेंट करने हेतु समय की प्रतीक्षा करने लगे।

मातु सचिव गुरु सह पुरवासी। रिपुहन आये भरत सकासी ॥
जनपद प्रजा और महिपाला । आये दरशन हित तेहिं काला ॥

सभी मातायें, मंत्री, रघुकुल गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी और राजकुमार श्री शत्रुघ्न जी पुरवासियों के सहित श्री भरत जी के समीप नन्दि ग्राम आ गये। जनपद की प्रजा और अन्य सभी राजागण भी उस समय प्रभु श्री राम जी महाराज के दर्शनों के लिए नन्दि ग्राम आये हुये थे।

दो0– नन्दि ग्राम महँ भीर भई, शेष सकहिं नहिं गाय ।
सब समुद्र इक साथ जिमि, चन्द्र लखत उमड़ाय ।।४।।

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–श्री नन्दी ग्राम में उस समय महान जनसमूह एकत्र हो गया था जिसका वर्णन श्री शेष जी भी नहीं कर सकते। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे एक चन्द्रमा को देखकर संसार के सभी समुद्र उमडा़ पड़े हों।

विविध सगुन इक साथहिं माहीं । राम दरश हित सबहिं दिखाहीं ॥
छन छन मन महँ बढ़त अनन्दा । दरश आश करि रघुकुल चन्दा ॥

वहाँ सभी को श्री राम जी महाराज के दर्शनों के लिए एक ही साथ विभिन्न प्रकार के शुभ सगुन दिखाई दे रहे थे। रघुकुल के चन्द्रमा श्री राम जी महाराज के अप्रतिम दर्शन की आशा कर प्रत्येक क्षण सभी के चकोर रूपी मन में अतिशय आनन्द विवर्धित होता जा रहा था।

निरखहिं सुर चढ़ि व्योम विमाना । मन महँ बाढ़ेउ मोद महाना ॥
उत रघुवीर प्रभात नहाई । नित्य कर्म करि मुनि पहँ जाई ॥

अपने विमानों में चढ़े हुए देवता आकाश से यह सब दृश्य देख रहे थे, उनके हृदय में भी महान आनन्द की बाढ़ आ गयी थी। उधर श्री प्रयाग राज जी में सबेरा होते ही श्री राम जी महाराज स्नान कर नित्य कर्मो का अनुष्ठान किये एवं मुनिवर श्री भरद्वाज जी के समीप जाकर–––

मारुत सुत मुख दशा भरत की । वरणेउ सहित सुनैना सुत की ॥
आयसु पाइ बहुरि शिर नाये । लहि अशीष रघुवर सुख पाये ॥

–––मारुत नन्दन श्री हनुमान जी के मुख से श्रवण की हुई श्री भरत जी और सुनैना नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी की अवस्था का वर्णन किये। तदुपरान्त उनकी आज्ञा प्राप्त कर श्री राम जी महाराज पुनः सिर झुका प्रणाम किये और उनके आशीर्वाद को प्राप्त कर सुखी हुए।

पुष्पक चढ़ि चलि दिये तुराई । बानर भ्रात सहित सिय साँई ॥
सुन्दर रव छायो चहुघाहीं । मनहुँ गरुड़ पंखा फहराहीं ॥

पुनः सम्पूर्ण संसार के स्वामी श्री राम जी महाराज आतुरता पूर्वक, वानर सखाओं, भ्राता लक्ष्मण और प्राणप्रिया श्री सिया जू के साथ पुष्पक विमान में सवार होकर श्री अयोध्या पुरी को चल दिये। उस समय चारों ओर विमान की ऐसी सुन्दर ध्वनि हुई मानों श्री गरुड़ जी अपने पंख फहरा रहे हों जिनसे वेद ध्वनि हो रही है।

दो0– अवध लखन अति लालसा, बढ़ी कपिन्ह हिय माहिं ।
भरत दरश हित मनहिं मन, आनन्द सिन्धु समाहिं ॥५॥

सभी वानर सखाओं के हृदय में श्री अयोध्यापुरी व श्री भरत जी के दर्शनों की अत्यधिक त्वरा बढ़ी हुई थी और वे सभी मन ही मन आनन्द के सागर में समवगाहन कर रहे थे।

मिलि सिंगरौर निषादहिं रामा । चले चढ़ाय अवध सुख धामा ॥
नन्दि ग्राम के निकट विमाना । पहुँचे जाइ हिये हुलसाना ॥

श्री ृंगवेरपुर में निषादराज गुह जी से भेंट कर तथा उन्हे विमान में चढ़ाकर सुख के धाम श्री राम जी महाराज श्री अयोध्यापुरी को चल दिये। जैसे ही पुष्पक विमान श्री नन्दी ग्राम के समीप पहुँचा सभी के हृदय आनन्दित हो गये।

देखि लोग आवत प्रभु याना । निज निधि पाइ अमित सुखमाना ॥
सब कर मन तन नृत्यन लागा । सात्विक भाव प्रेम रस जागा ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के पुष्पक विमान को आते हुए देखकर सभी ने उसी प्रकार असीमित सुख प्राप्त किया मानों वे अपनी खोया हुआ खजाना प्राप्त कर लिये हों। सभी के मन और शरीर नृत्य करने लगे तथा हृदय में अष्ट सात्विक भावों के साथ प्रेम रस का स्रोत उमड़ पड़ा।

अहह प्राण प्रिय लखि सिय रामा । आजु होव मन पूरण कामा ॥
मंगल भेंट द्रव्य सब साजी । मिथिला अवध नारि नर भ्राजी ॥

अहा! अपने प्राण प्रिय श्री राम जी महाराज का दर्शन कर आज हम मन में पूर्ण काम हो जायेंगे ऐसा विचार करते हुये श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी के सभी स्त्री और पुरुष श्री राम जी महाराज से भेंट हेतु मांगलिक द्रव्य सजाये हुए सुशोभित हो रहे थे।

वेद पढ़हिं मुनिगन हरषाई । मागध सूत भाट गुण गाई ॥
मंगल गान करहिं वर नारी । आवत देखि राम सुखकारी ॥
पणव निसान शंख घड़ि बाजी । ढोल मृदंग नाद डफ भ्राजी ॥

मुनिगण हर्षित हो वेद पाठ करने लगे थे तथा मागध, सूत और भाट आदि श्री राम जी महाराज के गुणों का गान कर रहे थे। श्री राम जी महाराज को आते हुए देख कर सुन्दर सुहागिनी स्त्रियाँ सुख–प्रदायी मांगलिक गीत गाने लगीं तथा पणव (लकड़ी के बजाया जाने वाला ढोल) नगाड़े, शंख, घड़ी, ढोल, मृदंग तथा डफ आदि बाजे सुहावनी ध्वनि करते हुए बजने लगे।

दो0– बाजत बाद्य अनेक विधि, जय जय धुनि चहुँ ओर ।
चन्दन चोवा इत्र शुभ, छिरकत होत विभोर ॥६॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–उस समय अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे, चारों दिशाओं में जय जयकार की ध्वनि गूँज रही थी तथा सभी एक दूसरे पर चन्दन, चोवा और इत्र आदि शुभ वस्तुएँ छिड़क कर विभोर हो रहे थे।

वरषत पुष्प विमानहिं ओरी । आँख दसाये निरख विभोरी ॥
चुअत प्रेम जल नयनन माहीं । इकटक निरखत गगन उछाहीं ॥

सभी लोग विमान की ओर पुष्प वृष्टि करते हुए अपने नेत्र बिछाये, विभोर बने उसे देख रहे थे, उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित हो रहे थे तथा वे उत्साहपूर्वक अपलक आकाश की ओर निहार रहे थे।

देखन राम–भरत की भेंटा । सहित कुँअर प्रभु प्रीति अमेटा ॥
चढ़ि चढ़ि देव विमानहिं आये । निज निज नारि समेत सुहाये ॥

श्री राम जी महाराज और राजकुमार श्री भरत जी एवं कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी और प्रभु श्री राम जी महाराज की शाश्वत प्रीति पूर्वक भेंट देखने के लिए देवता अपनी–अपनी नारियों सहित सुन्दर विमानों में चढ़ कर आये हुए थे।–––

ऊपर अवध अकाशहिं माही। छाय रहे पुनि पुनि पुलकाहीं॥
विधि हरि हर सुरपति दिनराई। लोक पाल सिगरे तहँ आई॥

———वे श्री अयोध्यापुरी के ऊपर आकाश में बारम्बार पुलकते हुए सुशोभित हो रहे थे। श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी, देवराज श्री इन्द्र जी, श्री सूर्य भगवान तथा सभी लोकपाल वहाँ आये हुए थे।———

राम मिलन लखिबे की आशा। होत मगन मन भरे हुलासा॥
उमा रमा शारद शचि आई। औरहु देवि प्रेम रस छाई॥

———वे सभी श्री राम जी महाराज की भेंट देखने की कामना से मन में आनन्द भरे हुए मग्न हो रहे थे। श्री पार्वती जी, श्री लक्ष्मी जी, श्री सरस्वती, श्री शची जी तथा अन्य देवियाँ भी प्रेमानन्द में डूबी हुई वहाँ आयी थीं।

दो0—महा कोलाहल भू गगन, कहत लहैं नहिं थाह।
प्रेम मूर्ति सिगरे बने, हृदय दरश अति चाह॥७॥

उस समय भूमि और आकाश में अत्यधिक कोलाहल हो रहा था जिसका वर्णन कर उसकी सीमा नहीं प्राप्त की जा सकती। वे सभी प्रेम की प्रतिमा बने हुए थे तथा उनके हृदय में प्रभु दर्शन की तीव्रतर कामना समाई थी।

वरषहिं सुमन देव झरि लाये। जय जय उचरत भरि भल भाये॥
हनहिं निसान प्रेम सरसाने। कहि न जाय सो मोद बखाने॥

देवता अनवरत पुष्प वृष्टि करते हुए सुन्दर भाव में भरकर जय जय उच्चारण कर रहे थे तथा प्रेम में सरसाये हुए नगाड़े बजा रहे थे। उस समय उनके हृदय का आनन्द बखान कर नहीं कहा जा सकता।

चढ़ी विमान देव वर नारी। नाचहिं गावहिं भाव सम्हारी॥
वरषहिं केशर कुंकुम माला। चन्दन गंध सुअंकुर जाला॥

सुन्दर देवांगनायें विमानों में चढ़ी हुई, भावों में भरी नाच गा रही थी तथा केशर, कुंकुम, मालायें, चंदन, इत्र और सुन्दर दूर्वा इत्यादि मंगल वस्तुयें वरषा रही थीं।

पाँवरि धरे भरत शिर माहीं। जपत नाम दृग वरषत जाहीं॥
सहित समाज चले ह्वै आगे। राम मिलन हिय अति अनुरागे॥

राजकुमार श्री भरत जी श्री राम जी महाराज की चरण पादुकाओं को अपने शिर में धारण किये, मुख से प्रभु नाम जप करते एवं नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित करते हुए, ससमाज श्री राम जी महाराज के मिलन की त्वरा परिपूर्ण हृदय से, अत्यन्त अनुराग प्रपूरित हो आगे आगे चल रहे थे।

सविधि समाज कुँअर लै राजा। चले राम सिय दरशन काजा॥
आवत देखे सबहिं दुखारी। कृपा सिन्धु प्रभु प्रेम पुजारी॥
मगन भये जन प्रीति समाये। हृदय हिलोर नयन जल छाये॥

अपने समाज सहित श्री जनक जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को लिये हुए विधि–पूर्वक श्री सीताराम जी के दर्शन हेतु चल रहे थे। इस प्रकार सभी को अपने विरह में दुखी, मिलन हेतु आते हुए देख कर कृपा के सागर व प्रेम के पुजारी प्रभु श्री राम जी महाराज प्रेम–मग्न हो गये तथा अपने भक्तों के प्रेम में समाहित हो गये। उनके हृदय में आनन्द की हिलोरें उठने लगीं व नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आये।

छं०– लखि राम आवत भरत कहँ, मम मिलन सहित समाजहीं ।
भरि देश छाई भीर भलि, आकाश भूमि सुभ्राजहीं ॥
रस छाय नयनन नीर भरि, कह प्रिय कपिन सो चाव अति ।
बहु रूप धरि आवत विरह, हरषण लखौ नहिं जाय मति ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–समाज सहित श्री भरत जी और श्री नन्दि ग्राम के आकाश व भूमि में सुशोभित जनसमूह को अपने मिलन के लिए आया हुआ देखकर श्री राम जी महाराज आनन्द में समाहित हो गये और नेत्रों में अश्रु भर कर अत्यन्त उत्साह पूर्वक वानर–सखाओं से प्रिय वाणी में बोले कि– हे सखा–गणों! देखो तो, मेरा विरह ही कई रूप धारण कर मुझसे मिलने हेतु आ रहा है, इनके भावों तक तो मेरी बुद्धि भी नहीं पहुँच पा रही है।

सो०–सखे अवध कर प्यार, पाइ सुखी निशिदिन रह्त ।
कीन्ह अवधि कहँ पार, सोइ सुख अब अनुभव करब ॥८॥

हे सखागणों! मैं श्री अयोध्यापुरी के निवासियों के प्यार को प्राप्त कर अहर्निशि सुखी रहता था। अतः अब मैं अपनी वन की अवधि को पार कर उसी सुख का पुनः समनुभव करूँगा।

आय समीप राम हिय हेरा । उतरन भूमि विमानहिं प्रेरा ॥
सीताराम सुभग वर जोरी । राजत पुष्पक आसन ठौरी ॥

समीप आकर, प्रभु श्री राम जी महाराज ने भूमि में उतरने के लिये, अपने हृदय में विचार कर, विमान को प्रेरित किया। श्री सीताराम जी की सुन्दर व श्रेष्ठ जोड़ी पुष्पक विमान के अतिशय सुहावने आसन में सुशोभित हो रही थी।

प्रेम भरे दोउ नयनन तारे । जीव जीव प्रिय प्राणन प्यारे ॥
देखत सबहिं सनेह समाने । बिसरे दूनहु सुरति अपाने ॥

सभी के नेत्रों के सितारे व जीव मात्र के प्राणाधिक प्रिय श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी दोनो वहाँ उपस्थित समस्त जन समुदाय को अपने प्रति स्नेह में समाये हुए देखकर अपनी स्मृति भूल गये।

उतरि सुयान भूमि पहँ आयो । रवि कुल रवि उतरे रस छायो ॥
गुरुहिं विलोकि वेगि रघुवीरा । चरण परे नययन भरि नीरा ॥

पुष्पक विमान उतर कर भूमि में आ गया तब सूर्य कुल के सूर्य श्री राम जी महाराज आनन्द पूर्वक विमान से उतर पड़े तथा श्री गुरुदेव जी को देख, शीघ्र ही नेत्रों में अश्रु भरकर रघुकुल प्रवीर

श्री राम जी महाराज उनके चरणों में गिर कर प्रणाम किये।

मुनिवर पुलकि नयन जल छाये। भूले सुधि लखि राम सुभाये॥
तुरत उठाय उरहिं लपटाई। चाहत नहि छोड़न मुनिराई॥
रामहि नेह नीर नहवाये। शीश सूँघि पुनि आशिष गाये॥

श्री राम जी महाराज के स्वभाव को देखकर, मुनि श्रेष्ठ श्री बशिष्ठ जी पुलकित शरीर व प्रेमाश्रु प्रपूरित हो गये तथा अपनी स्मृति भूल गये। श्री मुनिराज बशिष्ठ जी ने तुरन्त ही श्री राम जी महाराज को उठाकर हृदय से लिपटा लिया और उन्हें छोड़ना नहीं चाहते थे। वे श्री राम जी महाराज को अपने प्रेमाश्रुओं से अवगाहन कराने लगे तथा उनका शिरोघ्राण कर आशीर्वाद दिये।

दो0– बहुरि राम सब मुनिन कहँ, कीन्हेउ दण्ड प्रणाम।
पाये आशिष प्यार बहु, जिमि गुरु दिये ललाम॥९॥

पुनः श्री राम जी महाराज ने सभी मुनियों के चरणों में दण्डवत प्रणाम किया तथा श्री गुरुदेव जी के समान ही सुन्दर आशीर्वाद और प्यार प्राप्त किया।

भरत विलोकि राम रघुवीरहिं। प्रेम विकल नहिं सूझ शरीरहिं॥
आतुर गिरे चरण भहराई। सात्विक भाव भरे रस छाई॥

रघुकुल प्रवीर श्री राम जी महाराज को देखकर श्री भरत जी प्रेम विभोर हो गये उन्हें शरीर स्मृति नहीं रही, वे सात्विक भावो से परिपूर्ण, आनन्द प्रपूरित हो आतुरता पूर्वक प्रभु श्री राम जी महाराज के चरणों में असहाय से होकर कर गिर पड़े।

गहि कर भरतहिं राम उठावत। भरत परे पद उठब न भावत॥
"श्री रामः शरणं मम" बोलैं। पाहि पाहि कहि हिय रस घोलैं॥

श्री राम जी महाराज श्री भरत जी के हाथ को पकड़ कर उठाते हैं परन्तु श्री भरत जी उनके चरणों में ही पड़े हैं, उन्हें उठना अच्छा नहीं लग रहा। वे 'श्री रामः शरणं मम्' शरणागति मंत्र का उच्चारण करते हुए हे नाथ! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये कह कहकर सभी के हृदय को द्रवित किये दे रहे थे।

बरबश भरतहिं राम उठाये। भरि भुज भेंटि हृदय छपकाये॥
मिलत दोउ अति ही अनुरागे। भूले सुधि बुधि ज्ञान विरागे॥

श्री राम जी महाराज ने श्री भरत जी को हठ पूर्वक उठा लिया तथा भुजाओं में भर कर भेंट करते हुए अपने हृदय से लगा लिये। श्री राम जी महाराज व श्री भरत जी दोनो अत्यानुराग पूर्वक अपनी सम्पूर्ण स्मृति, बुद्धि, ज्ञान और वैराग्य को भुलाये हुए भेट कर रहे हैं।

श्याम सुतनु शिर जटा सुहाये। छिपकि रहे दोउ प्रेम अमाये॥
मनहुँ प्रेम युग रूप बनाई। मिलत परस्पर जन सुखदाई॥
विलग होन नहिं कोऊ चाहैं। दूनहु बूड़े प्रेम अथाहैं॥

वे दोनो सुन्दर श्याम वपु धारी, शिर में सुशोभन जटाएँ धारण किये हुए, प्रेम से ओत–प्रोत उसी प्रकार लिपटे हुए थे मानो जन–जन को सुख प्रदान करने वाला प्रेम तत्व ही दो रूप बना कर परस्पर भेंट कर रहा हो। दोनों में कोई भी अलग नहीं होना चाहते थे तथा दोनों ही असीम प्रेम में डूबे हुए थे।

छं0– भरि प्रेम दूनहु भ्रात भल, सुख सिन्धु बूड़े सुधि नही ।
युग भाव छायो लोक तिहुँ, दृग नीर गीली सब मही ॥
नहि जान आपुहिं भूलि सब, चर अरु अचर रस महँ सने ।
जनु उमड़ि अम्बुधि अण्ड कहँ, हरषण डुबायो जल घने ॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–वे दोनों भाई श्री राम जी महाराज और श्री भरत जी प्रेम में भरे हुए सुन्दर सुख में सागर में डूबे हुए थे उन्हें कुछ भी स्मृति नहीं थी। उस समय उन दोनों के सुन्दर भाव तीनो लोकों में व्याप्त हो रहे थे तथा उनके अश्रुओं से वहाँ की सम्पूर्ण भूमि भीग गयी थी। उस समय किसी को भी स्वयं की स्मृति नहीं थी, सम्पूर्ण चराचर समुदाय सभी कुछ भूलकर श्री राम जी महाराज व श्री भरत जी के भाव–रस में डूबा हुआ था। ऐसी प्रतीति हो रही थी जैसे प्रेम का महासागर उमड़ कर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने असीम प्रेम जल में अस्त कर लिया हो।

सो0–तरकि सकैं नहिं शेष, भरत राम की मिलन प्रिय ।
छायो प्रेम अशेष, भूले रामहुँ निज सुधिहिं ॥१०॥

श्री भरत जी और श्री राम जी महाराज के प्रिय मिलन का वर्णन कर श्री शेष जी भी पार नहीं पा सकते। वहाँ तो पूर्णरूपेण 'प्रेम तत्व' ही समाया हुआ था। उस समय श्री राम जी महाराज भी अपनी स्मृति भूल गये थे।

लखि लखि सुर सब वरषहिं फूला । हनत दुंदुभी मंगल मूला ॥
जय जय प्रभु जय जयति उचारहिं । प्रेम मगन बूड़े रस धारहिं ॥

श्री राम जी महाराज व श्री भरत जी के मिलन को देख–देख कर सभी देवता पुष्प वरषाते हुए दुन्दुभी बजा रहे हैं तथा प्रेम में मग्न हो प्रभु श्री राम जी महाराज की जय हो–जय हो–जय हो उच्चारण करते हुए आनन्द के प्रवाह में डूब गये हैं।

सब कपि देख भरत कर प्रेमा । भूले सुधि बुधि तन कर नेमा ॥
बड़ी बार हिय राम कृपाला । रहे लाइ भरतहिं जन पाला ॥

श्री भरत जी के प्रेम को देखकर सभी बानर–सखा अपने शरीर की सम्पूर्ण स्मृति और नियम आदि भूल गये थे । इस प्रकार भक्त जनों के प्रति–पालक, परम कृपालु श्री राम जी महाराज श्री भरत जी को बहुत देर तक अपने हृदय से लगाये रहे।

पुनि धरि धीर भरत के आँसू । पोंछे प्रभु प्रिय प्रेम प्रकाशू ॥
नयन नीर भरि गद्गद् बोले । सहे तात तुम विपति अतोले ॥

पुनः धैर्य धारण कर प्रभु श्री राम जी महाराज, प्रेम प्रगट करते हुये, प्रिय श्री भरत जी के अश्रुओं को पोंछ कर नेत्रों में प्रेमाश्रु भर, गद्गद वाणी से बोले– हे तात श्री भरत जी! आपने अतुलनीय विपत्ति को सहन किया है।

कुशल तुम्हारि काह मैं पूँछउ । बहे विरह दुख करि जग तूछउ ॥
बोले भरत कुशल रघुराया । पाई आजु पाय प्रभु दाया ॥

मैं आपकी कुशलता क्या पूछूँ? क्योंकि आप तो इस संसार को अत्यन्त तुच्छ समझ कर मेरे वियोग जनित दुख में ही प्रवाहित हो गये थे। श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवण कर श्री भरत जी ने कहा– हे रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज! मैंने आपकी कृपा को प्राप्त कर आज ही कुशलता प्राप्त की है।

दो0– महा दीन आरत समुझि, जो प्रिय दरशन दीन्ह ।
सब विधि कियो सनाथ मोंहि, आपुन गुनि हिय लीन्ह ॥११॥

अत्यन्त दीन व दुखी समझ कर आपने जो मुझे अपना प्रिय दर्शन दिया है और मुझे अपना सेवक मानकर हृदय से लगाया है, हे नाथ! ऐसा कर आपने मुझे सभी प्रकार से सनाथ कर दिया है।

रिपुहन करत प्रणाम उठाये । रहे राम निज हृदय लगाये ॥
करि बहु प्यार सूँघि सिर परशे । दीन्हे आशिष मधु रस वरषे ॥

श्री शत्रुघ्न कुमार जी को प्रणाम करते देख, श्री राम जी महाराज ने उन्हे उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और अपार प्रेम से शिरोघ्राण करते हुए, स्पर्श कर मधुर रसयुक्त वचनों से आशिर्वाद प्रदान किया।

लखन भरत कहँ कीन्ह प्रणामा । भरत लिये हिय लाइ ललामा ॥
सेवा रत लछिमन उर लाई । भरत रहे सुख सिन्धु समाई ॥

अनन्तर श्री लक्ष्मण कुमार जी ने बड़े भैया श्री भरत जी को प्रणाम किया तब श्री भरत जी ने उन्हें सुन्दर हृदय से लगा लिया। प्रभु श्री राम जी महाराज की सेवा में अनुरक्त श्री लक्ष्मण कुमार जी को हृदय से लगाकर श्री भरत जी सुख के समुद्र में समाहित हो गये।

रिपुहन करत प्रणामहिं पेखी । लखन लिये उर लाइ विशेषी ॥
आशिष दिये भरत प्रिय जाना । महा मोद मन माहिं समाना ॥

श्री शत्रुघ्न कुमार जी को प्रणाम करते देख श्री लक्ष्मण कुमार जी ने उन्हे हृदय से लगा लिया तथा श्री भरत जी के प्रिय समझकर आशिर्वाद प्रदान किया। उस समय श्री लक्ष्मण कुमार जी के मन में महान आनन्द समाया हुआ था।

भरत गहे सीता पद जाई । प्रीति समेत सहित निज भाई ॥
परशि शीश सिय आशिष दीनी । कृपा कोर लखि नेह नवीनी ॥

पुनः श्री भरत जी अपने भ्राता श्री शत्रुघ्न कुमार जी के सहित जाकर श्री सीता जी के चरणों को पकड़ कर प्रणाम किये तब श्री सीता जी ने अपनी कृपामयी दृष्टि से निहारते हुए, नवीन प्रेम पूर्वक

अपने कर कमलों से उनका शिर स्पर्श कर आशीर्वाद दिया।

दो0– सीय कृपा लहि भरत अति, प्रेम न हृदय समाय ।
पाये सब मन काम निज, परम साध्य जेहिं गाय ॥१२॥

परम कृपार्णवा श्री सीता जी की अत्यधिक कृपा को प्राप्त कर श्री भरत जी के हृदय में प्रेम नही समा रहा था, उस समय उन्होने अपना सभी मनोभिलषित प्राप्त कर लियार था, जिसे परम प्राप्तव्य कह कर बखान किया गया है।

देखि जनक कहँ किये प्रणामा । कृपा सिन्धु रघुवर सुख धामा ॥
भूप लिये निज हृदय लगाई । मनहुँ गयी निधि मिली महाई ॥

श्री मिथिलेश जी महाराज को देखकर कृपा के सागर व सुख के धाम रघुकुल श्रेष्ठ श्री राम जी महाराज ने प्रणाम किया तब श्री जनक जी महाराज ने उन्हें इस प्रकार हृदय से लगा लिया मानो अपनी गई हुई महान सम्पति को प्राप्त कर लिये हों।

शीश सूँघि निज नयनन ढारी । नृपति किये अभिषेक सुखारी ॥
इतने महँ लक्ष्मीनिधि आये । देखे दूरहिं ते मन भाये ॥

श्री जनक जी महाराज ने श्री राम जी महाराज के शिर को सूँघ कर सुखपूर्वक अपने नेत्रों के प्रेम जल से उनका अभिषेक कर दिया। इतने में ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी आ गये जिन्हें दूर से ही देख कर श्री राम जी महाराज मन मुग्ध हो गये।

रामहिं निरखि फलहुँ फल पाई । प्रेम सिन्धु गे कुँअर समाई ॥
शिथिल शरीर सबहिं सुधि भूला । गिरेउ भूमि जनु तरु बिनु मूला ॥

अपने प्राणाधार श्री राम जी महाराज को देखकर चारों फलों के (अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष) के फल (परमात्म साक्षात्कार) को प्राप्त कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम के सागर में अस्त हो गये। वे सम्पूर्ण स्मृति भूलकर, शिथिल शरीर बिना जड़ के पेड़ की भाँति भूमि में गिर पड़े।

राम पेखि पूँछे गुरु पाहीं । कौन गिरे महि तन सुधि नाहीं ॥
अस्थि मात्र अवशेष शरीरा । जटा मुकुट शिर लोचन नीरा ॥
अचरज लगत प्राण इन केरे । सम्प्रति लेवत कहाँ बसेरे ॥

उन्हें देखकर श्री राम जी महाराज ने गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी से पूछा कि– हे श्री गुरुदेव जी! ये कौन हैं जो भूमि में गिरे पड़े हैं, जिन्हें शरीर की स्मृति भी नहीं है। इनके शरीर में केवल हड्डियाँ ही बची हैं, ये शिर में जटायें धारण किये हुए हैं तथा नेत्रों से अश्रु प्रवाहित कर रहे हैं। इन्हे देखकर तो आश्चर्य लग रहा है कि– इस समय इनके प्राण, शरीर में कहाँ पर निवास कर रहे हैं?–––

दो0– किमि चल पावत भूमि महँ, सुनिय महा मुनि राय ।
कहाँ बसत ये ऋषि प्रवर, कहा नाम कृश काय ॥१३॥

–––हे महा मुनि श्री बसिष्ठ जी! ये भूमि में किस प्रकार चल पाते होंगे, ये ऋषि–श्रेष्ठ कहाँ

निवास करते हैं, इनका क्या नाम है और इनका शरीर इतना क्षीण क्यों है?———

देखि इनहिं बाढ़ति प्रिय प्रीती। भूलि रही तन सुधी सुरीती॥
राम बचन सुनि गुरुवर बोले। भाव भरे भल बचन अमोले॥

———इन्हे देखकर मेरे हृदय में इनके प्रति प्रिय प्रीति बृद्धिंगत हो रही है तथा सुन्दर प्रेम पद्धति के अनुसार मुझे शरीर स्मृति भूली जा रही है। श्री राम जी महाराज के बचनों को श्रवण कर गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी, भाव से भरे हुए सुन्दर अनमोल बचन बोले———

जानहुँ सबहिं राम जगदातम। तदपि कहौं सुनु श्याम सुधातम॥
तव वियोग अस भयो शरीरा। भूले सुधि बुधि परे अधीरा॥

——हे सम्पूर्ण संसार के आत्म—स्वरूप श्री राम जी महाराज! यद्यपि आप सभी कुछ जानते हैं तथापि हे अमृत स्वरूप श्याम सुन्दर! सुनिये, इनका शरीर आपके वियोग में ही ऐसा हो गया है अतः ये सुधि—बुधि भूले, अधीर बने भूमि में पड़े हुए हैं।———

जनक सुअन प्रिय पूत सुनैना। सीय भ्रात तव श्याल अचैना॥
चीन्ह न जाय महा कृश भयऊ। जीवन आश आज हिय ह्वयऊ॥

———ये श्री महाराज जनक जी के प्रिय कुमार, श्री सुनैना जी के प्रिय पुत्र, श्री सीता जी के बड़े भइया तथा आपके सुखद श्याल, कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी हैं जो आपके विरह में अत्यन्त ही दुखी हैं। ये पहचाने नहीं जा रहे क्येंकि इनका शरीर अत्यन्त ही कृश (दुर्बल) हो गया है। इनके हृदय में जीवन धारण करने की कामना आज ही उत्पन्न हुई है।

सुनि तव आवन कल्ह रघुराई। चेत कुमारहिं कछु कछु आई॥
नाहित आज अवशि तनु त्यागी। बसत दिव्य लोकहिं अनुरागी॥

हे रघुनन्दन! कल आपका शुभागमन सुनकर ही कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को किंचित चैतन्यता आयी थी अन्यथा आज ये आपके प्रेमी अवश्य ही अपना शरीर त्याग कर दिव्य लोक में निवास कर लेते।

दो0— जनक सुवन शुचि नाम सुनि, रघुपति आतुर धाय।
प्रेम चिन्ह सब उदित तन, सुधि बुधि सब बिसराय॥१४॥

जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी का पवित्र नाम श्रवण करते ही रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज प्रेम के सम्पूर्ण चिन्हों से परिपूर्ण हो, सम्पूर्ण स्मृति भूल—कर आतुरता पूर्वक दौड़ पड़े तथा———

मिले जाय निज श्यालहिं काहीं। परे भूमि बूड़े रस माहीं॥
शीष उठाय अंक लिय धारी। परशत बदन राम सुखकारी॥

———अपने प्रिय श्याल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से जाकर मिले, जो रस में निमग्न हुए भूमि में गिरे पड़े थे। श्री राम जी महाराज ने उनके शिर को उठा कर अपनी गोद में रख लिया तथा उनके मुख कमल का सुखदायी स्पर्श करते हुए बोले———

उठहु उठहु हे प्राण पियारे। कुँअर लाड़िले आँखिन तारे॥
आयउँ इहाँ आस अति लाई। मिलिहौं कुँअरहिं हृदय लगाई॥

———हे मेरे प्राण प्रिय, नेत्रों के तारे लाड़िले कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! उठिये, उठिये, मैं यहाँ इस महान कामना से अभिभूत हुआ आया था कि– आपसे हृदय लगाकर भेंट करूँगा।———

सो किन आस पुजावहु नाहीं। मम हित चाहत रहे सदाहीं॥
खुले नेत्र मुख देखन हेता। होइ रहेउँ मैं अतिहिं अचेता॥

———अतः आप मेरी वह इच्छा क्यों नहीं पूर्ण कर रहे? आप तो सदैव मेरा मंगल ही चाहते थे। मैं विकसित नेत्रों से परिपूर्ण आपका मुख कमल देखने के लिए अत्यधिक अधीर हो रहा हूँ।———

अस बिचारि श्री कुँअर हमारे। देवहु अंग माल अति प्यारे॥
राम परश लहि जनक दुलारा। चितयो प्रभु तन आँख उघारा॥

———हे हमारे परम प्रिय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! ऐसा विचार कर आप, अपने भुजाओं की अत्यन्त प्यारी माला (आलिंगन) हमें प्रदान करें। श्री राम जी महाराज के स्पर्श को प्राप्त कर श्री जनक जी महाराज के अतिशय दुलारे कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने नेत्र खोलकर अपने प्रभु श्री राम जी महाराज के दिव्य वपु का दर्शन किया।

दो0– उठ्यो उचकि आनन्द मगन, प्रभु पद दीन्हेउ माथ।
बरबश कुँअरहिं पकरि के, लाये हिय रघुनाथ॥१५॥

प्रभु श्री राम जी महाराज का दर्शन करते ही आनन्द मग्न हो कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी उचक कर उठ पड़े और प्रभु चरणों में अपना मस्तक रख दिये, तब रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज ने हठात् कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को पकड़ कर अपने हृदय से लगा लिया।

छं0– प्रभु मिलत कुँअरहिं सोह अति, उपमा न जाती कछु कही।
मन बुद्धि वाणी पार दोउ, नहिं शेष शारद गति लही॥
धनि भाम श्याल सुप्रीति पर, इन सम युगल येई अहैं।
दोउ भान भूले देह की, अरुझे उरहिं सत सुख लहैं॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से भेंट करते समय प्रभु श्री राम जी महाराज अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे, मुझसे उन दोनो की उपमा का वर्णन नहीं किया जा रहा। वे दोनों ही मन, बुद्धि और वाणी से परे हैं, उनका वर्णन करने में तो श्री शेष जी और श्री सरस्वती जी भी असमर्थ हैं। उन दोनो, श्याल और बहनोई की प्रीति धन्य हैं, उनके समान तो वे दोनों ही हैं। उस समय वे दोनों अपनी शरीर स्मृति भूले हुए एक दूसरे के हृदय से लिपटे, शाश्वत सुख को उसी प्रकार संप्राप्त कर रहे थे।———

जनु जीव ब्रह्म सुमेलि हिय, इक तत्व बनि सरसावहीं।
नहिं सुधिहुँ अपनी कोउ कहँ, आनन्द लहर लहरावहीं॥

लखि देव वरषत सुमनशुभ, जय जय उचारत रस भरे ।
दुन्दुभि बजावत मोद उर, हर्षण हरषि चरणन परे ॥

———जैसे जीव और ब्रह्म एक दूसरे से लिपटे हुए एक तत्व बनकर परमानन्द प्राप्त कर रहे हों। उनमें से किसी को भी अपनी स्मृति नहीं थी, वे दोनों ही प्रेमानन्द की लहरों में समवगाहन कर रहे थे। दोनों कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज को देखकर देवता शुभप्रद पुष्पों की वर्षा करते हैं, रस में निमग्न हुए जय जय उच्चारण करते हैं और आनन्द परिपूर्ण हृदय से दुन्दुभी बजाते हुए हर्षित होकर उनके चरणों में प्रणाम करते हैं।

सो0—पागे प्रीति प्रसार, भूले दूनहु देह सुधि ।
सदगुरु करत सम्हार, प्रीति पगे दुहुँ कुँअर के ॥१६॥

प्रेम में पगे हुए वे दोनों राजकुमार, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज प्रेम परवशता के कारण शरीर स्मृति भूले हुए थे। उस समय प्रेम में डूबे हुए दोनों राज कुमारों की सम्हाल रघुकुल आचार्य श्री बसिष्ठ जी महाराज कर रहे थे।

जागे कछुक काल दोउ प्यारे। मिथिला अवध भूप के बारे ॥
लखत परस्पर प्रिय रस पागे। थम्हत न नेह हृदय अनुरागे ॥

कुछ समयोपरान्त श्री मिथिला व श्री अयोध्या नरेश के दोनों प्रिय कुमार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज जाग्रत हुए तथा प्रिय रसानन्द में निमग्न हुए एक दूसरे को निहारने लगे, उनका परस्पर का प्रेम रोके नहीं रुक रहा था तथा हृदय अनुराग से भरा हुआ था।

लखि लखि कुँअर तनहिं रघुराया। हाय कहत कछु शब्द न आया ॥
निज कर परशि राम जन पालक। अति प्यारेउ मिथिलेश्वर बालक ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के दुर्बल शरीर को देखकर श्री राम जी महाराज हाय—हाय कहने लगे उनके मुख से अन्य शब्द नहीं निकल पा रहे थे। उस समय भक्तजनों का प्रतिपालन करने वाले श्री राम जी महाराज ने मिथिलेश कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अपने कर कमल से प्रियकर स्पर्श करते हुये अत्यधिक प्यार किया।

श्री यश ज्ञान विराग तेज बल। दिये राम प्रमुदित ताही थल ॥
देव सकल रघुपति हिय हेरी। वरषहिं सुमन बजावत भेरी ॥

श्री राम जी महाराज ने तत्क्षण आनन्द पूर्वक कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को उसी स्थल में श्री, यश, ज्ञान, वैराग्य, तेज और बल '(षडेश्वर्य) प्रदान कर दिया। श्री राम जी महाराज के हृदय की उदारता को देखकर देवता पुष्प वर्षाते हैं तथा भेरी (दुन्दुभि) नाद कर रहे हैं।

अति उदार रघुवीर स्वभाऊ। जनहिं बनावैं निज समताऊ ॥
लक्ष्मीनिधि तब धारेउ धीरा। चितवत कृपा सिन्धु रघुवीरा ॥
परम प्रसन्न विरह दुख भूला। दरश प्रीति रँग रहेउ अतूला ॥

हमारे सद्‌गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–रघुकुल प्रवीर श्री राम जी महाराज का स्वभाव अत्यन्त ही उदार है वे अपने भक्त–जनों को अपने समान ही बना देते हैं। तदनन्तर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी धैर्य धारण कर, कृपा के सागर रघुकुल वीर श्री राम जी महाराज को निहारने लगे। श्री राम जी महाराज को अत्यन्त प्रसन्न देखकर, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का विरह जनित दुख भूल गया और वे प्रभु दर्शन व प्रेम के अतुलनीय रंग में रँग गये।

दो0– दरश परश शुचि सेव की, बाढ़त छन छन प्रीति ।
लखतहिं मिलतउ तोष नहिं, लागत प्यास अतीति ॥१७॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में अपने परम प्रियतम श्री राम जी महाराज के दर्शन, स्पर्श, सेवा व प्रीति की कामना प्रतिछण बृद्धिंगत होती जा रही थी, देखने और उनसे मिलने पर भी उन्हें, किंचित संतुष्टि नहीं होती थी वरन् उन्हें उसकी अत्यधिक प्यास लगी रहती थी।

बहुरि कुँअर गे सिय के नेरे। दृग जल बहत भगिनि प्रिय केरे ॥
देखतहिं सिया भ्रात तन काहीं । सहमि परी मुर्छित भुइँ माहीं ॥

पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेमाश्रु बहाते हुए अपनी प्रिय बहन श्री सिया जू के समीप गये। श्री सीता जी अपने भैया जी के शरीर को देखते ही सहम कर मूर्छित हो भूमि में गिर पड़ीं।

कुँअर तुरत लिय अंक उठाई। अश्रु पोंछि चित चेत कराई ॥
हिय लागाइ श्री जनक कुमारा। मेटे विरही जरनि अपारा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने तुरन्त ही श्री सिया जू को गोद में उठाकर उनके अश्रुओं को पोंछ, उनके चित को चैतन्यता प्रदान किया तथा उन्हे हृदय से लगाकर वियोग के असीम ताप को शान्त किया।

प्रेम पगे दोउ भगिनी भाई । कहि न सकैं कछु बुधि बिकलाई ॥
आये जनक तबहिं तेहिं ठामा । उठि तब सीता कीन्ह प्रणामा ॥

प्रेम में पगे हुए दोनो बहन और भाई कुछ भी न बोल सके, उनकी बुद्धि व्याकुल हो गयी थी। तभी उस स्थान में श्री जनक जी महाराज आ गये और श्री सीता जी ने उन्हें उठकर प्रणाम किया।

भूप उठाय हृदय महँ लाये। नयन नीर भरि भरि अन्हवाये ॥
शीष सूँघि आशिष बहु दीनी। कहेव धन्य मैं पुत्रि प्रवीनी ॥

श्री जनक जी महाराज ने श्री सीता जी को उठाकर हृदय से लगा लिया और नेत्रों के जल ‍द्धप्रेमाश्रुओंऋ से उन्हे अवगाहन करा दिया। पुनः श्री महाराज ने उनका शिरोघ्राण कर बहुत सा आशीर्वाद दिया तथा बोले–हे परम प्रवीणा पुत्री! मैं धन्य हो गया।

दो0– भयो कण्ठ अवरोध पुनि, बोलि सके नहिं भूप ।
सियहुँ पगी पितु प्रेम महँ, सो गति अकथ अनूप ॥१८॥

इतना कहते ही उनका गला अवरुद्ध हो गया तब श्री जनक जी महाराज कुछ भी नहीं बोल

सके, श्री सीता जी भी अपने श्री मान् पिता जी के प्रेम में डूब गयीं, उनकी वह अवस्था अनुपमेय और अवर्णनीय है।

बहुरि राम मन माहिं बिचारी। मम दर्शन कातर नर नारी ॥
जन समूह कहि जाय न पारा। शोभित उदधि समान अपारा ॥

पुनः श्री राम जी महाराज नें अपने ह्रदय में विचार किया कि– मेरे दर्शन के लिए आये हुए, मेरे विरह दुख से दुखी स्त्री–पुरुषों का जन समूह असीम समुद्र के समान सुशोभित है जिसका वर्णन कर पार नहीं पाया जा सकता।

अमित रूप धारेउ रघुनाथा। सबहिं भेंटि प्रभु किये सनाथा ॥
दरश परश सबहीं सुख पाये। सबहिं मिले निज निज मन भाये ॥

अतः प्रभु श्री राम जी महाराज ने अपने समान असीमित रूप धारण कर सभी से भेंटकर उन्हें सनाथ कर दिया। उस समय सभी ने प्रभु के दर्शन व स्पर्श का सुख प्राप्त किया तथा प्रभु श्री राम जी महाराज सभी लोगों से उनके मन की रुचि के अनुसार भेंट किये।

पुनि प्रभु गये नारि के टोली। चहहिं सबहिं प्रभु परश अमोली ॥
सीता लखन सहित रघुराई। आवत मिलन देखि सुख पाई ॥

पुनः प्रभु श्री राम जी महाराज स्त्रियों के समाज में गये क्योंकि वे सभी प्रभु श्री राम जी महाराज के अमूल्य स्पर्श की कामना कर रही थीं। श्री सीता जी और श्री लक्ष्मण कुमार जी के साथ श्री राम जी महाराज को मिलने के लिए आते हुए देखकर उन्होंने अतिशय सुख प्राप्त किया।

यथा सवत्सा गाथ लवाई। ह्वै अहीर वश बनहिं सिधाई ॥
हुँकरत साँझ समय सो धाई। मिलि वत्सहिं चाटन ललचाई ॥

जिस प्रकार लवाई (तुरन्त की व्याई हुई) गाय, अहीर (चरवाहे) के विवश हो जंगल चली जाती है परन्तु शाम के समय अपने बछड़े से मिलकर उसे प्यार कर चाटने के लिए ललचाई हुई हुंकार भरकर दौड़ती आती है।–––

दो0– तथा मातु वात्सल्य बश, सुधि बुधि सकल बिसार।
दरशातुर दौरी मिलन, बहत नयन जल धार ॥१९॥

–––उसी प्रकार अम्बा श्री कौशिल्या जी वात्सल्य भाव के वशीभूत हो सभी प्रकार की स्मृति भुलाकर प्रभु श्री राम जी महाराज के दर्शन के लिए आतुर हो नेत्रों से अश्रु धार बहाते हुए दौड़ पड़ीं।

गुरु पत्नी पद प्रभु शिर नाये। आशिष प्यार पाइ सरसाये ॥
भरत मातु पद प्रथमहिं रामा। लखन सहित किय दण्ड प्रणामा ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज ने गुरुपत्नी श्री अरुन्धती जी के चरणों में सिर झुका प्रणाम किया तथा आशीर्वाद और प्यार प्राप्त कर आनन्दित हुए। तदुपरान्त श्री राम जी महाराज ने श्री लक्ष्मण कुमार सहित सर्वप्रथम श्री भरत जी की अम्बा कैकई जी के चरणों में दण्डवत प्रणाम किया।

सकुच सहित सो दीन्ह अशीषा । पकरि उठाई पुनि जगदीशा ॥
लखि सँकोच रघुपति तेहिं केरा । कृपावलोकनि तुरतहिं हेरा ॥

श्री कैकेई जी ने संकोच पूर्वक आशिर्वाद देकर सम्पूर्ण संसार के स्वामी श्री राम जी महाराज को पकड़ कर उठा लिया। उनके संकोच को देखकर श्री राम जी महाराज ने अपनी कृपा दृष्टि से तुरन्त ही श्री कैकेई अम्बा जी की ओर दृष्टिपात किया।

प्रथम प्रेम कैकइ मन माहीं । उमगेव अकथ अनूप अथाहीं ॥
रामहिं हृदय लीन्ह लपटाई । दृग घट वारि ढारि अन्हवाई ॥

तब श्री कैकई जी के मन में पूर्व की भाँति अवर्णनीय अनुपमेय और असीम प्रेम उत्पन्न हो गया और उन्होंने श्री राम जी महाराज को हृदय से लिपटा कर नेत्र कलशों से प्रेमाश्रु बहाते हुए उनका अभिषेक कर दिया।

कहि न जाय ताकर प्रिय प्यारा । लखि सुर वरषहिं सुमन अपारा ॥
कहहिं धन्य लीला प्रभु केरी । जस चाहैं तस करैं हृप्रेरी ॥
जगत रहा कैकइ प्रतिकूला । सो सब भयो आज अनुकूला ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–श्री कैकेई जी के प्रिय प्यार का वर्णन नहीं किया जाता, उसे देखकर सम्पूर्ण देवता असीमित पुष्पों की वरषा कर रहे थे तथा कह रहे थे कि– प्रभु श्री राम जी महाराज की लीला धन्य है, वे जिसके द्वारा जब जैसा चाहते है उसके हृदय में वैसी प्रेरणा देकर वैसा ही करा लेते हैं। सम्पूर्ण संसार जो श्री कैकई जी के विपरीत था, आज वह सभी उनके अनुकूल हो गया।

दो0–प्रेम भरे हिय हेरते, सबहीं कैकेइ ओर ।
यथा प्रथम प्रिय लागती, बिसरे दोष अथोर ॥२०॥

इस समय सभी लोग प्रेम में भरे हुए श्री कैकई अम्बा जी की तरफ देख रहे हैं, वे जिस प्रकार पूर्व में सभी को प्रिय लगती थीं अब वैसे ही प्रिय लग रही हैं, उनके सभी महान दोषों को वे सब भूल गये हैं।

लखनहिं लीन्ही ललकि लगाई । भरत मातु प्रभु प्रीति समाई ॥
पुनि प्रभु लखन समेत अनन्दे । मातु सुमित्रा प्रिय पद बन्दे ॥

श्री कैकई जी ने प्रभु प्रेम में ओत–प्रोत होकर श्री लक्ष्मण कुमार जी को भी लालायित हो हृदय से लगा लिया। पुनः प्रभु श्री राम जी महाराज ने आनन्दपूर्वक श्री लक्ष्मण कुमार जी के सहित अम्बा श्री सुमित्रा जी के प्रिय चरणों की वन्दना की।

लखन मातु रामहिं लै गोदी । प्रेम पगी अतिशय मन मोदी ॥
चूमि बदन बहु आशिष दीनी । श्रवत नयन शुचि भाव प्रवीनी ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी की अम्बा, परम प्रवीणा श्री सुमित्रा जी ने अत्यधिक आनन्दित मन से प्रेम में डूब श्री राम जी महाराज को गोद में लेकर अश्रु पूरित नेत्रों से पवित्र भाव पूर्वक उनके मुख

का चुम्बन करते हुए अत्यधिक आशीशें दीं।

आशिष पाइ सहानुज रामा । मातु कौशिलहिं कीन्ह प्रणामा ॥
भरे सनेह भावमय मइया । पुलकित तन दृग वारिहिं छइया ॥

श्री सुमित्रा जी से आशीर्वाद प्राप्त कर अपने अनुज श्री लक्ष्मण कुमार जी के सहित श्री राम जी महाराज नें अपनी अम्बा श्री कौशिल्या जी को प्रणाम किया। अम्बा श्री कौशिल्या जी भावपूर्वक स्नेह में भरकर, पुलकित शरीर हो नेत्रों से अश्रु बहाते हुए–––

राम लखन लै अंक बिठाई । प्यारति दुहुन देह बिसराई ॥
बन बिछुरे बालक प्रिय पाये । रोम रोम नव नेह लखाये ॥

–––अपने प्रिय पुत्र श्री राम जी महाराज व श्री लखन लाल जी को लेकर गोद में बिठा, दोनों को प्यार करती हुई शरीर स्मृति भूल गयीं। वनवास के कारण बिछुड़े हुए अपने प्रिय बालकों को प्राप्तकर उनके रोम–रोम से नवीन स्नेह प्रकटित होने लगा।

दो0– प्रेम मगन तन सुधि नहीं, कृश शरीर प्रभु मात ।
लाल वत्स प्यारे कहति, पुनि पुनि चूमति गात ॥२१॥

उस समय कृश–काय हुई प्रभु श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी प्रेम मग्न हो गयी थीं, उन्हें शरीर स्मृति नहीं थी तथा वे हे लाल, हे वत्स, हे प्यारे कहती हुई बार–बार उनके शरीर का चुम्बन कर रही थीं।

मातु प्रेम कछु वरणि न जाई । लखि लखि देव सुमन झरि लाई ॥
मिलन समय लखि रघुवर रामा । चले पूँछि करि विनय प्रणामा ॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–अम्बा श्री कौशिल्या जी के प्रेम का किंचित भी वर्णन नहीं किया जा सकता, उसे देख–देखकर देवता पुष्पों की अनवरत की वर्षा कर रहे थे। अनन्तर सभी लोगों से भेंट करने का समय समझ कर श्री राम जी महाराज श्री अम्बा जी से विनयपूर्वक आज्ञा माँग, दण्डवत प्रणाम कर, मिलने हेतु चल दिये।

सासुहिं मिले जाइ रघुराई । अति विनम्र सह लछिमन भाई ॥
देखि सुनैना अति विलपानी । प्रेम प्रवाह न जाय बखानी ॥

श्री राम जी महाराज अपने भ्राता श्री लक्ष्मण कुमार जी के साथ जाकर अपनी सासू श्री सुनैना जी से अत्यन्त विनम्रता पूर्वक भेंट किये। उन्हें देखकर अम्बा श्री सुनैना जी अत्यधिक विलाप करने लगीं, उनके प्रेम प्रवाह का वर्णन नहीं किया जा सकता।

आतुर लिय निज हृदय लगाई । कीन्ह प्यार दृग वारि बहाई ॥
कुँअर नारि तेहिं अवसर आई । राम चरण गिर गई झमाई ॥

अम्बा श्री सुनयना जी ने आतुरता पूर्वक श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार जी को अपने हृदय से लगा लिया तथा नेत्रों से अश्रु बहाते हुए प्यार किया। उसी समय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की पत्नी श्री सिद्धि कुँअरि जी आ गई और श्री राम जी महाराज के चरणों में मूर्छित

हो गिर पड़ीं।

मातु कही नहिं चीन्हेउ रामा। जानहु सिद्धि कुँअरि सुखधामा ॥
महा कृशित तन अस्थि सुचरमा। जनु कंकाल स्वास युत भरमा ॥

तब अम्बा श्री सुनैना जी ने कहा– हे समस्त सुखों के धाम श्री राम जी महाराज! क्या आपने इन्हें नहीं पहचाना? ! आप जान लीजिये कि ये श्री सिद्धि कुँअरि हैं। इनके अत्यन्त दुर्बल शरीर जिसमें मात्र हड्डियाँ और चर्म ही शेष है, को देखकर कंकाल में स्वाँस लेने का संदेह हो रहा है।

दो0– देखि दशा निज विरह की, रघुपति राम कृपाल ।
सिद्धि शीष परशत करहिं, दोउ दृग बहत विशाल ॥२२॥

रघुकुल के स्वामी, परम कृपालु श्री राम जी महाराज नें अपने वियोग में हुई उनकी स्थिति को देखकर श्री सिद्धि कुँअरि जी के शिर को अपने कर कमल से स्पर्श किया और उनके दोनों विशाल नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे।

कहि प्रिय बचन सचेत कराई। दया दृष्टि हेरी हरषाई ॥
परम प्रीति लखि तेहिं की रामा। लिये बसाय सदा हिय धामा ॥

श्री राम जी महाराज ने प्रेमपूर्ण वाणी से उन्हें चैतन्य कराया और हर्ष में भरकर अपनी कृपा दृष्टि का निक्षेप किया। श्री सिद्धि कुँअरि जी की अत्यधिक प्रीति को देखकर श्री राम जी महाराज ने उन्हें सदैव के लिए अपने हृदय प्रदेश में निवास दे दिया।

बहुरि राम करि रूप अनेका। मिले नारिगन सहित विवेका ॥
छन महँ मिलि सबहिन सुखदीने। लखा न मर्म कोउ मन लीने ॥

पुनः श्री राम जी महाराज ने अपने अनेक रूप बनाकर यथोचित विधि से, स्त्री समाज से भेट की। वे एक ही क्षण में सभी से मिलकर सभी को सुख प्रदान कर दिये। श्री राम जी महाराज में मन लीन होने से कोई भी उनके रहस्य को नहीं जान सका।

सियहुँ प्रथम गुरु पतिनिहिं भेंटी। पाइ प्यार प्रिय प्रेम लपेटी ॥
जाय मिली सब सासुन काहीं। सहित सनेह भाव उर माहीं ॥

श्री सीता जी ने भी सर्वप्रथम गुरुपत्नी श्री अरुन्धती जी से भेंट की और उनके प्रिय प्यार को प्राप्तकर प्रेम में डूब गयीं। पुनः श्री सीता जी नें अपनी सभी सासुओं से प्रेम और भाव परिपूर्ण हृदय से भेंट की।

विविध वेष धरि राज किशोरी। सबहिन बन्दी प्रेम विभोरी ॥
अति विनम्र लखि भाव सुशीला। बेसुधि भईं सासु हिय मीला ॥
प्रेम विभोर ढार सब आँसू। प्यार करी बहु विधि सब सासू ॥

अपने अनेक रूप धारण कर प्रेम विभोर हो राज किशोरी श्री सीता जी ने सभी की वन्दना की। उनके अत्यन्त विनम्रता परिपूर्ण सुन्दर शील युक्त भाव को देखकर सासुएँ हृदय से लिपटा कर

स्मृतिहीन हो गयीं। सभी सासुओं ने प्रेम विभोर हो अश्रु बहाते हुए उन्हें बहुत प्रकार से प्यार किया।

दो0– बहुरि सीय निज मातु पहँ, गई विरह रस छाय ।
देखि जननि आतुर विकल, लीन्ह ललकि लपटाय ॥२३॥

पुनः श्री सीता जी विरह रस में डूबी हुई अपनी अम्बा श्री सुनैना जी के समीप गयीं, उन्हें अपने विरह में व्याकुल व आतुर हुई देखकर श्री सीता जी ने शीघ्रतापूर्वक लालायित हो, अपने हृदय से लिपटा लिया।

मिलत सियहिं जननी सुधि भूली ।गिरी भूमि जिमि लता अमूली ॥
कछुक काल महँ तन सुधि लाई ।सीतहिं लीन्ही हृदय लगाई ॥

श्री सीता जी के भेंट करते ही अम्बा श्री सुनैना जी स्मृति भूलकर बिना जड़ की लता के समान भूमि में गिर पड़ीं। कुछ समय में अपने शरीर की स्मृति धारण करे तब उन्होने श्री सीता जी को अपने हृदय से लगा लिया।

चूमत बदन परशि मृदु गाता । अति सनेह कातरि सिय माता ॥
सिद्धिहिं मिली बहुरि रस पागी । धनि धनि सिया भाभि अनुरागी ॥

अपने पुत्री के विरह में दुखी अम्बा श्री सुनैना जी अत्यधिक प्रेम के कारण श्री सीता जी के शरीर का स्पर्श करते हुए मुख चुम्बन करती हैं। तदनन्तर रस में पगी हुई श्री सीता जी ने अपनी प्रिय भाभी श्री सिद्धि कुँअरि जी से भेंट की। उनका अपनी भाभी जी प्रति प्रेम धन्य है।

भाभी ननद सनेह सम्हारा । कविहिं अगम वरणत रस धारा ॥
दूनहुँ भूलि गई सब आपा । इक एकहिं निज निज हिय थापा ॥

उन दोनों भाभी और ननंद श्री सिद्धि कुँअरि जी व श्री सीता जी के प्रेम का वर्णन कवियों के लिये अगम्य तथा रसानन्द की धारा प्रवाहित करने वाला है। वे दोनों अपने अस्तित्व को भूल गयी थीं और एक दूसरे को अपने अपने हृदय में सदा के लिये बसा ली थीं।

पुनि लहि धीर सिया बहु नारिन । छन महँ मिली सुयोग सँभारिन ॥
सिय माया जानी नहिं कोई । भई सुखी सब प्रीति समोई ॥

पुनः धैर्य धारणकर श्री सीता जी ने, मिलने आयी हुई सभी स्त्रियों से, योग का आश्रय ग्रहण कर, एक ही क्षण में, प्रेम पूर्वक भेंट कर ली। श्री सिया जू की इस माया को किसी ने नहीं जाना और वे सभी प्रेम में समायी हुई सुखी हो गयीं।

दो0– बहुरि सिया अवसर लही, गुरु कहँ कीन्ह प्रणाम ।
लहि अशीष मन मुदित ह्वै, शोभी सदा अकाम ॥२४॥

पुनः समय प्राप्त कर, नित्य निष्काम मना श्री सीता जी ने गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी को प्रणाम किया तथा उनके आशीर्वाद को प्राप्त कर प्रसन्नमना सुशोभित होने लगीं।

राम लखन सिय मिलि यहि भाँती । दीन्हे सब कहँ आत्म सुशान्ती ॥
जनक पाइ दरशन सिय रामा । भये स्वस्थ मन पूरण कामा ॥

इस प्रकार सभी लोगों से भेंट (मिलन) कर श्री राम जी महाराज, श्री लक्ष्मण कुमार जी और श्री सीता जी ने सभी को आत्मशान्ति प्रदान की। श्री सीताराम जी के दर्शन प्राप्त कर श्री जनक जी महाराज स्वस्थ मन व पूर्ण काम हो गये।

मंगल हेतु राम वैदेही । किय गोदान करोड़ सनेही ॥
सविधि सवत्सा भूषित शोभी । अति दुधार सूधी मन लोभी ॥

उन्होंने श्री सीताराम जी की मंगलकामना हेतु प्रेम पूर्वक एक करोड़ बछड़ों से युक्त, आभूषणों से सुसज्जित, सभी से प्रकार से शोभनीय, अत्यधिक दूध देने वाली, सीधी तथा मन को लुभाने वाली गायों का दान किया।

औरहु द्रव्य अनेक विधाना । हय गय रथ मणि बसन समाना ॥
विप्रन कहँ दीन्हे हरषाई । सोउ सुभाशिष दिये सुहाई ॥

श्री जनक जी महाराज ने हर्षित होकर और भी अनेक प्रकार के द्रव्य, घोड़े, हाथी, रथ, मणियाँ, वस्त्र और अन्य सामग्री आदि ब्राह्मणों को दी जिन्हें पाकर संतुष्ट हो ब्राह्मणों ने भी सुन्दर आशीर्वाद दिया।

जय रघुवीर समर्थ महाना । नव नव मंगल हो कल्याणा ॥
सुनि सुख लहे सुभक्तन वृन्दा । वरषत सुमन देव मन नन्दा ॥

महान सामर्थ्यशाली रघुकुल के वीर श्री राम जी महाराज का नित्य नवीन–नवीन मंगल और कल्याण हो। इस प्रकार की आशीष सुनकर सभी भक्तजन सुख प्राप्त किये तथा आनन्दित हो देवताओं ने पुष्पों की वरषा की।

दो0– जय जय उचरत मोद मन, हरषि बजाय निसान ।
राम सिया मंगल पढ़त, चढ़े अकाश विमान ॥२५॥

देवताओं नें आनन्दित मन हर्षपूर्वक नगाड़े बजाकर जय जयकार किया तथा वे विमानों में चढ़े हुए आकाश से श्री सीताराम जी का मंगलानुशासन करने लगे।

मास पारायण तेइसवाँ विश्राम

बहुरि भरत रघुपति पहँ आये । धरे पादुका शीश सुहाये ॥
पद शिर नाय जोर जुग पानी । नयन सजल बोले मृदु बानी ॥

पुनः श्री भरत जी अपने शिर में प्रभु श्री राम जी महाराज की सुन्दर चरण पादुकायें धारण किये हुए श्री राम जी महाराज के समीप आये और उनके चरणों में शिर झुका दोनों हाथ जोड़कर अश्रु पूरित नेत्रों से कोमल वचन बोले।–––

नाथ प्रभाव पाँवरी केरे। तव आयसु पाली हिय हेरे॥
सब प्रकार असमर्थ अयोगू। कृपा रावरी मानि नियोगू॥

———हे नाथ! आपकी इन श्री चरण पादुकाओं के प्रभाव का हृदय में विचार कर मैंने आपकी आज्ञा का पालन किया। यद्यपि मैं सभी प्रकार से असमर्थ और अयोग्य हूँ, तथापि आपकी कृपा समझ कर ही मैंने,———

अवधि पर्यन्त अवध रखवारी। कीन्ही प्रभु रुचि सेव विचारी॥
तव प्रभाव दस गुण तब तेरे। राज कोष बाढ़ेव सुख सेरे॥

आपके द्वारा दी हुई समयावधि तक आपकी इच्छा और सेवा समझ कर श्री अयोध्यापुरी की रखवाली की है। हे नाथ! आपके प्रभाव से सुख पूर्वक राज्य का कोष उस समय से दस गुनी बृद्धि को प्राप्त हुआ है।

सब प्रकार सब राज सुअंगा। दस गुण बढ़ेउ प्रजा रस रंगा॥
अवध स्वस्थ सब भाँति कृपाला। तुम्हरी कृपा प्रणत प्रिय पाला॥

सभी प्रकार से राज्य के भूमि, सैन्य व वाहन आदि सभी सुन्दर अंगों में दस गुनी बृद्धि हो गयी है। हे परम कृपालु आश्रृत जनों का परिपालन करने वाले प्रिय श्री राम जी महाराज! आपकी कृपा से श्री अयोध्यापुरी की प्रजा आनन्द परिपूरित है तथा सभी प्रकार से पूर्ण स्वस्थ है।

दो0— चलकर देखिय सबहि कहँ, भली भाँति अपनाय।
करिय कृपा अब दास पर, जानत सब रघुराय॥२६॥

हे रघुकुल नरेश ! आप सभी कुछ चलकर देख लीजिए तथा उसे भली प्रकार से अपना कर, अब अपने इस सेवक पर कृपा कीजिये, आप तो मेरे हृदय की सभी कुछ जानते ही हैं।

अस कहि भरत बहुरि शिर नाई। राम पदनि पाँवरि पहिनाई॥
सुरतरु फूल देव बहु वरषे। दुन्दुभि हनत प्रेम उत्कर्षे॥

ऐसा कह कर श्री भरत जी ने पुनः सिर झुका प्रणाम कर श्री राम जी महाराज के चरणों में उन श्री चरण पादुकाओं को धारण करा दिया। उस समय देवता प्रेमोत्कर्ष के कारण देववृक्ष के पुष्पों की विपुल वर्षा कर दुन्दुभी नाद किये।

मिथिला अवध समाज सुहाई। देखि महा आनँद रस छाई॥
भरत विनय सुनि गुरू निदेशा। कीन्ह राम मन अवध प्रवेशा॥

श्री मिथिला पुरी और श्री अयोध्यापुरी का सुन्दर समाज यह चरित्र देखकर महान आनन्द और रस में मग्न हो गया। श्री भरत जी की प्रार्थना को श्रवणकर तथा श्री गुरुदेव जी की आज्ञा से श्री राम जी महाराज ने श्री अयोध्यापुरी में प्रवेश करने हेतु अपनी मनः इच्छा की।

पुष्पक यान समाज चढ़ाये। मिथिला अवध नारि नर लाये॥
यथा योग आसन सब काहू। बैठी हरष समाज उमाहू॥

अनन्तर श्री राम जी महाराज ने श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी के सुन्दर स्त्री–पुरुषों के सम्पूर्ण समाज को पुष्पक विमान में चढ़ा लिया तथा वह सम्पूर्ण समाज यथोचित आसन में हर्ष और आनन्द पूर्वक बैठ गया।

सुभग श्रेष्ठ आसन शुभ साजा। गुरू अरुंधति तहाँ विराजा॥
हनुमदादि सब बानर काहीं। मेले प्रभु गुरु चरणन माहीं॥

पुष्पक विमान में एक सुन्दर व श्रेष्ठ आसन को सुसज्जित कर गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी और गुरु पत्नी श्री अरुन्धती जी को वहाँ विराज दिया गया तब श्री हनुमान जी आदि सभी वानर सखाओं को प्रभु श्री राम जी महाराज ने श्री गुरुदेव जी के चरणों में प्रणाम करवाया।

पाइ सुआशिष सबहिं अनंदे। राम मातु पद पुनि सब बन्दे॥
पाइ लखन सम मातन प्यारा। हरषे बानर वृन्द अपारा॥
जनक कुँअर भरतादिक भ्राता। सचिव साधु सब विप्र जमाता॥

उन सभी वानर सखागणों ने श्री गुरुदेव जी का सुन्दर आशीर्वाद प्राप्त किया। पुनः सभी वानर सखाओं ने श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी के चरणों की वन्दना की और सभी माताओं के द्वारा श्री लक्ष्मण कुमार जी के समान प्यार प्राप्त कर समग्र वानर समूह असीम हर्ष को प्राप्त हुआ। श्री जनक जी महाराज, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, श्री भरत जी आदि भ्राताओं, मंत्रियों, साधुओं तथा विप्र समाज के सहित,———

दो0– युग रनिवास चढ़ाय प्रभु, सीता लखन समेत।
प्रमुदित चढ़ि प्रिय पुष्पकहिं, गवने गृह सुख देत॥२७॥

———श्री मिथिलापुरी व श्री अयोध्यापुरी दोनों के रनिवास को चढ़ाकर सभी लोगों को सुख देते हुए प्रभु श्री राम जी महाराज श्री सीता जी और श्री लक्ष्मण कुमार जी सहित प्रिय पुष्पक विमान में चढ़कर अपने भवन श्री अयोध्या पुरी को चल दिये।

प्रभु रुख पाइ प्रहर्षि विमाना। कौशलपुर गवनेव सुख साना॥
अवधपुरी ऊपर अति राजत। मधुर मधुर करि शब्दहिं भ्राजत॥

प्रभु श्री राम जी महाराज की इच्छा जानकर, सुख में सराबोर हुआ पुष्पक विमान, हर्षपूर्वक श्री कौशल पुरी की ओर प्रस्थान किया तथा वह श्री अयोध्यापुरी के ऊपर आकाश में मधुर–मधुर ध्वनि करता हुआ अत्यधिक सुशोभित होने लगा।

अवसर जानि सिद्ध सब आये। गगनोपरि प्रभु प्रेम समाये॥
नारद व्यास कपिल सनकादी। शुक सह कहहिं कीर्ति अहलादी॥

श्री राम जी महाराज के अयोध्या आगमन का सुन्दर समय समझ कर प्रभु प्रेम में डूबे हुए सभी सिद्धगण श्री अयोध्या पुरी के ऊपर आकाश में आ गये और श्री नारद जी, श्री व्यास जी, श्री कपिल जी, श्री सनकादिक कुमार और श्री शुकदेव जी सहित सभी सिद्धगण, आह्लाद में भर कर प्रभु श्री राम जी महाराज की महान कीर्ति का गायन करने लगे।

सुर किन्नर गन्धर्व विमाना । छाय रहे गगनहिं बहुताना ॥
नाचहिं गावहिं विविध अपसरा । चढ़ी विमानहिं रूप रसकरा ॥

उस समय देवता, किन्नर तथा गन्धर्वो के बहुत से विमान आकाश मण्डल में छाये हुये थे तथा विमानों में चढ़ी हुई भांति–भांति की रूपवान व रस–प्रदायिनी अप्सरायें नाच और गा रही थीं।

सुरतरु सुमन वरषि सुर भाये । अवधपुरी घर मगहिं पटाये ॥
वरषि सुगंध रंग रस छाई । किय आवन उत्सव सुरसाई ॥

देव वृन्द भाव पूर्वक देव–वृक्ष (कल्प वृक्ष) के पुष्पों की वर्षा कर श्री अयोध्यापुरी के भवनों व मार्गो को ढँक दिये थे और सुन्दर रसानन्द में समाये हुए इत्र व रंग की वर्षा कर देवताओं के स्वामी श्री राम जी महाराज के आगमन का उत्सव कर रहे थे।

दो0– राजकोट बाहर सुभग, रत्न जटित थल जान ।
प्रभु आयसु लहि मुदित मन, पुष्पक उतरि थिरान ॥२८॥

प्रभु श्री राम जी महाराज की आज्ञा प्राप्त कर श्री अयोध्या पुरी के परकोटे के बाहर सुन्दर रत्न जटित स्थल में, आनन्दित मन से पुष्पक विमान उतर कर स्थिर हो गया।

उतरे प्रभु सिय लखन समेता । दुहुँ समाज अति हर्षित चेता ॥
सबहिं जोरि कर प्रभु शिर नाये । गृह गवनन हित आयसु पाये ॥

तब श्री सीता जी, श्री लक्ष्मण कुमार जी व दोनों पुरियों के समाज सहित अत्यन्त हर्षित चित्त प्रभु श्री राम जी महाराज पुष्पक विमान से उतर पड़े और प्रभु नें सभी लोगों को हाथ जोड़, शिर झुका प्रणाम कर अपने भवन में प्रवेश करने की आज्ञा प्राप्त की।

करि प्रणाम सदगुरु कहँ रामा । पाइ सुभाशिष ललित ललामा ॥
कैकइ भवन प्रथम प्रभु गवने । भ्रातन सहित सिया दुख दवने ॥

पुनः श्री राम जी महाराज ने रघुकुल आचार्य श्री बसिष्ठ जी को प्रणाम किया एवम् सुन्दर आशीर्वाद प्राप्त कर अपने भ्राताओं तथा श्री सिया जी के सहित सर्व प्रथम दुखों का दमन करने वाले श्री राम जी महाराज भगवती श्री कैकई जी के महल गये।

आरति कीन्ह भरत महतारी । प्रथम प्रेम पुलकित तन भारी ॥
सुभग सिंहासन प्रभु बैठाई । सहित सिया अरु तीनहु भाई ॥

श्री भरत जी की अम्बा कैकेई जी ने पूर्व की भाँति अत्यन्त प्रेम पुलकित शरीर से श्री राम जी महाराज की आरती उतारी तथा सुन्दर सिंहासन में श्री सीता जी और तीनों भ्राताओं सहित प्रभु श्री राम जी महाराज को बैठाया।

हाथ जोरि रोवत अकुलाई । कहति कृतघ्ना मैं दुखदाई ॥
राम सिया सम पूत पतोहू । बनहिं निकारी हिय करि कोहू ॥

पुनः अपने हाथ जोड़कर व्याकुल हो रुदन करते हुए वे बोलीं– हाय! मैं कितनी कृतघ्ना और

दुखदायिनी हूँ। मैंने श्री राम जी महाराज के समान पुत्र और श्री सीता जी जैसी पुत्रवधू को अपने हृदय में क्रोध कर, राजमहल से वन में निकाल दिया था।

दो0– दीन्ही चौदह वर्ष अति, दारुण दुख गंभीर ।
प्रभु विमुखी नहि ठौर कहुँ, नरक घृणा कर वीर ॥२९॥

मैंने चौदह वर्षो तक आपको अत्यन्त कठोर और गम्भीर दुख दिया है। प्रभु श्री राम जी महाराज से प्रतिकूल मुझ अभागिनी को कहीं भी स्थान नहीं है, मुझे देखकर तो नरक भी घृणा करता है।

हौं पति घातिनि पर दुखकारी । त्रिभुवन उरहिं जरावन वारी ॥
शान्ति ठौर नहिं कतहुँ दिखाई । जगत भयो पावक की नाई ॥

मैं पतिघातिनी, दूसरों को दुख प्रदान करने वाली तथा तीनों लोकों के जीवों के हृदय को जलाने वाली हूँ। मुझे कहीं भी शान्तिप्रद स्थान नहीं दीख रहा। मेरे लिए तो यह संसार अग्नि के समान दाहक (जलाने वाला ही) हो गया है।

तुमहिं छोंड़ि मोरे गति नाहीं । बार बार देखेउँ मन माहीं ॥
भरतहुँ त्यागि दई मोहिं रामा । जानि अघी नहि दीन्हेउ ठामा ॥

मैंने मन में बारम्बार विचार कर देख लिया है कि– मात्र आपको छोड़कर मेरी कोई भी गति नहीं है। हे श्री राम जी महाराज! मुझे तो, पापी समझ कर श्री भरत जी ने भी त्याग दिया है और अपने हृदय में मातृवत स्थान नहीं दिया।

मोरे शरण तात तव चरणा । और कछू नहिं मन महँ वरणा ॥
सियहिं विलोकि नयन जल ढारी । रक्षहु कहत भरत महतारी ॥

हे तात श्री राम जी! अब मेरे रक्षक एक मात्र आपके चरण ही है तथा अन्य साधनों को तो मैं मन से भी नहीं चाहती। श्री सीता जी की ओर देखकर नेत्रों से अश्रु बहाती हुई श्री भरत जी की अम्बा जी कहती हैं कि–हे पुत्रवधू सीते! आप मेरी रक्षा कीजिये।

अस कहि राम चरण लपटानी । विकल मनहुँ मछली बिनु पानी ॥
मातु उठाय राम मन मोदी । बैठ गये तुरतहिं तेहिं गोदी ॥

ऐसा कह कर श्री कैकेई अम्बा जी जल विहीन मछली के समान व्याकुल हो श्री राम जी महाराज के चरणों में लिपट गयीं। उस समय अम्बा श्री कैकई जी को उठाकर प्रसन्न–मना प्रभु श्री राम जी महाराज शीघ्र ही उनकी गोद में बैठ गये।

दो0– पोंछत कर सों नयन जल, मातहिं धीरज देत ।
त्यागहुँ संशय शोक सब, मैं तुम्हरो बिन हेत ॥३०॥

प्रभु श्री राम जी महाराज अपने कर कमल से उनके नेत्रों के अश्रुओं को पोंछते हुए अम्बा श्री कैकई जी को धैर्य धारण कराते हैं कि– आप सभी प्रकार के संशय और दुखों को त्याग दीजिए

क्योंकि मैं अकारण ही आपका अपना पुत्र हूँ।

कबहुँ न भाषण कीन्ह असत्या । सो सब जानहु श्रीमति वत्या ॥
मोहि परम प्रिय हौ महतारी । यथा कौशिला सुखद हमारी ॥

हे श्री अम्बा जी! मैंने कभी भी असत्य सम्भाषण नहीं किया, इस बात को तो आप जानती ही हैं। हे माता जी! आप मुझे उसी प्रकार परम प्रिय हैं जिस प्रकार सुख प्रदायिनी हमारी अम्बा श्री कौशिल्या जी हमे प्रिय हैं।

पुनि सत कहौं तासु दस गूना । गौरव तोर ह्रदय मम पूना ॥
बनहिं भेज सुर मुनि सुख दीनी । हरण हेतु भू भार प्रवीनी ॥

पुनः मैं सत्य–सत्य कह रहा हूँ कि मेरे ह्रदय में आपके प्रति उनसे भी दस गुना अधिक पूर्ण सम्मान है। हे परम प्रवीणा अम्बे! सुनिये, आपने मुझे वन भेजकर, देवताओं और मुनियों को सुख प्रदान किया है तथा भूमि के भार को हरण करवाने की आप हेतु बनी हैं।

निशिचर निकर विनासन वारी । वेद धर्म नित थापन कारी ॥
सुख समृद्धि यश स्वर्ग सुदात्री । मुक्ति हेतु तुम भई विमात्री ॥

हे श्री अम्बा जी! आप राक्षस समूहों के विनाश, संसार में नित्य वेद और धर्म की स्थापना, जीवों को सुख समृद्धि, कीर्ति, स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने की हेतु बनी हैं।

सुर नर मुनि सब अभय समाजा । केवल कृपा तुम्हारेहिं भ्राजा ॥
और मातु महँ नहि यह शक्ती । यथा करी तुम मम प्रिय भक्ती ॥

देवता, मनुष्य और मुनि वृन्दों का समाज, मात्र आपकी कृपा से ही अभय होकर सुशोभित हो रहा है। हे श्री अम्बा जी! अन्य माताओं में यह सामर्थ्य नहीं है जैसा कि– सांसारिक निन्दा, घृणा व अपयश सहकर आपने मेरा प्रिय कार्य किया है।

दो0– मम मुख हर्षण हेतु तुम, कीन्ही जस आचार ।
करि न सकेव कोउ आज लौं, मोर कहावन हार ॥३१॥

हे श्री अम्बा जी! मेरे मुख के उल्लास हेतु, आपने जैसा आचरण किया है, वैसा आज तक मेरे अपने कहलाने वाले कोई भी नहीं कर सके।

निज शिर अयश धारि हे माता । कीन्ह काज मम जानत धाता ॥
मोरे हित तव वर स्थाना । कहहुँ त्रिसत्य बचन सुनु काना ॥

हे श्री अम्बा जी! आपने अपने शिर में महान अपकीर्ति धारण कर भी मेरे कार्य का सम्पादन किया है, जिस रहस्य को स्वयम् श्री ब्रह्मा जी जानते हैं। हे अम्बा जी! सुनिये, मैं त्रिसत्य कह रहा हूँ कि– मेरे ह्रदय में आपके प्रति अत्यन्त ही श्रेष्ठ स्थान है।

मम इच्छा तोहि प्रेरेउ मइया । बनहिं पठाई करि छल छइया ॥
ताते अहौं अमित अपराधी । दीन्ह्यो तुम कहँ अयश सुसाधी ॥

हे माता जी! मेरी इच्छा–शक्ति ने ही आपको छलपूर्वक प्रेरित किया था तभी आपने मुझे वन भेजा था। इसलिए मैं ही आपका महान अपराधी हूँ, जो आपके लिये कलंक का उपाय किया हूँ।

परम धाम भूपहुँ किय वासा । सब कर हेतु भयो यह दासा ॥
मिथिला अवध शोक संतापा । भरत कुँअर कहँ दुख मैं थापा ॥

अपने श्री मान् पिता चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के परम धाम में निवास करने का कारण भी मात्र यह दास ही है, श्री मिथिला व श्री अयोध्यापुरी के शोक और दुखों का हेतु भी मैं ही हूँ तथा अपने भैया श्री भरत जी व कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को मैंने ही असहनीय दुख प्रदान किया है।

विधवापन कर हेतु सुमाता । मैं इक अहहुँ जान सब बाता ॥
सो अपराध छमहु महतारी । प्रौढहुँ मातहिं शिशु निरधारी ॥

हे श्री अम्बा जी! आप लोगों के वैधव्य का भी एकमात्र कारण मैं ही हूँ। आप मेरी इन सभी बातों को सत्य जान लीजिये। अतः हे अम्बे! आप मुझे शिशु (अज्ञानी) समझकर, मेरे अपराधों को क्षमा कर दीजिये क्योंकि ऐसा माना गया है कि प्रौढ़ पुत्र भी माता के लिए शिशु ही होता है।

दो0– अस कहि रघुपति मातु पद, गिरे नयन जल छाय ।
चरण पखारेउ आँसु सों, सरल सरस रघुराय ॥३२॥

ऐसा कह कर सरल स्वभाव, रघुकुल के स्वामी, रसमय श्री राम जी महाराज नेत्रों से अश्रु बहाते हुए अम्बा श्री कैकई जी के चरणों में गिर पड़े तथा उनके चरणों को अपने अश्रुओं से प्रच्छालित कर दिये।

राम कहा मोहिं लागी भूँखा । चाहत प्रथम सु प्रेम पियूषा ॥
सोइ पवाय कृपा करि देहू । पुष्ट होय सेवौं सत नेहू ॥

पुनः श्री राम जी महाराज ने कहा कि हे श्री अम्बा जी! मुझे अत्यधिक भूख लगी है और मैं पूर्व की भाँति आपका सुन्दर प्रेमामृत पान करना चाहता हूँ। अतः आप कृपा कर मुझे वह प्रेमामृत पिला दें जिससे मैं पुष्ट (मजबूत) हो कर सच्चे स्नेह पूर्वक आपकी सेवा कर सकूँ।

संशय शोक सकल तव गयऊ । कैकइ भ्रम दुख दूरहिं भयऊ ॥
प्रभुहिं उठाय गोद लै लीन्ही । शीश सूँघि पुनि चुम्बन कीन्ही ॥

उस समय अम्बा श्री कैकई जी के सभी संदेह, शोक और भ्रम दूर हो गये तब उन्होंने प्रभु श्री राम जी महाराज को उठाकर गोद में ले लिया और उनका शिर सूँघकर पुनः मुख चुम्बन करने लगीं।

कीन्हेउ सिय कर बहु विधि प्यारा । लखनहिं दीन्हेउ विविध दुलारा ॥
भरतहिं कहा राम समुझाई । प्रथम दृष्टि देखहु निज माई ॥

अनन्तर अम्बा श्री कैकेई जी ने श्री सीता जी को बहुत प्रकार से प्यार कर श्री लक्ष्मण कुमार जी का अतिशय दुलार किया। तदनन्तर प्रभु श्री राम जी महाराज ने श्री भरत जी से समझाकर कहा कि– हे प्रिय भ्रात श्री भरत जी! आप अपनी अम्बा जी को पूर्ववत प्रेम पूर्वक दृष्टि (मातृ–भाव) से ही

देखिये।

मम सुख हेतु मानि मम बाता । कैकइ चरण गिरहु तुम ताता ॥
प्रभु रजाय रुचि गुनि मन माहीं । कहत मातु नायो शिर काहीं ।।

हे तात भरत! आप मेरे सुख के लिए, मेरी आज्ञा स्वीकार कर अम्बा श्री कैकई जी के चरणों में प्रणाम कीजिये। तब अपने प्रभु श्री राम जी महाराज के आज्ञा पूर्ण वचनो को श्रवण कर श्री भरत जी ने मन में प्रभु श्री राम जी महाराज की आज्ञा और इच्छा जानकर, "माता" कहते हुए श्री कैकेई जी को शिर झुका प्रणाम किया।

दो0– भरतहिं करत प्रणाम लखि, रिपुहन सह सो मात ।
शीश सूँघि आशिष दई, होहु राम प्रिय तात ॥३३॥

श्री शत्रुघ्न कुमार जी के सहित श्री भरत जी को प्रणाम करते देखकर अम्बा श्री कैकई जी नें उन्हे शिर सूँघकर आशीर्वाद दिया कि– हे तात! आप श्री राम जी महाराज के प्रिय बने रहें।

राम सीय रुचि रखि लव लाई । सेवहु सरस सनेह समाई ॥
अस कहि पकरि भरत कर काहीं । सौंपी हरषि राम पद माहीं ॥

आप श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी की इच्छा को ध्यान में रखते हुए उनमे अपने चित्त को लगाकर, रसपूर्ण स्नेह में समाये हुए उनकी सेवा कीजिये। ऐसा कह, अम्बा श्री कैकेई जी ने श्री भरत जी का हाथ पकड़कर, हर्षपूर्वक उन्हें श्री राम जी महाराज के चरणों में सौंप दिया।

बोली सुनहु सिया रघुवीरा । अरपित मोर सहित मैं धीरा ॥
बोले राम स्वयं तैं मोरी । सुत सह तोहि पर प्रीति अथोरी ॥

पुनः उन्होने कहा– हे श्री सिया जू और परम धीर–वीर श्री राम जी महाराज! मेरे सहित मेरा सर्वस्व आपको समर्पित है। श्री केकई जी के वचनों को श्रवण कर श्री राम जी महाराज ने कहा– हे श्री अम्बा जी! आप तो स्वयं ही हमारी हैं तथा आपके पुत्र श्री भरत जी सहित आपके प्रति, मेरे हृदय में महान प्रीति है।

सबहिं भाँति हिय शोच बिहाई। सुखी रहहु बनि मोहिं सुखदाई ॥
यहि प्रकार बहु राम प्रबोधी। माँगी आयसु निर्मल सोधी ॥

आप सभी प्रकार से अपने हृदय की चिन्ताएँ छोड़ कर, मुझे सुख प्रदान करती हुई सुखी बनी रहें। प्रभु श्री राम जी महाराज ने इस प्रकार श्री कैकेई जी को विविध प्रकार से समझाया तथा शान्त्वना दे, उनके हृदय के परिताप को दूर कर, निर्मल बना, अपन भवन जाने की आज्ञा माँगी।

आज्ञा भवन जान कहँ दीनी। प्रेम पगी कैकई प्रवीनी ॥
करि प्रसन्न मातहिं सिर नाई । चले हृदय हरषित रघुराई ॥

प्रेम परिप्लुता परम प्रवीणा श्री कैकई जी ने प्रभु श्री राम जी महाराज को महल में जाने की आज्ञा प्रदान की और अम्बा श्री कैकई जी को शिर झुका प्रणाम कर, श्री राम जी महाराज हर्षित हृदय चल दिये।

दो0– गये सुमित्रा सदन प्रभु, सीता लखन सुसाथ ।
तीनहु प्रमुदित प्रेम पगि, तेहिं पद नायो माथ ॥३४॥

तदुपरान्त अपनी प्रिया श्री सीता जी व अनुज श्री लक्ष्मण कुमार जी सहित प्रभु श्री राम जी महाराज अम्बा श्री सुमित्रा जी के सदन गये तथा तीनों ने आनन्द पूर्वक प्रेम में सराबोर होकर उनके चरणों में अपना शीश झुका प्रणाम किया।

लखन मातु रामहिं उर लाई । दीन्ही आशिष सुखद सुहाई ॥
सियहिं कहेउ जब लौं जग तारी । सरयू गंग जमुन की धारी ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी की अम्बा जी ने श्री राम जी महाराज को हृदय से लगाकर सुन्दर और सुखदायक आशीष दी। श्री सीता जी को आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा कि– हे पुत्रवधू श्री सिया जू! इस संसार में जब तक सम्पूर्ण संसार का उद्धार करने वाली श्री सरयू जी, श्री गंगा जी तथा श्री यमुना जी की धारायें प्रवहमान हैं।–––

अचल रहे अहिवात तुम्हारा । कीरति सुख कर्तव्य उदारा ॥
जानि राम प्रिय लखनहिं भेंटी । होहु राम प्रिय कहेउ अमेटी ॥

–––तब तक आपका सौभाग्य, यश, सुख, कर्तव्य और औदार्य बना रहे। पुनः श्री सुमित्रा जी ने श्री राम जी महाराज का प्रिय समझकर, श्री लक्ष्मण कुमार जी से भेंट की तथा बोली– हे तात! लक्ष्मण कुमार! आप श्री राम जी महाराज के अत्यधिक प्रिय बने रहिए।

राम सियहिं आसन पधराई । आरति कीन्ह प्रेम रस छाई ॥
बहुरि गोद लै प्रभुहिं दुलारी । प्रेम मगन लछिमन महतारी ॥

तदनन्तर श्री सीताराम जी को सिंहासन में बैठाकर, अम्बा श्री सुमित्रा जी ने प्रेमानन्द में मग्न हो आरती उतारी तथा श्री लक्ष्मण कुमार की अम्बा सुमित्रा जी ने प्रेम मग्न हो अपने अंक में लेकर प्रभु श्री राम जी महाराज का दुलार किया।

कहा राम सुनु माता मोरी । लखन किये सेवा रस बोरी ॥
भूख प्यास तजि सोवत जागत । सेये सदा मोहिं मन पागत ॥

श्री राम जी महाराज ने कहा– हे मेरी अम्बा जी! श्री लक्ष्मण कुमार जी ने रस में डूबकर मेरी सेवा की है। इन्होंने सदैव अपनी भूख व प्यास को त्याग, सोते और जागते सभी समय की मेरी सेवायें की हैं, जिससे मेरा मन अत्यधिक प्रफुल्लित है।

दो0– महा महा निशिचर हने, कियो त्रिलोक उधार ।
भूमि भार तारन हितै, लिय लक्ष्मण अवतार ॥३५॥

आपके कुमार इन श्री लक्ष्मण जी ने, महा बलवान और प्रधान राक्षस वीरों का संहार कर तीनों लोकों का उद्धार किया है, हे श्री अम्बा जी ! श्री लक्ष्मण कुमार जी ने श्री भूमि–देवी के भार को हरण करने हेतु ही अवतार धारण किया है।

विपति कालहूँ धीर न छोरे । सेये मोहिं जगत मुख मोरे ॥
बहिर्प्राण लछिमन सत मोरा । तेहिं बिन जियौं न क्षणमपि थोरा ॥

इन्होंने दुख के समय भी धैर्य का परित्याग नहीं किया तथा संसार से विमुख होकर मेरी सेवा की हैं। मैं सत्य कहता हूँ कि श्री लक्ष्मण कुमार मेरे बाह्य–प्राण हैं तथा इनके बिना मैं एक क्षण के तक भी जीवित नहीं रह सकता।

पुत्रवती इक तुम वर माता । मम हित भेजे बन सुत भाता ॥
निज अनुरूप पाय सुत काहीं । होउ सुखी तुम अति मन माहीं ॥

हे अम्बा श्री सुमित्रा जी! एक मात्र आपही श्रेष्ठ पुत्रवती हैं जिन्होंने अपने प्रिय पुत्र को मेरे लिए वन में भेज दिया था। अब आप अपने अनुरूप पुत्र को पाकर मन में अत्यन्त सुख प्राप्त कीजिये।

सब विधि लखन चाह तव पाली । धरहु तासु शिर निज कर ताली ॥
प्यार सुधा सींचत रहु बारा । समुझि मातु मम प्राण पियारा ॥

श्री लक्ष्मण कुमार ने आपकी इच्छा का सभी प्रकार से पालन किया है अतः आप उनके शिर में अपना सुखदायी करतल रख दीजिए तथा हे श्री अम्बा जी! इन्हें मेरा प्राण प्रिय समझकर आप इन के ऊपर अपने प्रेमामृत का सिंचन करती रहें।

सुनत मातु तोषहिं उर आनी । लखनहिं आशिष दीन्ह सुबानी ॥
सीय राम कर अमित दुलारा । लहहु लखन सब भाँति उदारा ॥

श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवणकर अम्बा श्री सुमित्रा जी ने अपने हृदय में संतोष धारण किया और श्री लक्ष्मण कुमार को सुन्दर वाणी से आशीर्वाद दिया कि हे तात लक्ष्मण कुमार! आप सभी प्रकार से श्री सीताराम जी महाराज का औदार्य परिपूर्ण दुलार प्राप्त करें।

दो0–एकान्तिक सेवा सरस, प्रेमाभक्ति महान ।
पावहु नव नव भाव भल, शुचि सुठि सुखद सुजान ॥३६॥

हे सुजान कुमार लक्ष्मण! आप श्री सीताराम जी महाराज की नवीन–नवीन भावों से परिपूर्ण पवित्र, सुन्दर, सुख प्रदायिनी, परमैकान्तिक व रसमयी सेवा तथा महान प्रेमाभक्ति प्राप्त करें।

सब जग तुम्है राम के नाते । प्रेम करी हिय हर्ष समाते ॥
सुनि अशीष लछिमन शिर नाई । मातु कृपा लहि सुख न समाई ॥

सम्पूर्ण संसार आपको श्री राम जी महाराज के सम्बन्ध से हर्षित–हृदय हो प्रेम करेगा। अपनी अम्बा श्री सुमित्रा जी के आशीर्वचनों को श्रवण कर श्री लक्ष्मण कुमार जी ने उन्हे शिर झुका प्रणाम किया और उनकी कृपा को प्राप्त कर वे सुख से परिपूर्ण हो गये थे उस समय उनके हृदय में इतना सुख हुआ कि वह समा नही रहा था।

बहुरि राम सिय लखनहिं लीने । करि प्रणाम मातहिं चलि दीने ॥
कौशिल्या गृह गवने रामा । पहुँचि तासु पद कीन्ह प्रणामा ॥

पुनः श्री सीता जी और श्री लक्ष्मण कुमार जी को साथ लेकर श्री राम जी महाराज अम्बा श्री सुमित्रा जी को प्रणाम कर चल दिये। इस प्रकार श्री राम जी महाराज अपनी अम्बा श्री कौशिल्या जी के महल को प्रस्थान किये और वहाँ पहुँच, श्री राम जी महाराज ने उनके चरणों में प्रणाम किया।

मातु उठाय उरहिं दोउ भाई । ढारत नयन रही लपटाई ॥
करि शिर घ्राण शुभाशिष दीन्ही । करति प्यार मुख चुम्बन लीन्ही ॥

नेत्रों से अश्रु बहाती हुई अम्बा श्री कौशिल्या जी ने दोनों भ्राताओं (श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार जी) को उठाकर हृदय से लगा लिया, उनका शिरोघ्राण कर शुभाशीष दी तथा मुख चुम्बन करते हुए अतधिक प्यार किया।

बहुरि सियहिं सब भाँति दुलारी । चूमि बदन अति होत सुखारी ॥
लखि मुख वरषत नयनन धारा । कहि न जाय हिय प्रीति प्रसारा ॥

पुनः अम्बा श्री कौशिल्या जी ने अपनी प्रिय पुत्रवधू श्री सिया जू का सभी प्रकार से दुलार किया व मुख कमल का चुम्बन कर वे अत्यन्त सुखी हुई। श्री सीता जी का मुख देखकर उनके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की धारा बहने लगी, उस समय उनके हृदय के प्रेम का सीमांकन नही किया जा रहा अर्थात् वह अवर्णनीय था।

छं०– उर प्रीति वरणत नहीं बनै, अनुपम अमित प्रभु मातु की ।
धरि धीर आसन देय शुचि, आरति करति सिय राम की ॥
तृण तोर जावति बलि बलिहिं, सुत सुतवधू लखि प्राण सम ।
बहु दान दीन्ही द्विज गणन, हर्षण गयो सब आज भ्रम ॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– प्रभु श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी के हृदय की अनुपमेय और असीम प्रीति का वर्णन मुझसे करते नहीं बन रहा। धैर्य धारण कर अम्बा श्री कौशिल्या जी नें पवित्र आसन देकर श्री सीताराम जी की आरती उतारी। पुनः श्री अम्बा जी अपने प्राणों के समान पुत्र और पुत्रवधू को देखकर, तृण–तोड़ बलिहारी जाती हैं तथा उनकी मंगल कामना हेतु ब्राह्मणों को अतिशय दान देती हैं। अपने प्रिय पुत्र व पुत्रवधू को आज श्री अयोध्यापुरी में देखकर उनके सभी प्रकार के संदेहों का निवारण हो गया।

सो०–जननी को शुचि प्यार, वरणि सकै नहिं शेष श्रुति ।
मैं मति मन्द गँवार, कवन भाँति कथनी करहुँ ॥३७॥

प्रभु श्री राम जी महाराज की अम्बा जी के पवित्र प्यार का वर्णन तो स्वयं श्री शेष जी और श्रुतियाँ भी नहीं कर सकती फिर मन्द–बुद्धि व देहाती (असभ्य) मैं उसका वर्णन किस प्रकार कर सकता हूँ।

मातु हृदय भरि रोवत बोली । लहेउँ आज सुख राम अतोली ॥
सूझ सके आजहिं मम नयना । अब लौं आँधर रहे अचयना ॥

उस मसय अम्बा श्री कौशिल्या जी का हृदय भर आया और वे रुदन करती हुई बोलीं – हे

कुमार राम भद्र! आज मैंने अतुलनीय सुख प्राप्त किया है। यथार्थ में आज ही मेरे नेत्रों में ज्योति आई है, अब तक तो ये नेत्र दुखी और अंधे ही थे।

श्रवण सुने आजहिं सुख सारे । अब लौं बधिर बने दुख भारे ॥
हिय महँ जरनि जरति दिन राती । शीतल भई लाल लिय छाती ॥

हे सुखों के सार श्री राम! मेरे श्रवणों ने आज आपकी वाणी सुनकर ही सुनने की क्रिया की है, अभी तक तो ये महान दुख से बहरे ही बने हुए थे। मेरे हृदय में तो अहोरात्रि आपके विरह की अग्नि ही जलती रहती थी, सो वह आज आपको हृदय से लगाकर शीतल हो गयी है।

निज निज भवन जाहु अब दोऊ । जानि प्रवेश समय सुख मोऊ ॥
परिकर वृन्द सुखी कर भ्रजहू । गुरु निदेश वन वेषहिं तजहू ॥

महल में प्रवेश करने का शुभ समय समझकर, अब आप दोनों सुखपूर्वक अपने निवास "कनक–भवन" को प्रस्थान कीजिये तथा अपने परिकर गणों को सुखी करते हुए आनन्द पूर्वक निवास कीजिये। पुनः श्री गुरुदेव जी की आज्ञा से वन–वेष का त्याग कीजिये तथा–––

जेहिं देखन हित ललचत लोई । मिथिला अवध सुजन सब कोई ॥
होहिं सुफल मोरेहु ये नैना । करहु श्याम सोई सुख दैना ॥

–––जिस राजवेश को देखने के लिए श्री मिथिला पुरी व श्री अयोध्यापुरी के स्वजन व सभी स्त्री–पुरुष लालायित हो रहे हैं, हे श्याम सुन्दर रघुनन्दन श्री राम भद्र जू! अब आप वही सुखदायी कार्य कीजिये जिससे मेरे नेत्र भी सफल हो जायें।

दो0– मातु सुआयसु पाय प्रभु, सीता लखन समेत ।
करि प्रणाम रस रस चले, सब विधि सुखद निकेत ॥३८॥

अम्बा श्री कौशिल्या जी की सुन्दर आज्ञा प्राप्त कर अपनी प्राणप्रिया श्री सीता जी व श्री लक्ष्मण कुमार जी के सहित प्रभु श्री राम जी महाराज उन्हें प्रणाम कर, मन्द–मन्द गति से, अपने सभी प्रकार से सुख प्रदायक महल को प्रस्थान किये।

जबहिं गृहहिं गवने रघुराई । हरषे त्रिभुवन लोग लुगाई ॥
शान्ति पाठ मुनि जनन उचारे । बन्दी बिरदावली पुकारे ॥

रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज ज्यों ही अपने महल को प्रस्थित हुए उस समय तीनों लोकों के स्त्री–पुरुष अत्यधिक हर्ष में भर गये। मुनियों ने शान्ति पाठ तथा बन्दी जनों ने विरुदावली का बखान किया।

मंगल गान कीन्ह पुर नारी । कलश सिरन्ह शोभित शुभकारी ॥
बाजे बाजत विविध प्रकारा । जय जय उचरत सबहिं सुखारा ॥

शिर में शुभ प्रदायक कलश धारण किये हुए सुशोभित पुरी की स्त्रियों ने मांगलिक गीत गाये। उस समय विभिन्न प्रकार के बाजे बज रहे थे तथा सभी लोग सुखपूर्वक जय–जय उच्चारण कर रहे थे।

निरखि निरखि सुर वरषहिं फूला । गह गह दुंदुभि हन अनुकूला ॥
नाचहिं विविध अपसरा नारी । करत गान मुद मंगल कारी ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज को अपने महल प्रस्थान करते हुये देखकर देवता फूलों की वर्षा कर रहे थे तथा अनुकूल हो आनन्द पूर्वक दुन्दुभी नाद कर रहे थे। अप्सराएँ व विभिन्न स्त्रियाँ आनन्दपूर्वक मांगलिक गीत गा गाकर नृत्य कर रही थीं।

सीताराम सोह मग जाते । लखन समेत रीति रस राते ॥
भगति ज्ञान वैराज्ञ अनूपा । मनहुँ विराजत धरे स्वरूपा ॥

श्री सीताराम जी श्री लक्ष्मण कुमार सहित रस रीति पूर्वक मार्ग में चलते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों अनुपमेय भक्ति, ज्ञान और वैराज्ञ ही शरीर धारण किये हुए शोभा प्राप्त कर रहे हों।

दो0– कनक भवन पहुँचे तुरत, तीनहु अभिमत देत ।
किय प्रवेश मन मुदित ह्वै, लखि लखि सब सुख लेत ॥३९॥

इस प्रकार तीनों (श्री राम जी, श्री सिया जी और श्री लक्ष्मण कुमार जी) सभी को मनोभिलषित प्रदान करते हुए शीघ्र श्री कनक भवन पहुँच गये तथा प्रसन्नमना भवन में प्रवेश किये जिसे देख–देखकर सभी ने असीम सुख प्राप्त किया।

उत्सव माच्यो विविध विधाना । पुर अरु व्योम न जाय बखाना ॥
राम आगमन भरे उमाहा । बहु विधि कीन्हे भरत उछाहा ॥

उस समय आकाश और भूमि (श्री अयोध्यापुरी) में ऐसा उत्सव मनाया गया जिसका बखान नहीं किया जा सकता। श्री राम जी महाराज के अयोध्या पुरी आगमन के उपलक्ष्य में आनन्द परिपूर्ण हो श्री भरत जी ने उत्साह पूर्वक विविध प्रकार से उत्सव किया।

तैसेहिं घर घर उत्सव सोहा । अवधपुरी देखत मन मोहा ॥
जहँ तहँ दान अनेकन भाँती । होवत भाव भरे रस राती ॥

उसी प्रकार अयोध्यापुरी के प्रत्येक घर में उत्सव हो रहे हैं तथा श्री अयोध्यापुरी दर्शन करने वालों के मन को मोहित कर रही है। जहाँ–तहाँ अनेक प्रकार से भाव और रस में भरे हुए दान दिये जा रहे हैं।

सीय सखी सुनि दोउ प्रभु आवत । दासी दास सखा भल भावत ॥
आरति साज सोह वर पानी । सेवा साज अनेक विधानी ॥

सुन्दर सेविकाओं, सेवकों और सखागणों सहित श्री सिया जी की सखियों ने, यह श्रवणकर कि– हमारे दोनों स्वामी और स्वामिनी जू पधार रहे हैं, अनेक प्रकार की सेवा सामग्री एवं आरती सजा, सुन्दर हाथों में धारण कर सुशोभित होने लगीं।

भाँति अनेक करत उत्साहा । युग परिकर सब सने उमाहा ॥
द्वार भेंटि आरती उतारी । मंगल मोद मगन नर नारी ॥

वे श्री मिथिलापुरी एवं श्री अयोध्यापुरी के परिकर वृन्द आनन्द में सने हुए अनेक प्रकार से उत्साह करने लगे। उन्होंने मिलकर द्वार पर ही अपने स्वामी और स्वामिनी जू की आरती उतारी। उस समय सभी स्त्री–पुरुष मंगल और आनन्द में मग्न हो रहे थे।

दो०– अन्तपुर परिकर सविधि, प्रभु कहँ गये लिवाय ।
सुभग सुआसन सौंपि किय, आरति अतिहिं उराय ॥४०॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के परिकर वृन्द प्रभु श्री राम जी महाराज को विधि पूर्वक अन्तःपुर लिवा ले गये तथा वहाँ विराजनें हेतु सुन्दर सिंहासन समर्पित कर अत्यन्त उत्साह पूर्वक उन्होने आरती उतारी।

नवाह्न पारायण सातवाँ विश्राम

कौशिल्यादि सकल महतारी । नेह विवश तहँ पहुँचि पियारी ॥
लखि लखि सीय राम वर जोरी । होहिं सुखी सब प्रेम विभोरी ॥

श्री कौशिल्या जी आदि सभी प्रिय मातायें श्री सीताराम जी के प्रेम विवश हो वहाँ पहुँच गयी तथा प्रेम–विह्वला वे श्री सीताराम जी की सुन्दर जोड़ी को देखकर अत्यन्त सुखी हुई।

गुरु बसिष्ठ लै सचिव समाजा । सहित जनक शुचि सभा विराजा ॥
मुनिवर कहेउ सुभग दिन आजू । पंच अंग अनुकूल विराजू ॥

तदनन्तर रघुकुल गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी श्री विदेह राज जी महाराज के साथ सचिवों व समाज को लिए हुए पवित्र सभा में विराज गये और बोले– आज का दिन अत्यन्त ही शुभ है व पंचाग के पांचों अंग (योग, लग्न, ग्रह, वार और तिथि) अनुकूल हैं।

आजहिं राज तिलक प्रिय होई । सीय राम कर आनँद मोई ॥
रविकुल रवि दिव्यासन राजैं । देखि लोक सुखमय अति भ्राजैं ॥

अतः आज ही आनन्द पूर्वक श्री सीताराम जी का प्रिय राज तिलक होना चाहिये। सूर्य–कुल के सूर्य श्री राम जी महाराज श्री अयोध्यापुरी के दिव्य राज्य सिंहासन में प्रतिष्ठित हों और सम्पूर्ण लोक उस महोत्सव का दर्शन कर सुख स्वरूप बन, अत्यन्त सुशोभित हो जाँय।

सुनतहिं सभा उमँगि उठ गाई । जय गुरुदेव कृपा अधिकाई ॥
सब सुख मूल कही प्रभु बाता । जड़ चेतन जग जीव सुहाता ॥

गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी के इन वचनों को सुनते ही सम्पूर्ण सभा उत्साह से भर उठी और बोली– श्री गुरुदेव भगवान के महान कृपा की जय हो, हे नाथ! आप ने समस्त सुखों की मूल बात कही है, जो चराचर सभी जगज्जीवों के मनोनुकूल है।

दो०– जनक कहे अति हरष हिय, मुनि विचार सुख मूल ।
आयसु देइय देव अब, जो चाहिय अनुकूल ॥४१॥

श्री जनक जी महाराज ने अत्यधिक हर्षित हृदय हो कहा– मुनिराज श्री बसिष्ठ जी का विचार समस्त सुखों का मूल है। हे नाथ! अब आप अपेक्षानुकूल आज्ञा प्रदान करें।

गुरु बोले सुनु भूप सुजाना । तिलक साज जो शास्त्र बखाना ॥
आगम जानि भरत मँगवाये । प्रथमहिं बिन श्री रघुपति आये ॥

श्री जनक जी महाराज के वचनों को श्रवण कर गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी ने कहा– हे सुजान नरेश! राज्याभिषेक की शास्त्र वर्णित सभी सामग्री तो श्री भरत जी ने प्रभु–आगमन जानकर, रघुकुल के स्वामी श्री राम जी के आने के पूर्व ही मँगवा ली थी।

सकल सिन्धु तीरथ जल विमला । औषधि सकल प्रकार निरमला ॥
जो जो वस्तु और इत चाही । धरी दिव्य सब कोषहिं माँही ॥

सभी समुद्रों और तीर्थों का स्वच्छ जल तथा सभी प्रकार की दिव्य औषधियाँ और अन्य अभीष्ट सभी वस्तुएँ, कोषागार में रखी हुई हैं।

अस जिय जानि तयारी कीजै । राम तिलक लखि सुठि सुख लीजै ॥
सचिवन जनक सुआयसु दीन्हा । करहुँ सँभार सबहिं चित चीन्हा ॥

अतः अपने हृदय में ऐसा जानकर आप तैयारी कीजिये और श्री राम जी महाराज का सुन्दर राजतिलक देखकर सुख प्राप्त कीजिए। तदुपरान्त श्री जनक जी महाराज ने मन्त्रियों को सुन्दर आज्ञा दी कि– आप सभी, सावधानी पूर्वक श्री राम राज्याभिषेक की सभी प्रकार की व्यवस्थायें कीजिये।

भरत मते सब पुरी सजाई । कहि न जाय जस लगत सुहाई ॥
प्रमुद देव धरि नर वपु काहीं । दिये सजाय जान कोउ नाहीं ॥

श्री भरत जी की सहमति से श्री जनक जी महाराज ने सम्पूर्ण श्री अयोध्यापुरी को सजवा दिया, वह उस समय जैसी सुशोभित हो रही थी उसे वर्णन नहीं किया जा सकता। उस समय देवता आनन्द पूर्वक मनुष्य रूप धारण कर श्री अयोध्यापुरी को सुसज्जित कर दिये, इस बात (रहस्य) को कोई भी नहीं जान सका।

दो0– मग घर मंदिर बाग बन, सरिता कूल अनूप ।
सजे तुरत कहि जात नहिं, मंगल मय अनुरुप ॥४२॥

श्री अयोध्यापुरी के सभी मार्ग, भवन, मन्दिर, बाग, वन व श्री सरयू जी के तट आदि शीघ्र अनुपमेय व मंगलमय समय के अनुरूप सजा दिये गये, जो सभी प्रकार से अवर्णनीय थे।

मुनिवर तबहिं राम बुलवाये । आइ तुरत प्रभु शीष नवाये ॥
सविधि न्हान हित अवसर अबहीं । मुनिवर कहे पुलकि तन जबहीं ॥

तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ श्री बसिष्ठ जी ने श्री राम जी महाराज को बुलवाया, शीघ्र ही आकर वे श्री गुरु चरणों में शिर झुका प्रणाम किये। मुनिराज श्री बसिष्ठ जी ने जैसे ही कहा कि– हे राम! विधिपूर्वक स्नान करने का शुभ समय अभी है। यह कहते ही वे पुलकित शरीर हो गये।

शिर धरि आयसु राम उदारा। गे प्रणाम करि अनुप अगारा ॥
पहुँचि राम सेवकन बुलाये। बानर भालु सखा अन्हवाये ॥

श्री गुरुदेव जी की आज्ञा स्वीकार, उन्हें प्रणाम कर परम उदार श्री राम जी महाराज अपने अनुपमेय महल गये। वहाँ पहुँच कर श्री राम जी महाराज ने अपने सेवकों को बुलाया और वानर, भालुओं व सखाओं को स्नान कराया।

भरतहिं पुनि प्रभु गोद बिठाई । निरुआरे शिर जटा गोसाँई ॥
सुमिरि भरत कर प्रेम सुत्यागा । उमगि उरहिं उमगत अनुरागा ॥

पुनः प्रभु श्री राम जी महाराज ने अपने प्रिय अनुज श्री भरत जी को गोद में बैठाकर उनके शिर की जटाओं को सुलझाया। उस समय श्री भरत जी के प्रेम और त्याग का स्मरण कर श्री राम जी महाराज का हृदय पुलकित हो उठता तथा प्रेम उमड़ पड़ता था।

सजल नयन दुलरावत रामा । प्रगे प्रेम रस पूरण कामा ॥
लक्ष्मीनिधिहुँ फुलेल लगाये। निजकर उबटि भरत नहवाये ॥
शुचि फुलेल रिपुहनहिं लगाई । हर्षि सविधि स्नान कराई ॥

उस समय पूर्णकाम श्री राम जी महाराज अश्रु पूरित दृग, प्रेमानन्द में पगे हुए श्री भरत जी को दुलराने लगते हैं। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने भी श्री भरत जी के शरीर में सुगन्धित तेल लगाकर अपने हाथों से उनका उबटन कर स्नान कराया तथा हर्ष पूर्वक श्री शत्रुघ्न कुमार जी के शरीर में भी पवित्र सुगन्धित तेल लगा कर विधि विधान से उन्हें स्नान कराया।

छं०– पुनि कुँअर लक्ष्मण शिर जटन्ह, निज करहिं निरुवारत भये ।
भरि प्रेम हिय महँ लाय तेहिं, उबटत तनहिं मति मन लये ॥
नहवाय सादर भाग गुनि, मोदित सजल नयना करी ।
लखि भाव कुँअरी हर्ष हिय, हरषण सुनैनन जल ढरी ॥

पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, अपने हाथों से श्री लक्ष्मण कुमार जी के शिर की जटाओं को सुलझाने लगे, वे प्रेमाप्लावित हो, हृदय से लगाकर उनके शरीर का उबटन बुद्धि व मन को उनमें लीन किये हुये कर रहे थे। इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री लक्ष्मण कुमार जी को आदर पूर्वक स्नान कराया व अपना सौभाग्य समझकर उनके नेत्र अश्रु प्रपूरित हो गये। उस समय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय के भाव को देखकर, हर्षित हृदय हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज अपने नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित करने लगे।

सो०–मगन राम लखि श्याल, नव नव सुन्दर भाव उर ।
कहे सुनहु निमि बाल, निरुआरें तव जटा हम ॥४३॥

अपने प्रिय श्याल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय के नवीन–नवीन सुन्दर भावों को देखकर श्री राम जी महाराज मग्न हो गये तथा बोले– हे निमिनन्दन! सुनिये, अब हम आपकी जटाओं को सुलझायेंगे।

सुनि कुमार रघुवर प्रिय प्यारा । भूलेउ सुधिहिं न देह सँभारा ॥
बहुरि धीर धरि भाव सम्हारे । पगे प्रेम प्रिय बचन उचारे ॥

श्री राम जी महाराज के वचनों को सुन व प्रिय प्यार को प्राप्तकर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी स्मृति भूल गये व शरीर न सम्हाल सके। पुनः धैर्य धारण कर उन्होंने अपने भावों को सम्हाला तथा प्रेम में डूबकर प्रिय वचन बोले–

देखत तव शिर जटा खरारी । सकौ न निज शिर जटहिं बिगारी ॥
प्रीति पगे दृग चुप रहि गयऊ। देखि दशा प्रभु प्रमुदित भयऊ ॥

हे खरारि (खर नामक राक्षस को मारने वाले), श्री राम जी महाराज! आपके शिर में जटाओं को देखते हुए मैं अपने शिर की जटाओं को नहीं बिगाड़ सकता, ऐसा कहकर वे प्रेम पगे नेत्रों से उन्हें निहारते हुए चुप हो गये। उनकी स्थिति देखकर प्रभु श्री राम जी महाराज अत्यन्त आनन्दित हो गये।

आय विराजे तिनके अंका । नेह नहावहिं दोउ सुख दंका ॥
रघुपति जटहिं कुँअर निरुआरे। परशि परशि तन होत सुखारे ॥

आनन्द प्रपूरित श्री राम जी महाराज आकर उनकी गोद में बैठ गये और श्याल–भाम दोनों सुख प्रदायक प्रेम में अवगाहन करने लगे। इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने सुख पूर्वक श्री राम जी महाराज के शरीर का स्पर्श करते हुए, उनकी जटाओं को सुलझाया।

उबटन गन्ध सप्रेम लगाई । मुनि अभिमत स्नान कराई ॥
याज्ञबल्क अरु सुगुरु बसिष्ठा । करि कुमार पर प्यार घनिष्ठा ॥

श्री राम जी महाराज को प्रेम पूर्वक उबटन और सुगन्धि आदि लगाकर मुनियों की आज्ञानुसार स्नान कराया गया। तदनन्तर निमिकुल आचार्य श्री याज्ञवल्क्य जी और रघुकुल आचार्य श्री बसिष्ठ जी ने कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के ऊपर अपार प्रेम करते हुये–––

दो0– स्वयं आपने हाथ ते, दूनहुँ मुनि तेहिं काल ।
लट सुरझाये कुँअर की, करि करि प्यार रसाल ॥४४॥

–––दोनों मुनियों (श्री वशिष्ठ जी और श्री याज्ञवल्क्य जी) नें उस समय, पूर्ण प्रेम के साथ अपने हाथों से कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की जटाओं को सुलझाया।

राम मातु कुँअरहि नहवाई । प्रीति रीति प्रिय सुख सरसाई ॥
यज्ञ कुंज गवने सब कोई। तिलक स्वरूप किये मुद मोई ॥

श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी नें प्रीति–रीतिपूर्वक, हृदय में सुख से ओत–प्रोत हो कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को स्नान करवाया अन्नतर सभी यज्ञ कुंज गये वहाँ आनन्द में समाये हुए तिलक तिलक स्वरूप किया।

नित्य कृत्य सूक्षम सब कीने। गये सिंगार कुञ्ज परवीने ॥
राम तिलक हित वस्त्राभूषण । दिव्य दिव्य सहु सब निरदूषण ॥

सभी ने सूक्ष्म रूप से नित्य कर्मो का निर्वाह किया तदनन्तर परम प्रवीण सभी राजकुमार श्रृंगार कुंज गये। श्री राम जी महाराज के राज्याभिषेक हेतु बहुत से दिव्य और निर्मल वस्त्र और आभूषण आदि–––

परम तेजमय मिथिला तेरे । लाये रहे जनक हिय हेरे ॥
धारण हित सह भ्रातन रामहिं । पठये नरपति पूरण कामहिं ॥

–––जो अतिशय तेजवान थे तथा जिन्हें श्री जनक जी महाराज हृदय में सम्यक प्रकार विचार कर श्री मिथिलापुरी से लाये थे, उन्हें भ्राताओं सहित पूर्ण काम श्री राम जी महाराज के धारण करने हेतु श्री जनक जी महाराज ने भिजवाया।

हरषि कुँअर निज करहिं सुधारी । पहिराये रघुपति रसवारी ।।
तैसहिं सब भाइन पहिराये । जनक कुँअर प्रमुदित प्रिय भाये ।।

उन वस्त्राभूषणों को कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने हर्ष पूर्वक अपने हाथों से सँवारकर रघुकुल के स्वामी रस स्वरूप श्री राम जी को पहना दिया। उसी प्रकार जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी ने आनन्दित हो प्रिय भावपूर्वक श्री राम जी महाराज के सभी भ्राताओं को वस्त्राभूषण धारण कराया।

दो0– रामहु अपने कर कमल, जनक कुँअर पहिराय ।
पाये सुख हिय महँ अधिक, प्रीति रीति रस छाय ॥४५॥

श्री राम जी महाराज ने भी प्रीति, रीति और रस में समाहित होकर अपने हस्त कमलों से जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को वस्त्राभूषण पहना कर हृदय में अत्यधिक सुख प्राप्त किया।

भूमि व्योम वर मंगल गाना । छाय रह्यो अति आनन्द दाना ॥
भाँति अनेक वाद्य वर बाजैं । जय जय ध्वनि महि गगन विराजैं ॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–उस समय भूमि और आकाश में सुन्दर अत्यन्त आनन्द दायी मांगलिक गीत छाये हुए थे, अनेक प्रकार के सुन्दर बाजे बज रहे थे तथा जय–जय की ध्वनि भूमि और आकाश में समायी हुई थी।

पुष्प वृष्टि होवति सुखदाई । जहँ तहँ शान्ति पढ़त मुनिराई ॥
अन्तःपुर सीतहिं नहवाई । सह सिद्धिहिं कौशिल्या माई ॥

पुष्पों की सुखप्रदायिनी वर्षा हो रही थी तथा जहाँ–तहाँ मुनि श्रेष्ठ शान्ति पाठ कर रहे थे। अम्बा श्री कौशिल्या जी ने अन्तःपुर में श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित अपनी प्रिय पुत्र–वधू श्री सीता जी को स्नाान कराया।

भूषण वसन अनेक प्रकारा । अँग अँग साजे करत दुलारा ॥
जनक लाड़िली शोभ महानी । शेष गिरा नहि सकैं बखानी ॥

पुनः श्री सीता जी का दुलार करते हुए अनेक प्रकार के वस्त्र और आभूषण अम्बा श्री कौशिल्या जी ने उनके प्रत्येक अंग में सजा दिया। उस समय जनक लड़ैती श्री सिया जू महान शोभा संप्राप्त कर रही थीं, जिसका वर्णन श्री शेष जी और श्री सरस्वती भी नहीं कर सकते हैं।

गुरु बसिष्ठ पुनि आयसु दीन्हा । राज तिलक अब चाहिय कीन्हा ॥
परम दिव्य सिंहासन आवा । जेहि महँ बैठे मनु नृप भावा ।।

अनन्तर गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी ने आज्ञा दी कि– अब राजतिलक करना चाहिये। उनकी आज्ञानुसार एक परम ज्योतिर्मय सिंहासन जिसमें श्री महाराज मनु जी विराजते थे, वहाँ लाया गया।

दो0– रवि सम शोभित तेजमय, चकाचौध दृग होय ।
परम सुहावन काम जनु, धरेउ रूप जिय जोय ॥४६॥

जो सूर्य के समान तेजवान और अत्यन्त सुशोभित हो रहा था, जिसे देखते ही नेत्र चौंधिया कर मुँद जाते थे उस परम सुहावने सिंहासन को देखकर ऐसी प्रतीति हो रही थी जैसे स्वयं कामदेव ही, अपने हृदय में प्रभु श्री राम जी की सेवा का बिचार कर सिंहासन का स्वरूप धारण किये हुए हो।

छत्र चमर बीजन बहु आये । छड़ी पुष्पमाला मन भाये ॥
तिलक साज सबही मँगवाई । पुनि मुनि आयसु दीन सुहाई ॥

हो रहे थे। पवन नन्दन श्री हनुमान जी अपने प्रभु श्री राम जी महाराज के सामने अलौकिक प्रेम पूर्वक जहाँ चरण चौकी थी, सुशोभित हो रहे थे।

वहाँ बहुत से छत्र, चवँर, बिंजन, छड़ी और मन भावनी पुष्प मालायें आदि लायी गयीं। इस प्रकार राजतिलक की सम्पूर्ण सामग्री मँगाकर मुनिवर श्री बसिष्ठ जी ने सुन्दर आज्ञा प्रदान की–––

राम सीय आवैं इत अबहीं । सुनत निसान बजे मन भवहीं ॥
परम रम्य मन हरण सलोनी । जोड़ी सीताराम अहोनी ॥

–––रघुनन्दन श्री राम जी महाराज व पुत्रवधू श्री सीता जी इसी समय यहाँ आ जायें। रघुकुल आचार्य श्री बसिष्ठ जी की आज्ञा सुनते ही मन को लुभा लेने वाले नगाड़े बज उठे और श्री सीताराम जी की परम सुन्दर मन को हरण करने वाली, भूत व भविष्य में अप्राप्त सलोनी जोड़ी,–––

चली चतुर्दिक छवि छहराती । कहि न जाय मनही मन भाती ॥
लिये सुआसिन कलश प्रदीपा । करहिं सेव श्री राम महीपा ॥

–––चारों दिशाओं में सौन्दर्य विखेरती हुई चल पड़ी, उनकी शोभा मन ही मन को सुन्दर लगने वाली और अकथनीय थी। सुहागिनी–नारियाँ शिर में जलते हुए दीप वाले कलश लिये, रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज की सेवा कर रही थीं।

गावहिं गीत सुभग वर नारी । पुर अरु व्योम सुनत सुखकारी ॥
होत महा उत्सव रघुवीरा । आये सिया सहित गुरु तीरा ॥

सुशोभना नारियाँ सुन्दर गीत गा रही थीं जिसे श्री अयोध्यापुरी व आकाश में उपस्थित लोग सुखपूर्वक श्रवण कर रहे थे। इस प्रकार महान उत्सव के मध्य रघुकुल प्रवीर श्री राम जी महाराज अपनी प्राण–वल्लभा श्री सिया जू सहित श्री गुरुदेव जी के समीप आ गये।

दो0—करि प्रणाम गुरुवरहिं प्रभु, सिया सहित भरि भाव ।
हाथ जोरि ठाढ़े भये, करि शिर कछुक झुकाव ।।४७।।

श्री सीता जी के सहित प्रभु श्री राम जी महाराज भाव में भरकर गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी को प्रणाम किये तथा हाथों को जोड़, अपने शिर को कुछ झुका कर खड़े हो गये।

छं0— करि स्वस्ति बाचन गुरुवरन, कर फेरि शिर आशिष दई ।
झरि पुष्प वरषे राम पर, हरषित हिया सबकर भई ॥
महि व्योम छायो जयति रव, आनँद मगन सब नारि नर ।
मुनिराज आयसु दीन्ह प्रिय, पुलकित हृदय आनन्द भर ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि—उस समय गुरुजनों ने स्वस्ति वाचन कर श्री सीताराम जी के शिर में अपना हाथ फेर, आशीर्वाद प्रदान किया तथा श्री राम जी महाराज पर पुष्प वरषाये, सभी का हृदय हर्षित हो गया। आकाश और भूमि में जय—जय का शोर छा गया तथा सभी स्त्री—पुरुष आनन्द में मग्न हो गये। पुनः मुनिवर श्री बसिष्ठ जी ने आनन्द में भर कर पुलकित हृदय अपनी प्रियकर आज्ञा प्रदान की।

लखि मोर भावित भल रुचिहिं, रविकुल नृपति जेहिं किय ग्रहण ।
तेहिं वरहु आपहुँ शीघ्र अब, हरषैं हृदय नर नारि गण ॥
सियराम आयसु सुनि श्रवण, पद रज चढ़ाई माथ महँ ।
पुनि जाय राजे आसनहिं, हरषण मगन रस पाथ पहँ ॥

हे श्री राम जी ! हमारी श्रेष्ठ व मनभावनी इच्छा को समझ कर, श्री सूर्य कुल के राजाओं के द्वारा ग्रहण किये हुए इस राज्य सिंहासन का आप अब शीघ्र ही वरण कीजिये, जिससे समुपस्थित समस्त स्त्री—पुरुषों के हृदय हर्ष से आपूरित हो जायें। रघुकल आचार्य श्री बशिष्ठ जी की आज्ञा श्रवण कर श्री सीताराम जी नें श्री गुरु चरणों की पावन रज (धूल) अपने मस्तक में धारण की और जाकर श्री अयोध्या पुरी के दिव्य राज्य सिंहासन में विराज गये। अपने परम प्रेमास्पद प्रभु को सिंहासनासीन देखकर हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज रस—वारि में मग्न हो गये।

सो0—शोभित सीता राम, रत्न सिंहासन बैठि शुभ ।
त्रिभुवन लखि सुख धाम, परमानन्दहिं पगत भो ॥४८॥

इस प्रकार श्री अयोध्यापुरी के शुभ व रत्नजटित महनीय राज्य सिंहासन में विराज कर श्री सीताराम जी सुशोभित होने लगे। उस समय, सुख के धाम रघुकुल नरेश श्री सीताराम जी के दर्शन कर तीनों लोक परमानन्द में निमग्न हो गये।

राजमुकुट मनु धारत जेहीं । विधि निर्मित गुरु लाये तेहीं ॥
कोटि सूर्य सम सरस प्रकाशा । सुभग सुखाकर मनहर भासा ॥

अनन्तर श्री ब्रह्मा जी के द्वारा निर्माण किये हुए उस राज मुकुट को, जिसे श्री महाराज मनु

जी नें अपने शिर में धारण किया था, गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी ले आये। वह राज–मुकुट करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशवान, रस–स्वरूप, सुन्दर, सुखप्रद और मनोहारी प्रतीत हो रहा था।

निज कर शीश राम के धारे । भाव भरे प्रिय प्रेम पसारे ॥
पृष्ठ भाग लक्ष्मण प्रभु प्यारे । वसन विभूषण विविध सम्हारे ॥

उस राज मुकुट को अपने हाथों से रघुकुल गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी ने भाव में भरकर, प्रिय प्रेम परवश हो श्री राम जी महाराज के शीश में धारण करा दिया। श्री सीताराम जी के पृष्ठ भाग में प्रिय रामानुज श्री लक्ष्मण कुमार जी विभिन्न प्रकार के वस्त्राभूषणों से विभूषित,–––

सोहत छत्र लिये छवि भारी । रवि शशि कान्ति देखि जेहिं हारी ॥
दक्षिण दिशिहिं भरत अति सोहे । लिये चमर सबके मन मोहे ॥

––––अत्यन्त शोभा सम्पन्न छत्र धारण किये, सुशोभित हो रहे थे। जिसकी प्रभा को देखकर सूर्य और चन्द्रमा का तेज भी फीका पड़ जाता था। श्री सीताराम जी की दक्षिण दिशा में चँवर लिये हुए, रामानुज श्री भरत जी अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे तथा सबके मन को मुग्ध कर रहे थे।

बिजन लिये श्री रिपुहन लाला । वाम ओर शोभित सुखशाला ॥
पवन तनय जहँ प्रभु पद चौकी । राजत आगे प्रीति अलौकी ॥

श्री सीताराम जी की बायीं दिशा में सुखपूर्वक बिजन (पंखा) लिये हुए श्री शत्रुघ्न कुमार जी सुशोभित हो रहे थे। पवन नन्दन श्री हनुमान जी अपने प्रभु श्री राम जी महाराज के सामने अलौकिक प्रेम पूर्वक चरण चौकी के समीप, सुशोभित हो रहे थे।

दो0–जामवन्त बाली तनय, कपिपति निशिचर भ्राज ।
सेवा साजहिं कर लिये, कोणादिषु रह राज ॥४९॥

ऋक्षराज श्री जामवन्त जी, बालि तनय श्री अंगद जी, वानर राज श्री सुग्रीव जी व राक्षस राज श्री विभीषण जी आदि सभी परिकर, सेवा साज लिये हुए दोनों कोणों पर सुशोभित हो रहे थे।

जनक कुँअर रघुवर प्रिय श्याला । वेष मनोहर सुखद रसाला ॥
लिये मुकुर प्रभु आगे सोहा । युगल रूप रस आँखिन दोहा ॥

श्री राम जी महाराज के रसस्वरूप, सुखदायी व प्रिय श्याल जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी मनोहारी वेष धारण किये हुए, प्रभु श्री राम जी महाराज के आगे, दर्पण लिये हुए युगल रूप रस का अपने नेत्रों द्वारा दोहन करते हुए सुशोभित हो रहे थे।

राम सिया लखि लखि तेहि काहीं । पगे प्रेम पुनि पुनि पुलकाहीं ॥
सखी सखा अरु दासी दासा । सेवत प्रभुहिं प्रीति परकाशा ॥

उन्हें देख देखकर, प्रेम में पगे हुए श्री सीताराम जी बारम्बार पुलकित हो जाते हैं। वहाँ सभी सखी–सखा व दास–दासियाँ आदि प्रेम पूर्वक प्रभु श्री सीताराम जी की सेवा कर रहे हैं।

दशरथ जनक सुभग रनिवासा । लखत झरोखनि तदपि पिपासा ॥
देश देश के नृपति सुजाना । ऋषि द्विज अमित न जाय बखाना ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज और विदेहराज श्री जनक जी महाराज का रनिवास यद्यपि गृह गवाक्षों से श्री सीताराम जी का दर्शन कर रहा था तथापि वह दर्शनों की बलवती प्यास से युक्त प्रतीत हो रहा था। देश देशान्तर के असीमित सुजान राजागण, ऋषि व ब्राह्मण आदि जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

मिथिला अवध समाज सुसोही । बैठी सभा राम–रस मोही ॥
जनपद लोग चारहु ओरी । आय विराजे सदसि विभोरी ॥

श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी के समाज सहित राज्य–सभा में बैठा हुआ श्री राम जी महाराज के प्रेम–रस में मुग्ध हुआ सुशोभित हो रहा था। समग्र जनपद के लोग चारों ओर प्रेम विभोर हुए सभा मे आकर अपने नियत स्थान मे बैठ गये थे।

दो0– देखत रामहिं सह सियहिं, प्रेम न हृदय समाय ।
निकसत दूनहु दृगन ते, रोकत मंगल भाय ॥५०॥

वे सभी श्री सीता जी के सहित श्री राम जी महाराज का दर्शन कर रहे हैं, उनका प्रेम हृदय में नहीं समा रहा, दोनों नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित हो रहे हैं परन्तु मंगल अवसर जानकर वे उन्हें रोक रहे हैं।

पेखि परम आनन्द सुर सिगरे । तन मन वचन गये रस पगरे ॥
आय प्रगट सब सभहिं विराजे । देखन राम तिलक दृग काजे ॥

उस समय के परमानन्द को देखकर सभी देवताओं के शरीर, मन व वचन रस में पग गये हैं। वे सभी सभा में आकर अपने नेत्रों से श्री राम जी महाराज का राजतिलक देखने हेतु प्रगट होकर सभा में विराज गये हैं।

विधि हरि हर प्रगटे तेहिं काला । पाये आसन सभा विशाला ॥
रामहिं मन महँ शीश नवाई । पुलकित तन बैठे हरषाई ॥

उस समय तीनों ईश कोटि के देवता श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी और श्री शंकर जी भी प्रगट होकर विशाल राज्य–सभा में आसन प्राप्त किये हैं, उन्होंने श्री राम जी महाराज को मानसिक प्रणाम किया और पुलकित शरीर, हर्ष पूर्वक सभा में बैठ गये।

गुरु बशिष्ठ सादर सनमानी । भाव भगति मोदहिं मन आनी ॥
पूजा भेंट यथा विधि दीन्ही । सहित समाज बन्दना कीन्ही ॥

रघुकुल के आचार्य श्री बसिष्ठ जी ने उनका आदरपूर्वक, भाव, भक्ति और मन में आनन्दित हो सन्मान किया। उन्होने ससमाज यथा–विधि उनकी पूजा व भेंट देकर वन्दना की।

मन महँ पूजे सबहिन रामा । देखि भाव सुर पूरण कामा ॥
अति अनन्द हिय होत विभोरे । लखि प्रभु कृपहिं प्रसन्न अथोरे ॥

श्री राम जी महाराज ने उन सभी का मानसिक पूजन किया। श्री राम जी महाराज के भावों को देखकर देवता विभोर हो रहे थे। वे स्वयं पर प्रभु श्री राम जी महाराज की अपार कृपा देखकर अत्यधिक प्रसन्न हो रहे थे।

दो0– अपलक निरखहिं देव, सब श्याम गौर सुख रूप।
भये मगन आनँद उदधि, सब विधि अमल अनूप ॥५१॥

समस्त देवगण, सुख–स्वरूप, सुन्दर, गौर व श्याम वर्ण वाले श्री सीताराम जी का निर्निमेष दर्शन कर, निर्मल और अनुपमेय आनन्द के सागर में मग्न हो रहे थे।

उमा रमा शारद शचि आई। वेष बनाय हरष बहुताई ॥
लखि सुतेज रघुवर महतारी। पूजी लक्ष्मी सम सुख सारी ॥

श्री पार्वती जी, श्री लक्ष्मी जी, श्री सरस्वती जी तथा श्री शची जी (इन्द्राणी जी) साधारण वेष धारणकर अत्यन्त हर्ष पूर्वक वहाँ आ गयीं जिनके सुन्दर तेज को देखकर श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी ने सुखपूर्वक उनकी श्री लक्ष्मी जी के समान पूजा की।

देखि देखि सिय रघुवर जोरी। रहीं सकल सुख सिन्धु हिलोरी ॥
छन छन वरषहिं सुमन अपारी। देव मगन रघुवरहिं निहारी ॥

वे सभी श्री सीताराम जी की अनाख्येय युगल छवि का दर्शन कर सुख के सागर में अवगाहन करने लगीं। देवगण, श्री राम जी महाराज का दर्शन कर मन–मग्न हो प्रत्येक क्षण असीमित पुष्पों की वर्षा करने लगे।

सरस राग बाजत बहु बादा। सुर मुनि मोहन मन अहलादा ॥
मंगल गान देव नर रवनी। कोकिल कंठ करहिं मन भवनी ॥

विभिन्न प्रकार के बाद्य सरस राग में बज रहे थे जो देवताओं व मुनियों को मोहित करते हुए मन में आह्लाद (आनन्द) उत्पन्न कर रहे थे। देवांगनायें व पुर प्रमदायें कोकिल कण्ठ से मनभावने मांगलिक गीत गा रही थीं।

किन्नरि अरु गन्धर्वि अपसरा। नृत्यहिं गावहिं चित्त रसभरा ॥
बन्दि सूत नट मागध भाटा। वरणहिं प्रभु यश करि बहु ठाटा ॥

श्री राम–रस से परिपूरित चित्त हो, किन्नरियाँ, गन्धर्वियाँ और अप्सरायें नाच व गा रही वहाँ बहुत से छत्र, चवँर, बिंजन, छड़ी और मन भावनी पुष्प मालायें आदि लायी गयीं। इस प्रकार राजतिलक की सम्पूर्ण सामग्री मँगाकर मुनिवर श्री बसिष्ठ जी ने सुन्दर आज्ञा प्रदान की–––

दो0–जय धुनि गूँजी चहुँ दिशहिं, ऋषिगण मंत्र उचार।
राज–तिलक विधि होन लगि, जस श्रुति कहत पुकार ॥५२॥

चारों दिशाओं में जय नाद गूँज रहा है, ऋषिगण वेद–मंत्रों का उच्चारण कर रहे हैं इस प्रकार श्रुतियों के द्वारा निर्देशित विधि से राज तिलक की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी।

जय रघुवीर कहत मुनिराई । प्रथम तिलक कीन्हे हरषाई ॥
देवन सुमन वृष्टि झरि लाये । जय ध्वनि भूमि अकाशहिं छाये ॥

मुनिराज श्री बसिष्ठ जी ने रघुवीर श्री राम जी की जय, कहते हुए सर्वप्रथम त्रिभुवन वन्दनीय प्रभु श्री राम जी के मस्तक पर तिलक किया। उस समय देवतागण पुष्पों की अनवरत वृष्टि करने लगे तथा जय–जयकार की ध्वनि भूमि और आकाश में परिव्याप्त हो गयी।

तोप तुपक छूटत बिन अन्तर। बाजत विविध भाति के यंतर ॥
इतर सुगन्ध पुष्प वर माला । वरषहिं गगन देव मणि जाला ॥

उस समय उत्साह के कारण तोप और बन्दूकें बिना अन्तराल के (लगातार) चलने लगी, विभिन्न प्रकार के वाद्य यन्त्र बजने लगे, देवता आकाश से इत्र, सुगन्धित पुष्प, पुष्पमालायें और मणि मालाएँ वरषाने लगे।

मुनि बशिष्ठ पीछे सुख साने । विधि हरि हर किय तिलक भुलाने ॥
ऋषि मुनि विप्र देव समुदाया । कीन्हे बहुरि तिलक रस छाया ॥

मुनिवर श्री बसिष्ठ जी के पश्चात् श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शंकर जी ने हर्षपूर्वक भाव विभोर हो श्री राम जी महाराज का राजतिलक किया। पुनः रसाप्लावित होकर ऋषि, मुनि, ब्राह्मण एवं देव समुदाय ने श्री राम जी महाराज का तिलक किया।

दिये भेंट सब देव सुहाई । निज निज रुचि भल भाव बनाई ॥
सहित इन्द्र सिगरे लोकेशा । पूजा दिये प्रीति अवधेशा ॥

सभी देवताओं ने अपनी अपनी रुचि के अनुसार सुन्दर भाव पूर्वक महाराजाधिराज श्री सीताराम जी को श्रेष्ठ उपहार प्रदान किया। देवराज श्री इन्द्र जी सहित सम्पूर्ण लोक पतियों ने अयोध्या नरेश श्री राम जी महाराज को प्रेम पूर्वक भेंट समर्पित की।

दो0–सूर्य सहित मनु आप तहँ, आशिष भेंटी दीन्ह ।
राम प्रहर्षि प्रणाम करि, पूजा मन सो कीन्ह ॥५३॥

उस समय वहाँ, भगवान भुवन भास्कर सहित स्वयं महाराज स्वायम्भुव मनु जी ने आकर अपना आशीर्वाद और भेंट श्री राम जी महाराज को प्रदान की। श्री राम जी महाराज ने हर्ष में भरकर उन्हें प्रणाम किया और उनका मानसिक पूजन किया।

महा महिप मण्डल तेहिं काला । औरहु धनिक वर्ग सुखशाला ॥
राम चरण बहु भेटी दीनी । हरषित हिय भरि भाव नवीनी ॥

उस समय देश देशान्तर के महान राजागण तथा धनिक वर्ग ने सुख पूर्वक श्री राम जी महाराज के चरणों में हर्षित हृदय, नवीन भाव में भर कर बहुत सी भेंट अर्पित की।

राम सिया की सुन्दर जोरी । अकथ अगाध अनुप रस बोरी ॥
भहर भहर छहरत छवि शोभी । त्रिभुवन लखि मोहेउ बनि लोभी ॥

श्री सीताराम जी की अकथनीय, असीम, अनुपमेय, रससिक्त सुन्दर युगल छवि दिव्य तेज से प्रभान्वित अनुपम छटा विखेरती हुई सुशोभित हो रही थी। जिसका दर्शन कर त्रिलोक निवासी मोहित हो उनके दर्शन के लिये लालायित बने रहे।

राजा राम सीय पटरानी । तासु छटा किमि कहहुँ बखानी ॥
काम अनंत जासु छबि अंशा । देखि लजत आपन मद भ्रंशा ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– राजाधिराज श्री राम जी महाराज और उनकी महारानी श्री सीता जी के सौन्दर्य का बखान मैं किस प्रकार से करुँ? क्योंकि जिनके सौन्दर्यांश को देखकर भी अनेक सौन्दर्याधि देव कामदेव अपनी सुन्दरता के अभिमान को चूर–चूर हुआ देख लज्जित हो जाते हैं।

कोटि सूर्य सम तेज विभ्राजा । कोटि चन्द्र आनन रस राजा ॥
विष्णु अनंत सत्व गुण धामा । राजि रहे रघुचन्द्र ललामा ॥

उन श्री सीताराम जी महाराज का तेज करोड़ों सूर्य के समान तथा अनुपमेय रसान्वित मुख चन्द्र करोड़ों चन्द्रमा के समान है। अनन्त श्री विष्णु जी के समान सात्विक गुणों के धाम स्वरूप, परम सुन्दर रघुकुल–चन्द्र श्री राम जी महाराज अतिशय सुशोभित रत्न सिंहासन में विभ्राजमान हो रहे हैं।

विधि अनंत सम मन संकल्पा । शोभ रहे रघुराज अनल्पा ॥
अगणित शिव सम शक्ति दमन की । झाँकी दुख हर सिया रमन की ॥

महान रघुकुल नरेश, श्री राम जी महाराज अनन्त ब्रह्माओं के समान सृष्टि सर्जन का सामर्थ्य लिये हुए शोभायमान हो रहे हैं। सीताकान्त श्री राम जी महाराज की छवि अनगिनत शंकरों के समान सृष्टि संहार की शक्ति सँजोये हुए दुखों का हरण करने वाली है।

दो0–अमित इन्द्र सम सोह सुठि, शासन सुक्ख अपार ।
सेवहिं सब सुर सिद्ध मुनि, निष्कण्टक दरबार ॥५४॥

श्री राम जी महाराज में असीमित देवराज इन्द्रों के समान सुन्दर राज्य प्रशासन करने और सभी को अपरिमेय सुख प्रदान करने की सामर्थ्य है। ऐसे श्री राम जी महाराज के विघ्न बाधाओं से रहित, अभय प्रदायी राज–सभा का सेवन सभी देवता, सिद्ध और मुनि जन करते हैं।

अमित काल कर भक्षण हारा । भ्राजि रहेउ प्रभु तेज अपारा ॥
शक्ति अचिन्त्य अमित प्रभु केरी । जाकर सीता नाम निवेरी ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज का महान तेज असीमित काल का भी भक्षण करने वाला है तथा सर्व शक्तिमान प्रभु की शक्ति अचिन्त्य व अपरिमेय है जिसका नाम श्री 'सीता' कह कर वर्णन किया है।

सोह रही बायें निज कंन्ता । उद्भव थिति लय शक्ति अनन्ता ॥
दिव्य अनन्त सकल गुण खानी । राम वल्लभा वेद बखानी ॥

जो अनन्त ब्रह्माण्डों के उत्पत्ति, स्थिति और संहार की शक्ति लिये हुए अपने प्राण पति श्री राम जी महाराज के बायें भाग में सुशोभित हो रही हैं। वे श्री राम जी महाराज की प्राण प्रियतमा श्री सीता

जी अनन्त दिव्य व सम्पूर्ण गुणों की खानि हैं, ऐसा वेदों ने वर्णन किया है।

वस्त्र विभूषण दोउ दिवि धारे। जाहि अनन्त काम रति वारे॥
शोभा सिन्धु युगल वर सोहैं। आभा विन्दु निकसि जग मोहै॥

वे दोनों दिव्य वस्त्राभूषण धारण किये हुए हैं, जिन पर अनन्त कामदेव और रती न्योछावर हो रहे हैं। ऐसे युगल वर श्री सीताराम जी श्री अयोध्या पुरी के राज्य सिंहासन पर शोभा के सागर बने हुए विभ्राजमान हैं जिनके आभा की एक बूँद निकल कर सम्पूर्ण संसार के अपार सौन्दर्य के रूप में सभी को मोहित किये रहती है।

दमदम चमचम चमकत चारू। चारहु ओर छटा छवि सारु॥
छवि समुद्र बुन्दहिं लहि जानौ। अण्ड छटा छायी चहुँ घानौ॥

वे सुन्दरता के सार दिव्यातिदिव्य प्रभा से समन्वित चारो दिशाओं में भव्य आलोक विखेरते हुए शोभायमान हैं। उनके सौन्दर्य सागर की एक बूँद प्राप्त कर ही चारो ओर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों में सुन्दरता छायी हुई है।

दो0– राज रूप रघुनाथ कर, को कवि वरणै पार।
शेष शारदा गणप शिव, हारत बुद्धि अगार॥५५॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज के राजवेष का वर्णन कर, कौन कवि पार पा सकता है क्योंकि बुद्धि के भवन श्री शेष जी, श्री सरस्वती जी, श्री गणेश जी और श्री शंकर जी भी उसका वर्णन करने में हार स्वीकार कर लेते हैं।

राज तिलक लखि जनक प्रहर्षे। अभिमत दान दीन द्विज हर्षे॥
मेघ समान वरष बहु द्रव्या। कहि न जाय जस जिय मन्तव्या॥

श्री राम जी महाराज के शुभ राज्याभिषेक का दर्शनकर मिथिला नरेश श्री जनक जी महाराज अत्यन्त हर्षित हुए और ब्राह्मणों को मुह माँगा दान दिये, जिससे वे अत्यधिक हर्ष को प्राप्त हुये। जिस प्रकार बादल जल वृष्टि करते हैं उसी प्रकार श्री जनक जी महाराज अत्यधिक धन की वरषा कर रहे थें। उस समय उनके ह्रदय में जिस प्रकार का भाव था उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

पृथक पृथक वर स्तुति कीने। विधि हरि हर सुरपति सुख भीने॥
सुर किन्नर गंन्धर्वहुँ नागा। यक्षादिक किंपुरुष सुभागा॥

श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शंकर जी और देवराज इन्द्र आदि देवताओं ने सुखपूर्वक अलग–अलग श्री राम जी महाराजकी सुन्दर स्तुति की। परम सौभाग्यशाली देवताओं, किन्नरों, गन्धर्वो, नागों, यक्षों,–––

लोकपाल दिगपाल मुनीशा। कीन्हे स्तुति राम महीशा॥
नर समाज सह सकल भुआला। सबहिं प्रशंसे राम कृपाला॥

–––लोकपालों, दिकपालों तथा मुनिजनों आदि सभी ने 'राजाधिराज' श्री राम जी महाराज

की स्तुति की तथा सभी राजाओं के सहित सम्पूर्ण जन–समाज ने कृपालु श्री राम जी महाराज की प्रशंसा की।

प्रेम प्रसून छनहि छन वरषी। सुरगण मुदित भाव उत्कर्षी ॥
नभ महँ बहु विधि बाजत बाजा। अति प्रसन्न जड़ चेतन भ्राजा ॥

देवता आनन्दित हो भावोत्कर्ष पूर्वक प्रत्येक क्षण फूलों की वरषा कर रहे थे। आकाश में विविध प्रकार से बाजे बज रहे थे। श्री राम जी महाराज के राज्याभिषेक के समय सम्पूर्ण चराचर प्राणि समुदाय अत्यन्त प्रसन्न दिखाई दे रहा था।

दो0– सुर नर मुनि अरु नाग लखि, त्रिभुवन पति श्री राम।
अति विनीत रसमय सुखद, बोले बचन ललाम ॥५६॥

अनन्तर त्रिलोक के स्वामी श्री राम जी महाराज ने, राज्य सभा में समुस्पथित देवताओं, मनुष्यों, मुनियों व नागों की ओर देख कर अत्यन्त विनयपूर्वक सुख प्रदान करने वाले रसस्वरूप सुन्दर वचनों से कहा–––

सुनहु सबै सज्जन समुदाया। सुर मुनि नाग मनुज मन लाया ॥
करि अति कृपा सबहिं इत आये। दरशन दिये भाव भरि भाये ॥

हे देवता, मुनि, नाग, मनुष्य आदि सभी सज्जन वृन्द! आप ध्यान पूर्वक श्रवण करें, आप लोगों ने यहाँ आकर अत्यधिक कृपा की है, जो भावों में भर कर हमें अपने सुन्दर दर्शन प्रदान किये हैं।

पाणि जोरि प्रणवौं सब काहू। याचहुँ कृपा सबहिं पतियाहू ॥
आपन तन्त्र राज यह मानी। अभय रहहिं नित मम सत बानी ॥

मैं आप सभी को हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ तथा आपके कृपा की भीख माँगता हूँ। आप सभी मेरे वचनों पर प्रतीति करें। इस राज्य व्यवस्था को, आप सभी स्वयं के द्वारा ही चालित समझिये तथा नित्य निर्भय रहिये। ये मेरे वचन सर्वथा सत्य है।

त्रिभुवन आनँद भरे उछाहा। रहहिं नाग नर सुर मन माहा ॥
सपनेहु शोक पाप दुख दोषा। होइय नहिं जग हृदय भरोसा ॥

आप सभी त्रिलोक निवासी नाग, मनुष्य और देवतागण, अपने मन में महान आनन्द पूर्वक निवास करिये। मेरे हृदय में अतिशय प्रतीति है कि –स्वप्न में भी त्रिलोक मे शोक, पाप, दुख और दोष नहीं होंगे।

ह्वै निर्बैर जगत तिहुँ प्राणी। सुख सह चरहिं शान्ति हिय आनी ॥
वेद धर्ममय सब जग जीवा। बनैं रहैं मुद मंगल सीवा ॥

तीनों लोकों के प्राणी (देवता, मनुष्य और नाग) आप सभी द्वेष रहित होकर, सुख पूर्वक हृदय में शान्ति धारण किये विचरण करते रहें। आप, संसार के सभी जीव वेद व धर्म की मर्यादा का पालन करते हुये आनन्द और मंगल की पराकाष्ठा बने रहें।

दो0– त्रिभुवन महँ जग जीव जे, सुर नर नाग सुहाय ।
तनिकहुँ कारज जो परै, कहिहैं मोसन आय ॥५७॥

तीनों लोकों में जो देवता, मनुष्य और नाग आदि जीव हैं, उनमें से यदि किसी का किंचित भी कार्य आ पड़े तो आकर निस्संकोच मुझसे कहियेगा।

सब प्रकार सुठि सेव निबाही। करिहौं सुखी अन्यथा नाही ॥
देह प्राण धन राज समाजा। जानहु सब मम परहित काजा ॥

मैं सभी प्रकार से सेवा का सुन्दर निर्वाह करता हुआ आप सभी को सुखी करुँगा। ये मेरे वचन अन्यथा नहीं है। आप सभी यह जान लीजिए कि–मेरा शरीर, प्राण, धन, राज्य और समाज सभी कुछ दूसरों के हित के लिये ही है।

तजि संकोच शुभ आयसु दैहैं। सेवक जानि सदा अपनैहैं ॥
राज सम्हार करत त्रुटि होई । देहिं जनाय निडर मोहि सोई ॥

अतः आप सभी संकोच त्यागकर शुभ आज्ञा देते रहियेगा तथा अपना सेवक समझकर मुझे सदैव अपनाये रहियेगा। यदि मुझसे राज्य संचालन में कोई त्रुटि होने लगे तो आप निर्भय होकर मुझे बता दीजियेगा।

सुर मुनि विप्र दास कर दासा। अहौं सदा सत बचन प्रकाशा ॥
आत्मा मोर जगत सब अहई । आनँद पगै चाह हिय महई ॥

मैं अपने सत्य बचन प्रकाशित कर रहा हूँ कि– मैं तो सदैव देवताओं, मुनियों और ब्राह्मणों के सेवकों का भी सेवक हूँ। पुनः यह सम्पूर्ण संसार मेरी आत्मा है। अतः सभी जीव आनन्द में मग्न रहें, यही महान अभिलाषा मेरे हृदय में हैं।

सुर मुनि सब जिय जानन हारे। अधिक कहौं का बात बढ़ारे ॥
आशिष देहु सबै मिलि एहू। मंगलमय जग दिखै सनेहू ॥

वार्ता का अधिक विस्तार कर, मैं अब क्या कहूँ? क्योंकि आप सभी देवता व मुनिगण मेरे हृदय को जानने वाले हैं। अब आप सभी मिलकर मुझे आशीर्वाद दें कि– यह सम्पूर्ण संसार स्नेह परिपूर्ण व मंगलमय दिखाई देता रहे।

दो0– शीश झुकाये राम सिय, जोरे अभयद पानि ।
देखत सुर वरषे सुमन, जय कहि कृपा निधानि ॥५८॥

इस प्रकार श्री सीताराम जी को शिर झुकाये व अपने अभय प्रदान करने वाले हस्त कमल जोड़े हुए देखकर देवता कृपा निधान श्री सीताराम जी महाराज की जय, कहते हुए पुष्पों की वर्षा करने लगे।

अभय ज्ञान मुद्रा दिखराई । सबहिं अभय किय ज्ञान दृढ़ाई ॥
बहुरि प्रीति मुद्रा रस पागे । सबहिं दिखाये प्रभु अनुरागे ॥

तदनन्तर प्रभु श्री राम जी महाराज ने अपनी अभय प्रदायिनी ज्ञानमयी मुद्रा दिखाकर, सभी के ज्ञान को दृढ़ बनाकर अभय कर दिया। पुनः रस में डूबे हुए प्रभु श्री राम जी महाराज ने अनुराग पूर्वक सभी को अपनी प्रेममयी मुद्रा का दर्शन कराया।

देखि देखि त्रैलोक निवासी । पगे प्रेम प्रिय प्रीति प्रकाशी ॥
राज तिलक अति आनँद छाया । त्रिभुवन भूमि अकाश अमाया ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज की मुद्राओं का दर्शनकर, सभी त्रिलोक निवासी प्रिय प्रीति का प्रकटीकरण करते हुए प्रेम–परिप्लुत हो गये। इस प्रकार श्री राम जी महाराज के राज्याभिषेक का अत्यानन्द भूमि और आकाश में परिव्याप्त हो गया।

राज सदन घर घर पुर माहीं । मंगल गान सुवाद्य सुनाहीं ॥
राम निछावर सब कोउ कीन्हे । कहि न जाय जस कोटिक दीन्हे ॥

उस समय राज महल और श्री अयोध्यापुरी में प्रत्येक भवन में मांगलिक गान तथा सुन्दर बाद्यों की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। सभी ने श्री राम जी महाराज की न्योछावर की, उनकी उस न्योछावर का बखान नहीं किया जा सकता, उन सभी ने करोड़ों प्रकार की अनगिनत सामग्री न्योछावर में दी।

मणिगण द्रव्य परे पथ माहीं । लेवनहार रहा कोउ नाहीं ॥
भरे भाव भल सुर सुख पाये । किय कबार हठि वेष छिपाये ॥

मार्गो मे मणि–माणिक्य और धन–धान्य आदि बिछे पड़े थे उन्हें लेने वाला कोई भी नहीं था। उस समय अपने वेष को छिपाकर सुखपूर्वक सुन्दर भाव में भरकर देवताओं ने उन्हे एकत्रित कर लिया।

दो0– राज तिलक सुख जस भयो, कहहिं न शारद शेष ।
बुद्धि मलिन जग विषय रत, मैं किमि कहौं अशेष ॥५९॥

श्री राम जी महाराज के राज्याभिषेक में जो आनन्द हुआ उसका बखान श्री सरस्वती जी व श्री शेष जी भी नहीं कर सकते, फिर मलिन बुद्धि, संसारी विषयों में आसक्त मैं, उस महानतम आनन्द का बखान किस प्रकार कर सकता हूँ।

प्रभु इच्छा लहि सबहिं समाजा । सुर नर मुनि जे सभा सुभ्राजा ॥
निमिष एक आकाशहिं देखे । सब कोउ दशरथ नृपति विशेषे ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज की इच्छा से, सभा में उपस्थित सभी देवता, मुनि व मनुष्य समुदाय ने एक पल के लिए आकाश में विशेष रूप से चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज का दर्शन किया।

देखतहिं पुनि तहँ गये बिलाई । कोउ न जान सब मन भ्रम छाई ॥
सीता रामहु दरशन लीन्हे । पुनि प्रणाम मन ही मन कीन्हे ॥

पुनः सभी के देखते ही वे अन्तर्ध्यान हो गये, कोई भी इस रहस्य को नहीं समझ सका तथा सभी लोगों के मन में एक प्रकार का संदेह छा गया। श्री सीताराम जी ने भी उनके दर्शन किये व उन्हे

मन ही मन में प्रणाम किया।

चाहेव उठन दरश नहि पावा। रघुवर मन महँ विस्मय आवा॥
गुरु वशिष्ठ सब कहँ समुझाये। सुनि सब संशय शोक भगाये॥

श्री राम जी महाराज उठना ही चाहते थे परन्तु पुनः उनका दर्शन वे नहीं कर पाये, जिससे श्री राम जी महाराज के मन में महान आश्चर्य हुआ। तब रघुकुल आचार्य श्री बसिष्ठ जी ने सभी लोगों को समझाया जिसे सुनकर सभी ने अपने हृदय से संदेह और शोक को दूर कर दिया।

दशरथ चिदाकाश सुख रूपा। यदपि बने सब भाँति अनूपा॥
प्रेमाभक्ति तदपि हिय माँही। रही राम प्रति अकथ अथाहीं॥

यद्यपि सभी प्रकार से अनुपमेय चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज सुख स्वरूप बने हुए अपने चिदाकाश में स्थित थे तथापि उनके हृदय में श्री राम जी महाराज की अकथनीय और अपरिमेय प्रेमा भक्ति भरी हुई थी।———

दो0— सत चिद आनँद गगन महँ, सत चिद आनँद भूप।
सूक्ष्म वासना प्रेम ते, देखे रघुपति रूप॥६०॥

———अतः सच्चिदानन्द स्वरूप चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने अपनी सूक्ष्म वासना व राम—प्रेम के कारण अपने सच्चिदानन्दमय आकाश में रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज का दर्शन किया है।

राज तिलक लखिवे की आशा। रही भूप हिय सूक्ष्म विकाशा॥
तादृश तिलक सियावर केरा। देखे दशरथ सुखद सुबेरा॥

क्योंकि श्री राम जी महाराज का राज्याभिषेक दर्शन करने की लालसा चक्रवर्ती जी महाराज के हृदय में सूक्ष्म रूप (बीज रूप) से विद्यमान थी जो समय प्राप्तकर विकास को प्राप्त हो गयी। इसीलिए उन्होने श्री सीताराम जी महाराज के सुख प्रदायक राजतिलक का शुभ अवसर में दर्शन किया।

आवागमन भयों कहु नाही। देखेउ सब चिद गगनहिं माहीं॥
नृप संकल्प कियो मन ऐसा। देखहिं मोहिं सब पूरब जैसा॥

परन्तु उनका कहीं भी आवागमन (आना जाना) नहीं हुआ। उन्होंने सभी कुछ अपने चिदाकाश में ही दर्शन किया है। पुनः चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने अपने मन में ऐसा संकल्प किया कि मेरा दर्शन सभी लोग पूर्व के समान ही करें।

सत्य काम भूपति अनुसारा। देखे सब कोउ पूर्व प्रकारा॥
पूर वासना करि हिय केरी। नृपति न दीख परे दृग हेरी॥

अतः चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज की सत्य कामना के अनुसार सभी लोगों ने उनका पूर्ववत दर्शन किया है। इस प्रकार अपने हृदय की अभिलाषा पूर्ण कर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज पुनः दिखायी नहीं पड़े।

सतचिद आनंद दिव्य स्वधामा । राज रहे नृप ललित ललामा ॥
सुनि बसिष्ठ की यह वर बानी । परम ज्ञानमय अहं नसानी ॥

अन्यथा चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज तो अपने सच्चिदानन्दमय दिव्य सुन्दरातिसुन्दर धाम श्री साकेत में विराज रहे हैं। रघुकुल आचार्य श्री बसिष्ठ जी की यह परम ज्ञानमयी तथा अहंकार विहीन सुन्दर वाणी श्रवणकर,

दो0– समाधान सब हिय भयो, नृपतिहिं बहुत सराह ।
युगल रूप अपलक लखहिं, मन महँ महा उमाह ॥६१॥

सभी के हृदय का शोक व संदेह समाधान को प्राप्त हो गया तथा वे चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज की विविध प्रकार से प्रशंसा करते हुए, मन में महान आनन्द पूर्वक, निर्निमेष युगल छबि श्री सीताराम जी का दर्शन करने लगे।

भई तिलक विधि जबहीं पूरी । त्रिभुवन आनन्द मंगल भूरी ॥
सीता राम सिहांसन उतरे । किय प्रणाम सुर मुनिन सुपगरे ॥

राज्याभिषेक की प्रक्रिया जैसे ही पूर्ण हुई वैसे ही तीनों लोकों में भरपूर आनन्द व मंगल छा गया। तदनन्तर श्री सीताराम जी ने सिंहासन से उतर कर प्रेम में पगे हुए देवताओं और मुनियों को प्रणाम किया।

सब कहँ पुनि पुष्पांजलि दीन्हे । दरश भाग प्रभु वरणन कीन्हे ॥
सुर मुनि लखि लखि राम स्वभावा । होत मगन मन प्रभु गुण गावा ॥

पुनः श्री रामजी महाराज ने सभी को पुष्पांजलि अर्पित की तथा बोले– मेरे सौभाग्य से ही आप सबके दर्शन सुलभ हुए हैं। देवता और मुनिगण श्री राम जी महाराज के स्वभाव को देख देखकर मन–मग्न हो गये तथा प्रभु श्री राम जी के गुणों की सराहना करने लगे कि–––

जन मानद रघुपति गुणशीला । अकथनीय रसमय सब लीला ॥
बहुरि राम गुरु आज्ञा पाई । यज्ञ थलहिं आये हरषाई ॥

–––हे श्री राम जी महाराज! आप तो अपने सेवकों को भी सम्मान प्रदान करने वाले व समस्त श्रेय गुणों के भण्डार हैं, आपकी सम्पूर्ण लीला अवर्णनीय और रसमयी है। तदुपरान्त श्री राम जी महाराज गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी की आज्ञा प्राप्तकर हर्ष पूर्वक यज्ञ स्थली आ गये।

सीय सहित दिय आहुति पूजा । प्रीति समेत नाम सुर गूँजा ॥
विधि हरि हर सुरपति शशि भानू । सब ग्रह सहित पाय बहु मानू ॥

यज्ञ स्थल में श्री सीता जी सहित श्री राम जी महाराज ने नाम ले लेकर देवताओं का पूजन किया व आहुति प्रदान की। उस समय श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शंकर जी व चन्द्रमा, सूर्य आदि सभी ग्रहों सहित देवराज इन्द्र ने, श्री सीताराम जी से अत्यधिक आदर प्राप्त किया।

दो०– पूजा लेवहिं प्रेम पगि, राम सिया के हाथ ।
परमानँद होवहिं मगन, मानत निजहिं सनाथ ॥६२॥

वे सभी प्रेम प्रेम परिप्लुत होकर श्री सीताराम जी के हाथों से अपनी पूजा ग्रहण कर रहे थे तथा परमानन्द में मग्न हो स्वयं को सनाथ मान रहे थे।

लहि पूजा सब देव सिधाये । राम अरुन्धति के ढिग आये ॥
करि प्रणाम पूजा बहु कीन्नी । पाये आशिष शक्ति बलीनी ॥

श्री राम जी महाराज के हाथ से सभी देवता पूजा भाग प्राप्त कर प्रसन्न हो प्रस्थान कर गये। अनन्तर श्री राम जी महाराज गुरुमाता श्री अरुन्धती जी के समीप आये और प्रणाम कर उनका विविध प्रकार से पूजन किये। श्री गुरुमाता द्वारा आत्म–शक्ति विवर्धक बलवती आशीष प्राप्त किये।

राम सिया पुनि मातन वन्दे । अभिमत आशिष अकनि अनन्दे ॥
जनक सुनैनहिं मिलि पुनि दोऊ । पाये आशिष मन मुद मोऊ ॥

तत्पश्चात् श्री सीताराम जी ने अपनी माताओं की वन्दना की तथा उनसे मनोभिलषित आशीर्वचन श्रवण कर आनन्दित हुए। पुनः वे दोनों श्री मिथिलेश जी महाराज व अम्बा श्री सुनैना जी से भेंटकर आशीर्वाद प्राप्त किये तथा मन में आनन्द से ओत–प्रोत हो गये।

बार बार विप्रन सतकारी । दान मान करि विनय सुखारी ॥
उपरत भे सब विधिहिं निवाहीं । त्रिभुवन पूरण काम लखाहीं ॥

श्री सीताराम जी ने बारम्बार ब्राह्मणों का सत्कार किया और उन्हें सम्मान पूर्वक विविध दान देकर विनम्र प्रार्थना करते हुए सुखी किया। जब श्री सीताराम जी सभी नियमों का निर्वाह कर निवृत्त हुए तब उनका दर्शन कर त्रिलोक निवासी पूर्णकाम दिखाई देने लगे।

सुर नर मुनि आश्चर्य प्रदायक । सुखमय उत्सव भयो महायक ॥
घर घर जागहिं नर अरु नारी । निशा भई मुद मंगलकारी ॥
मंगल गान नृत्य हरषाया । पुरहिं होत निज देह भुलाया ॥

श्री राम राज्याभिषेक के अवसर पर देवताओं, मनुष्यों और मुनियों को आश्चर्यान्वित कर देने वाला अनन्त सुख प्रदायी महोत्सव हुआ। जिसमें प्रत्येक गृह में पुरुष और स्त्रियाँ जागरण कर रहे थे, रात्रि आनन्द और मंगल दायिनी हो गयी थी, श्री अयोध्यापुरी में हर्षपूर्वक मांगलिक गीत व नृत्य हो रहे थे जो श्रवणवन्तों की शरीर स्मृति भुला देने वाले थे।

दो०– बाजहिं बाजन विविध विधि, घर घर मंगल चार ।
अवधपुरी सुख सों सनी, बहति हिये रसधार ॥६३॥

उस समय श्री अवधपुरी में विभिन्न प्रकार के बाजे बज रहे थे, प्रत्येक घर में मंगलचार हो रहा था तथा वह पुरी सुख में डूबी हुई थी, उसके हृदय में आनन्द रस की धारा प्रवाहित हो रही थी।

पंच शब्द धुनि भूमि अकाशा । व्याप रही मुद मंगल वासा ॥
यहि प्रकार रघुपति पद राजा । बैठे आनँद मंगल साजा ॥

पुरी में आनन्द और मंगल की खानि पंचध्वनि (जय ध्वनि, बन्दी ध्वनि, वेदध्वनि,मंगल गीत ध्वनि व निशान ध्वनि) भूमि व आकाश में छायी हुई है। इस प्रकार से आनन्द व मंगल स्वरूप रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज श्री अयोध्या पुरी के राज्य पद में प्रतिष्ठित हो गये।

नित नव आनँद पुर महँ होई । अहनिशि जात न जानै कोई ॥
अवधपुरी आनँद अहिराजा । वरणि सकैं नहिं शिव गणराजा ॥

श्री अयोध्यापुरी में नित्य नवीन आनन्द हो रहा था, वहाँ दिन और रात्रि कैसे व्यतीत हो रहे हैं कोई नहीं जान पा रहा था। श्री अयोध्यापुरी के महान आनन्द का वर्णन सहस्त्र मुख वाले श्री शेष जी, श्री शंकर जी और श्री गणेश जी भी नहीं कर सकते।

राज तिलक लखि बानर जूहा । आनँद मगन भालु वर व्यूहा ॥
सुर नर नाग नृपति जे आये । गवने निज निज सदन सुहाये ॥

श्री राम जी महाराज का 'राजतिलक' देखकर वानर और भालुओं का सुन्दर समूह आनन्द में मग्न हो गया। समागत देवता, मनुष्य, नाग और राजागण अपने अपने सुन्दर भवनों को प्रस्थान कर गये।

निज समाज सह जनक भुआरा । रहे कछुक दिन अवध मँझारा ॥
एक दिवस मन चाह जनाई । बोले रघुपति सन पुलकाई ॥

अपने समाज सहित श्री जनक जी महाराज कुछ दिनों तक श्री अयोध्यापुरी में निवास किये तथा एक दिन वे अपने मन की इच्छा प्रगट करते हुए, पुलकित हो, श्री राम जी महाराज से बोले।

छं0– तन पुलकि भूपति भाव भरि, बोले सुनहु रघुवीर हे ।
तव दरश चाहति मम पुरी, विरहाग्नि झुलसी धीर हे ॥
दिखराय दोहन शान्ति प्रिय, मुख मधु अमल आनन्द प्रद ।
हिय ताप मेटहु तात चलि, हरषण दसाये आँख वद ॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–पुलकित शरीर श्री जनक जी महाराज भाव में भरकर श्री राम जी महाराज से बोले– हे रघुकुल प्रवीर श्री राम जी! सुनिये, आपके वियोगाग्नि में दग्ध हुई, हमारी श्री मिथिलापुरी आपके दर्शन की अभिलाषा करती हुई, धैर्य धारण किये हुए है। अतः हे तात! आप वहाँ चलकर, उसे अपने शान्ति का दोहन करने वाले, प्रियकर व मधुश्रावी निर्मल चन्द्रानन का दर्शन दान देकर, उसके हृदय की जलन को शान्त कर दीजिये, क्योंकि वह आपके दर्शन की प्रतीक्षा में नेत्र पाँवड़े बिछाये हुए याचना कर रही है।

सो0–वानर भालु समेत, लीन्हे अवध समाज सब ।
गवनहिं मोर निकेत, अस आसा हिय बढ़ रही ॥६४॥

आप अपने वानर भालु सखाओं सहित श्री अयोध्यापुरी का सम्पूर्ण समाज लेकर मेरे भवन पधारें, मेरे हृदय में यही इच्छा बृद्धि को प्राप्त कर रही है।

चौदह वर्ष अधिक है गयऊ। बिना दरश मिथिला दुखमयऊ ॥
अस विचारि करि कृपा महानी। मिथिला चलहिं जो प्रभु मन मानी ॥

हे तात श्री राम भदं जी! चौदह वर्षो से भी अधिक समय हो गया है, कि श्री मिथिलापुरी आपके अदर्शन से दुख स्वरूप हो गयी है। ऐसा विचार, अत्यधिक कृपा कर, यदि आपके मन की रुचि हो तो श्री मिथिलापुरी को चलिये।

राम कहा कुँअरहुँ कह मोही। सिद्धि सुनयना पुनि मन जोही ॥
मोरहु मन पेखन प्रिय मिथिला। आतुर होत लखे बिन शिथिला ॥

श्री राम जी महाराज ने कहा कि– कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने भी मुझसे यही निवेदन किया है, पुनः श्री सिद्धि कुँअरि जी व अम्बा श्री सुनयना जी के मन में भी यही भावना दिखाई देती है। मेरा मन भी प्रिय श्री मिथिलापुरी के दर्शन हेतु आतुर है तथा उसके अदर्शन से शिथिल हो रहा है।

राउर आयसु पुनि शिर मोरे। अवशि चलहुँ मिथिलहिं रस बोरे ॥
जाय सभा गुरुवरहिं सुनाई। जनक कहाउति मन सरसाई ॥

पुनः आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है अतः मैं वहाँ के प्रेमरस में ओत–प्रोत हो अवश्य ही श्री मिथिलापुर चलूँगा। तदनन्तर सभा में जाकर श्री राम जी महाराज ने श्री जनक जी महाराज के कहे हुए बचनों को आनन्दपूर्वक गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी को सुना दिया।–––

अवशि जान हित कहे बशिष्ठा। पुरहिं देन सुख शान्ति घनिष्ठा ॥
राम भरत लछिमनहिं बुलाई। मिथिला गवनब बात चलाई ॥

–––जिसे श्रवण कर श्री बसिष्ठ जी ने कहा कि– श्री मिथिलापुरी को महान सुख, व शान्ति प्रदान करने हेतु आपको अवश्य ही जाना चाहिए। तदुपरान्त श्री राम जी महाराज ने श्री भरत जी और श्री लक्ष्मण कुमार जी को बुलाकर श्री मिथिलापुरी चलने की वार्ता की।

दो0–चलन साज साजन कहेव, सब विधि सुखद सुहात।
सुनि प्रभु आयसु सचिव सब, कीन प्रबन्ध सुभात ॥६५॥

पुनः श्री राम जी महाराज ने श्री मिथिलापुरी प्रस्थान हेतु सभी प्रकार से सुखप्रदायी सामग्री सजाने की आज्ञा दी। प्रभु श्री राम जी की आज्ञा श्रवणकर मंत्रियों ने सभी प्रकार के शुभप्रद प्रबन्ध कर दिये।

परम कौतुकी राम कृपाला। बोलि पठाये कपि तेहिं काला ॥
हनुमदादि सब वानर आये। कपि पति अंगद प्रभु मन भाये ॥

परम लीलामय कृपालु श्री राम जी महाराज ने, उस समय सभी बानर सखाओं को बुलाया तब श्री हनुमान जी, वानरराज श्री सुग्रीव जी व श्री अंगद जी आदि सभी प्रभु मनभावने वानर सखागण श्री राम जी के समीप आ गये।

जामवन्त निशिचर कुल भूषण । शीश नवाये रविकुल पूषण ॥
किये राम सब कर सतकारा । बहुरि विहँसि कह प्राण अधारा ॥

श्री जामवन्त जी व राक्षस कुल के अलंकार श्री विभीषण जी आदि सखाओं ने आकर, सूर्यकुल को प्रकाशित करने वाले सूर्य श्री राम जी महाराज को शिर झुका प्रणाम किया। श्री राम जी महाराज ने सभी का सत्कार किया। पुनः सभी के प्राणाधार प्रभु श्री राम जी महाराज ने मधुर हास्य विखेरते हुए कहा–

जनक सुवन ये हमरे श्याला । चहत जान मिथिला येहिं काला ॥
लीन्हे हमहिं जात निज साथा । करन पहुनई निमिकुल नाथा ॥

हमारे प्रिय श्याल ये जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी! इस समय श्री मिथिलापुरी प्रस्थान करना चाहते हैं तथा निमिकुल नरेश श्री मिथिलेश जी महाराज, पहुनाई (आतिथ्य) करने के लिए अपने साथ हमें भी लिये जा रहे हैं।

बानर भालु चहत लै जाना । अवध समाज सहित सुख साना ॥
तहाँ एक असमंजस भाई । सुनहु सकल तुम कपि समुदाई ॥

ये श्री मिथिलेश जी महाराज अयोध्यापुरी के समाज सहित सुख पूर्वक, आप सभी वानर, भालु सखागणों को भी श्री मिथिलापुरी ले जाना चाहते हैं। परन्तु हे भ्राताओ! उसमें एक कठिनाई है, जिसे हे सम्पूर्ण वानर समाज, आप, सभी श्रवण करें–––

दो0– पर पुर पुनि ससुरारि मम, पुनि नागर सब लोग ।
सकल तिया जहँ नागरी, तुम्हारो जाब अयोग ॥६६॥

श्री मिथिलापुरी प्रथम तो दूसरे का नगर (राज्य) है, दूसरे मेरी श्वसुर–पुरी है, तीसरे वहाँ के सभी निवासी सभ्य और सुशिक्षित हैं। पुनः वहाँ की सभी पुरांगनायें भी सभ्य व सुशिक्षित हैं, अतएव आप लोगों का वहाँ जाना उचित नहीं है।

तुमहिं लिवाय जनकपुर जाई । हँसिहैं सिगरे लोग लुगाई ॥
लखि तुम्हार कपि चंचलताई । को न हँसी मोहि देहु बताई ॥

यदि मैं आप सभी को लेकर श्री जनकपुरी जाता हूँ तो वहाँ के सभी स्त्री–पुरुष मेरा उपहास करेंगें। आप लोगों की वानर देह सुलभ चंचलता को देख–देखकर, आप ही कहिये कि– कौन? मेरा उपहास नहीं करेगा।

वानर भालु रूप लखि सिगरे । डरि डरि सुभग नारि नर भगरे ॥
याते तुमहिं न जाउँ लिवाई । सहन पराभव शक्ति न भाई ॥

आप सभी के वानर और भालु स्वरूप को देख–देखकर नगर के सभी सुन्दर स्त्री–पुरुष भयभीत होकर इधर–उधर भाग जायेंगे। इसलिए मैं आप सभी को श्री मिथिलापुरी नहीं ले जाऊँगा। क्योंकि मुझमें अपना अपमान सहने की शक्ति नहीं है।

सुनि मृदु वचन सकल कपि सरसे । किलकिलाय अति ही हिय हरषे ॥
पानि जोरि बोले कपि भालू । सुनहु स्वामि रिछ बानर पालू ॥

श्री राम जी महाराज के मधुरतम वचनों को श्रवणकर सभी वानरगण अत्यानन्दित हुए तथा प्रसन्नता के आधिक्य में किलकारी मारने लगे। पुनः बन्दर, भालु सखाओं ने हाथ जोड़कर कहा– हे वानर–भालुओं का पालन करने वाले स्वामी! सुनिये।

अब तो बात फैलिगै स्वामी । बनै न कोटिन खर्चे दामी ॥
बानर मीत तुमहिं कहि रामा । जगत पुकारै सुनु सुख धामा ॥

हे नाथ! अब तो वानर भालुओं का पालन करने वाली बात सम्पूर्ण संसार में प्रसारित हो गई है और करोड़ों सम्पति खर्च करने पर भी नहीं बन सकती। हे सुख के धाम, श्री राम जी महाराज! सुनिये, अब तो आपको, यह समस्त संसार वानर भालुओं का ही सखा कह कर पुकारता है।

दो0– राम चन्द्र श्री अवधपति, कहिबो सुर मुनि त्याग ।
करहिं सुचरचा अण्ड भरि, भालु कपी अनुराग ॥६७॥

तभी तो आपको देवताओं व मुनियो ने श्री अयोध्यानाथ व श्री रामचन्द्र जी महाराज कहना त्यागकर आपके वानर व भालुओं के सुन्दर प्रेम की ही चरचा सभी ब्रह्माण्डों में करते रहते हैं।

अब नहि बनी छिपाये नाथा । ताते विनवहिं पद धरि माथा ॥
मिथिला पुर पेखन अति नेहा । हम सब कर प्रिय मातुल गेहा ॥

हे नाथ! अब तो छिपाने से भी बात नहीं बनने वाली अतएव हम आपके श्री चरणों में अपने मस्तक रखकर प्रार्थना करते हैं कि– हमें अत्यन्त प्रेम पूर्वक अपने प्रिय मातुल भवन (मामा का घर) श्री मिथिलापुरी का दर्शन करने हेतु–––

चलिय लिवाय साथ रघुराई । जस कहिहैं करिहैं सचुपाई ॥
राम कहा नहिं जाउँ लिवाई । हानि बड़ी सुनियो सब भाई ॥

–––अपने साथ हमें भी ले चलिये। हे, श्री रघुकुल के स्वामी! आपका हमें जैसा निर्देश होगा, शान्त होकर हम वैसा ही आचरण करेंगे। तब श्री राम जी महाराज ने कहा कि– मैं आप लोगों को लेकर नहीं जाऊँगा, क्योंकि हे भाइयों! ऐसा करने में मेरी महत् हानि है।

मिथिला पुरी मनोहर बागा । बहुत अहैं वितरत अनुरागा ॥
निज स्वभाव वश ताहि उजारी । पर पुर मोहि दिवैहै गारी ॥

पुनः श्री मिथिलापुरी में मनोहारी व अनुराग वितरणकारी बहुत से सुन्दर बाग हैं। आप लोग अपने स्वभाव के वशीभूत हो उन्हें तोड़ व उजाड़ कर, दूसरे के राज्य में मुझे गालियाँ दिलवायेंगे।

मन आवै कहुँ छाह विलोकी । दरशहिं तोरिहै होव अशोकी ॥
परम कौतुकी राम पियारे । नहि निज साथ लेन मन धारे ॥

यदि आप लोगों की इच्छा हो गयी तो रत्न जड़ित भीतियों में लगे दर्पण में अपना प्रतिविम्ब

देखकर प्रसन्नता के अतिरेक में दर्पण ही तोड़ देंगे। इस प्रकार परम क्रीड़ामय व सर्व प्रिय श्री राम जी महाराज ने मन में वानर भालुओं को अपने साथ न लेने का निश्चय कर लिया।

दो0–हनूमान तहँ निबुकि कै, गयो सिया के वास ।
माथ नाय कर जोरि दोउ, ठाढ़ भयो प्रिय दास ॥६८॥

ऐसा समझ कर श्री राम जी महाराज के प्रिय सेवक श्री हनुमान जी वहाँ से भागकर, शीघ्रता पूर्वक श्री सिया जू के महल गये तथा उन्हें मस्तक झुका प्रणामकर, करबद्ध खड़े हो गये।

बोली सिया कहहु हनुमाना । कत इत आये अति अतुराना ॥
कह कपि सुनिबी मातु किशोरी । मिथिला देखन अति रुचि मोरी ॥

श्री हनुमान जी को असमय में आये व शिर झुकाये हुये देखकर, श्री सीता जी ने कहा– कहिये श्री हनुमान जी! आप यहाँ अत्यन्त आतुरता पूर्वक किस हेतु आये हैं। श्री हनुमान जी ने कहा– हे अम्बे, जनक किशोरी श्री सिया जी, सुनिये, आपकी मातृपुरी श्री मिथिलापुरी का दर्शन करने की मेरी प्रबलतम इच्छा है।

तव नैहर श्री मातुल भवना । पाई आनन्द लखि सुत पवना ॥
हँसी भीत रघुवीर गोसाँई । कपिगन चलब न देहिं रजाई ॥

आप श्री की पितृपुरी व हमारे मामा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का भवन देखकर यह पवन नन्दन हनुमान अतिशय आनन्द प्राप्त करेगा। परन्तु, रघुकुल प्रवीर, मेरे स्वामी श्री राम जी महाराज उपहास के भय से बन्दर व भालुओं को साथ चलने की आज्ञा नहीं दे रहे हैं।

ताते श्री चरणन महँ दासा । आय परेव करि बहु मन आसा ॥
जस चाहैं तस कीजिय माता । कृपा रूपिणी जन सुखदाता ॥

अतएव यह दास अपने मन में अत्यधिक अभिलाषा लेकर, आपके श्री चरणों में आकर पड़ा हुआ है। हे कृपा स्वरूपिणी, अपने सेवकों को सुख प्रदान करने वाली, अम्बा जी, अब, आप की जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिए।

बोली जनक लली अनुरागी । चलहु साथ हमरे बड़ भागी ॥
जानि राम कर कौतुक सीता । दीन्ही आयसु अमल अभीता ॥

श्री हुनमान जी के विनय पूर्ण बचनों को श्रवण कर, जनक दुलारी श्री सिया जी ने प्रेम पूर्वक कहा– हे बड़ भागी श्री हनुमान जी! आप हमारे साथ चलिये। हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– श्री सीता जी ने इसे श्री राम जी महाराज का क्रीड़ा विलास समझ कर ही, निर्भय होकर, श्री हनुमान जी को निर्मल आज्ञा प्रदान की है।

दो0–शीश नाइ हनुमान तब, बोले हिय सुख छाय ।
जो आयसु हरषित दई, लिखहिं सुपत्र बनाय ॥६९॥

तदनन्तर श्री हनुमान जी ने शिर–नत हो, हृदय में सुखानुभव करते हुए कहा – हे श्री अम्बा जी! यदि आपने हमें हर्ष पूर्वक आज्ञा प्रदान की है, तो उसे एक पत्र बनाकर लिख दीजिए।–––

सभा विराजे रघुवर रामा। जाय दिखावौं पत्र ललामा॥
पाय मातु मत हम प्रभु संगा। जैहैं मिथिला प्रीति अभंगा॥

जिससे दरबार में पहुँचकर मैं, राज्य सभासीन श्री राम जी महाराज को वह सुन्दर पत्र दिखाऊँ– कि हम अपनी माता श्री जानकी जी की आज्ञा पाकर, अटूट प्रेम पूर्वक अपने स्वामी श्री राम जी महाराज के साथ श्री मिथिलापुरी प्रस्थान करेंगे।

कौतुक आनँद देवन हेता। लिखी पत्र सिय कृपा निकेता॥
करि प्रणाम हनुमत द्रुत आये। प्रभु कर दीन्हे पत्र सुहाये॥

अपने प्रभु श्री राम जी महाराज की क्रीड़ा में आनन्द (सहयोग) प्रदान करने के लिए, श्री सिया जू ने, कृपा के धाम श्री राम जी महाराज को पत्र लिख दिया। पत्र पाने के बाद, अम्बा श्री सीता जी को दण्डवत प्रणाम कर, श्री हनुमान जी शीघ्र ही राज्य सभा में आ गये और प्रभु श्री राम जी महाराज के कर–कमल में सुन्दर पत्र दे दिये।

बाँचि पत्र प्रभु मुख मुसकाई। बोले अधिक सनेह छिपाई॥
मोर बचन तजि सिय सन वीरा। आज्ञा लीन्हेव किमि मति धीरा॥

पत्र को पढ़कर प्रभु श्री राम जी महाराज, प्रेमाधिक्य छिपाते हुए मुस्कुराकर बोले– हे धीर बुद्धि श्री हनुमान! आप मेरे बचनों की अवहेलना कर, श्री सीता जी से किस प्रकार आज्ञा प्राप्त कर लिये।

शीश नवाय युगल कर जोरी। कीन्हे हनुमत विनय बहोरी॥
लरिका अरुझि करै नहिं पूरा। जबहिं बाप सुनियहिं विद शूरा॥
तब शिशु मातहिं के ढिग जाई। पूर करै निज चाह भलाई॥

शिर झुका प्रणाम कर, श्री हनुमान जी ने दोनो हाथ जोड़ प्रार्थना की– हे परम ज्ञानवान, वीर शिरोमणि श्री राम जी महाराज! सुनिये, जब पिता, बालक की रुचि को पूर्ण नहीं करता तब वह बालक अपनी माता के समीप जा कर, अपनी सुन्दर इच्छा पूर्ण करा लेता है।–––

दो0– पितु बच तजिबो शिशुहिं कहँ, तनिक न हिय महँ ज्ञान।
मातु सुप्यारहिं पाय सो, होय प्रसन्न महान॥७०॥

–––उस समय अबोध बालक को अपने हृदय में पिता के बचनों की अवहेलना का किंचित भी ज्ञान नहीं होता, वह तो अपनी माताजी के सुन्दर प्यार को प्राप्त कर अत्यधिक प्रसन्न हो जाता है।

सिय रजाइ प्रभु तुम्हरि रजाई। याते लेवहिं संग लिवाई॥
चलहु तात बल पाइ महाना। विहँसि कहेव प्रभु कृपा निधाना॥

हे नाथ! अम्बा श्री सीता जी की अनुमति तो आपकी ही अनुमति है, इसलिए आप हम सभी वानर भालुओं को अपने साथ ले चलें। तब कृपा के निधान प्रभु श्री राम जी महाराज ने हँसते हुए कहा, कि– हे तात! आप सभी तो प्रबल आश्रय रूप श्री सिया जी की अनुमति प्राप्त कर लिए हैं अतः हमारे साथ चलिये।

अब मम दोष नेक नहिं अहई। पुर की हानि सोइ सब सहई॥
जाके बल सब मिथिला गवनो। कहि न जाय भोगी सोइ लवनो॥

अब मेरा किंचित भी दोष नहीं है, क्योंकि श्री मिथिला पुरी की हानि को वे ही सब सहेंगी जिनके आश्रय से आप लोग श्री मिथिला पुरी चल रहे हैं। अब हमसे कुछ भी नहीं कहा जाता, वे ही आप सभी को ले चलने का परिणाम सहन करेंगी।

मिथिला पुर होइय बहु हानी। तब तहँ कहिहैं नहिं हम जानी॥
हम नहिं लाये कपि अरु भालू। जो लायो जानइ यहि कालू॥

जब श्री मिथिलापुरी में महान क्षति होगी तब हम कहेंगे कि– हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है, हम तो बन्दरों व भालुओं को लाये ही नहीं, इन्हें जो लाया है, वही, इस समय सभी कुछ जाने।

बोले बानर हम सुठि साधू। बन कर रहिहैं शान्त अगाधू॥
केवल प्रभु पद नित कैंकर्या। दरश परश करिहैं मन भर्या॥
और कछू नहिं करिहैं स्वामी। प्रभु प्रताप गइहैं अठयामी॥

तब सभी वानरों ने कहा– हे नाथ! हम सभी सुन्दर साधु भाव से शान्त और गम्भीर बने रहेंगे तथा मात्र प्रभु चरणों का दर्शन, स्पर्श व कैंकर्य करते हुए, नित्य मन में अघाये रहेंगे। हे नाथ! हम सभी आठों–याम केवल आपकी महिमा का गायन करते रहेंगे तथा अन्य कुछ भी वानरोचित व्यवहार नहीं करेंगे।

दो0– भूख लगी तब खाय कछु, जो पइहैं तित धाम।
गहिहैं उर संतोष अति, और न करिहैं काम॥७१॥

जब हमें छुधा सतायेगी तब उस नगर श्री मिथिला पुरी में जो कुछ भी प्राप्त होगा उसे ही अल्प परिमाण में खाकर हृदय में अत्यधिक संतोष धारण किये रहेंगे तथा अन्य कोई उपहासास्पद कार्य नहीं करेंगे।

प्रभु प्रसन्न मन राखन हेता। करिहैं यत्न धारि चित चेता॥
जस सेवा प्रभु चहिहैं लेनी। तस करिहैं हम आनन्द देनी॥

हे नाथ! हम सभी आपके मन को प्रसन्न रखने हेतु सजगतया उपाय करते रहेंगे और हमारे स्वामी आप, हमसे जैसी सेवा ग्रहण करना चाहेंगे, वैसी ही आनन्द प्रदायिनी सेवा हम करते रहेंगे।

तव इच्छा बाहर नहिं जइहैं। करिहैं सोइ सो नाथ करैहैं॥
मातुल घर देखन अति चाहा। रहै न रोके हे मम नाहा॥

हम सभी, कभी भी आपकी इच्छा के बाहर नहीं जायेंगे तथा हमारे स्वामी, हमसे जो कुछ कराना चाहेंगे, हम वही कार्य करेंगे। परन्तु, हे हमारे सर्व विधि–स्वामी! हमें अपने मामा, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का भवन दर्शन करने की अत्यधिक त्वरा है जो हृदय में रोकने पर भी नहीं रुक रही।

परम कौतुकी श्री रघुराई। विहँसे लखि सब कपिन ढिठाई॥
कौतुक प्रिय दोउ सेवक स्वामी। इक एकन हित प्रभु अनुगामी॥

परम क्रीड़ा प्रिय रघुनन्दन श्री राम जी महाराज वानर भालुओं की ऐसी ढिठाई (अनुचित साहस) को देखकर हँस दिये। हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– वे स्वामी और सेवक दोनों अत्यधिक लीला प्रिय, परस्पर हित कार्य में संलग्न व एक दूसरे की भावनाओं का अनुसरण करने वाले हैं।

हँसि हँसाय रघुपति सुख धामा । दीन्हे सब कहँ अति बिसरामा ॥
आयो समय करन प्रस्थाना । बाजे बाद्य विविध विधि नाना ॥

इस प्रकार सुख के धाम श्री राम जी महाराज ने हास्य विनोद कर सभी को अत्यधिक विश्रान्ति प्रदान की। इस भाँति श्री मिथिलापुरी प्रस्थान करने का समय आ गया और अनेक विधि से विभिन्न प्रकार के वाद्य बजने लगे।

दो0– गुरु महिसुर सेवक सचिव, सेनप सेन सुसाज ।
धनिक महाजन वृन्द कवि, सारी अवध समाज ॥७२॥

उस समय गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी, ब्राह्मणों, सेवकों, मन्त्रियों, सेना सहित सेनापतियों, धनिक वर्ग, व्यापारियों व कविगणों सहित श्री अयोध्यापुरी का सम्पूर्ण समाज–––

राम मातु सिय सह रनिवासा । दासी सोह अमित प्रिय दासा ॥
राम भ्रात सब सखन लिवाये । वानर भालुन साज सजाये ॥

–––असीमित प्रिय सेविकाओं व सेवकों से सुशोभित, विदेह राज नन्दिनी श्री सिया जू व सम्पूर्ण रनिवास सहित श्री राम जी महाराज की अम्बा महारानी श्री कौशिल्या जी, अपने सभी सखागणों को लिये हुए सुसज्जित बन्दर–भालुओं सहित श्री राम जी महाराज के भ्रातृगण,–––

पुहुप विमानहिं सबन्ह चढ़ाई । यथा योग थल सुखद सुहाई ॥
चढ़े स्वयं सुख कर सुखधामा । सोहत उच्चासन अभिरामा ॥

–––आदि सभी को 'पुष्पक–विमान' में, यथोचित सुखप्रद व सुन्दर स्थान में चढ़ाकर, सुख के धाम श्री राम जी महाराज सुखपूर्वक उसमें सवार हो गये और मनोरम उच्चासन में सुशोभित होने लगे।

तब मिथिलेश समाजहिं लीने । पुष्पक चढ़े भाव परवीने ॥
मुदित बजाये लोग निसाना । जय जयकार शोर छितराना ॥

तदनन्तर भाव मग्न, परम प्रवीण श्री मिथिलेश जी महाराज अपने समाज को लिये हुए 'पुष्पक विमान' में चढे। उस समय लोगों ने प्रसन्नता पूर्वक नगाड़े बजाये तथा चतुर्दिक सर्वत्र जय–जयकार का शोर गूँज गया।

दुहुँ समाज अति आनँद साने । कीन्हे मिथिला पुरहिं पयाने ॥
राम रजायसु पाइ विमाना । चढ़ि अकाश गवनेव सुख साना ॥

इस प्रकार युगल पुरियों (श्री मिथिला व श्री अवध) का समाज अत्यानन्द में सराबोर, श्री मिथिलापुरी को प्रस्थित हुआ और श्री राम जी महाराज की आज्ञा प्राप्तकर सुख पूर्वक 'पुष्पक विमान' उठकर आकाश में उड़ चला।

दो0— चलत कोलाहल शब्द बहु, मंगल धुनि शुभ पाँच ।
शकुन विविध होवन लगे, आनँन्द कह सब साँच ॥७३॥

पुष्पक विमान के चलते ही महान शोर हुआ, शुभ व मंगलमयी पंच ध्वनि होने लगी तथा विभिन्न प्रकार के सगुन हुए जो मानो यथार्थ आनन्द का बखान कर रहे हों।

प्रथमहि जनक अयोध्या तेरे । भेजे रहे दूत हिय हेरे ॥
ते सब आइ नगर सजवाये । विधि हरि हर जेहिं लखत लुभाये ॥

श्री जनक जी महाराज ने अपने हृदय में विचार कर प्रस्थान के पूर्व ही श्री अयोध्यापुरी से अपने दूतों को भेज दिया था। वे सभी आकर श्री निमि नगर को भली प्रकार से सजवा दिये थे, जिसका दर्शन कर श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी और श्री शंकर जी भी लुब्ध हो रहे थे।

सकल पुरी के नर अरु नारी । मंगल द्रव्य सजे सुखकारी ॥
निश्चित समय नगर के बाहर । ललचत खड़े नारि नर आकर ॥

श्री मिथिलापुरी में निवास करने वाले सभी स्त्री—पुरुष, सुख प्रदायक मांगलिक वस्तुएँ सजाये, नियत समय में आकर, नगर के बाहर प्रभु श्री राम जी महाराज के दर्शन के लिये लालायित हुए खड़े हो गये।

मनहर सुखकर सरस सुहाये । बाजत वाद्य मुनिन मन भाये ॥
मंगल गान करहिं पुर रवनी । लाजहिं सुनि सुर सुन्दरि भवनी ॥

वहाँ मनोहारी, सुख प्रदायक, रसमय, सुन्दर व मुनिजन मनभावन वाद्य बज रहे थे। पुर ललनायें, मांगलिक गीत गा रही थीं जिसे श्रवण कर मनोहर देवांगनायें भी विलज्जित हो रही थीं।

शान्ति पाठ सब द्विजन उचारे । प्रेमहिं पगे भाव भल धारे ॥
जय जय सीताराम सुकीती । गावहिं पुलकहिं रसिक अमीती ॥

सभी विप्रगण प्रेम में पगे हुए, सुन्दर भावों में भावित हो शान्ति पाठ कर रहे थे, रसिक जन श्री सीताराम जी की जय जयकार करते हुए उनके असीमित सुन्दर यश का गायन कर पुलकित हो रहे थे।

दो0— प्रेम मगन नर नारि सब, अँखियाँ धरत न चैन ।
गगन विलोकहिं रस रसी, बोलि सकैं नहिं बैन ॥७४॥

वहाँ उपस्थित सभी स्त्री—पुरुष प्रेम मग्न थे, उनके नेत्र धैर्य धारण करने मे असमर्थ हो रहे थे तथा रस में निमग्न हुए आकाश को निहार रहे थे परन्तु कुछ बोल नहीं पा रहे थे।

ताहीं समय यान रव छाई । श्रवणहिं आयो सुखद सुहाई ॥
गगन माहिं पुनि परेउ दिखाना । बहुरि विलोकेउ पुर नियराना ॥

तत्क्षण विमान की सुख प्रदायिका व सुन्दर ध्वनि परिव्याप्त हो गयी और सभी के श्रवणों का विषय बनी। पुनः विमान आकाश में दिखाई पड़ा और सभी के देखते देखते श्री मिथिलापुरी के समीप

आ गया।

प्रेम विभोर नगर नर नारी। दीन्ह अपनपौ सबहिं बिसारी ॥
सात्विक चिन्ह प्रेम के गाये। तन महँ सो सब दिये दिखाये ॥

उस समय प्रेम विह्वल हो समस्त श्री मिथिलापुर निवासी नर–नारियों ने अपना आपा भुला दिया अर्थात् स्वयं में न रह सके। उनके शरीर में वर्णन किये गये प्रेम के सात्विक चिन्ह दिखायी पड़ने लगे थे।

पुष्प उछारत ऊपर काहीं । नचि नचि सब करताल बजाहीं ॥
कोउ सुधि भूलि भूमि महँ गिरहीं । ध्यान जनित कोउ आनँद भरही ॥

वे आकाश की ओर पुष्प उछालते हुए तालियाँ बजाकर नृत्य कर रहे थे। कोई तो स्मृति शून्य हो भूमि में गिर पड़ते तो कोई ध्यान में प्राप्त आनन्द से भर जाते थे।

बालक वृद्ध गेह सुधि नाहीं। छाय रहे प्रभु तन मन माहीं ॥
प्रेम मूर्ति सब मिथिला वासी । खड़े नारि नर दरश पियासी ॥

वहाँ बालकों वा वृद्धों को भी, गृह की स्मृति नहीं थी, उन सभी के शरीर और मन में प्रभु श्री सीताराम जी समाये हुए थे। इस प्रकार समग्र श्री मिथिलापुर निवासी, प्रेम स्वरूप स्त्री–पुरुष प्रभु दर्शनों की प्यास लिये खड़े थे।

दो0– एक निमिष युग सम लगत, सने विरह रस लोग ।
उतरन भूमि विमान कहँ, चहत चखन भल भोग ॥७५॥

विरह रस में सने हुए उन श्री मिथिलापुर निवासियों को उस समय एक निमिष (एक पल) का समय युगों के समान प्रतीत हो रहा था, वे विमान को भूमि में उतरते हुए देखकर नेत्रों के परम लाभ श्री सीताराम जी का दर्शन प्राप्त करना चाह रहे थे।

चढ़े विमान राम सिय दोऊ। पुर नर नारि प्रेम जिय जोऊ ॥
भये प्रेमवश जानकि रामा। धन्य भक्त प्रिय पूरण कामा ॥

पुष्पक विमानासीन युगल सरकार श्री राम जी महाराज और श्री सिया जू, श्री मिथिलापुर निवासी स्त्री–पुरुषों के हृदय की प्रीति को देखकर, उनके प्रेम विवश हो गये। ऐसे भक्तों के प्रिय व उनकी कामनाओं को पूर्ण करने वाले प्रभु श्री राम जी महाराज धन्यातिधन्य हैं।

प्रभु आज्ञा पुष्पक हरषाई। उतरेव भूमि जनन सुखदाई ॥
देखि युगल सुठि सुन्दर जोरी । मैथिल सिगरे प्रेम विभोरी ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज की आज्ञा से सर्व–जन सुखदायी पुष्पक विमान हर्ष पूर्वक भूमि में उतर आया और श्री सीताराम जी की अनाख्येय सुशोभन जोड़ी का दर्शन कर सभी मैथिल प्रेम विभोर हो गये।

राम सिया सह सकल समाजा । उतरी भूमि प्रेम रस राजा ॥
अनुज सहित रघुवर रस पागे । सब कहँ मिले हृदय अनुरागे ॥

तदनन्तर श्री सीताराम जी सहित प्रेम व रस में डूबा हुआ सम्पूर्ण समाज भूमि में उतर पड़ा तथा रस में पगे हुए, सानुज श्री राम जी महाराज हृदय में अनुराग प्रपूरित हो सभी से भेंट किये।

तैसहिं सिया दरश शुभ दीनी । सब कहँ मिली प्रेम रस भीनी ॥
पुरवासी मिलि जनक जोहारे । कुँअरहिं भेंटे हर्ष अपारे ॥

उसी प्रकार से श्री सीता जी ने भी, सभी लोगों को अपना शुभ दर्शन प्रदान कर प्रेम–रस में हो भेंट की। पुनः समग्र श्री मिथिलापुर निवासियों ने मिलकर श्री जनक जी महाराज को प्रणाम किया और असीमित हर्ष में भरकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से भेंट किये।

दो0– मिथिला अवध समाज दोउ, भेंट परस्पर कीन ।
यथा योग शुभ प्रीति सो, सिय रघुवर चित लीन ॥७६॥

इस प्रकार अपने चित्त को, श्री सीताराम जी में विलय किये हुए, श्री मिथिला व श्री अवध दोनों पुरियों के समाज ने प्रेम पूर्वक यथा योग्य परस्पर भेंट की।

राम सिया लखि सब पुरवासी । आपन भाग परम परकाशी ॥
मन अभिलाष आज अति पूरी । नयन लाभ लाहे भल भूरी ॥

श्री सीताराम जी का दर्शनकर श्री मिथिलापुरी के सम्पूर्ण निवासी अपने सौभाग्य की प्रशंसा करते हुये कहते हैं कि– हमारे मन की अभिलाषा आज पूर्ण हुई है जो अपने नेत्रों के परम सुन्दर संल्लाभ श्री सीताराम जी के दर्शन को हमने प्राप्त किया है।

मणिगण द्रव्य लुटावत नाना । वर्षहिं वर्षा सुमन सुजाना ॥
उच्च उच्च मद मत्त गयन्दा । ऐरावत जायो जग बन्दा ॥

ऐसा कहते हुए वे सभी सुजान मिथिलापुर निवासी नाना प्रकार के द्रव्य व मणियाँ लुटा रहे थे तथा पुष्पों की अनवरत वर्षा कर रहे थे। पुनः विश्व–वन्दनीय गज ऐरावत से उत्पन्न हुए सर्वोच्च मद मस्त गज को–––

नख शिख सुखकर सुन्दर साजा । वरणि सकै नहिं तेहिं अहिराजा ।।
तापर जनक राम बैठारे । छत्र चमर परिचारक ढारे ।।

–––नख–शिखान्त सुख–प्रदायक व सुन्दर वस्त्राभूषणो से सुसज्जित किया गया, जिसका वर्णन श्री शेष जी भी नहीं कर सकते, उस परम सुशोभन गज पर श्री जनक जी महाराज ने रघुकुल भूषण श्री राम जी महाराज को बैठा दिया। सेवक गण छत्र और चँवर चलाने लगे।

बनेउ महावत जनक कुमारा । विधिवत ताहि चलाव सम्हारा ॥
भरतादिक सब अश्व चढ़ाये । चंचल सुभग श्रेष्ठ जग जाये ॥

जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी स्वयं हस्तिपाल बने हुए उसे नियमपूर्वक सम्हाल कर चला रहे थे। श्री भरत जी आदि सभी राम–भ्राताओं को सुन्दर, चंचल व विश्व के श्रेष्ठतम अश्वों में चढ़ाया गया।

दो०— विविध भाँति वाहन तहाँ, आये सुभग अपार।
सबहिं चढ़ायो नृपति वर, चलो लिवाय अगार ॥७७॥

उस समय वहाँ विभिन्न प्रकार के सुन्दर व असीम वाहन आ गये जिनमें श्री अयोध्यापुरी से समागत सभी लोगों को चढ़ाकर श्री जनक जी महाराज अपने भवन ले चले।

वानर भालु सुभग तन धारे। देखत मिथिला भये सुखारे ॥
भयो सबहिं आश्चर्य विशेषी। अपर पुरी अस सुनी न देखी ॥

सुन्दर मनुष्य शरीर धारण किये हुए बन्दर और भालुगण, परम शोभा–सम्पन्न श्री मिथिलापुरी का दर्शन करते ही अत्यन्त सुखी हुए तथा सभी अत्यधिक आश्चर्यान्वित हो गये क्योंकि उन्होनें ऐसी अन्य पुरी न तो सुनी ही थी और न ही देखी थी।

बड़े भाग दरशन इत आई। सीय कृपा पाये सुखदायी ॥
हरष पूर हिय सुख न समाई। करत पुरी की विविध बड़ाई ॥

हमारे बड़े सौभाग्य हैं जो अम्बा श्री सिया जी की कृपा से यहाँ आकर हमने इस पुरी के सुखप्रदायी दर्शन प्राप्त किये हैं। हर्षातिरेक के कारण उनके हृदय में सुख समा नहीं रहा था और वे श्री मिथिलापुरी की विभिन्न प्रकार से प्रशंसा कर रहे थे।

उत्सव होवत विविध प्रकारा। मग महँ सब कहँ करत सुखारा ॥
मखमल बिछेव मार्ग अति सोहा। पूरे मणिमय चौक विमोहा ॥

उस समय राजपथ में विभिन्न प्रकार से उत्सव हो रहा था, जिससे सभी लोग सुखी हो रहे थे। राज–मार्ग मखमल के पाँवड़ो से आच्छादित हुआ अत्यन्त सुशोभित हो रहा था तथा वहाँ मणियों की सुरम्य चौके पूरी हुई मन को विमोहित कर रही थीं।

तामहँ पुष्प सुकोमल साजे। कहि न जाय देखत मन राजे ॥
बाजहिं सरस सुराग निसाना। औरहु वाद्य अनेक विधाना ॥

उस राज मार्ग में पाँवड़ों के ऊपर सुन्दर कोमल पुष्प सजाये गये थे, जिनकी शोभा कहते नहीं बनती, उन्हें देखते ही मन प्रसन्न हो जाता था। रस परिपूर्ण व सुन्दर राग से नगाड़े बज रहे थे तथा विविध भाँति से और भी अनेक प्रकार के वाद्य बज रहे थे।

दो०— बदत विरद मागध कवी, जय जय होत सुशोर।
मंगल गावहिं युवति गण, होवहिं हरषि विभोर ॥७८॥

मागध (भाँट) और कविगण युगल कुलों के विरद का बखान कर रहे थे, जय–जय का सुन्दर नाद हो रहा था तथा पुर–प्रमदायें मंगल गीत गाती हुई हर्ष से विभोर हो रही थीं।

महिसुर शान्ति शब्द सरसाने। पढ़ैं भाव भरि हिय हरषाने ॥
कौतुक विविध भाँति मग माँही। करहिं विदूषक भरि मुद माहीं ॥

विप्रगण हृदय में हर्षित हो भाव में भरकर रस परिपूर्ण शान्ति पाठ कर रहे थे, मार्ग में विदूषक

प्रसन्नमना विभिन्न प्रकार की क्रीड़ायें कर रहे थे।

जनक लुटावत द्रव्य अपारा । भूषण मणिगण विविध प्रकारा ॥
हय गय गोधन दासी दासा । भूमि सुरथ अरु अन्न सुवासा ॥

श्री विदेहराज जी महाराज अतुल धन, आभूषण व विभिन्न प्रकार की मणियाँ लुटा रहे थे। घोड़े, हाथी, गाय, दास, दासियाँ, भूमि, रथ, अन्न और भवन आदि---

राम आगमन हर्ष समाई । देत द्विजन कहँ निमिकुल राई ॥
याचक बृन्द अयाचक कियऊ । मन मोदित यश गावत गयऊ ॥

---श्री निमिकुल नरेश जनक जी महाराज हर्ष में समाये हुए श्री राम जी महाराज के शुभ नगरागमन में ब्राह्मणों को दान दे रहे थे। उन्होंने उस समय मँगनों को पूर्ण–काम कर दिया और वे प्रसन्नमना कीर्ति का गायन करते हुए प्रस्थान कर गये।

यहि विधि रामहिं लै नर नाथा । जात चले पुर वासिन साथा ॥
चढ़ी अटारिन पुर वर वामा । देखहिं छबिधर रूप ललामा ॥

इस प्रकार निमिकुल नरेश श्री जनक जी महाराज श्री राम जी महाराज के लिये हुए श्री मिथिलापुर निवासियों के साथ चले जा रहे थे। श्री मिथिलापुरी की सुन्दर पौरांगनायें अट्टालिकाओं में चढ़ी हुई परम शोभा सम्पन्न श्री राम जी महाराज के सुन्दर स्वरूप का संदर्शन कर रही थीं।

दो0– लै अंजुलि वरषहिं सुमन, प्रमुदित प्रीति प्रसार ।
श्याम सुभग सुख धाम लखि, पावहिं मोद अपार ॥७९॥

वे आनन्द से ओत–प्रोत, प्रेम परिपूर्ण हो अंजलि में भर–भरकर पुष्पों की वर्षा कर रही थीं तथा सुख के धाम श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज का दर्शन कर असीम आनन्द प्राप्त कर रही थीं।

महा मनोहर सुन्दर वासा । सब दिन दायक सबहिं सुपासा ॥
दीन्हे सब कहँ मिथिला राऊ । पूजि सविधि विनती वर भाऊ ॥

श्री मिथिलेश जी महाराज ने सभी को प्रतिक्षण सर्व प्रकारेण सुविधा सम्पन्न, मनोहारी व सुन्दर आवास प्रदान किया तथा विनम्रता पूर्वक, सुन्दर भाव में भरकर विधिवत सभी का पूजन किया।

अवध समाज प्रसन्न महाना । लहि सतकार जनक कर नाना ॥
सहित बसिष्ठ मुनिन सतकारी । पूजा भेंट विनय सुखकारी ॥

श्री जनक जी महाराज से विभिन्न प्रकार के स्वागत सत्कार प्राप्त कर श्री अयोध्यापुरी का समाज अत्यधिक प्रसन्न हुआ। पुनः श्री मिथिलेश जी महाराज ने विनय पूर्वक मुनिराज श्री बसिष्ठ जी सहित सभी मुनियों को सुख प्रदायक भेंट दे, पूजन कर सम्मानित किया।

जनक भाव लखि लखि मन माहीं । छन छन मुनिहुँ प्रमोद अघाहीं ॥
सहित राव श्री मातु सुनैना । राम मातु कहँ पूजि सचयना ॥

श्री जनक जी महाराज के भाव को देख देखकर मुनिवर श्री बसिष्ठ जी भी अपने मन में प्रत्येक क्षण आनन्द से संतृप्त हो रहे थे। श्री जनक जी महाराज सहित अम्बा श्री सुनैना जी ने श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी की आनन्दपूर्वक पूजा की।

विधिवत सतकारेव रनिवासा । दीन्ह वास सब भाँति सुपासा ॥
भाइन सहित राम कहँ लाई । मातु सुनैना सुठि सुख पाई ॥

तदनन्तर उन्होने विधिपूर्वक सम्पूर्ण रनिवास का सत्कार कर, सभी को सर्व सुविधा सम्पन्न निवास प्रदान किया। भ्राताओं सहित श्री राम जी महाराज को अपने सदन में लाकर अम्बा श्री सुनैना जी ने सुन्दर सुख प्राप्त किया।

दो0– चार सिंहासन रत्नमय, निज गृह धरी बनाय ।
बैठारी गहि बाँह प्रिय, आनँद हिय न समाय ॥८०॥

अम्बा जी ने अपने भवन में रत्न विनिर्मित चार सुन्दर सिंहासन सुसज्जित कर उनमें अपने प्रिय पाहुन चारों भाइयों (श्री राम जी, श्री भरत जी, श्री लक्ष्मण कुमार जी व श्री शत्रुघ्न कुमार जी) को बाँह पकड़ कर बैठा दिया, उस समय उनके हृदय में आनन्द उच्छलित हो रहा था।

मास पारायण चौबीसवाँ विश्राम

चार कुमारिन चार सुआसन । बैठारी पगि प्रीति सुभाषन ॥
सहित सिद्धि सुख सिन्धु हिलोरी । पूजी मातु सुचारिहुँ जोरी ॥

पुनः अम्बा श्री सुनयना जी ने प्रेम प्रपूरित सुन्दर वचन कहते हुए चारों राज कुमारियों (श्री सीता जी, श्री माण्डवी जी, श्री उर्मिला जी व श्री श्रुतिकीर्ति जी) को भी चार मनोरम सिंहासनों में बिठा दिया तथा श्री सिद्धि कुँअरि जी के सहित सुख के सागर में हिलोरे लेती हुई चारों सुशोभना जोड़ियों की पूजा की।

उबटन बहुरि लगाय सुनैना । नहवाई हिय पुलकि अबयना ॥
भूषण बसन पिन्हाय अमोली । बैठि जिवाँई बिंजन डोली ॥

अम्बा श्री सुनैना जी ने श्री सिद्धि कुँअरि जी के सहित, पुलकित हृदय अवर्णनीय प्रेम से परिपूर्ण हो, उबटन लगाकर उन्हें स्नान कराया तथा बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण करा, बैठ कर पंखा करते हुए भोजन पवाया।

चारहुँ कुँअरि कुमारन काहीं । पान इतर दै सुख न समाहीं ॥
आरति करि मंगल अनुशासन । कीन्ह मातु मधुरे स्वर भाषन ॥

पुनः चारों राज कुमारियों व चारों राज कुमारों को ताम्बूल और इत्र देकर वे सुख में सराबोर हो गयीं। श्री अम्बा जी ने श्री सिद्धि कुँअरि जी के सहित उनकी आरती उतार कर मधुर स्वर से मंगलानुशासन किया।

दान अनेक द्विजन कहँ दीनी । लखि लखि राम सिया परवीनी ॥
उत्सव माचेव महल मझारा । मंगल गान करहिं सब दारा ॥

उन परम प्रवीणा अम्बा श्री सुनैना जी ने श्री सीताराम जी के मुख चन्द्र का दर्शन करते हुये ब्राह्मणों को अनेक प्रकार से दान दिया। उस समय राज महल के प्रांगण में उत्सव होने लगा तथा सभी स्त्रियाँ मांगलिक गीत गाने लगीं।

दो0– प्राङ्गण श्री मिथिलेश के, बाजत सुखद बधाव ।
झर झर बरषत गगन ते, सुर तरु सुमन सुहाव ॥८१॥

श्री मिथिलेश जी महाराज के महल प्रांगण में सुख प्रदायक बधावा बजने लगा तथा देव–गण आकाश से देववृक्ष (कल्प वृक्ष) के मनोरम पुष्पों की अनवरत वरषा करने लगे।

जय सियराम दशानन तारी । जय सुर मुनि सज्जन हितकारी ॥
जय सियराम आत्म सुखराशी । जय प्रमोद चितकूट विलासी ॥

हे! दस–मुख रावण का उद्धार करने वाले, श्री सीताराम जी आपकी जय हो, हे! देवताओं, मुनिजनों और सज्जनों के परम हितैषी श्री सीताराम जी आपकी जय हो, हे! आत्म–स्वरूप, सुखों की रासि श्री सीताराम जी आपकी जय हो तथा श्री प्रमोद वन और श्री चित्रकूट गिरि में लीला विहार करने वाले श्री सीताराम जी आपकी जय हो जय हो।–––

जय मिथिला जय अवध विहारी । जय जय प्राण नाथ प्रियकारी ॥
जय लक्ष्मीनिधि प्राणन प्यारे । जय जय सीताराम हमारे ॥

–––श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी में विहार करने वाले श्री सीताराम जी आपकी जय हो, हे! प्राणों के प्रियकर स्वामी श्री सीताराम जी आपकी जय हो जय हो, कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्राणों के प्यारे श्री सीताराम जी आपकी जय हो तथा हमारे सर्व विधि स्वामी श्री सीताराम जी आपकी जय हो जय हो जय हो।

यहि प्रकार जय घोष सुहावा । अनुपम आनँद दायक छावा ॥
बन्दी वेद धुनी प्रभुताई । छाय रही श्रवणन सुखदायी ॥

इस प्रकार का सुन्दर, अनुपमेय व आनन्द प्रदायी जय–घोष सर्वत्र व्याप्त हो रहा था, श्रवण–सुखदायिनी बन्दी–जनों की ध्वनि, वेद–ध्वनि तथा यश–ध्वनि वहाँ छायी हुई थी।

जहँ तहँ नगर नारि समुदाई । दर्शन हित आवत अतुराई ॥
सीय राम दर्शन सुखसारी । करहिं भेंट दै मंगलकारी ॥

जहाँ–तहाँ श्री मिथिला नगरी से नारियों का समाज आतुर होकर श्री सीताराम जी के दर्शनों के लिए आ रहा था और भेंट अर्पित कर, सुखों का सारभूत, श्री सीताराम जी का मंगलमय दर्शन, कर रहा था।

दो0– महा मोद छायो पुरहिं, घर घर मंगल गान ।
बजत बधावन सरस धुनि, सुनि सुनि भूलत भान ॥८२॥

श्री मिथिलापुरी में महान आनन्द छाया हुआ था, प्रत्येक गृह में मंगल गीत गाये जा रहे थे तथा रसमयी ध्वनि से बधाइयाँ बज रही थी जिनको श्रवण कर सभी लोग स्मृति भुलाये दे रहे थे।

राम वास विश्राम सुहावा । कुँअर भवन महँ भो मन भावा ॥
सिद्धि सदन सुठि सुखकर श्यामा । पहुँचे भ्रातन युत अभिरामा ॥

श्री राम जी महाराज का सुन्दर निवास व विश्राम, मनोभिलषित, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सुन्दर भवन में हुआ और अपने भ्रातृ–गणों सहित परम सुशोभन, सुखकरण, श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज मनोरम श्री सिद्धि सदन पहुँचे।

सिद्धि सहित पूजेउ बहु भाँती । प्रीति पुनीत कुँअर रस राती ॥
पूर्ण मनोरथ जनक दुलारा । निज गृह देखि श्याम सुकुमारा ॥

वहाँ श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित पवित्र प्रेम पूर्वक रसाप्लावित कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी विविध प्रकार से उनकी पूजा किये तथा वे अपने परमाराध्य राज कुमार श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज को अपने भवन में देखकर पूर्ण मनोरथ हो गये।

सिधि सनेह कहि जात न मोसे । प्रभुहिं पेखि पाई सुख तोषे ॥
सोये श्याम श्याल सुख भवना । युगल सनेह कहै कवि कवना ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रति श्री सिद्धि कुँअरि जी के हृदय के प्रेम का बखान मुझसे नहीं किया जा रहा, वे तो प्रभु श्री राम जी महाराज का दर्शन कर सुख और संतोष से आपूरित हो गयीं थीं। श्री सिद्धि सदन में, सुख के आगार श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज और उनके प्रिय श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी दोनो एक साथ, एक ही पर्यंक में शयन कर गये। उन श्याल भाम कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज दोनों के पारस्परिक प्रेम का यथार्थ वर्णन कोई कवि कैसे कर सकता है।

यहिं विधि राम आय ससुरारी । सरहज श्यालहिं कीन सुखारी ॥
जनक सुनैनहिं मोद बढ़ाई । छाये आनँद पुर रघुराई ॥

इस प्रकार श्री राम जी महाराज अपनी श्वसुर–पुरी में पधार, अपनी सरहज और श्याल को सुखी कर, अपने श्वसुर व सासू श्री जनक जी महाराज और अम्बा श्री सुनैना जी के आनन्द का विवर्धन किये तथा श्री मिथिलापुरी को आनन्द से ओत–प्रोत कर दिये।

छं0– श्री राम आनँद पूरि पुर, जन जन नयन तारा बने ।
गृह कार्य भूले लोग सब, सेवहिं सदा मन भावने ॥
शुचि श्याम माधुरि रस रसी, पीते नयन पुट नारि नर ।
नहिं पाव तोषहिं भाव भरि, हर्षण पियासे रूप कर ॥

सम्पूर्ण मिथिलापुरी में आनन्द का प्रसार कर श्री राम जी महाराज जन–जन के नेत्र–तारे (अतिशय प्रिय) बने हुए हैं। वहाँ सभी लोग अपने घर के काम–काज भूलकर, मन भावन श्री राम जी महाराज की नित्य सेवा कर रहे हैं। श्री मिथिलापुरी के समग्र स्त्री–पुरुष श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज के पवित्र माधुर्य रस में डूबे हुए नेत्रों से उनकी रूप सुधा का पान कर रहे हैं। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–श्री मिथिलापुर वासी तो प्रभु रूप के इतने प्यासे थे कि– वे अपने भाव में भरे हुए प्रभु रूपामृत का पान करते हुये भी तृप्ति को प्राप्त नहीं कर रहे थे।

सो0–मदन विमोहन हार, राजवेष रघुनाथ कर ।
जनक पुरी नर नार, देखि देखि आनन्द लहत ॥८३॥

रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज के कामदेव को भी विमोहित करने वाले राज्यवेष का पुनः पुनः दर्शन कर श्री जनकपुरी के स्त्री–पुरुष अतिशय आनन्द प्राप्त कर रहे थे।

जनक नित्य प्रति सादर जाई । सेवहिं राम गुरुहिं गुण गाई ॥
असन वसन सेवा सतकारा । दिन दिन अधिक अधिक सुखसारा ॥

श्री जनक जी महाराज नित्य प्रति जाकर आदरपूर्वक श्री राम जी महाराज के महा महिमामय गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी की सेवा उनके गुणों का बखान करते हुए किया करते थे। वहाँ प्रति दिन भोजन, वस्त्र व सेवा–सत्कार आदि उत्तरोत्तर अधिकाधिक सुख में सने हुये होते थे।–––

लहि लहि अवध समाज सुखारी । भूलि गई अपनो घर द्वारी ॥
बानर मगन रहैं दिन राती । गृह गवनन नहिं सुध मुद माती ॥

–––जिसे प्राप्त कर श्री अयोध्यापुरी का समाज सुखाधिक्य से अपने भवनों को भूल गया था। सभी बानर और भालु दिन–रात आनन्द में मग्न रहते थे, उन्हें अपने घर जाने का स्मरण भी नहीं आता था।

मातु सुनैना दासि समानी । कौशिल्यहिं सेवति सुख सानी ॥
सब रनिवास अवधपुर केरा । लहेव शान्ति सुख भाव घनेरा ॥

अम्बा श्री सुनैना जी श्री कौशिल्या अम्बा जी की सेवा, सुखपूर्वक दासी के समान करती रहती थीं तथा श्री अयोध्यापुरी का सम्पूर्ण रनिवास भाव पूर्वक अविरल शान्ति और सुख प्राप्त कर रहा था।

दिन दिन प्रेम भाव लखि दूना । विकसित चन्द्र बदन जिमि पूना ॥
सिय सुख कहिय कौन विधि गाई । सहित भगिनि सुख सिन्धु समाई ॥

प्रतिदिन महारानी श्री सुनैना जी के अधिकाधिक प्रेम और भाव देख–देखकर सभी अवध–महारानियों का मुख–चन्द्र पूर्णिमा की भाँति विकसित रहता था। जनक दुलारी श्री सीता जी के सुख का किस प्रकार वर्णन किया जाय? वे तो अपनी बहनों सहित सुख के समुद्र में ही डूबी रहती थीं।

दो0– मातु पिता बड़ भ्रात कर, सहित सिद्धि सुठि प्यार ।
पाइ परम प्रमुदित रहति, पितु पुर सुख सुख सार ॥८४॥

समस्त सुखों की सारभूता श्री सिया जी, अपनी पितृ–पुरी श्री मिथिलापुरी में, अपनी श्री अम्बा जी, श्री मान दाऊ जी तथा प्रिय भाभी श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित बड़े भइया कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का सुन्दर प्यार प्राप्त कर परम प्रसन्न रहती थीं।

कुँअर लखत नित श्याम सुश्यामा । दरश परश पागत विश्रामा ॥
अनुभव करत नित्य सुख भौमा । पार लहैं लहि वाणि रमोमा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी नित्य श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज व परम सुन्दरी, चिर किशोरी श्री सिया जू का दर्शन करते रहते थे तथा उनके दर्शन व स्पर्श–जनित आनन्द में पगे हुये परम विश्राम प्राप्त करते रहते थे। वे नित्य ही उस भौमा सुख का समनुभव कर रहे थे जिसका पार त्रिदेवियाँ (श्री सरस्वती जी, श्री लक्ष्मीनिधि जी और श्री पार्वती जी) भी नहीं पा सकती हैं।

रामहुँ निज निधि कुँअरहि पाई । मगन रहहिं आनँद अमाई ॥
मज्जन अशन शयन दोउ वारे । सँग सँग करहिं भाव भल धारे ॥

श्री राम जी महाराज भी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के रूप में अपनी महान निधि को प्राप्त कर विशुद्ध आनन्द में मग्न रहते थे। दोनों राजकुमार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज सुन्दर भाव धारण किये हुए अपनी स्नान, भोजन और शयन आदि क्रियायें साथ–साथ ही करते थे।

बने रहत इक एकन प्यारे । रघुकुल निमिकुल आँखन तारे ॥
तैसहिं भ्रात भगिनि सुखरूपा । पगे रहैं भरि भाव अनूपा ॥

वे दोनों श्री रघुकुल व श्री निमिकुल के नेत्र सितारे श्री राम जी महाराज व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी परस्पर प्रिय बने हुये थे। उसी प्रकार सुख स्वरूप दोनों भाई–बहिन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी तथा श्री सीता जी अनुपमेय भाव में भरे हुये प्रेम में सराबोर रहते थे।

लखि एक एकहिं सुख न समाहीं । काह कहै कवि छुअत न छाहीं ॥
सो अनुभवै प्रेम परमानँद । जो लह कृपा राम की मानद ॥

वे दोनों एक दूसरे का दर्शन कर सुख से समाते नही थे उनके प्रेम और सुख को कोई कवि क्या कहें? वह तो उसकी परछाई का भी स्पर्श नहीं कर सकता। उनके दिव्य प्रेम और परमानन्द का तो वही अनुभव कर सकता है जो श्री राम जी महाराज की आदर प्रदायिनी कृपा को प्राप्त कर लिया हो।

दो0– राम कृपा स्वादन करै, अनुपम आनँद स्वाद ।
सोपि कहे नहि बचन बकि, बूड़े वर अहलाद ॥८५॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–श्री राम जी महाराज की कृपा से वह जीव अनुपमेय आनन्द और सुख का स्वाद ग्रहण तो करता है परन्तु परमानन्द में निमग्न होने के कारण वाणी के द्वारा उसका वर्णन वह भी नहीं कर सकता।

एक दिवस श्री निमिकुल नाथा । कहत नारि सों प्रभु गुण गाथा ॥
कहे बहुरि सुनु प्रिया प्रवीना । कुँअर नेह छन छनहिं नवीना ॥

एक दिन निमिकुल नरेश श्री जनक जी महाराज अपनी पटरानी श्री सुनैना जी से प्रभु श्री राम जी महाराज के गुणों का बखान कर रहे थे, उन्होंने कहा– हे परम प्रवीणा प्रिये! सुनिये, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि का नवीन प्रेम, प्रत्येक क्षण–––

सीयराम प्रति बढ़त अनूपा । वशी रहत श्री रघुकुल भूपा ॥
निज पद कुँअर राम कहँ चाहा । बनैं राम सिय मिथिला नाहा ॥

–––श्री सीताराम जी के प्रति अनुपमेय रूप से बृि्गत होता जाता है जिस कारण रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज उनके वशीभूत हैं। हमारे राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने राज्य पद को, श्री राम जी महाराज को सौंप कर यही कामना करते हैं कि– श्री सीताराम जी श्री मिथिलापुरी के शासक (महाराज) बन जायें।

ताते रामहिं बोलि पियारी । चरचा करहुँ सुबात बिचारी ॥
सुनि प्रिय बचन बोलि तब रानी । भले भाव भरि सुन्दर बानी ॥

अतएव हे प्रिया जी! मैं श्री राम जी महाराज को बुलाकर विचार पूर्वक इस सुन्दर वार्ता की चरचा करूँगा। श्री मिथिलेश जी महाराज के प्रिय वचनों को श्रवणकर महारानी श्री सुनयना जी भव्य भाव में भावित होकर सुन्दर बचनों से बोलीं–

प्राणनाथ प्रिय पुत्र उदारा । अहै राम कर प्राण अधारा ॥
भगिनि भ्रात की प्रीति अलौकी । अकथ अनूप अपार अशोकी ॥

हे प्राणनाथ! आपके प्रिय व उदार पुत्र श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज के प्राणों के आधार हैं तथा भाई–बहन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिया जू की पारस्परिक प्रीति अलौकिक, अकथनीय, अनुपमेय असीम तथा आनन्दमयी है।

दो0– श्याल भाम की प्रीति तिमि, तरकि न जाय भुआर ।
कुँअर रुची सिय राम रख, रघुवर रुचिहिं कुमार ॥८६॥

हे महाराज! उसी प्रकार श्याल–भाम श्री लक्ष्मीनिधि जी और श्री राम जी महाराज की प्रीति भी वर्णनातीत है, क्योंकि कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की रुचि श्री सीताराम जी रखते है और श्री राम जी महाराज की रुचि को कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी।

समुझि परे जस मोहि मम नाथा । कहौं स्वभाव सीय रघुनाथा ॥
करिहैं ग्रहण राम सिय नाहीं । मिथिला महत राजपद काहीं ॥

हे मेरे स्वामिन्! मुझे जैसा समझ आता है मैं श्री सीताराम जी के स्वभाव का वर्णन कर रही हूँ कि– श्री मिथिलापुरी के महान राज्य पद को श्री सीताराम जी स्वीकार नहीं करेंगे।

जन सुख लखन चाह सियरामहिं । रहैं सदा शुचि हिय निष्कामहिं ॥
कुँअरहिं करि निज वश रघुराई । दैहैं मिथिला राज मनाई ॥

क्योंकि पवित्र हृदय व निष्काम श्री सीताराम जी की इच्छा सदैव अपने भक्तजनों का सुख

संदर्शन करने की रहती है। अतः श्री राम जी महाराज, कुमार श्री लक्ष्मीनिधि को अपने वशीभूत बना, प्रसन्न कर श्री मिथिलापुरी का राज्य प्रदान कर देंगे।

यह प्रतीति मोरे मन स्वामी। ताते विनय कीन्ह निष्कामी ॥
जो तव विनय राम सुन लेहीं। ग्रहण करैं मिथिला पद नेही ॥

हे स्वामी! मेरे मन में ऐसा महान विश्वास है इसीलिए मैंने आपसे, निष्काम भाव से ऐसी विनती की है। परन्तु यदि श्री राम जी महाराज आपके निवेदन को मान लें तथा प्रेम पूर्वक श्री मिथिलापुरी के राज्य पद को स्वीकार कर लें।———

तौ निमिवंश भाग भलि प्यारे । वरणि सकैं नहि शेष अपारे ॥
चरचा अवशि चलाइय आजू । रामहिं मिलि विविक्त प्रिय काजू ॥

———तो हे प्राणनाथ! हमारे इस निमिवंश की सुन्दर भाग्य का वर्णन अनेक सहस्त्र मुख शेष जी भी नहीं कर सकेंगे। अस्तु आप अवश्य ही इस प्रिय कार्य हेतु श्री राम जी महाराज से मिलकर आज ही एकान्त में चर्चा कर लीजिए।

दो0– नारि वचन सुनि भूपवर, मन प्रसन्न सरसाय ।
समय पाय रघुनाथ सो, बोले अंग पुलकाय ॥८७॥

महारानी श्री सुनैना जी के वचनों को सुनकर श्री मिथिलेश जी महाराज प्रसन्न–मना रस मे समाहित हो गये। पुनः समय पाकर वे पुलकित शरीर श्री राम जी महाराज से बोले–

सुनहु राम जन तोषन हारे। भक्त काम सब पुजवन वारे ॥
मम मन चहै तजन व्यवहारा। जब ते दशरथ राउ सिधारा ॥

हे श्री राम जी महाराज! सुनिये, आप तो अपने भक्तों को संतोष प्रदान करने वाले तथा भक्तों की सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हैं। जबसे श्री चक्रवर्ती दशरथ जी महाराज परम धाम प्रस्थान कर गये, तभी से मैं अपने मन से इस राज्य–भार का व्यवहार त्यागना चाहता था।

मिथिला राज ग्रहण अभिलाषा। कुँअरहुँ हिय नहिं नेक प्रकाशा ॥
सिया विवाह समय सुनु रामा । कुँअर बचन सुधि करहिं स्वधामा ॥

परन्तु कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में भी श्री मिथिलापुरी का राज्य ग्रहण करने की रंचमात्र इच्छा दिखाई नहीं पड़ती। अतः हे श्री राम जी महाराज! सुनिये, पुत्री श्री सीता जी के विवाह के समय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि के कहे हुए वचनों को अपने हृदय में स्मरण करें कि———

अरपित मम भावी अधिकारी। सिय सुख हेतु राम कहँ सारा ॥
सो मोकहँ अब करहु उबारा। मिथिला राज बैठि सुख सारा ॥

''मेरा सम्पूर्ण भावी राज्याधिकार भी श्री सीता जी के सुख के लिए श्री राम जी महाराज को समर्पित है''। अस्तु अब आप, श्री मिथिलापुरी के राज्य पद में सुख–पूर्वक विराज कर मेरा निस्तार करिये।

सकल प्रजा आनँदमय होई । यथा अवध शासहु जिय जोई ॥
हम सब कुँअर सहित परिवारा । लखि लखि लहिहैं शान्ति अपारा ॥

जब आप श्री अयोध्यापुरी की भाँति हृदय से चिन्तन करते हुए श्री मिथिलापुरी का भी शासन करेंगे तब यह सम्पूर्ण प्रजा आनन्दस्वरूप हो जायेगी तथा कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के सहित हम सभी परिवारजन आपको मिथिला राज सिंहासन में विराजे हुये दर्शन कर असीम शान्ति प्राप्त करते रहेंगे।

दो0– श्वसुर बचन सुन राम तब, अति विनीत मृदु बैन ।
बोले मुख मुसकाय शुचि, सरल सुखद रस ऐन ॥८८॥

तब अपने श्वसुर श्रीमान् विदेहराज जी महाराज के वचनों को सुनकर रस–निधान श्री राम जी महाराज मन्द–स्मित के साथ पवित्र, सरल, सुख प्रदायक व अत्यन्त विनय पूर्वक कोमल बचन बोले–

राउर प्यार आपु पर लेखी । नित नव हरषित रहौं विशेषी ॥
सासु सुनैनहुँ लखि लखि छोहा । होत मगन मन सुख संदोहा ॥

हे श्री विदेहराज जी महाराज! आपका, अपने प्रति नित्य नवीन प्यार–दुलार देख कर मैं विशेष हर्षित रहता हूँ, सासू श्री सुनैना जी के प्रेम वात्सल्य को देख–देखकर मेरा मन मग्न हो जाता है तथा सुख का सृजन करने लगता है।

सिद्धि कुँअरि अरु कुँअर सुप्रेमा । देत भुलाय मोर सब नेमा ॥
तव मन छोड़ि मोर मन राया । बिलग न होय कहौं सत भाया ॥

पुनः श्री सिद्धि कुँअरि जी व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का सुन्दर प्रेम तो मेरे सभी नियमों को ही विस्मृत कर देता है। हे श्री मान् दाऊ जी! मैं यथार्थतया कहता हूँ कि– मेरा मन कभी भी आपके मन को छोड़कर अलग नहीं होता अर्थात् आपकी रुचि से अलग कभी भी मेरी रुचि नहीं होती।

कुँअर स्वत्व सिगरो जो अहई । जो कछु रहा जो आगे रहई ॥
निरुपाधिक सो सब मम दाऊ । यामहँ शंसय नेक न काऊ ॥

हे श्री महाराज! कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का जो कुछ भी है, जो कुछ भी था और जो कुछ भी होगा वह सर्वस्व सहज ही मेरा है इसमें किसी प्रकार की किंचित भी आशंका नहीं है।

कुँअरहिं जानिय मोर शरीरा । नाम मात्र दुइ दिखत सुधीरा ॥
जो वह हैं सो मैं निमि राई । जो मैं सो गुन कुँअर सुहाई ॥

आप कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को मेरा ही शरीर समझिये, हम दोनों तो नाम मात्र के लिए ही दो रूपों में दिखाई पड़ते हैं। हे परम धैर्यवान, श्री निमिकुल महाराज! वे जो कुछ भी हैं, वह मैं ही हूँ और मैं जो कुछ हूँ, उसे सुशोभन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ही समझिये।

दो0– हिय बिचारि मम सुख नृपति, कुँअरहिं करि युवराज ।
पुरवहिं मम मन कामना, अति दुलार निमिराज ॥८९॥

इसलिए हे श्री निमिकुल महाराज! आप हृदय में मेरे सुख का विचार कर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को युवराज पद में अभिषिक्त कर अत्यन्त दुलारपूर्वक मेरी मनोभिलाषा पूर्ण कर दें।

मोहि प्रतीति अतिशय मन माहीं । मम रुचि रखिहैं तजि सुख काहीं ॥
अस जिय जानि जाउँ तिन वासा । कहिहौं निज अभिलाष प्रकाशा ॥

मेरे हृदय में पूर्ण विश्वास है कि– कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने सुख को त्याग, मेरी इच्छा का ही पालन करेंगे। अतः अपने हृदय में ऐसा समझकर मैं उनके निवास जा रहा हूँ तथा अपने हृदय की कामना वहाँ प्रकाशित करूँगा।

तब तस कहिहौं राउर पाहीं । अस कहि चले राम सुख माहीं ॥
कुँअर विलोके आवत रामा । उठि सप्रेम भेंटेव सुखधामा ॥

तदन्तर जैसा होगा मैं उसी प्रकार आप से निवेदन करूँगा। ऐसा कहकर श्री राम जी महाराज सुख पूर्वक चल दिये। सुख के धाम श्री राम जी महाराज को आते देख कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी उठकर उनसे प्रेम पूर्वक भेंट किये।

सिद्धि समेत अधिक अनुरागी । बैठारे आसन रस पागी ॥
गंध माल दै पान पवाई । दरश परश सुख सिन्धु समाई ॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित अत्यधिक अनुराग पूर्वक रस में पगे हुए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री राम जी महाराज को आसन में बिठाकर इत्र व पुष्पमाल धारण कराया तथा ताम्बूल दिया पुनः उनका दर्शन और स्पर्श कर सुख के समुद्र में समाविष्ट हो गये।

प्रीति रीति बातें सरसानी । कछुक काल लौं भई सुहानी ॥
मधुर मधुर मुसक्याय सुहाने । चित हर चितवनि राम बखाने ॥

कुछ समय तक प्रेम–पद्धति की आनन्द पूर्वक सुन्दर बातें होती रही। तदुपरान्त श्री राम जी महाराज मधुरातिमधुर मुस्कुराहट के साथ चित्तापहारी चितवनि से निहारते हुए बोले–

दो0– प्यारे प्रिय प्राणन सखा, राखहु मोर दुलार ।
पूर करहु मन कामना, मानहुँ मोद अपार ॥९०॥

हे मेरे प्राण प्रिय सखे, प्यारे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप मेरा दुलार बनाये रखिये तथा मेरे मन की अभिलाषा पूर्ण कर दीजिए जिससे मैं असीम आनन्द प्राप्त कर सकूँ।–––

दाऊ आज राज पद बाता । कही कुँअर नहिं लेवहिं ताता ॥
मोकहँ कहैं कुमार प्रदात्री । मिथिला मही लेहिं प्रिय पात्री ॥

–––आज श्री मान् दाऊ जी ने, श्री मिथिलापुरी के राज्य पद की बात करते हुए कहा है– कि हे तात श्री राम भद्र जी! कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, श्री मिथिलापुरी का राज्य पद नहीं ग्रहण कर रहे, वे मुझसे कहते हैं कि– आपके कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने तो इसका दान दे दिया है अतः हे सर्व–प्रिय श्री राम जी! आप श्री मिथिला पुरी के राज्य को ग्रहण कीजिए।–––

ताते आयउँ आप सकाशा । पूर्ण काम होइहौं हिय आशा ॥
तुम तुम्हार सब विधि है मोरा । या महँ संशय गिनहिं न थोरा ॥

———इसलिए मैं आपके समीप इसी अभिलाषा को हृदय में सँजोये हुए आया हूँ कि– ''पूर्ण मनोरथ'' होऊँगा। यद्यपि आप और आपका सर्वस्व, सभी प्रकार से मेरा है, इसमें आप, किंचित भी संदेह मत समझिये।———

हम तुम भेद अहे व्यवहारा । एक एक दोउ प्राण अधारा ॥
तव अरपित तव पद मैं लीना । मानहु सत्य वचन छल हीना ॥

———यह जो हम (भाम) और तुम (श्याल) का अन्तर है वह तो व्यवहारिक है, यथार्थतया हम दोनों, परस्पर प्राणों के आधार हैं। फिर आपके द्वारा समर्पित किया गया आपका राज्यपद मैंने स्वीकार कर लिया, मेरे इन छल–रहित बचनों को आप सत्य समझिये।———

निज सुख हेतु सुनहु चित लाई । देहुँ यथारथ बात बताई ॥
सिद्धि सहित तुम कहँ अनुरागे । राजवेष भूषित बड़ भागे ॥
राजित कनक सिंहासन चयना । लखन हेतु तरसत मम नयना ॥

——— हे युवराज कुमार! आप एकाग्र चित्त से श्रवण कीजिये, मैं अपने सुख के लिए, आपसे यथार्थ वार्ता कह रहा हूँ कि– प्रथम तो, श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित परम सौभाग्यशाली आपको, प्रेम पूर्वक राजकीय वेष से अलंकृत, आनन्दपूर्वक स्वर्ण सिंहासनासीन देखने हेतु मेरे नेत्र ललचा रहे हैं।———

दो0– सीतहुँ हिय अभिलाष अति, निशि–दिन बाढ़त जाय ।
राज तिलक तव लखन कहँ, नयन रहे ललचाय ॥९१॥

———आपकी अनुजा श्री सीता जी के हृदय में भी यही बलवती इच्छा अहर्निशि बृद्धिंगत होती जाती है तथा आपके राज्याभिषेक का दर्शन करने हेतु उनके नेत्र लालायित हैं।———

दूसर हेतु सुनहु दृग तारे । सीय भ्रात मम श्याल सुखारे ॥
जो तुम राज बैठिहहु नाहीं । शोभा मोर रही कछु नाहीं ॥

श्री राम जी महाराज कह रहे हैं कि– हे नेत्र पुतलियों सदृश प्रिय, सुख–प्रदायक, सीताग्रज, प्रिय श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप दूसरा कारण सुनिये, यदि आप श्री मिथिलापुरी के राज्य पद में नहीं विराजेंगे तो मेरी शोभा में न्यूनता आ जायेगी।———

सिय सुख हेतु राज जो भ्रजिहौं । मम समान सब साज सुसजिहौं ॥
तब हौं सोहिहौं जगत महाना । जिमि शशि पूरे सिन्धु सुजाना ॥

———पुनः यदि आप श्री सिया जू के सुख हेतु श्री मिथिलापुरी के राज्य पद में विराज जायेंगे और मेरे समान सभी साज से सुसज्जित होंगे, तब हे सुजान! मैं संसार में उसी प्रकार अत्यधिक सुशोभित होऊँगा जिस प्रकार पूर्ण चन्द्रमा को देखकर समुद्र।———

राजा राम श्याल तिन राजा । सिय पटरानी भ्रात सुभ्राजा ॥
सिय भाभी श्री सिद्धि कुमारी । बिन पटरानि न सोह अपारी ॥

–––क्योंकि राजा राम जी के श्याल व महारानी श्री सिया जी के सुशोभन भैया को राज्यपद से युक्त होकर ही सुशोभित होना चाहिए तथा श्री सीता जी की भाभी श्री सिद्धि कुँअरि जी भी, बिना महारानी पद के सुशोभित नहीं होगीं।–––

तीसर बात सुनहु मन लाई । जो नहि सेइहौ राज सुहाई ॥
निमिकुल राज शब्द मिट जाई । राज परंपर बिना स्वभाई ॥
जेहिं कुल सिया पुत्रि सुखदानी । उपजी पावन करन महानी ॥

–––अब आप तीसरी बात भी सजगतया श्रवण कीजिये, यदि आप श्री मिथिलापुरी के सुन्दर राज्य पद का सेवन नहीं करेंगे तो संसार से श्री 'निमिकुल–राज्य शब्द ही मिट जायेगा और यह राज्य स्वाभाविक ही परम्परा विहीन हो जायेगा। पुनः जिस कुल में सुख प्रदायिनी, पवित्र, महान अन्तःकरणों वाली श्री सिया जी उत्पन्न हुई हैं तथा–––

दो0– राम भये जामात जेहिं, सो कुल राज विहीन ।
कही त्रिलोकी बात यह, सोचहु कुँअर प्रवीन ॥९२॥

–––जिस कुल के जामाता (हम) श्री राम जी हुए हैं वह कुल राज्य पद से रहित हो गया, यह बात तीनों लोकों के निवासी कहेंगे। अतः हे परम प्रवीण कुमार! इस सत्य पर किंचित विचार तो कीजिये।–––

सुनियो चौथ हेतु सुकुमारे । यागबलिक अरु गुरू हमारे ॥
ये सब विज्ञ भविष्यहिं भाषा । करिहैं राज कुँअर कहि राखा ॥

–––हे परम सुकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! अब चौथा कारण श्रवण कीजिये, त्रिकालज्ञ व परम विज्ञानी निमिकुल आचार्य श्री याज्ञबल्क्य जी और हमारे गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी महाराज आदि ने आपका भविष्य चरित्र वर्णन करते हुए बखान किया है कि– कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री मिथिलापुरी का राज्य शासन करेंगे।–––

तेहिं ते मुनि वच गौरव हेता । मोर बचन सुनु प्रीति समेता ॥
हृदय धारि अतिशय सुख देऊ । प्राण सखा सब जानहु भेऊ ॥

–––अतएव आप मुनियों के वचनों को महद्यश प्रदान करने हेतु, प्रेम पूर्वक मेरे वचनों को सुन, हृदय में धारण कर, मुझे अत्यधिक सुख प्रदान कीजिये, क्योंकि हे मेरे प्राण सखे! आप तो मेरे हृदय के सभी भावों को जानते ही हैं। –––

तव सुख देखि जिऔं नित प्यारे । मोरे हित तुम प्राणहिं धारे ॥
ताते सुखद मनोरथ पूरिय । मम सुख इच्छा हृदय विसूरिय ॥

–––मैं आपको सुखी देखकर ही नित्य जीवित हूँ तथा आप भी मेरे लिए ही, अपने प्राणों को धारण किये हुए हैं। अतः हृदय में खेद न मानते हुए मेरे सुख प्रदायक मनोरथ व मेरी सुखेच्छा को

पूर्ण कर दीजिए।———

नयन सफल मोरे अब करहू। नृप पद बैठि चरित अनुसरहू॥
सुभग सिंहासन दम्पति देखी। पइहौं आनन्द हृदय विशेषी॥

———हे प्यारे! अब आप मेरे नेत्रों को सफल करें तथा श्री मिथिला पुरी के 'राज्य पद' में विराज कर तदनुसार चरित्र का अनुसरण करें। मैं आप दोनों श्री सिद्धि कुअरि जी व आपको सुन्दर श्री मिथिलापुरी के राज्य सिंहासन में विराजे हुए देखकर अपने हृदय में विशेष आनन्द प्राप्त करूँगा।———

दो0— तब जनिहौं कृतकृत्य मैं, नाहित दुख दिन जान।
पुरवहु मम अभिलाष अब, कुँअर महा मति मान॥९३॥

———पुनः मैं, स्वयम् को तभी कृत—कृत्य समझूँगा अन्यथा मेरे दिन दुखमय ही होंगे, अतएव हे महान बुद्धिमान कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! अब आप मेरी अभिलाषा पूर्ण कर दें।

सुनत कुँअर रघुवर हिय लाये। प्रेम वारि नययन छबि छाये॥
नयनन नयन मिलाय दुलारा। सरस तकनि मोहन मधुवारा॥

श्री राम जी महाराज के बचनों को श्रवण करते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज को हृदय से लगा लिये, उनके नेत्र प्रेमाश्रुओं से विभूषित हो गये। पुनः अपने नेत्र प्रभु श्री राम जी महाराज के नेत्रों से मिलाकर, रसमयी, मनमोहनी तथा मधुपूर्ण चितवनि से निहार दुलार करते हुए———

बोलेव सुखद सरल मृदु वानी। भगति विवेक प्रेम रस सानी॥
मैं हौं तव जूती बरदारा। रुचै न मन महँ और कबारा॥

———सुख प्रदायक, सरल, भक्ति, ज्ञान, प्रेम व रस से सनी हुई कोमल वाणी से कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी बोले— हे प्यारे! मैं तो आपकी जूतियों को साफ करने वाला सेवक हूँ तथा इसके अतिरिक्त मुझे मन में भी कोई अन्य कार्य अच्छा नही लगता।

राज्य कार्य राउर कर कामा। सब समर्थ प्रभु जन सुख धामा॥
गुरु प्रसाद सब मैथिल राजा। योगी आत्म विशारद भ्राजा॥

हे मेरे प्राण प्रिय! राज्य करना तो आप श्री का कार्य है क्योंकि आप सर्व—सामर्थ्यवान, अपने सेवकों के सुख के धाम स्वरूप, स्वामी है। हे नाथ! हमारे सद्गुरुदेव श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज की कृपा से श्री मिथिलापुरी के सभी राजा योगी और आत्म विशारद हो सुशोभित होते आये हैं।———

मन अलिप्त करि राज सम्हारी। त्यागि वासना रहे सुखारी॥
तिन महँ भये विभूषण दाऊ। प्रगटि दिखाये आपन भाऊ॥

———वे सभी अपने मन को निरासक्त किये हुए, कामनाओं का त्यागकर सुखपूर्वक राज्य—भार सम्हालते रहे हैं। उन सभी में हमारे श्री मान् दाऊ जी, तो निमिकुल में आभूषण के समान हैं, जिन्होंने अपने हृदय के प्रेमभाव को प्रगट कर संसार को दिखा दिया।———

दो0– आदि शक्ति पुत्री भई, पूर्ण ब्रह्म जामात ।
तेहिं सुलाभ जग लाभ सब, पायो हृदय अघात ॥९४॥

–––स्वयं परमाद्याशक्ति श्री सीता जी जिनकी पुत्री और पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी महाराज जवाँई (दामाद) बने हैं। हमारे श्रीमान् पिता जी के इसी परम लाभ से लाभान्वित होकर सम्पूर्ण संसार हृदय में पूर्णतया संतुष्ट है।–––

पितु प्रसाद प्रभु कृपा महानी । हौहूँ भाम भगिन सुख जानी ॥
हौं परतन्त्र नित्य तव रामा । रक्षक मोर नाथ शुभि नामा ॥

–––उन्ही श्री मान् पिता जी के अनुग्रह और प्रभु की महान कृपा से मैंने भी बहन श्री सीता जी व बहनोई श्री राम जी के सुख का समनुभव किया है। हे श्री राम जी महाराज! मैं तो नित्य ही आपके आधीन हूँ तथा 'श्री राम' शुभ नाम वाले मेरे स्वामी आप ही मेरे सर्व विधि रक्षक हैं।–––

भगिनि भाम कैंकर्य अनूपा । प्रभु प्रसाद पुरुषार्थ स्वरूपा ॥
मुखोल्लास नित वर्धन हारी । पावहुँ सुख प्रद सेव तुम्हारी ॥

–––प्रभु कृपा से प्राप्त अपनी बहन और बहनोई श्री सीताराम जी की अनुपमेय सेवा ही मेरे लिए परम पुरुषार्थ स्वरूप है अतएव आपकी मुखोल्लास–वर्धनी सुख प्रदायिका सेवा मैं नित्य प्राप्त करता रहूँ।–––

इहै आस हिय रही समाई । ममता अहमासक्ति भुलाई ॥
अन्तर्यामी राम सुजाना । सत्यासत्य सबहिं कर ज्ञाना ॥

–––मेरे हृदय में ममता, अहंकार व आसक्ति को भुलाये हुए मात्र यही अभिलाषा समाई रहती है। हे श्री राम जी महाराज! आप तो सर्वज्ञ एवं अन्तर्यामी हैं, आपको सत्य और असत्य सभी बातों का भली प्रकार ज्ञान है।

जेहिं विधि राउर आयसु होई । जासों सिया सहित सुख मोई ॥
सोइ मैं हर्षित करौं अकामा । सेव तुम्हारी गुन सुख धामा ॥

–––अतएव हे सुख के धाम! मुझे जिस प्रकार की आज्ञा होगी तथा जिससे श्री सिया जू के सहित आप सुख संप्राप्त करेंगे, मैं हर्ष पूर्वक, निष्काम–मना आपकी सेवा समझ कर तदनुसार ही चर्या करूँगा।–––

दो0– यदपि हिये अभिलाष यह, दिन दिन बढ़ति अपार ।
मिथिला राज सिंहासनहिं, बैठहिं राम उदार ॥९५॥

–––यद्यपि मेरे हृदय में प्रतिदिन यही असीम अभिलाषा बृद्धिंगत होती रहती है कि– श्री मिथिलापुरी के राज्य सिंहासन में परम उदार आप श्री राम जी महाराज ही आसीन हों।–––

छत्र चमर लै सेवा करऊँ । छन छन नव नव आनन्द भरऊँ ॥
तदपि हृदय गुनि मोहि निज तंत्रा । स्वसुख हेतु देवहिं प्रभु मंत्रा ॥

–––और मैं छत्र तथा चमर लेकर सेवा करता हुआ प्रत्येक क्षण नवीन नवीन आनन्द से आपूरित बना रहूँ। तथापि आप मुझे अपना अधीनस्थ समझ कर, अपने सुख के लिए आपको जो भी अभीष्ट हो मुझे आज्ञा प्रदान करें।

अस कहि कुँअर स्वशीश झुकाई । लिपटि गये चरणन अकुलाई ॥
राम उठाय उरहिं छपकाये । पोंछि आँसु मृदु बचन सुनाये ॥

ऐसा कह, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपना सिर झुकाकर, आकुलतापूर्वक श्री राम जी महाराज के चरणों से लिपट गये तब श्री राम जी महाराज ने उन्हें उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और उनके नेत्रों से प्रवाहित हो रहे अश्रुओं को पोछकर कोमल बचन बोले–

मम ओरहिं ते गुनि बड़ि सेवा । लेहिं नृपासन मोहि मन धेवा ॥
यह बड़ि आस बढ़त दिन राती । पूर बिना नहिं शीतल छाती ॥

हे कुमार! मेरी ओर से अपनी श्रेष्ठ सेवा समझ तथा मुझे मन से ध्यान कर आप राज्यासन ग्रहण कर लें। यही महान अभिलाषा मेरे मन में अहोरात्रि बृद्धिंगत होती रहती है जिसके पूर्ण हुए बिना मेरा हृदय शीतलता प्राप्त नहीं करेगा।

सुनत कुँअर चरणहिं सिर दीन्हे । राम रजाय शीश धरि लीन्हे ॥
गवने राम जहाँ मिथिलेशा । कीन्हे आदर जनक नरेशा ॥

श्री राम जी महाराज के ऐसे वचन सुनते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज की आज्ञा शिरोधार्य कर उनके चरणों में अपना सिर रख दिये। तदुपरान्त श्री राम जी महाराज वहाँ गये जहाँ श्री मिथिलेश जी महाराज का निवास था, श्री राम जी महाराज को देखकर, श्री जनक जी महाराज ने उनका यथोचित आदर किया।

दो0– कुँअर बतकही सबहिं प्रभु, भूपहिं दिये सुनाय ।
प्रीति रीति लखि सुवन की, रहे नयन जल छाय ॥९६॥

प्रभु श्री राम जी महाराज ने श्री जनक जी महाराज को कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि की सभी बातें सुना दीं, तब अपने पुत्र की प्रीति–रीति को समझकर श्री जनक जी महाराज के नेत्रों में अश्रु भर आये।

बहुरि कहेव श्री राम उदारा । सुनियहिं श्री मिथिलेश भुआरा ॥
तरसत दूनहुँ नयन हमारे । राज–वेष श्री कुँअरहिं धारे ॥

पुनः परम उदार श्री राम जी महाराज ने कहा– हे श्री मिथिलेश जी महाराज। सुनिये! हमारे दोनों नेत्र कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को राजकीय वेष धारण किये देखने के लिए लालायित हैं।–––

सहित सिद्धि सिंहासन माहीं । देखिहैं कब पइहैं सुख काहीं ॥
ताते पुरवहिं मम मन कामा । करहिं कुँअर कर तिलक ललामा ॥

–––कब मेरे नेत्र श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को राज्य सिंहासन में विराजे हुए दर्शन कर सुख प्राप्त करेंगे। इसलिए आप कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का सुन्दर

राजतिलक कर मेरे मन की इच्छा को पूर्ण करें।

जानि राम रुख जनक भुआरा। पूँछे गुरुहिं सुदिन सुखसारा॥
सोधि लगन गुरु दीन्ह बताई। राज तिलक की साज सजाई॥

श्री जनक जी महाराज ने श्री राम जी महाराज की इच्छा जान कर निमिकुल आचार्य श्री याज्ञबल्य जी से, सुखों के सारभूत शुभ–मुहूर्त की जिज्ञासा की। श्री गुरुदेव जी ने शुभ लग्न का शोधन कर मुहूर्त बतला दिया, तदनुसार राज्याभिषेक की सभी सामग्री एकत्रित करवा दी गयी।

राम सिया मन आनँद भारी। कुँअर तिलक की बात विचारी॥
जनक पुरी रचना जिय जोही। होत हृदय आनन्द विमोही॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के राज्याभिषेक का स्मरण कर श्री सीता जी व श्री राम जी महाराज के मन में महान आनन्द हो रहा था तथा श्री जनक पुरी की रचना (सजावट) का हृदय में चिन्तन करते ही वे आनन्दातिरेक से विमोहित हो जाते थे।

दो0– मातु पिता गुरु सचिव सब, विप्र प्रजा समुदाय।
राज तिलक श्री कुँअर के, माने मोद सुभाय॥९७॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के राज्याभिषेक होने के निश्चय से श्री अम्बा जी, श्री मान् दाऊ जी, श्री गुरुदेव जी, सभी मन्त्रीगण, ब्राह्मणों तथा प्रजा वर्ग ने स्वाभाविक ही अतिशय आनन्द का अनुभव किया।

आयो सुभग मुहूरत जबहीं। दीन्ह सुआयसु गुरु जन तबहीं॥
सिद्धि कुँअरि कहँ निज कर सीता। राज्ञी वेष बनाइ विनीता॥

शुभ मुहूर्त आते ही गुरुजनों ने सुन्दर आज्ञा प्रदान की तब श्री सीता जी ने अपने कर कमलों से विनयावनत श्री सिद्धि कुँअरि जी का महारानी वेष बनाकर–––

वस्त्र विभूषण विविध प्रकारा। पहिराई अति दिव्य अकारा॥
तैसहिं सुखकर श्याम सलोने। करुणाकर सुन्दर सुख भौने॥

––विभिन्न आकार–प्रकार के दिव्य वस्त्र और आभूषण पहनाये। उसी प्रकार, सभी को सुखी करने वाले करुणा के सागर, सुन्दर सुख के धाम, सलोने श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज ने भी–––

लक्ष्मीनिधि कहँ प्रीति समेता। वस्त्र विभूषण साजि स्वहेता॥
निज समान सब साज सजाई। पाये आनन्द अति अधिकाई॥

–––अपने सुख हेतु राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को प्रीतिपूर्वक वस्त्र और आभूषण धारण कराया एवं उन्हे अपने समान साज–सज्जा से युक्त कर महान आनन्द प्राप्त किये।

सिद्धि कुँअरि सह जनक कुमारा। गुरु निदेश गे तिलक अगारा॥
जाइ गुरुहिं सादर शिर नाई। सभहिं रहे दोउ शीश झुकाई॥

तदनन्तर श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री गुरुदेव जी की आज्ञा से राज्य सभा गये। वहाँ जाकर उन्होने गुरुदेव श्री याज्ञबल्क्य जी को आदरपूर्वक शिर झुका दण्डवत प्रणाम किया तथा सम्पूर्ण सभा को भी शिर झुका कर प्रणाम किया।

दो0– मुनिवर आयसु पाइ पुनि, राम सिया रुख पाय ।
सिद्धि सहित श्री कुँअर वर, राज सिंहासन जाय ॥९८॥

पुनः मुनिश्रेष्ठ श्री याज्ञबल्क्य जी की आज्ञा व श्री सीताराम जी का संकेत प्राप्त कर श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी जाकर श्री मिथिलापुरी के राज सिंहासन में–––

राजे मन ते प्रभु पधराई । तिन्ह सेवा शुचि समुझि सुहाई ॥
सोह सिद्धि सह जनक कुमारा । दम दम दमकति ज्योति अपारा ॥

–––मन से अपने प्रभु श्री राम जी महाराज को पधराकर तथा उनकी पवित्र सुन्दर सेवा समझ, स्वयम् विराज गये। उस समय श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अतिशय शोभायमान तथा अतुलनीय दिव्य तेज से आभान्वित हो रहे थे।

नख शिख सुभग कहै को पारी । बहु रति मनसिज जावहिं वारी ।।
सीयराम जेहिं स्वयं सिंगारी । कीन्हे कृपा अमित सुखकारी ।।

उनकी नख शिखान्त शोभा का वर्णन कौन कर सकता है, उन पर बहुत से रति और कामदेव न्योछावर हो रहे थे। असीम कृपाकर जिनका शृंगार स्वयम् सुखकारी श्री सीताराम जी ने किया हो–––

तेहिं शोभा किमि जाय बखानी । राजि रहे दम्पति रसखानी ॥
देखि नृपासन बैठ ललामा । सीयराम भे पूरण कामा ॥

–––उनकी शोभा का वर्णन किस प्रकार से किया जाय। वे दम्पति रस के मूल स्रोत के समान राज्य सिंहासन में विराजे हुए थे। उन्हें सुन्दर राज्य सिंहासन में बैठे देखकर श्री सीताराम जी पूर्ण काम हो गये।

याज्ञबल्क्य रघुवर गुरु ज्ञानी । प्रथम तिलक किय हिय सुखसानी ॥
पुनि द्विज गणन राम करवाई । कीन्हे स्वयं तिलक हरषाई ।।

हृदय में आनन्द परिपूर्ण होकर निमिकुल आचार्य श्री याज्ञबल्क्य जी और रघुकुल के ज्ञानी गुरुदेव श्री वसिष्ठ जी ने सर्व प्रथम राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी का राजतिलक किया। पुनः श्री राम जी महाराज ने विप्रगणों से तिलक करवा कर हर्ष में भर, स्वयं उनका राजतिलक किया।

सियाराम उत्सव सुखकारी । कुँअर तिलक महँ किये अपारी ॥
सुर मुनि नाग लोक तिहुँ वासी । लखि उछाह मन मोद विकासी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के राज्याभिषेक में श्री सीताराम जी ने सुख प्रदायक महान महोत्सव किया। जिसे देखकर देवता, मुनि और नाग तीनों लोकों के निवासियों के मन में आनन्द का विकास हो गया।

वरषहिं सुमन निसान बजाई । सुर समुदाय सुखहिं सरसाई ॥
पंच शब्द ध्वनि पुर अरु व्योमा । छाय रही हर्षण तन लोमा ॥

आकाश से देवगण सुख में सरसाये हुए नगाड़े बजाकर फूल वर्षा रहे हैं, आकाश और नगर में पंच ध्वनियाँ (जयनाद, बन्दी ध्वनि, वेद ध्वनि, मंगल गान तथा नगाड़े की ध्वनि) छायी हुई हैं जिससे सभी के रोम–रोम में हर्ष उत्पन्न हो रहा है।

दो0– विविध दान भूपति दिये, घर घर मंगल चार ।
राम सिया कर्त्ता जहाँ, सो सुख वाणी पार ॥९९॥

श्री जनक जी महाराज ने विभिन्न प्रकार से असीम दान दिया, प्रत्येक घर में मांगलिक कृत्य हो रहे हैं। जिस उत्सव के आयोजक स्वयम् श्री सीताराम जी हों उससे उत्पन्न सुख तो वाणी से परे (अकथनीय) ही होगा।

दम्पति कुँअरहिं लखि वर नारी । भये सुखी तन सुधिहिं बिसारी ॥
बानर भालु सकल हरषाने । कहि न जाय जस भूलि अपाने ॥

सपत्नीक कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को राज्यासन में विराजे देखकर सभी स्त्री–पुरुष सुखी हुए तथा अपनी शरीर स्मृति को भूल गये। उस समय सभी वानर व भालु अत्यन्त हर्षित हुए, उनकी अवस्था कही नहीं जाती कि– वे जिस प्रकार वे अपना आपा भूले हुए थे।

सीय राम जब आनन्द पागे । तीनहुँ लोक रँगे रस रागे ॥
राम सुखी लखि बानर व्यूहा । भये मगन सुख सिन्धु समूहा ॥

जब श्री सीताराम जी ही आनन्द से ओत–प्रोत हो गये तब तीनों लोकों के निवासी तो सहज ही राज्योत्सव के प्रेमानन्द में छक गये। श्री राम जी महाराज को सुखी देख, बानरों का समूह सुख के सागर में अस्त हो गया।

जिमि पुरुषहिं छाया अनुसरई । वानर गण तिमि आनँद भरई ॥
भूलि देह सुधि करि करि हूहा । किलकि उठे सब कपिगन ब्यूहा ॥

जिस प्रकार पुरुष का अनुसरण उसकी प्रति–छाया करती है उसी प्रकार आनन्दित समाज का दर्शनकर वानर समूह भी आनँद में भर गया। सभी वानर–समूह अपनी शरीर स्मृति भूल कर हू, हू आवाज करते हुये किलक उठे।

चुम्बन लगे पुच्छ सब कोई । फिर फिर पीछे मुख कर जोई ॥
पूँछ न पावहिं नर तन माहीं । बार बार हेरहिं तेहिं काहीं ॥
उछरहिं नृत्यहिं प्रेम विभोरी । आनँद मगन बजाय हथोरी ॥

वे सभी बार–बार पीछे मुख कर, चूमने के लिये अपनी पूँछ खोजने लगे। परन्तु मनुष्य शरीर में वे पूँछ नहीं पाते हैं तो उसे बार बार ढूढ़ते है तथा प्रेम विभोर हुए उछल कर नाचते हुए ताली बजा कर आनन्द में निमग्न हो जाते है।

दो0– आयहु पूर कपित्व जब, प्रगट किये निज देह ।
पूँछ पाइ चुम्बन लगे, भूले तन मन गेह ॥१००॥

जब उनमें पूर्ण रूप से बन्दरों के गुण आ गये तब, उन्होंने अपने बन्दर शरीर को प्रगट कर लिया तथा पूँछ को पाकर, शरीर, मन और घर की सुधि भुलाये हुए, उसे चूमने लगे।

नाना भाँति भालु अरु कीसा । लखि लखि हँसहिं कोशलाधीशा ॥
प्रभु की बात भूलि कपि सबहीं । करन लगे प्रिय कौतुक तबहीं ॥

उस समय कौशल–पुर नरेश श्री राम जी महाराज विविध प्रकार के भालुओं और बन्दरों को देख–देखकर हँसने लगे तब अपने स्वामी को हँसते देख, सभी बन्दर प्रभु श्री राम जी महाराज की 'आज्ञा' को भुलाकर वानरोचित प्रिय क्रीड़ायें करने लगे।

राम सेन लखि मिथिला वासी । हँसत विनोद भरे सुखरासी ॥
राज तिलक उत्सव के माहीं । मनहुँ विदूषक कपि दरशाहीं ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–श्री राम जी महाराज की बानरी सेना को देख–देखकर सुख के राशि सभी श्री मिथिलापुर निवासी विनोद में भरे हुए हँस रहे थे। उस समय ऐसा लग रहा था कि कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के राजतिलक महोत्सव में मानों बन्दर लोग विदूषक की भाँति दिखाई दे रहे हों।

राम मित्र कहि लोग उचारत । हँसत हँसावत तन मन वारत ॥
उत्सव शेष रहा जब रामा । कहा कपिन सों बचन ललामा ॥

ये श्री राम जी महाराज के मित्र हैं, ऐसा कहकर सभी मिथिलावासी पुकारते है तथा हँसते हँसाते हुए अपना शरीर व मन न्योछावर किये देते हैं। उत्सव की समाप्ति के पूर्व ही श्री राम जी महाराज ने बानरों से सुन्दर वाणी में कहा–––

भूलि गये मम आयसु सिगरे । मोहि हँसावहु या निमि नगरे ॥
तब कपि सुरति किये मन माहीं । कहत गिरे रघुपति पद पाहीं ॥

–––क्या आप सभी मेरी आज्ञा को भूल गये हैं ? जो इस श्री मिथिलापुरी में मेरा उपहास करा रहे हैं। श्री राम जी महाराज के वचनों को सुनकर बन्दरों ने, मन में प्रभु की आज्ञा का स्मरण किया और यह कहते हुए, श्री राम जी महाराज के चरणों में गिर पड़े कि–––

दो0– भली भूल भालुन भई, सुनहिं भानुकुल नाथ ।
अब जस कहिहैं करहिंगे, रहिहैं नित तव साथ ॥१०१॥क॥

–––हे सूर्य कुल के स्वामी श्री राम जी महाराज! सुनिये, हम बन्दर–भालुओं से बड़ी भूल हो गयी है, परन्तु अब आप जैसा कहेंगे हम सभी वैसा ही करेंगे तथा नित्य आपके साथ रहेंगे।

छन छन देखत रहिय प्रभु, बानर भालुन काहिं ।
तनिक ढील परतहिं सकल, अटपट कार्य कराहिं ॥ख॥

हे नाथ! आप अपने इन बन्दर–भालुओं की प्रतिक्षण सम्हाल करते रहिये क्योंकि ये सभी रंचमात्र असावधान होते ही अटपटे काम करने लगते हैं।

ताते ढील न कीजिय रामा । राखिय अपने वशहिं ललामा ॥
नाहित खोर न दीजै हमरा । अंट संट सब करिहैं वनरा ॥

इसलिए, हे श्री राम जी महाराज! आप हम वानरों के प्रति शिथिलता न बरतिये वरन् इन्हें अपने वश में किये रखिये, नहीं तो आप, बाद में हमें दोष मत दीजियेगा, क्योंकि सभी वानरगण उटपटाँग काम करने लग जायेंगे।

सुनि कपि बचन राम मुसकाने । अन्तर प्रेमहिं पाय अघाने ॥
कपि विनोद लखि सिय सुकुमारी । हँसत सखिन सह कुल उजियारी ॥

वानर सखागणों के बचन सुनकर श्री राम जी महाराज मुस्करा दिये तथा उनके हृदगत प्रेम को प्राप्त कर संतुष्ट हो गये। बानरों के विनोद को देख–देखकर सखियों सहित, दोनों कुलों (श्री निमिकुल व श्री रघुकल) को प्रकाशित करने वाली परम सुकुमारी श्री सिया जी हर्षित हो रही थीं।

मिथिला पुर जे नारि ललामा । कपि गण देख हँसहिं अभिरामा ॥
उत्सव पूर भयो सरसाना । भई विसर्जन सभा महाना ॥

वहाँ श्री मिथिलापुरी की सुन्दर स्त्रियाँ सभी बन्दर–भालुओं को देख–देखकर मोहक हास्य से हँस रही थीं। इस प्रकार आनन्द पूर्वक उत्सव परिपूर्ण हुआ तथा वह महान सभा विसर्जित हुई।

कुँअर तिलक अति आनँद आयो । जेहिं विलोकि विधि अचरज पायो ॥
राम सिया सुख देवन हारा । को कवि वरणै ताहि सम्हारा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के राज्याभिषेक में अत्यानन्द आया जिसको देखकर श्री ब्रह्मा जी भी विस्मय को प्राप्त हो गये। समस्त सुखों के धाम, स्वयम् श्री सीताराम जी जहाँ सुख प्रदान करने वाले हो वहाँ के आनन्द का वर्णन, स्वयम् के बुद्धि–कौशल्य से कौन कवि कर सकता है।

दो0– लक्ष्मीनिधि हिय शान्ति सुठि, हर्ष विषादहिं त्याग ।
सेवा गुनि रघुनाथ की, लिये राजपद याग ॥१०२॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी हर्ष व विषाद से उपरत हो, अपने हृदय में परम शान्ति सम्प्राप्त कर रहे थे तथा उन्होने अपने परमाराध्य श्री राम जी महाराज की सेवा समझ कर ही श्री मिथिलापुरी के राज्य पद को ग्रहण किया है।

सीतारमण राम रघुराई । यहिं विधि कुँअरहिं राज बिठाई ॥
मन विश्राम लहे सुख सारी । राज सिंहासन कुँअर निहारी ॥

इस प्रकार, सीताकान्त, रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज, अपने प्रिय श्याल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को श्री मिथिला पुरी के राज्य पद में अभिषिक्त कर तथा राज्य सिंहासन में कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को बैठे देखकर मन में सुख व शान्ति प्राप्त किये।

बसे राम सिय सहित समाजा । मिथिला पुरी प्रेम रस भ्राजा ॥
दिन दिन नव नव प्रिय सतकारा । करत राम कर जनक भुआरा ॥

श्री सीताराम जी, प्रेमानन्द पूर्वक, अपनी श्वसुर पुरी श्री मिथिला में ससमाज निवास कर रहे थे तथा श्री जनक जी महाराज श्री राम जी महाराज का प्रत्येक दिन नवीन–नवीन प्रिय सत्कार करते थे।

प्रेम पाँस बँधि रघुकुल राई । करत चरित नित नये सुहाई ॥
जब तब कपिन विनोद महाना । लखहिं सुनहिं रघुवीर सुजाना ॥

रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज श्री मिथिला पुरी की प्रेम–डोरी में बँधे हुए नित्य नवीन सुन्दर चरित्र कर रहे थे। वहाँ जब–तब बन्दर भालुओं का महान विनोद, परम सुजान श्री राम जी महाराज देखते और सुनते रहते थे।

पुर नर नारि मगन अति होवहिं । राम सिया दरशन सुख जोवहिं ॥
मिथिला अवध समाज सुखारी । मोद विनोद कहे को पारी ॥

श्री मिथिलापुरी के स्त्री–पुरुष श्री सीताराम जी के दर्शन का आनन्द प्राप्त कर अत्यन्त मग्न हो रहे थे। इस प्रकार श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी का समाज अत्यधिक सुख से सराबोर था, उनके आनन्द और विनोद का वर्णन कर कौन पार पा सकता है।

दो0– अवधपुरी करि सुधिहिं प्रभु, जनक ढिंगहिं रस छाइ ।
चलन साज साजन कहे, गुरु निदेश दिय गाइ ॥१०३॥

प्रभु श्री राम जी महाराज श्री अयोध्यापुरी की स्मृति कर, अपने श्वसुर श्री जनक जी महाराज से श्री अयोध्यापुरी प्रस्थान की, तैयारी करने हेतु यह कहकर निवेदन किये कि– रघुकुल आचार्य श्री बशिष्ठ जी की ऐसी आज्ञा है।

गुरु निदेश सुनि जनक भुआरा । इच्छा समुझि राम करतारा ॥
विदा साज साजे तेहिं काला । अमित विदाई दिय सुखशाला ॥

तब श्री गुरुदेव जी की आज्ञा श्रवण कर व सर्वेश्वर श्री राम जी महाराज की इच्छा जान, श्री जनक जी महाराज ने, उसी समय सुख–पूर्वक असीमित भेट–सामग्री प्रदान कर, विदाई की तैयारी कर दी।

हय गय रथ धन धेनु सुहाई । दीन्हे मणिगन यान भराई ॥
सहित वसिष्ठ ऋषिन सनमाने । दान मान विनती सरसाने ॥

श्री जनक जी महाराज ने घोड़े, हाथी, रथ, धन, गाय तथा सुन्दर मणियाँ आदि विमानों में भरवा कर प्रदान की तथा वे आदर, दान व विनय पूर्वक श्री बशिष्ठ जी महाराज सहित सभी ऋषियों का सन्मान कर आनन्दित हुये।

राम मातु सह सब रनिवासा । सतकारी सिय मातु हुलासा ॥
भेंट अमित दीन्ही हरषाई । सहित सिद्धि पुनि पुनि बलि जाई ॥

श्री सिया जू की अम्बा श्री सुनैना जी ने श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी सहित सम्पूर्ण रनिवास का आनन्द पूर्वक सत्कार किया व श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित हर्षित हो असीमित भेंट अर्पित कर बार–बार बलिहारी गयीं।

सकल समाजहिं नृप हुलसाने । दीन्हे भेंट विविध को जाने ॥
यहिं प्रकार सब कहँ सुख पागे । पूजे नृपति भाव भरि भागे ॥

श्री जनक जी महाराज ने सम्पूर्ण अवध समाज को आनन्द पूर्वक विभिन्न प्रकार की जो भेंट सामग्री अर्पित की उसका अनुमान कोई भी नहीं कर सकता। इस प्रकार सुख में पगे हुए श्री जनक जी महाराज ने अपना सौभाग्य समझते हुए भावपूर्वक सभी की पूजा की।

दो0– सासु सुनैनहिं मुदित मन, सहित सिद्धि सरसाय ।
राम मिले भ्रातन सहित, हृदय प्रीति रस छाय ॥१०४॥

भ्राताओं सहित आनन्दित मन श्री राम जी महाराज श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित अपनी सासू श्री सुनैना जी से हृदय में प्रेम व रस में छके हुए भेंट किये।

बहुरि विदेह समाजहिं लीने । पहुँचाये प्रिय हिय रस भीने ॥
सहित बशिष्ठ मुनिन सिर नाई । बहु विधि आशिष पाइ सुहाई ॥

पुनः ससमाज श्री विदेहराज जी महाराज अपने प्रिय पाहुन श्री राम जी महाराज को विरह रस में सराबोर हृदय से पहुँचाने गये। अनन्तरे श्री बशिष्ठ जी सहित अन्य मुनियों को शिर झुका प्रणाम कर, उन्होने विभिन्न प्रकार से मनोनुकूल आशीर्वाद प्राप्त किया।

भ्रातन सह रामहिं मिलि राजा । भरे नयन जल रसमय भ्राजा ॥
प्रभु गुण गण वरणत हिय माहीं । आवन आस किये अति चाही ॥

भ्राताओं सहित श्री राम जी महाराज से भेंटकर श्री जनक जी महाराज, अश्रुपूरित नेत्र व विरह रसाप्लावित हो गये। पुनः वे प्रभु श्री राम जी महाराज के गुण–समूहों का मन में चिन्तन करते हुए व उनके पुनरागमन की अतीव अभिलाषा किये हुए–––

आये लौटि विरह रस भ्राजा। गवने राम समेत समाजा ॥
राम संग किय गवन कुमारा। पहुँचावन अवधहिं सुखसारा ॥

–––विरह रस से ओत–प्रोत लौट आये। अनन्तर श्री राम जी महाराज ससमाज श्री अयोध्या पुरी प्रस्थान कर गये। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज को पहुँचाने के लिए श्री अयोध्यापुरी तक सुख पूर्वक उनके साथ गये।

भगिनि सहित श्री राज किशोरी । रही जनकपुर पितु सुख भोरी ॥
श्याल लिये प्रभु अवधहिं आये। देखत पुर वासी हरषाये ॥

अतिशय सरल हृदया राज किशोरी श्री सिया जी अपनी बहनों सहित, अपने पितृ–सुख में विभोर हुई श्री जनक–पुरी में रह गयीं। प्रभु श्री राम जी महाराज अपने प्रिय श्याल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को लिए हुए श्री अयोध्यापुरी आ गये जिन्हें देखते ही श्री अयोध्यापुर निवासी हर्ष में

भर गये।

दो0– स्वागत कीन्हे मुदित मन, पुर वासी सुख पाय ।
आनन्द आढ्यो अवध महँ, रही पंचध्वनि छाय ॥१०५॥

श्री अयोध्यापुर निवासियों ने सुख प्राप्त कर उनका आनन्दित मन से स्वागत किया। इस प्रकार श्री अयोध्यापुरी में आनन्द की परिबृद्धि तथा पंच ध्वनि व्याप्त हो गयी।

राम प्यार लहि जनक कुमारा । रहे अवध सुख सने अपारा ॥
रघुपति सह दिन चर्या होई । मज्जन अशन शयन सुख मोई ॥

श्री राम जी महाराज के प्रेम को प्राप्तकर जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री अयोध्यापुरी में असीम सुखपूर्वक निवास कर रहे थे। उनकी स्नान, भोजन और शयन आदि दिनचर्यायें सुख पूर्वक रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज के साथ होती थीं।

भूप अवध मिथिला दोउ लोने । श्याम गौर वपु मरकत सोने ॥
नख शिख सुभग विभूषण धारे । सोहत मोहत वेष सम्हारे ॥

मरकत मणि व स्वर्ण के समान श्याम–गौर वर्ण वपुष श्री अयोध्यापुरी और श्री मिथिलापुरी दोनों के 'महाराज' श्री राम भद्र जी और श्री लक्ष्मीनिधि जी नख शिखान्त सुन्दर आभूषण तथा राजकीय परिवेष धारण किये हुए समग्र अयोध्यापुर निवासियों के मन को मोहित करते हुए शोभायमान हो रहे थे।

चन्द्रकीर्ति दोउ चरित उदारा । कहत सुनत मुद मंगल कारा ॥
एक एक लखि आनँद पावैं । रहैं साथ नहिं तदपि अघावैं ॥

वे दोनों परस्पर की उदार व चन्द्रमा के समान धवल कीर्ति गाथाओं को कहते और सुनते हुए आनन्द और मंगलमय बने रहते थे तथा एक दूसरे को देख–देखकर आनन्द प्राप्त करते थे। यद्यपि वे नित्य एक साथ ही रहते थे तथापि एक दूसरे को देखने से किंचित भी तृप्ति को प्राप्त नहीं करते थे।

युग पुरवासिन प्राण अधारा । दूनहु सुखद भाम अरु सारा ॥
सब कर बाढ़त नित नव प्रेमा । लखि लखि युगल राट कर नेमा ॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–परस्पर सुख प्रदान करने वाले, बहनोई और श्याल श्री राम जी महाराज और श्री लक्ष्मीनिधि जी दोनों, श्री मिथिलापुर व श्री अयोध्यापुर निवासियों के प्राणाधार थे। उन दोनों महा सम्राटों की प्रेम पद्धति को देख–देखकर उनके प्रति सभी का नवीन प्रेम नित्य परिवर्द्धित होता रहता था।

दो0– युगल प्रीति पय वृष्टि नित, भक्त सुशालिहिं सींच ।
आनँद मोद प्रदायिनी, निर्मल रसद अमीच ॥१०६॥

श्री मिथिला व श्री अवधपुरी दोनों सम्राटों के प्रेम की धवल, रस–प्रदायिनी व अमृत स्वरूपा

जलवृष्टि, सुन्दर धान के पौधों के समान भक्तजनों को अभिसिंचित कर आनन्द और मोद प्रदान करती रहती थी।

कौशलपुरी सुभग रजधानी । शासहिं रामचन्द्र सुख खानी ॥
राजाराम सुखद पति पाई । प्रमुदित पुरी रहइ हरि ताँई ॥

अयोध्या नरेश श्री राम जी महाराज सुख पूर्वक सुन्दर श्री कोशलपुरी राज्य का संचालन कर रहे थे। परम सुखदायक श्री राम जी महाराज को सम्राट के रूप में प्राप्तकर श्री अयोध्यापुरी अत्यानन्दित रहती थी जिस प्रकार श्री हरि भगवान को प्राप्त कर वैकुण्ठ।

सब विधि सुखी कहै को पारा। करैं राम जेहिं केर सम्हारा ॥
राम प्रताप दसहुँ दिशि छावा । महि पाताल नाक गुण गावा ॥

महान महिमामयी, सर्व प्रकारेण सुखी श्री अयोध्यापुरी के सुख का वर्णन कर कौन पार पा सकता है जिसकी देखभाल श्री राम जी महाराज करते हैं। श्री कोशल–पुरी की दसों दिसाओं में श्री राम जी महाराज का प्रताप (प्रभाव) छाया हुआ था तथा भूमि, पाताल और स्वर्ग में भी उनके गुणों का गायन हो रहा था।

युगातीत सम त्रेता केरी । होन लगी सद् क्रिया सुखेरी ॥
त्रिगुणातीत सकल नर नारी । भजत सदा सिय राम सुखारी ॥

उस समय त्रेतायुग की सम्पूर्ण सुन्दर क्रियायें सुख पूर्वक चारों युगों से परे व विलक्षण प्रकार से हो रही थी। वहाँ के सभी स्त्री–पुरुष तीनों गुणों (सत, रज और तम) से ऊपर होकर सुखपूर्वक सदैव श्री सीताराम जी का भजन करते थे।

प्रेम विलक्षण जग जिय जामा। विपति बीज जरि गयो सकामा ॥
शाश्वत आनँद मगन अनंता । देखि देखि सब सीता कंता ॥
सात द्वीप इक भूपति रामा। शासत सुन्दर सुखकर श्यामा ॥

श्री अयोध्यापुर वासियों के हृदय में असाधारण प्रभु–प्रेम उत्पन्न हो गया था तथा उनकी कामनाओं सहित सम्पूर्ण विपत्तियों के बीज भष्मीभूत हो गये थे। वे सभी सीताकान्त श्री राम जी महाराज का दर्शन कर शाश्वत आनन्द में मग्न रहते थे। उस समय भू मण्डल के सम्पूर्ण सातों दीपों (जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौञ्च, शाक व पुष्कर) के परम सुशोभन सुख प्रदायी श्याम वपु श्री राम भद्र जी महाराज ही एक मात्र शासक थे।

दो0– सबहिं दीप के नारि नर, पाइ राम कहँ भूप ।
जात न जानहिं दिवस निशि, बनिगे आनन्द रूप ॥१०७॥

उस समय सभी द्वीपों के निवासी स्त्री–पुरुष श्री राम जी महाराज को शासक रूप में प्राप्तकर आनन्द स्वरूप बन गये थे। उन्हे दिन व रात्रि व्यतीत होने के ज्ञान का अनुभव तक नही होता था।

वेद धर्म सहजहिं सब पालहिं । चारहु वर्ण अकाम सुचालहिं ॥
चारहु आश्रम पावनताई । यथा रीति श्रुति संतन गाई ॥

चारों वर्णो के सभी स्त्री–पुरुष सहजतया वेद और धर्म का पालन करते हुये निष्काम मन से तदनुसार आचरण में संलग्न थे। जैसा कि– श्रुतियों व संतों ने गायन किया है, चारों आश्रमों (ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, बानप्रस्थ व सन्यास) में वहा ँ उसी प्रकार की पवित्रता निवास कर रही थी।

छाय रही त्रय लोक पवित्री। देत त्रिलोकहिं मोद घनित्री ॥
नारि सकल गिरिजा सम सोही। पतिव्रत धर्म महा जिय जोही ॥

त्रिलोक में सर्वत्र छाई हुई पवित्रता उस समय सभी को महान आनन्द प्रदान कर रही थी। सभी नारियाँ श्री पार्वती जी के समान महान पातिव्रत धर्म का हृदय में चिन्तन कर पालन करने वाली थीं।

त्रिभुवन जन्महिं जो नर नारी। प्रथमहिं ते जे रहे अपारी ॥
राम भक्ति रत प्रेम अथोरा। जपहिं राम करि ध्यान विभोरा ॥

उस समय तीनों लोकों में जो भी स्त्री–पुरुष जन्म धारण कर रहे थे तथा वे सभी जो पूर्व से निवास करते थे, श्री राम जी महाराज की भक्ति में लगे हुए महान प्रभु–प्रेम परिपूर्ण थे। वे सभी श्री राम जी महाराज का भाव–विभोर हो ध्यान करते हुए जप करते थे।

कीर्तन कथा राम गुण केरी। कहत सुनत सब प्रीति घनेरी ॥
राम धाम प्रिय लागत सबहीं। आय दरश कर सरयुहिं नवहीं ॥

उस समय सभी अविरल प्रीतिपूर्वक श्री राम जी महाराज के गुणों का कीर्तन और कथा कहते–सुनते रहते थे। श्री राम जी महाराज का 'धाम' श्री अयोध्यापुर सभी को प्रिय लगता तथा सभी लोग वहाँ आकर उसका दर्शन कर श्री सरयू जी को प्रेम पूर्वक नमन करते थे।

दो0– घर घर जन जन हृदय महँ, राम भक्ति रस धारि।
छन छन नव नव बढ़ति बहु, आनन्द प्रद दुख दारि ॥१०८॥

श्री रामराज्य के समय प्रत्येक घर में प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में श्री राम भक्ति रस की नवीन नवीन आनन्द प्रदायिनी और दुःखों को दलन करने वाली महान धारा प्रत्येक क्षण बृद्धिगत होती जाती थी।

पाप नाम पोथिन रहि गयऊ। सपनेहु तामहँ मन नहिं भयऊ ॥
पाप त्रिताप दुःख अरु दोषा। कोउ न जान होतो यह कोषा ॥

उस समय पाप का नाम केवल पुस्तकों में रह गया था तथा किसी का मन स्वप्न में भी उसमे नही लगता था। पाप, त्रिताप (दैहिक, दैविक और भौतिक), दुख और दोष आदि शब्द भी शब्द–कोष में होते हैं ऐसा कोई नही जानता था।

प्रभु परतंत्र सबहिं निज माने। शेष भूत शुचि लक्षण आने ॥
रक्षक राम सियहिं जिय जानी। अभय रहत प्रभु बल सुखसानी ॥

सभी जन अपने आपको अपने प्रभु श्री राम जी महाराज के आधीन मानते थे तथा उनके शेषभूत बने हुये तदनुसार लक्षण स्वयम् में ग्रहण कर लिये थे। वे सभी हृदय से श्री सीताराम जी को

अपना रक्षक समझकर प्रभु श्री राम जी महाराज के आश्रय से सुख में सने हुए अभय बने रहते थे।

स्वक सुख त्यागि राम सुख हेता। सेवा सरस सुखद चित चेता॥
प्रभु कैंकर्य करहिं दिन राती। रहहिं मगन मन महँ मुद माती॥

वे सभी जीव श्री राम जी महाराज के सुख के लिए अपने सुखों का त्याग किये हुए उनकी सुख प्रदायिनी रसपूर्ण सेवा में चैतन्य चित्त लगे रहते थे और आनन्द पूर्वक दिन–रात प्रभु श्री राम जी महाराज का कैंकर्य करते हुए मन में मग्न रहते थे।

यहि प्रकार जग जीव प्रसन्न। त्रय अकार सबहीं सम्पन्न॥
परमानन्द शान्ति सुख सागर। बूड़ि गये जग जीव उजागर॥

इस प्रकार श्री राम जी महाराज के राज्य में संसार के सभी जीव प्रसन्न और तीनों अकारों (अनन्य शेषत्व, अनन्य भोगत्व व अनन्य रक्षकत्व) से सम्पन्न थे। उस समय विश्व के समग्र यशस्वी जीव परमानन्द, शान्ति और सुख के सागर में डूबे हुए थे।

दो0– पशु पक्षी भूरुह जगत, सरि सर जड़ सब कोइ।
राम भक्ति रस चाखहीं, देवन दुर्लभ जोइ॥१०९॥

श्री राम राज्य में संसार के पशु, पक्षी, पेड़–पौधे, नदी, तालाब तथा जड़–जीव आदि सभी प्राणी देवताओं को भी अप्राप्त श्रीराम भक्ति रस का आस्वाद प्राप्त कर रहे थे।

ससि सम्पन्न सुखद महि भ्राजी। अमित राशि लहि कृषक विराजी॥
कन्द मूल फल बहु विधि मेवा। उपजै अमित राशि हित सेवा॥

उस समय सुख प्रदायक भूमि कृषि से सम्पन्न हो सुशोभित हो रही थी तथा कृषकगण अपनी कृषि से धन–धान्य की असीमित राशि प्राप्त कर सुख पूर्वक निवास कर रहे थे। उस समय भूमि से कन्द, मूल, फल व विविध प्रकार के मेवा आदि की असीमित राशि प्रभु सेवा के लिए उत्पन्न होती थी।

औरहु खाद्य पदार्थ अमीता। विविध साग पय पेय पुनीता॥
वृक्ष लता मधु रसहिं स्रवाई। करहिं प्रजा हित शुचि सेवकाई॥

अन्य असीमित खाद्य पदार्थ भी जैसे– विभिन्न प्रकार के साग, दूध, पीने योग्य पवित्र पदार्थ तथा मधुरस आदि प्रजा हित के लिए, वृक्ष व लताएँ प्रश्रवित कर उनकी पवित्र सेवा कर रहे थे।

प्रभु इच्छा सब ऋतु गति त्यागी। उपजहिं खाहिं लोग बड़भागी॥
तामस भोजन कतहुँ न होई। माँस मद्य निन्दित जिय जोई॥

प्रभु श्री राम जी महाराज की इच्छा से उस समय, सभी वृक्षों में समय व ऋतुओं की गति को त्याग कर सभी प्रकार के खाद्य पदार्थ उत्पन्न होते थे जिनका परम सौभाग्यशाली जीव उपभोग करते थे। उस समय तामसी भोजन कहीं नहीं होता था तथा माँस और मदिरा (शराब) का सेवन हृदय से निन्दित समझकर कोई भी नही करते थे।

जेहिं अमेध श्रुति शास्त्र बताया । ग्रहण करत नहिं कोउ लखाया ॥
प्रभु प्रसाद नर भोगहिं भोगा । सकल प्रकार हिये करि योगा ॥

श्री राम राज्य में शास्त्रों और श्रुतियों ने जिस वस्तु का ग्रहण करना निन्दनीय कहा है उसे ग्रहण करने वाला कोई भी नहीं दीख रहा था। सभी जन सभी प्रकार के भोगों को एकत्रित कर उसका उपभोग हृदय से प्रभु श्री राम जी महाराज का प्रसाद समझकर ही करते थे।

सत्व शुद्धि बिन श्रमहिं सबन की । करहिं सेव सिय सिया रमण की ॥
चहुँ दिशि अवधपुरी अति भाई । द्वादश विपिन वृहद छबिछाई ॥

श्री राम राज्य में सभी लोगों के अन्तःकरणों की शुद्धि बिना परिश्रम बनी हुई थी तथा सभी श्री सीताजी और सीतारमण श्री राम जी महाराज की सेवा में संलग्न थे। श्री अयोध्यापुरी के चारों दिशाओं में सुन्दरता को वृद्धिंगत करते हुए बारह (श्रृंगार, तमाल, रसाल, चम्पक, चन्दन, पारिजातक, अशोक, विचित्र, कदम्ब, अनंग, नागकेशर व विहार) आदि विशाल वन सुशोभित होते थे।

दो0– कोटिन नन्दन विपिन जहँ, हौवैं नित बलिहार ।
सौरभमय फल फूल बहु, सदा बसंत बहार ॥११०॥

उन वनों में करोड़ों नन्दन वन नित्य बलिहार होते थे। वहाँ सुगन्धि से परिपूर्ण बहुत से फल और फूल उत्पन्न होते थे तथा सदैव ही वहाँ वसन्त ऋतु की बहार छायी रहती थी।

बिच बिच बहुत वाटिका वागा । सोह पुरी वितरत अनुरागा ॥
गृह गृह तुलसी पुष्पन बगिया । पूजा हेतु ईश अनुरगिया ॥

श्री अयोध्यापुरी के मध्य बहुत सी बाटिकायें और बगीचे आदि प्रेम प्रसार करते हुए सुशोभित हो रहे थे। प्रत्येक घर में ईश्वर की अनुराग पूर्वक सेवा पूजा करने के लिए तुलसी और फूलों की वाटिकायें सुशोभित थी।

बहु विधि अमल जलाशय सोहैं । मणि सोपान मुनिन मन मोहैं ॥
बन सम्पति सह सोह पहारा । निज शिर प्रगटे धातु अपारा ॥

वहाँ स्वच्छ जल से आपूरित विविध प्रकार के जलाशय सुशोभित हो रहे थे जिनमें निर्मित मणि–जड़ित सीढ़ियाँ मुनियों के मन को भी मोहित कर रही थीं। पर्वत वन सम्पत्ति से संयुक्त अपने शिखरों में असीमित धातुएँ प्रगट किये हुए सुशोभित हो रहे थे।

जहँ तहँ सोह सुवर्ण सुखानी । नित नव रत्न मणी प्रगटानी ॥
बिन निरोध मन भावत लेहीं । सकल नारि नर मोल देहीं ॥

जहाँ–तहाँ स्वर्ण की सुन्दर खदाने सुशोभित हो रही थी तथा नित्य ही नवीन प्रकार के रत्न और मणियाँ प्रकट होती थी जिन्हें बेरोक–टोक अपनी इच्छानुसार सभी स्त्री पुरुष बिना मूल्य दिये ले रहे थे।

वस्त्र अनूपम सकल प्रकारा। राम राज महँ बनैं अपारा॥
मन भावत सब बस्त्राभूषण। धारण करहिं भाव निर्दूषण॥
मन बच काय निरोग सुखारी। राम राज सिगरे नर नारी॥

श्री राम जी महाराज के राज्य में सभी प्रकार के अनुपमेय व असीमित वस्त्रों का निर्माण होता था जिन्हें लोग अपनी इच्छानुसार विशुद्ध–भाव से धारण करते थे। श्री रामराज्य में सभी पुरुष व स्त्री मन, वचन और शरीर से निरोग और सुखी थे।

दो0– मनहर सुन्दर दिव्य तनु, लाजहिं लखि रति काम।
अवधपुरी नव नारि नर, अह मम रहित अकाम॥१११॥

श्री अयोध्यापुरी के निवासी सभी स्त्री–पुरुषों के शरीर, मन को हरण करने वाले, सुन्दर, नवीन, दिव्य, अहंकार व ममकार से रहित निष्काम मन वाले थे जिन्हें देखकर कामदेव पत्नी रति और स्वयं कामदेव भी लज्जित हो जाते थे।

शची शारदा रमा भवानी। निरखि लजहिं पुर नारि सुहानी॥
सुर मुनि नर नित दरशन हेता। आवत अवधपुरी चित चेता॥

देवराज्ञी श्री शची जी, श्री सरस्वती जी, श्री लक्ष्मी जी तथा श्री पार्वती जी भी श्री अयोध्यापुरी की पौरा नाओं को देखकर लज्जित हो जाती थीं। देवता, मुनि तथा मनुष्य आदि सभी लोग, श्री अयोध्यापुरी के दर्शन हेतु नित्य सजगतया आते रहते थे।

देखत सुनत चरित्र अनूपा। ब्रह्म राम कर सुखद स्वरूपा॥
शुक सनाकदिक नारद प्रेमी। जीवन्मुक्त पार श्रुति नेमी॥

श्री अवधपुरी आकर वे पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी महाराज के अनुपमेय चरित्रों का श्रवण करते तथा उनके सुख प्रदायी स्वरूप का दर्शन करते थे। श्री शुकदेव जी, श्री सनकादिक कुमार तथा श्री नारद जी आदि भगवत्प्रेमी जो जीवन्मुक्त तथा श्रुतियों के विधि व निषेध से परे हैं।

बने रसिक प्रभु लीला केरे। रूप निरखि मोहत मन तेरे॥
सुखकर सुन्दर रूप लुभाने। विहरहिं शिव शुचि प्रेम समाने॥

वे सभी प्रभु श्री राम जी महाराज की लीला के रसिक बने हुए, उनके सुन्दर स्वरूप का दर्शनकर मोहित मन हो जाते थे। परम कल्याण प्रद श्री शिव जी प्रभु श्री राम जी महाराज के सुखकरण सुन्दर स्वरूप में लुब्ध होकर प्रेम में समाये हुए श्री अयोध्यापुरी में विहार करते रहते थे।

द्वीप द्वीप ते जन समुदाया। नरपति प्रजा प्रेम रस छाया॥
राम दरश हित अवधहिं आई। लहहिं जनम फल हिय हरषाई॥

पृथ्वी के सभी द्वीपों (जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौञ्च, शाक व पुष्कर) से राजा–प्रजा आदि जन समुदाय, प्रेम परिपूर्ण हो श्री राम जी महाराज के दर्शन के लिए श्री अयोध्यापुरी में आकर, अपने जीवन धारण करने का परम फल प्रभु दर्शन प्राप्त कर हृदय में हर्षित होते हैं।

दो0— यहि प्रकार रघुराज वर, बने त्रिलोकी प्राण।
शासत बैठि सिंहासनहिं, राम जानकी जान ॥११२॥

इस प्रकार परम सुशोभन, रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज व निमिवंश प्रसूता श्री जानकी जू श्री अयोध्यापुरी के दिव्य राज्य सिंहासन में आसीन होकर तीनों लोकों के प्राण बने हुए राज्य शासन कर रहे थे।

लक्ष्मीनिधि रघुवर सुख धामा। प्रीति पगे पुर विहर ललामा ॥
एक दिवस प्रभु पूरण कामा। बोले भ्रातन सन अभिरामा ॥

सुख के धाम, रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज व निमिकुल नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी परस्पर प्रेम में डूबे हुए श्री अयोध्यापुरी में सुन्दर विहार कर रहे थे। एक दिन पूर्णकाम प्रभु श्री राम जी महाराज अपने प्रिय भ्राताओं से सुन्दर वाणी में बोले—

भरत लखन रिपुहन सुन लेहू। तुम्हरे हेतु मोर यह देहू ॥
तव सुख लागि ग्रहण किय राजा। और न जानहु कछु मम काजा ॥

हे श्री भरत, श्री लक्ष्मण और श्री शत्रुघ्न कुमार! आप सभी सुनें, मेरा यह शरीर आप के लिए ही है तथा मैने आप सभी के सुख के हेतु ही श्री अयोध्या पुरी के इस महान राज्य को ग्रहण किया है, इसमें आप लोग मेरा कोई अन्य प्रयोजन मत समझियेगा।

राज भोग सब तुम्हरे हेता। भोगहु सदा सुप्रीति समेता ॥
अन्तर तनिक न हिय महँ आनी। जानेहु स्वयं स्वत्व सुख खानी ॥

इसकी सभी राजकीय भोग सामग्रियाँ आप लोगों के लिए ही हैं आप लोग सुख व प्रीति पूर्वक सदैव इनका उपभोग कीजिये। हे सुखों की खानि भ्रातागणों! आप सभी अपने हृदय में किंचित भेद न समझते हुए इसे स्वयमेव अपना अधिकार ही मानियेगा।

बालक हित जिमि पिता सयाना। करै इकत्रित भोग महाना ॥
गृहपति कहवावै जग सोई। तथा राजपद मोकहँ जोई ॥

जिस प्रकार प्रवीण पिता अपने पुत्रों के लिए महान भोगों को संचित करता है और गृह स्वामी कहलाता है, मेरे लिए इस राज्य पद को आप सभी उसी प्रकार समझियेगा।

दो0— जो चाहहु सो करहु सब, शासन—भोग—सुदान।
जो मैं सो निज कहँ गिनहु, कहौं त्रिसत्य न आन ॥११३॥

अतएव आप सभी यथा रुचि इसका शासन, उपभोग और सुन्दर दान आदि कीजिये। मैं अन्यथा सम्भाषण न कर त्रिसत्य कह रहा हूँ कि— जो मैं हूँ वही आप स्वयम् को समझिये।

राम बचन सुनि सिगरे भ्राता। जाइ गिरे प्रभु पद जल जाता ॥
हाथ जोरि बोले सुख पागी। कस न कहहिं अस जन अनुरागी ॥

श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवणकर सभी भ्रातृगण उनके समीप जाकर प्रभु श्री राम

जी महाराज के चरण कमलों में प्रणाम किये और सुख में पगे हुए हाथ जोड़कर बोले– हे सेवकों पर प्रेम करने वाले स्वामी! आप ऐसा क्यों? न कहें।

दीनबन्धु प्रणतारति भंजन । सेवक सुखद मान मद गंजन ॥
सरल स्वभाव नाथ सम नाथा । सम अतिशय नहिं जग श्रुतिमाथा ॥

क्योंकि– आप दीन जनों के सर्व विधि बन्धु, आश्रित जनों के दुखों का हरण करने वाले तथा सेवकों के अहंकार व ममकार का मर्दन कर सुख प्रदान करने वाले हैं। हे सरल स्वभाव वाले, श्रुतियों के शिरोमणि, हमारे स्वामिन! संसार में आपके समान आप ही हैं, आपसे अधिक क्या? आपके समान भी कोई नहीं है।

सरवस अर्पि जनहिं रघुराई । मानहु सुख भरपेट अघाई ॥
आपु समान सेवकहिं साजी । होहु तबहिं रघुनन्दन राजी ॥

हे रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज! आप अपने सेवकों को अपना सर्वस्व अर्पित कर भरपूर सुख तथा तृप्ति का समनुभव करते हैं। हे रघुकुल नन्दन! आप अपने सेवकों को अपने समान बनाकर ही प्रसन्न होते हैं।

नयन ओट होतहिं निज दासा । होहु विकल जन हिरदय वासा ॥
दास सरिस नहिं प्रिय कहुँ कोई । यह नीके निज नयनन जोई ॥

हे सेवकों के हृदय में निवास करने वाले परम प्रभु! आप अपने सेवकों के नेत्रों से ओझल होते ही व्याकुल हो जाते हैं तथा अपने सेवकों के समान आपको कोई भी प्रिय नहीं है यह हमने भली–प्रकार अपने नेत्रों से देख लिया है।

दो0– जनहिं परशि प्रभु सुठि सुखी, यदपि सो सब विधि हीन ।
प्यार करहिं यश वितरि बड़, प्रेम परख परवीन ॥११४॥

हे नाथ! आप अपने सेवकों का सुन्दर स्पर्श कर सुखी होते हैं चाहे वे सभी प्रकार से अयोग्य ही क्यों न हों। हे परम प्रवीन स्वामिन! आप उनके प्रेम को पहचान कर उन्हे महद्यश प्रदान करते हुए असीम प्यार करते हैं।

दास मान मानहु निज माना । दास भोग निज भोग प्रधाना ॥
दास सुखी प्रभु सुख महँ साने । दास दुखी दुखरूप लखाने ॥

आप अपने सेवकों के सम्मान को अपना सम्मान समझते हैं, सेवकों के सुखोपभोग में ही अपने भोग की प्रधानता मानते हैं, सेवकों के सुखी होने में ही नाथ सुखी होते हैं तथा सेवकों के दुखी होने में आप दुखस्वरूप दिखाई पड़ते हैं।

दास सेव आपन गुनि सेवा । जीवहिं देहु परम गति देवा ॥
सहि न सकौ दासन अपचारा । देहु दण्ड तेहिं बहुत प्रकारा ॥

हे देव! आप, अपने सेवकों की सेवा को अपनी सेवा समझ कर जीवों को परम गति प्रदान करते हैं परन्तु आप अपने भक्तों (सेवकों) के अल्प अपचार को भी नहीं सहन कर पाते तथा

भक्तापचारी को विविध प्रकार से दण्ड प्रदान करते हैं।

चाहे कोटि भजन तप करई । वेद धर्म निज हिय महँ धरई ॥
तदपि देखि निज जन अपमाना । गिनहु न एक दोष बड़ जाना ॥

चाहे कोई करोड़ों प्रकार से दीर्घ समय तक भजन तथा तपस्या करे और वेद व धर्म को अपने हृदय में धारण कर ले तथापि उसके द्वारा भी किये गये सेवकों के अपमान को आप नहीं देख सकते तथा उसके भक्तापचार को महान दोष समझकर उसके द्वारा की गयी साधना पर किंचित भी ध्यान नहीं देते।

नीचहुँ दासहिं बड़ो बनाई । पुजवावहु जग प्रभु प्रभुताई ॥
ब्रह्मादिक तेहिं शीश नवावैं । नर नरपति का कथा चलावैं ॥

हे नाथ! अपने छोटे से छोटे (निम्न) सेवक को भी आप बड़ा बनाकर संसार में पूजित कर देते हैं। यही आपकी महानता है। श्री ब्रह्मा जी आदि भी उसे शीश झुकाते हैं फिर राजाओं और मनुष्यों की कथा क्या कही जाय?

दो0– जगत प्रतिष्ठा हेतु प्रभु, स्वयं ईश के ईश ।
दासहिं देवहिं मान अति, सादर नाय स्वशीश ॥११५॥

हे स्वामी! आप ईश्वरों के ईश्वर होते हुए भी भक्तजनों की सांसारिक प्रतिष्ठा के विवर्धन हेतु स्वयं, आदरपूर्वक शिर झुकाकर अपने सेवकों को अतिशय सम्मान प्रदान करते हैं।

ते तुम कहहु हमहिं अस रामा । प्यार पगे प्रिय वचन ललामा ॥
सहज स्वभाव तुम्हार कृपाला । नहि आगन्तुक जन प्रतिपाला ॥

वही आप, प्रेम में पगे हुए, प्रिय सुन्दर वचनों से हम सभी को ऐसा कह रहे हैं तो हे कृपालु, जन प्रति पालक श्री राम जी महाराज! यह आपका सहज स्वभाव ही है, कोई आगन्तुक बात नहीं है।

प्रभु कैंकर्य हमार सुभोगा । चरण समीप रहैं नित योगा ॥
नाम रूप लीला अरु धामा । प्रभु के चार तत्व अभिरामा ॥

परन्तु हे नाथ! हम लोगों का सुन्दर भोग व योग तो प्रभु कैंकर्य और चरणों की समीपता ही है। नाथ के नाम, रूप, लीला और धाम आदि जो चार सुन्दर तत्व हैं।

सत चिद आनँद चारहु माहीं । मगन रहैं नित निज कछु नाहीं ॥
रक्षक प्रभु सब भाँतिहिं तेरे । निश्चित रहैं भाव हिय हेरे ॥

उन्हीं चारों सच्चिदानन्दमय तत्वों में हम सभी नित्य मग्न रहें तथा हमारा अन्य कुछ भी न हो। हमारे सर्व भाँति रक्षक, प्रभु श्री राम जी महाराज ही हैं, यही भाव हृदय में धारण किये हम सदा निश्चिंत बने रहें।

हम सब शेष सहज प्रभु शेषी । सेवहिं पद तव तंत्र सुपेखी ॥
इहै चाह अरु भोग महाना । पावहिं नाथ नित्य रस साना ॥

हम सभी अपने 'स्वामी' के सहज शेष और नाथ शेषी है। हे नाथ! हम सभी स्वयं को आपके आधीन देखते हुए आपके चरणों की सेवा करते रहें, यही हमारी इच्छा और महान भोग है जिसे हम आपके प्रेम–रस में आप्लावित हो नित्य प्राप्त करते रहें।

दो0–अस कहि पुनि रघुनाथ पद, प्रणमें तीनहु भाइ ।
राम उठाये प्यार करि, रहे हृदय लपटाइ ॥११६॥

ऐसा कहकर तीनों भाई (श्री भरत जी, श्री लक्ष्मण जी और श्री शत्रुघ्न जी) रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज के चरणों में प्रणाम किये, श्री राम जी महाराज ने उन्हें उठाया और प्यार कर हृदय से लिपटा लिया।

लहि प्रभु प्यारहिं तीनहु भाई । पाये आनँद अमित अघाई ॥
एक दिवस प्रभु कपिन बुलाये । आइ सबन चरणन शिर नाये ॥

तीनों भ्रातृगण प्रभु श्री राम जी महाराज के प्यार को प्राप्तकर असीम आनन्द से संतृप्त हो गये। पुनः एक दिन प्रभु श्री राम जी महाराज ने अपने वानर–भालु सखाओं को बुलाया तब सभी ने आकर प्रभु चरणों में शिर झुका प्रणाम किया।

परशि शीश दुलरावत रामा। गो जिमि वत्सहिं चाटत चामा ॥
प्रेम भरे दृग रघुकुल राई। बोले हृदय सनेह समाई ॥

श्री राम जी महाराज ने उनका शिर–स्पर्श कर उसी प्रकार दुलार किया जिस प्रकार गाय अपने बछड़े को, त्वचा चाटती हुई दुलारती है। पुनः रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज नेत्रों में प्रेम भर हार्दिक स्नेह में आप्लावित होकर बोले–

सुनहु सकल कपि जो मैं कहऊँ । सेवा निपुण सकल विधि अहऊँ ॥
कीन्हे सब शुचि सुठि सेवकाई । करौं प्रशंसा केहिं विधि गाई ॥

हे समस्त वानर–भालु सखागणों! मैं जो कह रहा हूँ उसे आप सभी सुनिये, आप लोग मेरी सेवा में सभी प्रकार से निपुण हैं तथा सभी ने मेरी पवित्र सुन्दर सेवा की है, मैं आप लोगों की किस प्रकार प्रशंसा करूँ।

प्रत्युपकार न मो से होवै। ताते ऋणियाँ मोकहँ जोवै ॥
सदा अधीन तिहारे भइया। जस चाहहु तस नाच नचैया ॥

मुझसे आप लोगों का प्रति उपकार नहीं हो पा रहा, इसलिए मुझे अपना ऋणी समझिये। हे भइया, मैं सदैव आप के आधीन हूँ आप सभी मुझसे जैसी चाहें वैसी सेवा ले लें।

दो0– मम हित त्यागे जगत सुख, लीन्हे मोकहँ मोल ।
सब प्रकार तुम्हरो अहौं, कहहुँ सत्य हिय खोल ॥११७॥

आप सभी ने मेरे सुख के लिए संसार के सुखों का त्याग कर मुझे खरीद लिया है अब मैं निश्छल हृदय सत्य कह रहा हूँ कि– मैं सभी प्रकार से आप लोगों का हूँ।

शिव चतुरानन शेष सुजाना। लखन भरत रिपुहन मतिमाना॥
अवध राज सम्पति बिन कूती। कहौं कहाँ लौ युगल विभूती॥

हे सखागणों! परम सुजान श्री शिव जी, चतुर्मुख श्री ब्रह्मा जी तथा श्री शेष जी एवं बुद्धिमान श्री लक्ष्मण कुमार, श्री भरत जी, श्री शत्रुघ्न कुमार तथा श्री अयोध्यापुरी की अवर्णनीय असीम सम्पति, कहाँ तक कहूँ कि– युगल पाद विभूति तथा–––

सीता सहित आत्मा मोरी। तुम सम प्रिय नहिं सपथ किशोरी॥
सहज स्वभाव मोर जिय जानी। मोहिं कहँ नित निज गिनौ अमानी॥

–––श्री सीता जी के सहित मेरी आत्मा, भी मुझे आप सभी के समान प्रिय नहीं है, यह बात मैं जनक किशोरी श्री सिया जू की शपथ लेकर कहता हूँ। अतः आप सभी मेरे सहज स्वभाव को हृदय में समझकर मुझे नित्य ही अहंकार विहीन व अपना समझते रहे।

अभय चरहु जग मोहिमय मानी। सब सों परे अखिल पति जानी॥
प्रेम पंथ महँ होइ सब वीरा। जीति लियो मोहिं भरि दृग नीरा॥

इस संसार को मेरा स्वरूप एवं मुझे सबसे परे सभी का स्वामी समझ कर आप सभी निर्भय होकर विचरण करते रहो। आप सभी वीरों ने प्रेम मार्ग का अनुसरण कर मेरे प्रति नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित कर मुझे वश में कर लिया है।

मम स्वरूप गुनि नेह विलोकनि। देखेव जगत राग रिस रोकनि॥
नाम रूप मम लीला धामा। बोरे रहौ मनहिं अविरामा॥

अब राग और द्वेष को जीत, इस संसार को मेरा स्वरूप समझकर प्रेम की दृष्टि से देखते हुये हमारे नाम, रूप, लीला और धाम में अपने मन को लगातार डुबाये रहो।

दो0– छनहुँ न मोसे अलग कहुँ, बचन सत्य मम तात।
तुमहिं निरखि प्रमुदित रहौं, प्रेम प्रपूरित गात॥११८॥

हे तात! आप सभी, कभी भी मुझसे अलग नहीं हैं, ये मेरे वचन सर्वथा सत्य हैं, मैं आप लोगों को देखकर आनन्दित और प्रेम परिपूर्ण शरीर वाला हो जाता हूँ।

अवधराज अरु युगल विभूती। आपन गिनहु सुभोग बहूती॥
भक्त हेतु सब जानहु मोरा। अत्र तत्र ऐश्वर्य अथोरा॥

आप सभी, श्री अयोध्यापुरी के राज्य और युगल पाद विभूति तथा वहाँ के अत्यधिक सुन्दर भोगों को अपना ही समझिये क्योंकि मेरा यहाँ और वहाँ का सम्पूर्ण महान ऐश्वर्य मेरे भक्तों के लिए ही है।

निर्गुण होय दिव्य गुणवंता। बहेउँ विरद ह्वै श्री सियकंता॥
स्वकहिं हेतु नहिं आत्मा मोरी। जन हित मैं अरु राजकिशोरी॥

मैं निर्गुण होकर भी दिव्य गुणों से परिपूर्ण सगुण स्वरूप धारण कर, श्री सीताकान्त बन, अपने

विरद (आश्रित प्रतिपालन व्रत) के प्रवाह में प्रवाहित हो गया अर्थात् विरद का दृढ़ता से पालन करता हूँ। मेरी आत्मा भी स्वयं मेरे लिए नहीं है। राज किशोरी श्री सिया जी सहित मैं सेवकों के लिये ही हूँ।

आप्त काम होइ भक्तन परशा । चहौं सदा सब सुनहु सहर्षा ॥
नेत्र विषय मैं प्रेमिन कीना। बागत पीछे बनेउँ अधीना ॥

आप सभी हर्ष पूर्वक सुनिये कि– मैं पूर्ण काम होते हुए भी अपने भक्तों के स्पर्श हेतु लालायित रहता हूँ, मैने प्रेमियों को अपने नेत्रों का विषय बनाया है तथा उनके वशी–भूत हो उनके पीछे–पीछे विहार करता रहता हूँ।

भक्त चरित सुनि नाहिं अघाऊँ । वक्ता पीछे नित पछिआऊँ ॥
भक्त थाल की अन्न प्रसादी। मोकहँ देय परम अहलादी ॥

भक्तों के चरित्रों को श्रवण कर मैं कभी भी तृप्ति का अनुभव नहीं करता तथा नित्य भक्त चरित्र के वक्ता के पीछे–पीछे चलता हूँ। भक्तों के थाल की अन्न प्रसादी मुझे परम आह्लाद प्रदान करने वाली होती है।

दो0– दासन धारी माल प्रिय, इतर पुष्प सुख दैन ।
अंतर हिय की बात यह, सुनहु सकल मति ऐन ॥११९॥

हे समस्त बुद्धिमान सखागणों! आप मेरे अन्तर्हृदय की बात सुनें, भक्तों के द्वारा धारण की हुई माला, इत्र व पुष्प मुझे अतिशय प्रिय व सुख प्रदान करने वाले होते हैं।

सेवक सेव करत सुख मानू । जानहु जामवन्त हनुमानू ॥
पलक नेत्र सम भक्तन राखौं । अनुचित कियेव न मन महँ माखौं ॥

मैं अपने सेवकों की सेवा करने में ही सुख मानता हूँ जिसे श्री जामवन्त जी तथा हनुमान जी जानते हैं। जिस प्रकार पलकें नेत्रों को रखती हैं उसी प्रकार मैं अपने भक्तों को रखता हूँ।

अहनिशि सजग तासु रखवारी। करौं सदा सब काज बिसारी ॥
भक्त जहाँ अपनो पग धरई। करतल धरौं तहाँ सुख सरई ॥

मैं सदैव दिनरात सजगता पूर्वक उनकी रखवाली करता हूँ। मेरे भक्त जहाँ अपने चरण रखते हैं वहाँ मैं सुख में सना हुआ अपनी हथेली रख देता हूँ।

तिन बिन छिन पल मैं न रहाऊँ । विलग सुरति दुख देत दबाऊँ ॥
दास नाम निशि वासर लेऊँ । जहाँ रहै तहँ वास करेऊँ ॥

सेवकों के बिना मैं एक पल भी नहीं रह सकता तथा उनके अलग होने की स्मृति ही मुझे दुख में डुबा देती है। मैं अपने सेवकों का नित्य रात्रि–दिन नाम रटता रहता हूँ तथा वे मेरे भक्त जहाँ निवास करते हैं मैं भी वहीं निवास करता हूँ।

भक्त चाह निज चाह विचारी । तिन सुख सानूँ सुखहिं अपारी ॥
जो मैं सो जानहुँ मम दासा । दासहिं मोकहँ गिनहिं सुभाषा ॥

मैं भक्तों की इच्छा को अपनी इच्छा समझकर उनके सुख में ही असीम सुख मानता हूँ। मैं जो कुछ भी हूँ वही मेरे दास हैं तथा आप मेरे सेवकों को मुझे ही समझिये।

दो0– तनिक भेद नहिं जानि जिय, मोहिं मम दासन माहिं ।
भरे भाव सज्जन सुकृत, सेवहिं भक्तन काहिं ॥१२०॥

मुझमें और मेरे भक्तों में अपने हृदय में, किंचित भी अन्तर न समझकर सज्जन व पुण्यात्मा, भाव में भरे हुए मेरे भक्तों की सेवा करते रहते हैं।

परम कृपामय जन हित सानी । सुनी कपिन श्री रघुवर बानी ॥
सात्विक प्रेम चिन्ह दरशाये । प्रेम विभोर देह बिसराये ॥

महान कृपा स्वरूप सेवकों के हित से सनी हुई श्री राम जी महाराज की वाणी को सभी वानर सखागणों ने श्रवण किया तथा उनके शरीर में प्रेम के सात्विक चिन्ह दिखाई देने लगे, वे प्रेम विभोर हो शरीर स्मृति भूल गये।

जाय चरण प्रभु के लपटाने । नयन नीर पग धोय अघाने ॥
गद्गद् गिरा कहैं कर जोरी । धनि धनि प्रभु की कृपा अथोरी ॥

पुनः वे सभी जाकर प्रभु श्री राम जी महाराज के चरणों में लिपट प्रेमाश्रुओं से प्रभु चरणों का प्रच्छालन करते हुए प्रेम से अभिभूत हो गये तथा गद्गद वाणी से हाथों को जोड़कर बोले– हे प्रभु! आपकी महान कृपा धन्यातिधन्य है।–––

दासन दीन्ही अमित बड़ाई । सो सब सहज स्वभाव सदाई ॥
अस प्रभु तजि विषयन मन देहीं । सो नर फाँकै निशिदिन खेही ॥

–––जो आपने अपने सेवकों को असीम बड़प्पन दिया है वह तो आपका सहज ही नित्य का स्वभाव है। ऐसे स्वामी को भी छोड़कर जो लोग विषयों में अपने मन को लगाते हैं वे दिन रात्रि धूल ही फाँकते रहते हैं।

अति कृतघ्न सठ अमित अभागी । जो न भजै तुम कहँ सब त्यागी ॥
जन्म अनन्त पार नहिं पाई । नरक विलोकि ताहि घिनहाई ॥

वे जीव किये गये उपकार को न मानने वाले (अत्यन्त ही कृतघ्नी), मूर्ख और असीमित भाग्यहीन हैं जो सभी कुछ त्यागकर आपका भजन नहीं करते। वे अनन्त जन्म में भी भव सागर से पार नहीं हो सकते तथा नरक भी उन्हें देखकर घृणा से नाक सिकोड़ लेगा।

दो0– अस स्वभाव रघुनाथ प्रिय, आपुहिं माहिं लखाहिं ।
देखे सुने न आज लौं, सुर नर मुनि अहि माहिं ॥१२१॥

हे रघुकुल के स्वामी हमारे प्रिय श्री राम जी महाराज! ऐसा स्वभाव तो केवल आप ही में समझ आता है, अन्य देवता, मनुष्य, मुनि तथा नाग किसी में भी ऐसा स्वभाव आज तक देखा व सुना भी नहीं गया।

तव पदत्राण आस उर धारी। निर्भय भये नाथ सुखकारी ॥
सेवन चरण दरश सुख पाई । पाये भोग परम रघुराई ॥

हे सुख प्रदान करने वाले स्वामी! आपके चरण पादुकाओं का भरोसा ह्रदय में धारण किये हुए हम निर्भय हो गये हैं तथा आपके चरणों की सेवा और दर्शन का सुख पाकर, हे श्री रघुकुल नरेश! हमने सभी महान भोगों को प्राप्त कर लिया है।

आनन्द मगन रहैं दिन राती। पाय कृपा अति शीतल छाती ॥
अनुदिन प्रीति बढ़े प्रभु चरणा । अरु नित किये रहैं निज वरणा ॥

दिन–रात आपकी कृपा को प्राप्तकर हम आनन्द में मग्न रहते हैं तथा हमारा ह्रदय अत्यन्त शीतल बना रहता है। आपके चरणों में दिन प्रति हमारी प्रीति बढ़ती रहे तथा आप नित्य ही हमे अपनाये रहें–––

इहैं चाह सब चाहन मेटी। बसी ह्रदय महँ प्रेम लपेटी ॥
या तजि और चाह हिय आवैं। ता महँ प्रभु द्रुत आगि लगावैं ॥

–––सभी प्रकार की कामनाओं को मिटाकर, मात्र यही प्रेम परिपूर्ण इच्छा, हमारे ह्रदय में बसी हुई है। हे नाथ! यदि इसे छोड़कर कोई अन्य इच्छा हमारे ह्रदय में आ जाये तो आप उस में शीघ्र ही आग लगा दें।

सौंपि अपनपौ चरण तुम्हारे। बिना मोल बिक गये पियारे ॥
निशि दिन छिन छिन करैं गुलामी । इहै आस इक हिय महँ स्वामी ॥

हे प्यारे! अपने आपको, आपके श्री चरणों में सौंपकर, हम सभी बिना मूल्य ही आप पर बिक गये हैं। अतः दिन–रात प्रत्येक क्षण आपकी सेवा करते रहें केवल यही एक कामना हमारे ह्रदय में बनी हुई है।

दो0– अस कहि पुनि पायन परे, हनुमदादि कपि वीर ।
प्रभु उठाय हिय लायऊ, न्हाये नयनन नीर ॥१२२॥

ऐसा कहकर श्री हनुमान जी आदि समस्त वानर वीर प्रभु श्री राम जी महाराज के चरणों में गिर पड़े, प्रभु ने उन्हें उठाकर ह्रदय से लगा लिया उस समय वे सभी, प्रभु प्रेमाश्रुओं से नहा गये।

यहि प्रकार रघुवर सुख सानी। अपने नीचहुँ अति सनमानी ॥
गुरु गृह गये एक दिन रामा। प्रेम पगे किय दण्ड प्रणामा ॥

इस प्रकार श्री राम जी महाराज प्रेम से परिप्लुत हो अपने छोटे से छोटे भक्त को भी अत्यन्त आदर प्रदान करते हैं। एक दिन श्री राम जी महाराज अपने गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी के आश्रम गये तथा प्रेम में डूबकर उन्हें दण्डवत प्रणाम किये।

पूजा कीन्ह सविधि हरषाई । भाव प्रीति अतिशय रसछाई ॥
विविध वस्तु वर भेंटी दीना । गोधन मणिगण वसन नवीना ॥

श्री राम जी महाराज ने हर्षित हृदय प्रेम भाव और रस में समाविष्ट होकर श्री गुरुदेव जी की विधिवत पूजा की तथा विभिन्न प्रकार की सुन्दर वस्तुएँ– गायें, धन, मणियाँ और नवीन वस्त्र आदि भेंट प्रदान की।

राम देन की मिति कछु नाहीं । अह मम रहित सुखद मुनि काहीं ॥
बोले बहुरि राम सुख सागर । बचन विनीत स्ववंश उजागर ॥

श्री राम जी महाराज ने अहंकार, ममकार, रहित हो मुनिवर श्री बशिष्ठ जी को जो कुछ भी सुख प्रदायक वस्तुयें प्रदान की उनकी कोई सीमा नहीं है। पुनः स्वकुल उजागर, सुख के सागर श्री राम जी महाराज विनय पूर्ण वचनों से निवेदन किये–

मैं अरु मोर सहित परिवारा । अवध राज सिगरो सुख सारा ॥
अरपित गुरुवर चरणन माहीं । कहौं न कपट किये मन माहीं ॥

हे नाथ! मेरे परिवार सहित, स्वयं मैं और मेरा तथा श्री अयोध्यापुरी का यह सम्पूर्ण सुखों का सारभूत राज्य श्री गुरुदेव जी के चरणों में समर्पित है। यह बात मैं किसी भी प्रकार के कपट पूर्ण मन से परिपूर्ण होकर नहीं कह रहा हूँ ।

दो0– अन्तरयामी गुरु प्रवर, जानहिं भाव कुभाव ।
राम न भाष्यो असत कहुँ, रघुकुल सहज स्वभाव ॥१२३॥

हमारे अन्तरयामी श्रेष्ठ गुरुदेव तो, हमारे भावों और कुभावों को भली प्रकार जानते ही हैं। फिर श्री राम ने तो कभी भी असत्य सम्भाषण नहीं किया और यह तो श्री रघुकुल का सहज ही स्वभाव है।

शासन भोग दान व्यवहारा । करहिं नाथ निज रुचि अनुसारा ॥
दास मानि मोहिं आयसु देहीं । सब विधि सेवा सरहु सनेही ॥

अतएव हे नाथ! अपने इस राज्य का शासन, भोग, दान आदि सभी व्यवहार आप अपनी इच्छानुसार करें तथा सेवक समझ कर मुझे आज्ञा प्रदान करें ताकि मैं प्रेम पूर्वक सभी प्रकार से आपकी सेवा कर सकूँ।

अस कहि मुनि चरणन धरि माथा । प्रणमें बार बार रघुनाथा ॥
मुनि उठाय रामहिं उर लाई । शीश सूँघि दृग वारि बहाई ॥

ऐसा निवेदन कर रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज ने मुनिवर श्री बशिष्ठ जी के चरणों में अपने मस्तक रख कर बार–बार प्रणिपात किया। तब मुनिराज श्री बशिष्ठ जी ने श्री राम जी महाराज को उठाकर हृदय से लगा लिया तथा उनका शिरो–घ्राण (सूँघ) कर आँखों से आँसू बहाते हुए–––

किय वात्सल्य बहुत विधि प्यारा । भाव भरे पुनि वचन उचारा ॥
भक्ति भाव भावित भव तारे । श्रुति मरयाद सुथापन वारे ॥

–––वात्सल्य परिपूर्ण हो विविध प्रकार से प्यार किया। पुनः भाव में भरकर वे बोले– हे भक्ति भावना से सदा भावित रहने वाले, जीवों को संसार सागर से पार उतारने वाले व श्रुतियों की मर्यादा को स्थापित करने वाले–––

कस न कहहु अस रघुकुल राया । भाव भरे भल बचन अमाया ॥
तव अनुकरण जगत जन करहीं । महा घोर भवसागर तरहीं ॥

–––रघुकुल नरेश श्री राम जी! आप प्रेम भाव में भरे हुए ऐसे सुन्दर व पवित्र वचन क्यों न कहें ? क्योंकि आपका अनुकरण कर, संसारी जन महान भयावह संसार सागर से पार हो जाते हैं।

दो0– मैं जानहुँ जो तुम अहहु, सत चित आनँद धाम ।
पूर्ण ब्रह्म परमातमा, निर्गुण सगुण अकाम ॥१२४॥

हे सच्चिदानन्दमय परम आनन्द के धाम, पूर्ण ब्रह्म परमात्मा, निर्गुण, सगुण तथा निष्काम श्री राम! आप जो हैं, मैं उसे भली प्रकार जानता हूँ।

विश्वरूप प्रभु अन्तरयामी । दिव्य धाम साकेत सुस्वामी ॥
रोम रोम कोटिन ब्रह्मण्डा । तव तन लगे रहैं भव खण्डा ॥

आप तो संसार स्वरूप, अन्तरयामी, दिव्य धाम साकेत के सुन्दर स्वामी और भव को विनष्ट करने वाले हैं, आपके शरीर के प्रत्येक रोम में करोड़ों ब्रह्माण्ड आश्रय प्राप्त करते हैं।

जासु अंश उपजहिं सुनु रामा । विधि हरि हर बहु कोटि ललामा ॥
सो सीता पति मायाधीशा । प्रगट दिखत भगतन हित श्रीशा ॥

हे श्री राम! सुनिये, जिनके अंश से अनन्त कोटि श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी और श्री शंकर जी आदि सुन्दर देवता प्रगट होते हैं वे ही आप श्री सीता जी के स्वामी व माया के अधीश्वर, भक्तों के लिए प्रगट होकर श्री राम रूप में दिखाई दे रहे हैं।

तुमहिं लागि उपरोहित कर्मा । कियो हर्षि निज मन गुनि धर्मा ॥
सहज मिले मोहि राम पियारे । वाछल सुख पुनि दीन अपारे ॥

आपके योग के लिए ही मैंने यह अति निन्दित 'उपरोहित कर्म' हर्षित हो, अपने मन में धर्म समझकर ग्रहण किया है, इस प्रकार हे प्रिय श्री राम! आप मुझे सहज ही प्राप्त हो गये हैं और पुनः आपने मुझे असीम वात्सल्य सुख प्रदान किया है।

गुरु गौरव गहि दीन्ह बड़ाई । जो विधि शम्भु कबहुँ नहिं पाई ॥
तेहिं ते जो जिय चाह समाई । पुरवहु सो सब तुम रघुराई ॥
तव पद प्रेम बढ़े नव न्यारा । सेवा मिली रहै सुख सारा ॥

आपने गुरु के महिमामय गौरव को ग्रहण कर हमें अत्यन्त सम्मान प्रदान किया है जिसे श्री ब्रह्मा जी व श्री शंकर जी भी कभी भी नहीं प्राप्त कर सकते। इसलिए हे रघुकुल नरेश! हमारे हृदय में जो प्रबल इच्छा समाई हुई उसे आप पूर्ण करें कि– आपके श्री चरणों में हमारा नवीन व विलक्षण प्रेम बढ़ता रहे तथा समस्त सुखों की सार आपकी सेवा मिलती रहे।

दो०– दरश परश तव धाम बसि, करहुँ सदा रघुनाथ ।
प्यार भरे कृप कोर ते, हेरत रहहु सुगाथ ॥१२५॥

हे उत्तम कीर्ति सम्पन्न, रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज! मैं आपके धाम श्री अयोध्यापुरी में निवास करता हुआ आपका सदैव दर्शन और स्पर्श प्राप्त करता रहूँ तथा आप अपनी कृपा दृष्टि से मेरी ओर सदैव दृष्टिपात करते रहें।

गुरु कर नात मानि रघुराया । जनि मोहिं भूल्यो भरि भलि दाया ॥
यह माँगे मोहि दीजै रामा । और न चाहिय रहौ अकामा ॥

हे श्री रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज! आप अपने गुरुदेव का सम्बन्ध समझ कर सुन्दर दयादृष्टि से भरे रहियेगा, मुझे भुलाइयेगा नहीं। हे श्री राम जी! आप मुझे यही प्रदान कीजिये कि– आपकी कृपा के अतिरिक्त मुझे अन्य कुछ भी नही चाहिये मैं सदा निष्काम ही बना रहूँ।

सुनि गुरु वचन सकुचि सिर नाई । कीन्ह दण्डवत बहु रघुराई ॥
नयन नीर भरि कह अहलादा । नित्य सुखी मैं गुरू प्रसादा ॥

अपने श्री गुरुदेव जी के वचनों को सुनकर श्री राम जी महाराज संकुचित हो सिर झुका कई बार दण्डवत प्रणाम किये तथा नेत्रों में अश्रु भरकर आह्लाद पूर्वक बोले– हे नाथ! मैं तो आप श्री गुरुदेव जी की कृपा से ही नित्य सुखी हूँ।

चरण धूरि धरि निज सिर माहीं । पायों आज काह मैं नाहीं ॥
त्रिभुवन पूजित मोहि बनाई । गुरु पद रज महिमा बड़ गाई ॥

आपके श्री चरणों की पावन रज को शिर में धारण कर मैने आज क्या प्राप्त नहीं किया? श्री गुरुदेव जी के चरण धूलि की महिमा अत्यन्त महान है, जिसने मुझे तीनों लोकों में पूजित बना दिया

है।

पूर्ण काम गुरुदेव अकामा। पर ब्रह्म परमात्म प्रधामा ॥
शक्ति अचिन्त्य कहै को पारा। सत शिष जानै नाहि गवाँरा ॥

हमारे श्री गुरुदेव जी नित्य पूर्ण काम, निष्काम मन तथा पर–ब्रह्म व परमात्मा के धाम परम पद स्वरूप हैं। आपकी सामर्थ्य अचिन्त्य है जिसका कोई भी पार नहीं पा सकता उसे तो केवल सद्शिष्य ही समझ सकता है कोई अज्ञानी जीव उसका अनुमान भी नहीं कर सकता।

दो0– योग रूप योगीश वर, दायक योग महान।
ज्ञान रूप विज्ञान मय, सब कहँ वितरत ज्ञान ॥१२६॥

आप तो स्वयं योग स्वरूप, योगियों के श्रेष्ठ ईश्वर, महान योग प्रदान करने वाले, ज्ञान एवं विज्ञान स्वरूप तथा सम्स्त जीवों को परम ज्ञान (परमार्थ) वितरित करने वाले हैं।

सब सों रहित सबहिं के त्यागी। नित गुरु हमरे परम विरागी ॥
प्रेम स्वरूप स्वयं भगवाना। नर तन धरे जनत हित आना ॥

सभी हेय गुणो से रहित तथा सभी त्याज्य वस्तुओं का त्याग किये हुए हमारे श्री गुरुदेव जी तो नित्य एवं परम वैराग्यवान है। आप तो प्रेम के साक्षात् स्वरूप स्वयं भगवान ही हैं जो अपने भक्तों के हित के लिये यहाँ भूलोक में आकर मनुष्य शरीर धारण किये हुए हैं।

माया पार घटहिं घट वासी। कोटि सूर्य सम सहज प्रकासी ॥
पालन सृजन हरण की शक्ती। गुरु महँ अहै अमित श्रुति वक्ती ॥

आप तो माया के पार सभी घटों में निवास करने वाले व करोड़ों सूर्यो के समान सहज ही प्रकाशवान हैं। श्री गुरुदेव जी में संसार के पालन, उत्पत्ति और संहार की असीम शक्ति होती है। ऐसा श्रुति–वेत्ताओं ने बखान किया है।

विधि हरि हरहुँ सकल सुखदाऊ। गुरु पद रज नित शीश चढ़ाऊ ॥
गुरु पद रज सरवस सुख सारू। कीन्हे मोर सबहिं छर भारू ॥

समस्त सुखों की प्रदात्री श्री गुरुचरणों की पावन धूलि को श्री ब्रह्माजी श्री विष्णु जी और श्री शंकर जी आदि देवता भी नित्य अपने मस्तक में धारण करते हैं। श्री गुरुदेव के चरणों की धूल तो मेरे लिए सर्वस्व तथा सुखों की सारभूता हैं। इस परम पावन "श्री रज" ने ही मेरा सभी प्रकार से योग–क्षेम का भार ग्रहण कर रखा है।

सदगुरु सच्चिद आनँद धामा। सब विधि दीन्हे मोहिं विश्रामा ॥
गुरु बल रावण काहिं संघारी। सुर नर मुनि सब कीन्ह सुखारी ॥

हमारे श्री सद्गुरु देव तो सत व चित् स्वरूप आनन्द के धाम हैं। आपने मुझे सभी प्रकार से विश्राम प्रदान किया है। श्री गुरुदेव जी के ही बल प्रताप से मैने राक्षस राज रावण का संहार कर देवता, मनुष्य व मुनियों सहित समस्त जगज्जीवों को सुखी किया है।

गुरु बल अवध राज नित शासी । प्रजन हेतु नित आनँद रासी ॥
कह लौं कहौं गुरू बल सरबस । मैं अरु मोर सुचेष्टित प्रिय रस ॥

मैं श्री गुरुदेव जी के बल–प्रभाव से नित्य प्रजा के लिये आनँद की राशि श्री अयोध्यापुरी के राज्य का शासन करता हूँ। मैं कहाँ तक कहूँ? मेरे सहित जो कुछ भी मेरा सर्वस्व है वह सभी श्री गुरुदेव जी की शक्ति से ही प्रिय, रसमय और सुन्दर चेष्टावान है।

दो0–अस कहि पुनि गुरुपद परे, लिय मुनीश उर लाय ।
गुरु शिष मिलन अलोक लखि, जय जय सुर सब गाय ॥१२७॥

ऐसा कह कर श्री राम जी महाराज पुनः गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी के चरणों में गिर पड़े तब मुनिराज श्री वसिष्ठ जी ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया। श्री सद्गुरुदेव और सद्शिष्य के इस अलौकिक मिलन को देखकर सभी देवता दोनो की जय–जयकार करने लगे।

वरषि सुमन पुनि हने निसाना । धनि गुरु शिष्य सुतत्व महाना ॥
राम गये पुनि महल मँझारी । गुरु स्वभाव वर्णत सुखकारी ॥

पुनः देवताओं ने कल्प–वृक्ष के फूलों की वर्षा कर नगाड़े बजाये तथा बोले कि– सद्गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी और सद्शिष्य श्री राम जी महाराज धन्यातिधन्य हैं, जिन्होंने सुन्दर महान गुरु व शिष्य तत्व का प्रकटी करण किया है। तदनन्तर श्री राम जी महाराज सुखपूर्वक श्री गुरुदेव जी के स्वभाव का वर्णन करते हुए अपने महल को प्रस्थान किये।

यहि प्रकार रघुवर जन रंजन । काम क्रोध मद लोभ विभंजन ॥
विप्र साधु सुर मन क्रम बानी । सेवत सविनय नेह नहानी ॥

इस प्रकार जन–जन के प्रिय तथा काम–क्रोध–लोभ व मद को नष्ट करने वाले श्री राम जी महाराज, मन, वचन और कर्म से विनय पूर्वक, स्नेह में नहाये हुए ब्राह्मणों, साधुजनों और देवताओं की सेवा करते रहते थे–––

पूजा भेंट देहिं विधि नाना । होहिं सुखी सब पाइ सुमाना ॥
प्रजा प्रसन्न रहै जेहिं भाँती । सोइ करैं प्रभु प्रमुदित गाती ॥

–––तथा विभिन्न प्रकार से भेंट व पूजा प्रदान करते रहते थे जिससे वे सभी श्री राम जी महाराज द्वारा आदर पूर्वक सत्कार प्राप्तकर सुखी रहते थे। प्रभु श्री राम जी महाराज प्रमुदित शरीर हो उसी प्रकार के कार्य करते थे जिस विधि से उनकी प्रजा प्रसन्न रहे ।

गो सेवा विधिवत जग होई। घृत अरु क्षीर नदी तहँ जोई॥
काम धेनु सब काम प्रपूरी। गृह गृह गाय लसैं सुख मूरी॥

उस समय संसार में विधि पूर्वक गो सेवा होती थी तथा वहाँ घी और दूध की नदियाँ बहती हुई दिखाई देती थीं। प्रत्येक घर में कामधेनु के समान समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाली सुखों की मूल स्वरूपा गायें सुशोभित होती थीं।

दो0– वृषभ अश्व गज ऊँट जे, पशु गण विविध प्रकार।
सेवित सुख सह रहत नित, यथा उचित व्यवहार॥१२८॥

बैल, घोड़े, हाथी तथा ऊँट आदि जो भी विभिन्न प्रकार के जानवर थे उन सभी की राम–राज में उचित व्यवहार पूर्वक सेवा होती थी तथा वे सभी सुख पूर्वक रहते थे।

वन पशु खग मृग जे जग जीवा। राम राज रह सुखी अतीवा॥
बैर स्वभाविक जीवन त्यागे। विचरहिं अभय रहहिं अनुरागे॥

उस समय पक्षियों सहित जो भी सिंह व हिरण आदि वन्य पशु थे वे सभी श्री राम जी महाराज के राज्यकाल में अत्यन्त सुखी थे। सभी जीव स्वाभाविक ही परस्पर शत्रुता त्याग कर निर्भय हो अनुराग पूर्वक विचरण करते थे।

तैसहिं जे जल जीव अपारा। मुदित बैर बिन करहिं विहारा॥
नभ–चर बैर विगत सुख साने। उड़त गगन निर्भय फहराने॥

उसी प्रकार असीमित जल जीव भी बिना शत्रुता के प्रसन्न हो जल विहार करते रहते थे, आकाश में विचरण करने वाले जीव भी बैर–भाव से रहित हो आकाश में, बिना भय के आनन्द पूर्वक पंख फहराते हुए उड़ते रहते थे।

भू महँ जे जड़ जीव कहाये। रहहिं सुखी मन मोद बढ़ाये॥
ज्ञान विराग योग विज्ञाना। शम दम युत यम नियम महाना॥

पृथ्वी में भी, जो जड़ जीव कहलाते हैं वे सभी मन में आनन्द को बढ़ाये हुए सुखी थे। श्री राम–राज में ज्ञान, वैराग्य, योग, विज्ञान, शम, दम, यम और महान नियमपूर्वक–––

श्रद्धा भक्ति तितिक्षा दाया। क्षमा शान्ति सम्पति अमाया॥
घर घर जन जन ठाँव बनाई। कीन वास बिन श्रमहिं सुहाई॥

–––श्रद्धा, भक्ति, तितिक्षा (सहिष्णुता), दया, क्षमा और शान्ति आदि पवित्र सम्पतियाँ प्रत्येक भवन में सभी के शरीर में, अपना स्थान बनाकर, बिना परिश्रम सहज ही निवास किये हुए थी।

दो0– धर्मशील गुणवान सब, अह मम रहित सुजान।
पर हित साने विनय युत, विगत काम मद मान॥१२९॥

श्री राम राज्य में सभी लोग अपने धर्म में स्थित, दिव्य गुणों से परिपूर्ण, अहंकार और ममता से रहित, सर्वज्ञ, विनयी, परहित निरत, काम, मद और अभिमान से सर्वथा विहीन थे।

प्रभु कैंकर्य निपुण नर नारी । मुखोल्लास प्रद प्रेम पसारी ॥
सुन्दर सुखद सुहावन भूरी । अनुपम प्रकृति छटा भरि पूरी ॥

वे सभी स्त्री–पुरुष प्रभु कैंकर्य करने में कुशल, प्रेम परिपूर्ण एवं अपने स्वामी श्री सीताराम जी का मुखोल्लास वर्धन करने वाले थे। श्री राम राज्य में प्राकृतिक सौन्दर्य भी पूर्णरूप से मनोरम, सुखप्रद एवं अत्यन्त ही सुहावना था।

प्राकृत दृश्य देखि मन मोहा। अवध राज अनुपम जग सोहा ॥
राम प्रशंसा त्रिभुवन छाई । सुर नर मुनि अहि जय जय गाई ॥

उस समय के प्राकृतिक दृश्यों को देखकर मुनियों का मन भी मोहित हो जाता था इस प्रकार श्री राम जी महाराज के द्वारा किया जाने वाला श्री अयोध्यापुरी का राज्य संचालन संसार में अनुपमेय और परम शोभायमान था। अयोध्या पुरी के नरेश श्री राम जी महाराज की प्रशंसा तीनों लोकों में छायी हुई थी तथा देवता, मनुष्य, मुनि एवं नाग आदि उनकी–जय जयकार करते थे।

प्राण प्राण भे रघुवर रामा । सबके आत्म आत्म सुख धामा ॥
प्राणन पुत्र कलत्रहिं तेरे । लागत प्रिय रघुपति सब केरे ॥

सुख के धाम रघुनन्दन श्री राम जी महाराज सभी के प्राणों के प्राण और आत्मा की आत्मा थे तथा सभी को अपने रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज पुत्र, स्त्री और प्राणों से भी अधिक प्रिय लगते थे।

राम दरश करि तृप्त न होहीं । वचन सुनत सब जात विमोही ॥
परश पाइ भव सुरति भुलाई । रहहिं सुआनँद सिन्धु समाई ॥

वे सभी श्रीराम जी महाराज का दिव्य दर्शन कर किंचित भी तृप्ति नहीं प्राप्त करते थे, उनकी अमृतमय वाणी सुनकर सभी विमोहित हो जाते थे तथा उनके अलौकिक स्पर्श को प्राप्त कर जो उन्हें संसार की सुधि ही भूल जाती थी इस प्रकार वे सभी सुन्दर आनन्द के सागर में समाये रहते थे।

दो0– सुर नर मुनि अरु नाग वर, सदा अतृप्त लखाहिं ।
याते नित दर्शन करन, आवत अवधहिं माहिं ॥१३०॥

उस समय देवता, मनुष्य, मुनि तथा नाग आदि सभी जीव प्रभु श्री राम जी महाराज के अनुपमेय दर्शन से सदैव अतृप्त दिखाई देते थे इसलिए वे नित्य प्रति उनके दर्शन के लिए श्री अयोध्यापुरी आते रहते थे।

सर्वभूत प्रिय मनहर रामा । निज वश त्रिभुवन कियो स्वधामा ॥
सुख स्वरूप सुख सिन्धु निहारी । सुखी होय तिरलोक अपारी ॥

सभी जीवों के प्रिय, मन को हरण करने वाले श्री राम जी महाराज ने अपनी अयोध्यापुरी सहित तीनों लोकों को अपने वशीभूत कर लिया था। उस समय सुखस्वरूप व सुख के सागर श्री राम जी महाराज को देख–देखकर तीनों लोकों के निवासी असीमित सुख सम्प्राप्त कर रहे थे।

राजित पद प्रभु प्रियता वरणी । कछुक अंश मन मोहन करणी ॥
अवर प्रसंग सुनहु मन लाई । सज्जन सकल कहौं जस गाई ॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– हे सज्जनों! मैंने प्रभु श्री राम जी महाराज के राज्य पद में अभिषिक्त होने व उनकी लोक–प्रियता तथा मन को मोहित कर लेने वाले आचरणों के कुछ अंश का वर्णन किया। अब मैं जनक कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की कथा के अन्य सभी प्रसंगो का विवरण कह रहा हूँ आप सभी उसे मन लगाकर श्रवण कीजिये।

लक्ष्मीनिधि प्रिय अवध मँझारा । करत राम सँग नित्य विहारा ॥
कछु दिन रहि पुनि मिथिला गवने । राम सहानुज लै मन भवने ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने प्रिय बहनोई श्री राम जी महाराज के साथ श्री अयोध्यापुरी में नित्य विहार कर रहे थे। वे वहाँ कुछ दिन निवास कर पुनः भ्रातृगणों सहित मन भावन श्री राम जी महाराज को लेकर अपनी श्री मिथिलापुरी प्रस्थान किये।

आवत जानि राम रघुराई । पुर वासी कीन्हे अगुआई ॥
उत्सव सहित जनक लै गयऊ । कुँअर भवन महँ वासा दयऊ ॥

श्री राम जी महाराज का शुभ आगमन जानकर श्री मिथिलापुर निवासियों ने श्री राम जी महाराज की अगुवानी की तथा उत्सव पूर्वक श्री जनक जी महाराज उन्हें ले जाकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के भवन में निवास दिये।

दो0– जनक सुनैना सिद्धि सह, लक्ष्मीनिधि रस राज ।
राम दरश करि प्रेम पगि, आनन्द मगन सुभ्राज ॥१३१॥

उस समय श्री जनक जी महाराज, अम्बा श्री सुनैना जी तथा श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित रसराज श्री लक्ष्मीनिधि जी आदि सभी मिथिलापुर वासी श्री राम जी महाराज का दर्शन कर प्रेम में पगे हुए आनन्द मग्न हो सुशोभित हो रहे थे।

पुरवासी सब रहत अनन्दा । देखि भानु कुल कैरव चन्दा ॥
जनक लाड़िली दशरथ लाला । लखि लखि होते सबहिं निहाला ॥

सभी श्री मिथिलापुर वासी सूर्य कुल–रूपी कुमुदिनी को प्रफुल्लित करने वाले चन्द्रमा श्री

रामचन्द्र जी महाराज को देख–देखकर आनन्दित रहते थे। श्री जनक नन्दिनी जानकी जू और श्री दशरथ नन्दन जू को देख देखकर सभी मिथिलापुर वासी कृतकृत्य हो रहे थे।

भगिनि भाम लखि कृपा महानी। कुँअर हर्ष नहिं जाय बखानी॥
बिना कुँअर मत राम सुहाये। करहिं न कार्य एक अपनाये॥

अपनी बहन श्री सिया जू और बहनोई श्री राम जी महाराज की महान कृपा को देखकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में जो हर्ष हो रहा था उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अवध नरेश श्री राम जी महाराज कुँअर लक्ष्मीनिधि जी की सहमति के बिना कोई एक कार्य भी करने के लिये स्वीकार नहीं करते थे।

कुँअरहुँ चेष्टा बिन प्रभु रामा। तनिक न होय सुप्रेम प्रधामा॥
एक प्राण दुइ देहहिं धारे। इक इक सुख हित तन मन वारे॥

सुन्दर प्रेम के धाम कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की लघु–चेष्टाएँ भी प्रभु श्री राम जी महाराज की सहमति के बिना नहीं होती थी। वे दोनों राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज दो शरीर धारण किये हुए एक प्राण तथा एक दूसरे के सुख के लिए शरीर और मन न्योछावर किये रहते थे।

अकथ अलौकिक लखि लखि प्रीती। त्रिभुवन जय जय बदत अतीती॥
अवध राज सुख जेहिं विधि वरणी। तैसहिं मिथिला सरसत धरणी॥

उन दोनों की अकथनीय, अलौकिक व अपरिमित पारस्परिक प्रीति को देख–देखकर तीनों लोक निवासी जय–जयकार करते थे। हमारे सद्‌गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– हे सज्जनों! जिस प्रकार श्री अयोध्यापुरी के राज्य के सुख का मैंने वर्णन किया है उसी प्रकार श्री मिथिलापुरी की भूमि में भी राज्य सुख छाया हुआ था।

दो0– तनिक भेद नहिं लखि परे, मिथिला अवधहिं हेर।
सुख समृद्धि छाई महा, सुरपुर शत लज हेर॥१३२॥

उस समय श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी में अल्प–अन्तर भी नहीं समझ आ रहा था, दोनो पुरियों में महान सुख और समृद्धि छायी हुई थी जिसे देखकर सैकड़ों इन्द्र पुरियाँ भी विलज्जित होती थी।

आदि शक्ति जहँ सिया निवासा। तहँ कर वैभव को कवि माषा॥
अमित कोटि अण्डन के नायक। जहँ के राजा श्री रघुनायक॥

पूर्णतम परब्रह्म परमात्मा से अपृथक भूता परमाद्या शक्ति श्री सिया जी का जहाँ निवास है उस श्री मिथिलाापुरी के वैभव का वर्णन कौन कवि कर सकता है। पुनः अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के नायक पूर्णतम परब्रह्म रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज जिस श्री अयोध्यापुरी के शासक है–––

तहँ कर आनँद कौन बखानी । शारद शेष गणेश महानी ॥
सिद्धि कुँअरि मिथिला पटरानी । लक्ष्मीनिधि नरपति गुणखानी ॥

———वहाँ के आनन्द को श्री सरस्वती जी, श्री शेष जी तथा श्री गणेश जी आदि महान वक्ताओं में कौन वर्णन कर सकता है अर्थात् उसका वर्णन कोई नही कर सकता। श्री मिथिलापुरी की पटरानी श्री सिद्धि कुँअरि जी तथा सम्राट गुणों की खानि श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज हैं।

प्रभु कैकर्य समुझि मन माहीं । सीय राम सुख हेतु सदाहीं ॥
करहिं काज प्रिय प्रभु दृग देखत । राग द्वेष इच्छा नहिं लेखत ॥

जो अपने मन में प्रभु श्री सीताराम जी का कैंकर्य समझ कर उनके सुख के लिए सदैव प्रभु श्री राम जी की रुचि (दृष्टि) को निहारते हुए उनके प्रिय कार्य करते रहते थे तथा अपने मन में भी कभी आसक्ति, द्वेष और कामनाओं को स्थान नहीं देते थे।

प्रमुदित प्रजा प्रशंसा भूरी । करत कुँअर की प्रेमहिं पूरी ॥
सर्व भूत प्रिय कुँअर सुजाना । राम कृपा सो भयो महाना ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की सम्पूर्ण प्रजा आनन्द पूर्वक प्रेम परिपूर्ण हो अतिशय प्रशंसा करती थी। सर्वज्ञ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज की कृपा से सम्पूर्ण जीवों के प्रिय एवं महान हो गये थे।

छं0— प्रिय प्राण सम लागत कुँअर, प्रभु की कृपा लहि अति घनी ।
जग जीव चेतन जड़ सकल, लोचन विषय करि सुख सनी ।।
जेहिं दृग विषय नित राम किय, तेहि कहँ न यह बड़ि बात है ।
सिय राम प्रेमामृत पिये, हर्षण कुँअर हरषात हैं ।।

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि— प्रभु श्री राम जी महाराज की अत्यन्त सघन कृपा को प्राप्त कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सभी लोगों को प्राणों के समान प्रिय लगते थे, संसार के चराचर समस्त जीव समुदाय उन्हें अपनी आँखों का विषय बनाये हुए सुख में सने थे। जिन कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को स्वयं श्री राम जी महाराज नित्य अपने नेत्रों का विषय बनाये हुए हैं उनके लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सीताराम जी के प्रेम का अमृत पान किये हुए सदैव हर्षित बने रहते थे।

सो0—सम्प्रयोग रघुनाथ, भरत कुँअर लक्ष्मीनिधी ।
कहैं सुनै नित गाथ, अवशि योग प्रभु कर लहैं ॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि—रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज से, श्री भरत जी और कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का सम्यक प्रकार से

प्रकर्षतया हुये योग (मिलन) का चरित्र नित्य कहने और श्रवण करने से अवश्य ही प्रभु श्री राम जी महाराज का योग (मिलन) प्राप्त होता है।

दो0– महाराज रघुनाथ कर, तिलक राज अभिषेक ।
अत्र तत्र सुख दायिनो, नित बढ़ प्रेम विवेक ॥१३३॥

रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज का राज तिलक एवं राज्याभिषेक यहाँ और वहाँ उभय लोकों (इस लोक और परलोक) में सुख प्रदान करने वाला तथा नित्य प्रेम और ज्ञान को बढ़ाने वाला है।

श्लोक– सम्प्रयोग शुभं काण्डं, दिव्यं प्रेम प्रदायकम् ।
सीताराम पदाम्भोजे, विलसेदर्पितं मया ॥

शुभ व दिव्य प्रभु प्रेम प्रदान करने वाला यह सम्प्रयोग नामक काण्ड मेरे द्वारा समर्पित होकर मेरे स्वामी श्री सीताराम जी के श्री चरणों में सुशोभित हो।

इति श्रीमद् प्रेम रामायणे, प्रेम रस वर्षणे, जनमानस हर्षणे,
सकल कलि कलुष विध्वंसने सम्प्रयोगो
नाम पंचमः काण्ड

यह श्री मद् प्रेम रामायण जी का प्रेमानन्द वर्षण कारी,
सर्व जन हृदय हर्ष वितरण कारी तथा सकल कलि कालुष्य
विध्वंसन कारी वन विरह नाम का तीसरा काण्ड समाप्त हुआ।

––: सम्प्रयोग काण्ड समाप्त :––

ॐ नमः श्री सीतारामाभ्यां

॥अथ श्री प्रेम रामायण॥

卐 श्री ज्ञान काण्ड 卐

श्लोक– ज्ञान मुद्रा युतं रामं, सीतया सह राजितम् ।
बन्दे ज्ञान प्रदातारं, सच्चिदानन्द रूपिणम् ॥

ज्ञान मुद्रा से युक्त, विदेह राज नन्दिनी श्री सीता जी के सहित दिव्य सिंहासन में विराजे हुये, सत, चिद् व आनन्द स्वरूप तथा परम ज्ञान प्रदान करने वाले श्री राम जी महाराज की मैं वन्दना करता हूँ।

लक्ष्मणं मारुतिञ्चैव, लक्ष्मीनिधिमहं सदा ।
स्मरामि सादरं भक्त्या, मह्यं प्रेम प्रदेहि भो ।।

मैं सुमित्रा नन्दन श्री लक्ष्मण कुमार, पवन नन्दन श्री हनुमान जी तथा सुनयना नन्दन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का आदर व भक्ति पूर्वक नित्य स्मरण करता हूँ। आप सभी प्रभु प्रेमीजन मुझे मेरे स्वामी श्री रामजीमहाराजकेचरण कमलोंकाप्रेमप्रदानकरें।

सदगुरुं ज्ञान रूपंतु, प्रेम रूपं स्वयं हरिम् ।
नित्यं तं अनुरक्तोस्मि, प्रणतोस्मिच सर्वदा ॥

अखण्ड ज्ञान व प्रभु प्रेम स्वरूप साक्षात् श्री हरि (भगवान) के विग्रह अपने श्री सदगुरुदेव भगवान को मैं उनमे नित्य अनुरक्त होकर सदैव दण्डवत प्रणाम करता हूँ।

सो०–प्रेम ज्ञान को सार, ज्ञान आत्म को रूप गुन ।
हृदय बहै रस धार, तब जानिय मिल ज्ञान फल ॥

ज्ञान का सार तत्व प्रेम है तथा ज्ञान को आत्मा का स्वरूप ही समझना चाहिये, परन्तु जब हृदय में प्रभु प्रेम–रस की धारा प्रवाहित होने लगे तभी समझना चाहिए कि– ज्ञान होने का यथार्थ फल प्राप्त हुआ है।

मिथिला अवध राज अभिषेका । लक्ष्मीनिधि रघुपति करने का ॥
वरणा सुखद अनूप अमोला । सुनत जाहि मन होत अलोला ॥

हे श्री हनुमान जी! इस प्रकार मैने श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्या पुरी में श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज व श्री राम जी महाराज की राज्य शासन करने की सुख प्रदायक, अतिशय महत्वशाली व अनुपमेय विधि का वर्णन किया जिसे सुनकर सर्वथा चंचल मन भी स्थिरता को प्राप्त कर लेता है।

कह सौमित्र सुनहु हनुमाना । जो तुम पूँछेउ कहा बखाना ॥
जनक सुवन कर चरित उदारा । प्रेम प्रदायक सुखकर सारा ॥

पुनः सुमित्रा कुमार श्री लक्ष्मण जी ने कहा हे श्री हनुमान जी ! सुनिये, आपने जिस चरित्र के श्रवण की जिज्ञासा की थी उसे मैंने वर्णन कर सुना दिया। जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी का उदार चरित्र तो प्रभु प्रेम प्रदान करने वाला एवं समस्त सुखों का सार ही है।

ज्ञान विराग योग निपुणाई । दैन्य अमान प्रपति उपजाई ॥
प्रभु कैंकर्य जीव कर भोगा । प्रभु सुख हेतु बतावत योगा ।।

उनका चरित्र जीवों के हृदय में ज्ञान, वैराग्य, योग, कैंकर्य–निपुणता, दैन्य, अमानित्व तथा शरणागति को उत्पन्न कर देने वाला है क्योंकि प्रभु श्री राम जी महाराज के सुख के हेतु किया गया कैंकर्य ही जीव का भोग है ऐसा उनका चरित्र प्रगट करता है।

जीव स्वरूप राम आधीना । शेष धर्म मय सेव प्रवीना ॥
रक्षक राम और नहिं कोई । निज प्रयत्न तजि शरणहिं होई ॥

जीव का सहज स्वरूप श्री राम जी महाराज के परतन्त्र रहना एवं शेष धर्म के अनुसार कुशलता पूर्वक उनकी सेवा करना है। श्री राम जी महाराज ही एक मात्र जीवों के रक्षक हैं दूसरा कोई भी नहीं, इसलिए अपने सभी प्रयासों को छोड़कर जीव को उनकी शरण ग्रहण कर लेना चाहिए।

दो०–भागवत धर्म सिखावत, कुँअर चरित रस दानि ।
संत शास्त्र सम्मत शुभग, प्रेम मोक्ष सुख खानि ॥१॥

इस प्रकार रस प्रदाता कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का चरित्र संतों और शास्त्रों द्वारा अनुमोदित, सुन्दर प्रेम, मोक्ष एवं समस्त सुखों की खानि है जो जगज्जीवों को भागवत धर्म की शिक्षा प्रदान करता है।

जो तुम कुँअर चरित नहिं पेखे । अरु नहिं सुने स्वकर्ण अशेषे ॥
पुनि कछु कपि तव नयनन देखा । चरित सुनायों सबहिं विशेषा ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि–हे वानर श्रेष्ठ श्री हनुमान जी! आपने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के जिन चरित्रों का दर्शन नहीं किया और न ही जिन्हे पूर्णतया अपने कर्णो से श्रवण ही किया वह सम्पूर्ण चरित्र तथा कुछ आपकी आँखों से देखा हुआ विशेष चरित्र भी, मैंने आपको सुनाया है।

भावी चरित समासहिं गावौं । सुनहु पवन सुत सुरति करावौं ॥
याज्ञबल्क जस जनकहिं गाई । सोइ कहौं शुभ कथा सुहाई ॥

अब मैं कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के भविष्य के चरित्रों का संग्रह वर्णन कर आपको ज्ञापित करा रहा हूँ, हे पवन नन्दन श्री हनुमान जी! आप उसे श्रवण करें। निमिकुल आचार्य प्रवर श्री याज्ञबल्क्य जी महाराज ने जिस प्रकार का चरित्र श्री विदेहराज जनक जी महाराज से वर्णन किया था मैं उसी सुन्दर व शुभ चरित्र का बखान कर रहा हूँ।

लषण बैन सुनि मारुति पूता । प्रेम प्रफुल्लित बदन बहूता ॥
प्रेम वारि निज नयनन ढारी । पानि जोरि शुभ गिरा उचारी ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी के वचनों को सुनकर मारुत नन्दन श्री हनुमान जी अत्यधिक प्रेम

प्रफुल्लित शरीर हो गये तथा अपने नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित करते हुए हाथों को जोड़कर शुभ वाणी का विनियोग किये।

आज धन्य मैं सब विधि भयऊँ । गुप्त चरित्र प्रभु मोकहँ दयऊ ॥
कुँअर चरित रामायण आही । जहँ बस राम सिया सुख माही ॥

आज मैं सभी प्रकार से धन्य हो गया जो मेरे स्वामी श्री लक्ष्मण कुमार जी ने मुझे निमिकुल नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी का अत्यन्त गुप्त चरित्र प्रदान किया है। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का चरित्र तो श्री राम जी महाराज का भवन (रामायण) ही है जहाँ श्री सीताराम जी सुखपूर्वक निवास करते हैं।

दो०—परा भक्ति उद्‌गम उदित, राम मिलावन हार ।
बहुरि कृपा कैंकर्य को, दायक रसमय सार ॥२॥

उनका चरित्र अतिशय निर्मल, परमा भक्ति का श्रोत एवं श्री राम जी महाराज को मिलाने वाला है पुनः प्रभु की रस स्वरूपा व भास्वती कृपा और समस्त सारभूत प्रभु कैंकर्य को प्रदान करने वाला है।

सीय कृपा अहनिशिहिं प्रदाई । कुँअर चरित चन्दा यश पाई ॥
बड़े भाग तुम कहँ प्रभु पाई । सुनेउ राम हर्षण सुखदाई ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की चन्द्रमा की चाँदनी के समान शीतल व विमल यह यशो–गाथा अहोरात्रि विदेहराज तनया श्री सीता जी की कृपा प्रदान करने वाली है, हे स्वामी श्री लक्ष्मण कुमार! बड़े सौभाग्य से ही आपको प्राप्त कर, श्री राम जी महाराज को हर्ष एवं सुख प्रदान करने वाला यह चरित्र मैंने श्रवण किया।

भावी कथा कहहु अब गाया । सुनत सुखद नहि श्रवण अघाया ॥
सुनि सदभाव लषण अनुरागे । कुँअर चरित प्रिय वरणन लागे ॥

अब आप कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के भविष्य के चरित्रों का वर्णन कर कहिये, जिनको सुनकर सुख समन्वित हो मेरे कर्ण तृप्ति को न प्राप्त हों। श्री हनुमान जी की ऐसी जिज्ञासु वाणी सुनकर श्री लक्ष्मण कुमार जी सद्‌भाव पूर्वक प्रभु प्रेम में रँग गये पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रिय चरित्र का वर्णन करने लगे।

सोइ कथा सज्जन सुनि लेहू । वितरति ज्ञान भक्ति भल नेहू ॥
एक समय रघुपति सुख धामा । प्रीति पगे मन पूरण कामा ॥

हमारे सद्‌गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कह रहे हैं कि– हे सज्जनो! आप सभी उसी कथा का श्रवण कीजिये, यह कथा सुन्दर ज्ञान, भक्ति और प्रभु प्रेम का वितरण करने वाली है। एक समय सुख के धाम व मन की समस्त कामनाओं से परिपूर्ण रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज अपने प्रिय श्याल के प्रेम में डूबे हुये,–––

सिद्धि सदन श्री श्रीनिधि संगा । बैठे सुख सह प्रीति अभंगा ॥
परम प्रसन्न रँगे रस माहीं । युगल किशोर हिये हरषाहीं ॥

–––श्री सिद्धि सदन में कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ सुख में समाये हुये अटूट प्रेमपूर्वक विराजे हुये थे तथा परम प्रसन्न हो परस्पर प्रेमरस में रँगे हुए दोनों कुमार हृदय में हर्षित हो रहे थे।

दो०–सिद्धि कुँअरि बीड़ा दई, सुखद गंध वर माल ।
आरति करि मंगल पढ़ी, अरपी मणिगण जाल ॥३॥

उस समय श्री सिद्धि कुँअरि जी ने दोनो को सुख प्रदायक ताम्बूल, इत्र एवं सुन्दर माला प्रदान की। पुनः उनकी आरती उतार, मंगलानुशासन कर उन्होने मणि–माणिक्य आदि समर्पित किया।

बहुरि बलैया पुनि पुनि लीन्ही । युगल पानि पुष्पांजलि दीन्ही ॥
युगल किशोर देखि मन हारी । मिथिला अवधराज सुखकारी ॥

पुनः श्री सिद्धिकुँअरि जी ने बारम्बार दोनो राज कुमारों की बलाइयाँ लीं और दोनों हाथों से पुष्पांजलि अर्पित की। श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी के सुखकर व मन को हरण करने वाले दोनो राजकुमारों को देख कर,–––

मोद मगन भइ भाग सराही । बैठि गई रघुपति पद पाही ॥
इच्छा समुझि युगल प्रिय केरी । मधुर मधुर मुरली मुख टेरी ॥

–––आनन्द में मग्न हो अपने भाग्य की प्रशंसा करती हुई श्री सिद्धिकुँअरि श्री राम जी महाराज के चरणों के समीप बैठ गयीं। पुनः अपने दोनों प्रिय जनों श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज की इच्छा समझकर मधुर स्वर में वे बाँसुरी बजाने लगीं।

परमाकर्षक बेणु सुनादा । सिय यश भरेउ देत अहलादा ॥
सुनतहिं बेसुध भये कृपाला । रसिया राम सहित शुचि श्याला ॥

श्री सिया जू के यश से परिपूर्ण गान के साथ बाँसुरी की अत्यधिक आकर्षक एवं आह्लाद प्रदायिनी ध्वनि को सुनते ही परम कृपालु, रसिया श्री राम जी महाराज अपने पवित्र श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी के सहित स्मृति–शून्य हो गये।

प्रेम विभोर मुरछि द्रुत दोऊ । आसन लुढ़कि परे रस मोऊ ॥
पंखा झल तहँ सिद्धि कुमारी । करि करि साथहिं बहु उपचारी ॥

प्रेम विभोर व रस निमग्न दोनों राजकुमार शीघ्र ही मूर्छित होकर आसन में लुढ़क गये। तब श्री सिद्धि कुँअरि जी व्यजन (पंखा) करने लगीं साथ ही अपने युगल आराध्यों को स्वस्थ कराने हेतु विविध प्रकार के उपचार करने लगीं।

दो०–तदपि जगे नहिं दोउ प्रिय, सिद्धी करि सुविचार ।
सिया शब्द सृदश सुखद, वंशी टेर सुखार ॥४॥

जब उनके दोनों प्रिय आराध्य जागृत नहीं हुए तब श्री सिद्धि कुँअरि जी, विचार कर श्री सिया जू के शब्द के समान सुख प्रदायक ध्वनि से सुखपूर्वक पुकारती हुई वंशी वादन करने लगीं।

हे प्यारे हे भैया बोली । वेणु बजावति सिद्धि अलोली ॥
कर स्पर्श कीन्ह अति प्रीती । जागे दूनहु सरस अमीती ॥

श्री सिद्धि कुँअर जी हे प्यारे श्याम सुन्दर, हे श्री भैया जी की पुकार करती हुई स्थिर चित्त हो बाँसुरी वादन कर रही थी। पुनः दोनो राज कुमारों को स्वस्थ करने हेतु अत्यन्त प्रेम पूर्वक अपने कर–कमल का स्पर्श प्रदान किया तब असीमित रस से परिपूर्ण दोनों राजकुमार जागृत हुए।

नयन खोलि देखे चहुँ घाहीं । सीता तहाँ उपस्थित नाहीं ॥
ह्वै सचेत पूछे दोउ प्यारी । सीता कहाँ गई सुखसारी ॥

स्मृति में आते ही दोनो राजकुमार श्री राम जी महाराज व श्री ल्क्ष्मीनिधि जी महाराज आँखे खोलकर चारो दिशाओं में श्री सीता जी को देखने लगे परन्तु श्री सीता जी वहाँ उपस्थित नहीं थी। तदनन्तर चैतन्यता प्राप्तकर दोनों ने श्री सिद्धि कुँअरि जी से पूछा– हे प्यारी! सुखों की सारभूता श्री सीता जी कहाँ चली गयीं?

निज मुख सिय वर वेणु बजाई । भैया कहि कहि दीन्ह जगाई ॥
करि स्पर्श सचेतहिं कीनी । कैसो यह आश्चर्य प्रवीनी ॥

अभी–अभी श्री सीता जी ने अपने मुख से सुन्दर बाँसुरी बादन किया तथा भैया–भैया पुकारती हुई हमारा स्पर्श कर हमें जागृत कर चैतन्य बना दिया है, हे परम प्रवीणा! श्री सिद्धि कुँअरि जी! यह कैसा आश्चर्य है।

बोली सिद्धि सीय स्वर माहीं । हमही वेणु बजाय इहाँहीं ॥
निज कर फेरि जगायो प्यारे । सत्य सत्य जानिय सुख सारे ॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी ने कहा– हे प्राण नाथ! हमने ही यहाँ श्री सीता जी के स्वर में पुकार कर बाँसुरी बजायी है तथा अपना हाथ फिरा कर स्पर्श करती हुई आपको जागृत किया है, हे समस्त सुखों के सारतम तत्व श्री मिथिला व अवध के युगल राज कुमार! आप दोनों, जान लीजिये कि– यह मेरी बात सर्वथा सत्य है।

सो०–सिद्धि बचन सुनि कान, मुदित राम रघुकुल तिलक ।
बचन सुधा रस सान, बोले प्रमुदित प्रेम भरि ॥५॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी के वचनों को श्रवण कर व उन्हे समझ रघुकुल तिलक श्री राम जी महाराज प्रेम परिपूर्ण हो आनन्दपूर्वक अमृत रससिक्त वाणी से बोले।

धनि धनि श्रीधर राज कुमारी । गीत कला सिरमौर सुनारी ॥
मधुर मधुर सुनि वेणु तुम्हारी । भूलि गये हम आपा सारी ॥

हे गायन कला की सिरमौर तथा परम सौन्दर्य सम्पन्ना श्रीधर राजनन्दिनी श्री सिद्धि कुँअरि जी! आप धन्यातिधन्य हैं। आपकी मधुर–मधुर मुरली की ध्वनि को श्रवणकर हम दोनों अपना–अपना सम्पूर्ण अस्तित्व ही भूल गये थे।

बहुरि बोलि वंशी बहु भाई। दीन्हेउ दोउ कहँ द्रुतहिं जगाई॥
सिद्धि कही सुनु राम रँगीले। यह सब कला तुम्हार शुभीले॥

पुनः आपने सुन्दर बाँसुरी बजाती हुई भैया शब्द पुकार कर हम दोनों को शीघ्र ही जगा दिया। अपने ननदोई श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवण कर श्री सिद्धि कुँअरि जी ने कहा– हे परम रंगीले, रघुनन्दन सरकार, श्री राम जी महाराज! यह सब तो आपकी ही सुन्दर एवं शुभ–कला है।

जनहिं बड़ाई देन स्वभावा। है तुम्हरो श्रुति संतन गावा॥
सुनि शुचि भाव यथा सुप्रपन्ना। भये कृपामय राम प्रसन्ना॥

हे नाथ! आपका तो, स्वभाव ही अपने सेवकों को बड़ाई देने वाला है ऐसा श्रुतियों एवं संतजनों ने गायन किया है। इस प्रकार श्री सिद्धि कुँअरि जी के पवित्र, सुन्दर व शरणागत चेतन के अनुरूप भावों को श्रवणकर कृपामय श्री राम जी महाराज अति प्रसन्न हो गये।

बहुरि कहा सुनु जनक कुमारा। सिद्धि सहित मम हृदय विचारा॥
दम्पति जीति लियो सत मोही। उरिन कल्प सत नाहिन तोही॥
मम मन महँ मति मनहिं मिलाई। मम प्राणहिं निज प्राण चढ़ाई॥

पुनः श्री राम जी महाराज ने कहा– हे जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी! श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित आप, मेरे हृदय के विचारों को श्रवण करें– सत्य ही आप दोनों नें मुझे जीत लिया है, मैं सैकड़ों कल्पों तक आप दोनो से उ;ण नहीं हो सकता। आप दोनो ने मेरे मन में अपने मन व बुद्धि को मिलाकर अपने प्राणों को मेरे प्राणों में न्यौछावर कर दिया है।

दो०–बिना नाम लीला ललित, बिनु मम रूप सुधाम।
क्षणमपि जीवन नहि सहौं, धन्य पुरुष वर वाम॥६॥

मेरे सुन्दर नाम, रूप, लीला एवं धाम के बिना आप दोनों एक क्षण के लिए भी अपने जीवन को नहीं सह पाते, ऐसे पुरुषों व स्त्रियों में श्रेष्ठ आप दोनों धन्यातिधन्य हैं।

मम सुख हेतु भाव माधुर्या। करत सदा अति प्रिय कैंकर्या॥
जेहिं विधि मुखोल्लास मम होई। दम्पति करत यत्न नित सोई॥

मेरे सुख के लिए माधुर्य भाव में भावित होकर आप दोनों सदैव मेरे अतिशय प्रिय कैंकर्य को करते रहते हैं। मेरा मुख जिस प्रकार से उल्लसित रहे आप दोनों (दम्पति) नित्य उसी प्रकार के उपाय करते रहते हैं।

प्रेम विलक्षण अरु बैचित्रा। बनो तुम्हारो रूप पवित्रा॥
अश्रु चढ़ाय मोल मोंहि लीना। निज अधीन नित गिनहु प्रवीना॥

आप दोनों का पवित्र विग्रह विलक्षण व प्रेम–वैचित्री अवस्था से परिपूर्ण हो गया है। आप दोनों ने अपने प्रेमाश्रुओं को समर्पित कर मुझे मोल ले लिया है। अतः हे परम प्रवीण! कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँअरि जी आप दोनों अब मुझे नित्य अपने आधीन समझिये।

जस चाहहु तस सेव कराई । राखे रहहु सतत अपनाई ॥
आपन प्रेम सुधान्न पवाई । हृष्ट पुष्ट रखियो सरसाई ॥

अब आप मुझसे जिस प्रकार की सेवा चाहें वैसी सेवा लेते हुए सदैव अपना बनाये रखें तथा अपने प्रेम का अमृतान्न पवाकर मुझे हृष्ट–पुष्ट एवं आनन्दित किये रहें।

तव मन ते हों पृथक न होऊँ । तुम बिन सखे प्राण प्रिय खोऊँ ॥
परमासक्त आपु पर जानी । प्यारेहु मोहि सखा निज मानी ॥

मेरी यही अभिलाषा है कि– मैं आपके मन से कभी भी अलग न हो सकूँ, क्योंकि हे सखे! आपके बिना अपने प्रिय प्राणों को भी धारण करने में मैं समर्थ नहीं हो सकूँगा। आप मुझे अपने आप पर अत्यन्त आसक्त समझ अपना सखा मान मुझे प्यार करते रहियेगा।

दो०–वचन सुनत रघुवीर के, दम्पति जनक कुमार ।
युगल चरण हिय लाय के, धोये आँसुन धार ॥७॥

श्री राम जी महाराज के वचनों को सुनकर दम्पति श्री जनक कुमार लक्ष्मीनिधि जी उनके दोनों चरणों को हृदय से लगाकर अपने आँसुओं की धार से उनका प्रच्छालन कर दिये।

लक्ष्मीनिधि बोले वर बैना। मोर भाग कहि शेष सकैं ना ॥
जो प्रभु कियो सुखद सुठि प्यारा । अकथ अगाध अनूप अपारा ॥

पुनः श्री लक्ष्मीनिधि जी ने सुन्दर वचनों से कहा– मेरे सौभाग्य का बखान श्री शेष जी भी नहीं कर सकते। हे मेरे स्वामी श्री राम जी महाराज! आपने यह जो मुझे सुख प्रदायक सुन्दर, अकथनीय, गहरा, अनुपमेय और असीम प्यार किया है।

सो मम साधन गुण ते नाहीं । केवल कृपा अहैतुक आहीं ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश महाना । उमा रमा शारद भू जाना ॥

वह सब मेरे साधनों और गुणों के कारण नहीं है, इसमें तो केवल आपकी बिना प्रयोजन कृपा ही कारण है। श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शंकर जी आदि महान देवता, श्री पार्वती जी, श्री लक्ष्मी जी, श्री सरस्वती जी, श्री भू देवी,

शेष सुरेश गणप सुर जेते । शक्तिन सहित अहैं जग तेते ॥
लोक पाल दिकपाल जहाँ लौ । त्रिभुवन विदित सुभाग तहाँ लौ ॥

श्री शेष जी, देवराज इन्द्र व श्री गणेश जी आदि अपनी शक्तियों सहित जो भी देवता हैं तथा जहाँ तक लोकपाल और दिगपाल आदि हैं वहाँ तक तीनों लोकों में मेरी सौभाग्य ज्ञात हो गयी है।

शुक सनकादि सिद्ध शुचि नारद । परमारथ पथ मुनिहुँ विशारद ॥
मम समान तव प्रिय परसादा । लहे न कोउ देन अहलादा ॥

श्री शुकदेव जी, श्री सनकादिक कुमार व श्री पवित्र नारद जी आदि सिद्ध गण तथा परमार्थ पथ में विशारद मुनि जन आदि किसी ने भी आपकी ऐसी अह्लाद प्रदायिनी कृपा प्रसादी नहीं प्राप्त

की।

दो०–होवै नहि अभिमान मोहिं, कबहुँ तनिक हे नाथ ।
आपा खोये नित रहहुँ, राम सिया पद माथ ॥८॥

परन्तु हे नाथ! मेरी यही प्रार्थना है कि– मुझे कभी भी अभिमान न हो तथा मैं अपने अस्तित्व को भुलाये हुए नित्य आप श्री सीताराम जी के चरणों में अपना शिर झुकाये आपके मुखोल्लास का हेतु बना रहूँ।

जग महँ करत नित्य व्यवहारा । कबहुँ बनै नहिं तव अपचारा ॥
मन क्रम बचन भक्त अपकारा । होवैं नहि हे नाथ उदारा ॥

हे नाथ! संसार में नित्य व्यवहार करते समय भी मुझसे कभी आपका अपचार न होने पाये, एवं हे मेरे उदार स्वामी! मन, वचन और कर्म से कभी भी आपके भक्तजनों का मुझसे किंचित भी अपचार न हो।

इष्ट दानि प्रभु नाशि अनिष्टा । हैं तव चरण उपाय वरिष्ठा ॥
मोरे एक सोइ आधारा । जानत प्रभु सब ज्ञान अपारा ॥

हे नाथ! आपके श्री चरण तो इष्ट की प्राप्ति एवं अनिष्ट का निवारण करने हेतु श्रेष्ठतम उपाय हैं। अतएव मेरे तो एकमात्र आपके श्री चरण ही आधार हैं मेरे हृदय के भाव की सत्यता को तो असीम ज्ञानवान प्रभु श्री राम जी महाराज स्वयं जानते ही हैं।

जानि जगत कहँ नित तव रूपा । अह मम रहित लखौं सुरभूपा ॥
क्षण क्षण प्रेम बढ़ै दोउ चरणा । भाम भगिनि रस बिना उतरणा ॥

हे समस्त देवताओं के स्वामी श्री राम जी महाराज! मैं अहंकार और ममकार विहीन हो नित्य ही संसार को आपका स्वरूप (श्री राम मय) समझकर निहारता रहूँ। मेरे हृदय में प्रत्येक क्षण आप दोनों बहन और बहनोई श्री सीता राम जी के चरणों का प्रेम वृद्धिंगत होता रहे तथा आपके प्रेमरस का आवेग कभी भी न्यूनता को न प्राप्त हो।

मज्जन असन शयन के माहीं । केलि विनोद चलत पथ पाहीं ॥
हँसो हँसायो पगो माधुरी । कहेउँ काकु सब भूलि चातुरी ॥

हे मेरे स्वामी रघुनन्दन श्री राम जी महाराज! आपके साथ स्नान, भोजन और शयन के समय मैं आपसे विनोदमयी क्रीड़ा करता रहा तथा आपके माधुर्य गुण में पगकर हँसता व हँसाता हुआ आपकी व्यवहार कुशलता को भूलकर व्यंग वचनों तक का प्रयोग किया।

दो०–नित नित अति अपराध करि, भूल्यो ज्ञान विवेक ।
अखिल अण्डनायक विभो, ब्रह्म परात्पर एक ॥९॥

इस प्रकार मैंने आपका नित्य प्रति अत्यधिक अपराध किया है तथा आप अखिल ब्रह्माण्ड नायक, परम विभु (भगवान), अद्वितीय, श्रेष्ठातिश्रेष्ठ व पूर्णतम परब्रह्म परमात्मा हैं इस ज्ञान को बुद्धि से भुलाये रहा।

ईश्वर पनहिं भूलि हे रामा। कियो अयोग अमित मैं कामा ॥
सो सब क्षमहु कुपाप प्रनाशन। अशरण शरण नाम श्रुति भाषन ॥

हे श्री राम जी महाराज! आपकी ईश्वरता को भुलाकर मैंने सर्वथा आपकी प्रतिष्ठा के अयोग्य कार्य किया है। अतः हे पापों का नाश करने वाले श्री राम जी! आप मेरे उन सभी अपराधों को क्षमा कर दीजिये, क्योंकि आपका नाम तो अशरण (शरण में न लेने योग्य जीवों) को भी शरण प्रदान करने वाला है। ऐसा श्रुतियों ने उद्घोष किया है।

ब्रह्म ईश परमातम मानी। ध्यान करौं तुम्हरो जिय जानी ॥
भगिनि भाम तजि ब्रह्मक भावा। उर अस आवत दुःख दबावा ॥

हे श्री राम जी महाराज! मैं अपने हृदय में जब आपका ब्रह्म, ईश्वर और परमात्मा मान कर ध्यान करता हूँ तो आप सत्य जान लीजिये कि– बहन और बहनोई भाव के अतिरिक्त आपका ब्रह्म भाव हृदय में आते ही मैं भयभीत हो जाता हूँ और दुख मुझे अपने मे आत्मसात कर लेता है।

छाती फटन लगत ततकाला। असह वेदनामय जन पाला ॥
कैसे करहुँ तुमहिं कस ध्याऊँ। शरण पड्यो प्रभु देहु बताऊँ ॥

हे भक्तजनों का परिपालन करने वाले श्री राम जी महाराज! उस समय असहनीय वेदना के कारण मेरा वक्षस्थल विदीर्ण होने लगता है, हे प्रभु! आप ही बताइये मैं क्या करूँ, आपका किस प्रकार ध्यान करूँ, मैं आपकी शरण में पड़ा हूँ।

अस कहि चरण गिर्यो भहराई। लीन्हे रघुपति हृदय लगाई ॥
कीन्हे अमित प्यार दुलराई। बोले वचन सुखद सरसाई ॥

ऐसा कहकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज के चरणों में आत्म समर्पण पूर्वक गिर पड़े तब श्री राम जी महाराज ने उन्हें अपने हृदय से लगा लिया और असीमित प्यार दुलार करते हुये प्रेम पूर्वक सुखप्रदायी वाणी से बोले।

दो०–सुनहु कुँअर सत सत कहौं, अपने हिय की बात।
संशय सिगरी हृदय तजि, बने रहहु सुखदात ॥१०॥

हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! सुनिये, मैं अपने हृदय की सत्य बात कह रहा हूँ कि– आप अपने हृदय के सभी संदेहों को त्यागकर मुझे सुख प्रदान करने वाले बने रहिये।

पर ब्रह्म परमात्म महाना। महापुरुष ज्ञाता भगवाना ॥
जो कछु होवहुँ होवहुँ ताता। पै हौं तव नित भाम सुहाता ॥

हे तात! मैं परब्रह्म, परमात्मा, विराट, महापुरुष, ज्ञाता और भगवान जो कुछ भी होऊँगा तो होऊँगा परन्तु मैं आपका तो नित्य सुन्दर बहनोई ही हूँ।

प्राण अधार प्राण प्रिय श्याला। हौ तुम हमरे नित निमिलाला ॥
भगिनि सदा तव सुन्दरि सीता। जन्म जन्म की प्रीति पुनीता ॥

हे निमिनन्दन! आप हमारे प्राणों के आधार व नित्य प्राण प्रिय श्याल है, परम सुशोभना श्री सीता जी आपकी शाश्वत बहन हैं एवं आप दोनों भाई–बहन की पवित्र प्रीति तो आज की नहीं बरन् जन्म–जन्मान्तरों की है।

साम गान ते मधुर तुम्हारी। गारी हमहिं अधिक सुखकारी ॥
हँसि हँसाय मो कहँ सुख दीन्हों। सेवत मोर मनहिं लय लीन्हों ॥

मुझे आपकी दी हुई गालियाँ (व्यंगोक्तियाँ) साम–गान से भी अधिक सुखकारी प्रतीत होती हैं। आपने हँस–हँसाकर कर मुझे सुख प्रदान किया है तथा सेवा करते–करते मेरे मन को अपने वश में कर लिया है।

सेवा सोइ सत्य श्रुति गाई। मुखोल्लास जेहि स्वामि सुहाई ॥
सो तब क्रिया सकल सुखदाई। परम प्रसन्न करन मोहि भाई ॥

श्रुतियों ने गायन किया है कि सच्ची सेवा तो वही है जिससे स्वामी का सुन्दर मुख उल्लसित हो, फिर, आपकी तो सभी क्रियाएँ मुझे सुख प्रदान कर अतिशय प्रसन्न करने वाली और मेरे मनोनुकूल हैं।

दो०– मम इच्छा सुख हेतु तव, जन्म सत्य निमिलाल।
सिद्धि सुभग सरहज बनी, बने तुमहुँ शुचि श्याल ॥११॥

हे श्री निमिनन्दन! सत्य ही, आपका जन्म मेरी इच्छा और सुख के लिये हुआ है तथा इसी हेतु श्री सिद्धि कुँअरि जी हमारी सरहज और आप हमारे पवित्र श्याल बने हैं।

करत सुरति सुठि सरहज श्याला। रहौं प्रसन्न नित्य निमि लाला ॥
दरश परश तव मम मनहारी। रहौं मगन सुनि सुनि शुचि गारी ॥

हे निमिनन्दन! मैं आप दोनों सुन्दर सरहज और श्याल की स्मृति करते हुए नित्य प्रसन्न बना रहता हूँ। पुनः आपका दर्शन व स्पर्श मेरे मन को हरण करने वाला है तथा मैं आप दोनों की पवित्र गालियाँ द्धव्यंगोक्तियाँद्ध सुन–सुन कर सुख में मग्न रहता हूँ।

सेवा सरस चरित सुख दानी। तव कुमार अमृत कर जानी ॥
जब कहुँ आवत मन महँ बाता। ज्ञान रूप वर कुँअर सुहाता ॥

हे कुमार! आपके द्वारा की हुई रसमयी सेवा मुझे अमृत के समान प्रतीत होती हैं तथा आपका चरित्र मुझे अतिशय सुख–प्रदान करने वाला है। जब कभी मेरे मन में यह बात आती है कि कुमार लक्ष्मीनिधि जी तो श्रेष्ठ ज्ञान के स्वरूप ही हैं।

कुल अनूप अति आत्म विशारद। उपज्यो ज्ञान गुरू लहि तारद ॥
उपदेशत जो मुनिगण काहीं। जनक ब्रह्म विद अनुपम आहीं ॥

पुनः आप आत्म विशारदों के अनुपमेय कुल श्री निमि–कुल में उत्पन्न हुये हैं तथा जिनकी कृपा से सभी मैथिल राजा आत्म विशारद होते आये है ऐसे मोक्ष प्रदान करने वाले परम ज्ञानी गुरुदेव आचार्य श्री याज्ञबल्क्य जी महाराज की कृपा से प्राप्त अखण्ड ज्ञान स्वरूप, अनुपमेय, ब्रह्म–विद् श्री

विदेह राज जी महाराज जो महान मनीषियों को भी ब्रह्म–तत्व का उपदेश करते हैं, के कुमार हैं।

कहुँ सो कुँअर विज्ञान स्वरूपा । तजि न देय रस भाव अनूपा ॥
गुनि मोहि ब्रह्म ब्रह्मरत होई । तजि सुभाव सम्बन्धहिं खोई ॥

अतः ऐसे विज्ञान–स्वरूप कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी कहीं हमारे अनुपमेय प्रेम–रस भाव को त्याग न दें और मुझे साक्षात् परब्रह्म समझ, ब्रह्म में लीन होकर अपने इस सुन्दर प्रेम–भाव और "भगिनी–भाम" सम्बन्ध को भुला न दें।

दो०–बनि अद्वैती तजि सगुण, त्यागि भजन रस रीति ।
बनि अकाश सुनसान सो, रहहिं न कुँअर अतीति ॥१२॥

इस प्रकार अद्वैतवादी बन, हमारे सगुण स्वरूप को छोड़, भजन की रसमयी पद्धति को त्याग, आकाश के समान शून्य बनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी कहीं हमसे विलग न हो जायें।

अस विचार करतहिं मन माहीं । व्याकुल होहुँ भूलि निज काहीं ॥
परमानन्द मोर छुटि जाई । जो नित पावौं श्याल सहाई ॥

ऐसा मन में विचार करते ही अपने आपको भूल कर मैं व्याकुल हो जाता हूँ तथा मेरा वह परमानन्द मुझसे छूट जाता है जिसे अपने श्याल के साथ मैं नित्य ही प्राप्त करता हूँ।

या रस चाखि सुनहु निमिचन्दा । फीक निरस लग ब्रह्मानन्दा ॥
ब्रह्मानन्द सौ गुनो प्यारी । प्रेमानन्द केर रस धारी ॥

हे निमिकुल चन्द्र श्री लक्ष्मीनिधि जी! इस प्रेम–रस का आस्वाद ग्रहण कर लेने के पश्चात् ब्रह्मानन्द फीका और नीरस प्रतीत होता है क्योंकि प्रेमानन्द की रस धारा ब्रह्मानन्द से सौ गुनी अधिक प्रियकर होती है।

याते श्याल भाम हम दोई । रहहिं पगे नित या रस मोई ॥
रसाद्वैत बनि रसमय लीला । करत रहहिं दोऊ सुख शीला ॥

इसलिए हम दोनों साले–बहनोई इस रस में डूबे हुए नित्य प्रेमरस में पगे रहें तथा रसाद्वैत बने हुए हम दोनों सुख प्रदायिनी रसमयी लीला करते रहें।

हमहिं तुमहिं यद्यपि सुनु प्यारे । यह भय प्रेम विचित्र अधारे ॥
संशय वृथा करहिं हम दूनो । रहैं रसोदित जिमि शशि पूनो ॥

यद्यपि हे प्यारे! सुनिये, हमें और आपको यह डर "प्रेम वैचित्री" के कारण हो रहा है और हम दोनों व्यर्थ ही ऐसे संशय करते हैं। हम लोग तो परस्पर प्रेम–रस में उसी प्रकार उदित रहेंगे जिस प्रकार आकाश में पूर्णिमा का चन्द्र।

दो०–श्याल भाम रस क्षन क्षनहिं, बढ़ी तुम्हार हमार ।
नित्य अकथ अनुपम सुखद, सखे अगाध अपार ॥१३॥

हे सखे! हमारा और आपका यह अकथनीय, अनुपमेय, सुख प्रदायक, अथाह और असीम

साले–बहनोई (श्याल–भाम) के सम्बन्ध का प्रेमानन्द नित्य प्रतिक्षण वृद्धिंगत होता रहेगा।

तनिक छिद्र नहिं कवनेहु काला। होइहि रस महँ सुनहु रसाला॥
तुमहिं परावर मोर स्वरूपा। अनुभव अहै अगाध अनूपा॥

हे रस स्वरूप श्री लक्ष्मीनिधि जी! सुनिये, हमारे इस श्याल–भाम रस में किसी काल में किंचित भी न्यूनता द्धकमीद्ध नहीं आयेगी। हे कुमार! यद्यपि आपको मेरे अथाह व अनुपमेय परावर (परस्पर विरोधी गुण धर्मो से युक्तद्ध ब्रह्म–स्वरूप का भली प्रकार अनुभव है।

परब्रह्म परमात्महिं काहीं। किय प्रत्यक्ष बालकहिं माहीं॥
निर्गुण सगुण यथारथ बोधा। अनुभव करि प्रत्यक्ष सुसोधा॥

आपने वाल्य–काल में ही परब्रह्म परमात्मा को साक्षात् कर लिया है, हमारे निर्गुण और सगुण स्वरूप का आपको वास्तविक बोध है जिसे आपने शोधन कर प्रत्यक्षतया अनुभव कर लिया है।–––

सब कर फल गुनि मोहि नित भामा। भगिनी सीतहिं जानि ललामा॥
ऐसेहिं प्रीति सने मुद मोई। नित्य कुँअर सिद्धी सह दोई॥

–––जिसका परम फल मुझे अपना बहनोई तथा श्री सीता जी को नित्य बहन समझ कर, तदनुसार इसी प्रकार के भाव से श्री सिद्धि कुँअरि जी के सहित आप दोनों नित्य आनन्द पूर्वक प्रीति में सने रहते हैं।

देवत रहहु सरस सुख काहीं। मुनिगन बुद्धि जाय जहँ नाहीं॥
देहेन्द्रिय मन बुद्धि सुआतम। सर्वस तुम्हरो मोर सुधातम॥
भोग समुझि नित भोगत रहऊँ। तव चेष्टा अपनो सुख लहऊँ॥

अतएव आप हमे वह रस से परिपूर्ण सुख सदैव प्रदान करते रहें जहाँ बड़े बड़े मननशील मुनियों की बुद्धि भी नहीं पहुँच सकती। हे कुमार! आपकी अमृत स्वरूप देह, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और आत्मा आदि सभी अवयव मेरे हैं अतः अपना भोग समझकर मैं उनका विनियोग करता रहूँ तथा आप लोगों की सम्पूर्ण चेष्टाओं में अपना सुख प्राप्त करूँ।

दो०– ह्वै अछेद सब भाँति सों, श्याल भाम को भेद।
बना रहै शास्वत सखे, जासों रस दोउ वेद॥१४॥

हे सखे! हमारा यह श्याल–भाम का सम्बन्ध सभी प्रकार से भिन्नता रहित हो शाश्वत बना रहे जिससे हम दोनों वेदोक्त रसानुभूति करते रहें।

राम बचन सुनि हिय हरषाई। श्रीनिधि उरहिं लिये लपटाई॥
श्याल भाम रस दोऊ छाके। मधुर विलोकनि नैना बाँके॥

श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी हृदय में अतिशय हर्षित हुए तत्क्षण श्री राम जी महाराज नें उन्हें अपने हृदय से लिपटा लिया। इस प्रकार शाले बहनोई कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज दोनों सुन्दर नेत्रों की मधुर चितवनि से परस्पर निहारते हुए प्रेमरस में छक गये।

इक एकन कहँ करि स्पर्शा। आनन्द मगन होहिं रस वर्षा ॥
परम प्रसन्न राम कहँ जानी। कृपा मूर्ति सब सुख की खानी ॥

वे दोनो एक दूसरे का स्पर्श कर, रस वृष्टि करते हुये आनन्द मग्न हो रहे हैं। पुनः कृपा की मूर्ति, समस्त सुखों की खानि श्री राम जी महाराज को अत्यन्त प्रसन्न जानकर---

लक्ष्मीनिधि कछु पूछन चहहीं। कहि न सकहिं मुसक्याय सो रहहीं ॥
रघुवर कहेउ परम प्रिय मोरे। चाहहु काह कहन हिय भोरे ॥

---कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज से कुछ जिज्ञासा करना चाहते हैं किन्तु संकोच वश कुछ न कह, मुस्कुराकर शान्त हो जाते हैं। उनकी ऐसी अवस्था को देखकर श्री राम जी महाराज बोले- हे सरल हृदय मेरे परम प्रिय कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप क्या कहना चाहते हैं?

मृदु मुसकाय मोर मन लेई। चुपहिं रहत खुलतेव नहिं धेई ॥
मम सुख हेतु कहहु निमि वारे। निज हिय बात सकल सुख सारे ॥

आप अपने उद्देश्य को प्रगट न कर, शान्त बने मधुर-मधुर मुस्कुराते हुए मेरे मन को आकृष्ट कर रहे हैं। हे समस्त सुखों के सार निमिनन्दन! आप मेरे सुख के लिए अपने हृदय के सम्पूर्ण विचारों को प्रगट कीजिये।

दो०-सरस सरल भावहिं भरे, पर हित सने सुखार।
भक्ति ज्ञान वैराग्य प्रद, वचन तुम्हार उदार ॥१५॥

हे परम उदार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! अन्य के हित से सने हुए, रस परिपूर्ण, सरल भावों से आपूरित, भक्ति, ज्ञान व वैराज्ञ प्रदान करने वाले आपके सुखकर वचनों को---

सुनि सुनि मोहि सहज सुख होई। याते तात न राखहु गोई ॥
मृदु मुसकाय भानुकुल भानू। कुँअरहिं प्रेरत परम सुजानू ॥

---श्रवण कर मुझे सहज सुख प्राप्त होगा इसलिए हे तात! आप अपने मन के विचार गुप्त न रखें। इस प्रकार सूर्य-कुल के सूर्य परम सुजान श्री राम जी महाराज मधुर-मधुर मुस्कराते हुए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अपने हृदय की वार्ता प्रगट करने हेतु प्रेरित करने लगे।

राम कृपा अरु आयसु पाई। मुद्रा तुरत सुशिष्य बनाई ॥
हाथ जोरि सिधि सहित कुमारा। कियो प्रणाम चरण सिर धारा ॥

श्री राम जी महाराज की कृपा और आज्ञा को प्राप्त कर, शीघ्र ही सद्-शिष्य की मुद्रा धारण कर श्री सिद्धि-कुँअरि जी सहित कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी हाथ जोड़कर उनके चरणों में अपना मस्तक रख प्रणाम किये।

आसन नीचे बैठ तुरन्ता। कर सम्पुट बोल्यो बुधिवन्ता ॥
आज चाह इक रही समाई। पुरवहु दास सुखद रघुराई ॥

तत्क्षण आसन से नीचे उतर भूमि में बैठकर, परम बुद्धिमान कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी हाथ

जोड़कर बोले– हे सेवकों को सुख प्रदान करने वाले मेरे परम प्रेयस श्री राम जी महाराज! मेरे हृदय में होने वाली एक जिज्ञासा का आप, आज समाधान करें।

इत इकान्त नहिं दूसर प्रानी । दासी दास मात्र जिय जानी ॥
गुप्त रहस्यहुँ मोहिं बतावहु । आरत जानि न नेक छिपावहु ॥

यहाँ अन्य प्राणियों का अभाव होने से एकान्त है। केवल सेविका (श्री सिद्धि) और सेवक मुझको उपस्थित जानकर परम गोपनीय रहस्य को भी ज्ञापित कर दीजिए तथा हमे आर्त जिज्ञासु समझकर कोई तत्व छिपाकर मत रखिये।

दो०– नाथ परम पद लहन हित, जाहि कहत तव धाम ।
कवन पथहिं प्राणी चलैं, पावैं शान्ति अकाम ॥१६॥

हे नाथ! उस परम पद को प्राप्त करने के लिए जिसे आपका परम–धाम कहते हैं, जीव किस मार्ग का अनुसरण करें जिससे निष्काम होकर शाश्वत शान्ति को प्राप्त कर सके।

तव अपरोक्ष ज्ञान रघुराई । ब्रह्म कहहिं जेहिं श्रुति सब गाई ॥
योगी परमातम कहि गावैं । भक्त जाहि भगवान बतावैं ॥

हे श्री राम जी महाराज! आपका अपरोक्ष ज्ञान, जिसे सभी श्रुतियाँ ब्रह्म कह कर बखान करती हैं, योगी परमात्मा कहते हैं तथा भक्तजन भगवान बताते हैं।———

केहिं विधि होय नाथ कहि भाषैं । दीन जानि नहिं अन्तर राखैं ॥
दरश परश एकान्तिक सेवा । केहिं विधि मिलै कहहु मम देवा ॥

———वह ज्ञान कैसे प्राप्त हो, आप मुझसे समझाकर कहें। हे नाथ! मुझे अत्यन्त दीन समझकर किसी प्रकार का भेद न रखें। हे मेरे आराध्य देव! आपका दर्शन, स्पर्श एवम् एकान्तिक कैंकर्य किस–विधि से प्राप्त होता है? कृपया बखान करें।

त्रय अकार सम्पन्न सुजीवा । केहिं विधि पावै प्रेम अतीवा ॥
जा कहँ नाथ प्यार अति मानै । तेहिं जन रहनि कवन विधि आनै ॥

अनन्य शेषत्व, अनन्य भोगत्व व अन्य रक्षकत्व आदि तीनों अकारों से सम्पन्न होकर जीव किस प्रकार आपके महान प्रेम को प्राप्त करें? पुनः हे नाथ! जिन्हें आप अत्यधिक प्यार करते व मानते हैं उन भक्तजनों की रहनी को सभी जीव किस प्रकार प्राप्त करें?

वेद पुराण स्मृती नाना । अरु इतिहास शास्त्र जग जाना ॥
बहुत भाँति सब कहि समुझायो । अमित उपाय यथा मति गायो ॥

सम्पूर्ण संसार जानता है कि वेदों, पुराणों, स्मृतियों, इतिहासों और शास्त्रों ने इन सभी प्रश्नों के समाधान हेतु अपने विनिश्चय के अनुसार विविध प्रकार से असीमित उपायों का वर्णन किया है।

दो०– जहँ तहँ झगड़ा शास्त्र महँ, परत कहैं सब लोग ।
मुनि गन तहँ निश्चय करत, निज निज मति के जोग ॥१७॥

परन्तु सभी कहते हैं कि जहाँ–तहाँ शास्त्रों में विवाद की स्थिति बनी ही रहती है, उस समय वहाँ मुनिगण अपनी–अपनी विशद–बुद्धि के अनुसार सत् मार्ग का निर्णय करते हैं।

तिन महँ परत नाथ बहु भेदा । श्रुति मानत तब हिय बिच खेदा ॥
श्रुति तव सहज श्वास रघुराया । सहज ज्ञान तव रूप अमाया ॥

तथापि हे नाथ! उनमें भी बहुत सा अन्तर आ जाता है तब श्रुतियाँ ह्रदय में अत्यन्त दुखी हो जाती हैं। हे श्री राम जी महाराज! श्रुति–भगवती तो आपकी सहज श्वास से प्रगट होती हैं और आपका निर्मल स्वरूप सहज ही ज्ञानमय है।

युग विभूति स्वामी प्रभु नित्या । और सकल तव शेष सुभृत्या ॥
थिति लय उद्भव अण्डन केरा । तव अधीन जग कार्य घनेरा ॥

हे स्वामी! युगल विभूतियों (एकपाद व त्रिपाद) के आप नित्य स्वामी है और सभी आपके शेष व सेवक हैं। अनन्त ब्रह्माण्डों की स्थिति, संहार, उत्पत्ति तथा संसार के सभी महान कार्य आपके ही आधीन होते हैं।

विद्याऽविद्या प्रभु बल पाई । मोक्ष बन्ध की बनी सहाई ॥
विश्व रूप प्रभु विश्व निवासी । जड़ चेतन जग जीव प्रकाशी ॥

विद्या और अविद्या माया आपके बलशाली आश्रय को प्राप्तकर ही मोक्ष और बन्धन की सहायिका बनी हुई हैं। हे स्वामी आप विश्वरूप तथा विश्व में ही निवास करने वाले संसार के चराचर जीवों को प्रकाशित करने वाले हैं।

सतचिद आनंद धाम सुहाये । देही देह भेद बिन गाये ॥
सर्वरूप सब रहित कृपाला । सदा एक रस तीनहुँ काला ॥
सत अरु असत तुमहिं ते होई । तुम बिन वस्तु न दीखै कोई ॥

आप सच्चिदानन्दमय धाम स्वरूप, शरीरी और शरीर भेद से रहित वर्णन किये गये हैं। हे कृपालु! आप सर्वरूप होते हुए भी सभी से अलग, तीनों कालों में सदैव एक रस रहने वाले हैं। सत्य और असत्य सभी कुछ आप ही से प्रगट होता है तथा आपसे अतिरिक्त संसार में कोई अन्य वस्तु दिखाई नहीं पड़ती अर्थात् सर्वत्र आप ही आप हैं।

दो०–एक साथ सबकर सदा, सब प्रकार सब ज्ञान ।
तुमहिं विदित बिन ध्यान के, सब महँ बसत समान ॥१८॥

आपको एक साथ, सभी जीवों का, सभी प्रकार का सम्पूर्ण ज्ञान, बिना ध्यान के सदैव सहज ही प्राप्त है तथा आप सभी में समान रूप से निवास करते हैं।

ताते आपुहिं देहिं बताई । जेहिं विधि जीव प्रभुहिं द्रुत पाई ॥
माया महा विरोधी अहई । प्रबल दुखद सब जीवन गहई ॥

इसलिए आप ही उस विधि का प्रकाशन करें जिससे जीव प्रभु (आप) को शीघ्र प्राप्त कर लें।

क्योंकि आपकी माया इस बात की अतिशय विरोधिनी है। वह दुख प्रदान करने वाली, अत्यन्त बलवती व सभी जीवों को ग्रस्त किये रहती है।

भव रस नासै कवन प्रकारा । जेहिं वस जीव परै दुख धारा ॥
छूटन चाहत छूट न जाई । बरबश बाँधे कौन महाई ॥

हे नाथ! जिसके कारण जीव दुख के प्रवाह में पड़े रहते है यह संसारी–आनन्द (भवानन्द) किस प्रकार से विनास को प्राप्त होता है ? इससे छूटना चाहते हुए भी जीव छूट नहीं पाते, उन्हें दृढ़ता पूर्वक हठात् कौन बाँधे रहता है?

सो सब कहहु राम रघुनाथा । बार बार धारौं पद माथा ॥
अस कहि पाँव पकरि रहि गयऊ । राम प्रसन्न मनहिं मन भयऊ ॥

हे रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज! आप मुझसे सभी कुछ कहिये, मैं बारम्बार आपके चरणों में मस्तक रख प्रणाम कर रहा हूँ। ऐसा कहकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी उनके चरण पकड़ लिये। तब प्रभु श्री राम जी महाराज मन ही मन अत्यधिक प्रसन्न हुए।

कुँअर उठाय राम सुख धामा । बोले वचन परम अभिरामा ॥
परम साधु परमारथ रूपा । हौ तुम सहज सुप्रेमिन भूपा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को उठाकर सुख के धाम श्री राम जी महाराज परम सुन्दर वचन बोले– हे कुमार! आप सहज ही परम साधु, परमार्थ स्वरूप तथा सुन्दर प्रेमियों के सम्राट हैं।–––

दो०–प्रकृति पार मम धाम महँ, संतत करहु विहार ।
सत चिद् आनँद रूप बनि, भूल्यो रस संसार ॥१९॥

–––आप प्रकृति के पार मेरे परम धाम में सदैव विहार करते हैं तथा सच्चिदानन्दमय स्वरूप धारण कर संसारी रस भूले हुए हैं।

सर्व भूत हित रत मति धीरा । सकौ देखि नहिं जीवन पीरा ॥
ताते तत्व सुनन हित चाहा । बढ़त कुँअर तव हिये अथाहा ॥

आप परम बुद्धिमान समस्त जीवों के हित में लगे होने के कारण जीवों की पीड़ा को देख नहीं सकते, इसीलिए हे कुमार! उस 'परम तत्व' को सुनने की बलवती जिज्ञासा आपके हृदय में बढ़ रही है।

हृदय ग्रन्थि तुम्हरी सब छूटी । संशय सकल गये पुनि टूटी ॥
कर्म बीज जरि भये खुआरे । धन्य सखे मम प्राण पियारे ॥

आपके हृदय की जड़ चेतनात्मक सभी ग्रन्थियाँ छूट गयी हैं, सभी संशय समाप्त हो गये हैं तथा कर्मो के बीज जलकर विनष्ट हो गये हैं, हे मेरे प्राण प्रिय सखे! आप धन्य हैं।

सब प्रकार मोहिं कहँ अपनाये । शेष न रह कछु मोरे भाये ॥
तदपि तुम्हार प्रश्न हितकारी । वरणब अवशि प्रीति हिय धारी ॥

आपने सभी प्रकार से मुझे अपना लिया है। यद्यपि मेरे समीप अब कुछ ज्ञान शेष नहीं रहा तथापि आपके इन लोक हितकारी प्रश्नों को हृदय में धारण कर मैं अवश्य ही इनका समाधान करूँगा।

कहहुँ सुनहु सादर चित लाई। सिद्धि सहित शुचि भाव बढ़ाई ॥
चर्चा इहै सुसंग कहावै। वशीभूत जो मोहिं बनावै ॥

हे कुमार! मैं अब आपके प्रश्नों का समाधान वर्णन कर रहा हूँ आप ध्यान पूर्वक श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित पवित्र भाव बढ़ाकर श्रवण कीजिये! यथार्थतः यही चर्चा सत्संग कहलाती है जो मुझे अपने वशीभूत बना लेती है।

दो०–भक्ति ज्ञान वैराग्य वर, प्रेम प्रदायक जान।
जीव ईश को योग करि, आनँद देति महान ॥२०॥

यही विवेचन सुन्दर भक्ति, ज्ञान, वैराग्य व प्रेम प्रदान करने वाला तथा ईश्वर व जीव का मिलन कराकर महान आनन्द प्रदान करने वाला होता है।

मम संकल्प गुनहु संसारा। दीखत दृश्य जो विविध प्रकारा ॥
चिद विलास जग मम हित प्यारे। मोहिं ते बन्यो हमहिं तेहिं धारे ॥

यह संसार जिसमें विभिन्न प्रकार के दृश्य दिखाई पड़ते हैं इसे मेरा ही संकल्प समझिये। हे प्यारे! यह संसार मेरे सुख के लिए, मेरे द्वारा की हुई चिन्मयी लीला है जो मुझसे ही बना है और मैं ही इसका धारण करने वाला हूँ।

लीला मोरि जगत जिय जानहु। कर्त्ता कर्म करण मोहिं मानहु ॥
हमहिं अनन्त रूप बनि भाषैं। जेहिं जग कहत लोग रति राखैं ॥

आप इस संसार को मेरी लीला ही समझिये तथा इसका कर्ता (करने वाला) कर्म(कार्य) व करण (इन्द्रियाँ) मुझे ही जानिये। इसमें मैं ही अनन्त रूप होकर दिखाई देता हूँ जिसे सभी जन संसार कहते हैं व आसक्त बने रहते हैं।

बहुत होइ बहुभाँतिन केरा। बहु विहार नित करहुँ ह्रहेरा ॥
कुँअर योग माया मम भारी। छिपे रहहुँ नित ताहि मझारी ॥

इस संसार में मैं असीमित रूप धारण कर, नित्य विविध प्रकार से विभिन्न–विहार करता हूँ ऐसा आप अपने हृदय में जान लीजिए। परन्तु हे कुमार! हमारी जो अत्यन्त बलवती योगमाया है, उसके बीच मैं नित्य, स्वयम् को छिपाये रहता हूँ।–––

ताहि साथ लै खेलउँ खेला। ताही सो सब जगत झमेला ॥
जानत भाव भेद भव त्यागी। भजन रसिक कोउ भगवत रागी ॥

–––जिसके कारण संसार के ये सभी प्रपंच बने हुए हैं, उसी माया को, अपने साथ लेकर मैं क्रीड़ा करता रहता हूँ। मेरे इस भाव को जीव–ईश के भेद व संसार का त्याग किया हुआ कोई भजन रसिक भगवदानुरागी ही जान सकता है।

दो०– नट सेवक जस नट चरित, देखि न पावत मोह।
स्वामिहिं लखै सो एक रस, नाना विधि जग जोह ॥२१॥

जिस प्रकार अभिनय कर्ता (नट) का सेवक, उसके अभिनय (उसकी कला) को देखकर मोहित नहीं होता तथा जिन विभिन्न प्रकार के दृश्यों को देखते हुए संसार विमोहित बन जाता है उन सभी में नट का सेवक अपने स्वामी (नट) को ही सदैव एक–रस देखता व अनुभव करता है।

तस जग भान न दासहिं होई। मोहिमय दिखै परम पद सोई॥
सुनु सत कुँअर कहौं तोहि पाहीं। कर्त्ता कारयिता हम आहीं॥

उसी प्रकार इस संसार का अनुभव हमारे सेवकों को नहीं होता और यह "संसार" उन्हें मेरे समान परम पद स्वरूप ही दिखाई पड़ता है। हे प्रिय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! मैं आपसे सत्य कहता हूँ कि– इस संसार के कर्त्ता व कारयिता (करने व कराने वाले) हम ही हैं।

हमहिं सुभोक्ता परम उदारा। चाखत फल रस विविध प्रकारा॥
अनासक्त बिन अहं अमाया। निर्मम सिगरी क्रिया सुभाया॥

हम ही इसके सुन्दर भोक्ता हैं और परम उदारता पूर्वक इसके फल–रस को विभिन्न प्रकार से ग्रहण करते हैं। इस संसार में आसक्ति, अहंकार व ममकार विहीन हमारी सभी अमायिक क्रियायें स्वाभाविक व सहज ही होती हैं।

सृष्टि प्रवाह अनादि महाना। विविध भाँति नहिं जाय बखाना॥
कर्त्ता भोक्ता जीवहिं काहीं। मैं नहि रचा करयिता ताहीं॥

इस संसार का महान एवं विविध प्रकार का प्रवाह अनादि है जिसका बखान नहीं किया जा सकता। परन्तु इसमें जीवों को मैंने कर्त्ता, भोक्ता और कारयिता नहीं बनाया है।

कर्म करन प्रकृतिहिं अधिकारा। मम सुख हेतु सकल व्यवहारा॥
अनासक्त निर्लिप्त अकामी। जीवहिं रचा त्रिगुण पर यामी॥
कर्त्ता क्रिय फल भुगतन वारा। जीव अकर्त्ता अन अधिकारा॥

प्रकृति (जीव) का अधिकार केवल कर्म करना है तथा उसके सम्पूर्ण व्यवहार, केवल मेरे सुख के लिए हैं। मैंने जीवों को आसक्ति–रहित, सभी व्यवहारों से निर्लिप्त, निष्काम, तथा तीनों गुणों (सत, रज, तम) से परे बनाया है, ऐसा आप जानिये। कर्तापन और कर्म के फलों के उपभोग के लिए जीव अकर्त्ता तथा अनधिकारी है।

दो०– सो किमि भोगै दुख सुखहिं, परा सतत भव कूप।
पाप पुण्य कोउ और के, और न भोगे भूप ॥२२॥

अतएव वह (जीव) निरन्तर संसार कूप में पड़ा हुआ दुखों व सुखों को क्यों भोगता है? क्योंकि, हे रसराज, कुमार लक्ष्मीनिधि जी ! किसी अन्य के द्वारा किये हुए पापों और पुण्यों के प्रतिफल को कोई दूसरा नहीं भोग सकता।

पै जग जीव अविद्याधीना । भ्रम वश अति अज्ञानहिं लीना ॥
कर्त्ता भोक्ता आपुहिं मानी । बरबस निदरि हमहिं अज्ञानी ॥

परन्तु संसारी (अज्ञानी) जीव अविद्या के आधीन होने और भ्रम के कारण अतिशय अज्ञान ग्रहण कर, हठात् हमारा निरादर करते हुये अपने आपको कर्त्ता व भोक्ता मान लेते हैं।

भोगत भव दुख बारम्बारा । भ्रम चौरासी विविध प्रकारा ॥
यथा रेत मय महि के माहीं । नहिं जल रचा अहै तहँ नाहीं ॥

इसीलिए वे बार–बार संसारी जन्म व मृत्यु के दुखों को भोगते रहते हैं तथा विभिन्न प्रकार की चौरासी लाख योनियों में भटकते रहते है। जिस प्रकार रेतीली भूमि (मरुस्थल) में पानी की रचना नहीं की गयी और न वहाँ पर जल है ही–––

भानु किरन जब रेतहिं परई । जल कर भ्रम मृग बरबस करई ॥
बुद्धि विमोह ज्ञान सब खोई । दौड़त दुपहर जल तेहिं जोई ॥

–––परन्तु जब सूर्य की किरणें रेत में पड़ती हैं तो बुद्धि व्यामोहित हो जाने के कारण मृग, हठ पूर्वक वहाँ जल का भ्रम कर लेता है। उस समय उसका सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो जाता है और वह उसे जल समझ कर पाने के लिए मध्याह्न में दौड़ता रहता है।

अधिक प्यास पुनि थकेउ महाना । मुरछि गिर्‌यो तब जीव पराना ॥
तैसहिं तीन काल जग माहीं । आनँद नाम वस्तु कछु नाहीं ॥
केवल गुनहु अविद्या तेरे । सुखमय सब संसारहिं हेरे ॥

पुनः अत्यधिक प्यास तथा थकान के कारण मूर्छित हो गिर कर वह मर जाता है। उसी प्रकार तीनों काल में संसार में आनन्द नाम की कोई वस्तु नहीं है। केवल अविद्या ‍‍(विपरीत ज्ञान) के कारण ही जीव संसार को सुख स्वरूप समझते हैं।

दो०–काम विवश अज्ञान ते, भ्रम वश जीव जहान ।
भोगत दुख व्याकुल नितहिं, करि हिय मिथ्या ज्ञान ॥२३॥

अपनी कामनाओं के वशीभूत, अज्ञान के कारण संसार के जीव, भ्रम के विवश हो, हृदय में असत्य ज्ञान आरोपित कर व्याकुल हो नित्य दुख भोगते रहते हैं।

श्री निधि कहेउ सुनहु प्रिय रामा । कहहिं अविद्या जो दुख धामा ॥
कस स्वरूप केहि भाँति नसाई । वरणि कृपा करि देहिं दिखाई ॥

श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवण कर, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे मेरे प्रिय भाम श्री राम जी महाराज! जो दुखों की धाम अविद्या माया है आप उसका वर्णन कीजिये, उसका स्वरूप कैसा है तथा वह किस प्रकार से विनास को प्राप्त होती है। आप कृपा कर उसके यथार्थ स्वरूप का दर्शन व वर्णन कर हमें उसका वोध करा दीजिये।

बोले राम सुनहु निमि वारे। कुटिल अविद्या जगत पसारे ॥
बिन अस्तित्व बिना कछु रूपा। लगत भई सम प्रबल अनूपा ॥

कुमार के प्रश्न पर, श्री राम जी महाराज बोले हे निमिनन्दन! सुनिये, यह कपटमयी अविद्या जो सम्पूर्ण संसार में फैली हुई है वह अस्तित्व व आकार–प्रकार से रहित अनुमेय तथा महान बल शालिनी, अनुभव में आती है।

जड़ अरु शून्य कहौं किमि गाई । जब कछु रूप न तासु दिखाई ॥
नित विपरीत ज्ञान विस्तारी। भ्रम स्वरूप अति दुष्ट गँवारी ॥

यह जड़ तथा शून्यवत है, मैं इसके स्वरूप का किस प्रकार कह कर गायन करूँ जब इसका कोई आकार–प्रकार दिखाई ही नहीं देता। परन्तु यह नित्य ही परमार्थ पथ के विपरीत ज्ञान का विस्तार करती है और भ्रम स्वरूपा अत्यन्त दुष्ट प्रकृति वाली अत्यधिक असभ्या है।

चार प्रकार ज्ञान विपरीता। देती बरबस जीवहिं जीता ॥
सो स्वरूप ताकर लखि परई । अनुभव महँ आवत जिय जरई ॥

यह जीवों को हठ पूर्वक वश में कर चार प्रकार से विपरीत ज्ञान प्रदान करती है अतएव वही इसके चार स्वरूप समझ आते हैं जिनका अनुभव आते ही हृदय संतप्त हो जाता है।

दो०–देह अपावन वस्तु महँ, पावन बुद्धी होय ।
हाड़ चाम मल मूत्र को, जा बश चाटत लोय ॥२४॥

इसका प्रथम स्वरूप यह है कि– यह अपवित्र शरीर में पवित्रता की बुद्धि बना देती है जिसके कारण संसारी–जन विषय सुख के विवश हो हडड़ी, चमड़ा, मल और मूत्र से भरी देह में आसक्त को चाटते फिरते हैं।

दुख कहँ सुख सम सब जग मानैं। दूसर रूप इहै बुध जानैं ॥
दुख परिणामी सिगरे भोगा। जेहिं वश सुखकर जानहिं लोगा ॥

इस अविद्या–माया के कारण, सम्पूर्ण संसार दुखों को सुखों के समान समझने लगता है अतः इसका दूसरा स्वरूप इसे ही बुद्धिमान लोग मानते हैं, जिसके वशीभूत हो सभी दुख परिणामी भोगों को (अन्त में दुख प्रदायक) सुखकर समझते हैं।

देह अनात्महिं आत्मा जाना। भूलै जीव चिदाचिद ज्ञाना ॥
तीसर रूप इहै तेहिं केरा। दुसह–दुखद बहु ताप बसेरा ॥

आत्मा से पृथक शरीर को ही आत्मा समझ कर जीव चेतन (आत्मा) और जड़ (शरीर) के ज्ञान को भूल जाता है यही इसका अत्यन्त असहनीय, दुख प्रदायक व अत्यधिक ताप प्रदाता तीसरा स्वरूप है।

जेहिं बस अहंकार ममकारा। जीवहिं होत अमित दुखकारा ॥
राग द्वेष ईर्ष्या मद मोहा। उपजत लोभ काम भय कोहा ॥

इस तृतीय प्रकार की अविद्या के कारण ही, जीवों में असीमित दुखदायी अहंकार और ममकार आ जाते हैं तथा राग, द्वेष, ईर्ष्या, मद, मोह, लोभ, काम, भय तथा क्रोध आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

चौथ स्वरूप अनित्यहिं नित्या। मानत जीव जगत करि सत्या॥
जेहिं बस बनै महा संसारी। प्रीति प्रतीति जगहिं किय भारी॥

इस अविद्या माया का चौथा स्वरूप यही है कि– इस मरण धर्मा संसार को संसारी जीव "नित्य" व "सत्य" समझते हैं जिस कारण वे महान संसारी बन जाते हैं और संसार में ही अतिशय प्रीति और प्रतीति किये रहते हैं।

दो०–भवासक्त बनि भवहिं महँ, फिरत अनन्तन कल्प।
सत चिद आनन्द रूप जिव, बँधा विषय सुख अल्प॥२५॥

इस प्रकार सच्चिदानन्द स्वरूप वाला जीव संसार में आसक्त होकर अनन्त कल्पों तक संसारी विषयों के क्षणिक सुख में बँधा हुआ संसार में भ्रमण करता रहता है।

चित्त त्याग बिन सत सत जोई। प्रबल अविद्या नाश न होई॥
चंचल मन मरि जावै जबहीं। मिटै अविद्या दुष्टा तबहीं॥

हे कुमार! मैं सत्य सत्य कहता हूँ कि बिना 'चित वृत्तियों' के त्याग हुए इस बलशालिनी अविद्या का विनाश नहीं हो सकता। जब चंचलता युक्त मन मृत्यु को प्राप्त (शान्त) हो जायेगा तभी यह दुष्टा अविद्या समाप्त हो सकती है।

अतुलनीय शक्ती मन केरी। अमित अचिन्त्य लेहिं हिय हेरी॥
मनुये यह संसार सजावा। मनुये चौरासी भुगतावा॥

परन्तु हे कुमार! आप हृदय में ऐसा समझ लीजिए कि– इस मन की शक्ति अतुलनीय, असीम और अचिन्तनीय है। इसी मन ने इस संसार का निर्माण किया है तथा चौरासी लाख योनियों में जीवों को भटकाने का श्रेय मन को ही प्राप्त है।

मनुये इन्द्र बनाय विराजा। भोग विभूति दियेउ सुख साजा॥
मनुये ताहि अहिल्या वासा। भेज दियो भग सहस सुखासा॥

इस 'मन' ने ही जीव को इन्द्र बनाकर सिंहासन में आसीन किया व सुख की सभी सामग्रियाँ, भोग और वैभव प्रदान किया है। पुनः मन ने ही देवराज इन्द्र को सुख की आसा से श्री अहिल्या जी के निवास में भेज कर, हजारों भग प्रदान किये हैं।

यथा वृक्ष सों पल्लव होई। तस मन कल्प दोष गुण जोई॥
बुद्धि विमोह रहै भ्रम सानी। संशय मग्न अनर्थ महानी॥

जिस प्रकार वृक्ष से पत्ते उत्पन्न होते है उसी प्रकार मन की कल्पना के द्वारा दोष और गुण दिखाई पड़ते हैं। मन के कारण ही बुद्धि भ्रम में सनी हुई विमोहित बनी रहती है तथा वह संशय ग्रस्त

होने से महान अनर्थों की हेतु बन जाती है।

मनुये दिव्य गुणन परकाशै। मनुये सूर्य चन्द्र महँ भाषै॥
बिनु मन सूर्य प्रकाश न करई। बिनु मन जगत कार्य नहिं चरई॥

यह 'मन' ही दिव्य गुणों को प्रकट करने वाला है, मन ही सूर्य और चन्द्रमा में दिखाई देता है, बिना मन के सूर्य प्रकाश नहीं कर सकता तथा संसार के कोई कार्य नहीं हो सकते।

दो०–शक्ति महा मन की गिनहु, कारण मुक्ती बन्ध।
कहहिं संत श्रुति टेरि करि, चंचल मन कर धन्ध॥२६॥

हे राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! यह मन महा शक्तिवान है ऐसा आप जान लीजिये। क्योंकि मन ही मोक्ष और बन्धन का कारण है, संतजन तथा श्रुतियाँ पुकार–पुकार कर चंचल मन के व्यापार का ऐसा ही वर्णन करती है।

मन चित एकहिं कर जिय जानी। आत्म विवेकी दृढ़ करि मानी॥
नाम मात्र तिन भेद लखाई। एक तत्व ज्ञानिन दरशाई॥

मन और चित्त को एक ही समझना चाहिए, आत्म–ज्ञानी जनों ने इस बात को दृढ़ता पूर्वक स्वीकार किया है। इनमें नाम–मात्र का ही भेद समझ आता है तथा ज्ञानियों को ये दोनों मन व चित्त एक ही तत्व दिखाई पड़ते हैं।

चित कर रूप वासनहिं जानी। जो जग अहै सकल दुख खानी॥
त्याग वासना चित को त्यागा। कहहिं विवेकी बुधि बड़ भागा॥

वासनाओं को ही चित्त का स्वरूप समझना चाहिए जो संसार के लिए सम्पूर्ण दुखों की खानि है तथा वासनाओं का त्याग ही चित्त का त्याग है ऐसा ज्ञानी, बुद्धिवादी एवं बड़भागी लोग बखान करते हैं।

तजि संकल्प विकल्पहिं मनुआ। जब थिर होय शुद्ध तेहिं भनुआ॥
तबहिं अमन मन कहहिं विवेकी। तबहिं मरा जानिय सत टेकी॥

जब मन सांसारिक संकल्पों और विकल्पों को छोड़कर स्थिर हो जाय तब उसे शुद्ध हुआ कहते हैं। तभी उस मन को ज्ञानीजन 'अमन' होना कहते हैं, उसी अवस्था में उस मन को मरा हुआ जानना चाहिए यह बात मैं सत्य और दृढ़तापूर्वक पुकार कर कह रहा हूँ।

चित्त निरोध बिना संसारा। मिटै कबहुँ नहिं सुनहु कुमारा॥
शास्त्र धर्म चह करै अनेका। नसै न जग भ्रम यह दृढ़ टेका॥

हे कुमार! सुनिये, बिना चित्त का निरोध हुये यह संसार कभी भी समाप्त नहीं हो सकता, चाहे वह अनेक शास्त्राचरण और धर्मानुष्ठान करता रहे, परन्तु उस जीव के संसार का भ्रम कभी नष्ट नहीं हो सकता, ये मेरे दृढ़ वाक्य हैं।

दो०–ताते चित्त विलीन करि, देवै जगत नसाय।
लहै परम पद धाम मम, सहजहिं श्रुति कह गाय॥२७॥

इसलिए जीवों का यही परम पुरुषार्थ है कि वे चित्त को मुझमें विलीन कर अपने संसार को नष्ट कर डालें तथा सहज ही 'परम पद' स्वरूप मेरे धाम को प्राप्त कर लें, ऐसा श्रुतियों ने बखान किया है।

जेहिं विधि जावै चित्त नसाई । मिटै दुरत्यय माया भाई ॥
वेद पुराण शास्त्र बहु भाँती । सुगम अगम वरणै दै शान्ती ॥

श्री राम जी महाराज कहते हैं कि– हे तात श्री लक्ष्मीनिधि जी! इस चित्त का विनाश जिस प्रकार हो जाय और अत्यन्त कठिन 'माया' (अविद्या) समाप्त हो जाय, इस हेतु वेदों, पुराणों एवं शास्त्रों ने विविध प्रकार से शान्ति प्रदायक कई सरल मार्गो का वर्णन किया है।

तहँ मैं वरणौ सुखद उपाया । सुगम अमोघ शक्ति बहुताया ॥
निज बल त्यागि अन्य बल त्यागी । बनि अशरण असमर्थ विरागी ॥

वहीं मैं इसका सुख प्रदायक, कभी विफल न होने वाला व महा शक्ति सम्पन्न सरल उपाय वर्णन कर रहा हूँ। जीव को चाहिये कि– वे अपना व अन्य का बल त्याग दे तथा अशरण, असमर्थ और आसक्ति रहित होकर,–––

मन क्रम वचन शरण मम लेई । अन्य उपाय आस तजि देई ॥
अशरण जानि निजाश्रय मानी । अभय करहुँ सब सों गहि पानी ॥

–––मन, वचन और कर्म से मेरी शरणागति ग्रहण करें तथा अन्य उपायों की आशा छोड़ दें, तब मैं जीव को निराश्रित समझ उनका हाथ पकड़कर उन्हें सभी भूतों से अभय कर देता हूँ।

मेटि सकल संशय भ्रम काहीं । मन थिर करौं कमल हृदि माहीं ॥
चित्त निरोध बिनहिं श्रम होई । जो नहिं यत्न अनेकन जोई ॥
ताते जिव मम शरणहिं आई । सकल विघ्न द्रुत देय भगाई ॥

उस समय मैं उनके सभी संदेहों और भ्रान्तियों को मिटाकर मन को 'हृदय कमल' में स्थिर कर देता हूँ, तब उनकी चित्त वृत्तियों का बिना परिश्रम सहज ही विनाश हो जाता है, जो अनेक उपायों से होता नहीं दिखाई देता। इसलिए 'जीवों' को चाहिये कि– वे मेरी शरण में आकर सभी विघ्न बाधाओं को शीघ्र ही दूर भगा लें।

दो०– गुरु माध्यम मम शरण गहि, बिन श्रम मो कहँ पाय ।
अभय होय सुख शान्ति लहि, परमानन्द समाय ॥२८॥

इस प्रकार जीव श्री गुरुदेव (आचार्य) के माध्यम से मेरी शरणागति ग्रहण कर बिना परिश्रम सहज ही मुझे प्राप्त कर निर्भय हो जायें तथा सुख व शान्ति प्राप्त कर परमानन्द में समा जायें।

सद्‌गुरु पाय भागवत धर्मा । सीखै सकल जानि तिन मर्मा ॥
आचार्यहिं जानै मम रूपा । सेवैं सब विधि भाव अनूपा ॥

श्री सद्‌गुरु देव भगवान को प्राप्त (वरण) कर, जीव सभी भागवत धर्मों को रहस्य सहित समझकर उनकी शिक्षा ग्रहण करे तथा श्री आचार्य देव को मेरा स्वरूप जानकर उनकी सभी प्रकार से सुन्दर भाव पूर्वक सेवा करे।

आत्म समर्पण करि छल छोरी। मानै मोहिं ते अधिक विभोरी ॥
प्रीति प्रतीति सुरीतिहिं तेरे। सेवै सदा अहं बिन केरे ॥

सभी प्रकार से निष्छल हो, आत्म समर्पण कर, प्रेम विभोर हुआ जीव अपने श्री सद्‌गुरु देव भगवान को मुझसे भी अधिक माने। इस प्रकार प्रीति, प्रतीति और सुरीति पूर्वक अहंकार रहित हो सदैव उनकी सेवा करता रहे।

मिलै सिद्धि पद निश्चय भाई। संशय भ्रम समुदाय नसाई ॥
जो पथ सद्‌गुरु देहिं बताई। तेहिं पथ चलै मोद उर छाई ॥

हे सीताग्रज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! तब उसे निश्चय ही सिद्धि प्राप्त हो जायेगी तथा उसके संशय और भ्रम समूह नष्ट हो जायेंगे। श्री सद्‌गुरु देव भगवान ने जिस मार्ग का उसे उपदेश किया है 'जीव' आनन्दित हृदय उसी मार्ग का अनुसरण करता रहे।

जस जस बढ़ अभ्यास महाना। अरु वैराग्य सकल गुणखाना ॥
तस तस मोर कृपा तेहिं केरा। मन थिर करै सत्य सत टेरा ॥

इस प्रकार जैसे–जैसे उसका महान अभ्यास तथा समस्त गुणों की खानि स्वरूप वैराग्य बढ़ता जायेगा वैसे–वैसे मेरी कृपा उसके मन को स्थिर करेगी, इस सत्य बात को मैं पुकार–पुकार कर कह रहा हूँ।

दो०–कुँअर कहेउ अभ्यास कस, देवहिं नाथ बताय।
पुनि विराग केहिं विधि करै, यह जिव जग रस छाय ॥२९॥

अपने प्रिय भाम श्री राम जी महाराज के उपरोक्त वचनों को श्रवण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे नाथ! आप कृपाकर यह बताइये कि– संसारी भोग विलास में आसक्त यह जीव किस प्रकार अभ्यास कर वैराग्य को धारण करे।

कहा राम सुनु सखा सुजाना। तुमहिं न जानन शेष प्रमाना ॥
चाहहु सुनन मोर मुख बानी। कहहुँ सुनिश्चिय विधिहिं बखानी ॥

तब श्री राम जी महाराज ने कहा– हे सर्वज्ञ सखे श्री लक्ष्मीनिधि जी! यह स्वयं सिद्ध है कि आपको कुछ भी जानना शेष नहीं है। फिर भी आप मेरे मुख विनिश्रित वचन ही सुनना चाहते हैं तो मैं अपनी निर्णीत सुन्दर विधि का बखान कर रहा हूँ।

मोहिं महँ मन थिर करिबे हेता। बार बार कर यत्न सचेता ॥
युत विवेक यत्नहिं कहँ ज्ञानी। कह अभ्यास शब्द गुण खानी ॥

जीवों को चाहिए कि– वे मुझमें अपने मन को स्थिर करने के लिए बार–बार सावधान होकर उपाय करें। हे सर्व गुणों की खानि कुमार! ज्ञान पूर्वक किये गये उपाय को ही ज्ञानीजन अभ्यास शब्द

से सम्बोधित करते हैं।

मम वाचक नामहिं नित जपई। तासु प्रभाव समुझि उर थपई॥
अर्थ भाव सह जपत निरन्तर। प्रगटत मोर रूप तेहिं अन्तर॥

'जीव' मेरे स्वरूप को प्रगट करने वाले मेरे नाम का नित्य जप करे तथा उस नाम के प्रभाव को समझ कर उसे हृदय में धारण किये रहे, इस प्रकार भाव में भरकर अर्थ पूर्वक निरन्तर जप करने से 'मेरा स्वरूप' उसके हृदय में प्रगट हो जाता है।

रूप ध्यान लीला कर गाना। प्रेमिन संग सदा रससाना॥
भावुक करै नित्य मन रोकी। कछु दिन गये होय बिन शोकी॥

पुनः मेरा भावुक भक्त, प्रेमियों के साथ आनन्द मग्न हुआ सदैव मेरे स्वरूप का ध्यान करते हुए अपने मन को सांसारिक विषयों से रोककर मेरे चरित्रों का नित्य गायन करे, तब वह कुछ दिन बीतने पर सभी प्रकार से शोक विहीन हो जाता है।

दो०—संत गुरू सेवा सरस, दुष्ट तर्क सब छोरि।
महा मंत्र जप करत नित, होय सिद्ध सुख बोरि॥३०॥

सभी व्यर्थ वादाविवाद को छोड़कर नित्य सन्तजनों व श्री सदगुरुदेव भगवान की रसमयी सेवा करते हुए महामन्त्र ('सीताराम') का जपकर, जीव 'सिद्ध' होकर आनन्द परिप्लुत हो जाता है।

कहौं त्रिसत्य नाम जप तेरे। मिलत सिद्धि अनुपम बिन देरे॥
प्रगट—मानसी पूजा मोरी। प्रेम भाव सों मम सुख बोरी॥

मैं त्रिवाचा सत्य कहता हूँ कि 'नाम जप' से अनुपमेय सिद्धि शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है। पुनः प्रेम व भाव पूर्वक मेरे सुख के लिये प्रगट और मानसिक रूप से मेरा पूजन,———

करैं भक्त बहु द्रव्यहिं त्यागी। मम हित हृदय प्रेम रस पागी॥
तुलसी पुष्प अरपि नित मोहीं। करै दण्डवत बहु जिय जोही॥

———भक्तजन अपने हृदय में प्रेम रससिक्त हो, मेरे लिए असीमित द्रव्य का लोभ छोड़कर करे। वह नित्य तुलसी दल और फूल अर्पित कर हृदय में मेरा चिन्तन करता हुआ मुझे त्रिकरण दण्डवत प्रणाम करे।

परम अकिंचन बनि अपराधी। दीन हीन असमर्थ अबाधी॥
स्तुति करै मोर बिन कामा। चाहै प्रेम भक्ति अभिरामा॥

वह स्वयं को अत्यन्त अकिंचन, अपराधी, दीन, हीन व सामर्थ्य रहित समझकर अवाधित रूप से निष्काम हो मेरी प्रार्थना करे तथा मात्र मेरी सुन्दर प्रेमाभक्ति की ही अभिलाषा करे।

षड् विधि शरण रीति हिय धारी। शरण मंत्र उचरै दृग वारी॥
मंत्र रत्न अनुसन्ध अमाना। नित्य करै मम जन मतिवाना॥

वह शरणागति पथ के छः प्रकारों (अनुकूलता का संकल्प, प्रतिकूलता का निषेध, रक्षा का

महद् विश्वास, अपनी रक्षा हेतु मेरा (श्री राम जी का) वरण, आत्म निवेदन व दैन्यता) को हृदय में धारण कर नेत्रों से अश्रु प्रवाहित करता हुआ मेरे शरण मंत्र (श्री रामः शरणं मम्) का उच्चारण करे। हे परम प्रज्ञ कुमार! मेरा भक्त अमानी बन कर मन्त्र–रत्न (श्री आचार्य द्वारा प्राप्त द्वितीय रहस्य "श्रीमद्रामचन्द्र चरणौ शरणं प्रपद्ये, श्रीमते राम चन्द्राय नमः") का नित्य अनुसंधान करे।

दो०– चरम मंत्र मम उच्चरित, सबहिं अभय पद दानि ।
अनुसन्धै प्रत्यय सहित, रक्षक मो कहँ मानि ॥३१॥

सम्पूर्ण चराचर प्राणियों को 'अभय पद' प्रदान करने वाले मेरे द्वारा उच्चारित किये गये चरम मंत्र ("सकृदेव प्रपन्नाय तवाऽस्मीति च याचते, अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतत् व्रतं मम") का उच्चारण करता हुआ जीव दृढ़ विश्वास पूर्वक मुझे रक्षक समझकर उसका अनुसंधान करें।

कथा श्रवण कीर्तन अनुरागी । होइ अमान मानद बड़भागी ॥
बनि अति छोट सहिष्णु अथोरा । संत संग नित रसे विभोरा ॥

वह बड़भागी भक्त अमानी होकर सभी को सम्मान देते हुए मेरी कथा का श्रवण व कीर्तन अनुराग पूर्वक करे। वह सबसे छोटा व अत्यन्त सहनशील बनकर, नित्य ही विभोर हो संतों का संग करता रहे।

करत परस्पर चरचा मोरी । हिय सों देवै जस रस तोरी ॥
फलासक्ति अह मम बिन साधक । करि मोहि लक्ष्य बनै अवराधक ॥

वह आपस में मेरा गुणानुवाद करता हुआ संसारी आनन्द (विषय–सुख) को हृदय से त्याग दे। साधक मुझे उद्देश्य बनाकर फल की आसक्ति, अहंकार व ममकार विहीन हो मेरा सेवक बन जाय।

यहि प्रकार कर सब अभ्यासा । जीवन बितवै मम पद आसा ॥
दीर्घकाल बिन अन्तर केरे । सादर सेवत सिधि पद हेरे ॥

इस प्रकार वह उपर्युक्त वर्णित सभी साधनों का अभ्यास करता हुआ मेरे 'परम पद' की कामना से जीवन यापन करता रहे तब बहुत समय तक आदरपूर्वक निरंतर प्रयास करते रहने से उसे सिद्धि–पद प्राप्त हो जायेगा।

मोरी कृपा चित्त थिर होई । बिनु श्रम नसै अविद्या सोई ॥
त्रिगुणातीत बनै बड़ भागी। लहै परम पद प्रेमहिं पागी ॥

मेरी कृपा से साधक का चित्त स्थिर हो जाने पर बिना परिश्रम सहज ही वह अविद्या (माया) विनष्ट हो जायेगी तथा परम सौभाग्यशाली वह साधक तीनों गुणों (सत, रज और तम) से पार होकर प्रेम में पगा हुआ मेरे परम पद प्राप्त को प्राप्त कर लेगा।

मम अपरोक्ष ज्ञान तेहिं होई । एकान्तिक सुख शान्ति समोई ॥
शरण होय अभ्यास प्रयोजन । किमि अनिवार्य लगै कोउ खोजन ॥
सो मैं तुम सन कहौं कुमारा। सुनहु धरहु निज हृदय मँझारा ॥

उस समय उसे मेरा अपरोक्ष ज्ञान हो जाता है तथा वह मेरे एकान्तिक सुख और शान्ति में सराबोर हो जाता है। हे कुमार! कोई यह जिज्ञासा कर सकता है कि– मुझे प्राप्त करने हेतु मेरी शरण आना और अभ्यास करना क्यों अनिवार्य है? इसका समाधान मैं आप से कहता हूँ, उसे आप श्रवण कीजिये और अपने हृदय में धारण कर लीजिए।

दो०–नित निरपेक्षोपाय मोहिं, जानहु चेतन हेत ।
कृपा सार विग्रह सुखद, सब कहँ आनँद देत ॥३२॥

आप मुझे जीवों के लिए नित्य, निरपेक्षोपाय, (उपायों की अपेक्षा से रहित) कृपा का सुखदायी सारभूत विग्रह व सभी को आनन्द प्रदान करने वाला समझिये।

सर्व लोक शारण्य सुदाता। मोकहँ कहत सुदेव विधाता ॥
तदपि अपेक्षा शरणहिं केरी । मम हिय भीतर नाहिं बसेरी ॥

यद्यपि मुझे सम्पूर्ण लोकों का आश्रय प्रदान करने वाला, परम दानी, श्रेष्ठ देवता और सर्वेश्वर कहते हैं तथापि जीवों की रक्षा करने के लिए मेरे हृदय में शरणागति की अपेक्षा का निवास नहीं है।

कारण एक अहे तेहिं माहीं । चेतन झलक शरण बिन नाहीं ॥
चेतन रूप प्रत्यक्ष दिखावै । तेहिं ते पथ प्रपत्ति श्रुति गावै ॥

परन्तु सभी जीवों की रक्षा न करने में मात्र यही कारण है कि– शरणागति ग्रहण किये बिना जीवों का यथार्थ स्वरूप प्रगट नहीं होता। शरणागति मार्ग में जीवों का स्वरूप भगवद्दास होना प्रत्यक्षतया दिखाई पड़ता है इसीलिए मेरी (परम पद की) प्राप्ति हेतु श्रुतियों ने शरणागति मार्ग का गायन किया है।

दूजे जो बिनु शरणहिं लीने । देउँ परम पद प्रेम प्रवीने ॥
तो जड़ चेतन सब अधिकारी । लहहिं मोर पद भव भय हारी ॥

हे प्रेम प्रवीण कुमार श्री लक्ष्मी निधि जी! दूसरा कारण यह है कि– यदि मैं जीवों को बिना शरण में आये हुए ही अपना परम पद दे दूँ तो सम्पूर्ण चराचर संसार ही अधिकारी हो जाने के कारण, बार–बार जन्म लेने का भय मिटाने वाला मेरा 'परम पद' प्राप्त कर लेगा।

मिटै तबहिं लीला वीभूती। मोर अनादि परम दृढ़ बूती ॥
तेहिं ते जानन हित अधिकारी। चेतन रूप लखावन वारी ॥

उस स्थिति में मेरी शाश्वत, महान, दृढ़ और बलवती लीला विभूति (एकपाद–विभूति) समाप्त हो जायेगी। इसलिए परम पद के वास्तविक अधिकारी की पहचान और जीव (चेतन) के सहज स्वरूप (दासत्व) को प्रगट करने वाली–––

दो०–प्रपत्ति महा महिमा कही, वेद पुराणन गाय ।
नहिं उपाय हित जानिये, मैं सत स्वयं उपाय ॥३३॥

–––'शरणागति' की महान महिमा का वेदों व पुराणों ने गायन किया है। किन्तु उसे उपायतया नहीं समझना चाहिये, यथार्थतः अपनी प्राप्ति के लिए स्वयं मैं ही उपाय हूँ।

ताते जीव शरण पथ होई। आपन रूप प्रकाशै जोई ॥
मम पद कृपा उपायहिं जानी। गति अनन्य आकिंचन मानी ॥

इसलिए जीव (चेतन) शरणागति मार्ग में चलता हुआ अपने स्वरूप को प्रगट कर ले, प्रतिक्षण मेरी कृपा को उपाय समझे तथा स्वयं को परम अकिंचन व मुझे ही अपनी गति जाने।

लहै परम परमारथ रूपा। प्रेम भावमय अकथ अनूपा ॥
शुद्ध शरण पथ हित अभ्यासा। प्रीति प्रतीति सुरीति सुदासा ॥

इस प्रकार वह प्रेमस्वरूप, भावमय, अकथनीय व अनुपमेय परमार्थ पद प्राप्त कर लेता है। शुद्ध शरणागति के लिए मेरा सेवक (जीव) प्रीति, प्रतीति और सुरीति पूर्वक निरन्तर अभ्यास करता हुआ———

नित्य करै मम रूप प्रकाशन। हेतु प्रीति वर्धन मम शासन ॥
बार बार बिन किये कुमारा। रुचि न बढ़ै मम हेतु अपारा ॥

———मेरे प्रति प्रेम बढ़ाने और मेरे निर्देशानुसार चलने के लिए मेरे स्वरूप का ध्यान नित्य करें। क्योंकि हे कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! निरन्तर अभ्यास के अभाव में मेरी प्राप्ति की तीव्रतर इच्छा वृद्धिंगत नहीं होती।

बिन रुचि मोर मिलब नहिं होई। ताते कर अभ्यासहिं लोई ॥
अह मम जौ लौं जाय न नासी। तौ लौं यत्न करै अभ्यासी ॥

बिना त्वरा के मेरी प्राप्ति नहीं होती इसलिए जगज्जीवों को अभ्यास करना चहिये। जब तक उनके अहंकार और ममकार विनष्ट न हो जाँय तब तक वे उपर्युक्त साधनों का प्रयत्न पूर्वक अभ्यास करते रहें।

दो०—अहंकार ममकार दोउ, जबहीं होवैं नाश।
हृदय बैठि मैं स्वयं तब, लीला करउँ प्रकाश ॥३४॥

जब मेरी प्राप्ति के दोनो विरोधी जीव के अहंकार और ममकार विनष्ट हो जाते हैं तब स्वयं मैं उनके हृदय में बैठकर अपनी लीला का प्रकाश (प्राकट्य) करने लगता हूँ।

सुख महँ देवहुँ तन मन बोरी। वरण करौं हठि ताहि विभोरी ॥
हौं अपनायो सब विधि जबहीं। जीति लियो मोकहँ सो तबहीं ॥

तथा व्याकुल हो हठपूर्वक उसका वरण कर मैं उसके शरीर और मन को सुखों से आपूरित कर देता हूँ। इस प्रकार जब मैं उसे सभी प्रकार से अपना बना लेता हूँ तब वह (जीव) मुझे अपने वशीभूत कर लेता है।

सब साधन साधन अभिमाना। छूटन हेतु शास्त्र किय गाना ॥
निज साधन बल जब छुटि जाई। साधन करत करत श्रुति गाई ॥

शास्त्रों ने गायन किया है कि– सभी प्रकार के साधनों का अनुष्ठान, साधनों के अभिमान को

छुड़ाने के लिए ही किया जाता है। श्रुतियों ने वर्णन किया है कि– साधन करते करते जब स्वयं के साधन का बल समाप्त हो जाता है –––

तब मम कृपा आस हिय जागै । तबहिं शरण पथ शुद्ध अदागै ॥
केवल कृपा कोर आधारा । गति अनन्य समुझत निस्तारा ॥

–––तभी जीव के हृदय में केवल मेरी कृपा का भरोसा जागृत होता है, यही शुद्ध व निरुपाधिक शरणागति है। एकमात्र मेरी कृपा दृष्टि का अवलम्बन ही जीव के लिये अनन्य गति है ऐसा समझने से ही उसका उद्धार है।

मम नामादिक साधन सारे । साध्य बने रस वर्धन वारे ॥
परम कृपा जब जोवै जीवा । सनैं दरश सुख भाव अतीवा ॥

उस समय मेरे नाम, रूप, लीला व धाम आदि सम्पूर्ण साधन, स्वयं रस की वृद्धि करने वाले साध्य बन जाते हैं। जब जीव सर्वत्र मेरी महान कृपा का ही दर्शन करते हैं तब वे असीम भाव विभोर हो सर्वत्र मेरे दर्शनानन्द में आत्मसात हो जाते हैं।

यदपि कृपा सब दिन जिव साथा । लागी रहै सुनहु निमि नाथा ॥
तदपि दरश नहिं पावै कोई । जब लौं अह मम जाय न खोई ॥
मम कृत लोग स्वकृत करि मानैं । ता फल शोक सिन्धु नित न्हानै ॥

हे निमिकुल नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी! यद्यपि मेरी कृपा जीव के साथ सदैव लगी रहती है तथापि जब तक उनके हृदय से उनके अहंकार और ममकार समाप्त नहीं हो जाते तब तक उस कृपा का कोई भी दर्शन नहीं प्राप्त करता। संसारी जीव मेरे किये हुए कार्यो को अपने द्वारा किया हुआ मानते हैं जिसके परिणाम स्वरूप शोक के सागर में नित्य अवगाहन करते रहते हैं।

दो०–याते अह मम नाश हित, सब साधन श्रुति गाय ।
लखि अधिकारी बिनु अहं, लेहुँ तुरत अपनाय ॥३५॥

अतएव अहंकार और ममकार को समाप्त करने के लिये ही श्रुतियों ने सभी प्रकार के साधन करने का निर्देश दिया है। साधनों का अनुष्ठान करते करते जब 'जीव' अहंकार व ममकार विहीन हो जाता है तब अधिकारी समझकर मैं उसे शीघ्र ही अपना लेता हूँ।

सुनि निमिकुँअर सहज सुख सानी । हाथ जोरि बोले मृदु बानी ॥
नाथ जीव सब विषय अधीना । काल अनादि मोह मति लीना ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के परम ज्ञानमय वचनों को श्रवण कर निमिकुल राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी सहज ही सुख में सराबोर हो गये पुनः हाथ जोड़कर कोमल वाणी से वे बोले– हे नाथ! यह जीव तो अनादि काल से विषयों के आधीन और विमोहित बुद्धि वाला है।–––

ते किमि परम विरागहिं पाई । सुखी होहिं प्रभु भव बिसराई ॥
कहा राम तुम सहज विरागी । जन्महिं ते सब जग रस त्यागी ॥

–––हे नाथ! तब वह किस प्रकार संसार को भूल, विषयों से विरक्त होकर सुख का अनुभव कर सकेगा। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के वचनों को श्रवण कर श्री राम जी महाराज ने कहा– हे कुमार! आप तो सहज ही वैराग्यवान हैं तथा जन्म–काल से सभी संसारी विषयों का त्याग किये हुए हैं।

तुमहिं न संशय मोह न माया। तदपि कहौं मैं सम्प्रति गाया॥
जग दुख दोष रूप प्रतिकूला। सदा अनित्य अमंगल मूला॥

यद्यपि आपको न तो संदेह है, न मोह और न ही आप माया से ग्रसित हैं तथापि इस समय मैं आपके प्रश्न का समाधान कर रहा हूँ। यह संसार दुख व दोष स्वरूप, मेरी प्राप्ति का विरोधी, सदैव अनित्य और अमंगलों का मूल है।

हृदय विचार करहिं जब लोगा। गहरे पैठि बुद्धि संयोगा॥
हेय दृष्टि नित नित तेहिं देखत। रस रस जग रस मिटै अलेखत॥
त्रिगुणतातीत मोर अनुरागी। बनै स्वभाविक परम विरागी॥

जब जगज्जन अपने हृदय में बुद्धि के संयोग से गहनतया विचार करते हैं और नित्य प्रति संसार को निकृष्ट दृष्टि से देखते हैं तब अवर्णनीय दुखदायी यह भव–रस धीरे धीरे समाप्त हो जाता है। इस प्रकार मेरा प्रेमी स्वाभाविक ही तीनों गुणों से परे व परम विरागी हो जाता है।

दो०–आयू जाति शरीर सुख, भोग भले जग केर।
छनिक दुसह दुख दोषमय, छिन छिन जिव हिय हेर॥३६॥

उस समय आयु, जाति, शारीरिक सुखों व सांसारिक उत्तम भोगों को जीव अपने हृदय में प्रत्येक क्षण अनित्य, असहनीय दुखदायी व दोष स्वरूप समझने लगता है।

जेहिं शरीर कहँ जग के लोगा। गिनै आत्म करि कुबुधि प्रयोगा॥
ताकहँ सुनहु यथा बतराऊँ। तेहिं कर तत्व रूप दरशाऊँ॥

हे राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! जिस शरीर को दुर्बुद्धि के संयोग से (भ्रमित बुद्धि के कारण) संसारी जन आत्मा के समान प्रिय समझते हैं। वह जैसा है, उसका विवेचन आप सुनें– मैं उसके तात्विक रूप का आपको दर्शन करा रहा हूँ।

पर्वत यथा पषाण पषाणा। बन्यो अहै नहिं और लखाना॥
वृक्ष मध्य जिमि काठहिं काठा। और वस्तु नहिं कवनिहुँ भाठा॥

जिस प्रकार पर्वत, केवल पत्थर ही पत्थर से बने रहते हैं तथा पत्थरों के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु उनमें नहीं दिखाई देती, वृक्षों में काष्ठ ही काष्ठ (लकड़ी ही लकड़ी) है, अन्दर बाहर उसमें लकड़ी के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नही रहती है।

तिमि तन रक्त माँस अरु चामा। अस्थि आदि केवल दुख धामा॥
जस मिट्टी कर बनत खिलौना। रूप कुरुप यथा मति गौना॥

उसी प्रकार दुख के धाम इस शरीर, में केवल रक्त, माँस, चमड़ा और हड्डी आदि ही है। जिस प्रकार मिट्टी से विभिन्न प्रकार के खिलौने बनते हैं तथा हमारी बुद्धि के अनुसार वे सुन्दर और असुन्दर दिखाई देते हैं।

केवल मिट्टिहिं किये विचारा। पुतली पुतला सब व्यवहारा॥
सुन्दर और असुन्दर ताता। भ्रम स्वरूप बुद्धिहिं भरमाता॥

किन्तु विचार करने पर वे सभी केवल मिट्टी ही होते हैं, उनके पुतली व पुतला आदि आकार प्रकार तो व्यावहारिक हैं। हे तात् श्री लक्ष्मीनिधि जी! उनकी सुन्दरता और असुन्दरता मिथ्या–ज्ञान के कारण बुद्धि को भ्रमित करने वाली होती है।

दो०–तैसेहिं जानहु यहि तनहिं, भ्रम स्वरूप मतिमान।
नर नारी युग रूप महँ, हाड़ माँस चर्मान॥३७॥

श्री राम जी महाराज कह रहे हैं कि– हे परम बुद्धिमान कुमार! उसी प्रकार आप इस शरीर को भ्रम–स्वरूप, हड्डी, माँस और चमड़े से निर्मित पुरुष और स्त्री दो प्रकार के आकार ही समझिये।

रूप कुरूप दूनहूँ माहीं। अस्थि चर्म तजि और न पाहीं॥
नव छिद्रन सो नित तन तेरे। निकसत मल सोचहु हिय हेरे॥

इसके सुन्दर और कुरूप (असुन्दर) दोनों रूपों में हड्डी व चमड़े के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। हे राज कुमार! किंचित, ह्रदय में विचार तो कीजिये, कि– इस शरीर के नौ छिद्रों (दो नेत्र, दो कान, मुख, नासिका के दो छिद्र, गुदा और लिंग) से नित्य ही मल (मैल) निकलता रहता है।

रोम रोम ते नित दुर्गन्धा। निकसत देखहु तेहि कर धंधा॥
स्वच्छ वस्त्र मलमय सब होहीं। देहिं कुवास जान जिव जोहीं॥

पुनः इस शरीर के व्यापार को तो देखिये कि– इसके प्रत्येक रोम से नित्य दुर्गन्ध निकलती रहती है। साफ सुथरे वस्त्र इसके संयोग से मलमय (गंदे) हो जाते हैं तथा दुर्गन्ध देने लगते हैं ऐसा सभी जीव देखते और जानते है।

देखहु लहि शरीर कर संगा। मलिन होत चन्दन शुभ रंगा॥
ताते मल स्वरूप यह देही। ठहरति किये विचार सनेही॥

देखिये तो, इस शरीर का संग प्राप्त कर लेने से चन्दन का सुन्दर रंग भी (कुछ फीका) मलिन पड़ जाता है। इसलिए हे प्रिय कुमार! विचार करने पर यह शरीर मल–स्वरूप ही सिद्ध होता है।

यह तन तात चाम कर थैला। जेहिं महँ भरा बहुत विधि मैला॥
तेहिं ते सखा कवन अनुरागू। यहिं सो करै जीव बड़ भागू॥

हे तात! यह शरीर तो चमड़े से बना हुआ थैला है जिसमे विविध प्रकार का मल (गन्दगी) भरा हुआ है। अतः हे सखे! ऐसे गन्दे शरीर से कोई सौभाग्यशाली जीव क्यों कर प्रेम करें अर्थात् शरीर से अनुराग नहीं करना चाहिये।

दो०– संज्ञक कृमि बिट भस्म को, अति असार दुख रूप ।
जन्म मरण धर्मा सतत, रोग रँग्यो निमि भूप ॥३८॥

हे निमिकुल नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी! यह शरीर कीट, मल व राख के परिणाम से युक्त (मृत्यु के पश्चात् ऐसे ही पड़ा रहने पर कीड़ा हो जाता है, जीवों के खा लेने पर उनका मल बन जाता है और जला देने पर राख बन जाता है) अत्यन्त सारहीन, दुख–स्वरूप, जन्म और मृत्यु के धर्म से सदैव बँधा हुआ तथा विविध व्याधियों (रोगों) से रँगा हुआ है।

भय स्वरूप शापहु अधिकारी । पर वश मलिन पतित सविकारी ॥
पंच भूत निर्मित मल पूरा । मास पिण्ड दुख दायक भूरा ॥

यह शरीर भय–रूप, तिरस्कार के योग्य, दूसरों (इन्द्रियों) के आधीन, कपट परिपूर्ण, सर्वथा पतित, विकारों से युक्त, पंच महाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश व वायु) से निर्मित, मल प्रपूरित व अत्यन्त दुखदायी मास का पिण्ड है।

घृणा रूप गुनि कुँअर शरीरा । त्यागहिं आत्म भाव मति धीरा ॥
नर शरीर नश्वर के लागी । करहिं राग रिस वृथा अभागी ॥

हे कुमार! इस शरीर को घृणा के योग्य समझ, प्रज्ञजन इसके प्रति आत्म–भाव का त्याग कर देते हैं अर्थात् इस पर अनुरक्ति नहीं रखते। किन्तु भाग्यहीन (अभागी) मनुष्य ही, इस नाशवान शरीर के लिए व्यर्थ सांसारिक आसक्ति और द्वेष किया करते हैं।

देह प्रीति रिस रागहिं जीती । जग सो होवै जीव अभीती ॥
चर्म सार केवल यह देही । भयमय दुखमय जानहु तेही ॥

अतः शरीर के प्रति प्रेम, द्वेष और आसक्ति को जीतकर जीव संसार से अभय हो जाता है। यह शरीर केवल चमड़े के द्वारा बना हुआ है, इसे भय व दुख का स्वरूप ही समझिये।

भगत सुभगवत सेवन योगा । अहै भजन हित कह बुध लोगा ॥
नर शरीर लहि कहौं यथारथ । साधै जीव सुभग परमारथ ॥
नहिं तौ वृथा विषय के हेता । खोयो जन्म मूढ़ मति चेता ॥

इस शरीर के सम्बन्ध में विज्ञजनों का निर्देश है कि– यह शरीर भगवान व भागवतों की सुन्दर सेवा के योग्य तथा भजन करने के लिए ही है। हे कुमार! मेरा सत्य कथन है कि– मनुष्य शरीर प्राप्त कर जीव अपने सुन्दर परमार्थ का शोधन कर ले अन्यथा चकित बुद्धि जीव अपने जीवन को व्यर्थ ही विषयों के लिए गँवा देते हैं।

दो०– दुख परिणामी भोग सब, ताते दुख के रूप ।
भ्रमवश सुखकर गिनहिं जन, परे विषय के कूप ॥३९॥

हे कुमार! संसार के सभी भोग अन्ततः दुखदायी होने से दुख–स्वरूप हैं, परन्तु विषय के कुएँ में गिरे हुए लोग मिथ्या–ज्ञान के कारण उन्हें सुखदायी समझते हैं।

यथा खाज खजुआवत माहीं । सुखमय भाषत छोड़ि न जाहीं ॥
जबहिं जरनि नख विष कहँ पाई । बढ़्यो घाव अतिशय दुखदाई ॥

जिस प्रकार खाज (खुजली का रोग) खुजलाने में सुखदायी प्रतीत होती है और छोड़ी नहीं जाती परन्तु जब नाखून के विष को पाकर उसकी जलन अतिशय दुखदाई घाव बन जाती है।

तब पछिताय वृथा खजुआयो । पीटत शिर दुख भयो महायो ॥
सूख हाड़ चाखत जिमि श्वाना । नीक लगै निज रक्त न जाना ॥

उस समय जीव अपना शिर पीटता हुआ पछताता है कि–हाय, मैंने इसे व्यर्थ ही खुजलाया था, अब यह महान कष्टदायी हो गयी। पुनः जिस प्रकार कुत्ता सूखी हड्डी चबाते हुए सोचता है कि– अहा, यह कितनी स्वादिष्ट है, वह यह नहीं समझता कि– यह स्वाद मेरे ही खून का है।–––

गाल फट्यो जब हाड़ प्रसंगा । घाव दुखद तव भयो कुअंगा ॥
कीटहुँ परे दुखी अति भयऊ । तदपि न ज्ञान तासु जिय जयऊ ॥

–––किन्तु सूखी हड्डी के चुभ जाने से जब उसका गाल अन्दर से फट (कट) जाता है तब उसके मुख में दुखदायी घाव हो जाता है व उसमें कीड़े भी पड़ जाते हैं, यद्यपि उस समय वह अत्यन्त दुखी तो होता है तथापि उसके हृदय में अपनी करनी का ज्ञान उत्पन्न नहीं होता।

तैसहिं दशा नरन की जानो । दुख भोगत पर रहत अयानो ॥
माछी यथा भोग के हेतू । परै सर्करा पाग सचेतू ॥

हे कुमार! आप, ठीक वही स्थिति मनुष्यों की भी समझिये, अपने किये हुये कर्मो के कारण वे दुख तो भोगते हैं परन्तु उससे अज्ञानी (अनजान) बने रहते हैं। जैसे मक्खी मिठाई के लोभ से सावधान होते हुये भी शक्कर के शीरे में गिर जाती है।–––

दो०–लिपटि मरै तैसहिं जगत, कूदत विषयन माहिं ।
भोगत दुःख अनेक विधि, लखि चौरासी पाहिं ॥४०॥

–––पुनः उसमें लिपटकर मर जाती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण संसार विषय सुख के लोभ में फँसकर चौरासी लाख योनियों में अनेक प्रकार के दुखों को भोगता फिरता है।

कर्ण विषय फँसि मृग मरि जाई । वीणा नाद भई दुख दाई ॥
जिह्वा रस विषयी फँसि मीना । जीवन तजै तलफि अति दीना ॥

कान के विषयानन्द (शब्द श्रवण) में फँसकर मृग (हरिण) मर जाता है, उसके लिए वीणा की झनकार अतिशय दुखदाई हो जाती है। मछली अपनी जिह्वा रस के विषय (स्वाद) में फँसकर अत्यन्त दीन हो तड़पती हुई अपना जीवन त्याग देती है।

विषय गंध रस रसा सुभृंगा । कमल कोष महँ मरे अचंगा ॥
रूप ज्योति जस जरै पतंगा । जानइ जग सो सकल प्रसंगा ॥

भ्रमर सुगन्ध के विषयानन्द में लुब्ध हुआ कमल की कली में फँसकर अपने प्राण त्याग देता

है। रूप के विषय (दर्शन) में आसक्त होने से प्रकाश को देखकर जिस प्रकार फतिंगा (शलभ) जल कर मर जाता है यह प्रसंग सम्पूर्ण संसार को ज्ञात ही है।

करिनि अलिंगन करिबे हेता। काम विवश गज भयो अचेता॥
परवश ह्वै भूखे मरि गयऊ। विषय प्रबल अतिशय दुख दयऊ॥

हाथी पकड़ने वाले गड्ढा खोदकर उसे घास पत्तों से ढँककर उसके ऊपर बनावटी हथिनी बना कर खड़ी कर देते हैं, काम (स्पर्श सुख) के विवश हो हाथी जब हथिनी का आलिंगन करने के लिए व्याकुल हो उसके समीप आता है तो वह गड्ढा में गिर जाता है तब पकड़ने वाले उसे भूखा रखकर, अपने वश में कर लेते हैं, जिससे वह हाथी, प्रबल स्पर्श–विषय के वशीभूत हो भूख व अन्य प्रकार के महान दुख प्राप्त करता है।

एक विषय वश ये सब प्रानी। त्यागे तनहिं मोह मति ठानी॥
पंच विषय वश नर अति कामी। कस नहि विनशै जग रस भ्रामी॥

ये सभी जीव एक–एक विषय के ही वशीभूत होने से बुद्धि के विमोह में फँसकर शरीर त्याग देते हैं, किं पुनः मनुष्य तो पाँचों विषयों के आधीन, अत्यन्त कामी प्रवृत्ति वाला व संसारी रस में रमने वाला है वह इनमें आसक्त होकर कैसे नष्ट नहीं होगा?

दो०– ताते भोग कुरोग सम, दुःख रूप जिय जानि।
छोड़ि चतुर नर भजहिं मोहिं, परम सुखद गुण खानि॥४१॥

इसलिए अपने हृदय में, संसारी भोगों को "आत्म विनास कारी" व्याधि के समान दुखदायी समझ, इनका परित्याग कर, बुद्धिमान मनुष्य, परम सुखदायक व गुणों की खानि मेरा भजन किया करते हैं।

भव रस सुख सीमा प्रिय नारी। तेहि पीछे जग अन्ध विकारी॥
तासु शरीर विवेचन करऊँ। नरक रूप गिन कोउ नहिं वरऊँ॥

संसारी आनन्द की पराकाष्ठा सुन्दर स्त्री होती है जिसके पीछे सम्पूर्ण संसार काम विकार से ग्रस्त हो अन्धा हो जाता है, हे राज कुमार! मैं उसके शरीर का यथार्थ वर्णन कर रहा हूँ, जिससे उसे नरक के समान घृणास्पद समझकर, उसमें कोई भी आसक्त न हो।

तात नारि विष बेलि सुहाई। परसत प्राण हरै हठियाई॥
विष कन्या सम भोगत माहीं। हरै प्राण देवति दुख दाही॥

श्री राम जी महाराज कहते हैं कि– हे तात श्री लक्ष्मीनिधि जी! 'स्त्री' विष की सुन्दर बेलि (जहरीली लता) है जो स्पर्श करते ही हठपूर्वक प्राणों का अपहरण कर लेती है। वह भोग–काल में सुखदायी प्रतीत होती है किन्तु विष–कन्या के समान अन्ततः दुखों में जलाकर प्राणों का हरण कर लेती है।

बंसी सम जानहु पुनि बामा। बेधति मन मीनहिं दुख धामा॥
जानहु नारिहिं सरि वैतरणी। दुखद जीव कहँ श्रुति सब बरणी॥

पुनः 'स्त्री' को बंसी (मछली फँसाने वाला काँटा) के समान समझना चाहिये जो अत्यन्त दुखदायी है और मन रूपी मछली को बेधती (छेदती) रहती है। स्त्रियों को जीवों के हेतु, वैतरणी नदी के समान दुख प्रदायिका समझना चाहिए ऐसा कहकर सभी श्रुतियों ने उनका वर्णन किया है।

ज्ञान भक्ति जे बालक बाला। डाइन सम खावति बनि काला॥
कामिनि मद्य भरी बड़ि हाँड़ी। सब कहँ करति मदीली चाँड़ी॥

यह स्त्री ज्ञान और भक्ति रूपी बालक व बालिकाओं को 'डाइन' (अपने बच्चों को खा लेने वाली पिशाचिनी) बनकर काल के समान खा जाती है। स्त्री शराब से भरी हुई बड़ी हण्डी (बड़ा पात्र) है जो सभी को अपने तीव्र प्रभाव से अत्यधिक मतवाला बना देती है।

दो०—काम रूपिणी काम प्रद, कामिनि काम सहाय।
सब शुभ कर्मन नाशिनी, मोक्षहिं देय बहाय॥४२॥

स्त्री वासना की प्रतिमूर्ति व काम वासना प्रदान करने वाली है जो कामदेव की सहायता से सभी शुभ कर्मो का विनाश कर मुक्ति से दूर कर (जन्म और मृत्यु के चक्कर में बाँध) देने वाली होती है।

नारि अविद्या रूप कुमारा। सबहिं फेंकि भव कूपहिं डारा॥
रवि कर वारि प्रगट जग माहीं। देय दु:ख मृग जीवन काहीं॥

हे कुमार! स्त्री, अविद्या (माया) स्वरूपिणी है जो जीवों को हठात् संसार रूपी कुयें में गिरा देती है। वह संसार में मृग–मरीचिका (रेत का जल) बनकर हिरण रूपी जीवों को दुख प्रदान करती रहती है।

धार चतुर्दिक वर तरवारी। परशत नारि देय दुख भारी॥
हाड़ माँस पर चाम ओढ़ाई। पुनि विरञ्चि भरि वायु बनाई॥

स्त्री अत्यन्त तीक्ष्ण धार से युक्त चारो दिशाओं से वार कर घायल कर देने वाली तलवार है, जो स्पर्श करते ही महान दुख प्रदान करती है। श्री ब्रह्मा जी ने हड्डी और माँस को चमड़े से ढँककर व उसमें वायु भरकर इसका निर्माण किया है।

माँस पुतरिया कामिहिं प्यारी। ताकहँ जग कहि नारि पुकारी॥
सिर महँ केश जमे जिमि घासा। मृद पिण्डा सम पुनि सिर भाषा॥

कामी पुरुषों को प्रिय लगने वाली माँस की पुतली को ही संसार 'स्त्री' कहकर पुकारता है। उसके शिर में बाल उसी प्रकार उगे हैं जैसे भूमि में घास अन्यथा उसका सिर मिट्टी के पिण्ड द्धगोलेद्ध के समान ही दिखाई देता।

भीतर मज्जा भरा सरक्ता। वृथा मनुज जेहिं महँ आसक्ता॥
वहै केश नारी सिर माहीं। सिर उतरे जेहिं छूवत नाहीं॥

स्त्री के शिर के भीतर रक्त से सना हुआ 'मज्जा' ही भरा है जिसमें मनुष्य व्यर्थ ही आसक्त होते हैं। उसके (स्त्री के) शिर में वही बाल रहते हैं जिन्हे सिर से उतर जाने पर लोग छूते तक नही बल्कि छू जाने पर अशुद्ध हो जाते हैं।

दो०–बिखरे बाल न शोभती, नारि प्रथम जस सोह।
क्रोध भरी औरहु अफब, दायक भ्रम अरु मोह ॥४३॥

बालों के विखर जाने पर स्त्री वैसी सुन्दर नही दिखाई देती जैसी प्रारम्भ में (बालों को सँवरे रहने पर) दिखाई देती है, क्रोधित होने पर तो वह अत्यधिक अशोभनीय दिखाई देती है तथा वह भ्रम व मोह प्रदान करने वाली ही होती है।

सुन्दर लगै बनावहिं माहीं। सहज सुन्दरी नहि दरशाहीं ॥
सिर नीचे दुइ गड्ढा भाई। मज्जा भरा तहाँ अधिकाई ॥

स्त्री तो श्रृंगार के पश्चात ही सुन्दर दिखाई पड़ती है, उसकी सुन्दरता स्वाभाविक नही होती। हे सीताग्रज! स्त्री के मस्तक के नीचे दो गड्ढे होते हैं जिनमें मज्जा की अधिकता रहती है।

ताही नयन कहैं सब लोगू। चर्म माँस कर केवल योगू ॥
जेहिं देखत कामी भ्रम छाये। मरे अपनपौ सकल गमाये ॥

केवल माँस और चमड़े के संयोग से निर्मित उन्ही गड्ढों को जगज्जन नेत्र कहते हैं जिनको देखकर कामी पुरुष सौन्दर्य के भ्रम–वश उनमें आसक्त हो अपना सर्वस्व गँवा देते हैं।

कीचड़ मल निकसत जेहिं माहीं। मूरख प्यार करैं तेहिं काहीं ॥
नाक द्वार मल निकसन केरा। चर्म माँस कर बना कुहेरा ॥

जिन नेत्रों से मलस्वरूप कीचड़ निकलता रहता है उन्हीं को मूर्ख पुरुष प्रेम करते हैं। नासिका तो मल द्धगन्दगीद्ध निकलने के लिए चमड़े और माँस से निर्मित न देखने योग्य द्वार ही है।

करहु विचार तनिक मन माहीं। जेहिं चूमत नर हिय न अघाहीं ॥
चाम माँस सोइ रचा कपोला। बहुरि पसीना मल चढ़ चोला ॥

हे कुमार! आप मन में जरा विचार तो कीजिये कि– मनुष्य जिसे चूमते हुए हृदय में अतृप्त बने रहते हैं वे कपोल, चमड़े और माँस से बने होते हैं तथा उनमें ऊपर से पसीना और गन्दगी का आवरण चढ़ा रहता है।

दो०–अतिहिं अपावन सो अहे, धिक धिक नर नहिं जोय।
जूती कर जो खाल है, सोइ खाल मुख होय ॥४४॥

अतएव वे कपोल अत्यन्त ही अपवित्र हैं, क्योंकि जिस चमड़े से जूते बनते है वही चमड़ा तो मुख में भी रहता है, जो मनुष्य ऐसा नही समझते उन्हे धिक्कार है, धिक्कार है।

अन्तर पातर थूलहिं केरा। तत्व एक जानहु जिय हेरा ॥
तनिक विचार लोग नहिं करहीं। चाटत चाम पेट नहिं भरहीं ॥

मनुष्यों को हृदय में विचार करना चाहिए कि (जूते व मुख में) अन्तर तो केवल पतले और मोटे चमड़े का है, यथार्थतः दोनों एक ही तत्व चमडा हैं। परन्तु लोग रंचमात्र भी इस प्रकार का विचार नहीं करते और उस चमड़े (मुख) को चाटते–चाटते तृप्ति को नहीं प्राप्त करते।

अधरामृत जेहिं कहैं अभागी । पीवत थूक चाबि रस पागी ॥
करत विचार घृणा अति लागै । कुटिल कुबुद्धि जो यहि रस पागै ॥

भाग्यहीन पुरुष जिसे अधरामृत कहते हैं यथार्थतः वे आनन्द पूर्वक चमड़े का चर्बण करते हुये थूक का ही पान करते हैं, जिसका विचार करते ही अत्यन्त घृणा लगती है। परन्तु वे लोग कुटिल और दुर्बुद्धि हैं जो इस रस में आसक्त बने रहते हैं।

माँस खण्ड इक लारहिं साना । जेहिं मग बहत थूक जग जाना ॥
अधर नाम ताकहँ सब कहहीं । थूकहिं अमृत करि नर लहहीं ॥

थूक व लार से सना हुआ माँस के टुकड़े का, थूक निकलने वाला एक द्वार है उसीको संसारी लोग 'अधर' कहते हैं तथा थूक को ही अमृत मानकर अभागे मनुष्य उसका पान करते हैं।

धिक धिक ऐसी बुद्धि अभागी । पीवत विष अमृत के लागी ॥
सुन्दर मुख जेहिं कहैं कुलोगा । जरहिं पतंगा सम करि योगा ॥

उस दुर्भाग्यशाली की बुद्धि को धिक्कार है जो अमृत समझकर विष का पान करती रहती है। पुनः संसारी जन जिसे सुन्दर 'मुख' कहते हैं और उसमें आसक्त होकर पतंगे के समान जलकर मर जाते हैं।

दो०—चाम माँसमय खोखला, भीतर बत्तिस हाड़ ।
माँसमयी रसना तहाँ, ललचत रस कहँ चाँड़ ॥४५॥

वह मुख चमड़े और माँस का बना हुआ खोखला स्थान है जिसके भीतर बत्तीस हड्डियाँ (दाँत) और माँस की बनी हुई जिह्वा है जिसके रस की प्राप्ति हेतु मनुष्य त्वरापूर्वक लालायित रहते हैं।

रक्त पीप थू थूकहुँ लारा । भरा रहत मुख मध्य अपारा ॥
निकसत नित कफ जेहिं मुख तेरे । अरु दुर्गन्ध वसति बहु नेरे ॥

घृणास्पद रक्त, पीप, थूक व लार आदि मुख में अधिकता से भरा रहता है। जिस मुख से नित्य कफ निकलता रहता है और दुर्गन्ध छायी रहती है।

चाटत ताहि जगत लव लाई । यथा घाव कहँ पशु सुख पाई ॥
वृक्ष शाख सम हाथ तिया को । अस्थि माँस गुनि नेह किया को ॥

उस मुख को संसारी जन, प्रेमपूर्वक उसी प्रकार चाटते हैं जैसे पशु अपने घाव को चाट–चाटकर सुख प्राप्त करते हैं। स्त्री के हाथ वृक्ष की शाखा के समान हैं जिनमें मात्र हड्डी और माँस है, ऐसा जानते हुए भी कौन सुधी व्यक्ति इनसे स्नेह कर सकता है? अर्थात् इनमे आसक्त नही होना चाहिये।

स्तन अहे माँस कर लोथरा । भरी चाम की थैली खोथरा ॥
रक्त माँस जो सकल शरीरा । स्तन मध्य सोइ मति धीरा ॥

स्त्री के स्तन तो चमड़े की गहरी थैली में भरे हुए माँस पिण्ड ही हैं। हे धीर बुद्धि कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! स्तनों में भी वही रक्त और माँस है जो सम्पूर्ण शरीर में होता है।

ऊँच भयो कछु केवल अन्तर । यथा धरणि महँ उच्च निम्नतर ॥
क्षणिक सुखद अज्ञानहिं तेरे । धिक धिक नर जे सुखमय हेरे ॥
चाम छुये सुख मानहि भारी । धिक धिक ऐसी बुद्धि गँवारी ॥

सामान्य शरीर व वक्ष (स्तनों) में मात्र इतना अन्तर है कि वक्षस्थल कुछ ऊँचे हो गये हैं,वह भी उसी प्रकार जैसे भूमि में ऊँचाई और निचाई होती है। अज्ञान के कारण एक क्षण को सुखदायी प्रतीत होने वाले उन मास पिण्डों (स्तनों) को जो मनुष्य सुख का हेतु समझते हैं उन्हे बारम्बार धिक्कार है। जो लोग चमड़े को छूकर महान सुख मानते हैं उनकी ऐसी निन्दनीय बुद्धि को धिक्कार है, धिक्कार है।

दो०—महा नरक भोगत रहै, चाम माँस की प्रीति ।
कोटि कल्प उबरत नहीं, सहहिं सदा यम भीति ॥४६॥

ऐसे जीव चमड़े और माँस की प्रीति में फँसे हुए महान नरक यातना भोगते रहते हैं, करोड़ों कल्पों तक उनका उद्धार नहीं होता और सदैव ही यमराज के भय (दण्ड) से भयभीत बने रहते हैं।

मृत पशु चोट करै जिमि काका । छूवत स्तन तिमि नर छाका ॥
नित मल मूत्र भरो जेहिं माहीं । उदर लोग कहते तेहिं काहीं ॥

जिस प्रकार कौआ मरे हुए जानवर के ऊपर आघात (चोट) करता है उसी प्रकार मनुष्य विषयोन्मत्त हो स्तनों का स्पर्श करते हैं। हे कुमार! शरीर में जहाँ नित्य मल और मूत्र भरा रहता है उस अंग को ही लोग पेट (उदर) कहते हैं।

अँतरी भरी दुसह दुख कोषा । सुन्दर कहैं जाहि जग घोषा ॥
कटि नितम्ब पुष्टा अरु जंघा । हाड़ माँस चर्महिं कर संधा ॥

जिसे संसार सुन्दर उदर कहकर पुकारता है उसमें आँते भरी रहती हैं तथा वह असहनीय दुखों का भण्डार है। नारी की कमर, नितम्ब, पुट्ठा और जंघा आदि में हड्डी माँस और चमड़े का ही योग है अर्थात् वे सभी अंग हड्डी माँस और चमड़े से बने होते हैं।

यथा उष्ट्र घोटक खर बैला । तैसहिं पुट्ठा नारिहुँ कैला ॥
योनि देश कर करत विचारा । नरकहुँ घृणा करत दुख धारा ॥

जिस प्रकार ऊँट, घोड़ा, गधा और बैल का पुट्ठा होता है उसी प्रकार स्त्रियों का भी पुट्ठा है। स्त्रियों के योनि देश का विचार करते ही उसके दुखमय रूप की कल्पना से नरक भी घृणा करने लगता है।

दृश्य अभद्र मूत्र सो सींचा । मास मास रक्तहुँ बह बीचा ॥
दुर्गन्धित दुर्गन्ध प्रपूरी । घृणित दुखद भ्रमदायक भूरी ॥

वह सभी प्रकार से अदर्शनीय व मूत्र सिंचित है, जिससे प्रति मास रक्त श्राव भी होता है। वह अत्यन्त दुर्गन्धित, सर्वथा दुर्गन्ध से भरा हुआ, घृणा करने योग्य, दुखदायी तथा दुख मे सुख का महान भ्रम उत्पन्न करने वाला है।

दो०—तिय शरीर गृह बीच ते, नाली निकसन मुत्र।
विधिना दियो बनाय इक, सुखकर कहैं कुपुत्र ॥४७॥

स्त्री के शरीर रूपी भवन के मध्य मूत्र रूपी गन्दा पानी निकलने के लिए श्री ब्रह्मा जी ने एक नाली बनायी है जिसे दुर्बुद्धि जन अतिशय सुखदायी कहते हैं।

मूत्र करै जग नित जेहिं माहीं। मूत्र कीट बहु भरे तहाँही ॥
जगत देह वहि मारग आई। योनि नाम तेहिं हेतुहिं गाई ॥

जिस अंग के द्वारा सम्पूर्ण संसार मूत्र त्याग करता है और जहाँ मूत्र के बहुत से कीड़े भरे रहते हैं। पुनः उसी मार्ग से मनुष्य का शरीर बाहर संसार में आता है इसी कारण से इसका नाम 'योनि' कहा गया है।

घिन प्रद गड्ढा निर्मित माँसा। तेहि महँ मज्जत नर सुख आसा ॥
जिमि ब्रण घाव लाल अरु गहिरा। पानी पीप भरा रस बहिरा ॥

वह माँस से बना हुआ अत्यन्त घृणित गड्ढा है जिसमें मनुष्य सुख की कामना से मज्जन करते हैं। जिस प्रकार फोड़े का घाव लाल, गहरा, पानी व मवाद से भरा रहता है तथा उसमें से पानी रिसता रहता है———

तैसहिं भगहु तनिक नहिं भेदा। जानहिं जो नर तत्वहिं वेदा ॥
युग उरून इक सन्धि कुआही। मास चाम जो बनी लखाही ॥

———भग (योनि) भी उसी प्रकार है दोनो में किंचित भी अन्तर नहीं है इस बात को वे मनुष्य भली प्रकार जानते हैं जो वेद–तत्व के ज्ञानी है। वह योनि तो दोनों जंघाओं के मध्य माँस और चमड़े से निर्मित एक 'सन्धि' (जोड़) ही दिखाई देती है।

ताहि सुखद कहि मूरख लोगा। नरक हेतु भोगत बहु भोगा ॥
चाम माहिं चामहिं कर योगा। चर्बन चाम करैं जग लोगा ॥

उसे मूर्ख जन ही सुख प्रदायक कहकर नरकों की प्राप्ति के लिये, विविध प्रकार से उसका भोगोपभोग करते हैं। वे संसारीजन चमड़े में चमड़े का योग कर (शरीर से शरीर को लिपटाकर) चमड़े को ही चाटते रहते हैं।

दो०—धिक धिक ऐसी बुद्धि को, सब विधि दुखद चमारि।
चाटन चाम सिखावती, चामहिं कर व्यवहारि ॥४८॥

सभी प्रकार से दुख–प्रदायी ऐसी निन्दनीय बुद्धि को धिक्कार है जो चमड़े से चमड़े का व्यवहार करती है और चमड़े को चाटने की ही शिक्षा देती है।

मूत्र कुण्ड महँ करि स्नाना । गिनहिं कुबुद्धि सुक्ख अवसाना ॥
आत्म स्वरूप सबहिं बिसराये । फँसे अविद्या फन्द कुभाये ॥

दुर्बुद्धि जीव मूत्र के कुण्ड (योनि) में गोता लगाकर उसे सुख की परिसीमा समझते हैं। उन सभी ने अपने आत्म–स्वरूप को अविद्या माया (विपरीत ज्ञान) के विकराल बन्धन में फँसकर भुला दिया है।

बढ़त अविद्या नित नित जाई । देति जीव कहँ अन्ध बनाई ॥
महा मोह तम हिय महँ छावा । सबहिं असत सत ज्ञान भुलावा ॥

उनके हृदय में अविद्या माया (विपरीत ज्ञान) नित्य प्रति बढ़ती जाती है और जीव को मोहान्ध बना देती है। जब महा मोह रूपी अन्धकार हृदय में तीव्रता के साथ परिव्याप्त हो जाता है तब सभी जीव असत्य को स्वीकार कर, सच्चे ज्ञान को भुला देते हैं।

जड़ सम जीवत सो जग माहीं । शान्ति मिलत एकहु छन नाहीं ॥
नारि भोग दुख रूप न देखी । सहत ग्लानि दिन दिनहिं विशेषी ॥

उस समय वह जीव संसार में जड़वत जीवित रहता है, उसे एक क्षण भी शान्ति नहीं प्राप्त होती। वह स्त्री भोग को दुखमय न समझकर, प्रति–दिन विशेष दुख को सहता रहता है।

जो सुख होतो भोगहुँ माहीं । तो कत ग्लानि अंत दरशाहीं ॥
श्री स्मृति बल तेज विनासा । योनि भोग अन्तहिं द्रुत भासा ॥

यदि स्त्री भोग में यथार्थ सुख होता तो उसके अन्त में ग्लानि क्यों दिखाई पड़ती? स्त्री भोग के परिणाम स्वरूप श्री, स्मृति, बल व तेज का शीघ्र ही विनास हो जाता है।

दो०–भगति ज्ञान वैराग्य सब, योग धर्म सत्कर्म ।
सेवत विषयन सब नसैं, दुखद नारि कर चर्म ॥४९॥

स्त्री की देह ऐसी दुखदायी है कि– उसके विषय का सेवन करने से भक्ति, ज्ञान, वैराज्ञ, योग, धर्म तथा सत्कर्म आदि सभी दैवी गुण विनष्ट हो जाते हैं।

घृणा करत सज्जन सब तेहीं । जो नर भयो चाम कर नेही ॥
जो पर नारि कतहुँ मैं प्रीती । औरहु दुख बाढ़त श्रुति रीती ॥

जो मनुष्य स्त्री की देह में आसक्त होता है सभी सज्जन पुरुष उससे घृणा करते हैं और यदि कहीं परायी स्त्री पर प्रीति हो गयी तब तो श्रुतियाँ के अनुसार अधर्म के कारण दुख और भी बढ़ जाता है।

रहै न मुख दरशावन योगा । धिक्कृत करहिं जगत के लोगा ॥
गाली मार परै बहु निन्दा । कारा गृह भोगत मति मन्दा ॥

वह व्यक्ति समाज में मुख दिखाने योग्य नहीं रह जाता तथा संसार के लोग उसे धिक्कारते हैं। उसे गालियाँ, मार व निन्दा आदि उपेक्षायें सहनी पड़ती है तथा वह धृष्ट–बुद्धि कारागृह की सजा

तक को भोगता है।

नारि स्वकीय और परकीया। विषय दृष्टि दूनहु तजनीया ॥
दूनहु फाँसी गल महँ डारी। ज्ञान प्रान हरि करहिं दुखारी ॥

स्त्री अपनी हो अथवा परायी, विषय भोग की दृष्टि से दोनों ही त्यागने योग्य है, क्योंकि दोनों ही गले में विषय रूपी फाँसी का फन्दा डाल, हमारे ज्ञान और प्राणों को हरण कर दुख प्रदान करती है।–––

महा अविद्या छावहि हिय में। जीव जरत यमपुर अति भिय में ॥
कोटि कल्प सब नरकन भोगी। योनि कीट होवहिं जग लोगी ॥

–––वह हृदय में महान अविद्या का आवास बना देती है जिससे जीव भयभीत हुआ यम लोक में महान संताप सहन करता है। इस प्रकार करोड़ों कल्पों तक सभी नरकों को भोग कर संसारी जन योनि के कीड़े बनकर जन्म लेते हैं।

दो०–अमित वर्ष करि भगहिं घर, भोगहिं भोग निदान।
ग्रस्त अविद्या जीव जग, पावहिं शोक महान ॥५०॥

वे संसारी जीव अनन्त वर्षों तक योनि में निवास कर विषयोपभोग के परिणाम को भोगते हैं तथा अविद्या से ग्रसित हुए महान शोक को प्राप्त करते हैं।

कहुँ जड़ बनि कहुँ चेतन योनी। भोगत भरमत भोग स्वबोनी ॥
काम विवश कछु तिनहिं न सूझा। छन छन योनि भोग महँ जूझा ॥

वे कभी जड़ तो कभी चेतन योनि प्राप्त कर अपने द्वारा बोये हुए भोग को भोगते हुए (अपने किये हुये कर्मों के प्रतिफल में) भटकते रहते हैं। काम के वशी होने से उन्हें कुछ नहीं सूझता तथा वे प्रत्येक क्षण विषयोपभोग में ही रत रहते हैं।

गर्दभ अश्व बैल कहुँ बनहीं। चाटि योनि मूत्रहिं मुख लनहीं ॥
बीते कल्प बहुत कहुँ सोई। लहै मनुज तन मम कृप मोई ॥

वे जीव कभी गदहे, घोड़े तथा बैल बनते हैं और योनि को चाटते हुए मूत्र को मुख में पीते रहते हैं। पुनः बहुत कल्प व्यतीत होने पर, कभी वे जीव मेरी कृपा से मनुष्य शरीर प्राप्त करते हैं।

जन्म अनन्त बना अभ्यासा। बहुरि भयो कामहिं कर दासा ॥
ता फल बहुरि भयो भग कीटा। निशि दिन जावैं यम कर पीटा ॥

परन्तु उसका अनन्त जन्मों से अभ्यास बना होने के कारण वह पुनः काम का ही दास बन जाता है जिसके परिणाम स्वरूप वह पुनः योनि का कीड़ा बनता है तथा रात–दिन यम यातना का शिकार होता है।

मुक्ति केर नहिं आस दिखाई। भव रस मगन शोक बहुताई ॥
तबहुँ दशा नहिं हिय महँ आवै। मल भक्षण महँ नित मन लावै ॥

उसके मुक्ति का कोई भी मार्ग नहीं दिखाई पड़ता तथा वह संसारी आनन्द (भवानन्द) में मग्न होने से अत्यधिक शोक को प्राप्त करता है। तब भी उसके हृदय में सजगता नहीं आती, उसका मन नित्य मल स्वरूप भोगों को भोगने में ही लगा रहता है।

दो०– मल रूपा जग नारि तन, मल ते और न भिन्न ।
मल चाटै मल महँ रसै, मल कृमि इव नर खिन्न ॥५१॥

इस संसार में स्त्री का शरीर तो मल स्वरूप (गन्दगी) ही है, वह मल के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है जिसे मलकीट की भाँति संसारी जीव भक्षण करते हैं तथा मल में ही डूबे हुए दुख स्वरूप बने रहते हैं।

जब मल त्याग अधिक कहुँ होई । जस विसूचिका महँ जग जोई ॥
तिय सौन्दर्य सकल तब जावै । देखि न जाय मनहुँ डरपावै ॥

जब कभी मल (गन्दगी) का त्याग बहुत अधिक मात्रा में हो जाता है जैसे कि– विसूचिका रोग में संसार में देखा जाता है। तब स्त्री का सम्पूर्ण सौन्दर्य समाप्त हो जाता है। उस समय वह देखने योग्य नहीं रहती अपितु भयावह दिखाई देती है।

ताते निश्चय भयो प्रवीना । तिय सुन्दरता मलहिं अधीना ॥
सो मल रूप न कछु है आना । धिक नर जो वाही लपटाना ॥

इसलिए हे प्रवीण कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! यह निश्चय हो गया कि– स्त्री का सौन्दर्य मल पर ही आधारित है। यहाँ तक कि– वह स्त्री मल से अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, उन मनुष्यों को धिक्कार है जो उसी से लिपटे रहते हैं अर्थात् आसक्त बने रहते हैं।

माखी यथा कूदि मल गिरई । तिमि नर विषय जाल महँ परई ॥
कठिन क्लेश भोगत जग माहीं । कूटत सिर लखि लखि फल काहीं ॥

जिस प्रकार मक्खी कूद–कूदकर मल में गिरती है और अपने जीवन का अवसान कर लेती है उसी प्रकार मनुष्य भी विषयों के जाल में फँस जाता है और संसार में कठिन क्लेश भोगते हुए अपने किये कार्यो के परिणाम को देख–देखकर सिर कूटता (पश्चाताप करता) रहता है।

यहि प्रकार नित मनहिं विचारा । करै दोष दुख दर्शन दारा ॥
विषय विराग अवशि होइ जाई । भोग स्वरूप समुझि जब आई ॥

अतएव जीवों को चाहिये कि– वे नित्य प्रति अपने मन में विचार कर स्त्री शरीर में दोषों और दुखों का दर्शन करें। तब उनकी बुद्धि में भोगों का स्वरूप समझ आ जायेगा जिससे उन्हे अवश्य ही विषयों से वैराग्य हो जायेगा।

दो०– देहेन्द्रिय मन बुद्धि पर, आतम रूप लखाय ।
रस रस करत विचार के, सब भ्रम जाय नसाय ॥५२॥

पुनः शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि से परे उन्हें अपना आत्म स्वरूप दिखाई देने लगेगा। इस

प्रकार विचार करते करते शनैः–शनैः (धीरे–धीरे) उनके सभी भ्रम समुदाय नष्ट हो जायेंगे।

मास पारायण छब्बीसवाँ विश्राम

नरन हेतु नारिहिं जिमि घोषी । नारिन हित तिमि नरहुँ सदोषी ॥
नर नारी दूनहु भव कूपा । विषय दृष्टि मल माँस स्वरूपा ॥

श्री राम जी महाराज कहते हैं कि– हे राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! मैंने जिस प्रकार पुरुषों के लिए स्त्रियों का संग दोष पूर्ण वर्णन किया है उसी प्रकार स्त्रियों के लिए पुरुष संग भी दोष परिपूर्ण है। परस्पर की विषयासक्ति के लिए पुरुष और स्त्री दोनों ही भवकूप तथा मल (गन्दगी) और माँस के पिण्ड हैं।

देखै नारि नित्य नर माहीं । भोग दोष दुख दर्शन काहीं ॥
विषय विराग ताहु कहँ होई । लहै परम पद कामहिं खोई ॥

स्त्रियाँ भी नित्य, पुरुष–भोग को दुखमय और दोषपूर्ण दर्शन करें तब उन्हें विषयों से वैराग्ञ हो जायेगा और काम वासना मिट जाने से परम पद की प्राप्ति होगी।

वेद विहित नारी संसर्गा । काम छुड़ाय देत अपवर्गा ॥
काम दृष्टि सेवन नर नारी । नरक देय चौरासी धारी ॥

वेदों में वर्णित आचरण के अनुसार स्त्री का संग (पुत्र प्राप्त कर पितृ ऋण से मुक्त होने के लियेद्ध काम वासना छुड़ाकर मोक्ष–पद प्रदान करने वाला होता है। परन्तु विषय की दृष्टि से स्त्री–पुरुषों का सेवन चौरासी लाख योनियाँ धारण कराकर नरक प्रदान करने वाला ही होता है।

ताते कामुक भावहिं त्यागी । नर नारी परमारथ लागी ॥
परमारथ महँ नर अरु नारी । एक तत्व गुनिये अविकारी ॥

इसलिए हे कुमार! काम वासना की भावना को त्यागकर पुरुष और स्त्री परमार्थ पद की प्राप्ति के लिये अग्रसर हो जायें। हे कुमार! आप, परमार्थ पथ में पुरुष और स्त्री दोनों को विकार रहित एक ही तत्व जानिये।–––

विषय भोग के दोष दिखायो । नहिं आत्मा कर मैं कछु गायो ॥
आत्म प्रेम महँ विषय न भाई । राग माहिं सब दोष दिखाई ॥

–––मैंने तो केवल विषय भोग के दोषों का दर्शन कराया है, आत्म प्रेम का किंचित भी बखान नहीं किया। क्योंकि हे भाई! आत्म प्रेम में विषय नहीं होता, सम्पूर्ण दोष तो आसक्ति में ही दिखाई पड़ते हैं।

प्रेम नित्य अमृत सुखकारा । राग अनित विष सम दुखधारा ॥
प्रेम अनल्प दिव्य गुण खानी । रागाल्पाशुचि दुर्गण दानी ॥

प्रेम नित्य, अमृत स्वरूप एवं सुख प्रदायक है जबकि राग (आसक्ति) अनित्य, विष व दुख

प्रवाह के समान है। प्रेम महान एवं दिव्य गुणों की खानि तथा राग (आसक्ति) अल्प, अपवित्र एवं दुर्गुणों को प्रदान करने वाला है।

दो०–निर्मल प्रेमहिं जानियहिं, स्वारथ बिन प्रभु रूप ।
राग समल स्वारथ सहित, घृणित देत भव कूप ॥५३॥

हे राजकुमार! प्रेम को स्वच्छ, स्वार्थ–रहित एवं भगवत्स्वरूप समझना चाहिए जबकि राग (आसक्ति), मल (गन्दगी) स्वरूप, स्वार्थ से सना हुआ, घृणा करने योग्य तथा संसार कूप (भव–बन्धन) प्रदान करने वाला है।

प्रेम मध्य एकत्व सुसमता । राग बहुतपन दोष विषमता ॥
प्रेम पयोधि महा गम्भीरा । चंचल राग रहै नहि थीरा ॥

प्रेम में एकत्व (जोड़ने की कला) और सुन्दर समानता होती है परन्तु राग में बहुत्व (विघटन) दोष तथा विषमताएँ होती हैं। प्रेम, सागर के समान महान गम्भीर व स्थिर होता है जबकि राग (आसक्ति) अतिशय चंचल व अस्थिर होता है।

निरुपाधिक अरु सहज प्रकाशी । प्रेम सरस निश्चल अविनाशी ॥
राग उपाधियुक्त तम रूपा । निरस दुखद नित नसत सुभूपा ॥

प्रेम सभी प्रकार उपाधियों (विघ्न–बाधाओं) से रहित, सहज प्रकाशवान, रस परिपूर्ण, निश्चल एवं अविनाशी है परन्तु हे निमिकुल नरेश राग (आसक्ति) उपाधि (विघ्न–बाधाओं) से परिपूर्ण, अंधकार–स्वरूप, नीरस, दुखदायी व नित्य विनाश को प्राप्त होने वाला है।

प्रेम परम पद जीवहिं देई । पठवै नरक राग जिय गेई ॥
अस विचारि जे परम विचारी । आत्म प्रेम महँ पगहिं सुखारी ॥

हे कुमार! प्रेम जीवों को परम पद प्रदान करने वाला तथा राग (भवासक्ति) नरक में भेजने वाला है ऐसा हृदय में विचार करना चाहिए। अपने हृदय में ऐसा विचार कर परम विवेकीजन सुख पूर्वक आत्म प्रेम में पग जाते हैं।

रागहिं हेरत कबहुँक नाहीं । जानि दुखद छरकत तेहिं काहीं ॥
देह राग अति दुखद कुमारा । आत्म ज्ञान कहँ करै खुआरा ॥

वे राग (सांसारिक कामनाओं की पूर्ति हेतु किये गये प्रेम) की ओर कभी भी दृष्टिपात तक नहीं करते तथा उसे दुखदायी समझकर, सदैव छले जाने की आशंका से बचे रहते हैं। हे राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! शारीरिक आसक्ति तो अतिशय ही दुखदायी होती है जो आत्म–ज्ञान को शीघ्र ही विनष्ट कर देती है।

दो०–बुधि विचारि अस सुजन जन, मोक्ष चाह जेहिं माहिं ।
राग त्यागि प्रेमहिं गहैं, परमानन्द लखाहिं ॥५४॥

ऐसा विचार कर वे सज्जन जिनके हृदय में मोक्ष प्राप्त करने की कामना होती है, घृणित

संसारासक्ति (राग) को त्यागकर विशुद्ध प्रेम–तत्व को ग्रहण करते हैं और परमानन्द में निमग्न (डूबे हुये) दिखाई देते हैं।

छिन छिन जावति आयु सिराई । यथा बुलबुला जल कर भाई ॥
नहिं जानहिं केहिं कालहिं माहीं । काल आइ खावै तन काहीं ॥

श्री राम जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से कहते है कि– हे कुमार! जीवों की आयु पानी के बुलबुले की भाँति प्रत्येक क्षण समाप्त होती जाती है, कोई यह नहीं जानता कि– कौन से क्षण में काल आ जायेगा और हमारे शरीर को अपना ग्रास बना लेगा।

ताते चाहिय भजन सबेरे । मम आश्रय बस प्रेम के खेरे ॥
बालक युवा बुढ़ापन सबहीं । विषय हेतु खोवत नर जबहीं ॥

इसलिये जीवों को चाहिये कि– वे मेरे शरण में आकर (मेरे आश्रय में आकर) प्रेम की पुरी में निवास कर शीघ्रता पूर्वक (समय रहते) भजन करें। क्योंकि जब मनुष्य अपनी तीनो अवस्थाओं (बाल्यावस्था, यौवनावस्था व बृद्धावस्था) को सांसारिक विषयों के लिये ही व्यतीत कर देता है।–––

तब यम दण्ड मार बहु होती । पावत दुख फल निज कर बोती ॥
विद्या जाति महत्व सुरूपा । यौवन मद पटकै भव कूपा ॥

–––तभी उसे अति असहनीय यम यातना भुगतनी पड़ती है और वह अपने द्वारा किये हुये कर्मो के प्रतिफल दुखों को प्राप्त करता है। उस समय उसे विद्या (ज्ञान), जाति (कुल) महत्व (योग्यता), स्वरूप (सौन्दर्य) तथा यौवन (जवानी) का अभिमान संसार–कूप (भव–कूप) में गिरा देता है।

ये सब छणिक दुखद जिय जानी । त्यागहिं सज्जन करि श्रुति कानी ॥
इनहूँ ते है धन मद भारी। बड़े बड़े कहँ करै खुआरी ॥

इस प्रकार उपर्युक्त सभी अभिमानों को अपने हृदय में क्षणिक और दुखदायी समझकर, सज्जन पुरुष श्रुतियों की मर्यादा को स्वीकार कर इन्हे त्याग देते हैं। परन्तु इन सभी अभिमानों से धन का अभिमान बहुत अधिक दुखदायी होता है जो बड़े–बड़े त्यागियों को भी विनष्ट कर देने वाला होता है।

दो०–अर्थहिं जानि अनर्थ प्रद, दायक चिन्ता शोक ।
मुनिजन संग्रह नहिं करत, सुखी रहत दुहुँ लोक ॥५५॥

अतएव धन को सभी अनर्थो (अमंगलों) का दाता, चिन्ता और शोक प्रदान करने वाला समझकर, मुनिजन धन का संग्रह नहीं करते तथा दोनो लोकों (इस लोक और परलोक) में सुखी रहते हैं।

वित्त उपार्जन जब नर करहीं । कष्ट सहत पर आश्रित चरहीं ॥
सम्पति पाइ करैं रखवारी । चिन्ता वश जग जगै अनारी ॥

मनुष्य जब धन का अर्जन (धन प्राप्त करने का उपाय) करता है तब उसे कष्ट सहन करते हुए दूसरे के आधीन रहना पड़ता है, पुनः सम्पति प्राप्त कर उसकी रक्षा करता है और अज्ञानी के

समान चिन्ता के वशीभूत हो संसार में जागता रहता है।

धन विनाश दुख जाय न वरणी । कोउ कोउ तजै प्राण निज करणी ॥
अर्जन संचय और विनाशा । गिनहु दुखद भ्रम केर विकासा ॥

धन के नष्ट होने का दुख तो अवर्णनीय ही है, कोई कोई लोग तो इसके कारण अपने ही हाथों अपने प्राण तक त्याग देते हैं। अतः धन का अर्जन (कमाना), संचय (एकत्र करना) और विनाश (नष्ट हो जाना) तीनों को ही दुखदायी और भ्रम का विकास करने वाला समझना चाहिये।

धन मद मनुज पाप बड़ करहीं । नरक नृपति नहि नेकहुँ डरहीं ॥
हरि गुरु विप्र सन्त सुर गाई । स्वारथ रत दुखवहिं कुटिलाई ॥

धन के अभिमान में मनुष्य बड़े–बड़े पाप करते हैं तथा "नरक" और "नरेश" ‌(परलोक व लोक) दोनो से किंचित भयभीत नही होते, वे स्वार्थ के वशीभूत होने से भगवान, गुरु, ब्राह्मण, सन्त, देवता, और गाय आदि को, कुटिलता पूर्वक दुख पहुँचाते रहते है।

हिंसक चोर नीच मद्यापी । परतिय हरत बाहु बल थापी ॥
श्रुति प्रतिकूल करहिं आचारा । खेलत द्यूत बुद्धि सविकारा ॥

धनाभिमानी हिंसा करने वाले, चोर, नीच और शराबी होकर अपने बाहुबल से दूसरे की स्त्रियों का अपहरण करते हैं तथा श्रुतियों के विपरीत आचरण करते हुए बुद्धि के विकार ग्रस्त हो जाने से जुआँ खेलने लगते हैं।

दो०–अत्र तत्र दुख पावहीं, धन अभिमानी लोग ।
मगन अविद्या सिन्धु महँ, जन्म मरण लग रोग ॥५६॥

इस प्रकार धन के अभिमानी मनुष्य यहाँ और वहाँ उभय लोकों में (लोक और परलोक में) दुख प्राप्त करते हैं तथा अविद्या (विपरीत ज्ञान) के सागर में डूबे रहते हैं, उन्हे बार–बार जन्म लेने व मरने का रोग लग जाता है।

चंचल असत अनर्थन मूला । को सेवै बिन हरि प्रतिकूला ॥
अस विचारि तृष्णा सब त्यागी । भजहिं मोहि जन होय विरागी ॥

इस चंचल, असत्य एवं अनर्थो के मूल धन को भगवान के प्रतिकूल चलने वाले मनुष्यों के अतिरिक्त और कौन सेवन कर सकता है अर्थात् भगवत्प्रतिकूल जन ही धनासक्त होते हैं। ऐसा विचार कर सभी तृष्णाओं को त्याग मेरे सेवक, वैराग्य पूर्वक मेरा भजन करते हैं।

जबहिं वासना जाइ नसाई । तबहिं आत्मा रूप लखाई ॥
परम आत्मा मैं द्रुत ताही । देखि परौं हिय अनुभव माहीं ॥

जब जीवों के हृदय की वासनायें समाप्त हो जाती हैं तभी उसे अपनी आत्मा का स्वरूप दिखने लगता है उस समय उसे जीवों की परम–आत्मा 'मैं' (ईश्वर) शीघ्र ही अनुभव के द्वारा हृदय मे दिखाई देने लगता हूँ।

जीव ईश कर सहजहि प्रेमा। निरुपाधिक बिन साधन नेमा॥
निशिदिन छिन छिन बाढ़त जाई। तदपि तोष नहि हिय महँ आई॥

उस समय ईश्वर और जीव का निर्विघ्न व सहज प्रेम साधन एवं नियमो की अपेक्षा किये बिना दिनरात प्रत्येक क्षण वृद्धिंगत होता जाता है तब भी उसका (जीव का) हृदय संतोष्ज्ञ नही प्राप्त करता।

लखहिं परस्पर दूनहु सरसे। इक एकन के मन दोउ करषे॥
रस धारा दुहुँ काहिं डुबाई। आनँद आनँद आनँद छाई॥

वे दोनो (ईश्वर और जीव) आनन्द में ओत–प्रोत हुए एक दूसरे को निहारते रहते हैं तथा परस्पर मन को आकर्षित किये रहते हैं। जिससे प्रेम–रस की धारा दोनो को आत्मसात कर लेती है तब वहाँ आनन्द, आनन्द और आनन्द ही छा जाता है।

दो०– सुनहु सखे जिय जान अस, अह मम रहित कुवास।
सतत भजहिं नर मोहिं जे, सब विधि लहैं सुपास॥५७॥

हे सखे श्री लक्ष्मीनिधि जी। सुनिये, अपने हृदय में ऐसा समझ कर जो लोग अहंकार, ममकार व कुसंग से रहित हो निरन्तर मेरा भजन करते हैं वे सभी प्रकार से सुखी रहते हैं।

प्रणमि कुँअर कह प्रभु सत भाषा। गुप्त न मो पहँ कछु तुम राखा॥
राम कहा सुनु निमि कुल वीरा। सहज प्रीति वश सदा सुधीरा॥

श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवणकर, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उन्हे प्रणाम किया और बोले, हे स्वामी! आपने सर्वथा सत्य कहा है। मेरे लिए तो आपने कुछ भी गोपनीय नही रखा। श्री राम जी महाराज ने कहा– हे निमि कुल प्रवीर, परम धैर्यवान श्री लक्ष्मीनिधि जी मैं सदैव ही आपकी सहज प्रीति के वशीभूत रहता हूँ।

प्रेम रज्जु मोहि बाँधि कुमारा। दियो दिखाय जगत रस धारा॥
नत सिर सकुचि कहे निमिवारे। कियो करायो तुम सब प्यारे॥

हे कुमार! आपने मुझे, अपने प्रेम की डोरी में बाँध, इस संसार को प्रेम–रस प्रवाहित कर दिखा दिया है। तब निमिनन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी सिर झुकाकर संकुचित हो बोले– हे प्यारे, आप श्री ने ही सभी कुछ किया और कराया है।

सब कछु तुमहिं और नहिं आना। कर्ता कर्म करण क्रियमाना॥
नाथ प्रेम पथ पथिक जे अहहीं। तिनकी रीति कवन विधि रहहीं॥

हे प्रभु! मेरे सर्वस्व अर्थात् कर्ता (कार्य करने वाले), कर्म (कार्य), करण (कार्य साधन) और क्रियमाण (कार्य रूप में परिणति) तो आप ही हैं, अन्य कुछ भी नही। हे नाथ! आपके जो प्रेम पथानुगामी भक्तजन हैं उनके रहने की प ति कैसी होती है?–––

जो निज भगत नाथ कहँ प्यारे। केहिं विधि जानै जगत मझारे॥
सो समुझाय कहहु जन जानी। जेहिं ते तुरत परैं पहिचानी॥

---आपके जो निजी व प्रिय भक्त हैं संसार में उनका परिचय कैसे प्राप्त होता है? हे नाथ! आप मुझे अपना सेवक जान, समझा कर कहिये जिससे वे शीघ्र ही पहचाने जा सके।

दो०—राम कहे जस तुम रहत, गति मति भगति सप्रेम।
ज्ञान रूप आनन्दमय, तस मम भक्तन नेम ॥५८॥

श्री राम जी महाराज ने कहा— हे कुमार! जिस प्रकार की भागवत धर्म से परिपूर्ण गति, अनन्य शरणागति युक्त बुद्धि, निष्काम व प्रेममयी भक्ति, मेरे अखण्ड ज्ञान से संयुक्त आनन्द स्वरूप बने हुए आप रहते है, मेरे प्रिय भक्तों का भी यही नियम है।---

तदपि कहौं कछु गुण गण वरणी। संत विशुध्द यथा आचरणी॥
विविध वासना त्यागि सुसन्ता। नित्य भजहिं मोहि गुनि हिय कन्ता॥

---तथापि जैसा वे पवित्र आचरण करते हैं, मै संतजनों के कतिपय गुणगणों का वर्णन कर रहा हूँ। सन्तजन विभिन्न प्रकार की वासनाओं का त्याग कर अपने हृदय में मुझे अपना स्वामी समझ कर नित्य मेरा भजन करते हैं।---

मन चित त्यागि शान्ति के रूपा। बने दिखैं जग माहिं अनूपा॥
राग द्वेष की जरनि मिटाई। प्रेमी रहत महा मुद छाई॥

---वे अपने मन और चित का त्याग किये हुए शान्ति के स्वरूप बने संसार में अनुपमेय दिखाई पड़ते है। वे प्रेमी अपने हृदय से राग (सांसारिक आसक्ति) व द्वेष (पारस्परिक वैमनस्य) की जलन को मिटाकर महान आनन्द में डूबे रहते हैं।

सर्व भूत हित बनि निर्बैरा। सब महँ लखहिं हमहिं रस छैरा॥
मैत्री मुदिता करुणा दाया। उदासीनता धरे अमाया॥

वे संतजन सभी जीवों के हितैषी व शत्रुता से विहीन होकर सबके हृदय में एकमात्र मुझ रस प्रदाता (परमात्मा) का ही दर्शन करते हैं। वे मित्रता, प्रसन्नता, करुणा, दया व उदासीनता आदि गुणों को धारण किये हुये निर्मल मन वाले होते हैं।

ममता अहं सकल विधि त्यागी। बिचरहिं जग महँ परम विरागी॥
क्षमावान सुख दुख सम जानी। बिन विकार जग रहैं अमानी॥

मेरे प्रिय भक्तजन ममकार व अहंकार को सभी प्रकार से त्याग, परम विरक्त हो संसार में विचरण करते रहते हैं। वे क्षमाशील, सुख व दुख को एक समान मानने वाले, समस्त विकारों से रहित एवं अमानी होकर संसार में निवास करते हैं।

दो०—तृण सो नीचे बनि रहहिं, तरु सो अधिक सहिष्णु।
सबहिं मान प्रद भावयुत, पूजहिं जग गुनि विष्णु ॥५९॥

मेरे भक्त स्वयं तिनके (तृण) से भी छोटे और वृक्ष से अधिक सहनशील बनकर, सभी को आदर देने वाले एवं समग्र संसार को भगवान का (मेरा) स्वरूप समझ भाव पूर्वक सेवा करने वाले होते हैं।

हिये सदा संतोष विराजा। येन केन विधि कर तन काजा॥
प्रेम योग रत शम दम धारे। षट रिपु भगे मानि मन हारे॥

उनके हृदय में सदैव संतोष्ज्ञ का निवास रहता है, वे जैसे तैसे द्ध किसी भी प्रकार सेद्ध अपने शरीर के अनिवार्य कार्यो का निर्वाह करते हैं। भक्तजन मेरे प्रेमयोग मे निरत व शम–दम आदि गुणों को धारण किये रहते हैं जिससे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद व मत्सर आदि छहों शत्रु मन में पराजय स्वीकार कर उनके हृदय से भाग (पलायन कर) जाते हैं।

दृढ़ निश्चय हिय बना अडोला। सरस स्वभाव सरल मृदु बोला॥
हर्ष विषाद पार चित भयऊ। शोक मोह भागे भ्रम गयऊ॥

ऐसे भक्तों का हृदय द्रढ निश्चयी होने के कारण स्थिर बना रहता है, उनका स्वभाव रसमय, वाणी सरल व कोमल, तथा चित्त दुख और प्रसन्नता से परे होता है। उनके हृदय से शोक–मोह और सभी प्रकार के संशय भाग जाते हैं।

हदय ग्रन्थि खुलि गयी महानी। संशय कटे सकल दुख खानी॥
कर्म बीज नसि भये खुआरा। निर्भय रहत सदा मम प्यारा॥

उनके हृदय की जड़–चेतन की (देह व आत्मा की) ग्रन्थि खुल जाती है, दुखस्वरूप सभी संदेह विनष्ट हो जाते हैं, कर्मो के बीज नष्ट होकर निष्क्रिय हो जाते है इस प्रकार वह मेरा प्यारा भक्त सदैव सभी से निर्भय रहता है।

कर्म शुभाशुम मन सों त्यागी। मम पद प्रीति पगेउ बड़ भागी॥
जग सों नहिं पावत उदवेगा। पर उदवेग करन नहि रेगा॥

अपने मन से शुभ और अशुभ कर्मो का त्याग किए हुए वे बड़ भागी मेरे चरणो की प्रीति में डूबे रहते है। वे संसार से कभी भी उद्वेगित नहीं होते और न ही दूसरो को उद्वेगित करने की क्रिया करते।

दो०– मन क्रम बचन पवित्र बनि, रहै सदा निरपेक्ष।
उदासीन जग सो रहैं, मोहि सो नित सापेक्ष॥६०॥

मेरे प्यारे भक्तजन मन, वचन व कर्म से पवित्र रह कर सदैव संसार से अपेक्षा रहित और उदासीन तथा मुझ (परमात्मा) से नित्य सापेक्ष्य अर्थात् अनुकूल रहते हैं।

अनारम्भ अति दक्ष सुजाना। परमारथ पथ कुशल महाना॥
निर्भय नित्य असोच अचाही। मम प्रिय प्रेमी सदा उछाही॥

हे परम सुजान प्रिय श्री लक्ष्मीनिधि जी! मेरे प्रेमी सभी प्रकार के संकल्प–विकल्पों से रहित, अत्यन्त कुशल, परमार्थ पथ में अतिशय प्रवीण, सदैव निर्भय, निश्चिन्त, निष्काम तथा नित्य आनन्दित बने रहते हैं।

निन्दा स्तुति मान अमाना। जय अरु विजय सो जान समाना॥
द्वन्द परे समता रत ज्ञानी। बनि अनिकेत प्रेम सुख सानी॥

वे निन्दा, स्तुति (प्रशंसा) सम्मान, अपमान, जीत और हार सभी को समान समझते हैं, सभी प्रकार के द्वन्दो से परे समान बुद्धि वाले, परम ज्ञानी व गृह की आसक्ति से रहित प्रेम सुख में समवगाहन करते रहते हैं।

रहहिं मौन सम हृदय अकाशा । विचरहिं सने आत्म रस दासा ॥
सब विधि मोर अनन्य उपासी । मोहिमय देखत जगत सुभाषी ॥

वे मेरे सेवक आकाश के समान शान्त हृदय, आत्मानन्द में निमग्न, संसार में विचरण करते हुए सभी प्रकार से मेरी अनन्य उपासना में लगे रहते हैं तथा संसार को मेरे समान ही देखते हुए मृदु–भाषी होते हैं।

सुभग सुखद मति गती सुहाई । सब कर आस तजे मोहिं पाई ॥
सरल वरण सरलहिं तिन भाषा । सरल अर्थ प्रगटत श्रुति साषा ॥

उनकी बुद्धि और स्थिति सुन्दर व सुखदायी होती है, वे मुझे पाकर अन्य सभी के भरोसे को त्यागे रहते हैं। उनके शब्द, भाषा व अर्थ सभी सरल और श्रुति–शास्त्रानुमोदित रहते हैं।

दो०– कपट कुटिलता कामना, आसुर सम्पति छोर ।
ग्रहण किये दिवि सम्पतिहिं, रहहिं सुप्रेम विभोर ॥६१॥

मेरे भक्तजन छल, दुष्टता, सभी प्रकार की कामनाओं और आसुरी सम्पत्तियों को त्याग, दिव्य दैवी सम्पतियों को ग्रहण कर मेरे सुन्दर प्रेम में विभोर बने रहते हैं।

जग उत्साह कबहुँ नहि होई । नहिं मन रमत लोक हिय खोई ॥
मन चित बुधि अहमात्महिं प्रेमी । सौंप देत सह साधन नेमी ॥

उन्हे कभी भी संसारिक कार्यकमों में उत्साह नही होता और न ही उनका मन वहाँ लगता है, क्योंकि उनके हृदय से संसार नष्ट हो चुका होता है। मेरा प्रेमी सम्पूर्ण साधनों एवं नियमों सहित मन, चित्त, बुधि, अहंकार तथा आत्मा को भी मुझे सौंप देता है।

सरवस सत्व अपुन मोहि दीन्हे । बिचरत जग इक मोकहँ लीन्हे ॥
भाषत सब जग भक्तन काहीं । जनु मम रूप परम पद आहीं ॥

वह स्वयं के अस्तित्व सहित अपना सर्वस्व सौंप, एकमात्र मुझे ही अपनाकर संसार में बिचरण करता रहता है। मेरे प्यारे भक्तजनों को यह संसार सदैव परम पद स्वरूप मेरा रूप ही प्रतीत होता है।

अनघ अरति जग रहै अभीती । सपनेहुँ पग नहि परै अनीती ॥
पर दुख दुखी हृदय अति कोमल । पर सुख निज सुख गिनत मनोबल ॥

मेरे प्रिय जन, पाप, आसक्ति और भय विहीन होकर संसार में रहते हैं तथा भूलकर भी अनीति के मार्ग पर अपने पैर नहीं रखते। उनका हृदय अत्यधिक कोमल होता है जिससे वे दूसरों के दुख में दुखी और दूसरों के सुख को ही अपना सुख समझते हुए आत्म विश्वास युक्त बने रहते हैं।

आपन यश नहिं करत बखाना । हरि हरिजन यश सुनि सुखमाना ॥
गुणातीत समता शुचि भारी । छोड़ि पुजापहिं बनेव पुजारी ॥

मेरे भक्त, कभी भी अपनी कीर्ति का गायन नही करते तथा भगवान व भक्तों की कीर्ति श्रवण कर ही सुखी होते हैं। वे सभी गुणों से परे, पवित्र और महान समत्व बुद्धि से युक्त होते हुए भी स्वयं को पुजाना छोड़कर भगवद्भागवत पूजन में संलग्न रहते हैं।

दो०—मम हित चेष्टा करहिं जन, बने प्रेम रस रूप ।
नाम रटत सादर सुखद, पावन करन अनूप ॥६२॥

मेरे सेवक, प्रेम और रस स्वरूप बने हुए अपनी सम्पूर्ण चेष्टायें मेरे लिये करते हैं तथा मेरे सुखदायी परम पावन व अनुपमेय नाम को आदर पूर्वक जपते रहते हैं।

संतत मम लीला रत रहहीं । कहत सुनत उर आनँद लहहीं ॥
प्रेम पुलकि नयनन जल धारी । श्रवति कपोलनि मम अति प्यारी ॥

वे सदैव मेरी लीला में अनुरक्त बने रहते है और उसका कथन व श्रवण कर हृदय में आनन्द प्राप्त करते हैं, जिससे प्रेम पुलकित हो उनके नेत्रों से निकलती अश्रु—धारा उनके कपोलो में सुशोभित होती है जो मुझे अत्यन्त प्रिय लगती है।

तन रोमांच कण्ठ अवरोधा । मानहुँ नेह रूप रस सोधा ॥
लीला अभिनय प्रिया हमारी । करत भक्त बहु होय सुखारी ॥

मेरे नाम, रूप, लीला व धाम की स्मृति करते ही मेरे भक्तों का शरीर रोमांच परिपूर्ण तथा गला अवरुद्ध हो जाता है उस समय वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो रस में शोधन किये हुए साक्षात प्रेम के विग्रह हों। हमारी प्रिया श्री सीता जी के सहित हमारी लीला का अभिनयन कर हमारे भक्त वृन्द अत्यधिक सुखी होते हैं।

कीर्तन व्रत भरि हिय अनुरागा । लिये रहत मम जन बड़ भागा ॥
प्रेम विभोर जबहिं सो होई । नृत्यन लागत मन मुद मोई ॥

मेरे बड़भागी भक्तजन हृदय में प्रेम पूर्वक मेरे कीर्तन का व्रत लिये रहते हैं और जैसे ही वे कीर्तन करते हुए प्रेम विभोर होते हैं वैसे ही सांसारिक लज्जा को त्याग, आनन्दित—मन होकर नृत्य करने लगते हैं।

त्यागि लाज गावत स्वर ऊँचे । रोवत प्रलपत मम रस कूचे ॥
प्रेममयी मदिरा मतवाला । फिरत लोक मनु महा विहाला ॥

वे उन्मत्त हो लज्जा का परित्यागकर मेरी प्रेम गली में ऊँचे स्वर से गाते, रोते व प्रलाप करते हैं। शाश्वत मदोन्मत्त कर देने वाली मेरी प्रेममयी मदिरा पीकर मदमस्त हुए वे मेरे भक्त जन संसार में पागलों के समान विचरण करते रहते हैं।

दो०—प्रेम सरोवर पैठि के, निकसत नाहिं दिखाय ।
अनुपम भावहिं जान को, मैं इक लखउँ सुभाय ॥६३॥

प्रेमी भक्त, प्रेम के गहरे जलाशय में डूबकर उससे निकलते नही दिखाई पड़ते अर्थात् उसमें समाधिस्थ हो जाते हैं। उनके अनुपमेय भावो को मेरे अतिरिक्त कोई नही जान सकता, केवल मैं ही उनके सुन्दर भावों को समझता हूँ।

जित देखत तित श्यामहिं श्यामा । रटत बैन हिय रामहिं रामा ॥
उचरत नाम नेह चहुँ फैली । देत बनाय प्रेममय गैली ॥

मेरा भक्त जहाँ भी देखता है, उसे केवल श्याम स्वरूपधारी मैं ही दिखाई देता हूँ, वह वाणी और हृदय से मेरा नाम (सीताराम) ही रटता रहता है और मेरे नाम का उच्चारण करने से मेरा प्रेम चारो दिशाओं में फैलकर प्रेम पथ का निर्माण कर देता है।

सुनि सुनि चरित विकल मम प्यारा । भाव विभोर होत निमिवारा ॥
रूप सुरति सब आपा खोई । प्रेम सिन्धु डूबत रस मोई ॥

हे निमिनन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी! मेरा प्यारा भक्त मेरे चरित्रों को श्रवण कर व्याकुल व भाव विभोर हो जाता है तथा मेरे रूप की स्मृति में अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को भुलाकर प्रेम के समुद्र में डूब, रस मग्न हो जाता है।

जबहिं करत मम धामहिं ध्याना । भगत वियोगी विरह समाना ॥
कबहुँ शान्त कहुँ उन्मत होई । पीवत सदा प्रेम रस सोई ॥

जब मेरा भक्त मेरे धाम का स्मरण करता है तब वह धाम–वियोगी भक्त विरह के सागर में डूब जाता है, उस समय वह कभी शान्त तो कभी मतवाला होकर सदैव मेरे प्रेम रस का पान करता रहता है।

आत्मा रमण करै सुख सारी । मोर भक्त भल जगत बिसारी ॥
प्रेम मती प्रेमहिं गति न्यारी । प्रेम अधार प्रेम सुख चारी ॥

मेरा भक्त संसार को भूलकर सुखों की सार–भूत आत्मा में भली प्रकार रमण करता है, उसकी बुद्धि व चाल (रहनी) निराली व प्रेममयी होती है तथा वह प्रेम के द्वारा प्रेम सुख का आस्वादन करता रहता है।

दो०—प्रेम पेखि प्रेमहिं सुनै, प्रेमहिं परशै भक्त ।
प्रेम सूँघ प्रेमहिं चखै, प्रिय प्रेमी आसक्त ॥६४॥

मेरा प्रेमी भक्त अपने प्रियतम (मुझ) में आसक्त हुआ सर्वत्र प्रेम का ही दर्शन करता है, प्रेम ही सुनता है, प्रेम का ही स्पर्श करता है, प्रेम का ही घ्राण लेता है तथा प्रेम का ही स्वाद ग्रहण करता है।

तन मन धन रामहिं कर मानी । रामहिं केर जगत जिय जानी ॥
रामहि रस करि मन गुनि लीन्हा । सुखदाता श्यामहिं जिय चीन्हा ॥

वह प्यारा भक्त अपने शरीर, मन और धन (सम्पत्ति) सभी को मेरा (श्री राम जी महाराज का) समझता है तथा संसार को भी अपने हृदय में मेरा (श्री राम जी महाराज का) ही स्वरूप मानता है। मेरा भक्त, अपने मन में यह समझ जाता है कि–सभी के सार तत्व (रस) श्री राम जी महाराज हैं। इस प्रकार वह अपने हृदय में भली प्रकार से पहचान लेता है कि– सभी के सुख प्रदाता एकमात्र श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज ही हैं।

रामहिं कहँ सुख सिन्धु महाना । जानत जिय प्रिय भक्त सुजाना ॥
योग वियोग जबहिं जस आवै । लीला कर तस भक्त सुहावै ॥

वह परम सुजान प्रिय भक्त अपने हृदय में श्री राम जी महाराज को ही (मुझे) समस्त सुखों का महा–सागर समझता है, उसके हृदय में जब प्रभु के (मेरे) संयोग अथवा वियोग की लीलाओं का स्मरण आता है तब वह उसी प्रकार के चरित्र करता हुआ दीखता है।

सुनि सुनि प्रेममयी मम बानी । भूलि जात अपनो सब भानी ॥
मम सुख सुखी सहज रस रासी । मम इच्छा निज चाह प्रकाशी ॥

मेरी प्रेम परिपूरित वाणी को सुन–सुन कर वह प्रेमी भक्त अपनी सम्पूर्ण स्मृति भूल जाता है तथा मेरे सुख में सुखी व मेरी इच्छा में अपनी इच्छा मिलाकर सहज ही प्रेम रस में डूबा रहता है।

चेष्टा करत विगत अभिमाना । प्रेम पगा जग काहिं भुलाना ॥
प्रेमिन कहँ निज नयनन देखी । लिपटि रहत करि प्रीति विशेषी ॥

वह भक्त अभिमान रहित हो तदनुसार ही चेष्टायें करता है और मेरे प्रेम में पगा हुआ संसार को भूला रहता है। वह अपने नेत्रों से प्रभु–प्रेमियों का दर्शन कर प्रेमातिशयता के कारण उन्हें अपनें हृदय से लगा लेता है।

दो०– बूड़त आनन्द सिन्धु महँ, मम मिलनहिं जिय जानि ।
करि सतसंगति सुख सनै, सब साधन फल मानि ॥६५॥

उस समय मेरा भक्त अपने हृदय में प्रेमियों के समागम को मेरे मिलन के समान ही जानकर आनन्द के सागर में डूब जाता है तथा सत्संगति को सभी साधनों का फल समझ उनके साथ सत्संग करता हुआ सुख में सना रहता है।

यथा तत्व जानत मोहिं प्रेमी । आपन तजै योग अरु क्षेमी ॥
शक्ति अचिन्त्य जानि मोहि भूपा । मगन रहत जन भाव अनूपा ॥

मेरे यथार्थ (तत्वतः) स्वरूप को, मेरा प्रेमी भक्त भली प्रकार जानता है अतः वह अपने योग और क्षेम का परित्याग किये रहता है। श्री राम जी महाराज कहते हैं कि– हे निमिकुल नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी! मेरे भक्तजन, मुझे अतुलनीय शक्ति सम्पन्न समझकर, उन्ही अनुपमेय विचारों में समाये रहते हैं।

मम प्रसाद नहिं सपनेहुँ सोचा । विचरत जग निर्मल मन रोचा ॥
मम जन जो परवत महँ रहई । पत्थर मित्र बनहिं तेहिं चहई ॥

मेरी कृपा से उसे कभी भी, किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती। इस प्रकार निर्मल मन वह आनन्द पूर्वक संसार में विचरण करता रहता है। यदि मेरे भक्त पर्वतों में भी निवास करते हैं तो वहाँ के पत्थर भी उनके मित्र बनने की कामना करते हैं।———

बान्धव बन्धु बनहिं सब चेते । स्वजन सुखद मृग सावक जेते ॥
प्रेमी जो बस नगर विशाला । जन समूह संकुल सब काला ॥

———वहाँ निवास करने वाले पशु–पक्षी और उनके बच्चे आदि जितने भी चैतन्य जीव हैं वे सभी उसके बन्धु, बान्धव व स्वजन बन जाते हैं। यदि मेरा प्रेमी, सर्व समय जन समूह से परिपूर्ण विशाल नगर में निवास करता है।———

शून्य समान लगत तेहिं काहीं । जग रस भूलि प्रेम प्रिय आहीं ॥
विपति बनै सम्पति तेहिं केरी । उत्सव बनत दुसह दुख ढेरी ॥

———तो वहाँ का वातावरण भी उसे एकान्त के समान ही प्रतीत होता है तथा वह संसारी आनन्द को भुलाकर मेरा प्रिय प्रेमी ही बना रहता है। संसारिक विपत्तियाँ ही उसके लिये सुख–कारक सम्पत्तियाँ बन जाती हैं तथा सांसारिक उत्सव (सुख के क्षण) उसके लिए असहनीय दुख के समूह बन जाते हैं।

दो०–प्रेमी हित असमाधि हूँ, अहै समाधि समान ।
बड़ दुखहूँ सुख सम्पदा, होत हिये महँ भान ॥६६॥

मेरे प्रेमी भक्त ध्यान–मग्न (समाधि में) न होने पर भी सदैव ध्यानावस्था (समाधि) में ही रहते हैं तथा संसार का बड़ा से बड़ा दुख भी उन्हे हृदय में सुख और वैभव के समान ही प्रतीत होता है।

मम जन केर बचन व्यवहारा । मौनहि अहै प्रेम पथ सारा ॥
ताके कर्म अकर्महिं मानो । भुने बीज सम कुँअर सुजानो ॥

मेरे सेवकों की वाणी के व्यवहार, प्रेम मार्ग के अनुरूप मननशील मुनियों के अनुसार ही होते हैं अर्थात् वे सदैव संतुलित वाणी का ही विनियोग करते हैं। हे कुमार! उनके द्वारा किये गये कर्मो को भुने हुए बीज के समान (अपरिणामी) अर्थात् कर्म फल न प्रदान करने वाले, समझना चाहिये।

जागृत मध्य सुषुप्ति समाना । रहत सुप्रेमी भान भुलाना ।।
अह मम रहित सकल गुण खानी । मम जन नहि देहहिं अभिमानी ।।

मेरे सुन्दर प्रेमीजन जागते हुए भी, सोते रहने के समान अपने अस्तित्व को भुलाये रहते हैं अर्थात् सांसारिक व्यवहार करते हुये भी वे उनसे सर्वथा अछूते रहते हैं। मेरे सेवक अहंकार और ममकार से विहीन तथा समस्त गुणों की खान (कोष) होते हैं उन्हें अपने शरीर का किंचित भी अभिमान नहीं होता।

जीवित सो पै मृतक स्वरूपा । रहैं आत्म रत भाव अनूपा ॥
प्रेमी करैं सकल आचारा । वेद शास्त्र जस कहि निरधारा ॥

वे प्रेमीजन संसार में जीवित तो रहते हैं परन्तु शव के समान अर्थात् किसी संसारी कार्य को

करने व न करने की आसक्ति से रहित स्वरूप वाले, आत्मा में लीन अनुपमेय भाव भावित होते हैं। प्रेमी भक्त उन सभी नियमों व व्यवहारों का ही पालन करते हैं जिनका निर्धारण वेदों और शास्त्रों ने किया है।

कर्तापन निज त्यागे रहई। करतेहुँ काज अकरता अहई ॥
मम रस रसिक भक्त मम प्यारा। परम विरागी तदपि निहारा ॥

मेरे भक्त अपने कर्तापन के अभिमान का त्याग किये हुए कार्यरत होने पर भी अकर्त्ता अर्थात् कार्य करने की आसक्ति से अछूते रहते हैं। मेरे प्रिय भक्त परम वैरागी होते हुए भी मेरे नाम, रूप, लीला व धाम के रसास्वादन हेतु अत्यधिक लालायित बने रहते है।

दो०–यद्यपि प्रेमी आत्म रत, भूलि द्वेत अज्ञान।
तदपि सबहिं गिन बन्धु निज, करुणा करत सुजान ॥६७॥

हे परम सुजान श्री लक्ष्मीनिधि जी! मेरे प्रेमी भक्त यद्यपि अपने पराये के ज्ञान को भुलाकर सदैव आत्म–लीन रहते हैं तथापि सभी जगज्जीवों को अपना सगा भाई समझकर उन पर करुणा किये रहते हैं।–––

बन्धु समान सबहिं सो नेहा। करत यदपि पै बनो विदेहा ॥
तृष्णा शून्य स्वयं संतोषी। पर हित तृष्णा रख उर कोषी ॥

–––उनमें यद्यपि सभी के प्रति अपने भ्रातृ–सदृश स्नेह रहता है तथापि वे देहासक्ति से भी रहित होते हैं। वे स्वयं में, सभी प्रकार की कामनाओं से रहित एवं संतुष्ट रहते हैं फिर भी दूसरों के हित की कामना को अपने हृदय कोष में धारण किये रहते हैं।–––

यदपि बहिष्कृत सब आचारा। विधि निषेध पर भक्त उदारा ॥
तदपि तासु आचारहिं लोगा। कर अभिनन्दन मम संयोगा ॥

यद्यपि मेरे उदार भक्त, सभी प्रकार के आचार–विचारो का बहिष्कार (त्याग) किये हुए विधि–निषेध से परे होते हैं फिर भी जगज्जन मुझमें अनुरक्त होने के कारण सदा उनके आचार–विचारों का अभिनन्दन (स्वागत) करते हैं।

भय अरु शोक दुखद आयासा। शून्य रहै नित मेरो दासा ॥
पर दुख देखि तदपि दुख साना। देखि परै हिय प्रेम समाना ॥

यद्यपि मेरे सेवक, भय एवं शोक के दुखदायी प्रयासों (परिश्रम) से नित्य ही रहित रहते हैं तथापि दूसरो के दुखों को देखकर उनका प्रेम समाया हुआ हदय, दुख में सना दिखाई पड़ता है।

प्रेमानन्द रसिक मम प्रेमी। जग सों रहत विरक्त अक्षेमी ॥
प्राप्त वस्तु महँ द्वेष न रागा। अरु अप्राप्त अभिलाषहिं त्यागा ॥

मेरे प्रेमीजन सांसारिक आसक्ति और स्वयं की मंगल कामना से विरत (अलग रहते हुये) एवं मेरे प्रेमानन्द के रसिक होते हैं। उन्हें प्राप्त सांसारिक भोगों के प्रति उपेक्षा व आसक्ति नहीं होती और अप्राप्त भोगों के प्रति होने वाली लालसा का तो वे सर्वथा त्याग ही किये रहते हैं।

दो०– निज अनुकूलहिं पाइ जन, हिय मधि उछरत नाहिं।
दुसह दुखद प्रतिकूल लखि, नहिं विषाद मन माहिं ॥६८॥

मेरे भक्त अपने अनुकूल परिस्थितियों को प्राप्त कर हृदय में प्रसन्नता से फूलते नहीं तथा अत्यन्त असहनीय दुखदायी विपरीत परिस्थितियों को देखकर भी उनके मन में कोई दुख नही होता।

बैठ भक्त दुखिया जन वासा। दुख चर्चा करि दुखहिं प्रकाशा ॥
सुखिया सँग सुख गाथा गाई। रहै असंग स्वयं हिय भाई ॥

हे तात श्री लक्ष्मीनिधि जी! मेरे भक्तजन, दुखी व्यक्तियों के निवास में बैठकर दुखों की वार्ता करते हुये, दुख प्रगट करते हैं तथा सुखी जनों के साथ सुखों की कहानी कहते हैं परन्तु उनका हृदय स्वयमेव उन सभी स्थितियों (सुख–दुख) से विरत बना रहता है।

सुख दुख सब नहिं ताहि हराई। रहत एक रस मोहि हिय लाई ॥
शास्त्र विरोध न कर आचारा। किंचित मात्र कुँअर मम प्यारा ॥

सभी सुख और दुख मिलकर उहें पराजित नहीं कर सकते, वे सदैव मुझे हृदय में धारण किये हुये, एक समान स्थिति में बने रहते हैं। हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! मेरे प्रिय भक्त कभी भी रंच–मात्र शास्त्र–विरोधी आचरण नहीं करते।

सहज स्वभाव भक्त कर एहा। करत न चेष्टा बिनु श्रुति नेहा ॥
प्रेमी होय न कहुँ आसक्ता। नहिं आकस्मिक बनै विरक्ता ॥

मेरे भक्तों का तो सहज ही ऐसा स्वभाव होता है कि– वे श्रुति–निषिद्ध क्रिया कलाप (आचरण) कदापि नहीं करते। मेरे प्रेमीजन कहीं भी आसक्त नही होते और न सहसा विरक्त ही होते हैं।

धन याचन हित नहिं जग डोलैं। सदा अचाह भक्त मृदु बोलैं ॥
अस्मिति अभिनिवेश रिस रागा। पार अविद्या जन बड़ भागा ॥

मेरे भक्त कभी भी धनार्जन के लिए संसार में भ्रमण नही करते वे तो सदैव मधुर भाषी और निष्काम होते हैं। यद्यपि मेरे बड़ भागी भक्त अस्मिता (अभिमान), अभिनिवेश (मृत्यु भय जनित क्लेश), क्रोध (द्वेष), राग (संसारी आसक्ति) और अविद्या (विपरीत ज्ञान) आदि पंच क्लेशों के पार होते हैं।–––

तदपि रहै मोहि पर अति रागी। दासोऽहं मति विरहहिं पागी ॥
चिन्ता सून यद्यपि जन मोरा। तदपि सुचिन्तैं मोहिं विभोरा ॥

–––तथापि वे मुझ पर अत्यन्त आसक्त होते हैं। मैं भगवान का दास हूँ इस प्रकार की बुद्धि से युक्त एवं मेरे वियोग जन्य दुख में डूबे रहते हैं। यद्यपि मेरे सेवक निश्चिन्त मना (चिन्ता रहित मन वाले) होते हैं फिर भी वे विभोर बने हुये मेरा सुन्दर चिन्तन करते रहते हैं।

वीत राग यद्यपि हिय माहीं। ऊपर तदपि राग दरशाहीं ॥
दुख सुख से नित रहै अछूता। मम प्रेमी हिय मध्य सुपूता ॥

यद्यपि मेरे भक्तजन अपने हृदय में राग (संसारी आसक्ति) से रहित होते हैं फिर भी उनमें

वाह्य–दृष्ट्या (बाहर से देखने पर) राग के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। मेरे प्रेमीजन नित्य दुखों व सुखों के स्पर्श से रहित, परम पवित्र हृदय वाले होते है।–––

दो०– तदपि भक्त कहुँ कहुँ दिखत, दुखी सुखी सम भान ।
पर स्वभाव त्यागै नहीं, महा महात्मा कान ॥६९॥

–––फिर भी कभी–कभी मेरे अनुरागी भक्त दुखी और सुखी होते प्रतीत होते हैं परन्तु वे महान मनीषियों की मर्यादाओं का उल्लंघन न करने के अपने स्वभाव को कभी नही छोड़ते।

नाटक शाला यह जग मोरा । तेहिं के नट मम भक्त विभोरा ॥
जस जस पाठ उनहिं मिलि जाई । बनि असंग तेहिं करैं सुभाई ॥

यह संसार मेरा रंगमंच (अभिनय स्थल) है तथा इसके कुशल कलाकार मेरे प्रिय भोले भक्त होते हैं अतः उन्हें जैसा अभिनय करने हेतु निर्देशित किया जाता है वे उससे असंग बन कर वैसा ही सुन्दर अभिनय करते हैं।

नीर बुलबुला सम जग प्रीती । रहहिं अलिप्त राग रिस जीती ॥
यदपि अनेही तदपि सुदासा। करि वात्सल्य सुनेह प्रकाशा ॥

संसारी प्रीति को पानी के बुलबुले के समान क्षण–भंगुर समझ कर मेरे भक्त उससे सदैव अछूते रहकर आसक्ति व क्रोध (द्वेष) पर विजय प्राप्त किये रहते हैं। मेरे सुन्दर भक्त यद्यपि संसार के प्रति स्नेह रहित होते हैं तथापि वे सभी जीवों के प्रति वात्सल्य रखते हुए सुन्दर प्रेम प्रकट करते रहते हैं।

सब समर्थ तद्यपि असमर्था । इहै भक्त की बानि यथर्था ॥
निज–पर देह दोषमय देखी। यद्यपि कीन्हे घृणा विशेषी ॥

मेरे भक्तजन सर्व सामर्थ्यवान होते हुए भी सर्वथा असमर्थ बने रहते है यही मेरे भक्तों का सच्चा स्वभाव है। यद्यपि वे अपने और अन्य के शरीर को दोषों से युक्त देखते हुए उससे विशेष घृणा किये रहते हैं।–––

तदपि द्वेष नहिं हिय महँ थोरा। सब पर करहिं प्रीति रस बोरा ॥
सब गुण धाम मोर अनुरागी। दीन हीन बनि रहैं विरागी ॥
अतिहिं अकिंचन आपा खोये। आपुहिं रहैं सकल विधि गोये ॥

–––तथापि उनके हृदय में किसी जीव के प्रति रंचमात्र द्वेष नहीं होता, मेरे रस में मग्न रहते हुए वे सभी से प्रेम करते हैं। सभी गुणों के धाम मेरे अनुरागी भक्त, दीन–हीन और निरासक्त बन कर रहते हैं, वे अत्यन्त अकिंचन होकर अपना अस्तित्व भुलाये हुए, सभी प्रकार से स्वयं को छुपाये रखते हैं।

दो०–प्रकृति पार मम रूप सो, धरणी पावन हेतु ।
जन्म लिये जग महँ चरैं, थापैं मम रस सेतु ॥७०॥

प्रकृति से परे, मेरे ही स्वरूप वाले, मेरे भक्त भूमि को पवित्र करने के लिए जन्म धारण कर मेरे प्रेम रस के सेतु (मर्यादा) को स्थापित कर संसार में विचरण करते रहते हैं।

शिष्टाचार निरत मम दासा । तउ हिय भीतर शान्त प्रकाशा ॥
हिय आवेश कबहुँ नहिं आई । बाहर कहुँ कहुँ देय दिखाई ॥

मेरे भक्त सभी के साथ उत्तम व्यवहार करते रहते हैं फिर भी उनके हृदय के अन्दर शान्ति का आलोक छाया रहता है। उनका हृदय कभी भी उत्तेजित नहीं होता परन्तु कभी कभी बाह्य–द्रष्ट्या वे उत्तेजित भी दिखाई देते हैं।

अन्तर्मुखी वृत्ति गहि लीनी । प्रेम विभोर बुद्धि रस भीनी ॥
मोर ध्यान तजि अनत न जाई । क्षणमपि विरह न सहै अमाई ॥

मेरे भक्त स्वयं का अन्वेषण द्धस्वाध्यायद्ध करने वाले स्वभाव को धारण किये रहते हैं, प्रेम विह्वलता के कारण उनकी बुद्धि प्रेमरस से भीगी रहती है, मेरे चिन्तन के अतिरिक्त उनका चित्त अन्यत्र कही नहीं जाता तथा मेरे एक क्षण के वियोग को भी निर्मलमना मेरे भक्त नही सह सकते अर्थात ध्यानजनित सुख से वे कभी भी विलग नहीं होते।

मम बिनु जन जिमि जल बिनु मीना । तलफन लगत प्रेम परवीना ॥
मोहिं महँ सो विश्रामहि पावै । सपनेहु छोड़ि न मोकहँ जावै ॥

मेरे प्रेम पारंगत भक्तजन मेरे वियोग में उसी प्रकार तड़पते हैं जैसे जल के बिना मछली। वे मेरी सकासता में ही सुख व शान्ति का समनुभव करते हैं तथा स्वप्न में भी मुझसे अतिरिक्त कहीं नहीं होते।

दृढ़ चिन्तन रत जग सुख भूला । प्रेमी बनेउ सुमंगल मूला ॥
परमानन्द मगन दिन राती । सोवत शान्ति संग रस माती ॥

मेरे ऐसे प्रेमी भक्त सदैव दृढ़ता पूर्वक मेरे ध्यान में लगे हुए संसारी सुखों को सर्वथा त्यागकर सुमंगलो के मूल बने रहते हैं। वे अहोरात्रि परमानन्द में डूबे हुये, प्रेमरस में मतवाले होकर शान्ति सुख में समवगाहन करते रहते हैं।

दो०–परमातम रस नित चखैं, झूलत प्रेम हिलोर ।
उर लपटाये मोहि रहत, हर्षण हृदय विभोर ॥७१॥

वे नित्य ही परमात्मा के (मेरे) नाम, रूप, लीला व धाम का रसास्वादन करते हुए, मुझे हृदय से लगाये, प्रेम हिडोंर में झूलते हुए हर्ष पूर्वक हृदय विभोर बने रहते हैं।

ग्रहण त्याग नहिं प्रेमी माहीं । इच्छा और अनिच्छा नाहीं ॥
इक रस रमत मोहिं पर दासा । मन वच करम प्रेम रस रासा ॥

मेरे प्रेमी भक्तों में ग्रहण और त्याग करने की इच्छा और अनिच्छा का सर्वथा अभाव रहता है। वह भक्त मन बचन व कर्म से प्रेमानन्द में मग्न हुआ प्रत्येक परिस्थिति में मुझ में एक समान रमा (अनुरक्त बना) रहता है।

गुप्त प्रगट मम लीला स्वादा । मम जन लेत भरे अहलादा ॥
रोम रोम ते प्रेम सुसोती । निकसत रहत निरन्तर जोती ॥

मेरे भक्त जन आह्लाद में भरकर मेरी गुप्त और प्रगट लीलाओं का नित्य रसास्वादन करते रहते हैं तथा उनके रोम–रोम से लगातार प्रेम के परम प्रकाश परिपूर्ण सुन्दर स्रोत निकलते रहते हैं।

महा भाव रस छका हमारे । भक्त भाव मूरति तन धारे ॥
भीतर जस जन लहत अनंदा । निरखि निरखि मोहि निमिकुल चंदा ॥

हमारे प्रेमी भक्त मेरे महाभाव (प्रेमोच्च अवस्था) में छके हुए प्रेम भाव के विग्रह बने शरीर धारण किये रहते हैं। हे निमिकुल चन्द्र श्री लक्ष्मीनिधि जी! मुझे देख–देख कर मेरे भक्तजन अपने हृदय में जिस प्रकार का आनन्द प्राप्त करते हैं।–––

सो सुख केवल जानत सोई । मोकहँ दुर्लभ सो रस जोई ॥
अवर ताहि को जाननि हारा । सुर नर मुनि जे जगत मँझारा ॥

–––उस आनन्द को केवल वे ही जानते है, उस आनन्द का दर्शन तो मुझे भी दुर्लभ है। फिर उसे अन्य संसारी मनुष्य, देवता और मुनियों में से कौन जानने वाला है अर्थात् उस आनन्द को कोई भी नहीं जान सकता।

दो०–यह सब वरणी रसिक की, सुखद चिन्हारी भूप ।
तासु तनहिं जस चिन्ह रह, सो सब सुनहु स्वरूप ॥७२॥

श्री राम जी महाराज कहते हैं कि– हे निमिकुल नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी! यह सब मैने अपने रसिक जनों (प्रेमियो) के सुखदायी परिचय का उपरोक्त प्रकार से वर्णन किया है, अब उन सभी प्रेमियों के शरीर में दिखाई देने वाले लक्षणों की स्थिति को आप श्रवण कीजिये।

प्रथमहिं वाणी प्रेम प्रभावा । जानि परै सुनि सुहृद सुहावा ॥
सरल सरस शुचि सत्य सुबोली । मुख निकसत अमृत रस घोली ॥

मेरे प्रेमी जनों की वाणी में सर्व प्रथम प्रेम का प्रभाव दिखाई देता है जिसके कारण उनकी वाणी सुनते ही वे सभी को अपने सुन्दर मित्र समझ पड़ते हैं। उनकी सरल, रस पूर्ण, पवित्र, सत्य व सुन्दर वाणी मुख से निकलते ही सभी श्रवणवन्तों के हृदय में अमृत रस घोल देती है।

पर हित पगी प्रेम प्रिय देनी । दिव्य धाम की सुभग नसेनी ॥
तन मन सब सुठि कोमल होई । जग कहँ सुखद लेहिं जन जोई ॥

वह "वाणी" दूसरों के हित से सनी, प्रिय प्रेम प्रदायनी तथा परम धाम की सुन्दर सोपान (सीढ़ी) के समान प्रतीत होती है। उन प्रेमी भक्तों का सम्पूर्ण शरीर व मन, कोमल व समस्त संसार को सुख देने वाला हो जाता है, ऐसा सभी जन देखते हैं।

परशि शरीर तासु कर लोगा । पावहिं सुख पुनि प्रीति सुयोगा ॥
तन सौन्दर्य तेजमय भासा । मधुमय जग महँ करै प्रकाशा ॥

जगज्जन उनके शरीर का स्पर्श कर सुख एवं मेरे प्रेम के संयोग का लाभ प्राप्त करते हैं। उनके शरीर का सौन्दर्य तेजोमय आभासित होता है, जो अमृत स्वरूप और संसार में प्रकाश विखेरने वाला होता है।

सकल शरीर सुगन्धित होई। जानि परे जग कहँ मुद मोई॥
रमणी पुंसा मोहन होई। सब कर चित आकर्षत सोई॥

उनका सम्पूर्ण शरीर सुवासित होता है तथा संसार में सभी को वह आनन्द में समाया हुआ समझ आता है, जो स्त्री और पुरुष सभी को मोहित करने वाला व सभी के चित्त को अपनी ओर आकर्ष्रित कर लेने वाला होता है।

उत्तम थिति प्रिय प्रेमी केरी। जबहिं होय रसमयी उजेरी॥
तब मल मूत्र कुंगध बिलाई। मानहुँ निश्चय बात बताई॥

हे राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! मैं निश्चयात्मक बात बतला रहा हूँ कि– जब मेरे प्रेमियों की स्थिति रसमयी, प्रकाशमयी एवं अति उत्तम हो जाती है उस समय उनके मल और मूत्र की दुर्गन्धि समाप्त हो जाती है।

दो०–सत्य काम संकल्प सत, होवै प्रेमी मोर।
मो कहँ तजि चाहत नहीं, तीन लोक सुख थोर॥७३॥

मेरे प्रेमीजन पूर्ण–काम व सत्य–संकल्प होते हैं जो मुझे छोड़ कर तीनो लोकों के सुखों को अल्प समझते हुए उनकी कामना तक नही करते।

इन्द्र ब्रह्म पद तृण सम मानी। सार्व–भौम क्षण भंगुर जानी॥
भूलि गयो सुधिहूँ नहिं आवै। मोक्षहुँ चाह न ताहि सतावै॥

वे मेरे भक्त, देवराज इन्द्र और श्री ब्रह्मा जी के पद को भी तिनके (तृण) के समान तुच्छ तथा सार्वभौम सुख को क्षणिक समझते हुए उनकी स्पृहा (कामना) को भूल कर उनका स्मरण तक नहीं करते, यहाँ तक कि– मोक्ष की इच्छा भी उनके हृदय को छुब्ध नही कर पाती।

चाहत प्रेम पगे मोहिं काहीं। सब कैंकर्य निरत रस माहीं॥
मम गुण गाय नाम रट प्रेमी। पुलकित अंग बिसर सब नेमी॥

मेरे प्रेमीजन प्रेम में पगे हुए, केवल मुझे ही चाहते हैं तथा रस में मग्न हुए वे मेरे सभी प्रकार के कैंकर्य में लगे रहते हैं। मेरे गुणों का गायन व मेरे नाम की रट लगाते हुए प्रेमीजन पुलकित अंग हो संसार के सभी नियमों को भूल जाते हैं।

सात्विक चिन्ह उदित नव नेही। जग महँ विचरत बनो विदेही॥
कर्म ज्ञान अरु योग कहानी। कहै न कबहुँ प्रेम सुख सानी॥

मेरे प्रेमियों के शरीर में प्रेम के सभी सात्विक चिन्ह (अश्रु, स्वेद, रोमांच, पुलक, विवर्णता, गद्गद्ता, प्रलाप व मूर्छा) उदित बने रहते हैं और मेरे नवीन प्रेम में परिप्लुत हुए वे शरीर के भान को भूले हुए संसार में विचरण करते रहते हैं। वे मेरे प्रेमानन्द में मग्न रहते हैं व कर्म, ज्ञान और योग की

कथा भी नहीं कहते अर्थात् उनकी चर्चा तक नही करते।

कारण सुनहु ताहि कर प्यारे । सो सब साधन निरस निहारे ॥
जब लौ हृदय प्रेम नहिं होई । मम लीला महँ मति नहिं मोई ॥

हे प्रिय कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! उनके ऐसा करने का कारण सुनिये, मेरे प्रेमियों को कर्म, ज्ञान व योग आदि सभी साधन नीरस दिखाई देते हैं क्योंकि जब तक जीवों के हृदय में मेरे प्रति प्रेम नहीं होता, मेरे चरित्रों में उनकी बुद्धि विलीन नही होती,———

रूप रसिक बनि रस नहिं राता । नाम सुधा पी मन नहि माता ॥
तब लौ साधन करै सुसाधक । यथा वेद मत बनि अवराधक ॥

———मेरे रूप के रसिक बनकर वे प्रेमरस में अनुरक्त नही होते तथा मेरे नामामृत को पान कर उनका मन मतवाला नही होता तब तक साधक वेदों के मतानुसार कर्म, ज्ञान और योग आदि का आराधक बन कर भले ही सभी की साधना कर ले।———

दो०—प्रेम पाइ किमि सो करै, साधन अल्प सुदास ।
नर रसाल रस लहि यथा, गुठली तज बिनु आस ॥७४॥

———परन्तु परम प्राप्तव्य मेरा प्रेम प्राप्त करने के उपरान्त, मेरे भक्तजन इन तुच्छ साधनों (कर्म ज्ञान और योग आदि) का आश्रय उसी प्रकार क्यों ग्रहण करें? जिस प्रकार मनुष्य आम का रस ग्रहण कर गुठली से प्रयोजन न रख उसे त्याग देते हैं।

अतुलित महिमा भक्तन केरी । कहि न सकै श्रुति शेष निबेरी ॥
शारद गणप महा कवि मिलई । तदपि कहत नहिं महिमा खिलई ॥

मेरे भक्तों की महिमा अतुलनीय है जिसका बखान समस्त श्रुतियाँ और स्वयं सहस्त्र मुख शेष जी भी नही कर सकते। श्री सरस्वती जी, श्री गणेश जी और महा कवि श्री वेदव्यास जी भी यदि मिल जायें तब भी उनकी महिमा के वर्णन को पूर्ण करने के उपरान्त का आनन्द नहीं प्राप्त कर सकते।

प्रेमिन पीछे हौं नित डोलौं । तिन पद रज लहि पावन बोलौं ॥
प्रेमिन पदहिं परशि सुर सरिता । होत पुनीत महा मुद करिता ॥

स्वयं मैं (श्री राम जी) भी नित्य अपने प्रेमियों के पीछे–पीछे चलता हूँ तथा उनके चरणों की रज (धूल) को अपने शीश मे धारण कर अपने आप को पवित्र मानता हूँ। देवनदी श्री गंगा जी भी प्रेमियों के चरणों का स्पर्श कर ही पवित्र और महान आनन्दकारी बनी हुई हैं।

त्रिभुवन पावन करन समर्था । मम प्रेमिन की शक्ति यथर्था ॥
सो कुल धन्य धन्य सो देशा । जन्म लेत जहँ भक्त नरेशा ॥

वस्तुतः मेरे प्रेमियों की शक्ति तो तीनों लोकों को भी पवित्र करने में समर्थवान है। हे निमिकुल नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी! वह कुल और देश धन्यातिधन्य है जहाँ मेरे प्रेमी भक्त जन्म धारण करते हैं।

भक्त जन्म सुर मनुज समेते। होत मुदित मन पितर पिरीते ॥
भूमि मगन मन मोद विशेषी। प्रेमी भक्त जन्म प्रिय पेखी ॥

मेरे भक्तों के जन्म धारण करने से देवता व मनुष्य सहित पितर लोग भी प्रीति प्रपूरित हो मन में आनन्दित होते हैं, यहाँ तक कि– श्री भूदेवी (पृथ्वी) भी मेरे प्रेमी भक्तों का प्रिय जन्म देखकर मन में विशेष आनन्दित होती है।

दो०– जहँ जहँ प्रेमी पग धरैं, तहँ तहँ तीरथ होय।
सकल पाप मोचन करैं, मोह नशै थल जोय ॥७५॥

मेरे प्रेमी भक्तजन जहाँ–जहाँ अपने चरण रखते हैं अर्थात् जहाँ–जहाँ निवास करते हैं, वहाँ–वहाँ पवित्र तीर्थ प्रगट हो जाते हैं जिनके दर्शन करने से जीवों के सम्पूर्ण पाप व मोह आदि विकार विनष्ट हो जाते हैं।

जो बोलैं सो शास्त्र कहावै। तेहिं पथ चलत जीव सुख पावै ॥
जो कछु करहिं हमारे दासा। सो सत कर्म मोक्ष परकाशा ॥

वे (मेरे प्रेमी भक्त) मुख से जो कुछ भी कहते हैं वही शास्त्र कहलाता है और उसी मार्ग में चलकर सभी जीव सुख को प्राप्त करते हैं अर्थात् मेरे प्रेमियों का अनुसरण करके ही जगज्जीव सच्चे सुख की सम्प्राप्ति करते हैं। हमारे भक्तजन जो भी कर्म करते है वही कर्म सच्चे और मोक्ष प्रदान करने वाले कर्म होते हैं।

तिनके दरश परश प्रिय पाई। पाप ताप अरु दैन्य दुराई ॥
प्रिय प्रेमी कर लहि सतसंगा। सुजन रँगैं सब मोरे रंगा ॥

उनके (भक्तों के) प्रिय दर्शन और स्पर्श को प्राप्त कर जीवों के पाप, त्रिताप (दैहिक, दैविक व भौतिक) और दैन्यता दूर हो जाती है। मेरे प्रिय प्रेमियों का सत्संग प्राप्त कर सभी सज्जन मेरे रँग में रंग जाते हैं अर्थात् मेरे परायण हो जाते हैं।

प्रेमी संत सेव जो करहीं। सो मोहि सब विधि वश महँ करहीं ॥
प्रेमी सत सत मोर स्वरूपा। तनिक भेद नहिं निमिकुल भूपा ॥

मेरे प्रेमी संतजनों की सेवा जो कोई करता है वह मुझे सभी प्रकार से अपने आधीन कर लेता है। हे निमिकुल नरेश श्री लक्ष्मी निधि जी! यथार्थतः मेरे प्रेमीजन मेरे ही स्वरूप होते हैं। उनमें और मुझमें रंचमात्र भी अन्तर नहीं होता।

जो कोउ प्रेमिहिं गर्व दिखावै। छोट जानि अपमान करावै ॥
पावहिं भय अतिशय नर सोई। भुगतै जन्म अनंतन रोई ॥

जो कोई भी, मेरे प्रेमी भक्तों को अपनी श्रेष्ठता का अभिमान दिखाकर, उन्हे छोटा समझ अपमानित करता है, वह मनुष्य अत्यधिक भय को प्राप्त कर अनन्त जन्मों तक दुख भोगता हुआ रुदन करता रहता है।

दो०–विपुल बड़ाई भक्त कहँ, देउँ जगत के बीच ।
ब्रह्मादिक पूजन करैं, सुर नर मुनि रस सींच ॥७६॥

मैं अपने भक्तजनों को संसार में अत्यधिक कीर्ति प्रदान करता हूँ जिससे श्री ब्रह्मा जी आदि त्रिदेव भी उनकी पूजा करते हैं और देवता, मनुष्य तथा मुनिजन भी उनके प्रेम–रस से अभिभूत हो जाते हैं।

तात स्वयं मैं साधुन सेवा । करौं सदा गुनि आपन देवा ॥
शीश झुकाय सुँपाव दबावौं । निज कर भोजन तिनहिं पवावौं ॥

श्री राम जी महाराज कहते हैं कि– हे तात श्री लक्ष्मी निधि जी! संतजनों को अपना इष्ट समझकर समस्त लोकों का स्वामी मैं स्वयं उनकी सेवा में सदैव तत्पर रहता हूँ, सिर को झुकाये हुये उनके सुन्दर चरणों को दबाता हुआ उनकी सेवा करता हूँ तथा अपने हाथों से उन्हे भोजन पवाता हूँ।

बिजनहिं झलत शान्ति सुख देवौं । ताप मिटाय प्रेम सों सेवौं ॥
प्रेमी बद गृह कारज करहूँ । सदा सचेत तासु हित चरहूँ ॥

उनके श्रमित हो जाने पर मैं स्वयं पंखा झलकर उनको शान्ति सुख प्रदान करता हूँ तथा उनके दैहिक, दैविक व भौतिक तापों का शमन कर प्रेम पूर्वक उनकी सेवा करता रहता हूँ। प्रेमियों के स्थान पर मैं उनके गृह कार्य स्वयं करता हूँ तथा उनके हित के लिए सदैव सजग बना रहता हूँ।

चाकर बनि तेहिं वस्त्र पछारौं । अपने कर सब काम सम्हारौं ॥
भार वहौं सब निज सिर धारी । प्रमुदित योग क्षेम रखवारी ॥

मैं उनका (अपने भक्तों का) सेवक बनकर उनके वस्त्रों को स्वच्छ करता हूँ और अपने हाथों से उनके सभी कार्यो को सँवारता रहता हूँ। इस प्रकार उन प्रेमियों के सभी उत्तर–दायित्वों को स्वयं वहन करता हुआ, आनन्दित हो उनके योग (अप्राप्ति को जोड़ना) और क्षेम (प्राप्ति की सुरक्षा) की रखवाली करता रहता हूँ।

नारि चहै नारी बन जाऊँ । पती चहै पति रूप लखाऊँ ।।
पुत्र चहै मोहि बनि सुत रूपा । देवहुँ सुख वात्सल्य अनूपा ।।

यदि मेरा भक्त मुझे स्त्री रूप में चाहता हैं तो मै उसकी स्त्री बन जाता हूँ, यदि वह पति रूप में मेरी कामना करता है तो मैं उसका पति बन जाता हूँ, यदि वह मुझे पुत्र रूप में प्राप्त करना चाहता है तो मैं उसका पुत्र बनकर उसे अनुपमेय वात्सल्य सुख प्रदान करता हूँ।

दो०–पिता बनावन जो चहै, बनउँ पिता तेहिं केर ।
गोद लिये चुम्बन करउँ, आनन्द वितरि घनेर ॥७७॥

यदि मेरे भक्तजन मुझे अपना पिता बनाने की लालसा करते हैं तो मैं उनका पिता बनकर उन्हे गोद मे ले, चुम्बन करता हुआ सघन (अतिशय) आनन्द वितरित करता हूँ।

मैत्री करन चहै जन मोरा । बनउँ मित्र सुख देत अथोरा ॥
चाहै दास बनन जो प्रेमी । बनउँ स्वामि तेहिं कर सत नेमी ॥

मेरे भक्त, यदि मुझसे मित्रता करना चाहते हैं तो मैं मित्र बनकर उन्हे अपार आनन्द प्रदान करता हूँ, यदि मेरा प्रेमी (भक्त) मेरा सेवक बनने की कामना करता है तो मैं उसका स्वामी बन जाता हूँ यही मेरा सच्चा नियम (व्रत) है।

जन हित करौं काम अति नीचा । सहज स्वभाव मोर रस सींचा ॥
स्वजन कष्ट मैं निज मधि लेवौं । करि सुख रूप तासु प्रिय देवौं ॥

मैं अपने भक्तजनों के लिए छोटा से छोटा (घृणित) कार्य भी करता हूँ ऐसा मेरा सहज और रसमय स्वभाव है। मैं अपने भक्तों के दुखों को स्वयं अपने ऊपर ले, उन्हे सुखी बनाकर उनका प्रिय अभीष्ट प्रदान कर देता हूँ।

प्रेमी बैर करहिं जे प्राणी । ते मम बैरी गिनहु महानी ॥
संत बैर करि मोहि ते बैरा । करैं जगत सत कहौं न ऐरा ॥

हे राज कुमार! जो लोग मेरे प्रेमी भक्तों से शत्रुता करते हैं उन्हे मेरा महान शत्रु ही समझिये, मैं सत्य कहता हूँ, व्यर्थ नही कि– संत–जनो से द्वेष कर संसारी–जन मुझसे ही शत्रुता करते हैं।–––

प्रतिफल सब जग ताकर बैरी । होय कबहुँ नहि सुखी अभैरी ॥
चक्र सुदर्शन काटन हेता । पीछे फिरत जरावत चेता ॥

–––भक्त जनों से शत्रुता करने का प्रतिफल यह है कि– सम्पूर्ण संसार उसका शत्रु बन जाता है तथा वह कभी भी सुखी और अभय नही हो पाता बल्कि उसे टुकड़े–टुकड़े कर देने के लिए, मेरा सुदर्शन चक्र सजगतया उसके पीछे उसे जलाता हुआ घूमता रहता है।

दो०–अतुलित महिमा भक्त की, को जग जानन वार ।
वशी रहत तिनके सदा, हौं हूँ जातो हार ॥७८॥

मेरे भक्तजनों की महिमा अतुलनीय है, उसे संसार में कौन जानने वाला है अर्थात् कोई भी नहीं जान सकता क्योंकि, स्वयं मैं भी सदैव उनके आधीन रहते हुए उनसे पराजित बना रहता हूँ।

भक्त वाक्य मोहि पालन परई । अघटित घटै तासु अनुहरई ॥
घटित होय अघटित सुनु राजा । भगत मान राखब मम काजा ॥

हे निमिकुल नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी! सुनिये, अपने भक्तजनों के आधीन होने से मुझे उनके वचनों का पालन करना पड़ता है चाहे उसका अनुसरण करने में असंम्भव भी सम्भव तथा सम्भव असम्भव क्यों न हो जाय क्योंकि अपने भक्तजनों का सम्मान बनाये रखना ही मेरा कार्य हैं।

भक्त चाह मम जानहु चाहा । भक्त सुखहिं सुख गिनौं अथाहा ॥
प्राणाधिक मोहिं भक्त पियारे । तिनके हेतु आत्म कहँ हारे ॥

आप मेरे भक्त जनों की इच्छा को मेरी ही इच्छा जानिये, मैं अपने भक्तों के सुख को अपना

असीम सुख समझता हूँ, मुझे मेरे भक्त प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं और उनके लिए मैं अपनी आत्मा को भी न्योछावर किये रहता हूँ।

भक्तन हृदय करौं मैं वासा । हमरे हृदय सो हरषण दासा ॥
प्रेमी विरह तनिक नहिं सहऊँ । बेसुध विकल मही महँ परऊँ ॥

मैं स्वयं अपने भक्तों के हृदय में निवास करता हूँ तथा हमारे हृदय में हर्ष से भरे हुए हमारे भक्तजन निवास करते हैं। मैं अपने प्रेमी भक्तों के किंचित वियोग को भी नही सहन कर पाता तथा उनके विरह में अचेत व व्याकुल हो भूमि में गिर पड़ता हूँ।———

तलफत रहउँ ताहि बिन देखे । मिलन आश धरि प्राण विशेषे ॥
प्रेमी संग सरस सुखदाई । छक्यो रहौं रस सिन्धु समाई ॥

———मैं उनके दर्शन के बिना सदैव व्याकुल रहता हूँ तथा विशेष रूप से उनके मिलने की लालसा में ही अपने प्राण धारण किये रहता हूँ। मैं अपने प्रेमियों की रसमयी व सुखदायी संगति के आनन्द सागर में समाये हुए छका रहता हूँ।

दो०—प्रेमी कर बनि रूप मैं, देवौं आपहिं खोय ।।
मोर रूप बनि भक्त वर, आपुहिं देवै गोय ॥७९॥

मैं स्वयं प्रेमी (भक्त) का स्वरूप बनकर अपने अस्तित्व को भूल जाता हूँ तथा मेरे श्रेष्ठ भक्तजन मेरा स्वरूप बनकर अपने आप को मुझ में विलीन कर देते हैं।

कैसो वर अद्वैत पियारा । हमहिं तुमहिं जस अहैं कुमारा ॥
रक्त चुवत तन कुष्ट कुरूपा । रटै राम जो भक्त अनूपा ॥

हे कुमार! हमारे भक्तों और हममे कैसी सुन्दर अभिन्नता है, जैसी कि– हममे और आप में है। यदि मेरे अनुपमेय प्रिय भक्त का शरीर अत्यन्त कुरूप भी है तथा कोढ़ रोग से ग्रस्त होने के कारण खून भी टपक (निकल) रहा है परन्तु यदि वह मेरे सुमधुर नाम (सीताराम) की रट लगाये हो (मेरे नाम का संकीर्तन कर रहा हो)———

विधि सों अधिक ताहिं मैं मानौं । हिय लगाय आपन सुख जानौं ॥
प्रेम बिना विधि कीट समाना । निश्चय तात हिये मैं आना ॥

———तो मैं उसे श्री ब्रह्मा जी से भी अधिक मानता हूँ और अपना समझ हृदय से लगा कर सुखी होता हूँ। परन्तु हे तात ! प्रेम के अभाव में श्री ब्रह्मा जी भी लघु कीड़े के समान हैं, ऐसा अपना दृढ़ निश्चय, मैं हृदय में धारण किये रहता हूँ।

शूद्रहुँ जाति जन्म किन होई । ब्राह्मण अहै भक्त नर सोई ॥
जाति परीक्षा भक्तन केरी । मातृ योनि पेखन सम हेरी ॥

मेरे भक्तजनों का जन्म, यदि शूद्र जाति में भी हुआ हो तो भी वे ब्राह्मणों के समान ही पूज्य हैं। मेरे भक्तों की जाति का परीक्षण करना अपनी माता की योनि को परखने के समान निकृष्ट कार्य है।

साधुन कर किंचित अपचारा । नहिं सहि जात हमहिं सुकुमारा ॥
ताते सुजन असह अपचारा । कबहुँ न करैं शोक कर द्वारा ॥

हे राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी। संत–जनों का किंचित भी अपचार हमसे सहन नहीं होता अतः शोक के द्वार के समान संतजनों के अपचार (भक्तापचार) को सज्जन लोग कभी नहीं करते हैं अर्थात् सन्त–जनों (भक्तापचार) का अपचार कभी नहीं करना चाहिये

दो०– लोकपाल दिगपाल जे, ब्रह्मादिक सुर वृन्द ।
जन विरोध उबरहिं नहीं, भोगत बहु दुख द्वन्द ॥८०॥

मेरे भक्तों का विरोध करने से लोकपाल, दिग्पाल तथा श्री ब्रह्मा जी आदि देव समूह भी नही बच पाते और वे भी उसके परिणाम स्वरूप बहुत से दुखों और उपद्रवों (दुविधाओं) को भोगते रहते हैं।

यद्यपि शीतल संत सुजाना । तदपि तेज पावक परमाना ॥
संत न होवैं जगत मझारी । तो जरि जाय सृष्टि विधि वारी ॥

यद्यपि सर्वज्ञ संतजन अत्यधिक शान्त होते हैं तथापि उनका तेज अग्नि के समान अनुभव में आता है। यदि संतजन संसार के मध्य नहीं होवें तो श्री ब्रह्मा जी की बनायी हुई यह सम्पूर्ण सृष्टि ही जलकर भस्म हो जाय।

परमैकान्तिक भक्त प्रधाना । भजन करैं जग भले न जाना ॥
तदपि करैं सब कर कल्याना । जग सेवा की सीम सुजाना ॥

हमारे भक्तजन, मुख्य रूप से परम एकान्त स्थल में हमारा भजन करते हैं, चाहे वे संसार को भले ही न जानते हों फिर भी वे सुजान भक्त सभी का कल्याण ही करते हैं और संसार में सेवा की पराकाष्ठा होते हैं अर्थात् वे संसार की जैसी सेवा करते हैं वैसी सेवा कोई नहीं कर सकता।

अति दयालु परमारथ रूपा । मम नेही सब सिद्धन भूपा ॥
तेहिं प्रतिकूल प्रकृति नहिं करई । पाँच भूत सेवा अनुसरई ॥

मेरे स्नेही भक्त अत्यन्त दयालु, परमार्थ–स्वरूप एवं सभी सिद्धों के भूप (नरेश) होते है। उनके विपरीत कार्य, प्रकृति भी नही कर पाती अपितु पाँचो भूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) उनकी रुचि के अनुसार ही अपनी सेवा करते हैं।

देखत रहै मोहिं अठ यामा । प्रिय प्रेमी रस रूप ललामा ॥
देखत हमहुँ ताहि दिन राती । तद्यपि नयन रहहिं ललचाती ॥

मेरा प्रिय प्रेमी भक्त मेरे रसमय व परम सुशोभन स्वरूप का आठों प्रहर दर्शन करता रहता है। यद्यपि हम भी दिन–रात उसे देखते रहते हैं तथापि हमारे नेत्र उसे देखने हेतु लालायित ही बने रहते हैं।

दो०–तासु चरित निशिदिन सुनहुँ, और सकल बिसराय ।
प्रेम विवश सुधि भूलि निज, इक प्रेमिहिं रह ध्याय ॥८१॥

मैं अन्य सभी कार्यो को भूलकर अपने प्रेमी भक्तों के चरित्रों को अहोरात्रि (दिनरात) श्रवण करता रहता हूँ तथा उनके प्रेम के आधीन हुआ अपनी स्मृति भुलाकर एकमात्र अपने प्रेमी भक्त का ही ध्यान करता रहता हूँ।

प्रेमी मुख मैं भोजन पावौं। ग्रास ग्रास प्रति अतिहिं अघावौं ॥
जो कहुँ मिलै तासु उच्छिष्टा। का वरणौ मन मोद घनिष्टा ॥

अपने प्रेमियों के मुख से ही मैं भोजन ग्रहण करता हूँ तथा प्रत्येक कवल में अत्यधिक तृप्ति का समनुभव प्राप्त करता हूँ। यदि कहीं उन प्रेमियों की जूँठन प्रसादी मिल जाती है तो, उस समय मुझे ऐसा आनन्द प्राप्त होता है कि– अपने मन के उस महान आनन्द का मैं वर्णन ही नही कर सकता।

प्रेमिहिं लावन हृदय मझारी। ललचत रहौं सुबानि हमारी ॥
जो कहुँ लाय हृदय निज लेहूँ। आनँद सिन्धु पगउँ अस नेहू ॥

मैं अपने प्रेमी भक्तों को हृदय से लगाने के लिये लालायित बना रहता हूँ, हमारा ऐसा ही सुन्दर स्वभाव है। संयोग से यदि मैं, उन्हें हृदय से लगाने का अवसर पा जाता हूँ तो फिर आनन्द के महासागर में डूब जाता हूँ, उनके प्रति मेरा ऐसा स्नेह है, कि –––

छोड़न चाह तनिक नहिं होई। सुधि वियोग तड़पावत मोई ॥
माला गंध तासु की धारी। मानत पाय सखे सुख भारी ॥

–––उसको छोड़ने की रंचमात्र भी मेरी इच्छा नहीं होती बल्कि उसके वियोग की स्मृति मुझे विकल (विह्वल) बना देती है। हे प्रिय सखे, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! मैं अपने प्रेमी भक्तों की धारण की हुई प्रसादी माला और इत्र आदि को पाकर महान सुख का अनुभव करता हूँ।

भक्त धरैं जहँ अपनो पादा। निज कर धरउँ तहाँ अहलादा ॥
याही ते नित तव मुख चंदा। बनि चकोर चितवहुँ सानंदा ॥

मेरे भक्तजन जहाँ अपने चरण रखते हैं वहाँ अति आह्लाद पूर्वक मैं अपने हाथ (कर–कमल) रख देता हूँ। हे राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! मैं इसी कारण से आपके आपके मुख चन्द्र को चकोर बनकर आनन्द पूर्वक को निहारता रहता हूँ। –––

दो०–पपिहा सम पी पी रटत, रूप स्वाति के हेत।
दरश बूँद लहि प्रेम पगि, पावौं मोद सुचेत ॥८२॥

–––तथा जिस प्रकार स्वाती नक्षत्र के जल की एक बूँद के लिये पपीहा दिन–रात पी–पी की रट लगाये रहता है उसी प्रकार मैं अपने भक्तजनों के दर्शन के लिए उनका नाम रटते हुये उनके दर्शन रूपी जल की एक बूँद प्राप्त कर प्रेम में डूब आनन्द और संतृप्ति का समनुभव करता हूँ।

जल वियोग जिमि तलफत मीना। भक्त विरह तिमि रहौं मलीना ॥
प्रेमिहिं लखि निज आतम भूलउँ। जिमि पंतग दीपक अनुकूलउँ ॥

जिस प्रकार जल के वियोग में मछली व्याकुल हो तड़पने लग जाती है उसी प्रकार मैं भी अपने भक्तजनो के वियोग में दुखी हो तड़पता रहता हूँ तथा जिस प्रकार फतिंगा (शलभ) दीपक को देख,

उसमें जल कर भस्म हो स्वयं को समाप्त कर देता है, उसी प्रकार मैं भी प्रेमी जनों का दर्शन कर अपनी आत्मा को भी भूल जाता हूँ।

प्रेमी मुख निकसत प्रिय बानी । मृग सम सुनहुँ प्रेम रस सानी ॥
मोर प्यार प्रेमी हिय माहीं । अकथ अपार अनंत सदाहीं ॥

प्रेमियों के मुख से निकली हुई प्रिय वाणी को मैं उसी प्रकार प्रेम रस में डूब कर श्रवण करता हूँ जिस प्रकार मृग (हिरण) वीणा–नाद को। प्रेमियों के हृदय कोष में, मेरा अकथनीय, असीम और अनंत प्यार सदैव समाया रहता है।

मृग पतंग पपिहा बड़ शूरा। मीन चकोर प्रेम पथ पूरा ॥
इनहूँ सो अति अधिक सुत्यागा । प्रेमी करै पगा अनुरागा ॥

क्योंकि, प्रेम मार्ग के पूर्ण पथिक तथा महान शूरवीर मृग, फतिंगा, पपीहा, मछली व चकोर आदि से भी अत्यधिक सुन्दर त्याग मेरा प्रेमी भक्त मेरे अनुराग मे पगा हुआ करता है।

महिमा तासु कवन विधि कहऊँ । बनि ऋणियाँ जिनके वश रहऊँ ॥
केवल अनुभव भक्तन केरा । करि हिय नित सुख लहौं धनेरा ॥

मैं अपने भक्त–जनों की महान–महिमा का बखान किस प्रकार से करूँ, क्योंकि, जिनके ऋणी (कर्जदार) बनकर मैं स्वयं उनके वशीभूत रहता हूँ। मैं तो अपने प्रेमी भक्तों का मात्र, अपने हृदय में नित्य अनुभव कर, अपार सुख प्राप्त करता हूँ।

दो०– मोहि मिलावन हेतु इक, प्रेमी पूर्ण समर्थ ।
ताते सज्जन करहिं नित, प्रेमिन प्रेम यथर्थ ॥८३॥

श्री राम जी महाराज कहते हैं कि– हे राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! मेरी प्राप्ति कराने में एकमात्र मेरा प्रेमी भक्त ही पूर्ण रूप से समर्थ होता है। इसलिए सज्जनों को चाहिये कि– वे नित्य मेरे प्रेमियों से ही सच्चा प्रेम करें।

कुँअर प्रेम महिमा अति न्यारी । प्रेमिन दियो बड़ाई भारी ॥
प्रेमाधीन तात हौं होऊँ । परम स्वतंत्र जान सब कोऊ ॥

हे कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! प्रेम की महिमा अत्यन्त विलक्षण है जिसने प्रेमियों को महान यश प्रदान किया है। हे तात! मेरे इस तथ्य को सभी जानते हैं कि– मैं सर्व तन्त्र स्वतन्त्र हूँ तथापि अपने प्रेमियों के प्रेम के वशीभूत हो जाता हूँ।

परम ईश विभु महा समर्था। प्रेम विवश सो सतत यथर्था ॥
प्रेम पास बन्धि पंगुल होई। अनत न जाइ सकौं सब खोई ॥

सभी का परम ईश्वर, विभु तथा महान सामर्थ्य शाली होकर भी मैं यथार्थतया (सत्य रूप से) हमेशा प्रेम के आधीन रहता हूँ तथा प्रेम के बन्धन में बँध, पंगु (लँगड़ा) होकर सभी कुछ भूल अन्यत्र जाने में असमर्थ रहता हूँ।

प्रेम छोड़ि मोहिं कौनहुँ साधन। नहि समर्थ अपने वश बाँधन॥
कर्म सुयोग ज्ञान विज्ञाना। ये सब साधन वेद बखाना॥

प्रेम के अतिरिक्त अन्य कोई साधन (कर्म, ज्ञान, योग व विज्ञान आदि) मुझको अपने वश में करने में समर्थ नही हैं। क्योंकि वेदों में वर्णित कर्म, ज्ञान, योग और विज्ञान आदि सभी साधन———

भुक्ति मुक्ति के देवन हारे। मोहि वश करहिं न निमिकुल तारे॥
प्रेम पाइ सरवस रस रूपा। ताहि चखत भरि भाव अनूपा॥
नित नव चहत न चाखि अघाऊँ। परम रसिक सत मोर सुभाऊ॥

———सभी प्रकार के श्रुत व दृष्ट भोगों और सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य व सारूप्य आदि मोक्षों को प्रदान करने वाले तो हैं परन्तु हे निमिकुल कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! वे मुझे वश में नहीं कर सकते। रस स्वरूप "प्रेम" को प्राप्त कर मैं सर्वस्व पा लेता हूँ तथा अनुपमेय भाव में भरकर उसका आस्वाद ग्रहण करता हूँ। यथार्थतः मेरा स्वभाव ऐसा है कि– परम रसिक मैं यद्यपि नित्य नवीन प्रेम रस का आस्वाद ग्रहण करता रहता हूँ तथापि उसे ग्रहण करने में किंचित तृप्ति नहीं प्राप्त करता।———

दो०–बनि अधीन ताते रहौं, निज स्वारथ के हेत।
जिमि मधुकर मधु लुब्ध बनि, कमल तजन नहिं चेत॥८४॥

———इसीलिए अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु मैं प्रेमियों के "प्रेम" के आधीन उसी प्रकार बना रहता हूँ जिस प्रकार मधु (पराग) लोभी भ्रमर को, कमल छोड़ने का ध्यान ही नहीं रहता।

प्रेमहिं साधन करि जनि जानेउ। मोर रूप अव्यक्त महानेउ॥
आतम सार प्रेम जिय जानी। सज्जन सुखी हृदय तेहिं आनी॥

हे कुमार! आप "प्रेम" को साधन नहीं समझिये बल्कि प्रेम तो मेरा अव्यक्त और महान स्वरूप ही है। अपने हृदय में प्रेम को आत्मा का सार तत्व समझकर सज्जन वृन्द उसे हृदय में धारण कर सुखी होते हैं।

प्रेमाधीन जगत व्यवहारा। प्रेम बिना नहिं सृष्टि प्रकारा॥
प्रेम बिना नहिं जग की चेष्टा। प्रेमहिं सब को बनेउ वरेष्टा॥

प्रेम के आधीन ही संसार के सभी व्यवहार हैं, प्रेम के बिना सृष्टि का विस्तार भी सम्भव नहीं है, प्रेम के बिना संसार की कोई चेष्टायें नहीं होती तथा प्रेम ही सभी जीवों का सुन्दर "परम प्राप्तव्य" होता है।

प्रेम बिना जीवन नहिं रहई। प्रेम बिना कोउ काहु न चहई॥
निरस प्रेम बिनु सब संसारा। प्रेम तत्व महिमा बरियारा॥

प्रेम के बिना लोग जीवन धारण करने में असमर्थ रहते हैं, यदि प्रेम न हो तो किसी की अपेक्षा ही न हो, तथा प्रेम के अभाव में सम्पूर्ण संसार नीरस प्रतीत होता है। इस प्रकार इस प्रेम तत्व की महिमा अत्यन्त ही महान (बलवान) है।

प्रेम बिना सृष्टी लय होई । प्रेमहिं ते हम शान्ति समोई ॥
प्रेम बिना हमहूँ कछु नाहीं । व्यापक प्रेम सकल दरशाहीं ॥

हे राज कुमार! प्रेम के अभाव में यह सृष्टि ही समाप्त हो जाती है, प्रेम के आधार से ही हम शान्ति में समाये रहते हैं तथा प्रेम के बिना हमारा भी अस्तित्व नही रहता। अतः प्रेम ही सर्वत्र समाया हुआ दृष्टिगोचर होता है।

दो०–प्रेम तत्व लखि सुजन जन, राग द्वेष भय त्यागि ।
अह मम तजि पुनि सरस ह्वै, रहैं मोहि अनुरागि ॥८५॥

प्रेम तत्व का दर्शन करके ही सज्जन वृन्द राग, द्वेष, भय, अहंकार व ममकार को त्यागकर रसमय बने हुए मुझ पर अनुरक्त रहते हैं।

प्रेम देव दुख दोष मिटाई। प्रेमिहिं अमृत देय बनाई ॥
जहाँ प्रेम तहँ काम न रहई । काम जहाँ तहँ नेह न बहई ॥

श्री प्रेम–देव जी, जीवों के सभी दुख और दोषों को मिटाकर अपने आश्रयी "प्रेमी" को अमृत स्वरूप बना देते हैं। जहाँ प्रेम होता है वहाँ किसी प्रकार की "कामना" नही रहती तथा जहाँ विभिन्न प्रकार की कामनायें होती हैं वहाँ ''प्रेम'' को प्रवाह नही हो सकता।

द्रवमय प्रेम स्वभाव सुजाना । त्रिगुणातीत वस्तु नहिं आना ॥
जो कछु परै प्रेम द्रव माहीं । आत्मसात हो संशय नाहीं ॥

हे परम सुजान श्री लक्ष्मीनिधि जी! प्रेम स्वाभाविक ही द्रवमय (तरल) होता है तथा तीनो गुणों (सत, रज व तम) से परे है। प्रेम ऐसा तत्व है जिसकी समता में अन्य कुछ भी नहीं है। प्रेम–द्रव में जो भी मिल जाता है उसे वह आत्मसात कर अपने समान (प्रेममय) बना लेता है, इसमें किंचित भी संदेह नहीं है।

बज्र पषान द्रवहिं तेहिं पाई । यथा मोम पावक बिच आई ॥
प्रेम परस लहि कुटिल कठोरा । द्रवैं द्रुतहिं निमिवंश किशोरा ॥

"प्रेम" को प्राप्त कर अतिशय कठोर बज्र व पत्थर भी उसी प्रकार द्रवित हो जाते हैं जैसे मोम आग के बीच में द्रवित हो जाती हैं। हे निमिवंश किशोर श्री लक्ष्मीनिधि जी! "प्रेम" का स्पर्श प्राप्तकर कुटिल (अप्रिय) और कठोर हृदयी (पाषाण हृदयी) जीव भी शीघ्र द्रवित हो जाते हैं।

प्रेम करै वश भूतन काहीं । बिन प्रयास कछु साधन नाहीं ॥
शक्ति अचिन्त्य प्रेम की प्यारे । कोउ कोउ प्रेमी जानन वारे ॥

"प्रेम" तो पंच महाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश) को भी बिना किसी परिश्रम और साधन के अपने आधीन कर लेता है। हे प्रिय कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! प्रेम की शक्ति अचिन्त्यनीय है, इसे कोई भगवत्प्रेमी ही जान सकते हैं।

दो०— परमानन्द प्रेमहिं बसै, शास्वत सुखद अनूप ।
हौंहु वसत दिवि धाम युत, सत चिद आनन्द रूप ॥८६॥

परम सुखदायी, अनुपमेय व शाश्वत परमानन्द सदैव 'प्रेम'' तत्व में ही समाया हुआ है तथा सच्चिदानन्द स्वरूप स्वयं पूर्णतम परब्रह्म मैं भी अपने दिव्य धाम साकेत सहित ''प्रेम'' में ही निवास करता हूँ।

प्रेम परम अमृत अन अल्पा । भूमा सुख कहि जेहिं श्रुति जल्पा ॥
कुँअर प्रेम महिमा सुनि काना । बोले बचन विगत अभिमाना ॥

प्रेम परम अमृत स्वरूप व महान तत्व है जिसे श्रुतियों ने भूमा सुख कह कर गायन किया है। इस प्रकार श्री राम जी महाराज के द्वारा वर्णन की गयी ''प्रेम देव'' की महान महिमा को अपने कर्णों से श्रवणकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! अभिमान रहित वाणी बोले—

कहिय कवन विधि प्रेमहिं पाई । प्रभु कहँ जीव रहै लव लाई ॥
राम रसिक रघुवर तब बोले । सुनहु कुँअर मम बचन अतोले ॥

हे रघुवंश विभूषण रसिकेश्वर श्री राम जी महाराज! आप ही कहिये, कि इस अनिर्वचनीय आपके "प्रेम तत्व" को किस प्रकार प्राप्त किया जाये और हम जीवों की आप (प्रभु) में कैसे लगन लगी रहे। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के वचनों को श्रवण कर रसिक—श्रेष्ठ रघुकुल नन्दन श्री राम जी महाराज बोले— हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी। आप मेरे अनुपमेय बचनों को श्रवण करें———

प्रेमी संत कृपा जब होई । जीव जाय तब प्रेम समोई ॥
मोर कृपा जापर जब होवै । प्रेमी भक्त मिलन सो जोवै ॥

———जब जीवों पर प्रेमी संतों की कृपा होती है तब जीव प्रेम से ओत—प्रोत हो जाते हैं परन्तु जब जीवों पर मेरी कृपा होती है तो जीवों को प्रेमी भक्तों का मिलन और दर्शन सुलभ होता है।———

करि सतसंग जानि रस रीती । लहैं प्रेम नर हृदय प्रतीती ॥
सीय कृपा करि निज जन जानी । जेहिं चितवहिं करुणामृत सानी ॥

———तब, उनसे सत्संग कर, रस पद्धति को समझ उसमें दृढ़ विश्वास कर, मनुष्य (जीव) मेरे प्रेम को प्राप्त कर लेते हैं। पुनः हमारी प्राण प्रिया श्री सीता जी जिस जीव को अपना समझ कर उसकी ओर करुणा प्रपूरित अमृत—मयी दृष्टि से निहार देती हैं।———

दो०— सो नर मम लहि अति कृपा, पावै प्रेम अथोर ।
श्याम रंग तन मन रँगै, निशि दिन रहै विभोर ॥८७॥

———वही मनुष्य (जीव) मेरी अतिशय कृपा को प्राप्त कर महान "प्रेम" को प्राप्त कर लेता है तथा श्याम रंग में अपने शरीर व मन को रँग कर अर्थात् मेरे प्रेम में आत्मसात होकर रात—दिन विभोर बना रहता है।

सब कर प्रेमास्पद अति प्यारा। आत्म सुखद रसदानि अपारा ॥
नित्य अहैतुक कृपा स्वरूपा। एक हमहिं सब भाँति अनूपा ॥

हे कुमार! सभी जीवों के अत्यन्त प्रिय, आत्मा को सुख देने वाले, असीस रस प्रदाता, नित्य अकारण कृपा स्वरूप एवं सभी प्रकार से अनुपमेय प्रेमास्पद (प्रेम करने योग्य) एक मात्र हम ही हैं।

सँग सँग रहहिं कबहुँ नहिं छोरैं। आनँद सिन्धु जीव कहँ बोरैं ॥
विमुखिहुँ अहित न कबहुँ ताकउँ। सहउँ दिवस निशि ताकर काकउँ ॥

मैं सदैव ही जीवों के साथ–साथ रहता हूँ, कभी भी उनका साथ नही छोड़ता तथा उन्हे आनन्द के सागर में डुबाये रहता हूँ। यहाँ तक कि– सर्व–विधि अपने प्रतिकूल चलने वालों (विमुखी जीवों) का भी अहित चिन्तन कभी नहीं करता वरन् दिन–रात उनकी उलाहनाएँ सहन करता रहता हूँ।

हित चिन्तन करि सनेउ वियोगा। देउँ मिलन हित तेहिं संजोगा ॥
सब कर परम प्रकाशक अहऊँ। योग क्षेम निज माथे बहऊँ ॥

पुनः उनका हित चिन्तन कर उनके वियोग में दुखी हो, उन्हे अपने मिलन का संयोग प्रदान करता हूँ। मैं ही सभी जीवों का परम प्रकाशक हूँ तथा उनके योग और क्षेम का भार अपने शिर पर वहन करता हूँ।

गति भर्ता साक्षी सब केरा। शरण सुहृद बिनु कारण हेरा ॥
अमित दानि सब कहँ सब काला। सर्व देश सब विधि निमिलाला ॥

हे निमिनन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी! मै सभी जीवों का प्रयोजन रहित, परम उपाय, स्वामी, साक्षी, रक्षक व मित्र (सखा) हूँ। मैं समस्त जीवों को सभी देश व काल में सभी प्रकार से असीमित दान देने वाला दाता हूँ।

दो०–रसिकेश्वर रस रूप हौं, रस दाता सब केर।
प्रेम करन लायक सदा, बसहु जीव उर नेर ॥८८॥

मैं रसिक जनों का स्वामी, रस स्वरूप तथा सभी के हेतु रस प्रदाता हूँ, मैं ही जीवों के हृदय के अति–समीप (सबसे निकट) निवास करता हूँ अतः जीवों के नित्य प्रेम करने योग्य, एक मात्र प्रेमास्पद मैं ही हूँ।

कारण कार्य परे रस साना। षड़ ऐश्वर्य पूर्ण भगवाना ॥
शक्ति अचिन्त्य एक रस रासे। रहउँ सदा गुण परे अवासे ॥

मैं कारण और कार्य के परे, रस से ओत–प्रोत, षड ऐश्वर्य (श्री, यश, ज्ञान, विराग, तेज व बल) से परिपूर्ण पूर्णतम परब्रह्म परमात्मा हूँ तथा अचिन्त्य शक्ति से समन्वित एकरस व आनन्द में पगा हुआ तीनों गुणों से परे अपने नित्य धाम ''श्री साकेत धाम'' में निवास करता हूँ।

सीता पति मैं नित्य अनादी। जानहिं सब परमारथ वादी ॥
कवन शेष मो कहँ रहि गयऊ। मोहि समान मैं सब हिय ठयऊ ॥

मैं नित्य, शाश्वत व परमाद्या शक्ति श्री सीता जी का प्राण प्रियतम (पति) हूँ ऐसा सभी परमार्थ तत्व–वेत्ता जानते हैं। इसके अतिरिक्त मेरे लिए अब और प्राप्तव्य, क्या शेष रह गया? अपने समान स्वयं मैं ही हूँ और मैं ही सभी के हृदय में निवास करने वाला हूँ।

चेतन जड़हिं जड़हिं चैतन्या। इच्छा मात्र करहुँ सत मन्या ॥
तीन काल सम अतिशय मोरे। भयो न है नहि होवन कोरे ॥

श्री राम जी महाराज कहते हैं कि– हे मिथिलेश राज कुमार! आप सत्य मानिये कि– मैं अपनी इच्छा मात्र से चैतन्य जीवों को जड़ तथा जड़ जीवों कौ चैतन्य बना सकता हूँ। मेरे समान अथवा मुझसे श्रेष्ठ त्रिकाल में कोई नही है। अर्थात् न भूत काल में कोई हुआ है, न वर्तमान काल में है और न ही भविष्य में होगा।

जग कर्त्ता पालक संहर्त्ता। उपजैं मोहिं ते अमित सुभर्ता ॥
सर्व लोक कर अहौं शरण्या। अभय शान्ति सुख दानि वरण्या ॥
प्रेमिन कहँ सरवस दै हारौं। निज आतम पुनि तेहिं पर वारौं ॥

संसार का सृजन, पालन व संहार करने वाले त्रिदेव ‡श्री ब्रहमा जी, श्री विष्णु जी और श्री महेश जी‡ सहित असीमित लोकों के स्वामी (लोकाधीश) मुझसे ही उत्पन्न होते हैं, मैं ही सम्पूर्ण लोकों का एकमात्र आश्रय दाता हूँ तथा मेरा वरण कर सभी जीव अभय, शान्ति व सुख सम्प्राप्त करते हैं। अपने प्रेमियों को मैं अपना सर्वस्व देकर स्वयं उनसे पराजित हो जाता हूँ पुनः अपनी आत्मा को भी उन पर न्योछावर कर देता हूँ।–––

दो०– निज समान सब विधि करउँ, राखि आपने धाम।
दरश परश पुनि पाइ तेहिं, पावौं प्रिय विश्राम ॥८९॥

–––मैं अपने भक्तजनों को अपने धाम में रखकर सभी प्रकार से अपने समान बना देता हूँ अर्थात् त्रिसाम्यता (अपने समान रूप, गुण व वैभव) प्रदान कर देता हूँ पुनः अपने प्रेमियों का दर्शन व स्पर्श प्राप्त कर प्रियकर विश्रान्ति को प्राप्त करता हूँ।

नवाह्न पारायण आठवाँ विश्राम

रक्षक गुण स्वामित्व अपारा। अरु सौशील्य सुलभ्य उदारा ॥
वात्सल्यादिक गुण आकारा। नेहिन हित हिय नित नित धारा ॥

मुझमें असीमित रक्षकत्व और स्वामित्व गुण हैं तथा सुशीलता, सुलभता, उदारता व वात्सल्य आदि गुणों का तो मैं स्वरूप ही हूँ। इन गुणों को अपने प्रेमियों के हित के लिये मैं अपने हृदय में नित्य धारण किये रहता हूँ।

सगुण स्वरूप श्याम सुख धामा। भक्तन हित वपु मोर ललामा ॥
कोटि काम मन मोहन रूपा। सत चिद आनँद अकथ अनूपा ॥

सभी सुखों का धाम मेरा यह सगुण स्वरूप व सुन्दर श्याम वपुष, मेरे भक्तजनों के लिये ही

है। करोड़ो कामदेवों के मन को मोहित करने वाला सच्चिदानन्दमय, अकथनीय एवं अनुपमेय मेरा स्वरूप–––

प्रेमिन काज ललित मम लीला। प्रकृति पार जानहिं दम शीला ॥
भक्त हेतु शुचि सुन्दर नामा। सत चिद आनँद मोर ललामा ॥

–––तथा प्रकृति से पार मेरी सुहावनी लीला भी प्रेमियों के लिये ही होती है जिसे शम–दमादि गुणों से युक्त ॎइन्द्रिय निग्रहीॎ ज्ञानी–जन जानते हैं। मेरा परम पावन, सच्चिदानन्दमय और सुन्दर नाम "राम" भी मेरे भक्तजनों के लिये ही है।–––

जाहि जपत मैं सुलभ सुहावा। देवउँ दर्शन मति मन भावा ॥
मोहिं सो परतम कोउ न आही। भजिबे योग सखा मन माहीं ॥

–––जिसका जप करने से परम सुशोभन मैं प्रत्यक्ष होकर बुद्धि व मन को सुन्दर लगने वाला अपना मोहक दर्शन जापक को प्रदान करता हूँ। हे मेरे आत्म सखा श्री लक्ष्मीनिधि जी! जीवों के लिये मन में स्मरण व भजन करने योग मुझसे श्रेष्ठ अन्य कोई भी नहीं है।

दो०–अवतारी अवतार के, परे परम विभु जान।
राम द्विभुज श्यामल अमल, परम ज्योति रस खान ॥९०॥

हे राजकुमार! मुझे अवतारी (अवतार धारण करने वाला) और अवतार के परे परम परमात्मा तथा दो भुजाओं से युक्त, श्याम वपुष–धारी, सर्वथा निर्दोष, परम प्रकाश स्वरूप व रस का श्रोत ही समझिये।

नेत्र सुखद श्रवणन अभिरामा। त्वक कहँ आनन्द देन ललामा ॥
मनहर मुदमय गंध प्रदानी। जीभहिं रस दायक रस सानी ॥

जो नेत्रों को अतिशय सुखदायी, कर्णो को अतीव प्रिय, त्वचा को उत्तम आनन्द प्रदान करने वाला, नासिका को मनोहारी व आनन्दमयी सुगन्ध देने वाला व जिह्वा को सुस्वादु रस उपलब्ध कराने वाला है।–––

सब विधि अनुपम अकथ अगाधा। नाम रूप अरु चरित अबाधा ॥
शाश्वत आनंद देन यथारथ। सुभग परम पद प्रिय परमारथ ॥

–––जिनके चारो तत्व नाम, रूप, लीला व धाम सभी प्रकार से अनुपमेय, अकथनीय व अगम्य हैं तथा जो निर्विघ्न, शाश्वत, यथार्थ आनन्द, सुन्दर परम पद और प्रिय परमार्थ पद प्रदान करने वाला है।

एक हमहिं नहिं दूसर कोऽपी। कहौं त्रिसत्य तात प्रण रोपी ॥
अमृत ब्रह्म अव्यक्त अनन्दा। शास्वत सुख एकान्ति अमंदा ॥

हे तात श्री लक्ष्मीनिधि जी! वह एकमात्र हम ही हैं, दूसरा कोई नहीं। यह त्रिसत्य वार्ता मैं प्रण पूर्वक कह रहा हूँ। पुनः अमृत, ब्रह्म, अव्यक्त, आनन्द, शास्वत सुख, परमैकान्तिक, तेज स्वरूप,–––

परमातम भगवान वरिष्टा । भौमा सुख परधाम सुइष्टा ॥
सब कर हमहिं प्रतिष्ठा भाई । सबहिं अहैं मम नाम सुहाई ॥

———परमात्मा, भगवान, भौमा सुख, परम धाम ‹परम पद› एवं जीवों के इष्ट आदि सभी की प्रतिष्ठा एकमात्र हम ही हैं अर्थात् सभी कुछ मैं ही हूँ। हे सीताग्रज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! ये सभी मेरे ही सुन्दर नाम है।

दो०—सर्व यज्ञ भोक्ता परम, यज्ञ पुरुष यज्ञेश ।
यज्ञपाल फल दानि मैं, विधि हरि हर सब शेष ॥९१॥

श्री राम जी महाराज कहते हैं कि— हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! सभी प्रकार के यज्ञों का परम भोक्ता, यज्ञ पुरुष, यज्ञों का स्वामी, यज्ञ पालक एवं यज्ञ फल प्रदान करने वाला मैं ही हूँ तथा श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शंकर जी आदि सभी देवता मेरे शेष (अंश) है और मै शेषी (अंशी) हूँ।

जीव प्रीति मम हृदय मँझारी । सहज अहेतु स्ववस्तु बिचारी ॥
अंश भोग अरु शेष सुहाया । जीव सहज मम सब श्रुति गाया ॥

जीवों को निजी वस्तु समझकर उनके प्रति मेरे हृदय में सहज व अकारण प्रीति समायी हुई है। जीव तो मेरे सहज ही सुन्दर अंश, भोग्य और शेष हैं ऐसा सभी श्रुतियों ने गायन किया है।

अंशी भोक्ता शेषी मोहीं । जानु स्वभाविक निज जिय जोही ॥
नव सम्बन्ध जीव कर मोरा । नित निरुपाधि अहेतु अथोरा ॥

अतः अपने हृदय में ऐसा बिचार कर हे राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप मुझे स्वाभाविक ही जीवों का अंशी, भोक्ता और शेषी समझ लें। जीवों और मेरे मध्य, नित्य उपाधि रहित ‹सहज›, अहैतुक (अकारण) और महान, नौ प्रकार के सम्बन्ध (१— रक्ष्य—रक्षक सम्बन्ध, २— शेष—शेषी सम्बन्ध, ३— भोग्य—भोक्ता सम्बन्ध, ४— पुत्र—पिता सम्बन्ध, ५— भार्या—भर्ता सम्बन्ध, ६— स्व (सेवक)—स्वामि सम्बन्ध, ७—शरीर—शरीरी सम्बन्ध, ८— ज्ञाता—ज्ञेय सम्बन्ध और ९—आधेय—आधार सम्बन्ध) हैं।

अस बिचारि जिव आपन मानी । करै प्रेम अतिशय रस सानी ॥
मोहिं तजि प्रेम पात्र कोउ नाहीं । सहज जीव कर आनँद चाही ॥

ऐसा विचार कर जीवों को चाहिये कि— वे प्रेम रस से प्रपूरित हुये मुझे अपना मानकर अत्यधिक प्रेम करें। क्योंकि मेरे अतिरिक्त सहज ही जीवों के लिए आनन्द की कामना करने वाला तथा प्रेम करने योग्य पात्र (प्रेमास्पद) अन्य कोई भी नहीं है।

प्रेम करन हित जिव जब चाहै। भरौं हृदय महँ तासु उछाहैं ॥
इक पग चलत जीव के भाई । शत पद चलउँ मिलन अतुराई ॥

जब जीव मुझसे प्रेम करने की इच्छा करते हैं तब मैं उनके हृदय को उत्साह से आपूरित कर (भर) देता हूँ। हे सीताग्रज श्री लक्ष्मीनिधि जी! जीव के मेरी ओर एक कदम चलते ही मैं, उससे मिलने के लिए आतुर होकर सौ कदम चल पड़ता हूँ।———

दो०– सबहिं भाँति संयोग दै, हृदय बढ़ावउँ प्रीति ।
सुलभ सुखद तेहिं कहँ बनउँ, जस जस बढ़ति प्रतीति ॥९२॥

–––मैं उसे सभी प्रकार के संयोग प्रदान कर उसके हृदय की प्रीति को बृद्धिंगत करता रहता हूँ तथा जैसे–जैसे उसके हृदय का विश्वास बढ़ता जाता है वैसे–वैसे मैं उसके लिए सुलभ एवं सुख प्रदायक बनता जाता हूँ।

अस विचारि जे हृदय महाना । मोहि सन प्रीति करैं रससाना ॥
विधि हरि हर सह शक्ति सुभागे । केवट काग दैत्य अनुरागे ॥

ऐसा विचार कर जो विशाल (महान) हृदयी (हृदय प्रधान) जीव हैं वे मेरे प्रेम–रस में मग्न होकर मुझसे प्रीति करते हैं। हे राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! अपनी–अपनी शाक्तियों सहित परम सौभाग्य–सम्पन्न श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शंकर जी आदि ईश कोटि के देवता, प्रेम में भरे हुए श्री केवट जी, श्री कागभुसुण्डि जी तथा दैत्यराज श्री विभीषण जी–––

हनुमत गरुड़ शबरि कपि राजा । जामवंत सब भालु समाजा ॥
तब पितु सहित जनकपुर वासी । प्रेम कियेव मोहिं महँ मन रासी ॥

–––श्री हनुमान जी, श्री गरुड़ जी, श्री शबरी जी, वानर राज श्री सुग्रीव जी, श्री जामवन्त जी, सम्पूर्ण बन्दर भालु समाज तथा आपके श्री मान् पिता, महाराज जनक जी सहित सभी जनकपुर वासियों आदि ने अपने मन को मुझमें लगा कर मुझसे प्रेम किया है।

प्रिय प्रहलाद भगत मुनि नारद । शुक सनकादिक ज्ञान विशारद ॥
बाल्मीकि अरु गुरू वशिष्ठा । विश्वामित्र अगस्त्य वरिष्ठा ॥

प्रिय भक्त श्री प्रह्लाद जी, मुनिवर श्री नारद जी, ज्ञान के विशारद श्री शुक देव जी व श्री सनकादिक कुमार, आदि कवि श्री वाल्मीकि जी, रघुकुल आचार्य श्री बशिष्ठ जी व मुनि श्रेष्ठ श्री अगस्त्य जी आदि ने,–––

इष्ट जानि मोहि कीन्हे प्रेमा । निज निज भाव रसे रस नेमा ॥
सहित सुतीक्षण दण्डक वासी । वारि दियो सर्वस बनि दासी ॥

–––मुझे अपना इष्ट (लक्ष्य) समझ, अपने–अपने भाव व रस में मग्न हो, रस पद्धति के अनुसार मुझसे प्रेम किया है। श्री सुतीक्षण जी सहित, श्रृंगार भाव से भावित सभी दण्डक वन निवासी ऋषि–मुनियों ने तो मुझ पर अपना सर्वस्व ही न्योछावर कर दिया है।

दो०– जड़ चेतन मम रूप लखि, सहजहिं जात विमोह ।
ताते निश्चय जानियहिं, प्रेम योग मैं सोह ॥९३॥

हे निमिकुल राज कुमार! जड़ व चेतन सभी जीव मेरे रूप का दर्शन कर सहज ही मोहित हो जाते हैं अतः आप यह निश्चय जान लीजिये कि– प्रेम करने के योग्य व सुन्दर पात्र एकमात्र मैं (श्री राम) ही हूँ।

मन्वादिक अस हृदय बिचारी । मो पर प्रेम किये अति भारी ॥
मोहिं पाइ सब भये कृतारथ । प्रेमहिं जाने पर परमारथ ॥

ऐसा हृदय में जान कर ही महाराज श्री मनु जी आदि सुधी–जनों ने मुझ पर असीम प्रेम किया है। वे सभी मुझे पाकर कृतार्थ हो गये और मेरे प्रेम को ही परम परमार्थ समझे।

चहुँ जुग तीन लोक जग माहीं । मम प्रेमी प्रगटे तन काहीं ॥
तीनहु काल तात जिय जानै । मम प्रेमी नित रह रस सानैं ॥

इस संसार में चारो युगों ֹसतयुग, त्रेता, द्वापर व कलियुगֹ तथा तीनो लोकों (सुर, नर और नाग) में मेरे प्रेमियों ने शरीर धारण किया है। हे तात! आप अपने हृदय में यह समझ लें कि– प्रेमरस में सने हुए मेरे प्रेमी, तीनो कालों (भूत, वर्तमान व भविष्य) में नित्य निवास करते हैं अर्थात् मेरे प्रेमी भूत काल में भी हुये हैं वर्तमान में भी हैं और भविष्य में भी होंगे।

भये अमित अरु अहैं अनन्ता । होइहैं आगे अमित सुसंता ॥
ताते कहँ लगि नाम सुनावौं । कछुक कहे भल भाव बढ़ावौ ॥

हे तात! अब तक असीमित सुन्दर संत जन (प्रेमी–भक्त) हो चुके हैं, वर्तमान में हैं तथा भविष्य में भी होंगे। इसलिए मैं उनके नाम कहाँ तक गिनाऊँ, यहाँ कुछ भक्तों का नाम कह–कर मैने अपने सुन्दर भावों की अभिवृद्धि ही की है।

सबहिं भाँति मन किये बिचारा । प्रेम पात्र इक हमहिं कुमारा ॥
बलि पूजा कछु चाहत नाहीं । चाहत एक प्रेम प्रिय काहीं ॥

अतः हे कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! सभी प्रकार से मन में विचार करने पर एकमात्र हम ही प्रेम के योग्य पात्र (प्रेमास्पद) सिद्ध होते हैं। क्योंकि हम किसी भी प्रकार की बलि या पूजा की अभिलाषा नहीं रखते हमें तो केवल जीवों का प्रिय प्रेम ही चाहिये।

दो०–मोहिं छोड़ि जे जगत नर, भजहिं दूसरे देव ।
अविधि पूर्ण सो भजत मोहिं, नहिं पावहिं मम भेव ॥९४॥

श्री राम जी महाराज कहते हैं कि–हे निमिकुल नरेश! संसार में जो मनुष्य मेरा भजन छोड़कर दूसरे देवताओं का भजन करते हैं, वे यद्यपि शास्त्रीय विधान से विहीन होकर मेरा ही भजन करते हैं परन्तु मेरे प्रेम रहस्य को नहीं प्राप्त कर पाते।–––

पतन अवशि तिनकर जग होई । मगन अविद्या रह दुख मोई ॥
पाते दृढ़ निश्चय करि मोहीं । भजै प्रेम युत निज जिय जोही ॥

–––ऐसे जीवों का संसार में अवश्य ही पतन होता है और वे अविद्या (विपरीत ज्ञान) में मग्न हुए सतत दुख में डूबे रहते हैं। इसलिए जीवों को चाहिए कि– वे अपने हृदय में बारम्बार विचार कर अटल विश्वास के साथ प्रेम पूर्वक मेरा भजन करें।

कहौं त्रिसत्य स्वहस्त उठाये। भजन बिना जिव जरनि न जाये॥
बिनु मम भजन शान्ति नहिं सोई। शाश्वत सुख नहिं पावत कोई॥

हे कुमार! मैं पूर्णतम परब्रह्म (श्री राम) अपनी भुजा उठाकर त्रिसत्य कहता हूँ कि– मेरे भजन के अतिरिक्त जीवों के त्रितापों (आधि–दैहिक, आधि–दैविक व आधि–भौतिक तापों) का शमन किसी प्रकार से नही होगा और मेरे भजन के बिना न तो जीव शान्ति से शयन कर सकते और न ही शाश्वत सुख प्राप्त कर सकते हैं।

प्रेम बिना सब साधन सूने। लवण बिना जस साग अलोने॥
कर्म ज्ञान अरु योग महाना। बिना प्रेम मैं थोथहिं जाना॥

प्रेम के बिना सभी साधन उसी प्रकार शून्य (निष्प्रभावी) हैं जैसे बिना नमक के कोई साग बेस्वाद होता है। कर्म, ज्ञान और योग आदि महान साधनों को भी मैं बिना प्रेम के थोथा (निस्सार) समझता हूँ।

रस बिनु जिमि नहिं सोह रसाला। तिमि न भाव सब साधन जाला॥
प्रेम बिना ब्रह्महुँ सुन प्यारे। सब जीवन सम लगत निहारे॥

जिस प्रकार रस के अभाव मे आम शोभा नहीं प्राप्त करता उसी प्रकार बिना प्रेम के सभी साधनों का जाल मुझे अच्छा नही लगता। हे प्यारे श्री लक्ष्मीनिधि जी! सुनिये, प्रेम के बिना स्वयं जगत–श्रृष्टा श्री ब्रह्मा जी भी मुझे सभी जीवों के समान ही दिखाई देते है।

दो०–ताते चाहिय जीव कहँ, बाँधै मम पद प्रीति।
सकल वासना छोड़ि जग, चलै राग रिस जीति॥९५॥

इसलिए जीवों को चाहिए कि– वे संसार की सभी वासनाओं को त्याग, आसक्ति व क्रोध (द्वेष) से विजय प्राप्तकर, अपनी प्रेम डोरी को मेरे चरणों में बाँध दें अर्थात् मुझसे ही प्रेम करें।

कुँअर कहा सुनु प्रीतम प्यारे। प्रेम कहहिं का कहँ बुधवारे॥
परिभाषा मोहिं कहहु बुझाई। जासों प्रेम प्रतीतिहिं पाई॥

अपने प्रिय भाम (बहनोई) श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे परम प्राज्ञ (बुद्धिमान) मेरे प्यारे प्राण प्रियतम! सुनिये, "प्रेम" किसे कहते हैं? आप मुझे "प्रेम" की परिभाषा कह सुनायें, जिससे मैं प्रेम–तत्व के प्रति विश्वस्त हो सकूँ अर्थात् प्रेम तत्व को समझ सकूँ।

श्याम सुन्दर सुखकर सुख धामा। सुनि बोले प्रिय बचन ललामा॥
प्रेम अनिर्वचनीय कुमारा। मन बानी चित बुद्धिहिं पारा॥

अपने प्रिय श्याल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के बचनों को श्रवण कर, सभी को सुख प्रदान करने वाले सुख के धाम श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज सुन्दर प्रिय वाणी से बोले– हे कुमार "प्रेम" वाणी का विषय नहीं अपितु अनिर्वचनीय है, वह मन, वाणी, चित्त तथा बुद्धि के परे है। अर्थात् मन से उसका मनन नही किया जा सकता,वाणी से उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, चित्त से उसका

चिन्तन नहीं किया जा सकता तथा बुद्धि से उसका विमर्श (विचार) नहीं किया जा सकता।

यथा मूक नहिं रस कर स्वादा । वरणि सकै अनुभव अहलादा ॥
तथा प्रेम परिभाषा नाहीं । तदपि सुनहु जस मोहि लखाहीं ॥

जिस प्रकार कोई गूँगा व्यक्ति "रस" के स्वाद का अनुभव करते हुए भी उसके आनन्द का वर्णन नही कर सकता उसी प्रकार अनुभव करते हुए भी "प्रेम" की परिभाषा नहीं कही जा सकती तथापि मुझे वह जिस प्रकार समझ पड़ती है, आप श्रवण करें–––

सुरति करत जन जियहिं मझारी । उठति करोय कसक इक न्यारी ॥
हिय महँ परश मोर जब होई । तुरत जात जन आपा खोई ॥
मन चित बुधि बिच जग रस नाहीं । श्यामहिं श्याम झूल दृग माहीं ॥

–––मेरा स्मरण करते ही भक्तों के हृदय में एक विलक्षण प्रकार की हृदय को कुरेदती हुई सी वेदना उठती है तथा जब उनके हृदय में मेरा स्पर्श होता है तब भक्त तत्क्षण अपने अस्तित्व को भूल जाते हैं, उनके मन, चित्त व बुद्धि में संसारी विषय शेष नहीं रहते केवल मेरा श्याम स्वरूप ही उनके नेत्रों में सदैव झूलता रहता है।

दो०–बिन सुमिरन छिन एकहूँ, रहि न सकत जन मोर ।
जल बिनु मछली सम तुरत, तलफन लगत विभोर ॥९६॥

ऐसी अवस्था में मेरे भक्तों से बिना मेरे स्मरण के एक क्षण भी नहीं रहा जाता, वे बिना जल की मछली के समान तुरन्त ही व्याकुल होकर तड़पने लगते हैं।

सम्भव सोई कसक निमिराया । प्रेम नाम श्रुति बीचहिं गाया ॥
श्याम दृष्टि जब आँखिन होई । सम्भव प्रेम कहैं तेहिं लोई ॥

हे निमिकुल नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी! सम्भव है उसी कसक (पीड़ा) का नाम श्रुतियों में "प्रेम" कह कर वर्णन किया गया है। जब नेत्रों में एकमात्र मेरा श्याम–स्वरूप ही सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है, सम्भव है कि–भक्तों की उसी स्थिति को जगज्जन प्रेम की संज्ञा देते हैं।

छिन बिनु सुरति स्वप्रिय के जबहीं । रहि न सकैं तलफत तन तबहीं ॥
सम्भव प्रेम ताहि कह लोगू । मैं अरु मोर जहाँ नहिं रोगू ॥

अपने प्रेमास्पद के स्मरण के अभाव में जब प्रेमी से एक छण भी जीवित नही रहा जाता और उसका शरीर व्याकुल होकर तड़पने लगता है। सम्भव है कि– उसी अवस्था को जहाँ मैं और मेरे (अहंकार व ममता) का विकार नहीं रहता, लोग प्रेम कहते हैं।

निज सुख चाह बीज नशि जाई । प्रभु सुख चाह हृदय अधिकाई ॥
सम्भव दशा सो प्रेम कहावै । आपा नशि इक प्रेमिहिं भावै ॥

जब प्रेमी के हृदय में अपने सुख की कामना का बीज भी नष्ट हो जाता है और स्वामी (प्रेमास्पद) के सुख की कामना हृदय में बलवती हो जाती है, सम्भव है वही अवस्था प्रेम कहलाती है,

जिसमें अपना सर्वस्व विनष्ट हो जाने के बाद भी एकमात्र प्रेमास्पद ही अच्छा लगता है।

बिनु कारण सूक्षम सुठि प्रेमा। विधि निषेध जहँ रहै न नेमा ॥
कारण कार्य परे सुख रूपा। जाने जो अनुभवै अनूपा ॥

प्रेम अकारण, सूक्ष्म व सुन्दर होता है इसमे शास्त्रोक्त करणीय व अकरणीय कृत्यों की मर्यादा नहीं रहती। यह कारण और कार्य से परे, सुख स्वरूप है, इसे वही जान सकता है जिसने इस अनुपमेय प्रेम का अनुभव किया हो।

दो०–कुँअर यथारथ प्रेम की, परिभाषा नहिं होय ।
अनुभव महँ जान्यो परै, वरणि सकै नहिं कोय ॥९७॥

श्री राम जी महाराज कहते हैं कि– हे कुमार! प्रेम की यथार्थ परिभाषा नही दी जा सकती वह तो अनुभव से ही जानी जाती है तथा वाणी के द्वारा उसका कोई भी वर्णन नही कर सकता।

आत्म सार अरु ज्ञानहुँ सारा। योग सार मम प्रेम कुमारा ॥
संत संग कर सार स्वरूपा। अरु मम दर्शन सार अनूपा ॥

हे मिथिलेश राज कुमार! मेरा "प्रेम" आत्मा, ज्ञान व योग इन सभी का सारतम तत्व है तथा संतजनों के संग का और मेरे दर्शनों का अनुपमेय सार तत्व भी मेरा प्रेम ही है।

जानहु प्रेमहिं साधन सारा। तेहिं बिनु साधन साध्य खुआरा ॥
प्रेम स्वयं रस रूप उदारा। प्रेम केर फल प्रेम पुकारा ॥

आप प्रेम को सभी साधनों का सार समझिये क्योंकि प्रेम के बिना सभी साधन और साध्य निरर्थक हैं। हे परम उदार कुमार! प्रेम तो स्वयं ही रस स्वरूप है तथा प्रेम का फल प्रेम ही वर्णन किया गया है।

जब लगि ममता अहं रहावै। तब लगि प्रेम स्वप्न नहिं आवै ॥
राग द्वेष अस्मिता अविद्या। अभिनिवेश जब बसे स्वहृद्या ॥

जब तक जीवों के हृदय में ममता और अहंकार का निवास है तब तक उसे स्वप्न में भी प्रेम का दर्शन नही हो सकता। जब जीवों के हृदय में राग (जागतिक आसक्ति), द्वेष (शत्रुता), अस्मिता (अभिमान), अविद्या (माया) और अभिनिवेश (जन्म मरण का भय) आदि दुख समाये हुए हैं–

प्रेम गंध तहँ कैसे आई। काक तीर्थ जिमि हंस न जाई ॥
निर्मल हृदय प्रेम संचारा। अवशि होय जो चहै हमारा ॥

तब ऐसे दोष युक्त हृदय में प्रेम की सुगन्ध किस प्रकार प्रवेश कर सकती है, प्रेम देव का प्रवेश वहाँ उसी प्रकार नहीं हो सकता जैसे काक–तीर्थ में हंस प्रवेश नहीं करता। परन्तु यदि जीव हमारे प्रेम की कामना करता है तो उसके निर्मल हृदय में हमारे प्रेम का संचार अवश्य होता है।

दो०–प्रेमी संतन संग करि, सुनि गुण ग्राम हमार ।
रस रस ममता अहं तजि, पावै प्रेम प्रसार ॥९८॥

अतएव जीवों को चाहिए कि– "प्रेमी" संतों का संग कर हमारे गुण–गणों का श्रवण करें, इस प्रकार धीरे–धीरे अपने हृदय से ममता और अहंकार को त्यागकर, हमारे प्रेम को प्राप्त कर ले।

मम रस रसिक प्रेम पथ शूरे। आपा खोय भजे जे पूरे ॥
प्रेमानन्द स्वाद लहि नीके। दुन्दुभि घोष कहत ते ठीके ॥

मेरे प्रेम–रस के रसिक तथा प्रेम–मार्ग के वे शूरवीर, जिन्होने अपने अस्तित्व को भुला कर एकमात्र मुझ पूर्णतम परब्रह्म का भजन किया है तथा उसके प्रेमानन्द का भली प्रकार से स्वाद प्राप्त किया है वे दुन्दुभी घोष करते हुए मेरे प्रेम को सर्वथा उचित ठहराते हैं।–––

सत्य सत्य पुनि सत्य उचारैं। प्रेम समान प्रेम निरधारैं ॥
श्रेष्ठ श्रेष्ठ पुनि श्रेष्ठ सुप्रेमा। भूमा सुख अनल्प प्रद क्षेमा ॥

–––पुनः वे त्रिवाचा सत्य उद्घोष करते हुए प्रेम के समान प्रेम को ही निर्णीत करते हैं कि– मेरा प्रेम (श्री राम–प्रेम) ही श्रेष्ठ है, श्रेष्ठ है पुनः पुनः श्रेष्ठ है तथा यह, महान भौमा सुख एवं कल्याण को प्रदान करने वाला है।

ज्ञान योग सब धर्म सुजाना। प्रेम समान एक नहिं आना ॥
मम पद प्रेम त्यागि सुख हेतू। ज्ञान योग कर बाँधत नेतू ॥

हे सर्वज्ञ राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! वेद विहित ज्ञान, वैराज्ञ, कर्म व योग आदि सभी धर्मो में प्रेम के समान कोई भी नही है। जो जन मेरे चरणों के प्रेम को छोड़कर अपने सुख के लिए ज्ञान व योग आदि का आश्रय ग्रहण करते हैं–––

कामधेनु तजि आकहिं भाई। दूध हेतु सो खोजन जाई ॥
मम पद प्रेम बिना वर ज्ञाना। सोह न नेक लेहु तुम जाना ॥

–––वे कामधेनु की अवहेलना कर दूध के लिये मदार का पौधा ढूँढने जाते हैं। हे सीताग्रज! आप यह निश्चय जान लीजिये कि– मेरे चरणों के प्रेम के बिना श्रेष्ठ "अखण्ड ज्ञान" भी किंचित सुशोभित नहीं होता।

दो०–केवट बिनु जलयान जिमि, सोहत नहिं निमिलाल।
ज्ञान योग तिमि प्रेम बिनु, दूसर जग जंजाल ॥९९॥

हे निमिनन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी! जिस प्रकार नौका नाविक के बिना शोभा नहीं प्राप्त करती उसी प्रकार मेरे प्रेम के अभाव में ज्ञान व योग भी संसार के अन्य जंजाल के समान ही हैं अर्थात् सांसारिक उपाधि ही हैं।

जो सुख मम प्रेमी कहँ होई। सो सुख स्वप्न न देखै कोई ॥
मोहि ते अधिक सुखी रस रूपा। निर्भय नेह मगन जन भूपा ॥

मेरे प्रेमी जन जो सुख प्राप्त करते हैं अन्य के लिए उस सुख का दर्शन स्वप्न में भी सम्भव नही है। हे मिथिलेश कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी! मेरे प्रेम में मग्न मेरे भक्तराज मुझसे भी ज्यादा सुखी

और रसमय होते हैं।–––

दरश परश करि निज निज भावा । प्यारहिं मोहि महा रस छावा ॥
करि कैंकर्य अमित सुख लहहीं । सत्य सत्य हम सत्यहिं कहहीं ॥

–––क्योंकि हमारे प्रेमी–भक्त अपने–अपने भावों के अनुरूप हमारा दर्शन व स्पर्श कर रस निमग्न हुए मुझसे अत्यधिक प्यार करते रहते हैं तथा हमारी सेवा करते हुए वे असीमित आनन्द प्राप्त करते हैं। यह बात हम त्रिवाचा सत्य (सत्य, सत्य व सत्य) कह रहे हैं।

मोकहँ दुरलभ सो सुख भाई । योगी ज्ञानी काह चलाई ॥
अनुपमेय मम अति सौन्दर्या । पुनि अनन्त सुकुमार मधुर्या ॥

हे तात श्री लक्ष्मीनिधि जी! वह सुख जब मुझे ही दुर्लभ है तो फिर, योगियों और ज्ञानियों की बात ही क्या चलाई जाये। मेरा सौन्दर्य महान एवं अनुपमेय है पुनः मुझमें अनन्त सौकुमार्य तथा माधुर्य गुण भी निहित (समाया हुआ) हैं।

सौष्ठव लावनि मोहकताई । छवि अनन्त बस करनि सुहाई ॥
ललित सुकोमल देह हमारी । सरस सुगन्धित जग सो न्यारी ॥

पुनः मुझमें सौष्ठव, लावण्य और मोहकत्व आदि गुणों के साथ अनन्त सौन्दर्य भी समाया हुआ है जो सभी को वश में करने वाला है। हमारी देह सुन्दर सुकोमल, रस परिपूर्ण, सुगन्धित एवं संसार से विलक्षण है।

दो०–अपने तन को सौख्य सब, करि न सकौं मैं भोग ।
यथा जलज निज गंध को, स्वयं लहन नहिं योग ॥१००॥

मैं अपने शरीर के सम्पूर्ण वैभव (सौष्ठवता, लावण्यता, मोहकत्व, कोमलता, सौगन्ध्य व सौन्दर्य) का उपभोग उसी प्रकार नहीं कर सकता जिस प्रकार कमल अपनी सुगन्ध को स्वयं ग्रहण नही कर पाता।

पद्म पराग स्वाद सुठि रसिया । जानत भ्रमर पियत नित बसिया ॥
मम तन सौख्य तथा मम प्रेमी । चाखत नित्य नेह मद झूमी ॥

जिस प्रकार कमल के पराग का सुन्दर स्वाद, उसका रसिक भ्रमर ही जानता है क्योंकि वह कमल में ही नित्य निवास करते हुए उसका रसास्वादन करता है उसी प्रकार मेरे शरीर के अनुकूल और प्रिय अनुभव (सुख) को मेरे प्रेम–मद में मतवाले मेरे प्रेमी–भक्त ही जानते हैं जो नित्य उसका आस्वाद ग्रहण करते हैं।

दिव्यानन्त सकल गुण मोरे । नहिं मम हेतु हृदय रस बोरे ॥
प्रेमी हित सो सुनहु पियारे । करि करि अनुभव होहिं सुखारे ॥

हे रस निमग्न राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! मेरे हृदय में निवास करने वाले सभी दिव्य और अनन्त गुण–गण मेरे अनुभव के लिये नही हैं अपितु हे प्यारे! सुनिये, वे सभी मेरे प्रेमियों के हित के लिये हैं जिनका अनुभव कर वे सुखी होते रहते हैं।

अन्य योग रत तजि मम प्रीती। योगी यती अगुण परतीती॥
निज अज्ञान मोहिं पर धारी। सगुणहिं मायामयहिं उचारी॥

मेरे प्रेमियों के अतिरिक्त अन्य योगों में निरत योगी, यती तथा मेरे निर्गुण स्वरूप में प्रतीति करने वाले साधक, जो अपने अज्ञान को मुझ में आरोपित कर मेरे सगुण स्वरूप को मायामय कहते हैं।———

प्रेम सुखहिं जानहिं ते कैसे। पति सुख ज्ञान कुमारिहिं जैसे॥
केवल आत्मा अनुभव प्यारे। विधवा सम श्रृंगार निहारे॥
जब लगि भुक्ति मुक्ति की चाहा। तब लगि दुर्लभ प्रेम प्रवाहा॥

———वे सभी मेरे प्रेमानन्द को किस प्रकार जान सकते हैं अर्थात् वे उसके अनुभव को उसी प्रकार नही समझ सकते जैसे पति सुख का ज्ञान कुमारी कन्या को नही होता। हे प्रिय कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! अन्य योगों में निरत योगी, यती आदि साधक केवल आत्मा का ही अनुभव कर पाते हैं तथा मात्र आत्मानुभव तो विधवा के श्रृंगार के समान निरर्थक ही होता है। जब तक जीवों के हृदय में भोग और मोक्ष की कामना बनी हुई है तब तक उनके लिए मेरे प्रेम का संचार अत्यन्त ही दुर्लभ है।

दो०—कर्म योग विज्ञान ते, सरस सुखद शुचि नेह।
ये सब साधन फूल फल, मम पद रति रस गेह॥१०१॥

श्री राम जी महाराज कहते हैं कि— हे निमिकुल नरेश! कर्म, योग एवं विज्ञान आदि साधनों की अपेक्षा मेरा पवित्र "प्रेम" अतिशय सुख प्रदायक एवं रस परिपूर्ण है क्योंकि उपरोक्त सभी साधन फूल व फल के समान हैं परन्तु मेरे चरणों का प्रेम, तो उनका सार तत्व "रस" ही है।

लक्ष्मीनिधि कह हे मम प्राना। राम कृपालु सुखद भगवाना॥
ज्ञान योग की भूरि प्रशंसा। कर्म सहित श्रुति करी सुहंसा॥

अपने प्रिय भाम (बहनोई) श्री राम जी महाराज के बचनों को श्रवण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा, हे मेरे प्राण सर्वस्व, परम कृपालु, जन सुखदायक, भगवान श्री राम जी महाराज! श्रुतियों ने तो कर्म के सहित ज्ञान व योग की उज्जवल कीर्ति की अत्यधिक प्रशंसा की है।———

पद कैवल्य दानि कह गाई। सो समुझाय कहौ रधुराई॥
बोले मधुर वाणि घनश्यामा। सुनहिं कुँअर निमिवंश ललामा॥

———पुनः इन साधनों को कैवल्य पद का प्रदाता कह कर भी गायन किया गया है। अतएव हे श्री रघुकुल नरेश! आप उनके यथार्थ रहस्य को समझा कर कहिये। तब कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के वचनों को श्रवणकर मेघ के समान श्याम वपुधारी श्री राम जी महाराज मधुर वाणी से बोले— हे निमिवंश को प्रकाशित करने वाले कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप सुनिये,———

ज्ञान अमल अद्वैत महाना। परम प्रकाश रूप चिद बाना॥
पद कैवल्य अवशि सो देई। तैसहिं योग कर्म गुनि लेई॥

–––''ज्ञान योग'' निर्मल, अद्वैत (द्वैत रहित) महान, परम प्रकाशमय एवं चिदस्वरूप है। वह निश्चय ही कैवल्य पद प्रदान करने वाला है। आप इसी प्रकार से योग और कर्म के सम्बन्ध में भी समझ लीजिये।

साधक भव रस मुक्तिहिं पाई। चिद् प्रकाश महँ रहै समाई ॥
शून्य अकाश समान सुहाया। ज्ञाता ज्ञेयहिं ज्ञान भुलाया ॥
भयो सबहिं त्रिपुटी कर नाशा। सत चित आनँद रूप अकाशा ॥

इन सभी साधनों का अनुष्ठान करने वाला साधक, भवानन्द (सांसारिक–आनन्द) से मुक्त होकर चिद्–प्रकाश में विलीन हो जाता है। उस समय वह शून्य आकाश के समान सुन्दर प्रतीत होता है, वहाँ ज्ञाता, ज्ञेय व ज्ञान का भाव भूल जाता है तथा इनकी त्रिपुटी का विनाश हो जाता है अर्थात् तीनों मिलकर एक हो जाते हैं। तब वह सचिदानन्द स्वरूप आकाश में विलीन हो जाता है।–––

दो०–निर्गुण ब्रह्म प्रकाश जो, केवल पद जेहिं गाय।
देह कान्ति मम जानियहिं, ज्ञानी जहाँ समाय ॥१०२॥

–––निर्गुण ब्रह्म का प्रकाश जिसे कैवल्य पद कहकर बखान किया गया है उसे मेरे शरीर का तेज (कान्ति) ही समझिये, जहाँ ज्ञानी जनों का चित्त विलीन होता है।–––

अमृत भये ब्रह्म विद सिगरे। पै नहिं चखे सुधा रस रँगि रे ॥
अमृत बनि अमृत शुचि स्वादा। जानत चखन भक्त अहलादा ॥

–––सभी ब्रह्म ज्ञानी अमृत स्वरूप तो बन जाते हैं परन्तु उस अमृत में डूबकर उसका उसका आस्वाद ग्रहण नही कर पाते। अमृत बनकर उस अमृत के पवित्र स्वाद को आह्लाद पूर्वक ग्रहण करना तो मेरे प्रिय भक्त ही जानते हैं।

ज्ञानी जानि अरूप अनूपा। अगुणहिं पगे प्रकाश स्वरूपा ॥
ब्रह्म प्रकाश भेद नहि जाये। ताते दर्शन मोर न पाये ॥

ज्ञानीजन, मुझे बिना आकार का (निराकार) व उपमा से रहित समझकर मेरे निर्गुण प्रकाश स्वरूप (देह–कान्ति) में ही मग्न होते हैं, वे मेरे ब्रह्म प्रकाश का भेदन (पार) नहीं कर पाते इसलिए मेरे दर्शन से बंचित ही रहते हैं।

सिर के धनिक न कीन्ह विचारी। चिद प्रकाश का कर बड़ भारी ॥
ज्ञान अधार कौन है भाई। का कहँ जानैं ज्ञान सहाई ॥

मस्तिक के धनी ज्ञानीजन यह विचार नहीं कर पाते कि–यथार्थतः यह महा दिव्य प्रकाश किसका है? इस ज्ञान का आधार कौन है तथा ज्ञान की सहायता से किसको जाना जाता है?

परम प्रकाश भेद पुनि आगे। जाय लखहिं सो नहिं अनुरागे ॥
सत चिद् आनँद सगुण स्वरूपा। ब्रह्म न होत्यो जो रस भूपा ॥

अतः वे उस परम प्रकाश का भेदन कर अनुराग पूर्वक आगे जा कर देखते ही नहीं। हे रस

राज श्री लक्ष्मीनिधि जी! यदि ब्रह्म का सच्चिदानन्दमय व सगुण साकार विग्रह स्वरूप नहीं होता---

तौ यह सगुण स्वरूप अपारा । कबहुँ न होवत जग जन वारा ॥
यथा बीज तस तरुहुँ महाना । फूलत फलत सकल जग जाना ॥

---तो सगुण स्वरूप वाला असीम जीवों से युक्त यह साकार संसार ही नहीं होता क्योंकि जैसा बीज होता है वैसा ही उसका फूलता व फलता हुआ महान वृक्ष भी होता है, यह बात सम्पूर्ण संसार में विदित है।---

बिनु बिचार अस्तित्व गमाई । सेवक स्वामि भाव बिसराई ॥
यथा बिन्दु जल सिन्धुहिं पाये । ज्ञानी तथा प्रकाश समाये ॥

---इस प्रकार वे ज्ञानी–जन बिना बिचार किये, अपने अस्तित्व को विनष्ट कर, सेवक व स्वामी भाव को भूल, मेरे निर्गुण प्रकाश में उसी प्रकार विलीन हो जाते हैं जिस प्रकार जल की एक बूँद समुद्र को प्राप्तकर उसमें समाहित (विलीन) हो जाती है।

दो०– नाम रूप लीला निदरि, सत चिद आनँद मोर ।
सगुण ब्रह्म लहि प्रेम सुख, ते किमि जानहि भोर ॥१०३॥

मेरे सच्चिदानदमय नाम, रूप एवं लीला की अवहेलना करने के कारण, ज्ञानीजन सगुण ब्रह्म मुझे, प्रकारान्तर से प्राप्त कर (मेरे तेज में विलीन होकर), भूलकर भी मेरे प्रेमानन्द को किस प्रकार जान सकते हैं? अर्थात् वे मेरे प्रेमानन्द से सदा बंचित ही रह जाते हैं।

मम अचिन्त्य शक्तिहिं वर ज्ञानी । निदरे केवल ब्रह्महिं मानी ॥
ते किमि जानहिं मम सुख काहीं । निरस ज्ञान रत सदा रहाहीं ॥

पुनः ज्ञानीजन केवल ब्रह्म की सत्ता को ही स्वीकार करने के कारण, मेरी अचिन्त्य शक्ति का भी तिरस्कार करते हैं अतः सदैव रसहीन ज्ञान में मग्न रहने वाले वे किस प्रकार मुझसे प्राप्त परमानन्द का समनुभव कर सकते हैं?

निर्गुण रमें भये ते निर्गुण । सगुण सुखहिं सो पावहिं कस पुन ॥
जग रस त्याग वास निर्मूला । अगुणहिं भजे मोक्ष अनुकूला ॥

मेरे निर्गुण स्वरूप में रमने वाले तो निर्गुण ही हो जाते हैं, अतः वे सगुण सुख को किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं। वे ज्ञानीजन सांसारिक सुखों को त्याग व वासनाओं को निर्मूल बनाकर मोक्ष प्राप्ति के लिये ही निर्गुण ब्रह्म का भजन करते हैं।---

सोऽहं वृत्ति अखण्ड बनाई । मुक्त होय गे तेज समाई ॥
प्रेम चाह नहिं जिय महँ जामी । रूप दरश नहि लहेउ ललामी ॥

---तथा मै वही हूँ (ईश्वर व मुझमें अभेद है) इस प्रकार की अपनी अटूट वृत्ति को बनाकर वे मेरे तेज में समाहित हो, मुक्त हो जाते हैं, उनके हृदय में प्रेम की लालसा तक उत्पन्न नही होती क्योंकि उन्होने मेरे सुन्दर सगुण स्वरूप का दर्शन ही प्राप्त नही किया।---

मोरहु प्यार न तिन महँ रहई। मुक्ति देय पुनि सुधि नहि चहई॥
यथा मातु पहँ पूत सयाना। चुम्बन प्यार न लहै सुजाना॥
शिशुहिं दुलरि प्रिय पयहिं पियाई। छिन छिन रक्षि नेह नहवाई॥

———अतः मेरा प्रेम भी, ज्ञानियों में नहीं रहता, मैं उनको मुक्ति देकर उनकी स्मृति तक उसी प्रकार नही रखता जिस प्रकार बड़ा (सयाना) पुत्र, माता के चुम्बन और प्यार को प्राप्त नही करता। परन्तु अपने छोटे बच्चे (शिशु) को माता दुलार कर, अपना प्रिय दुग्ध पान कराती हुई (दूध पिलाती हुई), उसकी प्रत्येक क्षण रक्षा करती रहती है तथा अपने प्रिय वात्सल्य में अवगाहन कराती रहती है।———

दो०—गोद लिये पुनि मातु नित, रहत हिये लपटाय।
तथा हमहुँ प्रेमिहिं पगे, रहहिं नित्य छपकाय॥१०४॥

———पुनः वात्सल्यमयी माता उसे (शिशु) गोद में लेकर नित्य हृदय से लिपटाये रहती है उसी प्रकार हम भी अपने प्रेमियों के प्रेम में डूबे हुए उन्हें अपने हृदय से नित्य लिपटाये (छुपकाये) रहते हैं।

प्रेम योग सुनि सुखद सुजाना। राम चरण गो लिपटि अमाना॥
अश्रु बिन्दु पग धोइ राम के। प्यार लहेव रसिया स्वभाम के॥

इस प्रकार परम सुजान कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, श्री राम जी महाराज के श्री मुख से अतीव सुखदायी प्रेम–योग की महानता को श्रवण कर, अमानी बन उनके चरणों से लिपट गये तथा अपने नेत्र जल से चरणों का प्रच्छालन कर अपने बहनोई रसिक श्रेष्ठ श्री राम जी महाराज के प्यार को प्राप्त किये।

प्रेम महा महिमा अति भारी। अनुभव कुँअर करहिं रसवारी॥
हाथ जोरि बोले रस छाये। सुनिय स्वामि सुखधाम सुहाये॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम रसाप्लावित हो अनुभव कर रहे थे कि– प्रभु प्रेम की महिमा अतिशय महान है। अनन्तर प्रेम रस में समाये हुए वे करबद्ध हो अपने बहनोई जी से बोले– हे समस्त सुखों के धाम, अतीव प्रिय, मेरे स्वामी श्री राम जी महाराज! सुनिये,———

जहँ जहँ जाय जन्म जिय जोई। तहँ तहँ प्रभु पद प्रीति समोई॥
चारि पदारथ नेक न चाही। प्रभु पद सेवा मिलै सदाही॥

———हम जहाँ भी जाकर जन्म धारण करें वहाँ सहज ही प्रभु (आप) की प्रीति में पगे रहें। हमे चारों पदार्थो (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) की किंचित भी कामना नही है, हमारी एकमात्र यही अभिलाषा है कि– हमें सदैव प्रभु (आपके) चरणों की सेवा मिली रहे।———

प्रेम विलक्षण भक्ति तुम्हारी। नित्य मिलै प्रणतारति हारी॥
राम कहा तुम प्रेम स्वरूपा। हौ हमरे सत श्याल अनूपा॥

———हे आश्रित जनों के दुखों का हरण करने वाले स्वामिन्! हमें आप की प्रेम लक्षणा भक्ति ही नित्य ही प्राप्त हो। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के वचनों को श्रवणकर, श्री राम जी महाराज बोले–

हे कुमार! आप तो स्वयं प्रेम स्वरूप व अनुपमेय हमारे नित्य (शाश्वत) श्याल हैं।–––

परम वैष्णव सिद्ध सयाने। अच्युत पद नित रमत लुभाने ॥
चरित तुम्हार श्रवण जो करहीं। अवशि प्रेम पथ सो अनुसरहीं ॥

–––आप तो परम वैष्णव, सिद्ध, निपुण, तथा नित्य मेरे अच्युत पद में लुभाये हुये, मुझमें रमण करने वाले हैं। आपके चरित्रों को, जो कोई भी, श्रवण करेंगे वे निश्चय ही प्रेम मार्ग का अनुगमन करेंगे।–––

दो०–तुम समान तुम ही कुँअर, मोरे प्राण पियार।
प्रेम पंथ प्रगटन हितै, लीन्हे जग अवतार ॥१०५॥

–––हे मेरे प्राणों के प्यारे, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! आपके समान आप ही हैं, आपने तो संसार में मेरे प्रेम मार्ग को प्रगट करने के लिये ही अवतार धारण किया है।

–: मास पारायण सत्ताइसवाँ विश्राम :–

कुँअर कहा वैष्णव धनि प्यारे। भव सुख सबहिं त्यागि बुधवारे ॥
भजन तुम्हार अहिर्निशि करहीं। भुक्ति मुक्ति नहिं मन महँ धरहीं ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवण कर, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे प्राण प्रिय रघुनन्दन! वे परम बुद्धिमान, वैष्णव जन धन्य हैं जो संसार के सभी सुखों को त्यागकर दिन–रात आपका भजन करते रहते हैं तथा सभी प्रकार के भोगों और यहाँ तक कि– मोक्ष की कामना भी अपने मन में नहीं धारण करते।

स्तर भेद कहौ तिन केरा। चाहउँ जानन हौं तब चेरा ॥
तात मिलै वैष्णवता मोही। जन्म जन्म करियो अति छोही ॥

हे आश्रित जन वत्सल! आप उन वैष्णवों के विभागों (प्रकार) का रहस्य वर्णन कीजिये, आपके इस दास के हृदय में उन्हें जानने की प्रबल अभिलाषा हो रही है। आप मुझे अपना दास समझकर मेरी अभिलाषा को शान्त करें। पुनः हे तात! आप मुझपर अपनी महती अनुकम्पा करें ताकि मुझे जन्म जन्मांतरो तक वैष्णवता प्राप्त हो।

बोले राम सुखद शुचि बानी। सुनहि कुँअर मोरे सुखदानी ॥
निजी वस्तु वैष्णवता तोरी। निर्मल नित्य नेह नव बोरी ॥

अपने प्रिय श्याल के वचनों को श्रवण कर श्री राम जी महाराज सुख प्रदायी पवित्र वाणी से बोले– हे मेरे सुखदायी कुमार! सुनिये, वैष्णवता तो निर्मल, नित्य व नवीन प्रेम में डूबी हुई, आपकी निजी वस्तु है।–––

मम अनुकूल मोर गुणधारी। ममता अहं जारि जग जारी ॥
बनि प्रपन्न त्यागेहु सब आसा। सर्वस सौपि भयो मम दासा ॥

———आपने मेरी अनुकूलता को ग्रहण कर, मेरे गुणों को धारण कर लिया है तथा ममता व अहंकार को विनष्ट कर अपने संसार को जला डाला है। इस प्रकार आप मेरे विशुद्ध शरणागत बनकर, सभी कामनाओं को त्याग, मुझे अपना सर्वस्व सौंप, मेरे सेवक हो गये हैं।———

प्राण प्राण अब पूँछे तोरे । वैष्णव भेद कहहुँ सुख सोरे ।।
सिया सहित मम सेवा गहई । ता कहँ श्री वैष्णव सब कहई ।।

———हे मेरे प्राणों के प्राण श्री लक्ष्मीनिधि जी! अब मैं आपकी जिज्ञासा के अनुसार सुखपूर्वक वैष्णवों के प्रकारों का वर्णन करता हूँ आप श्रवण करें। मेरी प्राण वल्लभा श्री सिया जी के सहित जिन्होने मेरी सेवा ग्रहण की है उन्हें सभी जन "श्री वैष्णव" कहते हैं।

दो०—यद्यपि वैष्णव भेद बहु, निज निज थिति अनुसार ॥
तद्यपि तीन प्रधान है, सो सब सुनहु प्रकार ॥१०६॥

———यद्यपि वैष्णव जनों की निजी स्थिति के अनुसार उनके बहुत से प्रकार हैं, फिर भी उनमें तीन प्रमुख हैं, आप उन सभी के रहस्यों का श्रवण करें।

साधक वैष्णव प्रथम कहावै । साधन महँ मन मतिहिं लगावै ॥
मंत्र जपै अरु रट नित नामा । रूप ध्यान रत ललित ललामा ॥

हे कुमार! वैष्णवों में प्रथम "साधक वैष्णव" कहलाते हैं, जो अपने मन व बुद्धि को मेरी साधना में सतत लगाये रहते हैं, वे नित्य "मंत्र–राज" का जप करते हैं तथा मेरे नाम को रटते हुए मेरे परम सुन्दर रूप के ध्यान में लगे रहते हैं।

मोहिं ते अभिरुचि बाढ़त जाई । वैष्णव धर्म सिखत लवलाई ॥
अन्य देव अरु आपन आसा । त्यागि भजत बसि वैष्णव वासा ॥

मुझमें उनकी प्रीति अनुक्षण बढ़ती जाती है तथा वे सजगता पूर्वक वैष्णव धर्म को सीखते जाते हैं। अन्य देवी–देवताओं व अपने बल का भरोसा त्यागकर, वे जन वैष्णवों के निकट रहते हुये मेरा भजन करते रहते हैं।

अह ममादि जे प्रबल विरोधी । करत यत्न त्यागन हित सोधी ॥
गुरु समीप सुश्रूषा करई । विगत मान मद आनँद भरई ॥

जीवों के अत्यन्त बलशाली विरोधी वर्ग जो अहंकार और ममकार आदि दोष हैं उनका अन्वेषण कर, वे जन उन्हे त्यागने के उपाय करते रहते हैं। साधक वैष्णव आनन्द प्रपूरित हो, अपने अभिमान और सम्मान को त्यागकर अपने श्री गुरुदेव भगवान के समीप जाकर उनकी सेवा किया करते हैं।

इष्ट देव सम सरवस देई । प्रीति प्रतीति सुरीतिहिं सेई ॥
साधु सहित पूजै भगवाना । कथा हमारि सुनै विधि नाना ॥

साधक वैष्णव श्री गुरुदेव भगवान को अपना इष्ट–देव मान, सर्वस्व समर्पित कर, प्रीति–प्रतीति व सुन्दर रीति पूर्वक उनकी सेवा करते हैं। साधक वैष्णव साधु–संतों के सहित भगवान का पूजन

करते हुए, हमारे रसमय चरित्रों का विभिन्न प्रकार से श्रवण करते रहते हैं।

दो०–वेद विहित धर्महिं गहत, अरु निषेध सब त्याग ।
संयम सह नित भजन कर, तजे द्वेष अरु राग ॥१०७॥

वे वैष्णव वेदों में वर्णित सदाचरण को ग्रहण तथा उसमें निषिद्ध सभी आचरणों का परित्याग किये रहते हैं। इस प्रकार वे राग (आसक्ति) और द्वेष को छोड़कर, संयम पूर्वक नित्य मेरा भजन करते हैं।

यहिं प्रकार जानहु निमिवारे । साधक वैष्णव थितिहिं सम्हारे ॥
अह मम राग द्वेष दुख दोषा । कक्षा प्रथम न तज मन कोषा ॥

हे निमिनन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप जान लीजिये कि– साधक वैष्णव इस प्रकार की स्थिति से युक्त होते हैं। वैष्णवता की प्राथमिक अवस्था होने के कारण, अहंकार, ममकार, राग, द्वेष, दुख तथा दोष आदि सभी से इनका मन–कोष सर्वथा रिक्त नहीं हो पाता।

जब तब उभड़ि कुसंगहिं पाई । बहुरि दबत सत्संगहिं लाई ॥
दूसरि श्रेणी काहिं सुजाना । एकान्ती श्री वैष्णव माना ॥

ये सभी विकार यदा–कदा कुसंग प्राप्त कर उनमें प्रगट हो जाते हैं पुनः सत्संग में मन लगाने से अन्तर्भुक हो जाते हैं। हे सुजान श्री लक्ष्मीनिधि जी! वैष्णवों की दूसरी श्रेणी को ''एकान्तिक श्री वैष्णव'' माना गया है।

त्रय रहस्य कर ज्ञान प्रकारा । भली भाँति तेहिं रहे कुमारा ॥
अनुसन्धै द्वय मंत्र सुमगना । मिलेउ परम पद जनु हिय गगना ॥

हे कुमार! एकान्तिक श्री वैष्णवों को तीनो रहस्यों (मूल मंत्र, मंत्र–द्वय और चरम मंत्र) का भली प्रकार ज्ञान रहता है तथा वे मग्न–मना होकर 'मन्त्र–द्वय' का उसी प्रकार अनुसंधान करते हैं जैसे उन्हे हृदयाकाश में परम पद ही प्राप्त हो गया हो।

तदनुसार सब चेष्टा ताकी । अनुष्ठान सब होत इकाकी ॥
अन्तर्मुखी वृत्ति प्रगटाई । शान्ति हृदय महँ परै जनाई ॥

उनकी सभी चर्यायें (दिनचर्या) एकान्तिक श्री वैष्णवों की रहनी के अनुसार होती है, वे अकेले ही सभी वेद–विहित कार्यो के अनुष्ठान में संलग्न रहते हैं अर्थात् उन्हें किसी की अपेक्षा नही रहती, उनकी वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं तथा उनके हृदय में परम शान्ति का निवास प्रतीत होता है।

दो०–जागै जिय पावन प्रबल, आचारज अभिमान ।
मम पद प्रीति प्रतीति अति, बढ़न लगत सुखदान ॥१०८॥

उनके हृदय में परम पवित्र प्रगाढ़ आचार्याभिमान प्रगट हो जाता है तथा मेरे चरणों के प्रति अतिशय सुखद प्रेम व विश्वास बृद्धिंगत होने लगता है।

सकल कर्म मम अर्थहिं करई । मन निष्काम हृदय नहिं जरई ॥
श्रवण मनन निदिध्यासन माहीं । भाव भरो चित अचल रहाहीं ॥

वे एकान्तिक श्री वैष्णव सभी कार्य मेरे सुख के लिए करते हैं तथा उनका मन सभी प्रकार की वासनाओं से रहित होने के कारण उनके हृदय को त्रिताप की अग्नि स्पर्श नहीं कर पाती। मेरे नाम, रूप, लीला व धाम के श्रवण, मनन और निदिध्यासन (पुनः पुनः स्मरण करने) के समय उनका चित्त भाव परिपूरित हो चंचलता का सर्वथा त्याग किये रहता है।

अह मम नशे क्षीण सब क्लेशा। भगी अविद्या नहिं रिस द्वेषा ॥
अनारम्भ संकल्प विहीना। भयो भक्त मम परम प्रवीना ॥

उनके हृदय से अहंकार और ममकार समाप्त हो जाते हैं, सभी शोक नष्ट–प्राय हो जाते हैं तथा अविद्या (विपरीत ज्ञान), क्रोध और द्वेष आदि विकार उनके हृदय से पलायन कर जाते हैं। इस प्रकार मेरे ये भक्त सर्वारम्भों से रहित, संकल्प विहीन और परम कुशल हो जाते हैं।

संत स्वभाव सहज सब आये। गुण अनंत हिय नगर बसाये ॥
मम गुण ग्राम नाम रत भयऊ । कहत सुनत सब कहँ सुखदयऊ ॥

उनमें सहज ही संतजनों का स्वभाव आ जाता है, उनके हृदय रूपी नगर में अनन्तानन्त सद्गुण निवास किये रहते हैं, वे मेरे परम पावन चरित्रों एवं नाम में अनुरक्त हो, उन्हे कह–सुनकर सभी जनों को सुख प्रदान करते रहते हैं।

त्रय अकार सम्पन्न सुदासा । परम अकिंचन भो तजि आसा ॥
तासु हृदय महँ मोर प्रकाशा । जानि परै सब काहिं सुभासा ॥
बनि अनन्य सेवत मोहिं काहीं। सरस भाव नित बाढ़त जाहीं ॥

मेरे वे श्रेष्ठ सेवक, तीनो अकारो (अनन्य शेषत्व, अनन्य भोगत्व और अनन्य रक्षकत्व) से सम्पन्न व सभी प्रकार की वासनाओं को त्याग, परम अकिंचन हो जाते हैं। उनका हृदय मेरे प्रेमालोक से प्रदीप्त हो जाता है जिसका संकेत सभी लोगों को भली प्रकार समझ पड़ता है। वह अनन्य होकर मेरी सेवा करता है तथा मेरे प्रति उसका मधुर भाव नित्य प्रति बढ़ता जाता है।

दो०–एकान्तिक प्रिय मुदित मन, चित्त गयो मुरझाय ।
बुद्धि सूक्ष्म ताकी भई, आत्म अनात्म दिखाय ॥१०९॥

एकान्तिक श्री वैष्णवों को एकान्त प्रिय होता है, वे सदैव मन में प्रसन्न बने रहते है, उनका चित्त चपलता का त्याग किये रहता है तथा उनकी बुद्धि सूक्ष्म–दर्शिनी हो जाती है जिससे उन्हें आत्मा और अनात्मा (देह) का स्वरूप दिखाई देने लगता है।

शम दम सुठि संतोष सुजाना। प्रेमिन संग अधिक सुख माना ॥
छूटी त्रिविध ईषना भारी । मन वच क्रम मम बनेउ पुजारी ॥

हे सर्वग्य कुमार श्री लक्ष्मीनिजि जी! एकान्तिक श्री वैष्णवों के हृदय में सुन्दर शम, दम तथा संतोष आदि गुण निवास किये रहते हैं, वे प्रभु प्रेमियों के संग में अत्यधिक सुखी होते हैं, उनकी तीनो

प्रकार की (पुत्र, धन और लोक) प्रबल ईषणाएँ (इच्छाएँ) छूट चुकी होती हैं तथा वे मन बचन और कर्म से मेरे आराधक बने रहते हैं।

एती वृत्ति भई तेहिं केरी। जानहु कुँअर हृदय निज हेरी॥
तापर जगत बीज नहि नाशा। बना रहा सूक्षम हिय वासा॥

हे कुमार! आप अपने हृदय में विचार कर जान लीजिये कि– यद्यपि एकान्तिक श्री वैष्णवों की उपर्युक्त प्रकार की स्थिति हो जाती है तथापि उनका भव–बीज विनष्ट नहीं होता वह सूक्ष्मतया उनके हृदय–कोष में बना ही रहता है।

विघ्न होन डर जानहु तबहूँ। रहै बीज हिय अणुहूँ जबहूँ॥
परमैकान्तिक वैष्णव तीजा। जेहिं सुमिरत मम हृदय पसीजा॥

हे राज कुमार! आप जान लीजिये कि– भगवत्प्राप्ति की साधना में तब तक विघ्न होने का भय बना रहता है जब तक संसार का बीज हृदय में अणु मात्र भी विद्यमान है। तीसरे प्रकार के वैष्णव "परमैकान्तिक वैष्णव" हैं। जिनका स्मरण करते ही मेरा हृदय द्रवित हो जाता है।

तेहिं प्रपन्न की मम रस पागी। परम आर्तमय दशा सुजागी॥
छिन छिन विरह विवश अकुलाई। दरश विलम्ब न मम सहि जाई॥
मोरे मिलन हेतु निज देही। मानत प्रतिबन्धक बहु नेही॥

मेरे इन शरणागत जनों "परमैकान्तिक वैष्णवों" की परम रसमयी विरह की दुखद अवस्था सदैव बनी रहती है। वे मेरे विरह के वशीभूत हो प्रत्येक क्षण व्याकुल रहते हैं तथा उन्हे मेरे दर्शन का क्षणिक विलम्ब भी असह्य होता है। वे प्रेमी मेरे मिलन में अपने शरीर तक को बाधक समझते हैं।

दो०–द्रुत छूटन हित चाह हिय, छिन छिन बाढ़ति ताहि।
देह छोड़ि कब भेटिहौं, श्री रघुकुल मणि काहिं॥११०॥

इस शरीर के शीध्र छूट जाने की तीव्रतर लालसा उनके हृदय मे प्रतिक्षण बढ़ती जाती है तथा वे विचार करते हैं कि– हाय, हाय! मैं यह शरीर छोडकर कब रघुवंश विभूषण श्री राम जी महाराज से भेंट करूँगा।

बिनु मम दर्शन व्याकुल होई। कबहुँ अघहिं प्रतिबन्धक जोई॥
सुमिरि पाप निज शीशहिं पीटी। रोवत आर्ति सन्यो दुख छीटी॥

परमैकान्तिक वैष्णव मेरे दर्शन के अभाव में अत्यन्त अधीर हो जाते हैं, पुनः कभी वे इष्ट–दर्शन (मेरे दर्शन) में अपने पापों को बाधक समझने लगते हैं इस प्रकार स्वकृत (अपने द्वारा किये हुये) पापों का स्मरण कर वे अपने हृदय में पश्चाताप करते हैं तथा अत्यन्त दुखी हो रुदन करते हुए दुख में समाहित हो जाते हैं।

हृदय ग्रन्थि प्रबला निज छोरी। लखेव परावर नाथ विभोरी॥
संशय सकल भये निर्मूला। कर्म बीज सब जर प्रतिकूला॥

परमैकान्तिक वैष्णव जन अतिशय बलवती, हृदय–ग्रन्थि को खोलकर मुझ परावर (परस्पर विरोधी गुण–धर्मो के आश्रय) पर ब्रह्म परमात्मा का भाव–मग्न हो दर्शन करते हैं। उनके सभी भ्रम–जाल विनष्ट हो चुके होते हैं तथा उनके भगवद्–विरोधी कर्मो के बीज, भुने बीजों के सदृश निस्सार (अपरिणामी) हो जाते हैं।

जग रस बीज नाश जब भयऊ । आतम परमातम रहि गयऊ ॥
प्रेमाद्वेती भयो महाना । तीसरि श्रेणी भक्त सुजाना ॥

इस प्रकार जब उनका भव–बीज पूर्णतया विनष्ट हो जाता है तब केवल आत्मा और परमात्मा ही शेष्ज्ञ रहते हैं। हे सुजान श्री लक्ष्मीनिधि जी! मेरे तीसरी कोटि के "परमैकान्तिक वैष्णव जन" महान प्रेम स्वरूप ही हो जाते हैं अर्थात् मुझमें और उनमें किंचित (अन्तर) भेद नहीं रह जाता।

श्यामहिं श्याम दृष्टि तेहिं केरी । सहज प्रीति मम पदहि घनेरी ॥
सुमिरत मोहिं प्रेम रस पागै । कहुँ गावै कहुँ नृत्यन लागै ॥

उनके नेत्रों में सर्वत्र मेरा श्याम स्वरूप ही दृष्टिगोचर होता है, उनके हृदय में सहज ही मेरे चरणों के प्रति अविरल प्रेम होता है, वे मेरा स्मरण करते ही प्रेम–रस में डूब जाते हैं तथा कभी प्रेमोन्मत्त हो गाने लगते हैं तो कभी नाचने लगते हैं।

रूप ध्यान करि होय विभोरा । रोवत हँसत विलप जन मोरा ॥
मोर चरित जीवन तेहिं केरा । क्षणमपि तेहिं बिनु जियब न हेरा ॥

मेरे वे भक्त जन, भाव–मग्न हो मेरे स्वरूप का ध्यान कर रोते, हँसते एवं विलाप करते रहते हैं। मेरे परम पावन चरित्र ही उनका जीवन बन जाते हैं जिसके बिना वे एक क्षण भी जीवन धारण नही कर पाते।

दो०– महाभाव रस रसिक वर, सतचित आनँद रूप ।
विधि निषेध ते पार होइ, प्रेम पुरी को भूप ॥१११॥

हमारे प्रेम की सर्वोच्च अवस्था महाभाव–रस के रसिक मेरे परमैकान्तिक वैष्णव जन सच्चिदानन्दमय व विधि–निषेध से पार होकर मेरी प्रेमपुरी के सम्राट बन जाते हैं।

जियतहिं भयो परम पद रूपा । अकथ अनादि अगाध अनूपा ॥
मोहिं सो भिन्न न आपहिं मानैं । इक रस स्थित प्रेम भुलानैं ॥

वे वैष्णव जन शरीर के रहते हुये अवर्णनीय, शाश्वत, असीम और अनुपमेय परम पद स्वरूप हो जाते हैं। वे स्वयं को मुझसे पृथक नहीं मानते तथा मेरे प्रेम में एक समान स्थित रहते हुए संसार को भुलाये रहते हैं।

परम प्रेममय रसमय भयऊ । मोहिमय होय मोहिं सुख दयऊ ॥
अमित तेज मय भयो महाना । पर विज्ञान मयी थिति आना ॥

वे परम प्रेम–स्वरूप और रस–रूप हो जाते हैं तथा मेरे स्वरूप बनकर मुझे सुख प्रदान करते हैं। वे महान वैष्णव जन असीमित तेज से सम्पन्न होकर, परम विलक्षण व श्रेष्ठ विज्ञानमयी अवस्था

को प्राप्त कर लेते हैं।

आनँदमय मंगयमय भाया । अमृतमय मम रूप कहाया ॥
सच्चिदआनन्द विग्रह वाना । देह अछत सो भयो सुजाना ॥

मेरा जो आनन्दमय, मंगलमय, अमृतमय व मनोज्ञ (मन को सुन्दर लगने वाला), स्वरूप कहा गया है, सर्वज्ञ परमैकान्तिक वैष्णव जन अपने शरीर के रहते ही उसी प्रकार के सच्चिदानन्दमय विग्रह वाले हो जाते हैं।

नित्य अनामय सत्संकल्पा। सत्यकाम भो भक्त अनल्पा ॥
भौमा सुख शुभ सिन्धु समाया । जियब मरब सब ज्ञान गँवाया ॥

वे परमैकान्तिक वैष्णव भक्त, नित्य, निर्मल, सत्य–संकल्प, सत्यकाम एवं महान हो जाते हैं और अपने जीने व मरने के सम्पूर्ण ज्ञान को भुलाये हुए शुभ–स्वरूप भूमा–सुख के सागर में समाये रहते हैं।

दो०– मोक्ष बन्ध के पार भो, प्रेमी प्राण अधार ।
मोहि सो भिन्न न जानियहिं, मैं तुम यथा कुमार ॥११२॥

वे प्रेमीजन मेरे प्राणों के आधार, मोक्ष और बन्धन के पार हो चुकते हैं। हे राज कुमार श्री लक्ष्मी–निधि जी! उन्हें (परमैकान्तिक वैष्णवों को) आप मुझ से पृथक उसी प्रकार नही समझें जिस प्रकार मैं और आप पृथक नहीं है।

जीवन मुक्त प्रेम की मूरति। परमैकान्ती मम सुख पूरति ॥
सो मम रूप सत्य जग माहीं । विचरत जनन देन सुख काहीं ॥

परमैकान्तिक वैष्णव जीवन मुक्त, प्रेम के मूर्तिमान स्वरूप तथा मुझे सुखी करने वाले होते हैं। वे यथार्थतः मेरे ही स्वरूप होते हैं तथा जीवों को सुख प्रदान करने के लिये ही संसार में विचरण (भ्रमण) करते रहते हैं।

साधक वैष्णव आदर योगा। भाव सहित तेहिं पूजहिं लोगा ॥
एकान्ती सहवासहिं योगू । दरश परश नित सेवहिं लोगू ॥

इन वैष्णव जनों में प्रथम प्रकार के ''साधक वैष्णव'' अत्यन्त सम्माननीय होते हैं, जगज्जन उनका श्रृद्धा पूर्वक पूजन करते हैं। द्वितीय प्रकार के ''एकान्तिक वेष्णव'' संग करने योग्य होते हैं, जगज्जनों को जिनका दर्शन व स्पर्श प्राप्तकर नित्य उनकी सेवा करनी चाहिये।–––

लहि निर्देश तासु अनुकूला । चलन योग सो मंगल मूला ॥
अनुभव योग शान्ति सुखदायक। परमैकान्तिक वैष्णव नायक ॥

–––पुनः मंगल स्वरूप ''एकान्तिक वेष्णवों'' की अनुकूलता ग्रहण कर उनकी आज्ञानुसार चलना चाहिए। वैष्णवों में प्रधान तृतीय प्रकार के ''परमैकान्तिक वैष्णव'' शान्ति और सुख प्रदान करने वाले व अनुभव करने के योग्य होते है।

मम अनुभव जस आँनद दानी । तस परमैकान्तिहुँ रस सानी ॥
किंचित भेद न ताकर मोरा । सत चिद आनँद प्रेमहिं बोरा ॥
तेहिं कर दरश परश सुखदाई । यथा मोर जानहु जिय भाई ॥

हे राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! मेरा अनुभव जैसा आनन्द प्रदायी होता है वैसा ही रस मग्न परमैकान्तिक वैष्णवों का अनुभव होता है। प्रेम से ओत–प्रोत सच्चिदानन्दात्मक मेरे परमैकान्तिक वैष्णवों और मेरे अनुभव में रंच मात्र भी अन्तर नहीं होता। हे तात! आप हृदय में ऐसा समझ लें कि उनका दर्शन व स्पर्श उसी प्रकार सुखदायक होता है जिस प्रकार मेरा दर्शन व स्पर्श।

दो०–ता कहँ नर नहिं जानियहिं, धारे जग मम देह ।
प्रेमहिं छाके रैन दिन, कीन्हे सहज सनेह ॥११३॥

उन्हें (परमैकान्तिक वैष्णव जनों को) मनुष्य नही समझना चाहिये वे तो संसार में मेरा स्वरूप (शरीर) धारण कर, मुझसे सहज स्नेह करते हुए दिन–रात मेरे प्रेम में छके रहते हैं।

लक्ष्मीनिधि सुनि तत्वहिं हरषे । प्रेम प्रवाह नयन बहु वरषे ॥
बोले बहुरि चरण धरि शीशा । राम कृपा बिनु प्रेम न दीशा ॥

श्री राम जी महाराज की श्री मुख वाणी से "वैष्णवीय तत्व" का विवेचन श्रवण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अत्यन्त हर्षित हुए तथा उनके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं का अतीव प्रवाह वरसने लगा। पुनः प्रभु श्री राम जी महाराज के चरणों में सिर रख प्रणाम कर वे बोले– हे नाथ! आपकी कृपा के बिना कहीं भी "प्रेम" का दर्शन नहीं हो सकता।

जापर कृपा नाथ की होई । परमैकान्ती वैष्णव सोई ॥
सोइ कृपा निशि वासर चाहउँ । ता बिनु आत्महिं नाहिं निबाहउँ ॥

हे नाथ! जिसके ऊपर आपकी कृपा होती है वही ''परमैकान्तिक वैष्णव'' होता है। मैं आपकी उसी भास्वती कृपा की दिन–रात कामना करता हूँ तथा उसके अभाव में अपनी आत्मा का भी निर्वाह नहीं कर सकता अर्थात् अपनी आत्मा को भी नही सह सकता।

परशि राम कीन्हे अति प्यारा । भयो मुदित मन जनक कुमारा ॥
कहेउ बहुरि जग राम स्वरूपा । केहिं विधि दीखै कौशल भूपा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के वचनों को श्रवण कर श्री राम जी महाराज ने उनका स्पर्श कर अत्यधिक प्यार किया तब जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी मन में आनन्दित होकर बोले– हे कौशल नरेश श्री राम जी महाराज! यह दुख स्वरूप संसार भगवत स्वरूप कैसे दिखाई देता है?

राम कहा सुनु सुन्दर श्याला । सतसंगति जन करहिं विशाला ॥
युक्ति बिचार तहाँ नित सुनई । साधक मनन करै लव लनई ॥

श्री राम जी महाराज ने कहा– हे हमारे मनोज्ञ श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी! सुनिये, जब साधक–जन दीर्घकाल तक, मंगलकारी सत्संग करते हैं और सत्संग के माध्यम से तर्क संगत विचारों को नित्य एकाग्रता पूर्वक श्रवण व मनन करते हैं।–––

दो०—हृदय ज्ञान होवै तबहिं, जावै जग भ्रम छूट ।
रामहिं रामहिं लखि परै, मानहु बात अटूट ॥११४॥

———तभी उनके हृदय में ज्ञान का प्राकट्य हो जाता है और उनका सांसारिक माया जाल छूट जाता है उस समय सम्पूर्ण संसार में उन्हें सर्वत्र मैं (राम) ही दिखाई देने लगता हूँ, इस वार्ता को आप, मेरा अटल कथन जानिये।

कहउँ युक्ति मन करहुँ विचारा । ज्ञान धाम तुम निमि कुल वारा ॥
माटी ते घट विविध प्रकारा । उपजत अमित नाम निरधारा ॥

हे ज्ञान के धाम श्री निमिकुल नन्दन! आप विचार कीजिये, मैं एक दृष्टान्त कह रहा हूँ– जैसे मिट्टी से विभिन्न आकार–प्रकार के घड़े बनते हैं और उनके असीमित नाम रखे जाते हैं।———

भिन्न भिन्न रूपहु तिन केरा । पेखि परै सबहिन दृग हेरा ॥
किये बिचार मृत्तिका भाई । सबहीं अहै न और कहाई ॥

———जो देखने पर सभी को विभिन्न आकार–प्रकार के भी दिखाई पड़ते हैं। परन्तु हे सीताग्रज! विचार करने पर वे सभी मिट्टी ही होते हैं, मिट्टी के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं।———

ज्ञान दृष्टि सब माटिन माटी । करि अज्ञान नाम बहु ठाटी ।।
कंचन सो नित कंकण आदी । भूषण बने नाम बहु लादी ।।

———ज्ञान दृष्टि से देखने पर सभी में एकमात्र मिट्टी ही मिट्टी होती है किन्तु अज्ञान के कारण उनके बहुत से नाम आरोपित किये रहते है। स्वर्ण से नित्य ही कंगन आदि विभिन्न आकार प्रकार के आभूषण बनते है जिनके अनेकानेक नाम होते है।———

सब महँ सुवरण एक समाना । सुवरण छोड़ि वस्तु नहिं आना ॥
अज्ञन नाम रूप बहु धारी । सुवरण नामहिं कीन्ह खुआरी ॥

———उन सभी आभूषणों में एक मात्र स्वर्ण ही होता है तथा स्वर्ण के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं होती तथापि अज्ञानी जन उनके वास्तविक नाम स्वर्ण को समाप्त कर बहुत से नाम और रूप दे देते हैं।———

दो०—ज्ञानी देखहिं कनक को, सब महँ एक समान ।
कनक छोड़ि अनवस्तु नहिं, कनकहिं कनक लखान ॥११५॥

———परन्तु ज्ञानी जन, उन सभी आभूषणों में समान रूप से स्वर्ण ही देखते हैं, उन्हें उनमे स्वर्ण के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नही दीखती, प्रत्युत सभी कुछ स्वर्ण ही स्वर्ण दिखाई पड़ता है।

जिमि धागे ते वस्त्र अनेका । बनत जगत जिय करहु विवेका ॥
नाम रूप धारे बहु सोई । धागा नाम गयो तेहिं खोई ॥

हे राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप अपने हृदय में विवेकतया विचार कीजिये कि– जिस प्रकार संसार में धागे से अनेक प्रकार के वस्त्रों का निर्माण होता है और वे कई नाम व रूप धारण

किये रहते हैं परन्तु उनका धागा नाम लुप्त हो जाता है, वस्त्रों को कोई धागा नहीं कहता।–––

धागा तजि तेहिं वस्त्र मझारी । अन्य वस्तु नहिं लखै विचारी ॥
तैसहिं जानहु यह संसारा । नाम रूप मय अमित प्रकारा ॥

–––परन्तु बिचार करने पर उन वस्त्रों में धागे के अतिरिक्त अन्य वस्तु नही दिखाई (समझ) पड़ती। उसी प्रकार असीमित नाम व रूप (आकार–प्रकार) वाले इस संसार को समझना चाहिये।–––

मोहिं महँ रहै मोहि मय भाई । मोहि ते बना न अन्य सहाई ॥
सत ते असत कबहुँ नहिं होई । यथा बीज तस वृक्षहुँ जोई ॥

–––हे श्री सीताग्रज! यथार्थतया यह संसार मुझमें ही समाया है, मेरा ही स्वरूप है तथा किसी अन्य की सहायता के बिना मुझसे ही बना हुआ है। सत्य से कभी भी असत्य की उत्पत्ति नही होती, जैसा बीज होता है तदनुसार ही बृक्ष भी दृष्टि गोचर होता है।–––

ताते सब जग मोर स्वरूपा । सत्य सत्य सुनु निमिकुल भूपा ॥
मोहि छोड़ि किंचित जग माहीं । देखी सुनी वस्तु है नाहीं ॥

–––इसलिए हे निमिकुल नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप श्रवण करें, मैं सत्य सत्य कह रहा हूँ कि– यह सम्पूर्ण संसार मेरा ही स्वरूप है। मेरे अतिरिक्त इस समग्र संसार में अन्य कोई वस्तु न तो देखी–सुनी गयी और न है ही।–––

दो०–बनि विराट संसारमय, राजि रह्यो मैं भूप ।
लखहिं तत्व विद संत जन, सत्य जगत मम रूप ॥११६॥

–––श्री राम जी महाराज कहते हैं कि–हे निमिकुल नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी! मैं ही इस महान संसार का स्वरूप बनकर सुशोभित होता हूँ। मेरे रहस्य के ज्ञाता संतजन संसार को यथार्थतया मेरा ही स्वरूप समझते हैं।

यामहँ कहहु कवन कठिनाई। घट महँ माटी परै लखाई ॥
मोर रूप सब जगतहिं जानी । करै प्रणाम भक्त रस सानी ॥

हे कुमार! अब आप ही कहिये, इसमें कौन सी कठिनाई है कि– मिट्टी के घड़े में मिट्टी दिखाई पड़ने लगे। अतएव मेरे भक्त–जनों को चाहिये कि– प्रेम–रस में सने हुए संसार को मेरा स्वरूप समझकर उसे प्रणाम करें।–––

पंच भूत सर सरित अरण्या । पर्वत गृह अरु भानु वरण्या ॥
ज्योति स्वरूप सकल जग केरी । जड़ चेतन वर वस्तु घनेरी ॥

–––पाँच महाभूतों (पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि, व वायु), सरोवरों, नदियों, वनों, पर्वतो, भवनों व श्रेष्ठ सूर्यदेव, तथा संसार की सभी जड़ चेतन युक्त प्रकाश–स्वरूप वस्तुएँ,–––

नीच ऊँच सब जीव समूहा । जलचर थलचर नभचर व्यूहा ॥
दानव देव मनुज सब कोई । तन मन बुद्धि आत्म जो होई ॥

———छोटे–बड़े सभी जलचर, थलचर एवं नभचर जीव समुदाय, राक्षस, देवता और मनुष्य आदि सभी जीवधारी तथा शरीर, मन बुद्धि और आत्मा आदि जो कुछ भी संसार में है,———

सत सत जानि मोहि मम प्यारा । करै प्रणाम नित्य रस वारा ॥
मन बच कर्म अहिंसा त्यागी । सब विधि भक्त मोर अनुरागी ॥

———हे राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! मेरे रसमय व प्रिय भक्तजनों को चाहिये कि– उन सभी को सत्य–सत्य मेरा स्वरूप समझ कर नित्य प्रणाम करें तथा मन–बचन और कर्म से हिंसा का परित्यागकर सभी प्रकार से मेरे अनुरक्त बने रहें।———

दो०–जो जन मोकहँ भजत हैं, करत जगत ते द्वेष ।
अर्चा पूजा तासु कर, है पाखण्ड नरेश ॥११७॥

———क्योंकि, हे निमिकुल नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी! जो लोग मेरा भजन तो करते हैं परन्तु संसार से द्वेष्ज्ञ रखते हैं उनके द्वारा की गयी पूजा, व अर्चना सभी कुछ ढोंग ही है।———

जगत द्वेष जो करहिं गुमानी । मोहिं सो द्वेष करन तिन ठानी ॥
सर्व भूत हिय मोर निवासा । जे दुखवहिं ते नहिं मम दासा ॥

———जो जन अभिमान के वशीभूत होकर, संसार से द्वेष्ज्ञ करते हैं, उन्होने मुझसे ही द्वेष करने का निश्चय कर लिया है क्योंकि सभी जीवों का हृदय ही मेरा निवास है अतः जो लोग दूसरे जीवों को दुखी करते हैं वे मेरे भक्त नही हो सकते।

अस बिचारि हे निमिकुल वारे । जगत मोहि मय लखैं सुखारे ॥
सत कहँ सत मानन के हेतू । कवन परिश्रम है चित चेतू ॥

———हे श्री निमिकुल नन्दन! ऐसा बिचार कर मेरे भक्त सुख पूर्वक संसार को मेरा स्वरूप समझते हैं। आप अपने मन में विचार तो कीजिये कि– सत्य बात को सत्य मानने में क्या परिश्रम है।———

संतन संग बैठि यह युक्ती । श्रवण मनन करि लह नर मुक्ती ॥
अणु अणु महँ मम रूप लखावै । परमानन्द जीव तब पावै ॥

———मेरे रहस्य–वेत्ता संतों के साथ बैठ, उनसे सत्संग कर इस विनिश्चय को श्रवण व मनन कर मनुष्य मोक्ष प्राप्त करते हैं। जब जीवों को संसार के प्रत्येक कण में सर्वत्र मेरा ही स्वरूप दिखने लगता है तभी वे परमानन्द को प्राप्त करते हैं।———

राग द्वेष सब जाय नसाई । रहै छाय सुख शान्ति सुहाई ॥
शान्ति समान सुक्ख नहिं एका । प्रेम राज कर सो अभिषेका ॥

———उस समय उनके सभी राग और द्वेष विनष्ट हो जाते हैं तथा हृदय में सुन्दर सुख व शान्ति का निवास हो जाता है। जीवों के लिए शान्ति के समान अन्य कोई भी सुख नही है, वह शान्ति उन्हे प्रेम के राज्य में अभिषिक्त कर देती है।———

दो०—ताते साधक प्रेम युत, जग सचराचर काहिं ।
मोहि मय देखत सुख लहैं, गति अनन्य सो आहिं ॥११८॥

इसलिए साधकों को चाहिये कि— प्रेम पूर्वक चराचर युक्त सम्पूर्ण संसार को मेरा स्वरूप समझते हुये सुख प्राप्त करें यही उनकी अनन्य गति है।

लक्ष्मीनिधि कह सुनु रघुराया । राम ब्रह्म तुम नाथ अमाया ॥
विनती करहुँ नाथ कर जोरी । समुझावहु करि कृपा अथोरी ॥

पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा— हे श्री राम जी महाराज! सुनिये, आप तो माया—रहित पूर्णतम पर ब्रह्म ही हैं। हे नाथ मैं आप से करबद्ध प्रार्थना कर रहा हूँ कि— आप मुझ पर अपनी अतिशय कृपा कर मुझे मेरे द्वारा जिज्ञासा किये जा रहे रहस्य का ज्ञापन कराइये।

एक अनादि प्रथम रह आपू । अंतहुँ रहहिं नाथ श्रुति थापू ॥
मध्य विराट जगत तव रूपा । अहै सत्य सब भाँति अनूपा ॥

हे नाथ! सृष्टि के पूर्व में एक मात्र आप ही रहते हैं तथा सृष्टि के अंत में भी आप ही शेष रहते हैं ऐसा श्रुतियों ने विनिश्चय किया है। सृष्टि के मध्य में भी आपका सत्य व सभी प्रकार से अनुपमेय स्वरूप ही विराट संसार बनकर सुशोभित होता है।———

तौ प्रभु माया जीव अनित्या । लगत अहैं वरणहिं का सत्या ॥
राम कहा सुनु जनक कुमारा । सत सत मानहु बचन हमारा ॥

———परन्तु हे नाथ! आपकी माया और जीव तो अनित्य (अशाश्वत) प्रतीत होते हैं, आप वर्णन करें कि— सत्य क्या है? श्री राम जी महाराज ने कहा हे जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी! सुनिये और हमारे बचनों को सर्वथा सत्य मानिये।———

माया जीव ईश मिलि तीनो । ब्रह्म कहावत आनन्द भीनो ॥
तीनहु मिलि मैं राम कहावौं । या महँ संशय नेक न लावौं ॥

———हे कुमार! माया, जीव और ईश्वर तीनो मिलकर ही आनन्दमय ब्रह्म कहलाते हैं तथा इन्ही तीनों से संयुक्त होकर ही मैं "राम" कहलाता हूँ इस तथ्य में किंचित भी संदेह मत कीजिये।———

दो०—सृष्टि प्रथम सूक्षम रहत, तीनहु तत्व सुजान ।
सृष्टि काल स्थूल ह्वै, बनैं विराट महान ॥११९॥

———हे सुजान कुमार! ये तीनों तत्व (माया, जीव और ईश्वर) सृष्टि के पूर्व सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहते हैं परन्तु सृष्टि के समय स्थूल रूप धारण कर विराट और महान बन जाते हैं।———

ताते तीनहु तत्व अनादी । जानहिं सब परमारथ वादी ॥
यथा बीज महँ प्रथम कुमारा । सूक्ष्म रूप पल्लव फल डारा ॥

———इसलिए ये तीनो तत्व (माया, जीव और ईश्वर) शाश्वत हैं, इस तथ्य को सभी परमार्थ वेत्ता जानते है। हे कुमार! जिस प्रकार बीज में पूर्व से ही सूक्ष्म रूप में पत्ते व फल आदि पौधे के

समस्त अंग उपस्थित रहते हैं।———

समय पाय प्रगटत स्थूला । वृक्ष कहत तेहिं मन अनुकूला ॥
लीला प्रिय मैं लीला हेतू । सृष्टि प्रवाह करौं चित चेतू ॥

———जो अनुकूल समय प्राप्त कर स्थूल रूप से प्रगट हो जाते हैं तब लोग उसे मन चाहे बृक्ष की संज्ञा देते हैं। तदनुसार मैं, लीला प्रिय होने के कारण, अपनी लीला के विकास हेतु सजगतया सृष्टि का सृजन करता हूँ।———

माया जिव शरीर सत मोरा । भोग रूप मम पृथक न थोरा ॥
यथा हाथ सों लोकहु प्रानी । सिर खजुआवत आपन जानी ॥

अतः माया और जीव दोनो, मेरे भोग स्वरूप, मुझसे सर्वथा अपृथक व सत्य रूप से मेरे शरीर के अंग हैं। जिस प्रकार संसार में लोग हाथ को अपना समझकर हाथ से सिर खुजलाते हैं,———

तथा जीव अरु माया द्वारा । पावौं प्रिय कर भोग अपारा ॥
ताते जीव पृथक गिनि आपै । कबहुँ न भोक्ता करि मन थापै ॥

———उसी प्रकार मैं भी जीव और माया के द्वारा अपने प्रिय और असीम भोगों को प्राप्त करता हूँ। इसलिए जीवों को चाहिए कि– वे अपने आप को कभी भी मुझसे अलग न समझें और न ही मन से स्वयं को भोक्ता मानें।

दो०–आत्मा जस सब अंग कर, अहै प्रकाशक तात ।
तथा जीव माया सकल, मम प्रकाश लहरात ॥१२०॥क॥

हे तात श्री लक्ष्मीनिधि जी! जिस प्रकार देह के सभी अंगों को प्रकाशित करने वाली एकमात्र आत्मा होती है उसी प्रकार माया के सहित सभी जीव मेरे प्रकाश से ही प्रकाशित होते हैं।

देह कर्म अरु देह सह, देही जनक कुमार ।
आत्मा कहवावै जगत, सूक्षम किये विचार ॥ख॥

हे जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी! जिस प्रकार सूक्ष्मतया विचार करने पर संसार में शरीर के द्वारा किये गये कर्मो सहित शरीर व शरीरधारी (जीव) सभी आत्मा ही कहलाते हैं।

तथा जीव माया अरु ईशा । ब्रह्म कहावत पूर्ण महीशा ॥
मम शरीर सब जीवहिं जानी । शक्ति गिनहु मायहिं गुण खानी ॥

उसी प्रकार, हे निमिकुल नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी! जीव, माया और ईश्वर तीनो मिल कर ही पूर्ण ब्रह्म कहलाते हैं। अतः आप सभी जीवों को मेरा शरीर तथा गुणों की खानि माया को मेरी अचिन्त्य शक्ति समझिये।

जहाँ देह तहँ देही ताता । जहँ देही तहँ देह सुहाता ॥
देही देह जहाँ तहँ शक्ती । अवशि होय यह सिद्ध सुयुक्ती ॥

हे तात! जहाँ शरीर रहता है वहीं शरीर–धारी भी रहता है तथा जहाँ शरीर–धारी होता है,

शरीर भी वहीं सुशोभित होता है। जहाँ शरीर–धारी और शरीर दोनो होते हैं वहाँ पर अवश्य ही शक्ति समाहित रहती है यह एक सुन्दर व सिद्ध दृष्टान्त है।–––

जहाँ शक्ति तहँ शक्तिहिं धारी । देही देह अवशि निरधारी ॥
तीनहुँ तत्व रहैं इक साथा । भिन्न कबहुँ नहिं सुनु निमिनाथा ॥

–––जहाँ शक्ति होती है वहीं शक्ति को धारण करने वाला शक्तिवान होता है तथा शरीर और शरीर–धारी भी वहीं रहते हैं ऐसा निश्चित सिद्धान्त है। हे निमिकुल नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी! सुनिये, इस प्रकार तीनो तत्व (जीव, माया और ईश्वर) सदैव एक साथ रहते हैं, वे कभी भी अलग नही होते।

चिदानन्दमय देह हमारी । सत अमृत सुख रूप सम्हारी ॥
सर्व शरीरी हौं सुख कारा । ईश जीव माया वपु वारा ॥
अस विचारि मन महँ त्रय तत्वा । नित्य अनादि गुनहु भ्रम हत्वा ॥

–––हे राज कुमार! हमारा शरीर सच्चिदानन्दमय, अमृतमय व सुखमय है। ईश्वर, जीव व माया का संयुक्त स्वरूप मैं ही सभी की आत्मा व सभी को सुख प्रदान करने वाला हूँ ऐसा मन में विचार कर सभी शंकाओं से मुक्त हो तीनो तत्वों (ईश्वर, जीव, और माया) को नित्य, एवं अनादि समझिये।

दो०–सीय राम मय जगत कहँ, जानि कुँअर सत लोग ।
चलहिं यथावत प्रेम युत, जस श्रुति शास्त्र नियोग ॥१२१॥

अतएव हे राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! जीवों को चाहिये कि– संसार को निश्चित रूप से (सत्यतया) श्री सीताराम मय (श्री सीताराम जी का स्वरूप) समझ कर, प्रेम पूर्वक तदनुसार ही आचरण करें जैसा कि श्रुतियों एवं शास्त्रों का निर्देश है।

तिन कहँ भय नहिं तीनहुँ काला । मानहु बचन सत्य निमिलाला ॥
ब्रह्मात्मक सब जगतहिं जानी । अह मम त्यागि भजहिं सत प्रानी ॥

ऐसे जीवों को त्रिकाल (भूत, भविष्य व वर्तमान) में कही भी कोई भय नही है, हे निमिनन्दन! आप हमारे बचनों को सत्य समझें। सत्पुरुष (सज्जन) इस सम्पूर्ण संसार को ब्रह्म स्वरूप समझ, अहंकार और ममता का त्यागकर सतत मेरा भजन करते रहते हैं।–––

आतम स्वार्थ साँच मम प्रीती । अरु परमारथ इहै अतीती ॥
संशय तर्क समूल बहाई । भजहिं मोहि नर यथा बुझाई ॥

–––आत्मा का सच्चा स्वार्थ मेरा प्रेम ही है और यही प्रेम महान परमार्थ है। अतः संदेह व तर्को को जड़ सहित नष्ट कर मनुष्य मेरा उसी प्रकार भजन करें जैसा मैंने समझाया है।

ताकर सुख जानहिं जिय सोई । परमानन्द सिन्धु महँ मोई ॥
मधुर मुखहिं सुनि सुखकर बानी । भक्ति विवेक प्रेम रस सानी ॥

उपरोक्त प्रकार से भजन करने वाले साधक ही, उस भजनानन्द को अपने हृदय में जान पाते

है और उसी परमानन्द के सागर में सदैव मग्न रहते हैं। इस प्रकार भक्ति, ज्ञान व प्रेम, रस से सनी हुई श्री राम जी महाराज के मधुर मुख विनिश्रिता व सुख प्रदायिका वाणी को श्रवण कर———

लक्ष्मीनिधि अति हिय हरषाने । भाव सिन्धु महँ मगन महाने ॥
पुनि धरि धीर कहे प्रभु पाहीं । सब विधि धन्य भयों जग माहीं ॥

———कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ह्रदय में अत्यन्त हर्षित हुये तथा भाव के महासागर में मग्न हो गये। पुनः धैर्य धारण कर वे अपने प्रभु श्री राम जी महाराज से बोले— हे नाथ! आपके वचनों को श्रवण कर मैं संसार में सभी प्रकार से धन्य हो गया।———

दो०—परम भागवत धर्म प्रभु, प्रीति रीति सुख दानि ।
मोहिं दियो करिकै कृपा, शरण पाल जन जानि ॥१२२॥

———हे शरणागत जनों के प्रतिपालक श्री राम जी महाराज! आपने कृपा कर मुझे अपना सेवक समझ, परम भागवत धर्म एवं भागवत् जनों की सुख प्रदायक प्रीति—पद्धति का ज्ञान प्रदान किया है।

पूछऊँ नाथ कहहु करि दाया । जे प्रपन्न तव भक्त कहाया ॥
चलहिं प्रेम पथ सब बल त्यागी । चाहहिं दरश परश तव रागी ॥

हे नाथ! मै आपसे पुनः जिज्ञासा कर रहा हूँ, आप कृपा कर मुझसे कहिये कि— आपके जो शरणागत व भक्त कहलाते हैं तथा जो सभी प्रकार के बल (स्वबल व पर—बल) का त्याग कर प्रेम मार्ग का अनुसरण करते हुए आप में अनुरक्त होकर एक मात्र आपके दर्शन व स्पर्श की ही कामना करते हैं।———

तदपि विरोधी प्रबल स्वरूपा । बाधत तिन कहँ प्रभु सुर भूपा ॥
तिन के त्यागन योग कृपाला । काह काह आरत जन पाला ॥

———तथापि हे देवाधिदेव मेरे स्वामी श्री राम जी महाराज! महा बलवान विरोधी स्वरूप उनको भी बाधायें पहुँचाते रहते हैं। अतएव हे कृपालु आर्त्तजन परिपालक श्री राम जी महाराज ! उनके लिए क्या—क्या त्याज्य हैं जिससे वे भगवद्विरोधी स्वरूप से बच सकें।

कह रघुवीर जो मम पद राता । गति अनन्य मोहिं सेवहिं ताता ॥
सो प्रपन्न स्पर्श कु पाँचा । मन सों त्यागै वच मम साँचा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के वचनों को श्रवण कर श्री राम जी महाराज ने कहा— हे तात! जो जीव मेरे चरणों में अनुरक्त होकर अनन्य गति से मेरी सेवा करते हैं, मेरे बचनो को सत्य मानकर उन शरणागत जीवों को पाँच प्रकार के कुस्पर्शो को मन से त्याग देना चाहिये।———

सर्व स्पर्श प्रथम कह गाई । जेहिं वश सकल जीव समुदाई ॥
सब सुर कहँ पूजत करि आसा । स्वार्थ हेतु बनि जग कर दासा ॥

———उनमें प्रथम "सर्व—स्पर्श" कहलाता है जिसके वशीभूत हो सभी जीव समुदाय संसार के सेवक (दास) बनकर, स्वार्थ पूर्ति की कामना से सभी देवताओं की उपासना करते रहते हैं।———

राम परत्व समुझि मन माहीं। अमित दानि जानै मोहि काहीं॥
परमानँद नित वितरन वारा। अमित अण्डनायक सुख सारा॥

–––उन्हे चाहिये कि– वे अपने मन में मेरी श्रेष्ठता समझते हुये अर्थात् मुझे सभी देवी देवताओं से श्रेष्ठ मानते हुये, अपरिमित दानी मानें तथा नित्य परमानन्द का वितरण करने वाला, असीमित ब्रह्माण्डों का नायक एवं सुखों का सार समझे।–––

दो०– करि विचारि निज हृदय महँ, सबकी आस विहाय।
सर्व स्पर्शहिं त्यागि कै, रहै मोहिं लव लाय॥१२३॥

–––अपने हृदय में उपरोक्त प्रकार से विचार कर, अन्य सभी देवी देवताओं का भरोसा त्याग दें। इस प्रकार सभी देवी देवताओं का आश्रय रूप "सर्व–स्पर्श" को छोड़ कर वे साधक एक मात्र मुझमें ही अपने मन को लगाये रहें।

मायावाद स्पर्श द्वितीया। चहिय प्रपन्नहिं सो तजनीया॥
जेहिं वश निर्गुण ब्रह्महिं थापी। सगुणहिं मायिक कहत प्रलापी॥

दूसरा स्पर्श "मायावाद" है, वह भी शरणागत चेतन के त्याग करने योग्य हैं। मायावाद के वशीभूत होकर, साधक निर्गुण ब्रह्म (निराकार रूप) को स्वीकार कर उपासना करते हैं तथा सगुण ब्रह्म (साकार रूप) को मायामय कह कर व्यर्थ की बातें करते हैं।

मम अनंत गुण दिवि कल्याना। सुमिरै भक्त नित्य तजि माना॥
जावै माया वाद नसाई। होय सगुण पर प्रीति महाई॥

अतः मेरे भक्तों को चाहिये कि– वे अभिमान त्याग कर मेरे दिव्य, कल्याणमय, अनन्तानन्त गुण–गणों का नित्य स्मरण करें, जिससे उनका मायावाद स्पर्श विनष्ट हो जायेगा और मेरे सगुण स्वरूप में उनकी महान प्रीति हो जायेगी।

तीसर एकायन स्पर्शा। मम शक्तिहिं जा वश आमर्षा॥
मम शक्तिहिं कर करि अपमाना। करन न पावत कछु कल्याना॥

तीसरे प्रकार का "एकायन स्पर्श" है, जिसके आधीन हो जीव मेरी "शक्ति" से द्वेष करते हैं और मेरी शक्ति का अपमान करने से अपना किंचित भी कल्याण नहीं कर पाते।

यथा सुपनखा सियहिं न चाही। नाक कान कटि गई तहाँही॥
सीतापति लक्ष्मीपति रामा। सुमिरि सुमिरि नर तज पथ बामा॥
एकायन स्पर्श सुदूरी। भागि जाय मानहुँ बच पूरी॥

जिस प्रकार सूर्पनखा ने श्री सीता जी को नहीं चाहा बल्कि उनका निरादर किया, जिसके फलस्वरूप अपने नाक और कान कटवा कर उसे वहाँ से भागना पड़ा। इस प्रकार शक्ति के सहित श्री सीतापति, श्री लक्ष्मीपति श्री सीताराम आदि नामों का स्मरण करते हुए भक्त–जन इस विपरीत मार्ग का त्याग कर दें। तदनन्तर "एकायन स्पर्श" उनसे पूर्ण रूपेण दूर हो जायेगा, हे कुमार! मेरे इन बचनों को आप पूर्णतया सत्य समझें।

दो०–चौथ उपायन्तर गुनहु, परश त्यागिबे योग ।
जा वश दूसर साधनहिं, जग अपनावत लोग ॥१२४॥

श्री राम जी महाराज कहते हैं कि– हे राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! "उपायान्तर स्पर्श" को आप चौथा स्पर्श समझिये, जो त्याग करने के योग्य है, जिसके वश में होकर संसार में भक्त जन अन्य साधनों को ग्रहण कर लेते हैं।

सब समर्थ अरु दानि अमीता । सब शरण्य बिनु कारण मीता ॥
भुक्ति मुक्ति सब देवन हारा । हौं निरपेक्षोपाय कुमारा ॥

हे कुमार! मैं सर्व सामर्थ्य से युक्त, असीमित दानी, सभी का आश्रय स्थल, अकारण सभी का मित्र, सभी प्रकार के भोग व मोक्ष आदि सर्वस्व प्रदान करने वाला तथा साधनों की अपेक्षा से रहित हूँ अर्थात् मुझे जीवों के उद्धार के लिये किसी प्रकार के साधनों की अपेक्षा नही है।

मम आलम्बन श्रेष्ठ सुजाना । कर्म ज्ञान योगहुँ अधिकाना ॥
सहज सुलभ सब कहँ सुखदाई । मोर कृपा आश्रय श्रुति गाई ॥

हे सुजान! मेरा आश्रय कर्म, ज्ञान और योग आदि वेद वर्णित सभी साधनों से अधिक श्रेष्ठ है। मेरी कृपा का आश्रय सभी को सुखद और सहज ही प्राप्त हो जाने वाला है ऐसा श्रुतियों ने गायन किया है।

जाति भेद कुल लिङ्ग क्रिया गुन । देश काल निरपेक्ष कृपा सुन ॥
मो कहँ जो अनुसन्धत नित्या । छूटै चौथ स्पर्श अहित्या ॥

मेरी कृपा जाति, कुल, लिंग (स्त्री, पुरुष, नपुंसक) कर्म, गुण, देश, काल आदि की भिन्नताओं की अपेक्षा से रहित है अर्थात् मेरी कृपा किसी जाति, किसी कुल, किसी लिंग, किसी कर्म में निरत, गुणी–अवगुणी, किसी देश व किसी समय की अपेक्षा नहीं रखती। जो भक्त इस प्रकार मेरा नित्य अनुसन्धान करते हैं उनका अहितकारी (बाधक) यह चौथा "उपायान्तर स्पर्श" उनसे अलग हो जाता है।

पंचम अन्य विषय स्पर्शा । मानहुँ कुँअर महा दुख घरसा ॥
जेहिं वश मोहि त्यागि बनि विषयी । पचहिं लोग मन बुधि सब नसई ॥

हे कुमार! महान दुखों का भवन स्वरूप पाँचवें प्रकार का स्पर्श "अन्य विषय स्पर्श" है, जिसके वशीभूत हो भक्त–जन मुझे त्याग, विषयी बनकर परिश्रम करते (संसार में ही पचते) हुए अशान्त बने रहते है, उनके मन और बुद्धि सभी विनष्ट हो जाते हैं।

ममता अहं असक्ति कुवासा । बँधै अविद्या रत यम पासा ॥
तासु छुटन हित कहौं उपाया । सुनहु तात मम बचन अमाया ॥

वे जीव ममता, अहंकार तथा आसक्ति से युक्त हो, कुसंग में निवास करते हुए, अविद्या (विपरीत ज्ञान) में मग्न यमराज के बँधन में बँधते रहते हैं अर्थात् जन्म–मृत्यु के चक्कर में पड़े रहते हैं। हे तात! मैं उनकी मुक्ति के लिए उपाय कह रहा हूँ आप मेरे सत्य बचनों को सुनिये,–––

मंगल विग्रह मोर कुमारा । सत चिद आनँद प्रेम पसारा ॥
मनहर मुदकर श्याम सलोना । कोटिन काम लजै छवि भौना ॥

---हे राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! मेरा स्वरूप मंगलमय, सच्चिदानन्दमय, प्रेममय, मनोहारी, आनन्दित करने वाला, सलोना, श्याम वर्ण युक्त, करोड़ो कामदेवों को भी विलज्जित करने वाला सौन्दर्य का धाम है।

दो०–दिव्य दिव्य गुण अयन प्रिय, पुंसा मोहन रूप ।
श्री यश ज्ञान विराग बल, तेज अनन्त अनूप ॥१२५॥

मेरा यह वपुष (शरीर) दिव्यातिदिव्य गुणों का प्रिय आगार, चराचर को मोहित करने में समर्थ तथा श्री, यश, ज्ञान, वैराग्य, बल और तेज (षड़ैश्वर्य) से युक्त, अनन्त और अनुपमेय है।

नित नित तेहिं करि अनुसन्धाना । छूटत पंचम परश सुजाना ॥
पाँचहुँ परश प्रपन्नहिं काहीं । अवशि त्यागिवे योगहिं आहीं ॥

ऐसे दिव्यातिदिव्य गुणों से युक्त मेरे स्वरूप का नित्य प्रति स्मरण, चिन्तन व मनन करते रहने से, हे सर्वज्ञ श्री लक्ष्मीनिधि जी! पाँचवें प्रकार का "अन्य विषय स्पर्श" छूट जाता है। शरणागत चेतन के लिए ये पाँचो–स्पर्श (सर्व–स्पर्श, मायावाद स्पर्श, एकायन स्पर्श, उपायान्तर स्पर्श व अन्य विषय स्पर्श) अवश्य ही त्याग देने योग्य हैं।

ताते तात मोर अनुरागी । सब सों निशि दिन रहै विरागी ॥
सबहिं भाँति रक्षक मोहिं जानी । गति अनन्य ह्वै प्रेमहिं सानी ॥

हे तात श्री लक्ष्मीनिधि जी! इसलिए मेरे प्रेमी भक्तों को चाहिये कि– वे रात–दिन सभी से आसक्ति रहित रहें तथा सभी प्रकार से मुझे अपना रक्षक समझ, अनन्य गति होकर मेरे प्रेम में सराबोर बने रहें।

करुणा करी सिया सुखकारी । मम आश्रित दुख दलन दुलारी ॥
सब अपराध क्षमा करवाई । जिव हित कोटिन करै उपाई ॥

तदनन्तर सभी को सुख प्रदान करने वाली हमारी प्रियतमा श्री सिया जी मेरे आश्रित जनों के दुखों का दलन कर, प्यार दुलार करते हुए उन पर अपनी करुणा करती हैं और वे मुझसे जीवों के सभी अपराधों का क्षमापन करवाती हैं इस प्रकार वे जीवों के हित के लिए करोड़ो उपाय करती हुई उनके उद्धार में लगी रहती हैं।

सतत जीव कहँ सो बिन हेतू । आनँन्द दानि अतिहिं चित चेतू ॥
मम पद प्रीति बढ़ाय किशोरी । देत जनहिं रस सिन्धु हिलोरी ॥

वे करुणा वरुणालया श्री जानकी जी सजगतया अकारण ही जीवों को निरन्तर अतिशय आनन्द प्रदान करने वाली हैं, साथ ही वे जीवों के हृदय में, मेरे चरणों के प्रति प्रेम का विवर्धन कर उन्हे रस के सागर में समवगाहन कराती रहती हैं।

दो०–ता बिनु जीव न पावहीं, नेकहु मम कृप कोर ।
ताते जन सेवहिं सियहिं, यथा हमहिं रस बोर ॥१२६॥

जनकजा श्री जानकी जी की कृपा के बिना जीव मेरी किंचित भी कृपा–दृष्टि नहीं प्राप्त कर सकते। इसलिए उन्हें चाहिए कि– वे आनन्द–रस में सराबोर हो, हमारी प्राण प्रियतरा श्री सीता जी की उसी प्रकार सेवा करें जैसे हमारी करते हैं।

जो मैं सो सीतहिं सत जानो । जो सीता सो मोहि प्रमानो ॥
तनिक भेद नहिं दूनहु माहीं । सब प्रकार दोउ एकहिं आहीं ॥

हे राज कुमार! मैं जो कुछ भी हूँ श्री सीता जी को भी यथार्थ रूप से वही समझना चाहिये क्योंकि जो श्री सीता जी हैं वह मैं ही हूँ इसे आप निश्चित जान लीजिये, हम दोनों में किंचित भी अन्तर नहीं है, हम दोनो सभी प्रकार से एक ही हैं।

यथा अग्नि अरु तासु उष्णता । पवन तथा तेहि स्पंदनता ॥
जिमि जल अरु शीतलता टेकी । एकहिं कहैं त्रिसत्य विवेकी ॥

जिस प्रकार आग और उसकी गर्मी (उसकी जलाने की शक्ति), वायु और उसके स्पन्दन (प्रवाह) तथा जल और उसकी शीतलता को दृढ़ता पूर्वक विवेकवान (ज्ञानीजन) त्रिसत्यतया एक ही कहते हैं।

तैसहिं कहन मात्र हम दोई । वास्तव एकहिं सब विधि जोई ॥
चणक द्विदल सहजहिं जस प्यारे । तथा ब्रह्म युग रूप सम्हारे ॥

उसी प्रकार हम दोनो (श्री सीता व श्री राम) भी कहने मात्र के लिए दो है परन्तु यथार्थ में सभी प्रकार से एक ही तत्व हैं। हे प्यारे श्री लक्ष्मीनिधि जी! जिस प्रकार चने में सहज ही दो दालें होती है उसी प्रकार ब्रह्म भी दो (शक्ति व शक्तिमान) रूप धारण किये रहता है।

लीला करै सुआनन्द दानी । सुनि लखि भक्त महा सुख सानी ॥
प्रेम पात्र जे मोर कुमारा । ते सेवहिं युग रूप सम्हारा ॥

हम दोनो (श्री सीता व श्री राम) सुन्दर आनन्द प्रदायिनी लीला करते रहते हैं जिसे सुन और देखकर भक्त जन सुख के महा सागर में डूबे रहते हैं। अतएव हे कुमार! जो मेरे प्रेम पात्र भक्तजन हैं वे हमारे दोनो रूपों (ब्रह्म व शक्ति) की सम्हाल पूर्वक (सजगतया) सेवा किया करते हैं।

दो०–सीय कृपा ते कुँअर सत, मो कहँ पावत लोग ।
ता बिन शिव सनकादि कहँ, नहिं मम मिलन सुयोग ॥१२७॥

श्री राम जी महाराज कहते हैं कि– हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! मैं यथार्थ कह रहा हूँ कि– श्री सीता जी की कृपा से ही भक्तजन मुझे प्राप्त करते हैं अन्यथा उनकी कृपा के अभाव में ईश कोटि के देवता श्री शंकर जी व ब्रह्मनन्द लीन श्री सनकादिक कुमारों को भी मेरी प्राप्ति का सुयोग प्राप्त नहीं होता।

तेहिं कारण सिय सेवन योगू । सहित प्रेम जिमि मोकहँ लोगू ॥
नाम रूप लीला जस मोरी । तस महिमा जानहु सिय कोरी ॥

अतएव श्री सीता जी भी, उसी प्रकार प्रेम पूर्वक सेवा करने योग्य हैं जिस प्रकार भक्तजन मेरी सेवा करते हैं। हे कुमार! जिस प्रकार मेरे नाम, रूप व चरित्र हैं उसी प्रकार ही आप श्री सीता जी के नाम, रूप व चरित्रों की महिमा को भी जानिये।

महोपकार कियो गुरु ज्ञानी । जिन मम मंत्र दियो सुख खानी ॥
भक्ति ज्ञान वैराग्य प्रदाता । प्रेम सिन्धु हिय बिच लहराता ॥

परम ज्ञानी श्री गुरुदेव–भगवान ने जीवों पर महान उपकार किया है जिन्होने सुखों की खानि मेरा "मंत्र–राज" प्रदान किया है। वे श्री गुरुदेव–भगवान, भक्ति, ज्ञान और वैराज्ञ प्रदान करने वाले हैं तथा उनके हृदय में प्रेम का समुद्र सदैव उमड़ाता रहता है।

पंचक अर्थ प्रबोध कराई । त्रय रहस्य मन माहिं दृढ़ाई ॥
मम दिवि धाम दिवावन वारा । प्रगटै परम प्रकाश सुखारा ॥

उन महोपकारक श्री गुरुदेव–भगवान ने अर्थ पंचक (स्वस्वरूप, परस्वरूप, उपाय स्वरूप, विरोधी स्वरूप और फल स्वरूप) का बोध कराया है तथा त्रय रहस्य (मूल मंत्र, द्वय मंत्र और चरम मंत्र) का ज्ञान मन में दृढ़ता पूर्वक स्थापित कर दिया है। वे श्री गुरुदेव–भगवान जीवों को मेरा परम दिव्य धाम प्रदान कराने वाले तथा सुख–स्वरूप हैं, वे ही मेरे परम प्रकाश को जीवों के हृदय में प्रगट करने वाले हैं।

सेवन योग अवशि गुरु सोई । प्रीति प्रतीति सुरीतिहिं मोई ॥
गुरु स्वरूप हमही निमि वारे । करि बिनु हेतु कृपा तनु धारे ॥
मोहिं सों अधिक प्रीति गुरु केरी । बरवश विवश करै मोहि प्रेरी ॥

अतएव वे श्री सद्गुरुदेव–भगवान जीवों के लिए अवश्य ही प्रीति–प्रतीति और सुरीति पूर्वक सेवा करने योग्य हैं। हे श्री निमिकुल नन्दन! श्री गुरुदेव–भगवान के स्वरूप में अकारण कृपा कर हम ही शरीर धारण किये रहते हैं। हे कुमार! मेरी प्रीति की अपेक्षा श्री गुरुदेव भगवान की प्रीति अधिक श्रेष्ठ है, जो मुझे हठात्, प्रेरित कर भक्त–जनों के आधीन कर देने वाली होती है।

दो०–तैसहिं भावहिं धारि के, करै सन्त पद प्रेम ।
भक्ति ज्ञान वैराज्ञ के, वर्द्धक साधु सुनेम ॥१२८॥

श्री राम जी महाराज कहते हैं कि–हे राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! जीवों को चाहिये कि–वे उसी प्रकार (श्री गुरुदेव भगवान के समान) भाव धारण कर सन्तजनों के चरणों में प्रेम करें क्योंकि संतजन भक्ति, ज्ञान और वैराज्ञ की वृद्धि करने वाले हैं ऐसा निश्चित सिद्धान्त है।

तिन कर संग प्रेम को दानी । त्रिकरण सेवहिं जन जिय जानी ॥
सहित सीय गुरु ज्ञानद संता । सेवन योग अहौं जगकन्ता ॥

संतजनो का साथ मेरा प्रेम प्रदान करने वाला है अतः मेरे भक्त अपने हृदय में ऐसा समझ कर

उनकी (संतो की) त्रिकरण (मन, बचन और कर्म) सेवा किया करते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण संसार का स्वामी मै अपनी प्राण वल्लभा श्री सीता जी, परम ज्ञान प्रदाता श्री गुरुदेव जी और संतजनो के सहित भक्तों के द्वारा सेवनीय (सेवा करने योग्य) हूँ।

चारहुँ सेव प्रेमयुत जोई। पूरण सेव गुनहु मम सोई ॥
मोरे रूप अहैं अरु अंगा। सब महँ चाहिय प्रीति अभंगा ॥

जो कोई हम चारों अर्थात् हमारी (श्री राम जी), श्री सीता जी की, श्री गुरुदेव भगवान जी की और सन्तजनों की प्रेम पूर्वक सेवा करता हैं उसी की सेवा को मेरी पूर्ण सेवा समझना चाहिये। क्योंकि श्री सीता जी, श्री गुरुदेव जी व सन्तजन मेरे ही रूप तथा अंग हैं अतएव इन सभी के प्रति भक्तों के हृदय में अटूट प्रीति होनी चाहिये।

एकहु अंग छोड़ि मम सेवा। छेदन तन सम मोहि दुख देवा ॥
ताते मोर भक्त जिय जानी। प्रीति करै अंगन रति मानी ॥

इन सभी अंगों से एक अंग को भी छोड़कर की गयी मेरी सेवा मुझे शरीर छेदने के समान दुखदायी होती है। इसलिए मेरे भक्तजनों को चाहिए कि– वे अपने हृदय में ऐसा ज्ञान धारण कर मेरे सभी अंगों (श्री सीता जी, श्री गुरुदेव जी एवं संन्तजनों) में आसक्ति पूर्वक प्रीति करें।–––

साथहि सब जग मोर स्वरूपा। जानै जिय महँ भाव अनूपा ॥
मन सों करि प्रणाम सब काहीं। राग द्वेष तजि शमहिं समाहीं ॥

–––साथ ही अपने हृदय में सम्पूर्ण संसार को अनुपमेय भाव पूर्वक मेरा स्वरूप समझकर मन से प्रणाम करता हुआ आसक्ति व द्वेष को त्यागकर शाश्वत शान्ति में मग्न हो जाय।–––

दो०– गति अनन्य चल प्रेम पथ, जग सों रहै उदास ।
संसारिन कर साथ तजि, प्रेमिन सह नित वास ॥१२९॥

इस प्रकार मेरे भक्त–जनों को चाहिये कि– अनन्य गति हो, प्रेम मार्ग में चलते हुआ संसार से उदास बने रहें तथा संसारी जीवों का साथ त्यागकर नित्य ही मेरे प्रेमियों के साथ निवास करे।

प्रेम पंथ निरुपाधिक पंथा। साधन अवर उपाधिक मंथा ॥
आत्म याग शरणागति मोरी। निरुपाधिक वर याग कह्योरी ॥

क्योंकि मेरे प्रेम का मार्ग ही उपाधि रहित मार्ग है, अन्य दूसरे साधन औपाधिक (विघ्न वाधाओं से परिपूर्ण) एवं मन को मथित (भ्रमित) करने वाले होते हैं। आत्म यज्ञ स्वरूप मेरी शरणागति सभी प्रकार के विघ्न–बाधाओं से सर्वथा मुक्त व श्रेष्ठ यज्ञ कही गयी है। –––

न्यास यज्ञ कहि श्रुति बतराई। जेहि महिमा सक शेष न गाई ॥
मोर मंत्र निरुपाधिक मंत्रा। औपाधिक जानहु सब तन्त्रा ॥

–––प्रभु शरणागति को ही, श्रुतियों ने न्यास–यज्ञ (आत्म–समर्पण) कहकर बखान किया है जिसकी महिमा का गायन हजार मुख वाले श्री शेष जी भी नहीं कर सकते। मेरा मंत्र ("श्री राम षडाक्षर मंत्र–राज") उपाधि रहित (निरापद) मंत्र है तथा आप, अन्य सभी मंत्रों एवं तन्त्रों को सभी प्रकार के

विघ्न बाधाओं से पूर्ण जानिये।

राम नाम निरुपाधिक नामा । और क्रिया गुण परक ललामा ॥
निरुपाधिक धनि धर्म भागवत । जानत श्रुति सज्जन साधन रत ॥

मेरा परम पावन नाम "राम" भी सदैव उपाधि–रहित है किन्तु अन्य सभी अवतारों व देवी–देवताओं के सुन्दर नाम, क्रिया एवं गुणों पर आधारित हैं। यह भागवत धर्म भी सभी प्रकार के विघ्न बाधाओं से रहित व धन्य है, इस सत्य बात को श्रुतियाँ, सज्जन एवं साधक जन भली प्रकार जानते हैं।

संत सेव निरुपाधिक कर्मा । देय मिटाय तुरत जग भरमा ॥
निरुपाधिक मैं देव अनादी । राम ब्रह्म वद आतम वादी ॥

संत जनो की सेवा, निरुपाधिक कर्म है जो शीघ्र ही संसार के भ्रम जाल को समाप्त कर देता है। स्वयं मैं शाश्वत व निरुपाधिक (विघ्न–बन्धनों से मुक्त) ईश्वर हूँ तथा आत्मज्ञानी जन मुझे "पूर्णतम परब्रह्म श्री राम" कहते है।

दो०– निरुपाधिक शक्ती महा, सीता अहै अचिन्त्य ।
कोटिन अण्डन कारिणी, भृकुटि विलासहिं कृत्य ॥१३०॥

मेरी प्राण वल्लभा श्री सीता जी भी अपने भ्रू विलास से करोड़ो ब्रह्माण्डों का सृजन, पालन एवं संहार करने वाली सर्व श्रेष्ठ, अचिन्त्य व निरुपाधिक (उपाधियों से रहित) महा शक्ति हैं।

निरुपाधिक हित कर गुरु वर्या । अति उपकार मयी दिन चर्या ॥
जीव मोर निरुपाधिक दासा । शेष अंश अरु भोग प्रकाशा ॥

एकमात्र श्री गुरुदेव–भगवान ही जीवों के स्वाभाविक परम हितैषी हैं तथा उनकी सभी दैनिक क्रियायें अतिशय उपकार स्वरूपा हैं। सभी "जीव" मेरे शेष, अंश और भोग स्वरूप सहज दास हैं।

सहज रक्ष्य मम प्रिय सो अहई । मो सुख हेतु जीव श्रुति कहई ॥
निरुपाधिक स्वामी जिव केरा । रक्षक मो कहँ वेद निबेरा ॥

सभी जीव सहज ही मेरे रक्ष्य (रक्षा करने योग्य) एवं प्रिय हैं तथा वे मेरे सुख के लिये हैं ऐसा श्रुतियों का समवेत कथन है। मुझको ही जीवों का निरुपाधिक (सहज) स्वामी और रक्षक कह कर वेदों नें वर्णन किया है।

निरुपाधिक पुरुषारथ भारी । मम कैङ्कर्य जीव कर सारी ॥
जीव ब्रह्म निरुपाधिक प्रेमा । ताते तेहिं कर योगहु क्षेमा ॥

मेरी सभी प्रकार की सेवा करना ही जीवों का सहज व महान पुरुषार्थ हैं। जीव और ब्रह्म का प्रेम उपाधि रहित (सहज) है इसलिए उनके योग और क्षेम को–––

वहहुँ सतत सहजहिं निमि वारे । बिना हेतु सत बचन हमारे ॥
निरुपाधिक सन्तन प्रिय बानी । जिन मम चरण प्रेम पन ठानी ॥

———मैं निरन्तर सहज और बिना प्रयोजन के वहन करता (ढोता रहता) हूँ। हे श्री निमिकुल नन्दन! ये हमारे बचन सर्वथा सत्य है। जिन सन्त जनों ने मेरे चरणों में प्रेम करने की प्रतिज्ञा ठान ली है उन सन्तजनों की वाणी भी निरुपाधिक (निश्छल) व प्रिय होती है।

दो०—निरुपाधिक मम तन अहै, सिगरो शुचि संसार ।
लखहिं कुयोगी नेक नहि, बहे विषय रस धार ॥१३१॥

यह सम्पूर्ण निर्दोष संसार मेरा ही निरुपाधिक (स्वाभाविक) शरीर है परन्तु विषयों के प्रवाह में बहते हुए अज्ञानीजन उसे किंचित भी नही समझ पाते।

निरुपाधिक सम्बन्धी जीवा । मोर नित्य सुखदानि अतीवा ॥
सो तजि मोकहँ बनि संसारी । जग सों निज सम्बन्ध पसारी ॥

पुनः संसार के सभी जीव तो मेरे नित्य व अतिशय सुख प्रदान करने वाले सहज सम्बन्धी हैं परन्तु वे मुझे छोड़कर संसार के बन गये हैं और संसार से अपना सम्बन्ध मान लिये हैं।———

ता फल दुख पावत बहुतेरा। काल कर्म स्वभाव गुण प्रेरा ॥
प्रबल अविद्या बाढ़त जाई । महा मोह तम हिय महँ छाई ॥

———जिसके परिणाम स्वरूप वे काल, कर्म, स्वभाव एवं गुणों से प्रेरित होकर महान दुख प्राप्त करते हैं। उनके हृदय में अत्यन्त बलवती अविद्या माया (विपरीत बुद्धि) बढ़ती जाती है तथा गहनतम मोहान्धकार उन्हे आच्छादित कर लेता है।———

मुक्ति केर आसा कछु नाहीं । मज्जत नित भव सागर माहीं ।।
ताते कुँअर चतुर नर जोई । जग सम्बन्ध देय सब खोई ।।

———अतएव उनके मोक्ष की कोई भी आशा नही दिखाई देती, वे नित्य ही संसार–सागर में डूबे रहते हैं। इसलिए हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! जो बुद्धिमान मनुष्य हैं वे संसार के सभी प्रकार के सम्बन्धों को समाप्त कर देते हैं तथा———

अपनो जानि करै मम प्रीती। बिन श्रम लेवहिं भव रस जीती ।।
आनन्द रूप बनैं सुख सारे । अनुपमेय रस रूप सम्हारे ।।

———एक मात्र मुझे ही अपना सगा सम्बन्धी मानकर, मुझ में प्रीति करते हैं, इस प्रकार बिना परिश्रम ही भव–रस को जीत लेते हैं और सुखों के सार, आनन्दस्वरूप, अनुपमेय व रसमय बन जाते हैं।

दो०—मोर बचन सत मानि जो, चलहिं प्रेम की रीति ।
अवशि परम पद पाइ सो, आनँद लहैं अमीति ।।१३२।।

हे राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! मेरे बचनों को सत्य समझकर जो लोग प्रेम पद्धति के अनुसार चलते हैं वे अवश्य ही मेरे परम पद को प्राप्त कर असीम आनन्द का अनुभव करते हैं।

छं०— सुनि बैन अमृत सम सुखद, लक्ष्मीनिधिहुँ रघु राम के ।
भरि भाव ढारत नैन निज, प्रिय प्रेम छाके श्याम के ॥
सुख सानि गदगद बैन प्रिय, बोले चरण धरि शीश है ।
धनि धन्य जायो नाथ मैं, पायो तुमहिं निज ईश है ॥

रघुकुल नन्दन श्री राम जी महाराज के अमृत के समान सुख दायक बचनों को श्रवण कर निमिराज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने प्रिय भाम श्याम सुन्दर श्री राम जी के सुन्दर भाव में भरकर, नेत्रों से अश्रु प्रवाहित करते हुए उनके प्रेम में छक गये। पुनः सुख मग्न हो उनके श्री चरणों में अपना सिर रखकर, गद्गद् कण्ठ व प्रिय वाणी से बोले— हे नाथ! जन्म–मरण धर्मा जीव मैं धन्यातिधन्य हूँ जिसने पूर्णतम परब्रह्म आपको अपने स्वामी (इष्ट) के रूप में प्राप्त किया है।

प्रिय प्रेम आतम तत्व प्रभु, जो करि कृपा दीन्हेउ हमै ।
बड़ि भाग मोरी शेष हूँ, कहि सक न कोटिन बहु समै ॥
निज दास आपन जानि जिय, मो पै छिपाये कछु नहीं ।
तव प्यार पावहुँ जन्म प्रति, हर्षण शरण प्रभु की गही ॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज बखान कर रहे हैं कि— निमिकुल नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज अपने बहनोई श्री राम जी महाराज से कहते हैं कि— हे मेरे स्वामिन्! हमारा महान सौभाग्य है, जो आपने अपनी असीम कृपा कर हमे, यह प्रियकर प्रेम और आत्म–तत्व का बोध प्रदान किया है जिसे करोड़ो शेष जी, अनन्त काल तक कहते हुए भी बखान नहीं कर सकते। आपने हमे अपना सेवक समझ कर कुछ भी गुप्त नहीं रखा। हे प्रभु! मैं आपकी शरण हूँ, प्रत्येक जन्म में हमें इसी प्रकार आपका प्यार प्राप्त हो।

सो०—लक्ष्मीनिधि सिधि वाम, चरण गिरे रघुवीर के ।
धोये पद अभिराम, दम्पति आँसुन धार सों ॥१३३॥

ऐसा कहकर, निमिराज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी और उनकी वल्लभा श्री सिद्धि कुँअरि जी रघुकुल प्रवीर श्री राम जी महाराज के चरणों में गिर पड़े (दण्डवत प्रणाम किये) तथा उन दम्पति ने अपने नेत्र जल से श्री राम जी महाराज के सुन्दर श्री चरणों का प्रच्छालन कर दिया।

राम उठाय कुँअर कहँ तबहीं । हिय लगाय प्यारेउ सुख छवहीं ॥
कुँअर शीश फेरत कर काहीं । पोछे नयन नीर रस माहीं ॥

तभी श्री राम जी महाराज ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को हृदय से लगाकर सुख पूर्वक प्यार किया पुनः अपना कर कमल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के शिर में फिराते हुए रस मग्न हो उनके नेत्रों से प्रवाहित हो रहे अश्रुओं का प्रोक्षण कर दिया।

सुखकर श्याम कहेव सुख सानी । मैं अरु मोर सकल रस खानी ॥
निरुपाधिक सब तुम्हरो ताता । कहौं त्रिसत्य हृदय की बाता ॥

पुनः सर्व सुख प्रदायक श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज ने सुख पूर्वक कहा– हे रसखानि कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! मैं और मेरा सर्वस्व स्वाभाविक (सहज) ही आपका है, यह मैं अपने हृदय की त्रिसत्य वार्ता कह रहा हूँ।–––

मोर प्रेम तब हृदय विशाला । छन छन बढ़त रही निमिलाला ॥
सिद्धि कुँअरि सह नित रससानी । रहिहै बने मोहिं सुख दानी ॥

–––हे निमिकुल नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी! आपके विशाल हृदय में मेरा प्रेम प्रतिक्षण वृद्धि को प्राप्त होता रहेगा तथा श्री सिद्धि कुँअरि जी के सहित आप मेरे प्रेम–रस में डूबे हुए मुझे नित्य सुख प्रदान करने वाले बने रहेंगे।–––

अचल अहै सम्बन्ध कुमारा । भाम श्याल को सुखद अपारा ॥
सत चिद आनँद रूप सलोने । रहिहैं सदा दोउ सरसोने ॥

–––हे कुमार! हमारा यह श्याल और भाम का असीम सुख प्रदायक सम्बन्ध अटल है। सुन्दर सच्चिदानन्दमय स्वरूप वाले आप व श्री सिद्धिकुँअरि जी दोनों सदैव आनन्द में सरसाये रहेंगे।–––

दो०–तुम सम सुखदायक सखे, मो कहँ कोऊ नाहिं ।
आत्महुँ ते अति प्रिय अहहु, बचन सत्य सब आहिं ॥१३४॥

–––हे सखे! आपके समान, मुझे सुख प्रदान करने वाला अन्य कोई भी नहीं है, आप मुझे मेरी आत्मा से भी अधिक प्रिय हैं, मेरे ये सभी बचन सर्वथा सत्य हैं।

यहि विधि कुँअर राम सम्वादा । प्रेम प्रदायक युत अहलादा ॥
भयो दोष दुख दारिद दावन । भव रस बीज जहाँ नहि जावन ॥

इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी और श्री राम जी महाराज का आह्लाद पूर्वक प्रेम प्रदान करने वाला और सभी प्रकार के दोषों, दुखों व दरिद्रता को नष्ट करने वाला वार्तालाप पूर्ण हुआ जो संसार रस के बीज से सर्वथा अछूता है।

सादर सुनत सकल नर नारी । पावहिं प्रभु पद प्रेम पसारी ॥
पाइ परम पद प्रभु की सेवा । सुखी करहिं प्रभु कहँ सुख लेवा ॥

इसे आदर पूर्वक श्रवण कर सभी स्त्री–पुरुष प्रभु श्री राम जी महाराज के चरणों का विशद प्रेम प्राप्त करेंगे और अत्यन्त दुर्लभ परम पद प्राप्त कर प्रभु कैंकर्य करते हुए प्रभु श्री राम जी महाराज को सुखी कर, स्वयं सुख प्राप्त करेंगे।

शाश्वत शान्ति स्वसुख सरसाई । पाइ होहिं कृतकृत्य महाई ॥
समय समय लक्ष्मीनिधि राऊ । पूँछत रामहिं भरि भरि भाऊ ॥

वे अपने सुख में सरसाये हुए शाश्वत शान्ति को प्राप्त कर महान कृतकृत्य हो जायेंगे। इस प्रकार समय–समय पर निमिराज श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने प्रिय भाम श्री राम जी महाराज से नवीन नवीन भावों में भर कर जिज्ञासा करते रहते हैं।

सुनत राम मुख अमृत बैना। हृदय पुलक मानत उर चैना॥
कबहुँ राम पुरजन सुख हेतू। प्रेरत लक्ष्मीनिधिहिं सचेतू॥

जिनके समाधान में श्री राम जी महाराज के मुख से विनिसृत (निकले हुए) अमृतोपम वचनों को श्रवण कर उनका हृदय सुख सागर में समवगाहन करता रहता है। पुनः कभी श्री राम जी महाराज पुरवासियों के सुख हेतु सजगता पूर्वक उनकी जिज्ञासाओं को शमन करने हेतु श्री लक्ष्मीनिधि जी को प्रेरित करते रहते हैं।

दो०—ब्रह्म विवेचन सुखद सत, निर्गुण सगुण स्वरूप।
भगति ज्ञान वैराग्य वर, वरणत कुँअर अनूप॥१३५॥

उस समय श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज पूर्णतम पर–ब्रहम श्री राम जी महाराज के तत्व का सुख प्रदायक व यथार्थ विवेचन करते हुए उनके निर्गुण और सगुण स्वरूप तथा अनुपमेय भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का वर्णन करते हैं।

मधुर मनोहर सुखकर बानी। कुँअर केर बड़ तत्व सुदानी॥
योग अनेकन करहिं बखाना। सकल धर्म मय तत्व महाना॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, अपनी अत्यन्त मधुर, मनोहारी, सुख दायिनी तथा सुन्दर महान तत्व प्रदान करने वाली वाणी से अनेक योगों तथा सम्पूर्ण धर्म–स्वरूप महान तत्वों का भी विवेचन करते हैं।

प्रपति रहस अरु प्रेम स्वरूपा। कहत भाव भरि कुँअर अनूपा॥
प्रेमिन चरित राम सिय चरिता। वरणत सुखद सुमंगल करिता॥

कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अनुपमेय शरणागति रहस्य एवं प्रेम के स्वरूप का भाव में भर कर बखान करते हैं वे प्रेमी भक्तों के चरित्रों व श्री सीताराम जी के सुमंगलकारी एवं सुखदायी चरित्रों का भी वर्णन करते हैं।

कहत कहत हिय होहिं विभोरा। गदगद गिरा श्रवत दृग कोरा॥
जे जन श्रवण करत रह तहँवा। प्रेम मगन सब होंहि अथहवा॥

निमिकुल नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज, इन चरित्रों को कहते–कहते हृदय में विभोर हो जाते हैं, उनकी वाणी गदगद हो जाती है तथा नेत्र कोरों से अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं। उस समय वहाँ जो लोग उनकी कथा सुनते हैं वे सभी अथाह प्रेम में मग्न हो जाते हैं।

लगत मनहुँ प्रत्यक्ष लखाई। राम सीय कर तत्व सुहाई॥
प्रेम प्रगट करि सकल समाजा। देत डुबाय महा रस राजा॥

उस समय श्रोता–गणों को ऐसा प्रतीत होता मानों श्री सीताराम जी का सुन्दर तत्व प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा है। निमिकुल नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी सम्पूर्ण समाज में प्रेम को प्रगट कर उसे महा रस सागर में डुबा देते हैं।

दो०—राम प्रेम मूरति कुँअर, जानत सब नर नारि ।
करहिं प्रशंसा मोद भरि, जय जय जयति पुकारि ॥१३६॥

सभी स्त्री–पुरुष यह रहस्य भली प्रकार जानते हैं कि– कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम प्रेम के साक्षात् विग्रह हैं, वे सभी आनन्द प्रपूरित हो जयनाद करते हुए उनकी प्रशंसा करते हैं।

ऋषि मुनि सिद्ध देव नर नारी । सुनहिं कुँअर भाषण सुखकारी ॥
सुनि सुनि परम तत्व अति गूढ़ा । पशु पक्षी चित रहै न मूढ़ा ॥

उस समय ऋषि, मुनि, सिद्ध, स्त्री–पुरुष आदि सभी लोग कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सुख प्रदायक प्रवचन को श्रवण करते हैं। जिन रहस्य मय गूढ़ तत्वों का आशय समझ पाना अतिशय कठिन है ऐसे दुर्लभ परम तत्व को श्रवण कर पशु–पक्षियों के चित्त में भी जड़ता नहीं रह जाती।

मन बुधि अरु चित्तहिं लय कीने । सुनहिं कुँअर के बचन प्रवीने ॥
तनिक शब्द नहिं सभा मझारा । सम्भाषण बिच हो झंकारा ॥

सभी लोग, मन, बुद्धि और चित्त को विलीन कर परम प्रवीण कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के बचनों को सुनते हैं। उनकी सभा में व्याख्यान के मध्य, रंच मात्र भी किसी प्रकार का शब्द नहीं होता है।

समय समय जयकार सुनाई । सरस सुखद रह गगनहिं छाई ॥
सुमन वृष्टि कहुँ होत अथोरी । सुनि बच कुँअर सुधा रस बोरी ॥

प्रत्युत समयानुसार रसमयी, सुखदायिका व आकाश–व्यापी जय–जयकार की ध्वनि सुनाई पड़ती है। कहीं–कहीं तो कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के अमृत रससिक्त बचनों को श्रवणकर फूलों की बिपुल वर्ष्र्जा भी होती है।

यहिं प्रकार श्याला बहनोई । बने जनन आनँद प्रद दोई ॥
एकहिं एक बढ़ावत हरषा । इक एकहिं के चित्तहिं करषा ॥

इस प्रकार शाले और बहनोई (श्याल–भाम) कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज दोनो ही पुरजन–परिजनों को आनन्द प्रदान करने वाले बने हुए हैं। वे दोनो परस्पर हर्ष को विवर्धित करते हुए एक दूसरे के चित्त को आकर्षित किये रहते हैं।

दो०—जो सुख मिथिला अवध महँ, सो वैकुण्ठहुँ नाहिं ।
राम सिया वितरण करत, कृपा मूर्ति दोउ आहिं ॥१३७॥

कृपा के साक्षात् विग्रह युगल सरकार श्री सीताराम जी जिस सुख का वितरण श्री मिथिलापुरी और श्री अयोध्यापुरी में करते हैं वह सुख तो वैकुण्ठ में भी अप्राप्त ही है।

एक समय मिथिलेश कुमारा । भगिनि सिया के गयउ अगारा ॥
आगे ह्वै श्री सीता लीन्ही । भ्रात भेंटि सुख सरसत दीन्हीं ॥

एक समय मिथिलेश कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी अनुजा श्री सीता जी के भवन गये, श्री

सीता जी ने आगे बढ़कर उनकी अगुआनी ली तथा श्री भैया जी से आनन्द पूर्वक भेंट कर उन्हें सुख प्रदान किया।

बैठ सिंहासन प्यार विधाना । भेंटी दियो वस्तु विधि नाना ॥
भगिनि भ्रात राजत शुभ्रासन । प्रीति रीति कोउ सकै न भाषन ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सिंहासन में बैठ कर, प्रीति–रीति के अनुसार अपनी बहन श्री सिया जू का प्यार– दुलार कर उन्हें अनेक प्रकार की वस्तुएँ भेंट में प्रदान किये। दोनो बहन और भाई (श्री सीता जी और श्री लक्ष्मीनिधि जी) श्वेतास्तरण युक्त रत्न–सिंहासन में विराजे हुए हैं उनकी प्रीति–रीति का वर्णन कोई नही कर सकता।

भगिनिहिं परम प्रसन्न विलोकी । बोले कुँअर विगत सब शोकी ॥
पूँछहुँ देवि आज मन केरी । पुरवहु मोर मनोरथ हेरी ॥

तदनन्तर अपनी अनुजा श्री सीता जी को अत्यन्त प्रसन्न देखकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सम्पूर्ण शोक रहित हो (प्रसन्नता पूर्वक) बोले– हे देवि! मैं, आज अपने मन की जिज्ञासा कह रहा हूँ, आप मेरी ओर देख कर मेरे मन की इच्छा को पूर्ण करें।

तुमहिं पाय मैं काह न पावा । सुनहु सुमुखि मम बचन सुहावा ॥
कवन पीठ राजत रघुराई । पूर्णानन्द नित्य छवि छाई ॥
प्रकृति पार प्रभु परम सुजाना । सत चिद आनँद राम महाना ॥

आप को प्राप्तकर मैंने, क्या नहीं प्राप्त किया? अर्थात् आपको पाने के बाद मुझे कुछ भी पाना शेष नहीं रहा, हे सुन्दर–वदना अनुजे श्री सिया जू! आप मेरे बचनों को श्रवण करें– परम शोभा सम्पन्न श्री राम जी महाराज आनन्द परिपूर्ण होकर किस धाम में नित्य विराजते हैं। श्री राम जी महाराज तो प्रकृति से परे, परम सुजान, सच्चिदानन्दमय व महान हैं।–––

दो०–सदा एक रस जीव जिव, पूर्ण ब्रह्म मम भाम ।
कवन देश व्यापक विभू, विलसत अक्षर धाम ॥१३८॥

–––सदैव एकरस रहने वाले, जीवों की जीवनी शक्ति, पूर्णतम परब्रह्म, सर्वत्र व्यापक व महान विभुता सम्पन्न हमारे बहनोई श्री राम जी महाराज किस अविनाशी धाम में नित्य विराजते हैं।

भ्रात बचन सुनि सिय सुकुमारी । बोली बचन ब्रह्म वपु वारी ॥
दिव्य धाम अक्षर गोलोका । मधुमय मधुर सुकुञ्जन ओका ॥

अपने भइया श्री लक्ष्मीनिधि जी के बचनों को श्रवण कर परम सुकुमारी ब्रह्म विग्रहा श्री सीता जी ने कहा– हे श्री भइया जी ! एक दिव्य व अविनाशी परम धाम गोलोक है जिसमें मधुरातिमधुर सुन्दर कुन्जों के मध्य अनेक सदन सुशोभित हैं।

ता मधि सुखद सदन साकेता । सत चिद आनँद अनुप अजेता ॥
रसमय रसद सुशोभा सागर । अकथ अमल सुख सिन्धु उजागर ॥

उस गोलोक के मध्य स्थित ''साकेत धाम'' में एक सुख प्रदायक भवन है जो सच्चिदानन्दमय, अनुपमेय, अपराजित (अजेय), रस स्वरूप, रस प्रदायक, सुन्दर शोभा का सागर, अकथनीय, निर्मल व सुखों का सागर है।

जेहिं विस्तार अनन्त अमाई । रवि अनन्त परकाश प्रभाई ॥
प्रकृति पार निर्गुण गुण धामा । परम तत्व विभु व्यापक नामा ॥

जो अनन्त विस्तार वाला है, जहाँ अनन्त सूर्यो की प्रभा का प्रकाश है तथा जो प्रकृति के परे, निर्गुण, गुणों का धाम, परम–तत्व, विभु, और व्यापक नाम वाला है।

जासु अंश उपजहिं बहु लोका । अरु वैकुण्ठ अनन्तन थोका ॥
विरजा पार अयोध्या भाई । सोइ विमला साकेत कहाई ॥
चहुँ दिशि अमृत आवृत सोही । भूति पाद त्रय रसिकन जोही ॥

जिनके अंश मात्र से असीमित लोकों व अनन्त वैकुण्ठ–समूहों की उत्पत्ति होती है, हे भैया श्री लक्ष्मीनिधि जी! श्री विरजा जी के उस पार वह दिव्य श्री अयोध्या पुर है, वही निर्मल साकेत धाम कहलाता है। वह चारों दिशाओं में अमृत से घिरा हुआ सुशोभित है अर्थात् अमृत परिखा से संयुक्त है तथा रसिक–जन उसे "त्रिपाद–विभूति" के नाम से जानते हैं।–––

दो०– तहँ अद्वैतानन्द प्रभु, चेतन ब्रह्म ललाम ।
शुद्ध सत्व लक्षण ललित, राजत रघुपति राम ॥१३९॥

–––वहाँ साकेत धाम में आनन्द से अपृथक (आनन्द–स्वरूप), सुन्दर चेतन–घन, परब्रह्म, रघुकुल के स्वामी व हमारे प्रभु श्री राम जी महाराज शुद्ध व सात्विक सुन्दर लक्षणों से परिपूर्ण होकर विराजते हैं।

बाहर भीतर करत प्रकाशा । राजत रामचन्द्र रस रासा ॥
द्विभुज श्याम सुन्दर सुख धामा । इन्द्र नील मणि प्रभा ललामा ॥

उस दिव्य धाम को बाहर और भीतर (दोनो तरफ) से प्रकाशित करते हुए रस की राशि आपके प्रिय भाम, श्री रामचन्द्र जी महाराज वहाँ विराजते हैं। वे दो भुजाओं से युक्त, सुख के धाम, श्याम वर्ण वपु, सुन्दर नीलमणि की प्रभा से परिपूर्ण सुशोभित होते हैं।

स्वयं तेजमय सबन्ह प्रकाशक । यावत ज्योती अण्डन भाषक ॥
ब्रह्म अनामय मंगल धामा । आनँदमय विग्रह अभिरामा ॥

श्री राम जी महाराज स्वयं तेज (प्रकाश) स्वरूप हैं व सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों में जो व्याप्त प्रकाश है उसके सहित सभी को प्रकाशित करने वाले, निर्मल, पर–ब्रह्म, मंगल के धाम, आनन्द स्वरूप व सुन्दर विग्रह सम्पन्न हैं।

वर विज्ञान रूप रस राजा । प्रेम मूर्ति रघुनाथ विराजा ॥
योगी रमत नित्य जेहिं माहीं । कीन्हे पार अविद्या काहीं ॥

वे श्रेष्ठ विज्ञान स्वरूप, रस–राज व प्रेम विग्रह रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज दिव्य साकेत धाम में सुशोभित होते हैं। हे श्री भैया जी! वे योगीजन जिन्होने अविद्या (विपरीत ज्ञान) को पार कर लिया है, नित्य जिनमें रमण करते हैं–––

जासु अंश अगनित अवतारा । उपजत गुनु निज हृदय मझारा ॥
विधि हरि हर दिशि पति दिनराई । उपजहिं जासु अंश अमिताई ॥
अण्ड अनन्तन कर व्यवहारा । करत सर्व प्रभु इच्छा धारा ॥

–––तथा हे श्री भइया जी! आप अपने हृदय में समझ लीजिये कि– जिनके अंश से अनगिनत अवतार उत्पन्न होते हैं, जिनके अंश से असीमित श्री ब्रह्माजी, श्री विष्णुजी व श्री शंकर जी, सभी दिक्पाल तथा सूर्य आदि देवता उत्पन्न होकर अनन्त ब्रह्माण्डों के कार्य व्यवहार प्रभु की इच्छानुसार किया करते हैं।–––

दो०–पर ब्रह्म परमात्म सो, भक्तन के भगवान ।
दशरथ सुत राजत वहाँ, रामचन्द्र रस खान ॥१४०॥

–––वही परब्रह्म परमात्मा, भक्तों के भगवान, चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के पुत्र व रस की खानि श्री रामचन्द्र जी महाराज उस दिव्य साकेत धाम में विराजते हैं।

निर्गुण सगुण ब्रह्म परमातम । अरु भगवान भक्ति रस दातम ॥
शाश्वत भौमा अमृत आदी । अव्यय अरु परमार्थ अनादी ॥

वे निर्गुण, सगुण, परमात्मा, ब्रह्म और भक्ति रस का दान देने वाले भगवान हैं। शाश्वत, भौमा, अमृत, अव्यय, परमार्थ और अनादि इत्यादि–––

सकल विशेषण जानहु भाई । हैं विशेष्य श्री राम गोसाँई ॥
कारण कार्य परे मम नाथा । तथा परावर पति श्रुति माथा ॥

–––सभी जिनकी विशेषताओं के सूचक हैं वे विशेष्य (आश्रय स्थल) श्री राम जी महाराज हैं। हे श्री भइया जी! आप यह जान लीजिये। कि– मेरे स्वामी, कारण और कार्य से परे, परस्पर विरोधी गुण धर्मो से युक्त सभी के स्वामी तथा श्रुतियों के श्रेष्ठतम तिलक हैं।–––

सत अरु असत पार तव भामा । सूक्षम थूल परे पर धामा ॥
सदा एक रस अज अविनाशी । मायापति साकेत निवासी ॥

–––आपके बहनोई सत्य–असत्य व सूक्ष्म–स्थूल के परे, परम पद स्वरूप, सदैव एक रस रहने वाले, अजन्मा, अविनाशी, माया के पति तथा परम धाम साकेत में निवास करने वाले हैं।–––

महा शम्भु अरु विष्णु महाना । ब्रह्मा महा इन्द्र महँ जाना ॥
सेवत रामहिं गुनि बड़ भागा । सह अनन्त अवतारन पागा ॥

–––हे श्री भइया जी! आप जान लीजिये कि– महा शम्भु, महा विष्णु, महा ब्रह्मा तथा महा इन्द्र भी ईश्वर के अनन्त अवतारों के सहित आनन्द में पगे हुए अपना सौभाग्य समझकर श्री राम जी महाराज की सेवा करते हैं।–––

दो०– राम रसिक रसिकेश तहँ, सेवित परिकर पाद ।
सखी सखा सेवक सहित, राजत भरि अहलाद ॥१४१॥

–––अपने परिकरों के द्वारा चरण सेवित, परम रसिक व रसिक जनों के स्वामी श्री राम जी महाराज वहाँ श्री साकेत धाम में सखी, सखा, एवं सेवकों के सहित आह्लाद में भरकर सुशोभित होते हैं।

सुनि सुख सानि सुभग सिय भ्राता । सजल नयन प्रिय पुलकित गाता ॥
पुनि कह लाड़िलि विनय हमारी । सुनि समुझावहु मोहिं सुखारी ॥

श्री सीता जी के सुन्दर भइया श्री लक्ष्मीनिधि जी, श्री सीता जी के वचनों को श्रवणकर अश्रपूरित नेत्र तथा पुलकित शरीर हो गये, पुनः वे बोले– हे श्री लाड़िली जू! आप हमारी प्रार्थना को सुनिये तथा हमे सुख पूर्वक समझाइये।

कोउ प्रणव कोउ बीजहिं काहीं । कहत श्रेष्ठ बतरावहु याहीं ॥
कह सिय सत्य तात मम बानी । सुनहु यथा मैं कहौं बखानी ॥

हे श्री लाड़िली जू! कुछ जन प्रणव मंत्र (ॐ) को और कुछ बीज मंत्र (रां) को श्रेष्ठ कहते हैं, आप मुझसे इसका समाधान कीजिये। अपने भइया जी के द्वारा की गयी जिज्ञासा को श्रवण कर श्री सीता जी ने कहा– हे तात! आप मेरे सत्य वचनों को श्रवण कीजिये, जैसा मै वर्णन कर कह रही हूँ।–––

मम हिय नाथ तुम्हारे भामा । तिनकर नाम राम रस धामा ॥
विदित महायश त्रिभुवन माहीं । जानत शम्भु धरे जिय माहीं ॥

–––मेरे हृदयेश्वर और आपके बहनोई श्री राम जी महाराज का परम पावन नाम ''श्री राम'' रस का धाम है। इस नाम की महिमा तीनो लोकों में विख्यात है, जिसे भगवान श्री शंकर जी भली प्रकार जानकर अपने हृदय में धारण किये हैं।–––

सत करोड़ रामायण तेरे । युग अक्षर लीन्हेव हिय हेरे ॥
राम राम अहनिशि जप करहीं । महा मुदित मन काशी चरहीं ॥

–––भगवान श्री शिव जी ने अपने हृदय में विचार कर सौ करोड़ रामायणों से इन दो अक्षरो रा व म (राम) को ग्रहण किया है और रात–दिन "राम" "राम" जपते हुए वे अत्यन्त प्रसन्नमना श्री काशी जी में निवास करते हैं।

दो०– काशी मरतेहिं जीव लखि, राम नाम दै कान ।
करत मुक्त अहनिशि रहत, समरथ शिव भगवान ॥१४२॥

परम समर्थवान भगवान श्री शंकर जी श्री काशी पुरी में मृत्यु को प्राप्त होने वाले जीवों को देखकर उनके दक्षिण कर्ण में श्री राम नाम सुनाकर दिन–रात उन्हें मुक्त करते रहते हैं।

ओम बीज अरु सोऽहं तीनो । राम नाम सों प्रगट प्रवीनो ॥
राम नाम तारक श्रुति गावै । राम परम पद नाम कहावै ॥

हे परम प्रवीण कुमार! परम जाप्य ॐ (प्रणव), बीज (रां) तथा सोऽहं ये तीनों ही श्री राम नाम से उत्पन्न हुए हैं। श्री "राम" नाम तारक (भवसागर से पार उतारने वाला) है ऐसा कहकर श्रुतियाँ गायन करती हैं। वस्तुतः श्री राम नाम में स्थित हो जाना ही परम पद कहलाता है।

राम नाम कारण सब केरा । है दृढ़ निश्चय श्रुति सत हेरा ॥
राम नाम है राम स्वरूपा । सुलभ सुखद रामहुँ ते भूपा ॥

श्री "राम" नाम ही सभी का कारण है, यह दृढ़ और सत्य निर्णय श्रुतियों नें प्रतिपादित किया है। हे निमिकुल भूप श्री लक्ष्मीनिधि जी! श्री "राम" नाम श्री राम जी महाराज का स्वरूप होते हुए भी श्री राम जी महाराज से भी अधिक सुलभ और सुख प्रदायी है।

राम नाम प्रभु प्रेम प्रदानी । प्रेम स्वरूप महा रस खानी ॥
सहज प्रकाश रूप सत भाई । अगिन भानु शशि बीज सुहाई ॥

श्री "राम" नाम प्रभु श्री राम जी महाराज का प्रेम प्रदान करने वाला, प्रेमस्वरूप एवं रस का महान कोष है। हे श्री भैया जी! यह श्री राम नाम तो सत्य ही सहज प्रकाश–स्वरूप एवं अग्नि, सूर्य, तथा चन्द्रमा का भी सुन्दर बीज है।

विधि हरि हर उत्पत्ति सुथाना । सर्व शक्ति उदगम श्रुति माना ॥
सुख स्वरूप भव रोग विदारी । जनहिं बनावत मंगल कारी ॥

यह श्री राम नाम श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शंकर जी की भी उत्पत्ति का सुन्दर स्थान है तथा समग्र शक्तियों का उद्‌गम स्थल है ऐसा श्रुतियाँ स्वीकार करती हैं। यह श्री राम नाम सुख स्वरूप, भव विकारों को विनष्ट करने वाला तथा जन–जन को मंगलमय बनाने वाला है।

दो०–प्रभु के नाम अनन्त हैं, गुण कृत कर्म प्रधान ।
स्वयं सिद्ध रस ब्रह्म मय, राम नाम श्रुति जान ॥१४३॥

यद्यपि प्रभु श्री राम जी महाराज के गुणों और कर्मो की प्रमुखता के कारण अनन्त नाम है तथापि श्री "राम" नाम स्वयमेव सिद्ध, रसमय एवं ब्रह्म–स्वरूप है ऐसा श्रुतियों का सम्यक ज्ञान है।

सबहिं नाम महँ शक्ति अपारी । भुक्ति मुक्ति सुख वितरण वारी ॥
सब कर कारण राम सुनामा । सब सों अधिक कहैं मतिधामा ॥

प्रभु के अन्य सभी नामों में भी भोग, मोक्ष और सुख प्रदान करने वाली अतुलित शक्ति समन्वित है परन्तु उन सभी का कारण–स्वरूप सुन्दर श्री "राम" नाम ही है। विज्ञ–जनों का समवेत कथन है कि यह श्री राम ''नाम''अन्य सभी नामों से श्रेष्ठ है।

राम नाम महिमा सुनु ताता । कहि न सकैं रघुपति सुखदाता ॥
राम नाम जपि सिगरे पापी । भये शुद्ध जस तस कर जापी ॥

हे तात ! सुनिये, श्री राम नाम की महिमा तो सर्व सुख–प्रदायक श्री राम जी महाराज भी नहीं कह सकते। श्री राम नाम का जैसा–तैसा (किसी भी प्रकार से उल्टा व सीधा) जप करके भी सभी पापी शुद्ध हो गये हैं।

अति दुर्गम जानहु परभावा । राम नाम कर विशद सुहावा ॥
खोजत वेद पार नहिं पायो । नेति नेति कहि इक स्वर गायो ॥

हे श्री भइया जी! आप, श्री राम नाम के प्रभाव को अतिशय अगम्य, विस्तृत तथा मनोरम जानिये। इसकी महानता का अन्वेषण करते करते वेद भी परिसीमा न पा सके और एक स्वर से नेति–नेति कह कर बखान किये हैं।

राम नाम महिमा जब नेती । कुतो मंत्र परभाव कथेती ॥
जाहि जपत जन राम समाना । होहिं तात तप तेज निधाना ॥
राम नाम सब साधन सारा । प्रभु की कृपा लगै प्रियकारा ॥

हे तात ! जब श्री राम नाम के महिमा की ही इति नही है तब जिसे जपते हुए जीव श्री राम जी महाराज के समान, तप और तेज के भण्डार हो जाते हैं उस श्री राम षडाक्षर मंत्र (मन्त्र राज) के प्रभाव को किस प्रकार कहा जा सकता है। श्री राम नाम सम्पूर्ण साधनों (कर्म, ज्ञान व भक्ति) का सार है परन्तु यह "राम नाम" प्रभु श्री राम जी महाराज की कृपा से ही जीवों को प्रिय लगता है।

दो०–ताते भइया नाम की, महिमा कही न जाय ।
समुझि समुझि हिय आपने, रहौं प्रेम रसछाय ॥१४४॥

अतएव हे श्री भइया जी! श्री राम नाम की महिमा का बखान नहीं किया जा सकता, इस के प्रभाव को अपने हृदय में समझ कर श्री राम वल्लभा मैं सदैव प्रेम रस में निमग्न रहती हूँ।

नाम अधार रहे मम प्राना । यहि ते अधिक कहौं का आना ॥
सुनत नाम महिमा सुख पाई । जनक सुवन सब सुधिहिं भुलाई ॥

प्रभु वियोगावस्था में मेरे प्राण मात्र श्री राम नाम के सहारे ही शरीर में रुके हुये थे, अब मैं इससे अधिक और अन्य क्या कहूँ? श्री सीता जी के मुख कमल से श्री राम नाम की महिमा श्रवण कर जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी सुख में डूब गये तथा अपनी सम्पूर्ण स्मृति भूल गये।

बहुरि सिया कह रघुवर रूपा । ऐसहिं रसमय रसद अनूपा ॥
पुंशा मोहन रूप रसाला । नित किशोर वपु श्याम सुभाला ॥

पुनः श्री सिया जी ने कहा– हे श्री भैया जी! इसी प्रकार (श्री राम नाम के समान ही) श्री राम जी महाराज का रूप भी रसमय, रस प्रदाता तथा अनुपमेय है। उनका सुन्दर वपु पुरुष वर्ग को भी मोहित कर लेने वाला, रस से परिपूर्ण, नित्य किशोरावस्था से युक्त, सुशोभन व श्याम वर्ण से विभूषित है।

रूप सुधा सागर छवि खानी । नव नव अधिक सरस सुखदानी ॥
सम अतिशय जाके नहि जोई । रूप माहिं अवतारहुँ कोई ॥

श्री राम जी महाराज का सौन्दर्य, अमृत का सागर, सुन्दरता का कोष, नित्य नवीन, अतिशय सरस एवं सुख प्रदान करने वाला है, जिनकी छबि की तुलना में कोई अन्य पुरुष अथवा किसी अवतारों में भी, उनसे अधिक की तो बात ही क्या? उनके समान भी नहीं देखा गया।

काम अनन्त लजै छवि देखी । दृष श्रुत शोभा कन सम लेखी ॥
बैरिहुँ मोहन मूर्ति अतूला । नेत्र सुखद सुठि मंगल मूला ॥

मेरे प्राण धन श्री राम जी महाराज के काय–वैभव को देखकर अनन्त काम देव भी लज्जित हो जाते हैं तथा ब्रह्माण्ड की देखी और सुनी सम्पूर्ण सुन्दरता इनकी सुन्दरता के सामने एक कण के समान प्रतीत होती है। श्री राम जी महाराज का अतुलनीय विग्रह उनके शत्रुओं को भी मोहित कर देने वाला तथा सभी के नेत्रों का सुख प्रदाता, सर्वांग सुन्दर व मंगलों का मूल है।

दो०–अमित दिव्य गुण धाम तन, लखतहिं मन हर लेत ।
दण्डक ऋषि ज्ञानी हते, नारि बने चित चेत ॥१४५॥

श्री राम जी महाराज का शरीर सौष्ठव असीमित दिव्य गुणों का धाम है जो दर्शन करते ही मन का अपहरण कर लेने वाला है। जिनके वनवासी रूप का दर्शन कर दण्डक वन में तपस्या करने वाले परम ज्ञानी ऋषि–मुनि सर्वथा सजग होते हुए भी स्त्री बनकर उनके भोग की कामना से ओत प्रोत हो गये थे।

जौ लौं दृष्टि न राम कुमारा। तौ लौं कर ले ब्रह्म विचारा ॥
अलख अरूप ब्रह्म मन माहीं । बना रहे भल कहैं मुखाहीं ॥

हे श्री भइया जी! जब तक श्री राम जी महाराज के परम सुशोभन स्वरूप के अप्रतिम दर्शन नहीं हुए तब तक कोई भले ही ब्रह्म चिन्तन करता रहे, उसके मन में अलखनीय, बिना आकार का निर्गुण ब्रह्म बना रहे और मुख से वह उसी का गुणगान करता रहे।

दिखतहिं सिगरो भाव भुलाई। ब्रह्म ज्ञान पुनि कबहुँ न आई ॥
स्वप्नहुँ ताकर होय न कबहूँ। राम रूप रँग रगैं शयन हूँ ॥

परन्तु श्री राम जी महाराज के अप्रतिम सौन्दर्य का दर्शन होते ही उस ब्रह्म–ज्ञानी की सम्पूर्ण स्मृति भूल जायेगी तथा उसके हृदय में पुनः कभी भी ब्रह्म–ज्ञान वापस न आ सकेगा, ब्रह्म–ज्ञान का उसे कभी स्वप्न तक नही होगा और वह ब्रह्म ज्ञानी निद्राधीन होकर भी श्री रामजी महाराज के रूप के रंग में ही रँगा रहेगा।

तैसेहिं परतम राम चरित्रा । श्रवण सुखद मन करन पवित्रा ॥
प्रेम प्रदायक रघुपति लीला । रसमय रसिकन जीवन शीला ॥

हे श्री भइया जी! उसी प्रकार (श्री राम नाम व श्री राम रूप के समान) ही श्री राम जी महाराज का चरित्र भी सर्वश्रेष्ठ, श्रवणों को सुख प्रदायक, एवं मन को पवित्र करने वाला है। प्रभु श्री राम जी महाराज की लीला (चरित्र) प्रभु प्रेम प्रदायिनी, रस–स्वरूपा एवं रसिक जनों की जीवनी शक्ति होती है।

राम कथा हर केर अहारी । सहज जीवनाधार पियारी ॥
जीवन मुक्त ब्रह्म रत ज्ञानी । सुनहिं कथा तजि ध्यान महानी ॥

श्री राम जी महाराज की कथा तो भूत–भावन भगवान श्री शंकर जी का आत्माहार ही है। यह

श्री राम कथा उनके जीवन धारण करने के लिए सहज व प्रिय आधार है। प्रभु श्री राम जी महाराज की कथा को बड़े–बड़े जीवन मुक्त, ब्रह्म लीन एवं ज्ञानीजन भी अपने महानतम ध्यान का त्यागकर, श्रवण करते रहते हैं।

दो०–विषयी साधक सिद्ध कहँ, राम चरित प्रिय आहि ।
भुक्ति मुक्ति अरु भक्ति रस, देत सबहिं मन चाहि ॥१४६॥

श्री राम जी महाराज का परम पावन चरित्र विषयासक्त जीवों, साधकों एवं सिद्धों आदि सभी को प्रिय है। यह चरित्र सभी के लिए भोग, मोक्ष, प्रभु–भक्ति एवं परमानन्द आदि मनोभिलषित प्रदान करने वाला है।

सत चिद आनँद राम कथानक । सुमिरत उर अनुराग बढ़ानक ॥
ज्ञान विराग योग की देनी । राम धाम की सुभग नसेनी ॥

श्री राम जी महाराज का चरित्र सच्चिदानन्दमय एवं स्मरण करने मात्र से ही हृदय में अनुराग का विवर्धन करने वाला है। श्री राम जी महाराज की लीला ज्ञान, वैराग्न और योग प्रदान करने वाली एवं श्री राम जी महाराज के परम धाम ''श्री साकेत'' मे पहुँचने के लिए सुन्दर सीढ़ी (सोपान) है।

निज स्वरूप पर रूप लखाई । ब्रह्म जीव प्रिय प्रेम बँधाई ॥
प्रभु कैंकर्य देति प्रभु लीला । तेहिं ते सुनहिं सदा शम शीला ॥

जीवों को अपने स्वस्वरूप (जीव के स्वरूप) और परस्वरूप (परमात्मा के स्वरूप) का बोध कराकर ब्रह्म एवं जीव (दोनों) को प्रिय प्रेम में बाँधकर यह प्रभु लीला, प्रभु श्री राम जी महाराज का कैंकर्य प्रदान करने वाली है, इसीलिए अन्तःकरण व इन्द्रियों को वश में करने वाले साधक भी सदैव इसे श्रवण करते रहते हैं।

राम कथा जेहिं मन नहि लागा । जानहुँ तेहिं कहँ अमित अभागा ॥
शाश्वत सुख जब प्रभु चह दैना । राम कथा महँ तब चित चैना ॥

हे तात! श्री राम कथा में जिनका मन नहीं रमता उन्हे अतिशय भाग्यहीन समझना चाहिये क्योंकि जब प्रभु जीव को शाश्वत सुख प्रदान करना चाहते हैं तभी श्री राम कथा से उसके चित्त में सुख की प्राप्ति होती है।

नाम रूप लीला अरु धामा । चारहुँ रघुपति केर ललामा ॥
सत चिद आनँद विग्रह वाना । सत्य सत्य सत सुखद सुजाना ॥

हे परम सुजान मेरे भइया श्री लक्ष्मीनिधि जी! श्री राम जी महाराज के नाम, रूप, लीला और धाम ये चारो ही तत्व सुन्दर, सुखदायी व सच्चिदानन्दमय विग्रह वाले हैं यह मैं त्रिसत्य कह रही हूँ।

दो०–ताते सेवन योग ये, अव्यय तत्व सुचार ।
छिन भर होवै अलग नहिं, भाव समाधि सम्हार ॥१४७॥

इसलिए ये अविकारी व सदैव एकरस रहने वाले सुन्दर चारो ही तत्व (नाम, रूप, लीला और धाम) नित्य सेवन करने योग्य हैं। जीवों को चाहिये कि– वे इनसे एक क्षण को भी अलग न हो तथा

भाव समाधि में लीन बने रहें।

चारहुँ सो अति प्रेम पसारे। छणिक विरह नहि सहैं पियारे॥
तौ जग जीव कृतारथ होई। अमृत ह्वै अमृत भुक सोई॥

इन चारो तत्वों से अत्यधिक प्रीति करने वाले जनों से मेरे परम प्यारे रघुनन्दन श्रीराम जी महाराज एक क्षण का भी वियोग नही सहन कर पाते। उस समय, संसार में वह जीव कृतार्थ हो जाता है और अमृत बन कर अमृत का उपभोग करता है।

बनि रस रूप राम लहि प्यारा। आनँद भोगै नित्य अपारा॥
योग यज्ञ व्रत संयम दाना। ज्ञान विराग धर्म विधि नाना॥

इस प्रकार वे जीव श्री राम जी महाराज को प्राप्त कर रस स्वरूप बन, नित्य असीम आनन्द का उपभोग करते हैं। योग, यज्ञ, व्रत, संयम, दान, ज्ञान, वैराग्य व विभिन्न प्रकार के धर्म---

साधु संग शम दम शुचि साधन। सब कर फल चारहु अवराधन॥
चारहुँ सों कर प्रेम महाना। जीवन सफल करै मतिमाना॥

---संत जनों की संगति, शम, दम, तथा पवित्र साधन आदि सभी का फल इन चारों तत्वों (नाम, रूप, लीला व धाम) की आराधना करना है। अतः परम बुद्धिमान जीवों को चाहिये कि- वे इन चारों से अत्यधिक प्रेम कर अपना जीवन सफल कर लें।

श्रुति पुराण इतिहास पुकारी। यहै बतायो जीव हँकारी॥
सो मैं तुम कहँ दीन्ह सुनाई। यद्यपि जानहिं आपु अमाई॥

हे श्री भैया जी! श्रुतियों, पुराणों और इतिहासों ने पुकार-पुकार कर जीवों को सम्बोधित करते हुए यही बताया है, जो मैने आपको सुना दिया, यद्यपि निश्छल हृदय आप इस बात को भली प्रकार जानते हैं।

दो०-भगिनि लाड़िली बचन सुनि, लक्ष्मीनिधि हर्षाय।
प्रेम पगे पुलकित वदन, बोले दृगन बहाय॥१४८॥

अपनी लाड़िली अनुजा श्री सिया जू के बचनो को श्रवण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अतिशय हर्ष को प्राप्त हुये, पुनः वे प्रेम में पगकर पुलकित शरीर हो नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित करते हुए बोले---

लाड़िलि हौ तुम दया स्वरूपी। बढ़त जिगासा एक अनूपी॥
आपन तत्व आपु समुझाई। देहु कृपा करि हमहिं बताई॥

---हे श्री लाड़िली जू! आप तो साक्षात् दया-विग्रहा हैं, इस समय मेरे हृदय में एक अनुपमेय जिज्ञासा जाग्रत हुई है, आप कृपा कर अपने तत्व का विवेचन समझा कर मुझसे कहें।

विहँसि सिया बोली हे भैया। काह न जानहु बात सुहैया॥
मुनि-मुख प्रभु-मुख तुम बहु बारा। सुने मोर पर तत्व प्रकारा॥

अपने प्रिय भइया श्री लक्ष्मीनिधि जी के वचनों को श्रवण कर श्री सीता जी मुस्कुराते हुए बोलीं हे श्री भैया जी! ऐसी कौन सी सुन्दर वार्ता शेष है, जिसे आप नहीं जानते। आपने तो, आचार्य प्रवर श्री याज्ञबल्क्य जी और प्रभु श्री राम जी महाराज के मुख–कमल से कई बार मेरे परम तत्व का विवेचन श्रवण किया है।———

बोध यथारथ तुम कहँ ताता। तदपि कहौं पूँछेउ जो बाता ॥
राम केर प्रिय आत्मा जोई। मानहु मोहि सत्य नहिं गोई ॥

———पुनः हे तात! यद्यपि आपको मेरे स्वरूप का वास्तविक बोध है तथापि मैं आपके द्वारा की गयी जिज्ञासा का समाधान कर रही हूँ। हे श्री भैया जी! श्री राम जी महाराज की जो प्रिय आत्मा है, आप यथार्थतः मुझे वही समझिये, मैं आपसे कोई भी छुपाव नहीं रख रही।———

मम बिनु तिन थिति अस्ति न नेका । मोर बचन सत किये विवेका ॥
यथा उष्णता बिन जग माहीं । पावक कहत न कोउ सुनाहीं ॥

———मेरे बिना श्री राम जी महाराज की किंचित भी स्थिति और अस्तित्व नहीं है, विवेक पूर्वक विचार करने पर मेरे सर्वथा सत्य, ये बचन समझ में आ जाते हैं। जिस प्रकार बिना दाहक शक्ति के संसार में अग्नि को कोई अग्नि कहता नही सुना गया अर्थात् अग्नि की दाहिका शक्ति और आग्नि दोनो एक ही है।———

दो०–राम अहैं सो मैं अहहुँ, मोहि कहँ जानहु राम ।
तनिक भेद नहिं मानियहिं, एक तत्व सुख धाम ॥१४९॥

———हे श्री भइया जी! उसी प्रकार जो श्री राम जी महाराज हैं वही मैं हूँ आप मुझे श्री राम जी ही समझ लीजिये, हम दोनो में आप किंचित भी अन्तर मत मानिये क्योंकि सुख के धाम हम दोनो एक ही तत्व हैं।

पूर्ण ब्रह्म दूनहु मिलि भाई। समुझहु सत्य कहहिं जो गाई ॥
तदपि मोहि व्यवहारहिं माही। शक्ति अचिन्त्य आदि बतराही ॥

———हे श्री भइया जी! हम दोनो मिल कर ही पूर्ण ब्रह्म होते हैं यह बात जो मैं कह रही हूँ उसे आप सत्य ही समझे, फिर भी व्यवहार में मुझे ब्रह्म की अचिन्त्य आद्या शक्ति कहते हैं।———

युगल रूप रघुवर अरु सीता। नित्य सुखद रस रूप पुनीता ॥
लसत रहैं छन अलग न होंही । प्रभा भानु जिमि नित जग जोही ॥

———हमारा (श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी का) युगल स्वरूप नित्य, सुखदायी, रसस्वरूप व परम पवित्र है। हम दोनो इसी स्वरूप में सदैव सुशोभित रहते हैं कभी क्षण मात्र को भी पृथक नहीं होते तथा सूर्य व उसकी प्रभा के समान संसार में नित्य एक साथ दिखाई देते हैं।———

युगल विभूति माँहि हम दोई । लीला करत रहैं रस मोई ॥
एक होय युग रूप सम्हारे । यथा द्विदल जग चणक लखारे ॥

———हम दोनो युगल विभूति (एकपाद विभूति व त्रिपाद विभूति) में रस मग्न हुए लीला करते रहते हैं तथा एक होते हुए भी दो रूप बनाये रहते हैं जैसे संसार में चना एक होते हुए भी दो दालों से युक्त (दो भागों में बँटा) दिखाई देता है।———

राम अकर्ता अचल अचाही । इक रस त्रिगुणातीत सोहाहीं ॥
अकल अमायी एक अभोगी । सत चिद आनँद रूप अरोगी ॥
सो नहिं नेकहुँ कारज करहीं । सानिधि पाइ तासु हम चरहीं ॥

———श्री राम जी महाराज तो अकर्ता, अचल, निष्काम, एकरस, तीनो गुणों (सत, रज व तम) से परे, पूर्णातिपूर्ण, मायारहित, एक (अद्वितीय), सर्वथा विरक्त, सच्चिदानन्दमय व अविकारी होकर सुशोभित होते हैं। अतः वे कुछ भी कार्य नहीं करते हम ही उनका सान्निध्य पाकर संसार की सभी क्रियाओं का संचालन करती हैं।———

दो०— उत्पति थिति लय करहिं सब, अण्ड अनन्तन केर ।
विधि हरि हर उपजावती, अमित लेहु हिय हेर ॥१५०॥

———इस प्रकार हम ही श्री राम जी महाराज की सकासता से अनेक ब्रह्माण्डों की उत्पति, पालन और संहार आदि सभी कार्य करती हैं तथा उनके कार्यो का सम्पादन करने हेतु असीमित श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी और श्री शंकर जी आदि देवों को उत्पन्न करती हैं, ऐसा आप अपने हृदय में समझ लीजिये।———

छिन महँ विरचउँ अण्ड अनन्ता । छन महँ सो संहार लहन्ता ॥
रामहिं लीला सुखद दिखाऊँ । पालन सृजन हरण करि भाऊ ॥

———मैं एक क्षण में ही अनन्त ब्रह्माण्डों की रचना कर, क्षण मात्र में ही उनका संहार कर सकती हूँ। हे श्री भैया जी! मै संसार का सृजन, पालन व संहार कर श्री राम जी महाराज को सुखदायी लीला का दर्शन कराती हूँ।———

ब्रह्मा विष्णु महेशहिं धारउँ । पोषन करउँ सबन सुख सारउँ ॥
इन्द्र अर्यमा सहित त्रिलोकी । लोकपाल दिगपाल सुरौकी ॥

मैं ही श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी और श्री शंकर जी को धारण करती हूँ तथा उन सबका पोषण कर उन्हे सुख में मग्न कर देती हूँ। इन्द्र व सूर्य देव सहित तीनो लोकों, लोकपालों, दिगपालों एवं सभी देवताओं को ———

अमित अण्ड निज इच्छा मात्रा । धारूँ पोषूँ करि जग यात्रा ॥
उमा रमा शारद परधानी । अमित शक्ति उपजाय महानी ॥

–––असीमित ब्रह्माण्डों सहित अपनी इच्छा मात्र से धारण करती हूँ और सभी का पोष्ज्ञण करती हुई संसार यात्रा का निर्वहन करती हूँ। मैं ही श्री पार्वती जी, श्री लक्ष्मी जी व श्री सरस्वती जी आदि प्रमुख असीमित महा शक्तियों की उत्पत्ति करती हूँ।–––

शक्ति देय जग कार्य कराऊँ । सो सब सेवहिं सुन्दर भाऊ ॥
राम जन्म ते अब तक केरी । जो प्रभु लीला भई घनेरी ॥
सो सब मोर कृत्य गुनु ताता । निशिचर बध अरु नृप पद भाता ॥

–––पुनः उन्हे शक्ति प्रदान कर उनसे संसार के सम्पूर्ण कायों को सम्पादित कराती हूँ तथा वे सभी सुन्दर भाव में भावित होकर मेरी सेवा करती हैं। श्री राम जी महाराज के जन्म से अब तक की जो सम्पूर्ण श्री राम लीला हुई है, राक्षसों का वध और श्री राम जी महाराज के सुशोभन राज्याभिष्ज्ञेक तक का सभी चरित्र, हे तात श्री लक्ष्मीनिधि जी ! मेरा ही कार्य है।

दो०–जो कछु अनुभव महँ भवै, बुधि सों समझा जाय ।
नयन लखैं अरु श्रवण सुन, सो मम करणी आय ॥१५१॥

–––हे श्री भइया जी! जो कुछ भी मन में अनुभव होता है, बुद्धि के द्वारा समझा (विमर्श किया) जाता है, नेत्र देखते हैं और कर्ण सुनते हैं वे सम्पूर्ण कियायें मेरी ही हैं।–––

अमित अण्ड कर जगत पसारा । कर्ता कर्म करण क्रिय धारा ॥
मम इच्छा जानहु तुम सोई । मम अतिरिक्त न नेकहुँ कोई ॥

–––इस असीमित ब्रह्माण्ड वाले विस्तृत संसार में जो कर्ता, कर्म, करण व क्रिया का प्रवाह है वह सभी मेरी इच्छा से ही है, ऐसा आप समझ लीजिये, इसकी सम्पूर्ण किया–कलाप में मेरे अतिरिक्त अन्य कोई किंचित भी नहीं है।

परम कृपामय विग्रह मोरा । अतिहिं सुकोमल सुख रस बोरा ॥
जीव ताप मोहिं ते सत ताता । अल्प मात्र हिय सहा न जाता ॥

मेरा विग्रह परम कृपामय, अत्यन्त सुकोमल एवं समस्त चराचर जीव समुदाय को सुख व रस में निमग्न कर देने वाला है। हे तात! मैं सत्य कहती हूँ कि– जीवों का अल्प मात्र क्लेश भी मेरे हृदय में सहन नही होता।

जीव लागि निशि दिन प्रभु पाहीं । सुधिहिं कराऊँ तेहिं हित काहीं ॥
करि वर विनय स्ववश करि रामहिं । निज गुण सो नित आठहुँ यामहिं ॥

मैं जीवों के कल्याण के लिये अहर्निशि प्रभु श्री राम जी महाराज के समीप उनकी (जीवों की) स्मृति कराती रहती हूँ तथा अपने सौन्दर्य–गुणों से श्री राम जी महाराज को अपने वश में कर प्रार्थना करती हुई आठो प्रहर–––

जीव काहिं सुख सिन्धु समोऊँ । जेहिं जग चाह तनिक नहि होऊँ ॥
जे जग चहहिं तिनहिं जग देऊँ । मुक्ति चहैं तुरतहिं भव खेऊँ ॥

———उन जीवों को जिन्हें संसार की किंचित भी कामना नहीं होती सुख के सागर में डुबाये रखती हूँ। परन्तु जो लोग संसार की कामना करते हैं उन्हे संसार प्रदान करती हूँ और जो मुक्ति की कामना करते हैं उन्हे शीघ्र ही भव–सागर से पार कर देती हूँ।———

दो०–मोरे हिय महँ वसत नित, अम्ब अनन्तन प्यार ।
सन्मुख करि रघुवीर के, करति जीव उद्धार ॥१५२॥

———मेरे हृदय में नित्य अनन्त माताओं का वात्सल्य निवास करता है अतएव मैं जीवों को श्री राम जी महाराज के सम्मुख कर उनका नित्य उद्धार करती रहती हूँ।———

परमाश्रय मैं जीवन केरी । सुखी करहुँ बिन कारण हेरी ॥
मोरे बिन रघुनाथहिं कोई । जीव न लहै परम पद सोई ॥

———मैं जगज्जीवों के लिये महान आश्रय हूँ तथा उन्हें अपनी अहैतुकी कृपा से सुखी करती रहती हूँ। मेरे बिना श्री राम जी महाराज को और उनके परम–पद को कोई जीव नहीं प्राप्त कर सकते।

तव सुख हेतु समास बखानी । आपन तत्व लेहु जिय जानी ॥
बड़ी भाग तब आपन जाने । प्रेम सिन्धु श्री कुँअर समाने ॥

हे श्री भइया जी ! आप अपने हृदय में समझ लीजिये कि– मैने आप के सुख के लिए ही अपने तत्व का सम्यक प्रकार से बखान किया है। अपनी अनुजा श्री सिया जू के वचनों को श्रवण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी स्वयं को महा सौभाग्यशाली समझे व प्रेम के सागर में डूब गये।———

अविरल अश्रु बहत नहिं बोले । भगिनी पद पहँ परे अलोले ॥
त्राहि त्राहि बोले भरि नैना । भ्रात मानि पालिय सुख ऐना ॥

———उनके नेत्रों से निरन्तर प्रेमाश्रु प्रवाहित हो रहे थे तथा कण्ठ अवरुद्ध होने के कारण कुछ भी न बोल पा कर वे अपनी बहन श्री सिया जी के चरणों में स्थिर होकर गिर पड़े, पुनः वे नेत्रों में अश्रु भरकर बोले– हे लाड़िली जू! आप मेरी रक्षा करें, रक्षा करें। हे समस्त सुखों की धाम श्री सिया जू! मुझे अपना भाई जानकर आप मेरा पालन करती रहियेगा।

लाड़िलि चरण आँसु की धारा । चूमत धोये जनक कुमारा ॥
भ्रातृ नेह लखि जनक कुमारी । पगी प्रेम बह नैनन धारी ॥

इस प्रकार जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेमाश्रुओं की अविरल धार से अपनी अनुजा लाड़िली श्री सिया जू के चरणों को प्रच्छालित करते हुए उनका चुम्बन करने लगे। अपने श्री भैया

जी के प्रेम को देखकर जनक दुलारी श्री सिया जी प्रेम में पग गयी तथा उनके नेत्रों से भी आँसुओं की धारा प्रवाहित होने लगी।–––

दो०–भैया गोदिहिं बैठि प्रिय, पोंछि दृगन कर फेर ।
मधुरे मधुरे प्रेम पगि, बोली बचन सुखेर ॥१५३॥

–––तदनन्तर श्री सिया जी अपने श्री भैया जी की प्रिय गोद में बैठकर उनके नेत्रों का प्रोक्षण कर, उनके शीश पर अपना कर–कमल फिराते हुए प्रेम परिपूर्ण हो, सुखपूर्वक मधुर बचनो से बोलीं–

हे मम आनन्द दानि सुभ्राता । सुनहु बचन मम पुलकित गाता ॥
मम प्रभु सहित आत्मा मोरे । अहहु सत्य प्रिय जनक किशोरे ॥

मुझे आनन्द प्रदान करने वाले हे मेरे सुन्दर श्री भैया जी! आप मेरे बचनों को प्रसन्नता पूर्वक सुनिये, हे मेरे अतीव प्रिय जनक कुमार! श्री लक्ष्मीनिधि जी! मेरे स्वामी श्री राम जी महाराज के सहित आप यथार्थतः मेरी आत्मा हैं।

तुम सम तुमहिं पाइ बड़ भइया । रहौं सुखी मुद मंगल छइया ॥
तुम समान तुमहीं लहि श्याला । आनँद पगे रहैं रघुलाला ॥

हे श्री भैया जी! आपके समान स्वयं आप ही हैं ऐसे अपने ज्येष्ठ भ्राता के रूप में आपको प्राप्तकर मैं सुखी हो आनन्द मंगल में समायी रहती हूँ। पुनः आपके समान आपको अपने श्याल के रूप में पाकर श्री रघुनन्दन जू भी आनन्द में मग्न रहते हैं।

दूनहुँ के तुम आनँद दाता । तुम बिन सुख नहिं कतहुँ लखाता ॥
आनन्द रूप तत्व अहलादा । तुम बिन सब सुख रूप विषादा ॥

आप तो हम दोनों (श्री राम जी महाराज व मेरे श्री सीता जी) के आनन्द प्रदाता हैं, आप के बिना हमें कहीं भी सुख नही दिखाई पड़ता। हे आनन्द स्वरूप "आह्लाद तत्व" कुमार श्री लक्ष्मी निधि जी! आपके बिना सभी सुख हमें दुख–स्वरूप दिखाई देते हैं।

प्रेम मूर्ति रस रूप पियारे । हम दोउन के प्राण अधारे ॥
तीनहुँ काल रहैं इक साथा । तीनहुँ हम तुम अरु रघुनाथा ॥

हे प्रेम मूर्ति, रस स्वरूप प्रिय श्री भैया जी! आप हम दोनों के प्राणाधार हैं। तीनो कालों (भूत, वर्तमान व भविष्य) में हम तीनो (मैं, आप और श्री राम जी) नित्य एक साथ रहते हैं।

दो०–इक एकन के प्राण बनि, नयन विषय सुख रूप ।
युग विभूति लीला रसिक, आनँद लहत अनूप ॥१५४॥

हम तीनों (मैं, आप और श्री राम जी) एक दूसरे के प्राण एवं नेत्रों के सुखदायी विषय बनकर

युगल विभूति (एकपाद व त्रिपाद) में लीला रस के रसिक बने हुए अनुपमेय आनन्द प्राप्त करते हैं।

मोहिं सों भिन्न तात तुम नाहीं । तैसहिं प्रभु सों पृथक न आहीं ॥
सीय बचन सुनि धीरज धारी । बहुरि विनय मुख एक उचारी ॥

हे तात! जैसे आप मुझ से अलग नही है, उसी प्रकार प्रभु श्री राम जी महाराज से भी पृथक नही हैं। श्री सीता जी के इन वचनों को श्रवणकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी धैर्य धारण किये। पुनः वे अपने मुख से मधुर वाणी द्वारा एक निवेदन करने लगे---

सेवा युगल किशोर किशोरी । सहज रहै तिहुँ कालहुँ मोरी ॥
राम सहित तव कृपा महानी । पाये रहहुँ नित्य सुख खानी ॥

---हे श्री राज किशोरी जू! आप युगल मूर्तियों (श्री सीता राम जी) की सेवा मुझे सहज ही तीनो काल (भूत, वर्तमान व भविष्य) में प्राप्त रहे। हे समस्त सुखों की खानि श्री सिया जू! श्री राम जी महाराज के सहित आप की महान कृपा मैं नित्य प्राप्त करता रहूँ।

बिन तव कृपा आत्मा मोरी । होय सहस्त्रन टूक किशोरी ॥
बिन तव चरण गुलामी केरे। मिटै मोर अस्तित्व सबेरे ॥

हे जनक किशोरी श्री सिया जू! बिना आपकी कृपा के मेरी आत्मा के हजारों टुकड़े हो जायें यहाँ तक कि- आपकी चरण सेवा के बिना मेरा अस्तित्व शीघ्र ही समाप्त हो जाये।

देह प्राण प्रिय चार पदारथ। बिन सेवा नहिं चहौ यथारथ ॥
भ्रात भाव सुनि सिय सरसानी। बैठी गोद हृदय लपटानी ॥
बाछल प्यार करत नित भइया। देते आनँद हमहिं रहइया ॥

हे श्री किशोरी जू! मैं सत्य-सत्य कहता हूँ कि- यह शरीर, प्राण व परम प्रिय चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष) भी आपकी सेवा के बिना मैं नहीं चाहता। अपने भैया श्री लक्ष्मीनिधि जी के भाव भरे उपरोक्त वचनों को श्रवण कर श्री सिया जू अतिशय आनन्दित हुई तथा प्रेम परिपूर्णा हो उनकी गोद में बैठकर हृदय से लिपट गयीं और बोली- हे मेरे परम प्रिय श्री भइया जी! आप मुझे वात्सल्य भरा प्यार-दुलार करते हुए सदैव आनन्द-प्रदान करते रहें।

दो०-तुम बिन सब सूनो लगत, सत सत बचन हमार ।
मोक्ष विकुण्ठहुँ केर सुख, बिन तव प्यार असार ॥१५५॥

हे श्री भइया जी! हमारे ये बचन सर्वथा सत्य हैं कि- आपके बिना हमें सभी कुछ शून्य प्रतीत होता है। यहाँ तक कि- मोक्ष और वैकुण्ठ लोक का सुख भी आपके प्रेम के अभाव में हमे सार हीन प्रतीत होता है।

भावत भगिनि भ्रात सुख पाई । कीन्हे बहु बतकही सुहाई ॥
पुनि दुलार बहु विधि वैदेही । गये भवन निज कुँअर सनेही ॥

बहन और भाई (श्री सीता जी व कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी) दोनो नें मनभावना सुख प्राप्त करते हुए बहुत सी सुन्दर वार्ता की। पुनः श्री विदेह राज नन्दिनी जू का अतिशय प्यार–दुलार कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने भवन चले गये।

एहि प्रकार जब तबहिं कुमारा । पूँछत प्रिय परमारथ सारा ॥
राम सीय लहि तत्व महाना । प्रमुदित पगे रहत सुख साना ॥

इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी जब–तब प्रिय परमार्थ का सार तत्व जानने की जिज्ञासा कर श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी से प्रश्न पूछते रहते हैं तथा श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी से वह महान तत्व प्राप्त कर मुदित मन सुख से सराबोर बने रहते हैं।

भ्रातन सखन बतावत तत्वा । अति अधिकारी निज ह्यि मत्वा ॥
कहत सुनत सिय राम कहानी । जात दिवश निशि छन अनुमानी ॥

पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, हृदय में अत्यन्त अधिकारी समझकर, अपने भ्राताओं व सखाओं को उस गूढ़ परमार्थ तत्व को ज्ञापित कराते रहते हैं। इस प्रकार श्री सीता राम जी के चरित्रों को कहते–सुनते उनके दिन और रात क्षण के समान व्यतीत होते जाते हैं।

ज्ञान पुरी निमिकुल रजधानी । प्रेम पुरी भइ अमृत खानी ॥
अमृत चखन हेतु दिन राती । आवत सुर नर मुनिन जमाती ॥

उस समय निमि वंशियों की राजधानी, ब्रह्म ज्ञान की पुरी ''श्री मिथिला'' प्रभु प्रेम की नगरी एवं अमृत की खानि हो गई थी। जिस अमृत का आस्वाद ग्रहण करने के लिए श्री मिथिलापुरी मैं देवता, मनुष्य और मुनियों का समाज दिन–रात आता रहता है।

छं०– नर नाग सुर सब मुनि गनहुँ, नित आव मिथिलहिं सुख सने ।
सुनि प्रेम गाथा सह रहस, रघुपति चरित रसमय बने ॥
भरि भाव आनन्द रूप बनि, सिय राम प्रेमहिं सब लहे ।
सिय भ्रात की महिमा कहत, हर्षण हरषि हरि रस बहे ॥

श्री मिथिलापुरी में मनुष्य, नाग, देवता तथा मुनिगण आदि सभीजन, नित्य ही सुख में सने हुए आते रहते हैं तथा श्री राम जी महाराज के आध्यात्मिक रहस्य से परिपूर्ण प्रेम चरित्र को श्रवण कर रस–स्वरूप बन जाते हैं। वे सभी प्रिय भावों में भावित होकर आनन्द स्वरूप बन श्री सीताराम जी का प्रेम प्राप्त करते हैं। हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– जनक नन्दिनी श्री जानकी जू के अग्रज श्री लक्ष्मीनिधि जी की महिमा का वर्णन करते हुए हर्षित हो भगवान

के प्रेमरस प्रवाह में मैं भी प्रवाहित हो गया अर्थात् मुझे भी वह प्रेम प्राप्त हो गया।

सो०–सीय राम उपदेश, सुने कुँअर मिथिलेश के।
पावै प्रेम अशेष, नित्य नेम कर जो सुनहिं॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– हे जगज्जीवो! श्री सीताराम जी के द्वारा दिये गये और मिथिलेश कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के द्वारा प्रेम पूर्वक श्रवण किये हुए इस उपदेश को जो कोई नित्य नियम पूर्वक श्रवण करेगा वह श्री सीताराम जी के पूर्ण प्रेम को प्राप्त करेगा।

दो०–दीन हीन मति मन मलिन, हर्षण अतिहिं अनाथ।
पद पंकज प्रिय प्रेम दै, रघुवर करहु सनाथ॥१५६॥

हमारे आचार्य महा प्रभु कहते हैं– हे रघुकुल नन्दन श्री राम जी महाराज! यह दास सर्वथा दीन–हीन, कपट पूर्ण मन व बुद्धि से युक्त तथा अत्यन्त अनाथ है आप अपने चरण कमलों का प्रिय प्रेम प्रदान कर इसे सनाथ कर दीजिये।

श्लोक– ज्ञान काण्डमिदं रम्यं, श्री राम बचनामृतं।
सुदत्तं राम हर्षेण, स्वीकुरुस्व प्रभो मुदा॥

हे श्री राम जी महाराज आपके, स्वकीय वचनामृत स्वरूप इस परम सुशोभन ज्ञान काण्ड को, जो श्री राम हर्षण दास जी महाराज द्वारा आपको समर्पित किया गया है, आप आनन्द पूर्वक स्वीकार करें।

–: मास पारायण अठ्ठाइसवाँ विश्राम :–

इति श्री प्रेम रामायणे जन मानस हर्षणे, सकल कलि कलुष विध्वंसने ज्ञानाख्यो षष्टः काण्डः।

यह श्री मद् प्रेम रामायण जी का प्रेमानन्द वर्षण कारी, सर्व जन हृदय हर्ष वितरण कारी तथा सकल कलि कालुष्य विध्वंसन कारी ज्ञान काण्ड नाम का छठवाँ काण्ड पूर्ण हुआ।

ज्ञान काण्ड समाप्त

ॐ नमः श्री सीतारामाभ्यां

॥अथ श्री प्रेम रामायण॥

##卐 श्री प्रस्थान काण्ड 卐

श्लोक– दिव्यासने समासीनौ, साकेताधीश्वरौ परौ ।
मेघ विद्युच्छटाकारौ, श्याम गौर मनोहरौ ॥
भक्तेष्ट सिद्धिदौ नित्यौ, युग्मौ परिकरावृतौ ।
सुखदौ रसदातारौ, सीतारामौ नमाम्यहम् ॥

दिव्य आसन में विराजे हुए, श्रेष्ठातिश्रेष्ठ, श्री साकेताधिपति जो मेघ व विद्युत की छटा से सम्पन्न, सुन्दर श्याम और गौर वर्ण वपु, जन–जन के मन को हरण करने वाले, भक्त जनों के हेतु नित्य, मनोवांछित व सिद्धि प्रदाता हैं ऐसे अपने परिकरों से घिरे हुए, सुख व रस प्रदान करने वाले युगल श्री सीता राम जी को मैं नमन करता हूँ।

रसाप्लुतौ रसाकारौ, सच्चिदानन्द विग्रहौ ।
विष्णवादि सेव्यमानौ च, सीतारामौ भजाम्यहम् ॥

सदैव प्रेम रस में मग्न, रसस्वरूप, सच्चिदानन्दमय विग्रह व श्री विष्णु जी आदि देवताओं से सतत–सेवित युगल सरकार श्री सीता राम जी का मैं भजन करता हूँ।

सर्वेभ्यो वैष्णवेभ्यस्तु, वाङ्ग मनः कर्मभिर्नमः ।
नित्यं साकेत वासीभ्यः, कृपां याचे वरम्वरम् ॥

मैं मन वचन और कर्म से सभी वैष्णवों को जो नित्य साकेत निवासी हैं नमन करता हूँ तथा उनकी सुन्दर कृपा की बारम्बार कामना करता हूँ।

सो०–श्री गुरु कृपा प्रसार, होय अमित यहि दीन पर ।
लीला ललित उदार, जासों कछु सूझै सुखद ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज अपने श्री गुरुदेव भगवान से निवेदन कर रहे हैं कि–हे श्री सद्‌गुरुदेव भगवान! इस दीन दास पर आपकी अहैतुकी असीमित कृपा का प्रसार हो जाय जिससे परम सुन्दर, उदार व सुख प्रदायक कुछ भगवच्चरित्र हृदय में दिखाई देने लगें।

लछिमन मुख सुनि अमृत बानी । हनूमान बड़ि भाग्य बखानी ॥
लक्ष्मीनिधि प्रति बाढ़ी प्रीती । कहि न जाय मन बुद्धि अतीती ॥

सुमित्रा नन्दन श्री लक्ष्मण कुमार जी के मुख–कमल से अमृत के समान वाणी (प्रेम–कथा) श्रवण कर श्री हनुमान जी ने अपने सौभाग्य की बारम्बार प्रशंसा की। उनके हृदय में कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रति ऐसी प्रीति का विवर्धन हुआ जो अकथनीय एवं मन, बुद्धि से परे है।

समय पाइ कुँअरहिं हनुमाना । मिलेउ यथा विधि प्रेम प्रमाना ॥
दूनहुँ भक्त परस्पर माहीं । कहे सुने प्रभु चरित तहाँ ही ॥

पुनः अवसर प्राप्तकर श्री हनुमान जी, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से विधिवत प्रेम परिपूर्ण होकर भेंट किये। वहीं वे दोनों परम भागवत आपस में प्रभु श्री राम जी महाराज के मनोरम चरित्रों का कथन व श्रवण किये।

प्रेम पगे उर आनन्द छाये । नयन नीर तन पुलक नहाये ॥
बढ़ेउ परस्पर प्रेम अपारा । एक एक के भये अधारा ॥

वे दोनो (श्री हनुमान जी, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी) प्रभु चरितामृत के कथन व श्रवण से प्रेम मग्न, हृदय में आनन्द परिपूर्ण व पुलकित शरीर हो प्रेमाश्रुओं में अवगाहन करने लगे। उनमें एक दूसरे के प्रति असीम प्रेम विवर्धित हो गया और वे एक दूसरे के प्राणाधार बन गये।

प्रेमी मिलन समान सुहावा । भुक्ति मुक्ति सुख एक न पावा ॥
रामहुँ ते बढ़ प्रेमिन्ह भेंटी । कहहुँ सत्य सुख होय अमेटी ॥

प्रेमियों के मिलने से जिस सुन्दर सुख की प्राप्ति होती है उसकी समता सभी प्रकार के भोग व मोक्ष के सुख से किंचित भी नहीं की जा सकती। मै सत्य कहता हूँ कि– श्री राम जी महाराज के मिलने की अपेक्षा, प्रभु प्रेमियों के मिलन में निश्चय ही अधिक सुख प्राप्त होता है।

दो०–प्रभु प्रेमी संयोग बिनु,नवल नेह नहि होय ।
नेह बिना विश्रान्ति लहि, राम मिलन नहि जोय ॥१॥

भगवत्प्रेमियों के संयोग के अभाव में प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रति नवीन प्रेम का संचार नहीं होता तथा उस प्रेम के बिना प्रभु श्री राम जी महाराज का शान्ति पूर्वक मिलन होता नहीं देखा गया।

कबहुँ राम सिय अवध मझारा । कबहुँ बसै मिथिला सुख सारा ॥
तैसेहिं कुँअर अवध कहुँ वासा । कहुँ मिथिला प्रभु साथ सुभाषा ॥

समस्त सुखों के सार श्री सीता राम जी कभी श्री अयोध्यापुरी में तो कभी श्री मिथिला पुरी में निवास करते हैं। उसी प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भी कभी श्री अयोध्या पुरी में निवास करते हैं तो कभी प्रभु श्री राम जी महाराज के साथ श्री मिथिला पुरी में सुशोभित होते हैं।

भगिनि भाम सेवा सुठि सरहीं । जेहिं विधि सुखी होंय सो करहीं ॥
निज सुख इच्छा जिय नहि जामी । सीय राम पद प्रेम अकामी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने बहन–बहनोई श्री सीता राम जी की सुन्दर सेवा करते हैं तथा जिस प्रकार की चर्या से श्री सीता राम जी सुखी होते हैं, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी वही कार्य करते हैं। श्री सीता राम जी के चरणों में निष्काम प्रेम होने से उनके हृदय में स्वसुख की इच्छा का अंकुरण तक नही होता था।

कबहुँ कुँअर प्रभु सेवा जानी । करहिं अवध कर काज महानी ॥
अति नैपुण्य कुँअर कर देखी । सुखी होहिं प्रभु प्रीति परेखी ॥

कभी कभी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु श्री राम जी महाराज की सेवा समझ श्री अयोध्या पुरी के महान राज–कार्य की सम्हाल किया करते हैं तब उनकी अतिशय कार्य कुशलता देख कर प्रेम पारखी प्रभु श्री राम जी महाराज अतिशय सुखी होते हैं।

बिना कुँअर कछु काज न सरहीं । अभिमत लै पुर पालन करहीं ॥
तैसहिं राम जनक पुर केरा । शासन करहिं कुँअर सुख हेरा ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के बिना कोई कार्य नहीं करते हैं तथा उनकी सहमति लेकर ही श्री अयोध्या पुरी का राज्य संचालन करते हैं। उसी प्रकार श्री राम जी महाराज भी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सुख के लिए श्री जनक पुर का राज्य प्रवन्धन व संचालन किया करते हैं।

राज काज कर सोच कुमारा । नहिं किय कबहुँ प्रभुहिं पर भारा ॥
प्रभु सुख इच्छा जानि सुजाना । निमित मात्र बन भूप महाना ॥
रंजन करहिं प्रजहिं बहु भाँती । राम प्रेम मन बुद्धि सुराती ॥

मिथिलेश राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री मिथिला पुर के राज्य प्रशासन की कभी भी चिन्ता नही की, वे तो राज्य की सम्पूर्ण सार सम्हाल का भार प्रभु श्री राम जी पर छोड़े हुए थे। परम सुजान श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु श्री राम जी महाराज का सुख व इच्छा जानकर निमित्त मात्र के लिए महाराजा बने हुए थे तथा श्री राम प्रेम में अपने मन और बुद्धि को लगाये हुए विभिन्न प्रकार से प्रजारंजन करते रहते थे।

दो०–लक्ष्मीनिधि अरु राम कर, प्रेम परस्पर सोह ।
अकथ अगाध अनूप अति, मन वाणी पर जोह ॥२॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज का पारस्परिक प्रेम अवर्णनीय, अतिशय गम्भीर, अनुपमेय तथा मन व वाणी के परे प्रतीत होता है।

यज्ञ दान शुभ कर्म महाना। इष्ट पूर्त जो वेद बखाना ॥
बार सहस्त्रन बहु विधि कीने। लक्ष्मीनिधि सादर रस भीने ॥

अभीष्ट की प्राप्ति कराने वाले वेद वर्णित यज्ञ व दान आदि जो महान शुभ कर्म हैं उनका अनुष्ठान श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज ने आदर पूर्वक रससिक्त हो हजारों बार किया है।

सब कर फल सिय राम समर्पी। अनासक्त निष्काम अदर्पी ॥
बिनु संकल्प राग रिस जीती। प्रभु सेवा हित कर्म अतीती ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अनासक्त, निष्काम एवं निरभिमानी होकर उन सभी शुभ कर्मानुष्ठानों का फल श्री सीताराम जी को अर्पित किये हुए हैं। वे संकल्प विहीन, आसक्ति व

क्रोध को जीत कर प्रभु श्री राम जी महाराज की सेवा के लिए सभी महान कर्मो का अनुष्ठान करते रहते हैं।

सीय राम कर चह कल्याणा। तिनहिं हेतु चेष्टा कर नाना ॥
अश्वमेध बहु यज्ञ कुमारा। सिद्धि सहित कीन्हे धन वारा ॥

वे सदैव श्री सीताराम जी के कल्याण (मंगल) की कामना करते है तथा उन्हीं के सुख के लिए विभिन्न प्रकार की चेष्टाएँ करते रहते हैं। कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी प्राण वल्लभा श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित अश्वमेध आदि बहुत से अर्थ–साध्य यज्ञों का अनुष्ठान किये।

अमल अनूप अकथ जग माहीं। फैलि गयो वर यश चहुँ घाहीं ॥
तीन लोक महँ श्री निधि तूला। नहिं कोउ भूप सुमंगल मूला ॥
राम कृपा कहि जग नर नारी। सिया भ्रात यश कहहिं सुखारी ॥

उनकी निर्मल, अनुपमेय, अकथनीय व सुन्दर कीर्ति संसार में चारो दिशाओं मे व्याप्त हो गई थी। उस समय तीनो लोकों में सुमंगलों के मूल श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज की तुलना में अन्य कोई भी नरेश नहीं था। संसार में उनकी ऐसी कीर्ति को देख, सभी स्त्री–पुरुष्ट इसे श्री सीताराम जी महाराज की महान कृपा है, कहकर सुख पूर्वक सीताग्रज श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज की कीर्ति का गायन करते हैं।

दो०–प्रेरक सीता राम की, कृपा कामना पाइ।
लक्ष्मीनिधि यश फहर जग, सुनि सरसे सिय साँइ ॥३॥

इस प्रकार श्री सीताराम जी की प्रेरणा, कृपा व इच्छा को प्राप्त कर संसार में श्री लक्ष्मीनिधि जी की कीर्ति पताका चतुर्दिक फहरा रही थी। उनके महद्यश को श्रवण कर सीताकान्त श्री राम जी महाराज अतिशय आनन्दित होते थे।

चन्द्रकीर्ति लक्ष्मीनिधि भयऊ। सर्व लोक प्रिय अमृत मयऊ ॥
लक्ष्मीनिधि प्रभु कृपा विचारी। बिना अहं मम प्रीति पसारी ॥

श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज की चन्द्रमा के समान उज्ज्वल कीर्ति सभी को प्रिय एवं अमृत स्वरूपा हो गयी थी। श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु श्री राम जी महाराज की अहैतुकी कृपा का विचार कर अहंकार व ममकार रहित हो प्रभु प्रेम में पगे रहते थे।

आपन यश प्रभु कृत जिय जानी। नहिं गिन स्वयं राम कर मानी ॥
रहैं सुषुप्तिहिं सम जग भूले। परम प्रेम पगि मंगल मूले ॥

श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज अपने हृदय में स्वयं की कीर्ति को प्रभु श्री राम जी महाराज का कार्य जानकर व उसे अपनी कीर्ति न समझ अपने प्रभु श्री राम जी महाराज का यश ही समझते थे। अतः वे सोये हुए के समान संसार को भूले हुए (संसार से निरासक्त होकर) प्रभु प्रेम में परिप्लुत हो सर्व मंगलों के मूल बने हुए थे।

बार सहस्त्रन राम गोसाँई। अश्वमेध किय अवध महाई ॥
लक्ष्मीनिधि कहँ प्रभु बहु बारा। कियो प्रधान अश्व रखवारा ॥

श्री राम जी महाराज ने श्री अयोध्या पुरी में हजारों बार महान अश्वमेध यज्ञ किये जिसमें कई बार प्रभु श्री राम जी महाराज ने श्री लक्ष्मीनिधि जी को मुख्य अश्व रक्षक नियुक्त किया।

राम श्याल लै सेन महानी। गये तुरँग पीछे सुख सानी ॥
द्वीप द्वीप घूमे तेहिं पाछे। धारे वीर वेश वर आछे ॥

उस समय अपने प्रभु की सेवा समझ श्री राम जी महाराज के श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी, प्रबल सेना लेकर सुख में सने हुए यज्ञीय अश्व के पीछे गये और सुन्दर वीर वेष से सुसज्जित हो उसका अनुसरण करते हुए देश–देश भ्रमण करते रहे।

दो०–जहँ तहँ देशन देश महँ, हय बाँधे वर वीर।
घमासान तहँ युद्ध भो, कुँअर न त्यागे धीर ॥४॥

उस समय जहाँ–तहाँ देश–देशान्तरों में वीरों ने यज्ञीय अश्व को बाँध लिया वहाँ भीषण युद्ध हुआ परन्तु कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने धैर्य पूर्वक परिस्थिति का सामना किया।

अकथ वीरता नृपन दिखाई। पर बल नाशि जिते यश पाई ॥
रामाधीन नृपन कहँ कीन्हे। अश्व छोड़ाइ विजय वर लीन्हे ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उस समय सभी राजाओं के समक्ष अकथनीय वीरता का प्रदर्शन किया तथा अन्य राजाओं के बल को नष्ट कर स्वयं विजयी हुए व कीर्ति प्राप्त किये। उन राजाओं को श्री राम जी महाराज के आधीन कर यज्ञीय अश्व को मुक्त करा, सुन्दर विजय पत्र प्राप्त किये।

हयहिं लाइ धन सहित कुमारा। सौंपे रामहिं अवध मझारा ॥
पूर्ण यज्ञ तब रघुपति कीन्हे। मुनि गन जस जस आयसु दीन्हे ॥

तदन्नतर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने यज्ञीय अश्व सहित प्राप्त धन–सम्पत्ति लाकर श्री अयोध्या पुरी में श्री राम जी महाराज को सौंप दी। तब श्री राम जी महाराज ने मुनियों की आज्ञानुसार अश्वमेध यज्ञ की पूर्णाहुति की।

कहुँ कहुँ रिपुहन भये प्रधाना। गवने अश्व क्षेम मति माना ॥
तबहुँ कुँअर तिन सँग सिधाये। अमित वीरता नृपन दिखाये ॥

कभी–कभी यज्ञीय अश्व की रक्षा के लिए परम बुद्धिमान श्री शत्रुध्न कुमार जी प्रमुख रक्षक नियुक्त हुए तब भी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी उनके साथ गये और वहाँ शत्रु पक्ष के राजाओं को अपनी असीमित वीरता का परिचय दिये।

लहे अमित यश जगत सुधीरा। अहमिति त्याग रहे मन थीरा ॥
राम श्याल सिय भ्राता केरी। यह महिमा कछु बहुत न हेरी ॥

इस प्रकार परम धीर वीर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने संसार में असीमित कीर्ति प्राप्त की

परन्तु परम गम्भीर वे अहंकार व ममकार का त्याग किये रहे। श्री राम जी महाराज के प्रिय श्याल व श्री सीता जी के अग्रज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी की यह महान महिमा कुछ अधिक नहीं है।

दो०—राम कृपा कन लहि मसक, बनै विरंचि महान ।
कुँअर लहे पूरण कृपा, कस न होहि अस मान ॥५॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि— जब प्रभु श्री राम जी महाराज की कृपा का कणांश प्राप्त कर मसक (मच्छर) जैसा लघु जीव भी श्री ब्रह्मा जी के महान पद को प्राप्त कर लेता है तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने तो उनकी सम्पूर्ण कृपा प्राप्त की है अतः वे संसार में ऐसे यश भाजन क्यों न हो? ऐसा समझना चाहिए।

एक समय रघुवर सह भ्राता। तीरथ यात्रा महँ मन राता ॥
लक्ष्मीनिधि ते चाह सुनाई । राम कृपानिधि निज मन भाई ॥

एक समय भ्राताओं सहित श्री राम जी महाराज की अभिरुचि तीर्थ यात्रा करने की हुई तब कृपा के निधान श्री राम जी महाराज ने अपनी मनभावनी रुचि अपने प्रिय श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी से सुनायी।

बोले कुँअर धन्य मम भामा। मोरे हित यह चाह अकामा ॥
सन्त दरश करवावन चहहू। तेहिं ते मोहि पकरि अस कहहू ॥

श्री राम जी महाराज के हृदय की इच्छा को जान कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी बोले— हे मेरे प्राण प्रिय भाम, श्री राम जी महाराज! आप धन्य हैं जो आपने अपने निष्काम मन में मेरे हित के लिये यह इच्छा उत्पन्न की है। आप मुझे सन्तों का अमोघ दर्शन कराना चाहते हैं इसीलिए मुझे लक्ष्य कर इस प्रकार की बातें कह रहे हैं।———

गृह मेधिन कहँ सन्त सुदरशा। श्रेयस करन महा सुख करषा ॥
अवशि तात चलिहौं तव साथा। तुम बिन को मोरे रघुनाथा ॥

———क्योंकि गृहासक्त जीवों के लिए सन्तों का दर्शन, परम कल्याणकारी व महान सुख की प्राप्ति कराने वाला होता है। हे तात! मै अवश्य ही आपके साथ चलूँगा। हे श्री रघुनाथ जी! आप के अतिरिक्त मेरा परम हितैषी अन्य कोई नहीं है।

प्रभु पद त्यागि विलग नहि वहिहौं। सेय पगतरी बहु सुख लहिहौं ॥
क्षणमपि तव विहीन रघुनायक। सहि न सकौं जीवन जिय नायक ॥

हे प्रभु! आपके श्री चरणों को छोड़कर मैं कभी भी अलग नहीं चलूँगा वरन् आप श्री के चरण पादुकाओं की सेवा करते हुए अत्यधिक सुख संप्राप्त करूँगा। हे श्री रघुकुल के नायक व मेरे हृदय के स्वामी श्री राम जी महाराज! मैं आप से अलग हो कर एक क्षण भी अपना जीवन धारण करने में समर्थ नही हूँ।

दो०—आत्मऽस्तित्वहुँ नाथ मैं, क्षण मणि मनहु न चाह ।
लाखन टूका होय सत, त्रिभुवन सुख है काह ॥६॥

हे नाथ! मै सत्य कहता हूँ कि– आपसे विलग होकर मैं अपनी आत्मा के अस्तित्व को मन से भी एक क्षण के लिए नही चाहता, चाहे मेरी आत्मा के भी लाखों टुकड़े हो जायें, फिर तीनों लोकों का सुख किस गिनती मे हैं।

श्याल भाव भगवानहिं भायो । ह्रदय हर्ष तेहि कण्ठ लगायो ॥
प्रेम पगे मृदु बचन सुहाये । कहे राम रघुपति रस छाये ॥

अपने श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी के ह्रदय के ऐसे भाव, भगवान श्री राम जी महाराज के मन को अत्यन्त प्रिय लगे और उन्होने हर्षित ह्रदय, श्री लक्ष्मीनिधि जी को गले से लगा लिया। पुनः प्रेम परिप्लुत एवं रस मग्न हुए श्री राम जी महाराज मधुर व सुहावने बचन बोले–––

तुम बिन तात हमहुँ कछु नाहीं । नहि चह अत्र तत्र सुख काहीं ॥
राउर दर्शन मोहि सुख रूपा । लागत सब विधि अमल अनूपा ॥

–––हे तात श्री लक्ष्मीनिधि जी! आपके बिना हम भी अपना अस्तित्व नही समझते तथा लोक और परलोक के समस्त सुखों को भी नहीं चाहते। आपका दर्शन हमे सभी प्रकार से सुख प्रदान करने वाला, निर्मल और अनुपमेय प्रतीत होता है।–––

तुम्हरे साथ चलन अति आसा । रही भ्रमण की जग मुनि वासा ॥
ताते तुरत तयारिहिं कीजै । सँग सँग चलहिं सरस सुख दीजै ॥

–––आपके साथ संसार में मुनियों के आश्रमों मे विचरण करने हेतु चलने की मेरे ह्रदय में बड़ी आकांक्षा है इसलिए आप शीघ्र ही तैयारी कर हमारे साथ चल, हमें रस पूर्ण सुख प्रदान कीजिये।

राम रजाय पाय युत नेहा । भये मुदित मन बहुत विदेहा ॥
गये स्वपुर पुनि आयसु पाई । वरणत हिय प्रभु कृपा अघाई ॥
दुहुँ दिशि ते बहु भई तयारी । चर्चा फैली नगर मझारी ॥

श्री राम जी महाराज की प्रेम परिपूर्ण आज्ञा प्राप्त कर विदेह नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी मन में बहुत प्रसन्न हुए, पुनः उनकी आज्ञा लेकर, अपने ह्रदय में संतुष्ट हो प्रभु कृपा का समनुभव करते हुए अपने नगर श्री मिथिलापुरी गये। इस प्रकार श्री मिथिला व श्री अयोध्या दोनो पुरियों में विविध प्रकार से तैयारियाँ हुई और तीर्थ यात्रा का यह समाचार सम्पूर्ण नगर में फैल गया।

दो०– महा मुदित शुभ समय प्रभु, सीतहिं सम्मति दीन ।
चढ़ि विमान पुष्पक प्रिया, चलहु सखिन सँग भीन ॥७॥

प्रभु श्री राम जी महाराज ने अत्यन्त आनन्दित हो, शुभ मुहूर्त में अपनी प्रियतमा श्री सीता जी को आज्ञा दी कि– हे प्रिया जी! आप प्रेम पूर्वक, सखियों सहित, पुष्पक विमान में चढ़ कर तीर्थ यात्रा हेतु चलें।

राम रजाय शीश धरि सीया । चढ़ी सखिन सह सुठि कमनीया ॥
दासी दास सेव महँ लीनी । भाव प्रीति लखि परम प्रवीनी ॥

श्री राम जी महाराज की आज्ञा शिरोधार्य कर परम सुन्दरी श्री सिया जू सखियों सहित पुष्पक विमान में चढ़ गयीं। परम प्रवीणा विदेह राज नन्दिनी जू ने दासियों ओर सेवकों के भाव व प्रेम को परख, उन्हे अपनी सेवा में ले लिया।

भरतादिक सब भ्रात सनारी। चढ़े विमान हर्ष हिय भारी ॥
सकल मातु पहँ रघुपति जाई । करि वर विनय विमान चढ़ाई ॥

श्री भरत जी आदि सभी भ्रातृगण सपत्नीक अत्यन्त हर्षित हृदय से पुष्पक विमान में चढ़े। श्री राम जी महाराज ने सभी माताओं के समीप जाकर उनसे सुन्दर निवेदन कर उन्हे पुष्पक विमान में बिठा दिया।

गुरु गुरुपत्निहिं पुनि सिर नाये । पानि पकरि रघुवीर चढ़ाये ॥
सचिव विप्र मुनि सन्त सुहाये । प्रेम पथिक रघुपति रस छाये ॥

पुनः गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी व गुरु–पत्नी श्री अरुन्धती जी के चरणों में सिर झुका प्रणाम कर, निवेदन करते हुये उनका हाथ पकड़ श्री राम जी महाराज ने उन्हे पुष्पक विमान में विराज दिया। मन्त्रियों, ब्राह्मणों, मुनियों, सन्तों व भगवत्प्रेम मार्ग के रसमय अनुयायी जनों, आदि सभी को श्री रामजी महाराज ने–––

लिये चढ़ाय सुप्रेम समाना। कछु परिचारक सेव सुजाना ॥
कछुक सेन सह सेनप रामा। लिये बिठाय प्रमोद प्रधामा ॥

–––सुन्दर प्रेम परिप्लुत हो विमान में चढ़ा लिया। आवश्यकीय सेवा में कुशल कुछ सेवकों व सेनापतियों सहित कुछ सेना को भी आनन्द के धाम श्री राम जी महाराज ने पुष्पक विमान में बिठा लिया।

दो०–अशन शयन यज्ञादि की, शुभ सामग्री नाम ।
अन्न वसन भूषण अमित, रत्न विविध बहु दाम ॥८॥

भोजन, शयन एवं यज्ञादि की विविध शुभ सामग्री, अनाज, वस्त्र, असीमित आभूषण, विभिन्न प्रकार के रत्न और बहुत सा धन आदि–––

गोधन सहित विमान चढ़ाई । यावत वस्तु चाह की गाई ॥
सब प्रबन्ध करि अवधहिं केरा। चढ़े राम पुष्पक पुनि प्रेरा ॥

–––गायों के सहित जितनीं भी तीर्थ यात्रा के लिये आवश्यक सामग्री वर्णन की गई हैं उन सभी को श्री राम जी महाराज ने विमान में रखवा लिया। पुनः श्री अयोध्यापुरी के राज्य संचालन का सम्पूर्ण प्रबन्ध कर वे स्वयं पुष्पक विमान में विराज, विमान को चलने हेतु प्रेरित किये।

प्रभु रुख पाइ तुरन्त विमाना। चलो पूर्व तिरहुत नियराना ॥
मिथिला उतरि भूमि थिर भयऊ। पुर जन सब विधि स्वागत दयऊ ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के संकेत को प्राप्तकर पुष्पक विमान पूर्व दिशा की ओर चला और शीघ्र ही श्री तिरहुत प्रदेश के समीप आ गया। श्री मिथिलापुरी में भूमि पर उतर कर, विमान स्थिर हो गया उस समय श्री मिथिलापुर वासियों ने विधि पूर्वक सभी का स्वागत–सत्कार किया।

लक्ष्मीनिधि तहँ सहित समाजा। मिले राम कहँ पूरण काजा॥
सब कर सब विधि सब सतकारा। जनक सुवन किय मोद अपारा॥

वहाँ श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने समाज सहित, श्री राम जी महाराज से भेंट कर पूर्ण–काम हो गये, पुनः सभी आगन्तुक–जनों का जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अतिशय आनन्द में भर कर सभी प्रकार से सम्पूर्ण सत्कार किया।

रघुवर कह मिथिलेश दुलारे। चढ़ि विमान अब चलहु सुखारे॥
सुनि सुख मानि कुँअर मति माना। तीरथ यात्रा बाँध विधाना॥
प्रथम पाँव परि विनय सुनाये। जनक सुनैनहिं कुँअर चढ़ाये॥

तदनन्तर श्री राम जी महाराज ने कहा– हे मिथिलेश कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! अब सुख पूर्वक विमान में बैठ कर तीर्थ यात्रा हेतु चलिये। श्री राम जी महाराज के बचनों को श्रवण कर परम प्रज्ञ (बुद्धिमान) कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने सुख मग्न हो तीर्थ यात्रा का विधान बनाया (तैयारी की)। सर्वप्रथम वे अपने माता–पिता के श्री चरणों में सिर झुका प्रणाम किये एवं विनय पूर्वक श्री जनक जी महाराज व श्री सुनैना अम्बा जी को पुष्पक विमान में बिठा दिये।

दो०– विप्र साधु गुरु ज्ञान निधि, सचिव सहित पुर लोग।
नर नारी परिवार जन, चढ़े प्रीति पगि योग॥९॥

अनन्तर ब्राह्मण, संत, ज्ञान–निधान गुरुदेव श्री याज्ञबल्क्य जी, मन्त्री, पुरवासी स्त्री–पुरुष एवं परिवार के सदस्यों सहित, सभी लोग प्रेम मग्न होकर विमान में बैठ गये।

परिकर दासी दास कुमारा। सबहिं चढ़ायो प्रेम पसारा॥
यथा राम धन विविध विधाना। चाहत वस्तु चढ़ाये याना॥

कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने सभी परिकरों, दासियों एवं दासों को प्रेम पूर्वक विमान में चढ़ाया। जिस प्रकार श्री राम जी महाराज ने विभिन्न प्रकार से धन एवं उपयोग की सभी वस्तुएँ विमान में रखवायी थीं।

तथा कुमारहु वस्तु प्रकारा। दीन्ह चढ़ाय विमान सुखारा॥
पुरी प्रबन्ध राम रुख पाई। सचिवन सौंपि चढ़े हरषाई॥

उसी प्रकार कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने विविध प्रकार की वस्तुएँ विमान में सुख पूर्वक चढ़वा दीं। पुनः श्री राम जी महाराज की रुचि जानकर मत्रियों को श्री मिथिला पुरी का प्रबन्ध सौंप, हर्षित हो वे भी विमान में चढ़ गये।

सिद्धि सखिन सह सियहिं सकासी। चढ़ि विमान शोभी सुख रासी॥
पुष्पक कहँ प्रभु आयसु दीने। चलेउ तुरत सो सुख रस भीने॥

सुखों की राशि श्री सिद्धि कुँअरि जी अपनी सखियों सहित श्री सीता जी के समीप विमान में विराजकर सुशोभित होने लगीं। अनन्तर प्रभु श्री राम जी महाराज ने पुष्पक विमान को आज्ञा दी और वह विमान सुख के साथ रस में डूबा हुआ शीघ्र चल पड़ा।

चलत विमान महा रव छायो। जय जय शोर अतिहिं मन भायो॥
वादत वाद्य अनेक विधाना। पुर नारी किय मंगल गाना॥

विमान के चलते समय तीव्र शोर परिव्याप्त हो गया तथा जय–जय कार की अत्यन्त मन–भावनी ध्वनि गूँजने लगी। अनेक वाद्य यन्त्र विविध प्रकार से बजने लगे तथा पुर की नारियाँ मांगलिक गीत गाने लगीं।

दो०– मागध बन्दी विरद भनि, द्विज गण वेद उचार।
मंगल स्तव पढ़हिं सब, यात्रा हित सुख सार॥१०॥

उस समय मागध (सूत) व बन्दी जन प्रभु श्री राम जी महाराज की विरदावली का बखान कर रहे थे, विप्र–गण वेदोच्चारण कर रहे थे तथा प्रभु की तीर्थ यात्रा परम सुखदायी हो, इस हेतु सभी लोग मंगलानुशासन कर रहे हैं।

जासु चरण जल सुरसरि पूता। सो प्रभु तीरथ करन बहूता॥
चले लोक शिक्षण हित रामा। यद्यपि सब विधि पूरण कामा॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– जिनके चरण कमलों का प्रच्छालित जल ही समस्त लोंको को पावन करने वाली परम पवित्र श्री गंगा जी हैं वही प्रभु श्री राम जी महाराज अनेकानेक तीर्थाटन हेतु जा रहे हैं, उनके ऐसे स्वभाव की बलिहारी है। यद्यपि श्री राम जी महाराज सभी प्रकार से पूर्ण काम हैं तथापि संसार को अपने आचरण से शिक्षा देने के लिए ही वे तीथयात्रा पर जा रहे हैं।

भरत लखन शत्रुघ्नहुँ साथा। तीरथ जात रसे रघुनाथा॥
संग कुँअर शुचि श्याल सनेही। प्रेम मूर्ति जनु तिन कर देही॥

श्री भरत जी, श्री लक्ष्मण जी व श्री शत्रुघ्न जी भी रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज के साथ प्रेम पूर्वक तीर्थ–यात्रा के लिए चल रहे हैं। उनके साथ उनके परम प्रिय व पवित्र श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी हैं जो ऐसे प्रतीत होते हैं मानो साक्षात् प्रेम–विग्रह ही हों।

सिद्धि कुँअरि प्रभु प्रिय वैदेही। जनक सुनैना सुखद सनेही॥
मिथिला अवध समाज सभूपा। सबै अनिर्वच प्रेम स्वरूपा॥

प्रभु श्री राम जी महाराज की प्रिय श्याल वधू श्री सिद्धि कुँअरि जी, प्राण–वल्लभा विदेह राज नन्दिनी श्री सीता जी, परम सुखदायी व स्नेह–पात्र (प्रेमी) श्री जनक जी महाराज व श्री सुनैना जी तथा श्री मिथिलापुरी व श्री अयोध्यापुरी का सम्पूर्ण समाज जो सभी अनिर्वचनीय व प्रेम स्वरूप हैं, अपने राज– राजेन्द्र श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज व श्री राम जी महाराज के साथ तीर्थयात्रा को जा रहे हैं।

हनुमदादि सब कपिकुल नाथा। जात चले निज प्रभु के साथा॥
सरस संन्त ये सिगरे लोगा। जासु चरण छुइ गंग अरोगा॥
सो सब तीरथ करन सुहाये। जाते पावन पावन धाये॥

श्री हनुमान जी आदि वानर कुल के सभी नायक गण भी अपने स्वामी श्री राम जी महाराज के साथ तीर्थयात्रा को चले जा रहे हैं। ये सभी महानुभाव रस सिद्ध सन्त हैं जिनके चरणों का स्पर्श कर श्री गंगा जी भी विकार रहित हो जाती हैं। ये सभी पवित्रता को भी पवित्र करने वाले श्रेष्ठ जन सुन्दर तीर्थाटन करने हेतु जा रहे हैं।

दो०– ज्ञानिहुँ देखे जात हैं, करत कर्म निष्कर्म ।
लोक वेद संग्रह हितहिं, बिनु संकल्प सुधर्म ॥११॥

हमारे सद्‌गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– संसार में ज्ञानी जन भी, वेदों की मर्यादा रक्षा के लिए, बिना संकल्प किये धर्माचरण पूर्वक निष्काम कर्म करते देखे जाते हैं।

चलत राम सुर सब हिय हरषें । जय जय कहत सुमन बहु वर्षे ॥
हनहिं निसान मगन मन भूले । मंगल शब्द कहत अनुकूले ॥

श्री राम जी महाराज के प्रस्थान करते ही सभी देवता हृदय में हर्षित हो, जय नाद कहते हुए पुष्प वृष्टि करने लगे, वे सभी मन मुग्ध हो सभी कुछ भूल कर नगाड़े बजाने लगे तथा प्रसन्नता पूर्वक मंगलानुशासन करने लगे।

प्रथम कुँअर रघुवर सँग माहीं । किये प्रदक्षिण मिथिला काहीं ॥
कहत देव मिथिला सम धामा । मिथिलै अहै एक अभिरामा ॥

सर्व प्रथम कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री राम जी महाराज के साथ विमान से ही श्री मिथिला पुरी की प्रदक्षिणा की। उस समय देवताओं ने कहा कि मनोभिराम श्री मिथिला धाम के समान एकमात्र श्री मिथिला धाम ही है।

सुनि सुर बचन सबन सुख सानी । तिरहुत तीरथ किये महानी ॥
रहे जो तीरथ चारहु ओरा । उतरि यान किय राम किशोरा ॥

देवताओं के बचन सुनकर सभी लोग सुख से परिपूर्ण हो गये तथा महा महिमावान श्री तिरहुत प्रदेश के सभी तीर्थो का सेवन किये। पुनः श्री मिथिला पुरी के चारों दिशाओं में जो तीर्थ थे श्री राम जी महाराज ने विमान से उतर कर उनका सेवन किया।

पुष्पक चढ़ि पुनि दोउ पुर वासी । आये अवध सदा सुख रासी ॥
तीरथ सकल तहाँ जे गाये । किये कुँअर सह राम सुहाये ॥

तदुपरान्त दोनो पुरियों (अयोध्या – मिथिला) के निवासी पुष्पक विमान में चढ़ कर शाश्वत सुख की राशि श्री अयोध्या पुरी आये। श्री अयोध्या पुरी में जिन–जिन तीर्थो का वर्णन किया गया है उन सभी का कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ सुन्दर श्री राम जी महाराज ने सेवन किया।

दो०– करि परदक्षिण अवध कहँ, चले कुँअर सह राम ।
देखत वन गिरि सरित सर, महा नगर पुर ग्राम ॥१२॥

इस प्रकार श्री अयोध्या पुरी की प्रदक्षिणा कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सहित श्री राम जी महाराज वन, पर्वत, नदी, तालाब, महानगर और ग्राम आदि का दर्शन करते हुए आगे चल दिये।

जात जहँ जहँ सुभग विमाना । तहँ तहँ देवहुँ चढ़ि चढ़ि याना ॥
यात्रा करत अधिक सरसाने । अकथ अलौकिक अवसर जाने ॥

श्री राम जी महाराज का सुन्दर पुष्पक विमान जहाँ–जहाँ जाता है वहाँ–वहाँ अपने विमानो में चढ़कर देवता भी अत्यधिक आनन्द के साथ अवर्णनीय व अलौकिक समय समझ कर यात्रा कर रहे हैं।

दरश परश मज्जन रस राते । करत सकल सुर प्रभु सँग माते ॥
जेहिं जेहिं तीरथ रघुपति जाहीं । तेहिं तेहिं वासी सुख न समाहीं ॥

वे सभी देवता रस मग्न हुए प्रभु श्री राम जी महाराज के साथ ही दर्शन, स्पर्श व स्नान आदि क्रियाएँ करते हैं। श्री राम जी महाराज जिन–जिन तीर्थो में जाते हैं वहाँ के निवासियों के हृदय में सुख न समा कर उछलने लगता है।

राम सिया दिवि दरशन पाई । होहिं सुखी सब दृग फल गाई ॥
जबहिं विमान गगन मड़रावे । लखि लखि नर नारी सुख पावै ॥

श्री सीता राम जी के दिव्य दर्शन पाकर वे सभी यह कहकर सुखी होते हैं कि– आज हमें नेत्रों का चरम फल प्राप्त हो गया। जब पुष्पक विमान आकाश में विचरण करता है तब उसे देख–देख कर सभी स्त्री–पुरुष अतिशय सुख प्राप्त करते हैं।

कहहिं परस्पर कथा अनूपा । मिथिला अवध केर दोउ भूपा ॥
चढ़ि विमान भूमण्डल देखन । सहित समाज जात जन लेखन ॥

वे सभी स्त्री–पुरुष आपस में यही अनुपमेय कथा कहते हैं कि– ये दोनो, (श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज) श्री अयोध्या पुरी व श्री मिथिलापुरी के महाराज हैं जो ससमाज 'श्री पुष्पक विमान' में सवार होकर सम्पूर्ण भू मण्डल के तीर्थो के दर्शन करने के लिए जा रहे हैं।

दो०– मानत आपुहिं धन्य करि, वसत राम के राज ।
आनन्द मगन न जात कहिं, पुलकित तन मन भ्राज ॥१३॥

वे सभी अपने आपको धन्य मान रहे हैं कि– हम श्री राम जी महाराज के राज्य में निवास करते हैं। यह विचार कर उनके शरीर व मन पुलकित हो जाते हैं तथा वे ऐसे आनन्द में मग्न हो जाते हैं, जिसका बखान नहीं किया जा सकता।

क्रम क्रम तीरथ अति अनुरागे । करहिं कुँअर सह प्रभु रस पागे ॥
नैमिसार मथुरा मधु नगरी । वृन्दावनहिं गये प्रति डगरी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सहित प्रभु श्री राम जी महाराज क्रमशः अतिशय प्रेम व रस में डूबे हुए तीर्थाटन कर रहे हैं। वे श्री नैमिषारण्य, मधु दैत्य की पुरी श्री मथुरा जी एवं श्री वृन्दावन धाम की प्रत्येक गली में गये।

कुरुक्षेत्र हरिद्वार वरेसा । हृषीकेश पुनि गे अवधेशा ॥
बदरी आश्रम स्वर्गारोहन । मादन गन्ध गये मन मोहन ॥

पुनः अयोध्या नरेश श्री राम जी महाराज श्री कुरुक्षेत्र, श्रेष्ठ श्री हरिद्वार व श्री ऋषीकेश धाम गये। सभी के मन को मोहित करने वाले श्री राम जी महाराज श्री बद्रिकाश्रम, स्वर्गारोहन व श्री गन्ध मादन पर्वत भी गये।

उत्तर मानस मानस ताला। मुक्ति नरायण गे रघुलाला ॥
शालिग्राम तीर्थ बड़ कीने। गंगा सागर गये प्रवीने ॥

रघुनन्दन राम जी महाराज श्री उत्तर मानस, श्री मान सरोवर तथा श्री मुक्ति नाथ धाम की यात्रा किये। उन्होने महान श्री शालिग्राम तीर्थ (गण्डकी नदी) का सेवन किया और परम प्रवीण श्री राम जी महाराज श्री गंगा सागर भी गये।

पुनः गये पुरुषोत्तम खेता। रंग पुरी रामेश्वर चेता ॥
धनुष कोटि करि कन्य कुमारी। कांची तीरथ किये सँभारी ॥

पुनः परम विवेकवान श्री राम जी महाराज श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र, श्री रंग नाथ धाम (श्री रंग–पुरी) व श्री रामेश्वर धाम की यात्रा किये। वे श्री धनुष कोटि तीर्थ का सेवन कर श्री कन्या कुमारी एवं श्री कांची पुरी तीर्थ का सेवन भली प्रकार किये।

शेषाचल वेंकट गिरिराई। किष्किन्धा पम्पापुर भाई ॥
पंचवटी द्वारिका प्रभासा। पुष्कर तीरथ परम प्रकाशा ॥

श्री शेषाचल, गिरि–राज श्री बेंकट जी, श्री किष्किन्धा पुरी, श्री पम्पा पुर, श्री पंचवटी, श्री द्वारिका पुरी, श्री प्रभास क्षेत्र एवं परम प्रकाश वान श्री पुष्कर आदि तीर्थो की यात्रा किये।

दो०–गये राम शुभ यान चढ़ि, मन महँ परम उछाह।
सहित कुँअर महिमा सुनत, जहँ तहँ प्रेम प्रवाह ॥१४॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सहित श्री राम जी महाराज शुभ–पुष्पक विमान में चढ़ कर महा आनन्द पूर्वक तीर्थ माहात्म्य श्रवण करते हुए प्रेम प्रवाह में प्रवाहित हो जहाँ–तहाँ तीर्थाटन हेतु गये।

पुरी अवन्तिक अरु चितकूटा। गे प्रयाग काशी सुख बूटा ॥
उलटि पलटि सब तीर्थन माहीं। गये दोउ मन परम उछाहीं ॥

सुख के धाम श्री राम जी महाराज श्री अवन्तिका पुरी (उज्जैन), श्री चित्रकूट, श्री प्रयाग राज जी एवं श्री काशी जी भी गये। वे दोनों कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज मन में परम उत्साहित हो अन्वेषण करते हुये सभी तीर्थो की यात्रा किये।

बिन्ध्य पृष्ठ जो तीरथ भाये। कीन्हे सकल शान्ति सुख छाये ॥
पुष्पक उतरि उतरि सब तीरथ। सविधि किये जस गंग भगीरथ ॥

श्री विंध्य क्षेत्र में जो भी तीर्थ हैं उनमे भी श्री राम जी महाराज शान्ति और सुख में समाये हुए भ्रमण किये। पुष्पक विमान से उतर–उतर कर उन्होने विधि–पूर्वक सभी तीर्थो का उसी प्रकार सेवन किया जैसे महाराज श्री भगीरथ जी ने श्री गंगा जी का सेवन किया था।

हिमालयादि शुचि पर्वत साता । तिनकी कुञ्ज अमित सुख दाता ॥
देखे रघुवर कुँअर सुखारी । सर निर्झर भल भूति पहारी ॥

श्री हिमालय आदि जो पवित्र सात पर्वत (महेन्द्राचल, व्यंकटाचल, गंधमादन, मन्दराचल, सुमेरु, हिमालय व नीलगिरि) हैं, उनके अंचल में निर्मित अतिशय सुखदायी रमणीक स्थल, सरोवर, झरनें व प्राकृतिक पर्वतीय वैभव का श्री राम जी महाराज और कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने दर्शन किया।

गंगा यमुना सरसुति साई । चम्बल बेतवा सिन्धु सुहाई ॥
सरयू सतलज व्यासा रावी । ब्रह्मपुत्र चर्मनवति फावी ॥
सोन महानन्द नर्मद सोही । तापति गोदा गोमति मोही ॥

श्री गंगा जी, श्री यमुना जी, श्री सरस्वती जी, श्री साई (सई) जी, श्री चम्बल नदी, श्री बेतवा नदी, श्री सिन्धु नदी, श्री सरयू जी, श्री सतलज नदी, श्री व्यास नदी, श्री रावी नदी, श्री ब्रह्मपुत्र नदी, श्री चर्वण्यवती, श्री सोनभद्र जी, श्री महानदी, श्री नर्मदा जी, श्री ताप्ती नदी, श्री गोदावरी जी, एवं श्री गोमती जी आदि सुन्दर व मन को मोहित करने वाली नदियों, एवं---

दो०–कृष्णा कावेरी सुभग, मन्दाकिनि पय श्राव ।
कमला विमला सरित वर, मज्जे रघुपति भाव ॥१५॥

---श्री कृष्णा जी, श्री काबेरी जी, श्री मन्दाकिनी जी, श्री दुग्धमती जी, श्री कमला जी तथा श्री विमला जी आदि सुन्दर श्रेष्ठ नदियों में श्री राम जी महाराज ने भाव पूर्वक अवगाहन किया।

द्वादस लिंग शम्भु जो अहहीं । गये राम दर्शन हित तहहीं ॥
चौंसठ पीठ शम्भु के जेते । महा शक्ति शुचि तीर्थ समेते ॥

श्री शंकर भगवान के जो बारह ज्योतिर्लिंग (सोमनाथ, मल्लिकार्जुन, महाकालेश्वर, ओंकारेश्वर, केदारनाथ, भीमशंकर, विश्वनाथ, त्रयम्बकेश्वर, वैद्यनाथ, नागेश्वरनाथ, रामेश्वर व घृश्नेश्वर) स्थापित हैं श्री राम जी महाराज वहाँ भी दर्शन के लिए गये। पवित्र महा शक्तियों के सहित श्री शंकर भगवान के जो चौसठ पीठ हैं उन तीर्थो सहित---

सूरज ब्रह्मा गणपति थाना । जाय जाय दीन्हे प्रभु माना ॥
विष्णु धाम जे जगत मझारा । दिव्य दिव्य मन्दिर सुख सारा ॥

---भगवान श्री सूर्य देव, श्री ब्रह्मा जी तथा श्री गणेश जी के पवित्र स्थलों में जा–जाकर प्रभु श्री राम जी महाराज ने उन्हे सम्मान प्रदान किया। पुनः संसार में जितने भी भगवान श्री विष्णु जी के धाम व दिव्य–दिव्य सुखों के सार मन्दिर हैं।---

भले भाव भरि सहित कुमारा । गये राम तहँ मोद अपारा ॥
जहँ जहँ गये तहाँ बहु दाना । पाये ब्राह्मण पूज्य विधाना ॥

---वहाँ सुन्दर भाव में भरकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सहित श्री राम जी महाराज असीमित आनन्द पूर्वक गये। वे दोनो कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज जिस–जिस

तीर्थ में भी गये वहाँ–वहाँ पूज्य ब्राह्मणों ने उनके द्वारा अनेक प्रकार से दान व सम्मान प्राप्त किया।

मन्दिर देव सेव सुठि कीनी । अमित द्रव्य दै राम प्रवीनी ॥
जहँ तहँ मन्दिर बहु बनवाये । भोग भूमि पुनि अतिहिं लगाये ॥

परम प्रवीण श्री राम जी महराज ने असीमित द्रव्य देकर मन्दिरों में प्रतिष्ठित देवताओं की सुन्दर सेवा की, उन्होने जहाँ–तहाँ बहुत से मन्दिर भी बनवाये तथा उन मन्दिरों में राजभोग आदि की व्यवस्था के लिए अत्यधिक भूमि प्रदान की।

दो०– जनक सुवन दशरथ सुवन, अति उदार मन माहिं ।
अमित द्रव्य सुर साधु हित, वितरत नाहिं अघाहिं ॥१६॥

जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज और दशरथ नन्दन श्री राम जी महाराज दोनो ही अत्यन्त उदार हृदय से देवताओं व साधुओं के लिए, असीमित द्रव्य वितरण करते हुये भी तृप्ति का अनुभव नहीं कर रहे थे।

जीर्णोद्धार अमित सुर थाना । कीन्हे रघुपति कुँअर सुजाना ॥
जाचक गणन अजाचक कीन्हे । आनँदमय धरणी करि दीन्हे ॥

रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज और परम सुजान कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने असीमित देव–स्थानों का जीर्णोद्धार करवाया। उन्होने भिक्षुकों को पूर्ण–काम कर भूमण्डल को आनन्द स्वरूप बना दिया।

वापी कूप तड़ाग महाना । खनवाये बहु राम सुजाना ॥
वन उपवन वाटिक लगवाई । अमित रुचिर प्रकृती रस छायी ॥

परम सर्वज्ञ श्री राम जी महाराज ने बहुत से छोटे जलाशय, कुयें तथा विशाल सरोवरों का निर्माण कराया। उन्होने असीमित वन, वाग व बगीचे लगवाये जिससे प्रकृति अत्यधिक रमणीक और रस–परिप्लुता दिखाई दे रही थी।

जहँ तहँ बिना वृत्ति नर हेतू । अरु अभ्यागत कहँ चित चेतू ॥
खोले भोजन दान ठिकाना । अरु प्याऊ मारग बहुधाना ॥

उन्होने स्थान–स्थान पर बेरोजगार मनुष्यों तथा अतिथि अभ्यागतों के लिये सजगता पूर्वक भोजन व दान के भण्डार और यात्रियों के लिये मार्ग में बहुत से प्याऊ खुलवाये।

प्रजहिं देन सुख राम विचारी । गुरु कुल थापे ऋषिन हँकारी ॥
जय जय कार होत चहुँ ओरी । राम राज सुख पाय अथोरी ॥

प्रजाजनों को सुख देने का विचार कर श्री राम जी महाराज ने ऋषियों मुनियों को बुलाकर गुरुकुलों की स्थापना की। श्री राम जी महाराज के राज्य में सभी असीमित आनन्द प्राप्त कर चतुर्दिक जय जयकार कर रहे थे।

दो०– यहि प्रकार चारहु उदधि, चहुँ दिशि लखे सुजान ।
करत प्रजा रंजन मुदित, मनहर मम भगवान ॥१७॥

हमारे सद्‌गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– इस प्रकार मेरे मनहरण सुजान सर्वेश्वर श्री राम जी महाराज प्रसन्नता पूर्वक प्रजारंजन करते हुए तीर्थयात्रा में चारों दिशाओं के चारो समुद्रों के दर्शन किये।

तैसेहिं सातों द्वीप महाना । विहरे विविध प्रजा हित साना ॥
तीरथ सबन्ह गये रघुराई । जो जो शास्त्रहिं गये गिनाई ॥

उसी प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सहित श्री राम जी महाराज विशाल सप्त द्वीपों (जम्बु–द्वीप, प्लक्ष–द्वीप, शाल्मली–द्वीप, क्रौंच–द्वीप, शाक–द्वीप, कुश–द्वीप व पुष्कर–द्वीप) में प्रजा के हित में सने हुए विभिन्न प्रकार से विहार किये। श्री राम जी महाराज उन सभी तीर्थों में भ्रमण किये जिनका शास्त्रों में वर्णन किया गया है।

ऋषि मुनि संत सुआश्रम जेते । गये राम तहँ कुँअर समेते ॥
सब प्रकार तिन सेवा कीन्हे । दान मान विनती रस भीने ॥

ऋषियों, मुनियों एवं सन्तों के जितने भी आश्रम हैं श्री राम जी महाराज, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ वहाँ गये और प्रेम परिपूर्ण हो सभी की दान व सम्मान पूर्वक सेवा किये।

कथा पुराण सुनहिं चित लाई । शुचि सतसंग करैं सुख दाई ॥
ऋषि मुनि राम दरश दृग पाये । होहिं सुखी गिन जन्म सुहाये ॥

वहाँ (ऋषियों के आश्रम में) कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सहित श्री राम जी महाराज कथा व पुराण आदि चित लगाकर सुनते हैं तथा सुख प्रदायक पवित्र सत्संग करते हैं। वे ऋषि और मुनि भी अपने नेत्रों से श्री राम जी महाराज के दर्शन प्राप्त कर सुखी होते और अपने जन्म को सफल समझते हैं।

प्रेमिन दरश परश पगि प्रेमा । ऋषि गण करत भूलि सब नेमा ॥
ऋषि मुनि मिलन कुँअर सरसाहीं । भरे भाव हिय अधिक उछाहीं ॥

उस समय सभी ऋषि–मुनि अपने नियमों को भूल, प्रभु प्रेम में पगकर युगल प्रेमी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज का दर्शन और स्पर्श करते हैं। ऋषियों–मुनियों के मिलने से दोनो राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज भाव प्रपूरित हृदय से महान उत्साहित व आनन्दित हो रहे हैं।

दो०– यहि प्रकार आनन्द अमित, भू मण्डल सिय राम ।
वितरि सबहिं सुख सिन्धु प्रभु, लौटे पुनि प्रिय धाम ॥१८॥

इस प्रकार सुख के सागर प्रभु श्री सीताराम जी तीर्थ–यात्रा करते हुये भू मण्डल में असीमित आनन्द का वितरण कर पुनः अपने प्रिय धाम श्री अयोध्या पुरी लौट पड़े।

आवत जानि राम सिय काहीं । नगर नारि नर सुख न समाहीं ॥

स्वागत सुभग सकल सुख सारी । किये राम कर मोद अपारी ॥

श्री सीताराम जी को तीर्थ यात्रा से वापस आते हुए जानकर श्री अयोध्यापुरी के स्त्री–पुरुषों के हृदय से आनन्द उच्छलित होने लगा। सुखों की सार स्वरूपा सुन्दर वस्तुओं से, उन सभी ने असीम आनन्द पूर्वक श्री सीताराम जी का स्वागत किया।

दरश परश दै सब कहँ रामा । सह समाज गे सविधि स्वधामा ॥
छाय रह्यो आनन्द अपारा । जो सुर पुर दुर्लभ अविकारा ॥

उस समय सभी को अपना सुन्दर दर्शन और स्पर्श प्रदान कर श्री राम जी महाराज ससमाज विधि पूर्वक अपने निवास को प्रस्थान किये। वहाँ ऐसा असीमित व निर्विकार आनन्द छाया हुआ था जो देवताओ के पुर (स्वर्ग) में भी अप्राप्त है।

देखि अवध वासिन कर भागा। देव सिहात भोग रस पागा ॥
कुँअर कछुक दिन अवध मँझारी । सहित समाज रहे सुखकारी ॥

भोग–विलास में सदैव डूबे रहने वाले देवता भी, श्री अयोध्या पुर–वासियों के भाग्य वैभव को देखकर, उनसे स्पृहा कर रहे (सिहा रहे) थे। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने समाज सहित परम सुखावह श्री अयोध्या पुरी में कुछ दिन तक निवास किये।

बहुरि राम सिय लीन्ह लिवाई । भरतादिक सह नारि सुहाई ॥
दुहुँ समाज सह सुभग विमाना । चढ़ि पुनि मिथिलहिं कीन्ह पयाना ॥

पुनः श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज, श्री सीताराम जी और श्री भरत जी आदि भ्राताओं को उनकी सुन्दर पत्नियों सहित लिवा कर श्री मिथिला और श्री अवध दोनों समाज सहित सुन्दर पुष्पक विमान में सवार हो, श्री मिथिलापुरी को प्रस्थान किये।

दो०–नगर नारि नर नेह युत, निरखे गगन विमान ।
निकसि निकसि पुर सों सबहिं, लीन्हे प्रिय अगुआन ॥१९॥

श्री मिथिलापुरी के निवासी स्त्री–पुरुषों ने आकाश में पुष्पक–विमान को देख कर श्री मिथिला पुरी के बाहर आ, तीर्थयात्रा से आये हुये ससमाज श्री सीताराम जी व श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज की अगुआनी की।

उतरि यान महि माहीं आयो । राम दरश लहि सब सुख पायो ॥
मिले परस्पर सब नर नारी । प्रीति रीति को कवि कहि पारी ॥

पुष्पक विमान उतर कर भूमि में आया तब सभी ने श्री राम जी महाराज का दर्शन प्राप्त कर सुख प्राप्त किया। हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–उस समय सभी स्त्री–पुरुष आपस में प्रेम परिपूरित हो भेंट किये उनकी प्रीति और रीति का वर्णन कर कौन कवि पार पा सकता है अर्थात् उनकी प्रीति व रीति वर्णनातीत है।

पंच शब्द धुनि होत महानी । सुनि सुनि विरति विसारत ज्ञानी ॥
देव मुदित मन जय जय कारा । करत वरषि शुचि सुमन अपारा ॥

उस समय व्यापक पंच ध्वनि (जय ध्वनि, बन्दी ध्वनि, वेद ध्वनि, गीत ध्वनि व निशान –ध्वनि) हो रही थी जिसे सुन–सुन कर ज्ञानी जन भी अपने वैराग्य को भूले जा रहे थे। देवता प्रसन्नमना पवित्र पुष्पों की असीमित वर्षा कर जय–जय कार कर रहे थे।

दुन्दुभि हनत हरषि हिय माहीं । युगल समाज पेखि पुलकाहीं ॥
रघुवर कुँअर तीर्थ ते आये । घर घर बाजत मोद बधाये ॥

पुनः देवगण हृदय में हर्षित हो दुन्दुभी (नगाड़े) बजाते हैं और दोनो (मिथिला–अवध) समाज को देखकर पुलकित होते हैं। रघुनन्दन श्री राम जी महाराज तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी तीर्थाटन कर वापस आये हैं अतः श्री मिथिलापुरी के प्रत्येक घर में आनन्द बधाइयाँ बज रही हैं।

आवन उत्सव स्वागत भारी । भयो नगर महँ मंगल कारी ॥
कुँअर राम कहँ सहित समाजा । दियो वास जहँ सब सुख साजा ॥

श्री राम जी महाराज के आगमन के उपलक्ष्य में श्री मिथिला पुर में मंगलकारी महान स्वागत और उत्सव हुआ। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने ससमाज श्री राम जी महाराज को वहाँ निवास प्रदान किया जहाँ सभी प्रकार की सुख सुविधायें परिपूर्ण थीं।

दो०–महा भोज उत्सव भयो, महा दान बहु भाँति ।
राम सीय मंगल करन, मिथिला मधि सुख शान्ति ॥२०॥

श्री सीताराम जी की मंगल कामना के लिये श्री मिथिलापुरी में आनन्द और शान्ति पूर्वक महा–भोज, महा–दान व महा–महोत्सव, सम्पन्न हुआ।

नित नव उत्सव मिथिला माहीं । देत जनहिं आनन्द अथाहीं ॥
सीय राम जहँ आनँद रूपा । कुँअर प्रेम वश बसत अनूपा ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि– हे श्री हनुमान जी! श्री मिथिलापुरी में नित्य प्रति नवीन उत्सव होते रहते थे, जो सभी को असीम आनन्द प्रदान करने वाले थे। आनन्द के स्वरूप श्री सीता राम जी ही जहाँ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के अनुपमेय प्रेम के वशी होकर निवास करते हैं।–––

तहँ किमि आनन्द जाय बखानी । हृदय विचारत सकुचत बानी ॥
लक्ष्मीनिधि विहरत लै रामा । मगन सदा सुख सिन्धु स्वधामा ॥

–––वहाँ के आनन्द का वर्णन कैसे किया जा सकता है, उस आनन्द का हृदय में विचार करते ही, श्री सरस्वती जी भी वर्णन करने में संकोच का अनुभव करती हैं। श्री राम जी महाराज को साथ लेकर कुँअरश्री लक्ष्मीनिधि जी अपने धाम श्री मिथिला पुरी में विविध प्रकार से विहार कर रहे हैं तथा सदैव सुख के सागर में मग्न रहते हैं।

जेहिं बीथिन विहरहिं दोउ भूपा । थकित होहिं सब लखि लखि रूपा ॥
श्यामल गौर सुभग वर जोरी । निरखहिं नगर नारि तृण तोरी ॥

युगल नरेश (श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज) जिन गलियों में विहार करते हैं वहाँ के सभी स्त्री–पुरुष उनके रूप लावण्य को देख–देख कर थकित से हो जाते हैं तथा उनकी

सुन्दर श्याम और गौर वर्ण की श्रेष्ठ जोड़ी को श्री मिथिला पुर की नारियाँ अमंगल की आशंका से तृण–तोड़ कर निहारती हैं।

अमित मदन मद मर्दन वारे । दूनहु मनहर रूप सम्हारे ॥
छहरत छटा चुअत भुइँ माहीं । जासु अंश जग शोभा आही ॥

वे दोनो ही (श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज) असीमित कामदेव के अभिमान को चूर करने वाले मनोहारी सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं। जिनके सौन्दर्य के अंश मात्र से सम्पूर्ण संसार की शोभा निर्मित है उनके शरीर के सौन्दर्य की वह रस–राशि बिखर रही है जिसकी बूँदें भूमि में गिर रही हैं।

छं०– छवि धाम शोभित अंग अँग, दोउ भूप रसमय राजहीं ।
टुक अंश कन ते उपज मनसिज, सकल भुवनहिं लाजहीं ॥
जेहिं केर शोभा कहत हिय, सकुचत अहिप शारद महा ।
तेहिं कहहुँ केहिं विधि बुद्धि बिनु, हर्षण मलिन कलि जल बहा ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– सुन्दरता के धाम व रस–स्वरूप युगल नरेश (श्री राम जी महाराज और श्री लक्ष्मीनिधि जी) अपने परम सुशोभन अंग कान्ति से युक्त विराज रहे हैं। जिनकी शोभा के कणांश से उत्पन्न हो कर सौन्दर्य अधिदेवता कामदेव सम्पूर्ण संसार को विलज्जित किये रहता है तथा जिनकी छवि का बखान करने में श्री शेष जी और श्री सरस्वती का हृदय भी संकोच से भर जाता है, उनकी शोभा का वर्णन, बुद्धि–विहीन, मलिन व कलियुग रूपी जल में बहता हुआ जीव मैं, किस प्रकार कर सकता हूँ।

सो०–शोभा सुखद अपार, राजवेश युग लाल कर ।
सकल जनन सुख सार, देखत ही मन बुधि हरत ॥२१॥

युगल नरपति नन्दन (श्री राम जी महाराज और श्री लक्ष्मीनिधि जी) के राजकीय वेश की शोभा सुख प्रदायक एवं असीम हैं जो सभी के लिए सुखों की सार–स्वरूपा एवं दृष्टि मात्र से मन व बुद्धि का हरण कर लेने वाली है।

नित मिथिला बसि राम कृपाला । रहत मुदित मन साथ सुश्याला ॥
चौबिस वन जे मिथिला केरे । विपुल कुञ्ज तहँ सुखद घनेरे ॥

परम कृपालु श्री राम जी महाराज श्री मिथिलापुरी में अपने सुन्दर श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ नित्य निवास करते हुये प्रसन्नमना रहते हैं। श्री मिथिला पुरी के जो कंचन वन आदि चौबीस वन हैं उनमें कई सुख–दायक घने कुन्ज हैं।–––

विहर कुँअर सह राम गोसाँई । परम प्रकाश रहै तहँ छाई ॥
राजन योग सरस सुख शीला । राज बैठ करहीं दोउ लीला ॥

–––उन रमणीय कुंजों में अत्यधिक प्रकाश परिव्याप्त (समाया) रहता है व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सहित श्री राम जी महाराज वहाँ विहार करते हैं। उन रसमय, सुख स्वरूप एवं विहार

करने योग्य कुन्जों में विहार करते हुये, दोनों राजकुमार श्री राम जी महाराज व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज विविध प्रकार की लीलायें करते हैं।

फाल्गुन माह वसन्तहिं केरा। उत्सव करन कुँअर हिय हेरा॥
कंचन विपिन सुसरितहिं तीरा। भयो प्रबन्ध महा गम्भीरा॥

इसी कम में, फाल्गुन मास में कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने हृदय में वसन्तोत्सव करने का विचार किया और "कंचन–वन" में सुन्दर श्री कमला नदी के तट पर विशाल गरिमामय प्रबन्ध किया गया।

लक्ष्मीनिधि श्री जनक कुमारे। भ्रात सखा सह तहाँ सिधारे॥
भ्रातन आयसु दीन्ह बहोरी। करहु तयारी होवन होरी॥

अपने भ्राताओं व सखाओं सहित जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी वहाँ पहुँचे तथा अपने भ्रातृगणों को आज्ञा प्रदान किये कि– होली उत्सव की तैयारी की जाय।

दो०–होवन लगेव प्रवन्ध बहु, होली उत्सव केर।
सुखद सुभग मनहर महा, रसमय आनन्द हेर॥२२॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की आज्ञानुसार वहाँ होली उत्सव हेतु सुखदायी, सुन्दर, मनोज्ञ, विशद, रस–परिपूर्ण एवं आनन्ददायी, विविध–प्रबन्ध होने लगा।

भ्रात सखा दल लै रघुनन्दन। पहुँचे तहाँ भक्त उर चन्दन॥
रंगोत्सव हित रंग विहारी। लखि सब माने मोद अपारी॥

अपने भ्राताओं एवं सखाओं का दल ले कर भक्तों के हृदय को चन्दन के समान शीतल व सुखी करने वाले रघुकुल नन्दन श्री राम जी महाराज वहाँ पहुँच गये। रंग–केलि के लिए आये हुए रंग विहारी श्री राम जी महाराज को देखकर सभी ने असीम आनन्द प्राप्त किया।

सीय सखिन सह तहाँ विराजी। सिद्धि सदल पुनि रँग रस भ्राजी॥
जनक नगर नर नारी आये। लखन रंग रस रसहिं रसाये॥

वहाँ सखियों के साथ जनक दुलारी श्री सीता जी भी विराज गयीं। पुनः श्री सिद्धि कुँअरि जी अपने दल (सखियों) सहित रंग–रस में समाई हुई वहाँ आ गयीं। श्री जनक पुरी के स्त्री–पुरुष भी रंग–रस (होली–आनन्द) में डूबे हुए रंगोत्सव का आनन्द देखने के लिए रंगस्थली आ गये।

औरहु जनपद देश सुप्रानी। अधिकारी प्रभु भक्त महानी॥
सुर नर नारि मगन बहु भाँती। समिलित भये रंग रस माती॥

देश और जनपद के अन्य अधिकारी प्राणी, प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रेमी भक्त तथा देवता, मनुष्य व उनकी नारियाँ भी, श्री राम जी महाराज के प्रेम–रंग में डूबे हुये विविध प्रकार से रंग–केलि के आनन्द रस में मतवाले हो, रंगोत्सव में सम्मिलित हुये।

रंग साज सब अतिशय सोही। कहि न जाय देखत मन मोही॥
समय जान कह कुँअर सुजाना। मचै रङ्ग रस विपुल विधाना॥

रंगोत्सव की सम्पूर्ण सामग्री अत्यधिक सुशोभित हो रही है जो अवर्णनीय व देखने मात्र से ही मन को मोहित करने वाली है। उपयुक्त समय समझकर, परम सुजान कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने आज्ञा दी कि– वृहद रंग–केलि का विधि पूर्वक शुभारम्भ किया जाय।–––

दो०– जाको जेहिं सो उचित है, लोक वेद विधि रीति।
सुन्दर समय सुहावनो, क्रीड़न लगें अभीति॥२३॥

–––लोक और वेद विधि के अनुसार जिसकी रंग–केलि जिसके साथ उचित है, वे इस सुन्दर सुहावने समय में नियम पूर्वक निर्भय होकर रंग कीड़ा करें।

भ्रात सखा लै श्री निधि सोहे। अवध सखन सँग राम विमोहे॥
होरी खेल परस्पर खेलत। रंग युद्ध इक एक पछेलत॥

तदनन्तर एक ओर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने भ्राताओं व सखाओं को साथ लिये हुए सुशोभित होने लगे तथा दूसरे दल में श्री राम जी महाराज अपने अयोध्या वासी सखाओं के साथ मन को मोहित करते हुये शोभा सम्प्राप्त करने लगे तथा दोनो दल परस्पर में होली क्रीड़ा करते हुये, रंग युद्ध में एक दूसरे को पीछे करने लगे।

मारा मार मची मुद कारी। श्याल भाम रस रसे अपारी॥
तैसहिं सिया सखिन निज मेली। सिद्धि कुँअर सब सखिन सकेली॥

इस प्रकार वहाँ आनन्ददायी रंगो व अबीर की मारामार (रंगकेलि) प्रारम्भ हो गयी जिससे श्याल–भाम कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज असीम आनन्द में डूब गये। उसी प्रकार अपनी सखियों के साथ मिलकर श्री सीता जी एवं श्री सिद्धि कुँअर जी भी सभी सखियों को एकत्र कर–––

होरी समर करहिं सुख साली। प्रीति रीति रस रसी रसाली॥
इहै भाँति बहु दल तहँ सोहैं। खेलत फाग सबन मन मोहैं॥

–––रंग रस में डूबी हुई रस–स्वरूपा वे दोनों (ननद–भाभी) प्रीति पूर्वक सुखकारी रंग युद्ध करने लगीं। इसी प्रकार वहाँ बहुत से दल सुशोभित हो रहे थे जो परस्पर होली कीड़ा करते हुये सभी के मन को मोहित कर रहे थे।

बजत बीन डफ ढोल नगारे। पणव शंख घड़ियाल अपारे॥
मुरज मृदंग झाँझ झनकारी। भेरी ढक्का झालरि झारी॥

रंगोत्सव में बीन, डफली, ढोल, नगाड़े, पणव (लकड़ी से बजाने वाला ढोल), शंख व घड़ी–घण्ट आदि असीमित वाद्य बज रहे थे, पखावज, मृदंग, झाँझ, भेरी, ढक्का (बड़ा–ढोल) एवं झालर आदि विपुल वाद्य झंकृत हो रहे थे–––

वेणु सितार सरस वर वीणा । सांरगी तरङ्ग स्वर झीना ॥
इकतारा सुखमय सहनइया । नूपुर नौवत नवल सुहइया ॥

–––बाँसुरी, सितार, वीणा व सांरगी, इकतारा, शहनाई व नूपुर (घुँघरू), आदि वाद्य सरस, सुन्दर व मन्द स्वर से बज रहे थे एवं सुख–स्वरूप–सुन्दर व सुहावनी नौबते (मंगलकारी वाद्य) भी बज रही थी।

दो०–मंजीरा करतार तहँ, वाद्य अनेक प्रकार ।
बाजत मधुरे स्वर सुभग, मोद बढ़ावन हार ॥२४॥

मजीरा और करताल आदि अनेक प्रकार के सुन्दर व आनन्द–विवर्धक बाद्य उस रंग केलि में मधुर स्वर से बज रहे थे।

फाग गान बहु भाँति सुहावा । भूमि अकाश सरस करि छावा ॥
वरषत रङ्ग भरे पिचकारी । इक एकन सिगरे नर नारी ॥

उस समय विविध प्रकार के सुन्दर "होली गीत" भूमि और आकाश को रसमय करते हुये गुंजरित हो रहे थे तथा सभी स्त्री–पुरुष पिचकारियों में रंग भर–भरकर एक दूसरे पर रंगों की वर्षा कर रहे थे।

उड़त अबीर कुंकुमा केशर । जासु प्रभाव निविड़ तम भू पर ॥
लाल रंग आकाश सुहाना । वरणि न जाय प्रमोद प्रमाना ॥

अबीर, कुंकुम और केशर ऐसे उड़ रही थी कि– जिसके प्रभाव से भूमि में घना अंधकार छाया दिखाई दे रहा था व आकाश लाल रंग का सुशोभित हो रहा था। वहाँ के आनन्द का यथार्थ वर्णन नही किया जा सकता।

चन्दन चोवा अरगज इत्रा । वरषि वरषि सब लोग घनित्रा ॥
डारहिं इक एकन तन माहीं । कहुँ गुलाल मुख मसलि मुहाहीं ॥

चन्दन, चोवा (कई सुगन्धित वस्तुओं का रस), अरगजा (सुगन्धित वस्तुओं का लेप) और इत्र आदि सुगन्धित द्रव्य, सभी लोग बहुतायत में वरषाते हुये, एक–दूसरे के शरीर में छिड़क रहे थे तथा कभी वे मुख में सुन्दर गुलाल मसल कर मुग्ध हो रहे थे।

लक्ष्मीनिधि रघुवर रँग लीला । विविध विधान बही सुख शीला ॥
सो रहस्य सुख सानत सोई । सीता रमण द्रवैं जेहिं जोई ॥
पुनि मन मोहन मनहिं मझारा । सब कहँ आनन्द देहुँ विचारा ॥

इस प्रकार कुअँर श्री लक्ष्मीनिधि जी और श्री राम जी महाराज की सुख–दायी रंग–केलि विभिन्न प्रकार से चल रही थी। श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि – हे श्री हनुमान जी! रंग केलि के उस रहस्य और सुख में तो वही प्रवेश पा सकता है जिसे देखकर सीता–रमण श्री राम जी महाराज द्रवित हो जाते हैं। पुनः मन को मोहित करने वाले श्री राम जी महाराज ने अपने मन में विचार किया कि– अब सम्पूर्ण समाज को आनन्द प्रदान करना चाहिये।

दो०—मर्म न कोउ जान कछु, मायापति प्रभु केर ।
जानहिं सो रघुपति कृपा, लेवहु सत हिय हेर ॥२५॥

हमारे सद्‌गुरु देव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– माया के स्वामी प्रभु श्री राम जी महाराज के इस रहस्य को कोई किंचित भी नहीं समझ सका। हे सज्जनों! यह सत्य बात आप सभी हृदय में समझ लीजिये कि– उसे तो वही जान सकता है जिस पर श्री राम जी महाराज की अतिशय कृपा होती है।

रंग रसिक रसिकेश्वर रामा । गये जहाँ सिय सुखद स्वधामा ॥
सखिन सहित सुख सनी सुहाती । खेलि रहीं सो मन मुद माती ॥

तदनन्तर रंग–केलि रस के रसिक, रसिकाधिराज श्री राम जी महाराज वहाँ गये जहाँ परम सुशोभन वपुषा, सुखदायिनी श्री सिया जू सखियों के सहित सुख में सनी हुई सुन्दर प्रसन्नमना रंग क्रीड़ा कर रही थीं।–––

तहँ विक्रीड़न लगे विभोरी । श्याम सुन्दर कहि हो हो होरी ॥
युग रस रूप श्याम अरु श्यामा । खेल रहे रस रंग अकामा ॥

–––वहाँ भाव–विभोर होकर श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज होली है होली है कह कर होली खेलने लगे। इस प्रकार रस स्वरूप युगल सरकार, श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज और श्यामा सुन्दरी श्री विदेह राज नन्दिनी सिया जू निष्काम भाव से रंगकेलि करने लगे।

सो सुख शोभा को कह गाई । ब्रह्म शक्ति जहँ खेल मचाई ॥
अनुपम अकथ अगाध अपारा । सरसत सुख प्रभु इच्छा धारा ॥

हमारे सद्‌गुरु देव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– हे सज्जनों! वहाँ के सुख और शोभा का वर्णन कौन कर सकता है जहाँ पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी महाराज और परमाद्या शक्ति श्री सीता जी ही रंग–क्रीड़ा कर रहे हों। वहाँ तो प्रभु श्री राम जी महाराज की इच्छा से अनुपमेय, अकथनीय, अपरिमित एवं असीम आनन्द रस प्रवहमान हो रहा था।

दूसर रूप धरे पुनि रामा । सिद्धि कुँअरि सँग सरस स्वधामा ॥
खेलि रहे रँग रसिक रँगीले । मन वाणी बुधि पार रसीले ॥

पुनः श्री राम जी महाराज ने दूसरा रूप धारण किया और श्री सिद्धि कुँअरि जी के साथ उनके दल में पहुँचकर, वे रसस्वरूप, रंगकेलि–रस–रसिक रघुनन्दन, आनन्द प्रपूरित हो मन, वाणी व बुद्धि के परे रंग क्रीड़ा करने लगे।–––

छं०– मन बुद्धि वाणी पार प्रिय, रस रंग खेलत सिद्धि सह ।
अरु उतहुँ राते रंग रस, सँग श्याल क्रीड़त मोद महँ ॥
सुर नारि संगहुँ अति लसत, माते महा रस रंग के ।
पुनि देव देखत निज ढ़िगहिं, प्रभु खेल हर्षण अंग के ॥

———वहाँ एक ओर श्री राम जी महाराज अपनी श्याल वधू श्री सिद्धि कुँअरि जी के साथ मन, बुद्धि व वाणी के परे प्रिय "रंग क्रीड़ा" कर रहे थे तो दूसरी ओर "रंग–रस" मे पगे हुए वे अपने प्रिय श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ आनन्द पूर्वक रंग–केलि मचाये हुये थे। पुनः एक तरफ श्री राम जी महाराज विशाल रंग–रस में डूबे हुए देव नारियों के साथ भी अत्यधिक रंग केलि करते हुये सुशोभित हो रहे थे तथा दूसरी तरफ देवता भी प्रभु श्री राम जी महाराज को हर्षित अंगो से रंग कीड़ा करते हुये अपने समीप ही देख रहे थे अर्थात् श्री राम जी महाराज देवताओं के साथ भी रंग कीड़ा कर रहे थे।

सो०–प्रति दल राम उदार, खेलत फाग विनोद भरि।
वितरत मोद अपार, हाव भाव शुचि स्वाँग करि॥२६॥

इस प्रकार परम उदार प्रभु श्री राम जी महाराज विनोद में भरकर प्रत्येक दल में रंग कीड़ा कर रहे थे तथा सुन्दर मनोमुग्धकारी पवित्र हास–परिहास पूर्ण कीडा़ करते हुये असीम आनन्द का वितरण कर रहे थे।

दल दल माच्यो मोद अपारा। वरषत रंग गुलाल सुखारा॥
फाग गीत गावत नर नारी। सरस मुनिन मन मोहन हारी॥

वहाँ प्रत्येक दल में असीमित आनन्द छाया हुआ था तथा सभी लोग सुख पूर्वक रंग और गुलाल की वरषा कर रहे थे। स्त्री–पुरुष रंग–रस से भरे हुये मुनियों के मन को भी मोहित करने वाले होली गीत गा रहे थे।

बाजत वाद्य अनेक समाजा। उमगत उर रँग खेलन काजा॥
बने वसन्त विहारि किशोरा। जन मन हरण रंग रस बोरा॥

प्रत्येक दल में अनेक प्रकार के वाद्य बज रहे थे जिन्हे श्रवण कर, हृदय होली खेलने हेतु अधिक उत्साहित हो जाता था। जन–मन हरण रघुकुल किशोर श्री राम जी महाराज वहाँ रंग–रस में डूब कर बसन्त विहारी बने हुए थे।

रंग विहारी रँग रस रासे। रँग नाथ रँग रूप प्रकाशे॥
सप्त रंगमय वस्त्र सुहाये। भीजे तन तिरलोक लुभाये॥

रंग–रस विहारी, रंग नाथ श्री राम जी महाराज, होली के रंग में डूबे हुए रंग–स्वरूप प्रतीत हो रहे थे। सात रंगों वाले उनके वस्त्र अत्यधिक शोभायमान थे जो भीग जाने पर अपने शरीर सौष्ठव के साथ तीनों लोकों को लुब्ध कर रहे थे।

टोपी अनुपम शिरहिं सुहाई। केश सहित सोउ रँगी लखाई॥
कर पिचकारी वेणु सुहानी। कहुँ गुलाल सोहत शुभ पानी॥

उनके शिर में अनुपमेय टोपी सुशोभित थी जो केशों के सहित रंगी हुई दिखाई दे रही थी। श्री राम जी महाराज के कर कमल में पिचकारी और सुन्दर बेणु (बाँसुरी) सुशोभित हो रही थी तथा कभी उनके शुभ कर–कमल में गुलाल भी शोभा प्राप्त करने लगता था।

दो०— राग अलापत फाग धुनि, निकसत मुख रस धार ।
मधुर मुरलिका प्रभु अधर, शोभा देति अपार ॥२७॥

प्रभु श्री राम जी महाराज, फाग की धुन में राग आलाप रहे थे जिससे उनके मुख से रस—धारा सी प्रवाहित हो रही थी तथा उनके अधरों (होंठों) में रखी हुई सुन्दर मुरली असीम शोभा प्रदान कर रही थी।

बहुरि राम बहु रूप बनावा । सब सुख हेतु महा रस छावा ॥
प्रति नर अरु प्रति नारि सकासा । खेलत फाग उमगि सुखरासा ॥

पुनः श्री राम जी महाराज ने व्यापक रंग केलि रस में परिप्लुत होकर सभी को सुख प्रदान करने के लिये अनेक रूप धारण कर लिये तथा प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री के समीप उत्साहित हृदय से सुख की राशि वे प्रभु फाग क्रीड़ा करने लगे।

भूमि अकाश रहे प्रभु छाई । इक ढिंग इक बहु रूप बनाई ॥
मसलि गुलाल लाय हिय मिलहीं । सो सुख सुमिरत हिय खिल खिलहीं ॥

विविध रूप धारण कर प्रत्येक स्त्री—पुरुष के समीप एक प्रभु श्री राम जी महाराज होने से भूमि और आकाश सर्वत्र श्री राम जी महाराज ही दिखाई दे रहे थे। वे प्रभु सभी को गुलाल लगा—लगाकर, हृदय से हृदय मिलाकर भेंट कर रहे थे। श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि— हे श्री हनुमान जी! उस सुख का स्मरण करते ही मेरा हृदय प्रसन्नातिरेक (प्रसन्नता के आधिक्य) से भर जाता है।

हरि—होरी रस बरषन लागा । उमगेव आनन्द सिन्धु सुभागा ॥
बूड़े रँग रस सागर माहीं । त्रिभुवन जीव बचे कोउ नाहीं ॥

इस प्रकार श्री राम जी महाराज के साथ हुई रंग केलि में रस की वृष्टि होने लगी तथा आनन्द और सौभाग्य का महासागर उछलने लगा। सभी समुपस्थित समुदाय रंग और रस के सागर में डूब गया, त्रिलोक में कोई भी जीव उस आनन्द में समाहित होने से नही बच सका।

सबहिं अपनपौ भूलि सुखारे । योग अयोग सुभाव बिसारे ॥
बिन बिचार सब कोउ सब काहू । डारत रंग गुलाल उछाहू ॥

उस समय सभी सुख पूर्वक अपने अस्तित्व को भूल गये एवं स्वाभाविक रूप से योग्यता और अयोग्यता का विस्मरण कर किसी प्रकार का विचार किये बिना, उत्साहित हो आनन्द पूर्वक, परस्पर में रंग व गुलाल डालने लगे।

दो०— राम सिया सबके हृदय, मनहु बैठि तेहिं काल ।
खेलत फाग उमँग भरि, वरषि वरषि रँग लाल ॥२८॥

हमारे सद्गुरु देव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि—उस समय ऐसी प्रतीति हो रही थी, मानो श्री सीताराम जी ही, सभी के हृदय में विराजकर लाल रंग की वरषा करते हुए उमंग में भरकर होली कीड़ा कर रहे हैं।

विधि हरि हर सब चढ़े विमाना। रंगोत्सव देखहिं रँग साना॥
अमित विमान अकाशहिं छाये। सुर सुरतिय चढ़ि देखहिं चाये॥

रंग–रस से सराबोर, अपने विमानों में विराजे हुये श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शंकर जी आदि सभी देवता श्री राम जी महाराज के रंगोत्सव का दर्शन कर रहे हैं। आकाश में असीमित विमान छाये हुए हैं जिनमें बैठकर देवता व देवांगनायें आनन्द पूर्वक रंगोत्सव का दर्शन कर देख रहे हैं।

मूसल धार रङ्ग सोउ वरषहिं। सुर नर मुनि सबके चित करषहिं॥
अबिर गुलाल सुकेशर चन्दन। वरषहिं कुंकुम करि प्रभु वन्दन॥

वे भी रंगों की अनवरत (लगातार) वर्षा कर रहे हैं तथा देवता, मनुष्य एवं मुनि सभी के चित्त को आकर्षित कर रहे हैं। साथ ही प्रभु श्री राम जी महाराज की वन्दना कर अबीर, गुलाल, सुन्दर केशर, चन्दन तथा कुंकुम आदि की वरषा कर रहे हैं।

जल सम वरषत इत्र सुखारे। भयी सुगन्धित दिशा अपारे॥
सुरतरु सुमन वृष्टि बहु होई। माल मनोहर मनसिज पोई॥

वे सभी सुख–पूर्वक जल के समान इत्र वरषा रहे हैं जिसके परिणाम स्वरूप सभी दिशायें अत्यधिक सुगन्धित हो गयी हैं, देव–वृक्ष (कल्प–वृक्ष) के पुष्पों एवं कामदेव के द्वारा निर्मित मनोहारी पुष्प–मालाओं की अत्यधिक वर्षा हो रही है।

नृत्यत गावत रँग रस फागा। उमग्यो उरहिं अधिक अनुरागा॥
विविध भाँति बाजन बहु बाजे। सुनत सुराग सबन सुख साजे॥

उस समय फाग के रंग में डूबे, नाचते और गाते हुये सभी के हृदय में अत्यधिक अनुराग उमड़ रहा था। वहाँ विभिन्न प्रकार के कई वाद्य बज रहे थे जिनके सुन्दर राग को सुनते ही सभी लोग सुखी हो जाते थे।

छं०– जयकार होती छन छनहिं, सुर सिद्ध प्रमुदित मन भये।
सनकादि नारद व्यास शुक, सब आइ समिलित सुख लये॥
रस फाग राते लोक तिहुँ, कंचन विपिन आनन्द महा।
भलि भाग बोलत नारि नर, हर्षण चहत रंगहिं बहा॥

रंगोत्सव में प्रत्येक क्षण जय ध्वनि हो रही है जिसे श्रवण कर देवता व सिद्धगण मन में अतिशय प्रसन्न हो रहे हैं, श्री सनकादिक कुमार (सनक, सनन्दन, सनातन व सनत कुमार), श्री नारद जी, श्री व्यास जी एवं श्री शुकदेव जी आदि सिद्धगण पधारकर, रंगोत्सव में सम्मिलित हो अतिशय सुख प्राप्त किये हैं। इस प्रकार फाग–रस में डूबे हुए त्रिलोक निवासी कंचन वन में महान आनन्द प्राप्त कर रहे हैं। सभी स्त्री–पुरुष आपस में कह रहे हैं कि– हम सभी अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं जो प्रभु श्री राम जी महाराज ने हमे महान आनन्द प्रदान किया है। हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–यह दास भी श्री राम जी महाराज के रंग–केलि के रंग

में प्रवाहित हो जाना चाहता है।

सो०—आनन्द भयो महान, शारद शेष गणेश विधि।
हरि हर महा महान, वरणि सकैं नहिं कल्प लौं ॥२९॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि—हे श्री हनुमान जी! कंचन वन के रंगोत्सव में ऐसा महान आनन्द हुआ जिसका वर्णन श्री सरस्वती जी, श्री शेष जी, श्री गणेश जी, श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी एवं श्री शंकर जी आदि महान विभूतियाँ भी कल्पों तक कहते हुये भी नहीं कर सकते।

रंग सरित तहँ बही सुपूरी। मनहु सरस्वति सरित अझूरी ॥
पुष्प बहत फूले जनु फूला। विविध प्रकार सुआनन्द मूला ॥

वहाँ पूर्ण रूप से भरी हुई रंग की सुन्दर सरिता प्रवाहित हो चली थी मानों पूर्णतया जल से भरी हुई अरुण वर्ण वाली श्री सरस्वती जी (नदी) प्रवाहित हो रही हों। रंग—नदी में बहते हुए फूल ऐसे प्रतीत होते थे जैसे विभिन्न प्रकार के सुन्दर, आनन्द के मूल, पुष्प श्री सरस्वती जी में खिले हुए हों।

देखत लागति परम सुहाई। कहि न जाय अनुभव अति भाई ॥
अबिर गुलाल अंसख्यन भारा। लसत भूमि जनु लाल पहारा ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी श्री हनुमान जी से कह रहे हैं कि— हे तात! वह रंग—सरिता देखने में अत्यन्त ही सुहावनी लग रही थी, उसकी शोभा का वर्णन नही किया जा सकता, उसका तो अनुभव के द्वारा ही अनुमान किया जा सकता है। वहाँ असंख्य परिमाण के अबीर गुलाल आदि भूमि में ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे भूमि में लाल रंग के पर्वत शोभा प्राप्त कर रहे हों।

रङ्ग गुलाल कीच भइ भारी। शुष्क मही नहिं परत निहारी ॥
यहि विधि बहुत काल रस रंगा। बहेव अमित अभिराम अभंगा ॥

रंगोत्सव में रंग व गुलाल की महान कीच मची हुई थी, कहीं भी सूखी भूमि नहीं दीख रही थी। इस प्रकार बहुत समय तक असीमित, अनवरत एवं मनोहर रंगोत्सव का आनन्द प्रवाहित होता रहा।

समय समुझि इक रूप कृपाला। भये मुदित खेलत सँग श्याला ॥
सबहिं पूर्व वत रामहिं देखी। निज समीप नहिं कोऊ पेखी ॥

तदनन्तर समय जान कर, परम कृपालु श्री राम जी महाराज अपने अनेक रूपों को तिरोहित कर एक रूप हो गये तथा अपने प्रिय श्याल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ प्रसन्नतापूर्वक होली खेलने लगे। तब सभी ने श्री राम जी महाराज को पूर्व की भाँति कुमार के साथ क्रीड़ा करते देखा, उन्हे अपने समीप किसी से नही देखा।

दो०—जागे सम सब कहँ लखे, चकित दृष्टि रघुवीर।
जानि श्रमित नर नारि गन, बोले रंग रस धीर ॥३०॥

उस समय श्री राम जी महाराज ने सभी को नींद से जागे हुए के समान विस्मय भरी दृष्टि से निहारा तथा सभी स्त्री—पुरुषों को थका हुआ समझकर रंग केलि के आनन्द में पगे हुये परम कृपालु प्रभु बोले———

सुनहु तात अब निमिकुल राऊ। रंग खेल कहँ छोरि सुभाऊ॥
करि स्नान चलैं सुख भवना। श्रमित भये सब लोग सुफवना॥

———हे निमिकुल नरेश, तात श्री लक्ष्मीनिधि जी! अब रंग क्रीड़ा को स्वाभाविक रूप से विराम देकर स्नान करें व सुख पूर्वक भवन को चलें, क्योंकि सुहावनी रंग कीड़ा में रसे हुये सभी लोग थक गये हैं।

राम रजाय राखि निमि बाला। इतिहिं कियो रँग रास रसाला॥
बजे निसान शंख घड़ियाला। सोहे संग भाम अरु श्याला॥

तदनन्तर, श्री राम जी महाराज की आज्ञा को स्वीकार कर निमिनन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी ने रस से परिपूर्ण रंगोत्सव की समाप्ति नगाड़े, शंख और घड़ियाल की ध्वनि के साथ की और दोनो (भाम व श्याल श्री राम जी महाराज और श्री लक्ष्मीनिधि जी) एक साथ विराजकर सुशोभित हो गये।

जल विहार शुचि सरिता भयऊ। सविधि न्हाय पुनि सब गृह गयऊ॥
समय समय यहि भाँतिहिं तेरे। प्रति वन अन अन चरित घनेरे॥

पुनः परम पवित्र श्री कमला जी (नदी) में जल विहार हुआ तथा विधि–पूर्वक स्नान कर सभी लोग अपने अपने भवन चले गये। इसी प्रकार समय के अनुसार प्रत्येक वन में अन्यान्य अनेक चरित्र———

करहिं मुदित मन मनहर श्यामा। संग कुँअर परिकर अभिरामा॥
कछु दिन रहि प्रभु मिथिला माहीं। गये सिया सँग अवधहिं काहीं॥

———प्रसन्नमना जन–मन–हरण श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व सुन्दर परिकरों के साथ करते रहते हैं। इसी भाँति कुछ दिन श्री मिथिलापुरी में रुक कर प्रभु श्री राम जी महाराज श्री सिया जू सहित अयोध्या पुरी को प्रस्थित हो गये।

दो०–अवध माहिं सुन्दर सुखद, जो बन बारह सोह।
विहरत सिय रघुवीर तहँ, निज परिकर सुख जोह॥३१॥

श्री अयोध्या पुरी मे जो सुन्दर एवं सुख प्रदायक बारह वन (श्रृंगार, तमाल, रसाल, चम्पक, चन्दन, पारिजातक, अशोक, विचित्र, कदम्ब, अनंग, नागकेशर व विहार) सुशोभित हैं उनमें सुख पूर्वक अपने परिकरों के सहित श्री सीता राम जी विहार करते रहते हैं।

राम चरित सुन्दर सुख रूपा। सबहिं सुखद सब भाँति अनूपा॥
बैरिहुँ मुदित प्रशंसा करहीं। राम चरित सुनि आनँद भरहीं॥

श्री राम जी महाराज का चरित्र सुन्दर, सुख स्वरूप, सभी को सुख प्रदान करने वाला एवं सभी प्रकार से अनुपमेय है। भगवान के शत्रु भी श्री राम–चरित्र की प्रशंसा करते है तथा सुनकर आनन्द में भर जाते हैं।

ब्रह्म लोक नित नवल चरित्रा । नारद गावहिं परम पवित्रा ॥
सुनि सुनि विधि पागत प्रभु प्रेमा । बिसरि जात सिगरो जग नेमा ॥

श्री ब्रह्मा जी के धाम "ब्रह्म–लोक" में प्रभु श्री राम जी महाराज का परम पावन नित्य–नवीन चरित्र श्री नारद जी गायन करते रहते हैं जिसे सुनकर श्री ब्रह्मा जी प्रभु प्रेम में पग जाते हैं तथा उन्हे संसार के सभी विधान (नियम) विस्मृत हो जाते हैं।

कहहिं मोहि पुनि देहु सुनाई । लै वीणा फिरि नारद गाई ॥
तैसहिं हरि अरु हर के लोका । राम चरित सर लहरत झोंका ॥

वे (श्री ब्रह्मा जी) पुनः पुनः उनसे सुनाने हेतु आग्रह करते हैं तब देवर्षि श्री नारद जी अपनी वीणा धारणकर बारम्बार श्री राम–चरित्र का गायन करते हैं। उसी प्रकार श्री विष्णु जी और श्री शंकर जी के धाम "श्री विष्णु लोक" व "श्री शिव लोक" में भी श्री राम चरित्र रूपी सरोवर आनन्द पूर्वक लहराता रहता है अर्थात् श्री राम चरित्र का गायन निरन्तर होता रहता है।

कर्ण पुटन पीवत सब कोई । रसमय तरल तृप्ति नहिं होई ॥
जीवन मुक्तहुँ आत्मा रामा । लखि लखि लीला ललित ललामा ॥

श्री राम जी महाराज के रसमय श्री राम चरित रूपी रसायन (द्रव) को कर्ण–पुटों से सभी लोग पान करते हैं परन्तु उसका पान करते हुये भी उन्हे किंचित भी तृप्ति नहीं प्राप्त होती। जीवन–मुक्त तथा आत्मा में रमण करने वाले योगीजन भी अतीव सुन्दर प्रभु चरित्र का दर्शन कर–––

दो०– मगन होय सोचत हिये, धनि धनि सुधा चरित्र ।
गृह मेधी ह्वै करत प्रभु, मुनियन करन पवित्र ॥३२॥

–––उसमें लीन हो हृदय में विचार करते हैं कि– श्री राम चरितामृत धन्यातिधन्य है, गृह–जीवन में रहते हुए भी जो चरित्र प्रभु श्री राम जी महाराज करते हैं तथा जो मुनियों को भी परम पवित्र करने वाला है।–––

कवनेहु यतन न हमते होई । जस रहनी रघुनन्दन जोई ॥
जासु चरित लखि आत्म विशारद । शिक्षा लेत सनक शुक नारद ॥

–––जिस प्रकार का आचरण रघुनन्दन श्री राम जी महाराज का देखने में आता है, हमसे तो यह किसी भी प्रयत्न से नही हो सकता । जिनके चरित्र को देखकर आत्म विशारद श्री सनक जी आदि ऋषि कुमार, श्री शुकदेव जी और देवर्षि श्री नारद जी भी शिक्षा ग्रहण करते हैं।–––

विधि हरि हर लखि ठगि सो रहहीं । शेष शारदा वरणि न कहहीं ॥
सातहुँ द्वीपवती वर भूमी । सात उदधि जेहिं चहुँ दिशि घूमी ॥

–––श्री राम जी महाराज के चरित्र को देखकर श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शंकर जी भी ठगे से रह जाते हैं तथा जिसका वर्णन श्री शेष जी और श्री सरस्वती जी करते हुये भी पूर्ण रूप से नहीं कर पाते। ऐसे प्रभु श्री राम जी महाराज! सात द्वीपों (जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, शाल्मली,

गोमेद व पुष्कर) वाली यह सुन्दर भूमि जो चारो दिशाओं में सात समुद्रों (लवण, इक्षु, दधि, क्षीर, मधु, मदिरा व घृत) से घिरी हुई है।---

शासत एक राम जन रंजन । स्वर्ग सुखहिं वितरत दुख भंजन ॥
काम धेनु सम काम प्रदाई । भई भूमि परजहिं सुखदाई ॥

---इसका शासन करते हुए एकमात्र जन–रंजन प्रभु श्री राम जी महाराज सभी के दुखों का नाश कर स्वर्ग सुख वितरित करते हैं। जिस कारण यह भूमि काम–धेनु के समान समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली व प्रजाजनों को सुख प्रदान करने वाली बनी हुई है।---

पंच भूत बन परजन सेवी । सेवहिं सकल राम रुख लेवी ॥
सुरहुँ सिहात भूमि सुख देखी । निज सुख विभव नीच अति लेखी ॥

---पंच महाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु) आदि, प्रजाजनों के सेवक बनकर, श्री राम जी महाराज की रुचि देखते हुए, सभी की सेवा करते हैं। इस समय पृथ्वी के सुख को देख कर देवता भी स्पृहा करते हैं तथा अपने सुख और वैभव को अत्यन्त ही निम्न समझते हैं।

दो०–सीय राम जेहिं अवध के, शासक राज्ञी भूप ।
तेहिं कर आनन्द को कहै, निर्मल अकथ अनूप ॥३३॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि हे श्री हनुमान जी! जिस श्री अयोध्या पुरी के शासन–कर्ता पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी महाराज व परमाद्या शक्ति श्री सीता जी हैं वहाँ के आनन्द को क्या कहा जाये? वह तो निर्मल, अकथनीय एवं अनुपमेय ही है।

ऋषि मुनि सुरन्ह साधु सनमानी । अग्नि अतिथि पूजहिं धनु पानी ॥
निज स्वरूप महँ नित्य समाधी । सहज राम की रहत अबाधी ॥

धनुष–वाण धारण करने वाले श्री राम जी महाराज ऋषियों, मुनियों, देवताओं एवं साधु–जनों का अत्यधिक सम्मान करते है तथा अग्नि और अतिथि का पूजन करते हैं। श्री राम जी महाराज अपने स्वरूप में अवाधित रूप मे सहज ही नित्य स्थित रहते हैं।

सत चिद आनँद प्रभु भगवाना । तिनकी महिमा को कवि जाना ॥
जग शिक्षण हित राम कृपाला । नर इव करत चरित सुख साला ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज तो सच्चिदानन्दमय स्वामी व परमात्मा हैं, ऐसा कौन विद्वान है, जो उनकी महिमा जान सकता हो, अर्थात् प्रभु श्री राम जी महाराज की महान महिमा को कोई भी नही जान सकता। कृपालु श्री राम जी महाराज संसार को शिक्षा देने के लिए ही मनुष्य के समान सुख प्रदायक चरित्र कर रहे हैं।

राम चरित्र प्रेमी जग माहीं । ब्रह्महुँ सो बड़ सत्य कहाहीं ॥
सो प्रभु चरित महातम भारी । मैं किमि कहौं कुबुद्धि अनारी ॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं– मैं सत्य कह रहा हूँ कि– श्री राम जी महाराज के चरित्र के प्रेमीजन, जगत नियन्ता श्री ब्रह्मा जी से भी श्रेष्ठ होते हैं। अतः

उन प्रभु श्री राम जी महाराज के चरित्र के महान माहात्म्य को दुर्बुद्धि व अनाड़ी (आर्य गुणों से सर्वथा रहित) मैं समग्रतया किस प्रकार कह सकता हूँ।

सुनहु सुजन अब श्री निधि लीला । मधुर मधुर श्रवणन सुख शीला ॥
एक बार श्री जनक कुमारा । बन विहरत प्रभु प्रेम पसारा ॥

हे सज्जनो! अब श्री लक्ष्मीनिधि जी की मधुरातिमधुर, श्रवणों को सुख देने वाली लीला श्रवण कीजिये। एक बार जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रेम में डूबे हुए वन में विहार कर रहे थे।

दो०– मधुरे मधुरे नाम जप, कहुँ प्रभु चरितहिं गाय ।
भाव भरे लक्ष्मीनिधी, श्रवत नयन सरसाय ॥३४॥

श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज भाव प्रपूरित हो प्रभु श्री राम जी महाराज के परम पावन नाम का मधुर–मधुर जप कर रहे थे, कभी वे प्रभु की मधुर लीलाओं का गान करते हुए उसमें ऐसे मग्न हो जाते कि, उनके नेत्रों से अश्रु–धारा प्रवाहित होने लगती थी।

बैठ पषानहिं प्रेम विभोरी । कहत राम जय जयति किशोरी ॥
तेहिं अवसर बहु सिद्ध अकाशा । आये उतरि कुमार सकासा ॥

वे प्रभु–प्रेम में सराबोर एक पाषाण खण्ड में विराजे हुये श्री राम जी महाराज की जय हो, श्री किशोरी जू की जय हो उच्चारण कर रहे थे। उसी समय, बहुत से सिद्ध–गण आकाश से उतर कर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के समीप आ गये।

शुक सनकादि व्यास कपिलादी । नारद वीणाधर अहलादी ॥
देखि कुँअर गुनि आपन भागा। पायन परे भरे अनुरागा ॥

श्री शुकदेव जी, ऋषि कुमार श्री सनकादिक जी, श्री व्यास जी, श्री कपिल जी एवं वीणाधारी श्री नारद जी आदि को आह्लाद पूर्वक अपने समीप आये हुये देखकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपना सौभाग्य समझ, अनुराग पूर्वक उनके चरणों में गिरकर दण्डवत प्रणाम किये।

समय सुहावन आसन दीन्हे । कोमल कलित पीत पट झीने ॥
पकरि पकरि पग प्रेम प्रवीरा । धोये आँखिन घट भरि नीरा ॥

पुनः समयानुसार अपना कोमल, सुन्दर व झीने पीताम्बर का आसन प्रदान किये और प्रेम प्रवीण कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उनके चरणों को हाथों में लेकर नेत्र कलशों में जल भर, प्रच्छालित कर दिया अर्थात् प्रेमाश्रुओं से उनके चरणों को धो दिये ।

बन्य पुष्प लै प्रेम विभोरा । सिरनि चढ़ाये जनक किशोरा ॥
सम्पुट कर बोले मृदु वानी । जगी भाग मम आजु महानी ॥

पुनः जनक राजकिशोर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने प्रेम विभोर हो वन के फूलों को ले, उनके शीश में चढ़ा कर पूजा की तथा हाथ जोड़, कोमल वाणी से बोले– आज मेरा महान सौभाग्य उदित हुआ है।–––

दो०–दरश लहेव सिध सन्त कर, दुर्लभ अगम अमोघ ।
कियो कृतारथ प्रभु कृपा, भयो शोध सुख ओघ ॥३५॥

–––जो मैने आप सिद्ध–सन्तों के परम अलभ्य, अगम और अमोघ दर्शन प्राप्त किये हैं। हे नाथ! आप सभी की कृपा ने मुझे कृतार्थ कर दिया तथा मुझे परिष्कृत (मेरा शोधन कर) कर सुख का समूह बना दिया।

जस प्रभु कृपा मोहि पर कीन्हा । तस नहिं औरहिं दर्शन दीना ॥
सो मम साधन फल है नाहीं । केवल कृपा अहेतुक आही ॥

हे नाथ! आप सभी ने मुझे दर्शन देकर जैसी कृपा की है, वैसी कृपा कर किसी अन्य को आपने दर्शन नहीं दिया। परन्तु वह (दर्शन) मेरे साधन का फल नहीं है, उसमें तो आप लोगों की मेरे प्रति निरपेक्ष कृपा ही है।

नयन पूत भे दरशन पाई । शीश पवित्र चरण रज लाई ॥
कर्ण पुनीत सुने सत बचना । भये आज धन भाग सुरचना ॥

आप सभी के दर्शन प्राप्त कर मेरे नेत्र पवित्र हो गये, पावन चरणों की धूल मस्तक में धारण करने से मेरा शिर पवित्र हो गया, आप सभी के सत्य वचनों को सुनकर मेरे कान पवित्र हो गये तथा मेरा सौभाग्य सँवर गया।

सन्त चरण अर्पित वर फूला । लहि सुगन्ध नासा शुभ मूला ॥
तीर्थ पाद लहि परम पवित्रा । भयो मोर मुख सुनहु सुमित्रा ॥

आप सन्तजनों के चरणों में अर्पित हुये सुन्दर पुष्पों की सुगन्धि ग्रहण कर मेरी नासिका मंगल स्वरूपा हो गयी तथा हे सुहृदवर! सुनिये, आपका परम पवित्र चरणोदक ग्रहण कर मेरा मुख पवित्र हो गया।

कर पवित्र कीन्हे कैङ्कर्या । भई सन्त की कृपा मधुर्या ॥
हिय पवित्र पिघलो प्रिय पेखी । भरेउ हर्ष सन्तन सुख देखी ॥

आप सभी का किंचित कैंकर्य करने लेने से मेरे हाथ पवित्र हो गये तथा आप सन्तों की मधुर कृपा हो जाने से आप प्रिय संतजनों का दर्शन कर मेरा हृदय द्रवित व पवित्र होगया तथा आप सभी को सुखी देखकर मेरा हृदय हर्ष पूरित हो गया।

दो०–दरश हेतु आगे बढ़े, भे पवित्र मम पाद ।
सेवा हित इत उत चले, भरे हृदय अहलाद ॥३६॥

हे समस्त सिद्धगण! आह्लादित हृदय से आप के दर्शनार्थ आगे बढ़ने तथा सेवा के लिये प्रेम पूर्वक इधर–उधर चलने से मेरे पैर भी पवित्र हो गये हैं।

करत दण्डवत भयो सुपावन । यह तन मेरो लगत सुहावन ॥
बचन पूत हरिजन यश वरणे । भये आज मम कलिमल हरणे ॥

आप के श्री चरणों में दण्डवत करने व उसकी परम पावन रज लग जाने से मेरा यह शरीर पवित्र हो गया तथा मुझे सुशोभन प्रतीत होने लगा। आप सभी भगवद्–भक्तों के कलिमलहारी यश का वर्णन करने से आज मेरी वाणी पवित्र हो गयी है।

मन पवित्र करि सन्तन ध्याना। बुद्धि पूत तिन्ह गुन भगवाना ॥
आत्म निवेदन आत्मा मोरी। भयी पूत प्रभु किरपा तोरी ॥

आप सन्तजनों का ध्यान करने से मेरा मन पवित्र हो गया, आप भागवतों को भगवत्स्वरूप समझने से मेरी बुद्धि पवित्र हो गयी तथा आत्म निवेदन करने व आप लोगो की कृपा से मेरी आत्मा भी पवित्र हो गयी है।

देहेन्द्रिय मन बुद्धि सुआतम। जो नहिं सन्त हेतु जग जातम ॥
घृणित घृणित सो घृणित त्रिसत्या। कबहुँ न देखहिं तेहिं दृग मत्या ॥

हे नाथ! यदि शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि व सुन्दर आत्मा सन्तों की सेवा के लिये नहीं हैं तो वे संसार का विवर्धन करने वाली ही हैं। वे त्रिसत्य मन, वचन व कर्म से घृणा के योग्य हैं, नेत्रवान पुरुषों को ऐसे व्यक्ति का, कभी भी दर्शन नही करना चाहिये।

सम्भव कबहुँ यकायक आई। मग महँ नयनन परै दिखाई ॥
तौ ब्रत रहै भानु अवलोकी। दोष नशै जपि नाम विशोकी ॥

सम्भव है कि– अचानक रास्ते में यदि, वे आँखो से दिखाई पड़ ही जायें तो भगववान सूर्य को देख (दिन–भर) व्रत रखकर भगवान का नाम जपने से उसका दोष नष्ट होगा तथा वह शोक रहित हो जायेगा।

दो०–सन्त विमुख जन परश जो, कबहुँक मग महँ होय।
तो गंगा स्नान या, सन्त चरण पी धोय ॥३७॥

यदि कभी मार्ग में सन्त विमुखी जनों का स्पर्श हो जाय तो श्री गंगा जी में स्नान करे या सन्तो के चरणों को धोकर उनके चरणोदक का पान करना चाहिये–––

सरस सुकीर्तन सन्तन केरा। करै अवशि पगि प्रेम घनेरा ॥
पावै सन्त प्रसादहिं जबहीं। मिटै दोष बुध जन कह तबहीं ॥

–––पुनः प्रेमाधिक्य में पगकर सन्तजनों के नाम, रूप व गुण का सुन्दर रसमय कीर्तन अवश्य ही करना चाहिये तदनन्तर जब जीव सन्तों की शीथ प्रसादी प्राप्त करता है तभी उसके दोष नष्ट होते हैं ऐसा सुधीजनों का मत है।

धन्य धन्य है भाग हमारा। दियो दरश प्रभु इतै पधारा ॥
परम लाभ परमारथ रूपा। राम प्रेम मोहिं मिली अनूपा ॥

हे नाथ! हमारा भाग्य धन्यातिधन्य है जो आप सिद्ध सन्तों ने यहाँ पधार कर दर्शन दिया है। अब मुझे परमार्थ–स्वरूप परम लाभ श्री राम जी महाराज का अनुपमेय प्रेम अवश्य प्राप्त हो जायेगा।–––

सत्य परम पद पाइ अघाई । जइहौं आनन्द सिन्धु समाई ॥
अवशि अवशि मोरे हित आजू । दरशन दीन्ही सन्त समाजू ॥

–––मैं निश्चय ही परम पद प्राप्त कर संतुष्ट हो जाऊँगा तथा आनन्द के सागर में समाहित हो जाऊँगा। आप सन्त समाज ने अवश्य–अवश्य मेरा यह महान हित कार्य करने के लिये ही आज मुझे दर्शन प्रदान किया है।

अस कहि प्रेम विभोर कुमारा । नृत्यन लागेव भाव अपारा ॥
बेसुधि गिरेउ भूमि तल माहीं । नारद लिये गोद तेहिं काहीं ॥

ऐसा कहकर, प्रेम विह्वल हो कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी असीमित भाव में भरकर नृत्य करने लगे तथा स्मृति शून्य होकर भूमि में गिर पड़े तब देवर्षि श्री नारद जी ने उन्हें अपनी गोद में ले लिया।–––

दो०–करि उपचार जगाय तेहिं, दिय प्रकृतिस्थ कराइ ।
प्रमुदित बोले सिद्धगन, नेह नीर दृग छाइ ॥३८॥

–––पुनः उपचार के द्वारा, कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को जाग्रत व प्रकृतिस्थ कर दिया तब परम प्रसन्न हो, नेत्रों में प्रेमाश्रु भरकर सिद्धगन बोले–––

लक्ष्मीनिधि तुम प्रेम स्वरूपा । राम श्याल सिय भ्रात अनूपा ॥
युगल रूप के प्राण पियारा । प्रेम राज भो तिलक तुम्हारा ॥

–––हे श्री राम जी महाराज के परम प्रिय श्याल व श्री सीता जी के प्यारे भैया श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप सभी प्रकार की उपमा से रहित व प्रेम स्वरूप हैं, युगल स्वरूप श्री सीताराम जी के प्राणों के प्रिय हैं, आपका प्रभु श्री राम जी महाराज ने प्रेम के राज्य में राज्याभिषेक किया है।–––

श्यामा श्याम प्रीति तुम पाहीं । अकथ अगाध अनुप दरशाहीं ॥
श्री गुरु सन्त विप्र पद प्रेमी । प्रभुमय देखहु जग कर नेमी ॥

–––युगल किशोर श्यामा श्याम (श्री सीताराम जी) के प्रति आपकी प्रीति अकथनीय, गहरी व अनुपमेय दिखाई देती है। आप श्री गुरुदेव, सन्तों व ब्राह्मणों के चरणों के प्रेमी तथा संसार को भगवत्स्वरूप देखने वाले हैं।–––

जड़ चेतन जग जीव मझारा । सत्य प्रेम है तात तुम्हारा ॥
तन मन धन वर बचनन तेरे । सेवत जग करि नेह घनेरे ॥

–––हे तात! आपका सम्पूर्ण चराचर जगज्जीवों के प्रति यथार्थ प्रेम है, आप तन–मन–धन व सुन्दर वचनों से अतिशय प्रेम करते हुए संसार की सेवा करते रहते हैं।–––

त्रिकरण वैष्णव सिद्ध कुमारा । अहहु नित्य सब मुनिन विचारा ॥
अति उदार तव विशद चरित्रा । जन सुख प्रद पुनि परम पवित्रा ॥
जीवन मुक्त लजावनि हारी । अतिहिं रसीली कथा तुम्हारी ॥

–––सभी मुनियों की ऐसी सम्मति है कि– आप नित्य मन, वचन और कर्म से वैष्णव व सिद्ध पद प्राप्त हैं। आपका विस्तृत चरित्र जन सुख प्रदायक, परम पवित्र एवं अत्यन्त उदार है। आप की कथा तो जीवन–मुक्तों को भी लज्जित करने वाली व अत्यन्त रसमयी है।

दो०– परम प्रेम अविरल अनुप, राम सिया पद माहिं ।
बढ़त रहै छन–छन सदा, यह अशीष नित आहिं ॥३९॥

युगल सरकार श्री सीताराम जी के चरण कमलों में आपका अविरल, अनुपमेय, एवं अत्यधिक प्रेम प्रतिक्षण बृद्धि को प्राप्त होता रहे, हमारा यही नित्य शुभाशीष है।

भाम भगिनि तुम्हरो अति प्यारा । करत रहैं नित नव सुख सारा ॥
नयन विषय प्राणाधिक ताता । सीय राम के सदा सुभाता ॥

आपके बहन–बहनोई श्री सीताराम जी सुख पूर्वक आपका नित्य नवीन अत्यधिक प्यार करते रहें। हे तात श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप सदैव श्री सीताराम जी के नेत्रों के विषय, प्राणों से भी अधिक प्रिय–––

बने रहौ लहि कृपा अथोरी । तैसहिं तुमहिं किशोर किशोरी ॥
तुम तौ नित परमारथ रूपा । जीतहिं लियो परम पद भूपा ॥

–––उनकी महान कृपा को प्राप्त कर बने रहें, उसी प्रकार आपके लिये नित्य किशोर–किशोरी श्री सीताराम जी भी आपके नेत्रों के विषय व प्राणों से अधिक प्रिय सदैव बने रहें। हे निमिकुल नरेश! आप नित्य ही परमार्थ स्वरूप हैं तथा शरीर के रहते ही आप ने परम पद प्राप्त कर लिया है।

विधि हरि हरहुँ प्रीति अति तोरे। होहिं सुखी सत बच गुन मोरे ॥
प्रेम विभोर तुमहिं नर राई। बैठे देख सिद्ध समुदाई ॥

आप हमारे बचनों को सत्य मानें कि– त्रिदेवों (श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शंकर जी) के हृदय में भी आपके प्रति प्रगाढ़ (अत्यधिक) प्रीति है तथा वे भी आपको देखकर अत्यन्त सुखी होते हैं। हे नर–राज श्री लक्ष्मीनिधि जी! आपको यहाँ, प्रभु प्रेम में विभोर, बैठे हुये देखकर हम सिद्ध जनों–––

परशन हित प्रिय चाह अथोरी। उपजि परी हिय मध्य हिलोरी ॥
आये तबहिं समीप हुलासा । सुखी भये सब प्रेम प्रकाशा ॥

–––के हृदय में आप का प्रिय स्पर्श प्राप्त करने की अत्यधिक कामना हिलोरे लेने लगी थी तभी हम आप के समीप उल्लसित हृदय आये हैं और आपके प्रेम प्रकाश से प्रकाशित हो सुखी हो गये हैं।

दो०–सुनत बैन सिद्धन कुँअर, परेउ चरण धरि माथ ।
अस न कहहिं प्रभु मैं अधम, गृह मेधी जग साथ ॥४०॥

सिद्ध गणों के वचनों को श्रवण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी उनके चरणों में साष्टांग दण्डवत

कर बोले– हे नाथ! आप, ऐसा न कहें, मै तो अत्यन्त अधम, गृहासक्त एवं संसार में ही रहने वाला हूँ।

कान मूँदि नयनन जल ढारी । बोले बचन कुँअर सुख कारी ॥
दरश देय प्रभु किये सनाथा । पावन पावन तव गुण गाथा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने कानों को बन्दकर, आँखों से प्रेमाश्रु बहाते हुए, सुख प्रदायक बचन बोले– हे नाथ! आप सभी ने मुझे दर्शन देकर सनाथ कर दिया, क्योंकि आप की गुण–गाथाएँ तो पवित्रता को भी पवित्र बनाने वाली हैं।

सन्त दरश गृह मेधिन काहीं । देत शान्ति सुख ताप नशाहीं ॥
हम तव दास दास मुनिराया । बने रहैं बिनु अहं अमाया ॥

सन्त जनों का दर्शन तो गृहस्थ जीवों के लिए शान्ति प्रदान करने वाला एवं त्रिताप नष्ट करने वाला होता है। हे मुनिराज! हम अहंकार और छल विहीन होकर आप के सेवकों के सेवक बने रहें।–––

इहै आश हिय रही समायी । सन्त संग सब समयहिं पाई ॥
सुनि सत भाव विदेहहिं केरा । भरेव हृदय सब सिद्धन केरा ॥

–––हमारा हृदय इसी कामना से परिपूर्ण है कि– हम सभी समय, सन्तों का साथ प्राप्त करते रहें। विदेहराज नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी के इन सत्य भावों को सुनकर सभी सिद्धगणों का हृदय प्रेम से भर गया।

पुनि धरि धीर सिद्ध सब बोले । सुनहुँ भूप अब बचन अमोले ॥
प्रेम विलक्षण परम विचित्रा । कैसे मिलै कहाँ मम मित्रा ॥

पुनः धैर्य धारण कर सिद्ध–गणों ने कहा– हे मिथिला नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप हमारे अनमोल बचनों को सुनिये, हे सखे! परम विचित्र व विलक्षण भगवत्प्रेम कैसे और कहाँ से प्राप्त होता है।

दो०–प्रेम विशद सिय राम कर, जो दीखै तुम पाहिं ।
त्रिभुवन महँ हम नहि लखे, जानहु निज हिय माहिं ॥४१॥

श्री सीताराम जी का महान प्रेम जो आप में दिखाई देता है, वह हमें तीनों लोकों में कहीं भी नही दिखाई दिया, यह बात आप अपने हृदय में निश्चय जान लीजिये।

होय बतावन योग नृपाला । वरणि कहहु सो तुम यहि काला ॥
सकुचे कुँअर मुनिन्ह सुनि बानी । गहि पद कमल रहे लपटानी ॥

अतः हे राजन! यदि वह बताने योग्य हो तो आप इस समय, उसका वर्णन कर कहिये। मुनियों की वाणी को सुनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी संकुचित हो गये तथा उनके चरण कमलों को पकड़ कर उनसे लिपट गये।

हाथ जोरि सिर नाय बहोरी । बोले बचन सुधा रस बोरी ।।
मोरे हिय है प्रेम सुपूरा । मोहिं न बुझाय सुनहु मुनि भूरा ।।

पुनः वे अपना शिर झुका प्रणाम कर हाथ जोड़ अमृत रस में भीगी हुई वाणी से बोले– हे मुनिवृन्द! सुनिये, मेरे हृदय में श्री सीताराम जी के प्रति सुन्दर पूर्ण प्रेम है मुझे तो यह समझ नही पड़ता।

जो कछु दिखै तुमहिं ऋषि राई । सो सब जानहु हेतु अमाई ।।
राम समान अहौ सब कोई । सब के हिय की बात न गोई ।।

हे ऋषि श्रेष्ठ! आप सभी को, जो कुछ भी मुझ में दिखाई पड़ रहा हैं उसका हेतु आप सभी के निर्मल हृदय की कृपा ही है, ऐसा जानिये। क्योंकि आप सभी श्री राम जी महाराज के समान ही हैं और आपसे किसी के हृदय की बात गुप्त नही है।–––

तीन काल करतल सब ज्ञाना । सब सर्वज्ञ जगत सब जाना ॥
जानन योग न कछु जग माहीं । तदपि नाथ पूँछहु मोहिं पाहीं ॥

–––आप सभी को तीनों काल का सम्पूर्ण ज्ञान हस्तगत है, आप सभी सर्वज्ञ एवं संसार के स्वरूप को भली प्रकार समझने वाले हैं। यद्यपि आपके लिये संसार में कोई भी जानने योग्य ज्ञान शेष नही है, फिर भी हे नाथ! आप मुझ से इसके सम्बन्ध में पूछ रहे हैं।–––

दो०–सबैं प्रेम मूरति अहौ, सबै प्रेम आचार ।
सबै रसिक रघुनाथ के, सब रस रूप उदार ॥४२॥

–––आप सभी तो, प्रेम के साक्षात् विग्रह, प्रेमाचार्य, श्री रघुनाथ जी के प्रेम रस के रसिक, रस–स्वरूप एवं अत्यन्त उदार हृदय हैं।

पूछेव मोकहँ देन बड़ाई । सन्त स्वभाव इहै मुनिराई ॥
मैं सकुचहुँ हिय काह बताऊँ । जो नहिं जानहु तुम ऋषिराऊ ॥

हे मुनिराज! आप ने मुझे यश प्रदान करने के लिये, मुझ से यह प्रश्न किया है, यही सन्तजनों का स्वभाव है। परन्तु हे ऋषि राज! मैं अपने हृदय में संकुचित हो रहा हूँ कि– मैं ऐसा क्या बताऊँ? जो आप नहीं जानते अर्थात् आपसे कुछ भी अज्ञापित नही है।

गुरुतर गरुअ जानि गुरु बानी । सेवा भाव हिये अनुमानी ॥
जिमि शिशु शिष्य गुरू बतराया । पाठ सुनावे गुरुहिं सुभाया ॥

परन्तु आप परमाचार्यो के वचनों को महान व अत्यन्त गरिमामय समझ एवं हृदय में सेवा भाव का अनुमान कर, जिस प्रकार शिशु (अवोध)–शिष्य श्री गुरुदेव जी के बताये पाठ को स्वाभाविक ही श्री गुरुदेव को सुनाता है–––

सुनहिं गुरू सुख सने सुहाई । शिष्यहिं दिय जस पाठ पढ़ाई ॥
तैसहिं नाथ कहौं तुम पाहीं । प्रेम उदय जस हो हिय माहीं ॥

–––तथा सुख में सने हुए श्री गुरुदेव उस सुन्दर पाठ को सुनते हैं, जिसे उन्होने अपने शिष्य को पढ़ाया था। उसी प्रकार हे नाथ! हृदय में श्री सीताराम जी का प्रेम जिस प्रकार उत्पन्न होता है मैं आप से कह रहा हूँ–––

प्रेम न योग किये अठ अंगा। कैवल पद रम योगि अभंगा ॥
ज्ञान सप्त भूमी कर पारा। प्रेम न होवै हृदय मझारा ॥
ज्ञानी ब्रह्म बने अद्वैती। शून्याकाश समान अहैती ॥

–––हे ऋषि वर्य! प्रेम अष्टाङ्ग योग करने से नहीं होता क्योंकि योगी जन तो अविनाशी कैवल्य पद में ही रमण करते हैं। ज्ञान की सप्त भूमिकाओं को पार कर लेने पर भी हृदय में प्रभु प्रेम उत्पन्न नहीं होता क्योंकि ज्ञानी जन तो ब्रह्म से अपृथक ब्रह्म–स्वरूप होकर शून्य आकाश के समान निष्क्रिय हो जाते हैं।–––

दो०–प्रेम गन्ध तहँ होय नहिं, कवन करै कत प्रेम।
प्रेमी प्रेमास्पद बिना, नहीं प्रेम कर नेम ॥४३॥

–––अतएव वहाँ (ज्ञान योग में) प्रेम की सुगन्ध तक नहीं पहुँच पाती अर्थात् वहाँ प्रेम का प्राकट्य नहीं होता क्योंकि वहाँ कौन किसे प्रेम करे, फिर प्रेमी और प्रेमास्पद के बिना तो, प्रेम का विधान हो ही नही सकता।

निष्कर्मी बिनु अच्युत भावा। प्रेम न पावहिं मुक्तिहिं ध्यावा ॥
तो कत जानहिं प्रेम सकामी। चहहिं विषय सुख आठहुँ यामी ॥

निष्काम कर्म का अनुष्ठान करने वाले भगवद्भाव से रहित होने के कारण, प्रभु प्रेम नही प्राप्त कर पाते क्योंकि वे मुक्ति को ही इष्ट समझते हैं। फिर सकामी (संसारी) जीव किस प्रकार प्रेम को जान सकते है क्योंकि वे तो आठोयाम ही विषय सुख की कामना करते रहते हैं।

साधन भक्तिहुँ ते मुनिराया। राम प्रेम नहि उपज अमाया ॥
स्वारथ सने करहिं प्रभु भक्ती। स्वारथ पूर्ण बनै जग रक्ती ॥

हे मुनिराज! साधन भक्ति से भी निर्मल श्री राम प्रेम उत्पन्न नहीं हो सकता क्योंकि ऐसे साधक तो स्वार्थ में सन कर ही भगवान की भक्ति करते है तथा स्वार्थ की पूर्ति होने पर भी संसार में ही अनुरक्त बने रहते हैं।

प्रपति यदपि सिगरे गुण खानी। तदपि गिनौ नहिं रति रस दानी ॥
स्वकृतिहिं ते प्रभु स्वीकृति काहीं। रस कर सुखकर संत बताहीं ॥

यद्यपि शरणागति समस्त गुणों की खानि है तथापि मैं उसे भी प्रेम रस प्रदान करने वाली नहीं समझता। क्योंकि स्वयं स्वीकार करने की अपेक्षा भगवान के द्वारा स्वीकार किये जाने को संतजन अतिशय रस–प्रदायक व सुखकारी बताते हैं।

प्रपति बतावै जिव अधिकारा। चेतन लक्षण परम उदारा ॥
कहुँ कहुँ प्रपतिहुँ कर जिव मागा। प्राण मान धन पुत्र अभागा ॥

ताते प्रेम प्रदायक स्वामी । प्रपति मात्र नहि होइ सुधामी ॥

प्रपति (शरणागति) जीव के अधिकार और उसके परम उदार स्वरूप को प्रगट करने वाली है परन्तु कभी–कभी शरणागति ग्रहण करने के बाद भी अभागा जीव प्राण, सम्मान, सम्पदा तथा संन्तान की कामना करते हैं। इसलिए हे स्वामी! सुन्दर परम पद स्वरूप शरणागति मात्र ही प्रेम प्रदान करने वाली नही होती।–––

दो– तौ तप अरु स्वाध्याय शुचि, सम दम त्याग सुदान ।
भक्ति ज्ञान वैराज्ञ वर, सांख्य योग अभिमान ॥४४॥

–––तो फिर, तपस्या, पवित्र स्वाध्याय, शम, दम, त्याग, दान, भक्ति ज्ञान, वैराज्ञ, सांख्य योग आदि साधन अभिमान स्वरूप होने से–––

अनुपम अकथ अगाघ अपारा । प्रेम देहिं कस साधन सारा ॥
जस कछु मोहिं अनुभव ऋषिराई । श्रुति निदेश हिय परे जमाई ॥

–––अनुपमेय, अकथनीय, अगाघ और अपार भवत्प्रेम को ये सभी साधन कैसे प्रदान कर सकते हैं। हे ;षि राज! मुझे जिस प्रकार का अनुभव है तथा श्रुतियों के निर्देशानुसार मेरे हृदय में जैसा समझ आता है।–––

तस मैं कहौं सुनिश्चय अपना । साधन ते नहिं प्रेम सु स्वपना ॥
राम कृपा लवलेशहिं पाई । प्रेम प्रकाश रहै हिय छाई ॥

–––मैं अपना वही सुनिश्चय कह रहा हूँ कि– प्रेम का सुन्दर स्वप्न भी किसी साधन से नहीं हो सकता। परन्तु श्री राम जी महाराज की किंचित कृपा (अत्यल्प–कृपा) को प्राप्त कर ही हृदय में प्रेम का प्रकाश छा जाता है।

जा कहँ वरण करैं सुखरासी । स्वयं चहैं दिय प्रेम प्रकाशी ॥
प्रेम पात्र बनि सोइ गोसाँई । राम कृपा परकाशहिं पाई ॥

समस्त सुखों की राशि श्री राम जी महाराज जिसका वरण कर लेते हैं और स्वयं ही प्रेम का प्रकाश प्रदान करना चाहते हैं, हे स्वामिन्! वही प्रभु प्रेम का पात्र बनकर श्री राम जी महाराज की कृपा से प्रभु प्रेम के प्रकाश को प्राप्त करता है।

बिन प्रभु कृपा न प्रेम मुनीशा । करै दम्भ चह पटकै शीशा ॥
की प्रभु प्रेमी संत कृपाला । करैं अहैतुक कृपा रसाला ॥
प्रभु प्रिय प्रेम प्रभो हिय माहीं । उदय करहिं अन साधन नाहीं ॥

हे मुनीश्वर! बिना प्रभु कृपा के प्रेम नहीं प्राप्त होता चाहे कोई कितना ही पाखण्ड करे और अपना शिर पटकता रहे, अथवा हे नाथ! परम कृपालु प्रभु प्रेमी सन्तजन अपनी निर्हेतुकी रसमयी कृपा कर हृदय में भगवान का प्रिय प्रेम उत्पन्न कर दें, इसके अतिरिक्त प्रेम प्राप्ति का दूसरा साधन नहीं है अर्थात् भगवान व भगवान के प्रेमियों की कृपा ही प्रभु प्रेम प्राप्त कराने वाली है।

दो०–सन्त कृपा गुरु की कृपा, कृपा सुखद सिय राम ।
प्रेम प्रवर्धक शास्त्र की, कृपा अहेतु ललाम ॥४५॥

हे ;षि वर्य! श्री सन्तजनों की कृपा, श्री गुरुदेव भगवान की कृपा, श्री सीता जी की कृपा, श्री राम जी महाराज की कृपा एवं प्रभु प्रेम का विवर्धन करने वाले शास्त्रों की अकारण, सुखदायी तथा सुन्दर कृपा ही प्रभु प्रेम प्रदान करने वाली होती है।

पंच कृपा कहँ प्रेमी संता । राम कृपा मानहिं मतिवन्ता ॥
पंच कृपा रस की सरि धारी । जब मिलि होय एक सुखकारी ॥

इन पाँचो ¼श्री सन्त जी, श्री गुरुदेव जी, श्री सीता जी, श्री राम जी एवं शास्त्र) की कृपा को परम बुद्धिमान प्रेमी संत–जन श्री राम कृपा ही मानते हैं। इन पाँचो प्रकार की कृपा रूपी रस सरिता की धारायें जब मिल कर सुख प्रदायक एक धारा बन जाती हैं।–––

राम प्रेम रस धार महानी । हिय सर बाढ़त बहु सुखदानी ॥
देय जगत रस तुरत बहाई । अमृत करि अमृतहिं पियाई ॥

–––तब श्री राम जी महाराज के प्रेम की अतिशय सुख प्रदायिका रस धारा की, हृदय सरोवर में अत्यधिक बाढ़ आ जाती है। जो शीघ्र ही अपने प्रवाह से संसारी (भव) रस को बहा कर जीवों को अमृत स्वरूप बना प्रेमामृत का पान कराती है।

साधन विधि साधन अभिमाना । विगत होन हित शास्त्र बखाना ॥
साधन कर अभिमान छुड़ाई । शरणापन्न होय जिव आई ॥

सभी प्रकार के साधनों का विधान जीवों को साधन के अभिमान से छुड़ा देने के लिए ही है, ऐसा शास्त्रों ने बखान किया है। जब समस्त साधनों का अभिमान त्यागकर जीव प्रभु के सामने आता है तभी वह भगवान की शरणागति प्राप्त करता है।

शरणापन्न जीव दिन राती । राम कृपा चितवै चित चाती ॥
राम कृपा केवल आधारा । निज हित हेतु गहे रस वारा ॥
प्रेम चाह राखै मन माहीं । अवशि कृपा प्रगटै तेहिं पाहीं ॥

पुनः शरणापन्न जीव को चाहिये कि– वह दिन–रात आनंदित चित से श्री राम जी महाराज की कृपा को निहारता रहे तथा अपने हित के लिए श्री राम जी महाराज की रसमयी कृपा का ही एकमात्र आश्रय ग्रहण किये रहे। अपने मन में मात्र प्रभु–प्रेम प्राप्त करने की ही कामना रखे तब श्री राम कृपा अवश्य ही उस पर प्रगट हो जाती है।

दो०–राम कृपा सों सो कृपा, देवै प्रेम अथोर ।
महा भाव रस मत्त होइ, आनंद लहै विभोर ॥४६॥

पुनः श्री राम जी महाराज की कृपा से जीव को वह "कृपा" महान प्रेम प्रदान कर देती है और महाभाव (प्रेम के उच्चतम भाव) के रस मे मतवाला होकर वह जीव आनन्द मग्न हो जाता है।

जो कछु प्रभु मोमहँ दिखै, सो सब कृपा तुम्हार ।
सन्त गुरू प्रभु सीय बिन, नाहिन और अधार ॥ख॥

हे नाथ! जो कुछ भी प्रभु प्रेम मुझमें आप लोगों को दिखाई दे रहा है वह सब आप की कृपा का ही परिणाम हैं क्योंकि मुझे तो सन्तजनों, श्री गुरुदेव जी, श्री राम जी एवं श्री सीता जी के अतिरिक्त अन्य कोई सहारा नही हैं।

तव पद पद्म पराग कृपा ते । मैं अरु मोर हृदय रस राते ॥
पेखि परे तुम कह मुनिराया । सन्त लखैं जग अपने भाया ॥

हे मुनिराज! आप सभी के चरण कमलों के पराग की कृपा से मैं और मेरा हृदय आपको प्रेम रस में डूबा हुआ दीखता है, उसका कारण यह है कि– सन्तजन समस्त संसार को अपने समान ही देखते (समझते) हैं।

अस कहि पृथक पृथक सब काहीं । कियो प्रणाम पुलकि तन माहीं ॥
सबहिं कुँअर कहँ हृदय लगाई । आनँद सागर गये समाई ॥

ऐसा कहकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने पुलकित शरीर हो सभी सिद्ध–जनों को अलग अलग प्रणाम किया, सभी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को हृदय से लगा कर आनन्द के सागर में समा गये।

मन भावत अशीष बहु दीन्ही । शीष सूँघि प्यारहुँ अति कीन्ही ॥
पथ अकाश सब सिद्ध सिधाये । कुँअर प्रेम वरणत भल भाये ॥

तदनन्तर सिद्धगणों ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को मनोभिलषित अनेक आशीर्वाद दे, शिर सूँघकर अत्यधिक प्यार किया। पुनः सभी सिद्ध–गण कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रेम और सुन्दर भाव का वर्णन करते हुए आकाश मार्ग से प्रस्थान कर गये।

कुँअर सराहत आपन भागा । साधु संग प्रभु कृपा ते लागा ॥
सिद्धन कृपा अमित सो देखी । वरणत साधु स्वभाव विशेषी ॥
आयो अपने महल मझारी । कहेव नारि सन बात विचारी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने सौभाग्य की सराहना कररहे हैं कि– भगवान की विशेष कृपा से मुझे सिद्ध संतजनों का संग प्राप्त हुआ है। इस प्रकार अपने ऊपर सिद्धगणों की असीम कृपा को देख संतों के विशेष स्वभाव का वर्णन करते हुए वे अपने महल आ गये तथा अपनी पत्नी श्री सिद्धिकुँअरि जी से अपने हृद्गत विचारों का वर्णन किये।

दो०–यहि प्रकार लक्ष्मीनिधी, छाके प्रभु पद प्रेम ।
करत राज निर्लिप्त ह्वै, भूले जग रस नेम ॥४७॥

इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु श्री राम जी महाराज के चरणों के प्रेम में मग्न हो अनासक्त भाव से संसारी विधि–निषेध व सुखों को भूले हुये राज्य कर रहे थे।

एक बार श्री श्रीनिधि राजा। कीन्ही महती सभा सुसाजा ॥
आये सकल नगर नर नारी। चतुर्वर्ण अरु आश्रम चारी ॥

एक बार श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज ने विशाल सभा का आयोजन किया, जिसमें नगर के चारों वर्णो (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व सूद्र) एवं चारो आश्रमों (ब्रह्मवर्च, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास) के समग्र स्त्री–पुरुष सम्मिलित हुये।

मिथिला जनपद लोग लुगाई। बैठे सभा सबहिं सरसाई ॥
औरहुँ देश देश अधिकारी। मेले निमि नृप सभा मझारी ॥

श्री मिथिला जनपद के सभी स्त्री–पुरुष आनन्द पूर्वक सभा में विराज गये। अन्य देश–देशान्तरो के अधिकारी–गण भी निमिराज श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज की सभा में उपस्थित थे।

सन्त समाज कहै को पारा। पहुँचे बहु नृप जनक अगारा ॥
सब कर भो सतकार सुहाना। बैठे संसदि सब सुख साना ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि हे श्री हनुमान जी– उस सभा में समुपस्थित सन्त समाज का वर्णन कर कौन पार पा सकता है। उस समय अनेक राजागण भी श्री जनक जी महाराज के राज भवन में पहुँचे हुए थे। वहाँ उपस्थित समस्त जन समूह का सुन्दर सत्कार किया गया पुनः सुख में सने हुए सभी राजकीय–सभागार में विराज गये।

लक्ष्मीनिधि सबहिन कर जोरी। बोले बचन अमिय रस बोरी ॥
जीवन अनुभव अरु हिय भावा। जो कछु अहै चहौं सो गावा ॥

तदनन्तर श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज सभी से करबद्ध हो अमृत रस से भीगी हुई वाणी में बोले–हे समस्त समागत महानुभाव! मेरा अपने जीवन का जो अनुभव है और ह्रदय के जो भी भाव हैं, मैं उन्हे आप सब के समक्ष व्यक्त करना चाहता हूँ।–––

दो०–सुनहु सकल सज्जन सुमति, कहहुँ सुशास्त्र निचोर।
तेहिं पथ जो कोउ अनुसरै, पावै मोद अथोर ॥४८॥

–––अतएव, सभी विद्वान सज्जनों! सुनिये, मैं सद्–शास्त्रों के सार–तत्व का बखान कर रहा हूँ, जो भी उस मार्ग का अनुसरण करेंगे वे महान आनन्द की प्राप्ति करेंगे।–––

सीताराम भजन सत भाई। असत स्वप्न सम जग दुखदाई ॥
विद्या और अविद्या माया। जिव के हेतु ब्रह्म उपजाया ॥

–––हे भाइयो! श्री सीताराम जी का भजन ही सत्य है तथा संसार स्वप्न के समान असत्य और दुख प्रदान करने वाला है। पूर्णतम पर–ब्रहम ने विद्या और अविद्या के रूप में जीवों के लिये अपनी माया को प्रगट किया है।

मृत्युहिं जीति अविद्या द्वारा। असत जानि होवै भव पारा ॥
विद्या ते लहि अमृत काहीं। चाखे जीव अभय बनि ताही ॥

अतः जीवों को चाहिए कि– वे अविद्या माया के द्वारा संसार को असत्य समझकर मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लें अर्थात् आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाँय तथा विद्या माया के द्वारा अमृत स्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर अभय हो उस अमृत का आस्वाद ग्रहण करें।

समुझि अविद्या रूपहिं ज्ञानी । भव रस असत लेय जिय जानी ॥
विद्या बोध वृहत उर धारी । ब्रह्म सत्य रस लेंय विचारी ॥

ज्ञानीजन अविद्या के द्वारा संसार के स्वरूप को असत्य जानकर, अपने हृदय में सांसारिक भोग–विलास को मिथ्या समझ उसमें आसक्त नहीं होते तथा विद्या के द्वारा हृदय में ब्रह्म ही सत्य है यह महान बोध धारण कर भगवद्रस को सत्य समझ ग्रहण किये रहते हैं।

जगत असत ते नेहहिं तोरी । सत्य ब्रह्म पद देवैं जोरी ॥
चित महँ चिन्तन करै सुचेती । छन छन प्रभुहिं सम्हार स्वहेती ॥
रस रस राम कृपा ते ताकी । बढ़ति प्रीति हिय मन बुधि छाकी ॥

अतः जीवों को चाहिये कि– असत्य संसार में प्रेम करना छोड़कर, सत्य स्वरूप परब्रह्म श्री राम जी महाराज के चरणों में अपनी प्रीति को जोड़ दें तथा अपने चित्त में सजगता पूर्वक चिन्तन करते हुए प्रत्येक क्षण अपने आत्म–हित के लिए केवल भगवान के भरोसे को ही बनाये रहें तो धीरे–धीरे श्री राम जी महाराज की कृपा से उनकी प्रभु–प्रीति बढ़ती जायेगी एवं वह हृदय, मन और बुद्धि में परिव्याप्त हो जायेगी।

दो०–अमृत बनि अमृत चखै, रस ह्वै रस कहँ खाय ।
ब्रह्म होय ब्रह्महि भजै, सेवक सेव्य दृढ़ाय ॥४९॥

उस समय वह जीव अमृत स्वरूप होकर अमृत का आस्वाद लेता है, स्वयं रसमय होकर रस ही ग्रहण करता है तथा ब्रह्म स्वरूप होकर ब्रह्म का भजन करता है तथापि सेवक व सेव्य भाव दृढ़ता पूर्वक बनाये रखता है।

जो कछु जग लख आँखिन माहीं । सुनै श्रवण परशै तन जाहीं ॥
रसना स्वादत जेहि कहँ भाई । सूँघत घ्राण नित्य रस छाई ॥

इस संसार में आँखों से जो कुछ भी दिखाई देता है, कान जिसे सुनते है, शरीर के द्वारा जिसका स्पर्श होता है, जिह्वा जिसका आस्वाद ग्रहण करती है, नासिका नित्य रस में छाई हुई जिसे सूँघती है–––

जाही मनन करै मन तेरे । निश्चय करत स्वबुद्धिहिं हेरे ॥
चित सो चिन्तन जो कछु होवै । आतम अनुभव जो सत जोवै ॥

–––जिसका मन से मनन करते है, अपनी बुद्धि से विनिश्चय करते हैं, चित्त के द्वारा जो कुछ भी चिन्तन होता है तथा आत्मा के द्वारा जो भी सत्य अनुभव होता है–––

सो सब ब्रह्म राम सिय जानो । अरु विभूति ताकी पहचानो ॥
ब्रह्मात्मक आपहुँ कहँ लेखै । आपन स्वत्व अलग नहि पेखै ॥

———उसे पूर्ण ब्रह्म श्री सीताराम जी का स्वरूप तथा उनका वैभव ही जानना—समझना चाहिए। यहाँ तक कि स्वयं को भी ब्रह्ममय ही समझना चाहिये तथा अपने स्वत्व को ब्रह्म से अलग नही मानना चाहिये।———

ममता अहं कहाँ तब रहई। बिना भये जग जीवहिं गहई॥
एक राम दशश्यन्दन वारा। राजि रहेव जग रूप अपारा॥

———उपर्युक्त अवस्था में अहंकार और ममकार कहाँ रहेंगे? अर्थात् अहंकार व ममकार समाप्त हो जायेंगे जो न होते हुए भी जीवों को ग्रहण किये रहते हैं। सम्पूर्ण संसार में एक मात्र चक्रवर्ती श्री दशरथ नन्दन राम जी महाराज ही अनन्त रूपों में सुशोभित हो रहे हैं।———

अपने महँ नित अपने द्वारा। आपहिं करैं विनोद विहारा॥
याते अह मम करि निर्बीजा। शेष बनै प्रभु केर स्वछीजा॥

———वे अपने आप में नित्य अपने ही द्वारा विनोद और विहार करते हैं इसलिए अहंकार और ममता को निर्बीज बना, अपने अस्तित्व को विनष्ट कर प्रभु श्री राम जी महाराज के शेष बन जाना चाहिये।———

यथा खेत गृह वस्त्र सुहाये। कृषक गृही के सहजहिं गाये॥
नहिं स्वतन्त्र नित कृषक अधीना। क्षेत्रादिक सब सुनहु प्रवीना॥

———जिस प्रकार खेत, भवन और सुन्दर वस्त्र आदि सहज ही गृह—स्वामी किसान के कहलाते हैं। हे सुधीजनों! खेत इत्यादि स्वतन्त्र नहीं हैं अपितु नित्य ही कृषक के आधीन होते हैं।———

दो०—तथा जीव रघुनाथ कर, सहजहिं जानहुँ शेष।
निज या पर को शेष नहिं, शेषी राम अशेष॥५०॥

———उसी प्रकार जीव रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज का सहज शेष है, यह बात समझ लीजये वह अपना और अन्य का शेष नही है उसके शेषी तो पूर्णतया श्री रामजी महाराज ही हैं।

यथा धान कर भोग किसाना। भोक्ता बनि नित करै सुजाना॥
तथा गुनहु यह चेतन काहीं। अहै राम कर भोग सदाहीं॥

हे सुजान सुहृद जन! जिस प्रकार धान का उपभोग, भोक्ता बन कर किसान नित्य करता है उसी प्रकार इस चेतन (जीव) को भी जानिये कि— यह श्री राम जी महाराज का नित्य भोग है।———

निज पर भोग न आपहिं थापै। भोक्ता राम सत्य नित आपै॥
निज रक्षा हित आपन यतना। अरु पर आस तजै मन हतना॥

———अतः जीव को चाहिए कि— वह अपने आपको अपना या अन्य का भोग न समझे क्योंकि इसके नित्य व सत्य भोक्ता स्वयमेव श्री राम जी महाराज हैं। जीव अपनी रक्षा के लिए अपने उपाय तथा अन्य की आशा को मन से भी त्याग दे जो कि— जीवों को सर्वथा विनष्ट करने वाली है।

रामहिं रक्षक सत्य स्वजानी। सोच त्यागि जग रहै भुलानी॥
यहि प्रकार बनि दास अनन्या। भजन करै सिय राम सुमन्या॥

जीव श्री राम जी महाराज को अपना सत्य रक्षक समझकर सभी चिन्ताओं को छोड़ संसार को भूल जाये। इस प्रकार वह अनन्य सेवक बनकर सुन्दर अपने मन को लगा, श्री सीता राम जी का भजन करें।---

तो सिय राम स्वयं बनि रक्षक। काल कर्म स्वभाव गुण भक्षक॥
सब विधि रक्षहिं जीवहिं काहीं। देहिं परम पद आपन ताही॥

---तो काल, कर्म, स्वभाव और गुणों का भक्षण करने वाले श्री सीता राम जी स्वयमेय रक्षक बनकर सभी प्रकार से जीवों की रक्षा करते हैं तथा उन्हे अपना परम पद प्रदान कर देते हैं।

दो०-कृपा भरोसे राम के, चेतन गोड़ पसार।
सोवै जग सो विरत बनि, जागै भजन मँझार॥५१॥

अतएव जीव को चाहिए कि- वह श्री राम जी महाराज की कृपा के सहारे पैर फैलाकर संसार से अलग होकर शान्ति के साथ शयन करे तथा पुनः भजन के बीच ही जागृत हो अर्थात् श्री राम जी महाराज की कृपा के बल पर सुख पूर्वक संसार की चिन्ता छोड़कर निश्चिन्त हो भजन करे।

राम स्वयं निज चेतन देखी। करि आपन सुख लहहिं विशेषी॥
भोक्ता बनि चेतन रस भोगी। राम स्वयं रस रसिक सुयोगी॥

श्री राम जी महाराज स्वयं ही अपने ऐसे जीव को देख, उसे अपना बनाकर विशेष सुख प्राप्त करते हैं। वे भोक्ता बनकर जीव (चेतन) का उपभोग करते हैं तथा स्वयं श्री राम जी महाराज रस और रसिक के योग का सुन्दर विधान बनाते हैं।

जीवहिं देहिं परम आनन्दा। निज समान नित रघुकुल चन्दा॥
तब यह चेत कृतारथ होई। आँनन्द सिन्धु रहै नित मोई॥

इस प्रकार रघुकुल के चन्द्रमा श्री राम जी महाराज जीव को नित्य अपने समान परमानन्द प्रदान करते है, तब यह चेतन (जीव) कृतार्थ होकर नित्य ही आनन्द के सागर मे डूबा रहता है।

ताते शरण राम की होई। गति अनन्य लहियहिं सब कोई॥
कृपा आस प्रभु प्रेम प्रवाहा। नित नित ह्रदय बढ़ाय उमाहा॥

इसलिए सभी को चाहिये कि- श्री राम जी महाराज की शरण ग्रहण कर अनन्य गति हो जायें अर्थात् एकमात्र श्री राम जी महाराज का ही आश्रय लिये रहें और उनकी कृपा के अवलम्बन से प्रभु श्री राम जी के प्रेम का प्रवाह अपने ह्रदय में नित्य प्रति उत्साह पूर्वक बृद्धिंगत किये रहें।

नाम रूप लीला सत धामा। चारहु चिदानन्द अभिरामा॥
रमैं सदा तेहिं महँ सब लोगू। राग द्वेष त्यागे भव रोगू॥
देहेन्द्रिय मन बुद्धि रमाई। सेवहिं स्वात्म राम रघुराई॥

परम प्रभु श्री राम जी महाराज के नाम, रूप, लीला व धाम ये चारो तत्व सत्य सुन्दर एवं चिदानन्दमय हैं। अतः सभी जीव राग, द्वेष व समस्त भव विकारों को त्याग कर उन्हीं में अपने मन को रमायें तथा अपनी देह, इन्द्रिय, मन और बुद्धि को उनमें अनुरक्त कर अपने आत्म स्वरूप श्री राम जी महाराज की सेवा करें।

दो०—सीय राम शुचि नाम, जपहिं निरन्तर हिय मुखहिं।
युगल चरित अठ याम, कहहिं सुनहिं चिन्तन करहिं ॥५२॥

इस प्रकार श्री सीता राम जी के परम पवित्र नाम का निरन्तर हृदय और मुख से जप करते हुए दोनो के सुन्दर चरित्रों का सभी—जन आठो—याम वर्णन, श्रवण एवं चिन्तन करें।

मधुर मनोहर जन चित चोरा। लाजहिं लखि लखि काम करोरा॥
सीय राम मुद मंगल रूपा। ध्यावहिं भाव समाधि अनूपा॥

प्रभु श्री राम जी महाराज, भक्तजनों के चित्त को चुराने वाले, मधुर और मनोहारी हैं जिन्हे देख कर करोड़ो काम देव भी लज्जित हो जाते हैं उन श्री सीता राम जी के आनन्द और मंगलमय रूप का अनुपमेय भाव समाधि में लीन हो, ध्यान करें।

राम धाम जावन अति प्रीती। बढत रहै जग छोड़ पछीती॥
श्री हरि गुरु सन्तन की सेवा। कर सो करैं सुमन धन देवा॥

आप सभी के हृदय में श्री राम जी महाराज के परम धाम में जाने की अत्यधिक प्रीति संसारासक्ति को पीछे छोड़, अनुदिन विवर्धित होती रहे। आप सभी श्री भगवान, श्री गुरुदेव जी और सन्तों की सेवा सुन्दर शरीर, मन और धन से करते रहें।

सीय राममय जगत निहारी। मन सिर करैं प्रणाम सुखारी॥
सदा रमैं प्रेमिन के संगा। सीय राम चर्चा रस रंगा॥

इस संसार को श्री सीताराम मय देखते हुए मन और शिर से सुख पूर्वक प्रणाम करें तथा सदैव प्रेमियों के साथ, श्री सीताराम जी की रसमयी चर्चा करते हुये उनके रंग में रंगकर, रमण करें।

भगवत धर्म मयी शुभ चाली। सहजहिं बनी रहै रस शाली॥
आसुरि सम्पति कबहुँ न धारी। दैवी उर सों नाहिं निकारी॥

भागवत धर्म के अनुसार आप लोगों के शुभ एवं रसमय आचरण सहज ही बने रहें। आप सभी समस्त आसुरी सम्पत्तियों (प्रभु प्रतिकूल गुण धर्मो) को कभी भी धारण न करें तथा दैवी सम्पत्तियों द्धभगवान के अनुकूल गुणों को) को हृदय से निष्काषित न करें।

मैत्री मुदिता करुणा केरा। दिये रहैं नित हिय महँ डेरा॥
अतिहिं अकिंचन वृत्ति सुहाई। दीन अमानी बन अपनाई॥

मित्रता, प्रसन्नता, एवं करुणा आदि गुणों को सदैव ही अपने हृदय में निवास दिये रहें तथा दीन और अमानी बनकर सुन्दर अत्यन्त अकिंचन वृत्ति को अपानाये रहैं।

दो०—प्रेम पंथ अहनिशि चलैं, सीय राम अनुकूल ।
विषयन कहँ विष सम तजैं, जो जो प्रभु प्रतिकूल ॥५३॥

आप सभी नित्य ही अहो—रात्रि श्री सीताराम जी के अनुकूल प्रेम—मार्ग का अनुसरण करते रहें तथा जो भी प्रभु—प्रतिकूल परिस्थितियाँ हैं उन्हे व सांसारिक विषयों का विष के समान त्याग कर दें।

राम प्रेम जेहिं करमन तेरे । उपजै सोइ करैं हिय हेरे ॥
ज्ञान सोइ जासो प्रभु ज्ञाना । प्रेम प्रदायक होय महाना ॥

जिन कर्मों से श्री राम जी महाराज का प्रेम उत्पन्न हो, आप सभी अपने हृदय में विचार कर उन्ही कर्मों का अनुष्ठान करें। यथार्थतः "ज्ञान" तो वही है जिसके द्वारा प्रभु श्री राम जी महाराज ज्ञान हो जाय और जो उनके महान प्रेम को प्रदान करने वाला हो।

योग सोइ जेहिं ते नित योगा । सीय राम कर लहैं सुलोगा ॥
सोइ भगति जो प्रेम स्वरूपा । जेहिं सो वश रह कौशल भूपा ॥

यथार्थ में "योग" वही है जिसके द्वारा लोग श्री सीताराम जी का नित्य योग प्राप्त कर लें तथा "भक्ति" भी वही है जो प्रेम स्वरूपा हो और कौशल पुरी के नरेश श्री राम जी महाराज जिसके आधीन बने रहते हैं।

कथा श्रवण सो रसिक बनावै । रस की धारा हृदय बहावै ॥
राम रटन सो दृग पथ माहीं । राम रमावै भरि जल काहीं ॥

यथार्थ में भगवान की कथा "श्रवण" करना वही है जो भगवत्कथा का रसिक बना दे और हृदय में रस की धारा प्रवाहित कर दे। सच्चे अर्थो में श्री राम नाम जपना वही है जो प्रेमाश्रु प्रवाहित कर नेत्रों में श्री राम जी महाराज को बसा दे।

प्रभु विरही सो विरहहिं जागे । तजै प्राण की बाउर बागे ॥
ध्यान सोइ जो तत आकारा। करै सहज नहिं देह सम्हारा ॥
रूप प्रीति जनियहिं तब भाई । बिन देखे जब रहा न जाई ॥

भगवान का सच्चा "विरही" वही है जो प्रभु वियोग उत्पन्न होने पर अपने प्राणों को धारण करने में समर्थ न हो सके। यथार्थ में ध्यान वही है जो शरीर की स्मृति भुलाकर सहज ही तदाकार बना दे। हे भाइयो! प्रभु के रूप की "प्रीति" तो तभी जानी जाती है जब उनको देखे बिना रहा न जा सके।

दो०—धाम प्रीति सो जानियहिं, जो जीवहिं अठ याम ।
जग रस भूलो परम पद, भाषत रहे ललाम ॥५४॥

भगवान के धाम की प्रीति तो उसे ही जानना चाहिये जो संसारी आनन्द को भुलाकर जीवों को आठों—याम सुन्दर परम—पद की प्रतीति कराती रहे।

जीतहिं बनि परमार्थ स्वरूपा । परम धाम सों प्रेम अनूपा ॥
धाम छोड़ अन वस्तु न भाषी । सोई धाम प्रेम गुनि राखी ॥

जीवन के रहते जीव स्वयं परमार्थ स्वरूप बन जाँय यही उनकी परम–धाम से अनुपमेय प्रीति है। धाम के अतिरिक्त जब उसे अन्य स्थलों का ज्ञान न रह जाय वही सच्चा धाम प्रेम है, ऐसा समझना चाहिये।

परम विराग गिनहु तुम सोई । भुक्ति मुक्ति जहँ लखब न होई ॥
ईश समान शक्ति हूँ पावै । परम विरागी चितव न भावै ॥

हे सज्जनों! आप सभी उसी को परम "वैराग्य" समझें जिसमें भुक्ति और मुक्ति का भी किंचित दर्शन न हो। परम वैराग्यवान जन, ईश्वर के समान शक्ति (रिद्धि–सिद्धि आदि) प्राप्त कर लेने पर भी उनकी ओर देखना तक नही चाहता।

सब तजि रहै राम सो रागी । जानिय ता कहँ परम विरागी ॥
धर्म सोइ जो दास समाना । करै राम रुख पेखि महाना ॥

उसे ही परम वैराग्यवान समझना चाहिये जो सब कुछ त्याग कर श्री राम जी महाराज में अनुरक्त रहता है। यथार्थ में "धर्म" वही है जो जीवों को परम प्रभु श्री राम जी महाराज की इच्छा समझ सेवकों के समान सेवा करने की शिक्षा प्रदान करता है।

सो सतसंग जहाँ रस धारा। राम प्रेममय बहै अपारा ॥
राम प्रेम उन्मत्त मदीले। अहैं सन्त जो राम रंगीले ॥
तिन कर संग राम रस देई। करै प्रेममय सत गुन लेई ॥

सच्चा "सत्संग" वही है जहाँ श्री राम प्रेम स्वरूप असीम रस की धारा प्रवाहित होती हो। जो लोग श्री राम जी महाराज के प्रेम में उन्मत्त व मतवाले हैं एवं श्री राम जी महाराज के रंग में रंगे हुए हैं वे ही यथार्थतः "सन्त" हैं। आप सभी सत्य समझ लीजिये कि– उन्ही संतो का साथ श्री राम रस प्रदान कर प्रेम स्वरूप कर देता है।

दो०–साधन सोई जानियहिं, शीघ्र मिलावै साध्य ।
गत अभिमान अकाम करि, करै प्रेम पथ बाध्य ॥५५॥

आप सभी उसे ही सच्चा "साधन" समझे जो शीघ्र ही साध्य (लक्ष्य) की प्राप्ति करा दे तथा अभिमान रहित व निष्काम बनाकर प्रेम मार्ग में चलने को विवश कर दे।

शास्त्र सोइ जो भक्ति बताई । सीय राम पद प्रेम दृढ़ाई ॥
मनुज सोइ जो मानव कर्मा । करै राम रति त्याग अधर्मा ॥

पुनः शास्त्र वही हैं जो जीवों के हृदय में भक्ति प्रगट कर श्री सीताराम जी के चरणों के प्रेम को सुदृढ़ कर दें, मनुष्य वही हैं जो अधर्म का त्याग कर श्री राम जी में अनुरक्त हो मानवीय कर्मो का अनुष्ठान करते हैं।

नर तन फल सिय राम सुप्रीती। करै शुभाशुभ त्याग अमीती ॥
विद्या फल श्री प्रभु पद प्रेमा। अहै जीव कर शास्त्रन नेमा ॥

मनुष्य शरीर धारण करने का फल यही है कि– वह संसार के शुभ और अशुभ कर्मो को त्याग कर श्री सीताराम जी में असीमित प्रेम करे तथा विद्या प्राप्त करने का फल जीवों के हृदय में प्रभु श्री राम जी महाराज के चरणों के प्रति प्रेम हो जाना है, यही जीवों के लिये शास्त्रों का नियम है।

जीव स्वरूप सहज प्रभु प्रेमा । ता बिन ताकहँ कतहुँ न क्षेमा ॥
इन्द्री फल करि विषय जो रामहिं । बनी रहैं नित विषई धामहिं ॥

जीव का सहज स्वरूप प्रभु से प्रेम करना ही है, उसके अतिरिक्त उसकी कहीं भी कुशल नही है। इन्द्रियों का फल यही है कि वे प्रभु श्री राम जी महाराज को अपना विषय बनाकर नित्य ही उनकी विषयिनी बनी रहें।

जीव परम परमारथ एहा । प्रभु पद करै अमल स्नेहा ॥
राम प्रेम बिन विरथा भाई । योग विराग ज्ञान बहुताई ॥

जीवों के लिये परम परमार्थ यही है कि वे प्रभु श्री राम जी महाराज के चरणों में निर्मल प्रेम करें, क्योंकि हे भाइयो! श्री राम प्रेम के बिना योग, वैराग्य तथा ज्ञान आदि का आधिक्य भी व्यर्थ ही है।

प्रभु बिन आतम अनुभव ज्ञाना । है विधवा श्रृंगार समाना ॥
प्रेम बिना भुक्ती अरु मुक्ती । नहि कछु अहै सत्य यह युक्ती ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के अनुभव के बिना आत्मा का अनुभव एवं उसका ज्ञान विधवा के श्रृंगार के समान व्यर्थ है तथा प्रभु–प्रेम के बिना सभी प्रकार के भोग व मोक्ष भी कुछ नहीं हैं, यह युक्ति सर्वथा सत्य है।

प्रेम बिना शुभ गुण नहिं सोहै । बिना वारि बादल जिमि जोहैं ॥
इन्द्र ब्रह्म पद हरि हर केरा । वृथा गिनहु सत सत्यहिं टेरा ॥

प्रेम के अभाव में समस्त शुभ–गुण उसी प्रकार सुशोभित नही होते जैसे बिना पानी के बादल दिखाई देते हैं। मैं यह सर्वथा सत्य वार्ता पुकार–पुकार कर कह रहा हूँ कि– प्रभु–प्रेम बिना श्री इन्द्र, श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी और श्री शंकर जी के पद को भी व्यर्थ समझना चाहिए ।

दो०–ताते जीवन सो भला, करै राम पद प्रेम ।
प्रभु कहँ सरवस सौंपि सब, तजै योग अरु क्षेम ॥५६॥

इसलिए उन्ही का जीवन प्रशंसनीय है जो श्री राम जी महाराज के चरणों मे प्रेम करते हैं और अपना सर्वस्व प्रभु को समर्पित कर अपने योग और क्षेम का त्याग किये रहते हैं।

प्रेम पगत प्रेमानँद पावै । परमानन्द जाहि श्रुति गावै ॥
ताकर अनुभव सो जन जाने । राम प्रेम जो छके महाने ॥

प्रभु प्रेम में परिप्लुत होते ही जीव प्रेमानन्द प्राप्त कर लेते हैं जिसे श्रुतियों ने परमानन्द कह कर गायन किया है। पुनः उन सज्जनों के अनुभव को तो वही जान सकते है जो प्रभु श्री राम जी महाराज के महान प्रेम में सदैव छके रहते हैं।

कहे यथा मति सेवा हेतू । नहि उपदेश करन किय नेतू ॥
ताते सुनि सब विनय हमारी । सेवा लेहिं कृपा करि प्यारी ॥

श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज कहते हैं कि–हे सज्जन वृन्द! हमने अपनी बुद्धि के अनुसार आप लोगों की सेवा करने के उद्देश्य से यह वार्ता कही है न कि उपदेश करने के लिए, इसलिए आप सब हमारी विनय को सुन, कृपा कर हमारी इस प्रिय–सेवा को स्वीकार करें।

सहजहिं मैं सब कर शिशु दासा । तेहिं ते सेयो सहित हुलासा ॥
जो कछु कीन्ही यहाँ ढ़िठाई । छमिहहिं सज्जन हौं सिर नाई ॥

मैं तो आप सभी का सहज ही शिशु–सेवक हूँ इसीलिए मैने आनन्द पूर्वक आप सभी की सेवा की हैं। यदि यहाँ मैने कोई धृष्टता की हो, तो उसे आप सभी सज्जन वृन्द क्षमा करेंगे, मैं सिर झुकाये आप सभी के प्रणत हूँ ।

लक्ष्मीनिधि के बचन अमूला । मुख निकसत वरसत जनु फूला ॥
परम तत्व मय सुखद अनूपा । अकथ अगाध सुप्रेम स्वरूपा ॥

मिथिला नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज के अनमोल वचन उनके मुख से ऐसे निकल रहे थे जैसे पुष्प वरष रहे हों। उनके मधुर वचन परम तत्वमय, सुखदायक, अनुपमेय, अकथनीय, अगाध एवं सुन्दर प्रेम स्वरूप थे।

दो०–भये मगन सुनि सुनि सबहिं, भूलि अपनपौ भान ।
जय जय जय उचरन लगे, धनि निमि भूप सुजान ॥५७॥

उनके वचनों को सुन–सुनकर सभी लोग अपना आपा भूलकर मग्न हो गये और परम सुजान श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज धन्य हैं ऐसा कहते हुये जय हो, जय हो, जय हो का उच्चारण करने लगे।

बोले सबहिं एक स्वर माहीं । धन्य नाथ तुम सम कोउ नाहीं ॥
हम कृत–कृत्य भये सब लोगू । सुनि प्रवचन तुम्हरो सुख योगू ॥

पुनः सभी एक स्वर में बोले– हे नाथ! आप धन्य हैं, आपके समान कोई भी नही है। हम सभी आपका सुख प्रदायक प्रवचन सुनकर कृतकृत्य हो गये।

पाये आनन्द लहि उपदेशा । धनि धनि निमिपुर नवल नरेशा ॥
प्रथमहिं प्रभु के परम प्रधामा । नाम रूप लीला अभिरामा ॥

आपके दिव्य उपदेश को प्राप्त कर हमने अत्यानन्द प्राप्त किया है, हे निमिपुर के नवीन नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप धन्यातिधन्य हैं। हम सभी पूर्व से ही प्रभु श्री राम जी महाराज के सुन्दर नाम, रूप, लीला एवं धाम के विषय में–––

सुनि लखि अनुभव करि मन माहीं । साधन बिना रमत सब पाहीं ॥
सहज प्रेम सिय रमण स्वरूपा । अहै हमार नित्य निमि भूपा ॥

–––श्रवण, दर्शन एवं मन में अनुभव कर सहज ही इन सब में रमें रहते हैं तथा हे निमिराज

श्री लक्ष्मीनिधि जी! श्री सीताराम जी के स्वरूप में हम सभी का नित्य ही सहज प्रेम है।———

दूजे राउर रतिहिं विलोकी । नेह सरित बहि गये विशोकी ॥
प्रेमहिं प्रेम हृदय महँ छायो । जस राजा तस प्रजा सुभायो ॥

———दूसरे आपका श्री सीताराम जी महाराज के प्रति विशेष प्रेम देखकर हम सभी शोकरहित हो प्रेम की सरिता में प्रवाहित हो गये और हमारे हृदय में प्रेम ही प्रेम परिव्याप्त हो गया है तथा यथा राजा तथा प्रजा वाली वात चरितार्थ हो गयी है।———

दो०—पुनि सुनि तव अमृत बचन, पुष्ट भयो सो प्रेम ।
सीय राम पद भाव भल, लहि हैं तजि सब नेम ॥५८॥

———पुनः अब आप के अमृत—वचनों को श्रवण कर हमारा वह प्रेम और भी परिपुष्ट (दृढ़) हो गया है, अब हम अन्य सभी सम्पूर्ण नियमों का त्याग कर श्री सीताराम जी के चरणों में सुन्दर प्रेम—भाव प्राप्त करेंगे।

मास पारायण उन्तीसवाँ विश्राम

राम कृपा सिय कृपा महानी । सहित तुम्हार कृपा सुख सानी ॥
चितवत आयु वितैहैं राऊ । किये हिये महँ सुन्दर भाऊ ॥

हे श्री महाराज! आपके सहित श्री राम जी महाराज और श्री सीता जू की महान सुख परिपूर्ण कृपा का दर्शन (अनुभव) करते हुए हम सभी हृदय में सुन्दर भाव रखकर अपनी आयु व्यतीत कर देंगे।

प्रभु प्रसाद प्रभु सेव सुहावी । लहिहैं हृदय आस अति आवी ॥
सुनि सत भाव कुँअर अनुरागे । सभा विसर्जन किये सुभागे ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज की कृपा प्रसाद से हम सभी उनकी सुन्दर सेवा प्राप्त करते रहें ऐसी प्रबल अभिलाषा हमारे हृदय में उत्पन्न हो रही है। इस प्रकार उन सभी के सच्चे भावों को सुनकर परम सौभाग्यशाली कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने सभा का समापन किया।

यहिं प्रकार लक्ष्मीनिधि राजा । करहिं प्रजा रंजन सुख साजा ॥
अवधहिं आवत जात अनूपा । भाम भगिनि के भावत भूपा ॥

इस प्रकार श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज सुख पूर्वक प्रजा का पालन कर रहे थे तथा अपने बहनोई और बहन श्री सीताराम जी के मन भावने कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज श्री अयोध्या पुरी आते जाते रहते थे।

छिन छिन बाढ़त प्रेम प्रमाना । जिमि शशिकला नित्य सुखसाना ॥
राम सिया उर कुँअर सुथाना । पावहिं प्यार अनन्त अमाना ॥

श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज के हृदय में श्री सीताराम जी के प्रति सत्य व सुख प्रपूरित प्रेम प्रत्येक क्षण उसी प्रकार वृद्धिंगत होता जाता था जैसे चन्द्रमा की कलायें नित्य वृद्धि को प्राप्त होती हैं। सर्वथा अभिमान रहित कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सीताराम जी के हृदय में स्थान बनाकर उनके अनन्त प्यार को प्राप्त कर रहे थे।

दो०–एक समय श्री निधिजियहिं, जागी उत्तम चाह ।
अनुपम आनन्द दायिनी, वर्धति उरहिं उमाह ॥५९॥

एक समय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की हृदय में एक अनुपमेय व आनन्द प्रदायिनी उत्तम अभिलाषा उत्पन्न हुई जो उनके हृदय मे उमंग को विवर्धित कर रही थी।–––

अमित अण्ड की बात विचित्रा । कहहिं सबहिं श्रुति संत पवित्रा ॥
लोकानन्त विकुण्ठ अनन्ता । वरणहिं कवि पुराण बुधिवन्ता ॥

–––वह अभिलाषा यह थी कि–विचित्र रहस्यों से परिपूर्ण असीमित ब्रह्माण्डों का जिनका सभी श्रुतियाँ एवं पवित्र सन्त–जन वर्णन करते है तथा अनन्त लोकों व अनन्त वैकुण्ठों का जिनका वर्णन कवि, पुराण एवं सुधीजन किया करते हैं–––

अक्षर कारण कारण धामा । गोपुर मधि साकेत ललामा ॥
देह अछत इन आँखिन माहीं । जो नहिं लखे परम पद काहीं ॥

–––उन सभी के सहित समस्त ब्रह्माण्डों का कारण स्वरूप, अविनाशी सुन्दर परम पद स्वरूप साकेत धाम, जो गोलोक धाम के मध्य में स्थित है, उसका यदि इस शरीर के रहते इन नेत्रों से दर्शन नहीं कर सका–––

तौ प्रभु कृपा पूर्ण नहिं भयऊ । मरे मिले तन अफलहिं गयऊ ॥
यहिं विधि सोचत हृदय कुमारा । जाने राम कृपा आगारा ॥

–––तो हमारे स्वामी श्री राम जी महाराज की कृपा का पूर्ण फल मुझे प्राप्त नहीं हुआ क्योंकि यदि वह परम पद मुझे मृत्यु के पश्चात प्राप्त हुआ तो यह शरीर तो निष्फल ही गया। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी इस प्रकार हृदय में विचार कर ही रहे थे कि– कृपा के भवन श्री राम जी महाराज उनके इस रहस्य को जान गये।

भक्त इष्ट नित वितरन वारे । बोले इक दिन राम उदारे ॥
सुनहु सखे मम मन अभिलाषा । तुम सह गवनहुँ लोकन भाषा ॥
अरु विकुण्ठ गोलोकहिं जाई । करि विहार आवहुँ निमिराई ॥

तदनन्तर एक दिन, अपने भक्तजनों के वांछित (मनोरथ) को नित्य पूर्ण करने वाले परम उदार श्री राम जी महाराज बोले– हे सखे! सुनिये, मेरे मन में तीव्र इच्छा हो रही है कि– आपके साथ श्रुति, शास्त्र व सन्त वर्णित लोकों, नित्य वैकुण्ठ व गोलोक में पहुँच वहाँ विहार कर वापस आ जाऊँ।

दो०–प्रति अण्डन की सृष्टि सुठि, अति विचित्र नर पाल ।
तुम सह आवौं देखि जब, तब प्रमोद रस साल ॥६०॥

हे राजन्! प्रत्येक ब्रह्माण्ड की अत्यन्त विचित्र व सुन्दर सृष्टि का, मैं जब आप के साथ दर्शन कर आऊँगा तभी आनन्द और रस की प्राप्ति करूँगा।

सुनि बोले मिथिलेश कुमारा । धनि प्रभु जन रुचि राखनहारा ॥
पुजवन हित मम बड़ि अभिलाषा । देखन चहहुँ लोक अस भाषा ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के वचनों को सुनकर, मिथिलेश कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी बोले– अपने सेवकों की इच्छाओं की रक्षा करने वाले हे प्रभु श्री राम जी महाराज! आप धन्य हैं, मेरे हृदय की महान इच्छा को पूर्ण करने के लिए ही आपने यह कहा है कि– मैं लोकों को दर्शन करना चाहता हूँ।

अवशि कृतारथ मो कहँ कीजै । आपन जानि विमल सुख दीजै ॥
सुनत बचन शुचि श्याला केरे । योगेश्वर प्रभु बचन विखेरे ॥

आप अवश्य ही मुझे अपना समझ कर, कृतार्थ करते हुये निर्मल सुख प्रदान कीजिये। अपने श्याल के पवित्र वचनों को श्रवणकर योगेश्वर प्रभु श्री राम जी महाराज ने अपनी वाणी का पुनः विसर्ग किया।–––

योगाश्रय लै निमिकुल नाथा । चलहु वेगि बहु हमरे साथा ॥
योग रूप बहनोई श्याला । सत चिद आनँद रूप रसाला ॥

–––हे निमिकुल नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप योग का आश्रय ग्रहण कर अति शीघ्र हमारे साथ चलें। तदनन्तर योग–स्वरूप एवं सच्चिदानन्दमय रसस्वरूप भाम व श्याल श्री राम जी महाराज तथा श्री लक्ष्मीनिधि जी–––

सूक्षम ते बनि सूक्षम रूपा । चले युगल उड़ि भाव अनूपा ॥
प्रथम अण्ड दीखे सुख भीने । ताहि भेद पुनि दूसर लीने ॥

–––अनुपमेय भाव सम्पन्न वे दोनो, सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप धारण कर आकाश मार्ग सें उड़कर चल पड़े। उन्होने प्रथम ब्रह्माण्ड का दर्शन किया पुनः उसे भेद कर दूसरे ब्रह्माण्ड के दर्शन में तल्लीन हो गये।–––

दो०– यहि विधि कोटिन अण्ड कहँ, देखे युगल किशोर ।
भिन्न भिन्न सृष्टी तहाँ, अचरज मय सब ओर ॥६१॥

–––इस प्रकार युगल राज किशोर श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मीनिधि जी ने करोड़ो ब्रह्माण्डों के दर्शन किये। वहाँ सर्वत्र विभिन्न प्रकार की अत्यन्त आश्चर्यमयी ही सृष्टि थी।

कहूँ भूमि कंचनमय पेखी । कहूँ रजतमय शुक्ल विशेषी ॥
कहूँ ताम्रमय भूमि सुरङ्गी । कहूँ तेजमय चमकत अंगी ॥

उन्होने कहीं स्वर्णमयी भूमि का दर्शन किया तो कही चाँदी के समान विशेष श्वेत भूमि देखी, कही ताँवे के समान सुन्दर रंग वाली भूमि के दर्शन किये और कहीं–कहीं तो परम तेज से सम्पन्न दिव्य आभा–युक्त भूमि का युगल कुमारों ने दर्शन किया।

शसिमय खेत कहूँ दरशावै । मही मृत्तिका केर जनावै ॥
कौनहु अण्ड पहार पहारा । वन वन कतहुँ दिखै विकरारा ॥

कहीं कृषि से युक्त (हरे–भरे) खेत दिखाई पड़ने से मिट्टी की भूमि समझ आती थी, किसी ब्रह्माण्ड में पर्वत ही पर्वत थे तो कहीं विकराल जंगल ही जंगल ही दिखाई देते थे।

कहुँ मनुष्य कहुँ कोऊ नाहीं । जंगल जीव कतहुँ दिखराहीं ॥
देव समान कतहुँ नर नारी । कतहुँ विचित्र दिखैं जग धारी ॥

कहीं मनुष्य थे तो कहीं कोई भी जीवधारी नही थे, तो कही जंगली जीव ही दिखाई पड़ते थे। कहीं देवताओं के समान पुरुष–स्त्री थे तो कहीं विचित्र प्रकार के जीव–धारी दिखाई देते थे।

कहुँ भोजन कहुँ रहैं उपासे । कहुँ रस चखि कहुँ मन भुख भासे ॥
कहूँ सूर्य कहुँ अधिक अँधेरा। कहुँ बिन सूरज रहत उजेरा ॥
आँख प्रकाश कतहुँ बहुताई । कहुँ कैसेउ कैसेउ जग जाई ॥

किसी ब्रह्माण्ड में लोग भोजन करते थे तो कहीं व्रत (उपवास) करते थे, कहीं रस पान करते थे तो कहीं मन से भूखे प्रतीत होते थे। कहीं सूर्य थे तो कहीं पर अत्यधिक अँधकार था और कहीं–कहीं तो सूर्य के न रहने पर भी अत्यधिक प्रकाश दिखाई पड़ता था। कहीं आँखें अधिक प्रकाश से चौंधिया जाती थीं तथा कहीं किसी प्रकार के तो कहीं किसी प्रकार के लोक रचना दीखती थी।

दो०– यहि प्रकार सृष्टी, पृथक देखी अण्डन केर ।
अवध पुरी सरयू पृथक, प्रति अण्डन महँ हेर ॥६२॥

इस प्रकार पृथक–पृथक ब्रह्माण्डों में युगल राज किशोरों श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मीनिधि जी ने भिन्न–भिन्न प्रकार की सृष्टि का दर्शन किया तथा प्रत्येक ब्रह्माण्ड में उन्होने श्री अयोध्यापुरी और श्री सरयू जी आदि के अलग–अलग प्रकार से दर्शन किये।

मिथिला कमला आनहिं आना । लखे कुँअर प्रति अण्ड अमाना ॥
आपु सहित भरतादिक भ्राता। देखे विविधि रूप सकुचाता ॥

अहं विहीन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने प्रत्येक ब्रह्माण्ड में श्री मिथिला पुरी एवं श्री कमला जी का, अलग–अलग प्रकार से दर्शन किया। वे स्वयं के सहित श्री भरत जी आदि भ्राताओं को विभिन्न रूपो में देखकर संकुचित हो गये।

कौशिल्यादिक दशरथ भूपा। जनक सुनैना सिद्धि स्वरूपा ॥
देखे विविध रूप प्रति अण्डा । होत चकित चित निमिकुल मण्डा ॥

श्री कौशिल्या जी आदि माताओं, चकवर्ती श्री दशरथ जी महाराज, श्री जनक जी महाराज, अम्बा श्री सुनैना जी एवं श्री सिद्धि कुँअरि जी के स्वरूप को भी प्रत्येक ब्रह्माण्ड में विभिन्न प्रकार से देख कर निमिकुल मण्डन श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज का चित्त आश्चर्यान्वित हो गया।

सीता राम रूप मन मोहन । कहि न जाय सब भाँति सुसोहन ॥
कोटिन अवध पुरी के माहीं । एक रूप दूसर कोउ नाहीं ॥

परन्तु मन को मोहित करने वाला श्री सीताराम जी का सभी प्रकार से सुन्दर अवर्णनीय स्वरूप करोड़ो श्री अयोध्या पुरियों में एक ही था, दूसरा कोई भी स्वरूप नही था।

एक वेश इक वयस सुचाली । श्याम गौर दोउ शोभा शाली ॥
राजि रहे आसन अनुकूले । अण्डन प्रति इक रूप अतूले ॥

एक ही वेश–भूषा, एक ही अवस्था, एक ही सुन्दर सी चाल–ढाल से युक्त श्याम–गौर शोभा के धाम श्री सीताराम जी प्रत्येक ब्रह्माण्ड में एक ही अतुलनीय रूप से अनुकूल आसन से सुशोभित हो रहे थे।

दो०–लक्ष्मीनिधिहिं लखाय प्रभु, रचना भाँति करोर ।
लोकन प्रति गवने सुखद, श्याल संग रस बोर ॥६३॥

इस प्रकार श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज को करोड़ों प्रकार की सृष्टि दिखाकर प्रभु श्री राम जी महाराज अपने श्याल सहित रसमग्न हो, सुख प्रदान करते हुए प्रत्येक लोक में गवन किये।

सप्त ऊर्ध्व अरु सात पताला । गये कुँअर सह तहँ रघुलाला ॥
वरुण कुबेर इन्द्र यमराई । अरु दिकपाल ब्रह्म अहिसाई ॥

जो सात ऊर्ध्व लोक (भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः व सत्य) और सात पाताल लोक (अतल, सुतल, तलातल, वितल, महातल, रसातल व पाताल) हैं वहाँ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सहित श्री राम जी महाराज गये, श्री वरुण जी, श्री कुबेर जी, श्री इन्द्र जी, श्री यमराज, सभी दिक्पालों, श्री ब्रह्मा जी व श्री शेषनाग जी आदि–––

सबहिं राम कर स्वागत कीन्हे । करि प्रणाम पग धूरिहिं लीन्हे ॥
महती पूजा करि सुख साने । प्रभुहिं बिलोकि भाग बड़ि माने ॥

–––सभी ने श्री राम जी महाराज का स्वागत किया तथा प्रणाम कर उनकी चरण–रज को शिर में धारण किया। पुनः सभी ने अतीव सुख–पूर्वक प्रभु श्री राम जी महाराज का विशिष्ट पूजन किया व उनके दर्शन को अपना परम सौभाग्य समझा।

ब्रह्म लोक ऊपर निमि राया । गवने सकल लोक सरसाया ॥
अमित विकुण्ठ राम रघुराई । गये श्याल संग सुठि सुख पाई ॥

इस प्रकार सभी लोकों में भ्रमण करते हुये निमिकुल नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी आनन्द पूर्वक श्री ब्रह्म–लोक (ब्रह्मा जी के लोक) के ऊपर गये। पुनः रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज अपने श्याल सहित सुन्दर सुख प्राप्त करते हुए असीमित वैकुण्ठों में भी गये।

गवने पुनि अवतारन लोका । वासुदेव नारायण ओका ॥
धेनु लोक बृन्दावन भाये । श्याल साथ सुख धाम सिधाये ॥

जहँ जहँ गये राम रस रूपा । परतम ब्रह्म अनादि अनूपा ॥

पुनः श्री वासुदेव, नारायण, गोलोक तथा वृन्दावन आदि अवतार लोकों में सुख के धाम श्री राम जी महाराज अपने श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ गये। रस–स्वरूप, अनादि व अनुपमेय परम ब्रह्म श्री राम जी महाराज जहाँ–जहाँ भी गये–

दो०– निज अंशी गुन तहँ तहाँ, राम अंश हरि रूप ।
सेये प्रमुदित प्रेम सों, गिन बड़ि भाग अनूप ॥६४॥

वहाँ–वहाँ श्री राम जी महाराज के अंश और भगवत स्वरूप लोकाधीशों ने अपना अंशी समझ कर आनन्द व प्रेम पूर्वक उनकी सेवा की तथा स्वयं को अनुपमेय सौभाग्यशाली समझे।

करि पूजा बहु स्तुति कीने । पुनि प्रणाम पगि प्रेम प्रवीने ॥
सब कहँ प्रभु हिय हरषि लगाये । स्वात्मा समुझि बहुत सुख छाये ॥

उन सभी प्रेम पारंगत लोकाधीशों ने प्रभु श्री राम जी महाराज के पूजनोपरान्त विविध स्तुति की। तब प्रभु ने हर्षित हो सभी को हृदय से लगा लिया और अपनी आत्मा समझ अत्यन्त सुख में समाहित हो गये।

पुनि प्रभु गे साकेत मँझारी । लक्ष्मीनिधि लै हर्ष अपारी ॥
सत चिद आनँद धाम कुमारा । देखेव मन बुधि वाणी पारा ॥

पुनः प्रभु श्री राम जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ अतिशय प्रसन्नता पूर्वक अपने नित्य धाम "साकेत लोक" गये और कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने मन, बुद्धि व वाणी से परे सच्चिदानन्दमय परम धाम के दर्शन किये।

दिव्य भव्य सुन्दर सुख रूपा । अमित तेजमय अकथ अनूपा ॥
सीता राम मनोहर जोरी । श्यामा श्याम सुवयस किशोरी ॥

जो दिव्य, भव्य, सुन्दर, सुखस्वरूप, असीमित तेजवान, अकथनीय एवं अनुपमेय मनोहारी युगल, नित्य किशोर अवस्था से युक्त, श्यामा–श्याम श्री सीताराम जी हैं,–––

शोभा सिन्धु युगल तहँ भाये । देखि अनंग अनन्त लजाये ॥
रसमय रसिक राज रघुलाला । सुख सिंहासन सोह रसाला ॥

–––शोभा के सागर वे दोनो वहाँ सुशोभित हो रहे थे। उन्हे देख कर अनन्त कामदेव भी विलज्जित हो जाते थे। ऐसे रस स्वरूप रसिकाधिराज रघुनन्दन श्री राम जी महाराज उस दिव्य साकेत धाम में सुख पूर्वक सिंहासन पर सुशोभित हो रहे थे।

दो०– लक्ष्मीनिधि देखे सुखद, भाम भगिनि छवि धाम ।
आनँद पाये अति अधिक, अनुपम अकथ अकाम ॥६५॥

श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज ने नित्य साकेत धाम में सुख प्रदायक, शोभा के धाम अपने बहन–बहनोई श्री सीताराम जी को देखकर अनुपमेय, अकथनीय, निष्काम एवं अत्यधिक आनन्द

प्राप्त किया।

सेवहिं अमित विकुण्ठाधीशा । अरु अवतार अनन्त सु श्रीशा ॥
परिकर प्रमुदित प्रभु कहँ धेवहिं । सेवा साज लिये सब सेवहिं ॥

श्री सीताराम जी की सेवा असीमित वैकुण्ठाधीश्वर और अनन्त विष्णु स्वरूप अवतार कर रहे थे। प्रभु श्री राम जी महाराज के परिकर आनन्द पूर्वक सेवा की सामग्री लिये हुए उनका पूजन व सेवा कर रहे थे।

आपुहिं देख्यो आपु समाना। सीताराम सेव सुख साना ॥
दरपन महँ जस अपनो रूपा । अपनहि देखै तिमि निमिभूपा ॥

वहाँ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने स्वयं को अपने ही समान (जैसे वे हैं) देखा जो श्री सीताराम जी की सेवा में सुख पूर्वक सने हुये थे। जिस प्रकार कोई दर्पण में अपना प्रतिविम्ब देखता है उसी प्रकार वहाँ निमिराज श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने आप को देखा।

भे प्रसन्न सो रूप विलोकी । यथा सरुज दुख नसे विशोकी ॥
अंश रूप आपन निमि वारा । अन्य अण्ड के गिने कुमारा ॥

वे अपना वह रूप देखकर ऐसे प्रसन्न हुए जैसे रोगी, रोग का दुख समाप्त होने पर सुखी हो जाता है। निमिनन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अन्य ब्रह्माण्डों में देखे हुए अपने रूप को अपना अंश स्वरूप समझा।---

आपुहिं नित्य एक रस रासा। देखेउ सीता राम सकासा ॥
राम सीय पावत प्रिय प्यारा । बहुत वर्ष तहँ रहे सुखारा ॥
राम रजाय राम के साथा । आयो अवध बहुरि निमिनाथा ॥

---उन्होने स्वयं को श्री सीतराम जी के समीप नित्य एक रस उन्ही के रंग में रँगे हुए देखा। श्री सीताराम जी का प्रिय प्यार प्राप्त करते हुए वे बहुत वर्षो तक सुख पूर्वक वहाँ रहे। पुनः श्री राम जी महाराज की आज्ञा से श्री राम जी महाराज के साथ निमिकुल नरेश श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री अयोध्या पुरी वापस आ गये।

दो०–जेहिं आसन बैठे हते, जैसेहिं राजा राम ।
श्याल सहित सोहे तहाँ, तैसहिं लहि मन काम ॥६६॥

श्री अयोध्या पुरी में जिस प्रकार अपने श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ श्री राम जी महाराज जिस आसन में यात्रा के पूर्व विराजे हुये थे उसी प्रकार बैठे ही बैठे उन्होने अपनी मनोकामना प्राप्त कर ली।

उभय दण्ड महँ वर्ष करोरी। दूनहु यात्रा भई विभोरी ॥
लक्ष्मीनिधि अतिशय अनुरागे । सुखद स्वप्न लखि जनु पुनि जागे ॥

उनकी करोड़ों वर्षो की विभोर कर देने वाली दोनो (अनन्त लोंकों व साकेत घाम की) यात्रायें

दो दण्ड (अल्प समय) में ही पूर्ण हो गयीं। श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज इस प्रकार अत्यधिक अनुराग में भर गये जैसे वे कोई सुखदायक स्वप्न देख कर जागे हों।

सुफल मनोरथ भये कुमारा। राम कृपा चिद धाम निहारा॥
निज नयनन अछतहिं यह देही। लखेव परम पद परम सनेही॥

कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी सुफल मनोरथ हो गये उन्होंने श्री राम जी महाराज की कृपा से उनके सच्चिदानन्दमय धाम "श्री साकेत" का दर्शन किया। इस प्रकार श्री राम जी महाराज के परम स्नेही कुमार ने इस शरीर के रहते ही अपने नेत्रों से परम पद का दर्शन प्राप्त कर लिया।

प्रभु की महिमा आँखिन देखी। परतम ब्रह्म रूप सविशेषी॥
आपुहिं लखि साकेत सुधामा। मानेव मोद अमित अभिरामा॥

अपने प्रभु श्री राम जी महाराज की महान महिमा और पूर्णतम परब्रह्म का विशेष स्वरूप उन्होंने अपने नेत्रों से दर्शन किया। स्वयं को परम पद श्री साकेत धाम में देखकर उन्होने मनभावन व अपार आनन्द को प्राप्त किया।

जीतहिं लियो परम पद काहीं। किय परतीति महा मन माहीं॥
राम सीय अक्षय अति प्यारा। चाख्यो अमृतमय सुखसारा॥

अपने शरीर के रहते ही मैने परम पद प्राप्त कर लिया ऐसा महान विश्वास उन्होने अपने मन में कर लिया, साथ ही मैने श्री सीताराम जी का अविनाशी प्रेम जो सुखों का सार व अमृतमय है उसका भी आस्वादन कर लिया।

दो०—अण्डन सृष्टी बहु विधिहिं, तथा लोक व्यवहार।
अरु अनन्त हरि धाम लखि, हिय महँ करत बिचार॥६७॥

विविध प्रकार के असीमित ब्रह्माण्डों की सृष्टि, लोकों के व्यवहार तथा अनन्त भगवद्धामों का दर्शन कर श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज अपने हृदय में विचार करने लगे कि——

राम कृपा सेवा सुख सारा। मिली धाम महँ अवशि उदारा॥
मज्जन अशन शयन रस केली। प्रभु संग होइहि अवशि अकेली॥

———श्री राम जी महाराज की कृपा से सुखों की सारभूता उनकी 'सेवा' मुझे परम धाम में अवश्य ही प्राप्त होगी तथा प्रभु श्री राम जी महाराज के साथ अवश्य ही मेरी स्नान, भोजन, शयन एवं एकान्तिक रसमयी क्रीड़ायें सम्पन्न होगी।

भोक्ता राम भोग्य मोहिं मानी। भोगिहैं अवशि तहाँ सुखसानी॥
नित्य राम कर मैं प्रिय श्याला। भगिनि मोर नित निमि कुल बाला॥

मेरे भोक्ता श्री राम जी महाराज अवश्य ही वहाँ (साकेत धाम में) सुख में सने हुए अपना भोग्य समझकर, मेरा उपभोग करेंगे। मैं श्री राम जी महाराज का शाश्वत व प्रिय श्याल हूँ तथा निमिकुल नन्दिनी श्री सीता जी मेरी शाश्वत अनुजा हैं।———

दृढ़ निश्चय करि प्रभू पगन में । गिरेउ कुँअर मन मोद मगन में ॥
कहेव कृपा तव दीन दयाला । पायो महा मनोरथ श्याला ॥

–––ऐसा दृढ़ निश्चय कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी मन में आनन्द मग्न हो, प्रभु श्री राम जी महाराज के चरणों में गिर पड़े तथा बोले– हे दीनों पर दया करने वाले स्वामिन्! आपकी कृपा से आपके श्याल लक्ष्मीनिधि ने महान मनोरथ प्राप्त कर लिया।

अनुपम अकथ अनंत अथाहा । अति विचित्र देख्यों सुरनाहा ॥
प्रभो परम पद सुखद स्वधामा । दिखरायो जन पूरण कामा ॥

हे देव–देवेश्वर श्री राम जी महाराज! मैंने अनुपमेय, अकथनीय, अथाह तथा अत्यन्त विचित्र अनन्त ब्रह्माण्डों के दर्शन किये। हे प्रभु! आप अपने सेवकों की इच्छा को पूर्ण करने वाले हैं, आपने अपनी कृपा कर मुझे अपने सुख प्रदायक परम पद साकेत धाम का दिव्य दर्शन कराया है।

दो०– अस कहि पुनि पुनि पग परेउ, जनक सुवन सरसाय ।
परमानन्द कृपायतन, रहे हृदय लपटाय ॥६८॥

ऐसा कहकर जनक सुवन श्री लक्ष्मीनिधि जी आनन्द–विभोर हो बारम्बार उनके चरणों में प्रणाम किये तब परमानन्द स्वरूप, परम कृपालु प्रभु श्री राम जी महाराज ने उन्हें अपने हृदय से लिपटा लिया।

यहि प्रकार मिथिलेश कुमारा । रसमय करत चरित्र उदारा ॥
भगिनि भाम सेवा वश कीन्हे । पगे प्रेम रस रहहिं प्रवीने ॥

इस प्रकार मिथिलेश कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज, रस से परिपूर्ण और उदार चरित्र कर रहे थे। परम प्रवीण वे, अपने बहन और बहनोई श्री सीताराम जी को, सेवा से वशीभूत किये हुए प्रेम और रस में पगे रहते थे।

अमित चरित तिनके रस पागे । प्रेमिन सुखद सुधा सम लागे ॥
शेष शारदा सकैं न गाई । मोहि कुबुद्धि की काह बसाई ॥

हमारे सद्‌गुरु देव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– मिथिलेश कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज के अनेक रसमय चरित्र हैं जो प्रेमियों के लिये सुखदायी व अमृत तुल्य हैं। उनका वर्णन तो श्री शेष जी और श्री सरस्वती जी भी नहीं कर सकते फिर मुझ बुद्धिहीन जीव की बात ही क्या है।

जेहिं प्रकार सुख पावहिं रामा । सोइ करहिं निमि कुँअर ललामा ॥
तैसहिं सिद्धि प्रेम सरसानी । सीय राम सुन्दर सुखदानी ॥

निमिकुल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी वही चेष्टायें करते थे जिनसे उनके प्रभु श्री राम जी महाराज सुख प्राप्त करें। उसी प्रकार श्री सिद्धि कुँअरि जी भी प्रेम में सरसायी हुई श्री सीताराम जी को सुन्दर सुख प्रदान करने वाले कृत्य किया करती थीं।

पति अनुकूल सुखद शुचि सारी । कर नित लीला ललित उदारी ॥
भानु प्रभा सम दम्पति जोरी । परम तेज मय प्रेम विभोरी ॥
मिथिला गगन उदित दिन राती । सत जन कमल खिले बहु भाँती ॥

उदारमना श्री सिद्धि कुँअरि जी अपने प्राण–वल्लभ श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज के अनुकूल, सुख प्रदायी, पवित्र एवं सुन्दर चरित्र किया करती थीं। सूर्य और सूर्य की किरणों (प्रभा) के समान उन दम्पति की परम तेजोमय, प्रेम विभोर जोड़ी श्री मिथिला पुरी के आकाश में दिन–रात उदित बनी रहती थी जिसका दर्शन कर संत–जन रूपी विविध प्रकार के कमल खिले रहते थे।

दो०–एक पुत्र अनुरूप निज, सिद्धि जन्यो सुख धाम ।
सैद्धी नामक कन्यका, भक्ति रूप अभिराम ॥६९॥

लक्ष्मीनिधि वल्लभा श्री सिद्धि कुँअरि जी ने अपने अनुरूप सुखों के सारभूत एक सुन्दर पुत्र तथा श्री सैद्धी नामक भक्ति स्वरूपा सुन्दर पुत्री को जन्म दिया।

लक्ष्मीनिधि जो पुत्र ललामा । धर्मध्वज दीन्हे गुरु नामा ॥
जनक सुवन सम प्रभु कर प्रेमी । भयो वंशधर जस निमि नेमी ॥

श्री लक्ष्मीनिधि जी के सुन्दर पुत्र का नामकरण गुरुदेव श्री याज्ञबल्क्य जी ने "श्री धर्म ध्वज किया जो जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी के समान ही प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रेमी एवं श्री निमिवंश के अनुरूप ही वंश–धारक हुये।

जनक लड़ैती अमित दुलारा । लह्यो योग सब विधिहिं उदारा ॥
योग ज्ञान भक्ती वैरागा । कुल अनुरूप सहज जिय जागा ॥

कुमार श्री धर्मध्वज जी ने जनक लाड़िली श्री सिया जू से उदारता पूर्वक असीमित दुलार का संयोग प्राप्त किया था। उनके हृदय में अपने कुल के अनुरूप सहज ही योग, ज्ञान, भक्ति व वैराज्ञ आदि साधन उत्पन्न हो गये थे।

सब प्रकार लखि योग कुमारहिं । लक्ष्मीनिधि करि हिये विचारहिं ॥
राम सिया सम्मत शुचि पाई । राज सिंहासन दिय बरियाई ॥

तदनन्तर श्री लक्ष्मीनिधि जी महाराज ने कुमार श्री धर्म ध्वज जी को सभी प्रकार से योग्य देख, अपने हृदय में भली प्रकार विचार तथा श्री सीताराम जी की पवित्र सहमति प्राप्त कर हठात् उन्हें राज्य सिंहासन में अभिषिक्त कर दिया।

उत्सव राज तिलक भो भारी । लखि रुचि राम सिया सुखसारी ॥
दम्पति लक्ष्मीनिधि लव लाई । छके प्रेम सब समय बिताई ॥

सुख निधान श्री सीताराम जी की इच्छा को देखकर, राज कुमार श्री धर्म ध्वज जी के राज्याभिषेक का महान महोत्सव सम्पन्न हुआ। दम्पति श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँअरि जी श्री सीताराम जी में अपने चित्त को लगाये तथा उनके प्रेम में छके हुये अपना सम्पूर्ण समय व्यतीत कर रहे थे।

दो०— ऊर्ध्व रेत बनि तेजमय, जनक कुँअर युत नारि।
भजन करत मन मोद भरि, बहत राम रस धारि ॥७०॥

जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी पत्नी श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित परम तेजोमय 'ऊर्ध्वरेता' होकर (ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर) मन में आनन्द भरे हुए श्री सीताराम जी का भजन कर रहे थे उनके हृदय में श्री राम–प्रेम की रस धारा प्रवाहित हो रही थी।

बीतै कैयक वर्ष हजारा। यहिं विधि बढ़त भजन रसधारा॥
बने परम परमारथ रूपा। दम्पति सब विधि अमल अनूपा॥

इस प्रकार कई हजार वर्ष व्यतीत हो गये और उनके भजन में प्रभु प्रेम रस का प्रवाह बढ़ता ही गया तथा वे दम्पति सभी प्रकार से निर्मल और अनुपमेय परम परमार्थ स्वरूप हो गये।

उहाँ अवध रघुकुल मणि रामा। अनुहर लीला ललित ललामा॥
कीर्ति उदात विमल सुखकारी। रामचन्द्र राजत धनुधारी॥

वहाँ श्री अयोध्यापुरी में रघुवंश विभूषण सारंग–धन्वा श्री राम चन्द्र जी महाराज सुन्दर नर लीला का अनुकरण कर, अपनी पवित्र, विशद व सुखदायी यश चन्द्रिका विस्तारित करते हुये विराज रहे हैं।

प्रभु समर्थ उत्तम सुश्लोका। महा साधु गुण दिव्यन ओका॥
परिपूरण सौलभ सौशीला। वर वात्सल्य अकारण लीला॥

वे प्रभु श्री राम जी महाराज सर्व–समर्थ, उत्तम–श्लोक व महान साधु, दिव्य गुणों के धाम, सुलभता, सुशीलता तथा सुन्दर वात्सल्य आदि गुणों से परिपूर्ण, निष्प्रयोजन लीला करने वाले–––

परम आर्य लक्षण शुभकारी। जड़ चेतन जग करैं सुखारी॥
महा पुरुष कोशलपति भाये। सीय सहित राजत रस छाये॥
शील निधान महा महाराजू। शासत अवध लोक सुखकाजू॥

शुभ प्रदायक, परम आर्य लक्षणों से युक्त, जड़–चेतनात्मक सम्पूर्ण संसार को सुखी करने वाले, महापुरुष, कौशल नरेश श्री राम जी महाराज अपनी प्रियतमा श्री सीता जी के सहित रसाप्लावित हुये सुशोभित हो रहे थे। वे शील के निधान महाराजाधिराज संसार के सुख के लिए श्री अयोध्यापुरी का शासन कर रहे थे।

दो०— विधि हरि हर सनकादि मुनि, नारद व्यास महान।
करहिं उपासन राम की, सह लोकेश सुजान ॥७१॥

श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शंकर जी, श्री सनकादिक मुनि, श्री नारद जी तथा श्री व्यास जी आदि महामहिम, सर्वज्ञ भी लोक–पतियों सहित श्री राम जी महाराज की उपासना करते हैं।

महा सिद्ध सिधि लोकहिं केरे। पुण्यवान पुण धामहिं तेरे॥
आइ करहिं रघुपति पद सेवा। निरखत रहहिं राम रुख देवा॥

सिद्ध लोक से महान सिद्धगण तथा पुण्य–लोक से पुण्यवान–जन आ–आकर श्री राम जी महाराज की चरण सेवा करते हैं तथा उनकी रुचि देखते हुये संसार के सभी कार्य करते रहते हैं।

विद्याधर किन्नर गन्धर्वा। गन्धर्वी अपसरा सुसर्वा ॥
हनुमदादि वर वानर वीरा । सेवहिं सब कृपालु मति धीरा ॥

विद्याधर (एक प्रकार की देव योनि), किन्नर, गन्धर्व, गन्धर्वियाँ व अप्सरायें तथा श्री हनुमान जी आदि श्रेष्ठ वानर वीर, परम बुद्धिमान कृपालु श्री राम जी महाराज की सेवा करते हैं।

बालमीक कौशिक तप शाली । अरु वशिष्ठ मुनिवर जाबाली ॥
राम चरित कहि सुनि शुचि नित्या । राम उपासन करहिं सुभृत्या ॥

आदि–कवि श्री बाल्मीकि जी, परम तपस्वी श्री विश्वामित्र जी, मुनिवर श्री बशिष्ठ जी और श्री जाबालि जी आदि ऋषिश्रेष्ठ श्री राम जी महाराज के पवित्र चरित्र का नित्य कथन व श्रवण करते हैं तथा उनके सुन्दर सेवक बनकर श्री राम जी महाराज की उपासना करते हैं।

तीर्थ पाद सब लोक शरण्या । सुर नर मुनि कर गती वरण्या ॥
प्रणत पाल भृत्येष्ट प्रदाई । पूर्ण काम रघुनाथ गोसाईं ॥

श्री राम जी महाराज के चरण कमल सम्पूर्ण लोकों व देवताओं, मनुष्यों एवं मुनियों की श्रेष्ठ गति, आश्रय व उद्धारक हैं। वे हृषीकेश (इन्द्रियों के स्वामी), आश्रित जन प्रति पालक, सेवकों की इच्छा को पूर्ण करने वाले व पूर्ण काम हैं।

भव सागर बोहित प्रभु पादा। शासत अवध राज अहलादा ॥
सीता राम प्रीति सुख सानी। अकथ अलोक अनुप रसखानी ॥
अगम अगाध न जाय बखानी। राजत दोउ अवध रजधानी ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–प्रभु श्री राम जी महाराज के चरण कमल संसार सागर से पार उतरने के लिए दृढ़ 'नौका' के समान हैं वे प्रभु आह्लाद पूर्वक श्री अयोध्यापुरी का राज्य शासन कर रहे हैं। श्री सीताराम जी की पारस्परिक प्रीति सुख में सनी हुई, अकथनीय, अलौकिक, अनुपमेय, रस की खानि, अगम्य व अथाह है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वे युगल श्री सीताराम जी श्री अयोध्यापुरी में सुशोभित हो रहे हैं।

दो०–प्रजा पाल प्रभु वेद विधि, तन मन धन सब देय ।
प्राणहुँ ते करि प्यार अति, जग सों नहिं कछु लेय ॥७२॥

प्रभु श्री राम जी महाराज प्राणों से भी अधिक प्रिय, अपनी प्रजा को अतिशय प्यार करते हुये वेदोक्त विधि से अपने शरीर, मन व धन को अर्पितकर संसार से निर्पेक्ष हो प्रजा पालन कर रहे थे।

भ्रातन प्यारहिं राम अपारा। कहि न जाय जस भावन हारा ॥
दिन दिन सकल लोक की प्रीती। राम सिया पद बढ़त अतीती ॥

श्री राम जी महाराज अपने भ्राताओं को असीम प्यार करते हैं उनके हृदय में अपने भ्रातृगणों

के प्रति जैसे भाव थे उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। सम्पूर्ण लोकों की श्री सीताराम जी के चरणों के प्रति प्रीति अनुदिन अत्यधिक वृद्धिंगत होती जाती थी।

त्रिभुवन आनन्द आनन्द छायो । राम राज सुख सुजस सुहायो ॥
युग युग सुत सुखकर छबि छाये । चारहुँ भ्रातन जायन जाये ॥

श्री राम जी महाराज के राज्य में, तीनों लोकों में आनन्द, आनन्द और मात्र आनन्द ही छाया हुआ था तथा सुख और सुन्दर कीर्ति फैली हुई थी। श्री राम, लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न चारों भ्राताओं की रानियों ने सुखकारी व सौन्दर्य परिपूर्ण दो–दो पुत्रों को जन्म दिया।

रूप राशि गुण गेह सोहाने । सदृश पिता सबहिं सरसाने ॥
जन्म जनेऊ और विवाहा । संस्कार भे सहित उछाहा ॥

वे सभी राजकुमार रूप की राशि, गुणों के धाम और अपने–अपने पिता के समान ही शोभा सम्पन्न थे। उनके जन्म, यज्ञोपवीत और विवाह आदि संस्कार आनन्द पूर्वक सम्पन्न हुए।

राम सिया सुत लव कुश दोऊ । महावीर जाये जग जोऊ ॥
राम सरिस गुण आगर भयऊ । मातु पिता मातुल सुख दयऊ ॥

श्री सीताराम जी के दोनों पुत्रों के नाम श्री लव और श्री कुश जी थे जो संसार में महान पराक्रमी व विख्यात शूरवीर हुये हैं। वे दोनो श्री राम जी महाराज के समान ही श्रेष्ठ गुणों के भण्डार तथा अपने माता–पिता और मातुल (मामा जी) को सुख प्रदान करने वाले हुये हैं।

दो०– राम चरित रसमय सुखद, धारे दूनहु भाइ ।
त्रिभुवन मोहति कहनि तिन, आकर्षक सुखदाइ ॥७३॥

वे दोनों भाई (श्री लव और श्री कुश जी) श्री राम जी महाराज के रसमय व सुख प्रदायक चरित्र को हृदय में धारण (कण्ठस्थ) किये हुए थे तथा उसे वर्णन करने की उनकी कला तीनों लोकों को मोहित करने वाली आकर्षक तथा सुखदायिनी थी।

सदा एक रस ज्ञान अखण्डा । अच्युत वीर्य कौशलामण्डा ॥
पूर्ण काम व्यापक अविनाशी । चिदानन्द निर्गुण गुणराशी ॥

श्री कौशल पुरी (अयोध्या पुरी) के अलंकार श्री राम जी महाराज कभी परास्त न होने वाले, सदैव एक समान, अखण्ड ज्ञान से युक्त, पूर्ण काम, सर्व–व्यापक, अविनाशी, सच्चिदानन्दमय, निर्गुण, गुणों की राशि–––

अज अद्वैत अनामय स्वामी । हृशीकेश प्रेरक उर यामी ॥
मायापति प्रभु माया पारा । कारण कार्य परे अविकारा ॥

–––जन्म न धारण करने वाले (अजन्मा), अद्वितीय, निर्मल, इन्द्रियों के स्वामी, हृदय के प्रेरणा–श्रोत तथा हृदय के भावों को जानने वाले, माया के स्वामी, माया के पार, कारण व कार्य के परे, विकार रहित व सबके स्वामी हैं।

जग शिक्षण हित कीन्ह विचारा। प्रभु समर्थ सुठि करुणाकारा॥
करहुँ अखण्ड यज्ञ बिनु कामा। शास्त्र रीति लै नियम ललामा॥

ऐसे सर्व सामर्थ्यवान, करुणा के विग्रह व परम सुशोभन श्री राम जी महाराज ने संसार को शिक्षा देने के लिए विचार किया कि– मैं निष्काम होकर शास्त्र रीति के अनुसार सुन्दर नियम ग्रहण कर 'अखण्ड यज्ञ' का सम्पादन करुँ।

सीय सहित प्रभु दीक्षित भयऊ। यज्ञ माहिं गुरु आयसु लयऊ॥
त्रिगुणातीत आत्म वर यज्ञा। प्रेम यज्ञ अरु न्यास सुतज्ञा॥
ब्रह्म यज्ञ आदिक वर यागा। तेहिं महँ किये प्रधान सुभागा॥

तदनन्तर अपने गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी महाराज की आज्ञा से प्रभु श्री राम जी महाराज अपनी धर्मपत्नी श्री सीता जी सहित यज्ञ के हेतु दीक्षित हुए तथा तीनों गुणो से परे व परम सौभाग्य शाली श्री राम जी महाराज ने आत्म–यज्ञ, प्रेम–यज्ञ, न्यास–यज्ञ, ज्ञान–यज्ञ, ब्रह्म–यज्ञ आदि सुन्दर व प्रधान यज्ञों का अनुष्ठान किये।

दो०–गुरु बशिष्ठ सह और मुनि, यज्ञाचार्य महान।
करवावत यज्ञहिं सविधि, तनिक छिद्र नहिं आन॥७४॥

रघुकुल गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी सहित अन्य मुनिगण उनके यज्ञों के महान यज्ञाचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो, विधिपूर्वक यज्ञों का सम्पादन करा रहे थे, उनमें किंचित त्रुटि नहीं दिखाई देती थी।

वर्ष त्रयोदश सहस अखण्डा। आहुति चलति रही यशमण्डा॥
राम सीय आहुति बिन तोरे। दिये सविधि सुर लहे विभोरे॥

इस प्रकार तेरह हजार वर्षो तक अखण्ड कीर्ति–विवर्द्धिनी आहुति चलती रही तथा श्री सीताराम जी अविराम (अनवरत) विधिपूर्वक आहुति देते रहे, जिसे देवताओं ने विभोर हो ग्रहण किया।

यज्ञ समापत अवसर जानी। समारोह तहँ भयो महानी॥
जनक सुनैना सह परिवारा। लक्ष्मीनिधि सिधि सहित सिधारा॥

यज्ञ समाप्ति का शुभ समय उपस्थित होने पर वृहद उत्सव का आयोजन हुआ। जिसमें सपरिवार श्री जनक जी महाराज श्री सुनैना जी व श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित श्री लक्ष्मीनिधि जी पहुँचे।

लै समाज मिथिला पुर वासी। आये अवध प्रेम रस रासी॥
हनुमदादि कपि ऋषि मुनि सन्ता। प्रथमहिं छाये रहे अनन्ता॥

इस अवसर पर सम्पूर्ण मिथिलापुर वासी ससमाज प्रेम–रस में सराबोर हुए श्री अयोध्यापुरी आये। श्री हनुमान जी आदि वानर वीर, ऋषि, मुनि और सन्त आदि अनन्त–जन प्रारम्भ से ही वहाँ उपस्थित थे।

द्वीप द्वीप ते सिय वर प्रेमी। आये भूलि स्वघर सुधि नेमी ॥
देश देश अरु जनपद तेरे। आयी भीर कहै को टेरे ॥

द्वीप–द्वीपान्तरों से सीताकान्त श्री राम जी महाराज के प्रेमीजन अपने घर की सुधि–बुधि व सभी रीति–रिवाजों को भूलकर श्री अयोध्या पुरी आ गये। देश–देशान्तरों तथा अयोध्या जनपद से इतना जन समूह उमड़ पड़ा जिसका वर्णन कोई नहीं कर सकता।

दो०–अकथ अनूपम सबहिं कर, स्वागत भयो महान ।
आनँद सागर उमड़ि चल, सबहीं सबहिं भुलान ।।७५।।

उस समय श्री अयोध्या पुरी में सभी समागत जनों का अकथनीय, अनुपमेय एवं महान स्वागत हुआ तथा आनन्द का असीम सागर उमड़ पड़ा जिससे लोग अपना सर्वस्व (शरीर, सम्पदा व सदन) भूल गये।

गुरुहिं पूजि प्रभु नायउ माथा। पुलकित तन नयनन भरि पाथा ॥
गोधन द्रव्य अमित करि आगे। दिये भेंट उर अति अनुरागे ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज ने गुरुदेव श्री वशिष्ठ जी का विधि विधान से पूजन कर सिर झुका प्रणाम किया तथा पुलकित शरीर व अश्रुपूरित नेत्रों से अनगिनत गोधन (गायें) उनके आगे लाकर अत्यन्त अनुराग पूर्वक भेंट में दीं।

अवध सहित उत्तर दिशि केरी। दीन्ही भूमि दक्षिणा हेरी ॥
यहिं विधि सब आचार्यन काहीं। सब दिशि भूमि दिये सुख माहीं ॥

श्री राम जी महाराज ने अपने गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी महाराज को श्री अयोध्या पुरी के सहित उत्तर दिशा की भूमि यज्ञ की दक्षिणा में अर्पित की। इसी प्रकार उन्होने सुखपूर्वक सभी यज्ञाचार्यो को सम्पूर्ण दिशाओं की भूमि दक्षिणा में प्रदान की।

महा दान भो यज्ञ मझारा। सकल खोलाये कोष किवारा ॥
सुर मुनि सन्त विप्र अति तोषे। मोद महा कहि जात न मोसे ॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– श्री राम जी महाराज के यज्ञ में महान दान हुआ और सभी कोषागारों के द्वार खुलवा दिये गये। देवता, मुनि, सन्त तथा ब्राह्मणों को पूर्णतः संतुष्ट किया गया, उस समय श्री अयोध्या पुरी में जो महान आनन्द हुआ उसका वर्णन मुझसे नहीं किया जा रहा है।

मागधादि याचक मन भाये। सहित विदूषक बहु धन पाये ॥
आगन्तुक सिगरे नर नारी। दान मान लहि भये सुखारी ॥

बिदूषकों सहित भाँट व भिखमंगे आदि बहुत सा मनचाहा द्रव्य प्राप्त किये। सभी आगन्तुक स्त्री–पुरुष सम्मान व दान प्राप्त कर अत्यन्त सुखी हुए।

दो०–पशु पक्षी चण्डाल लौं, जल थल जीव जो आहिं।
यज्ञ बीच तोषित भये, भोजन करि सरसाहिं ॥७६॥

श्री राम जी महाराज के यज्ञ में पशु, पक्षी व स्वपच (छोटी जाति के जीव) तथा जलचर व थलचर जितने भी जीव हैं वे सभी सुस्वादु भोजन प्राप्त कर अतिशय संतुष्ट व आनन्दित हुये।

यज्ञ सुथल बहु स्वर्ण पहारा। रजत अमित कहि जाय न पारा ॥
मणि माणिक मुक्ता नव रत्ना। भूधर सम तहँ लगे अयतना ॥

यज्ञस्थल में सोने–चाँदी के असंख्य ढेर लगे हुये थे जो पर्वतों के समान प्रतीत होते थे, जिनका वर्णन कर पार नहीं पाया जा सकता। मणि, माणिक्य, मुक्ता इत्यादि नौ प्रकार के रत्नों की राशि पर्वतों के समान बिना किसी सुरक्षा व्यवस्था के यज्ञस्थली में रखी हुई थी।

अमित राशि पक्वान मिठाई। नित नित बनै सुश्रृंग जनाई ॥
दूध दही घृत सरिता बहई। नित्य चुकै पुनि नित नइ लहई ॥

वहाँ नित्य प्रति असीमित मात्रा में पक्वान तथा मिठाइयाँ बनती थी जो पर्वत शिखरों के समान प्रतीत होती थीं तथा दूध, दही और घी की तो वहाँ नदियाँ ही प्रवाहित हो रही थीं। उपर्युक्त सम्पूर्ण सामग्री नित्य ही समाप्त हो जातीं थी और पुनः नित्य नवीन निर्मित होती थीं।

अन्नदान गोदान अपारा। हय गय रथ को कवि कहि पारा ॥
दासी दास सुकन्या दाना। नित नित होय देय सनमाना ॥

श्री राम जी महाराज के यज्ञ में अनाज, गाय, घोड़ा, हाथी, तथा रथ आदि का असीमित परिमाण में दान होता था जिसका वर्णन कर कोई कवि पार नही पा सकता है। वहाँ नित्य प्रति ससम्मान सेवक, सेविकायें तथा सुन्दर कन्याओं का दान भी होता था।

भयो न है नहिं होवन हारा। यज्ञ कियो जस राम कुमारा ॥
नित्य अकाश करोर विमाना। सुर नर नारि सुसोह सुजाना ॥

हमारे सद्गुरु देव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– चक्रवर्ती कुमार श्री राम जी महाराज ने जैसा यज्ञ किया है, वैसा यज्ञ न तो हुआ है न हो रहा है और न होने वाला है अर्थात् तीनों कालों में नहीं है। हे सुजान गणों! वहाँ के आकाश में नित्य ही करोड़ों विमान दिखाई देते थे जिनमें देवता, मनुष्य और उनकी स्त्रियाँ सुशोभित होती थी।

दो०–जय जय कहि वरषहिं सुमन, सुख सह हनैं निसान।
अहनिशि नित यज्ञान्त लौं, मोद न जाय बखान ॥७७॥

वे सभी यज्ञ प्रारम्भ से यज्ञ की समाप्ति तक नित्य प्रति निरन्तर जय जयकार करते हुए फूलों की विपुल वर्षा करते थे तथा सुख पूर्वक नगाड़े बजाते थे जिसे श्रवणकर सभी के हृदय अवर्णनीय आनन्द से आपूरित हो जाते थे।

तैसहिं पुहुमि पंच ध्वनि छाई । होय कोलाहल अति अधिकाई ॥
सुर मुनि सिद्ध सन्त सब कोई । राम प्रशंसहिं प्रमुदित होई ॥

उसी प्रकार भूमि में भी पंच ध्वनि (जय–ध्वनि, बन्दी–ध्वनि, वेद–ध्वनि, मांगलिक गीत–ध्वनि व नगाड़ों की ध्वनि) छाई रहती थी जिससे अत्यधिक कोलाहल (शोर) होता रहता था। उस समय देवता, मुनि, सिद्ध तथा सन्त समुदाय आदि सभी जन आनन्द पूर्वक श्री राम जी महाराज की प्रशंसा कर रहे थे।

कहि न जाय सो आनँद भारी । भूमि व्योम जानहिं नर नारी ॥
रामहि बोलि सुगुरु सरसाने । बोले बचन हृदय हरषाने ॥

वहाँ के महान आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता उसे तो उस समय के भूमि व आकाश निवासी स्त्री–पुरुष ही जान सकते हैं। अनन्तर रघुकुल गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी महाराज ने आनन्दपूर्वक श्री राम जी महाराज को बुलाया और हृदय हर्षिणी वाणी से बोले–––

राज करन हम विप्र न जानहिं । क्षत्री कुशल सुशास्त्र बखानहिं ॥
ताते भूमि तुमहिं सब देहीं । करहु राज रघुवर मम नेही ॥

––हे श्री राम जी! हम ब्राह्मण, राज्य–शासन करना भला क्या जाने? शास्त्रों ने बर्णन किया है कि– क्षत्री ही राज्य–कार्य करने में कुशल होते हैं। अतएव हे प्रिय वत्स रघुनन्दन! हम यज्ञ दक्षिणा में प्राप्त समग्र भूमि आपको सौंपते हैं, आप ही राज्य–शासन का कार्य सम्हालें।

राम कहा मोहि राज न कामा । जानहिं गुरुवर भाव ललामा ॥
जो चाहें सो मोहिं तजि स्वामी । देहिं राज उर अन्तरयामी ॥

अपने आचार्य श्री बशिष्ठ जी महाराज के वचनों को श्रवण कर श्री राम जी महाराज ने कहा– हे नाथ! आप श्री गुरुदेव तो मेरे सुन्दर भावों को जानते ही हैं कि– मुझे अब राज्य से कोई प्रयोजन नहीं है। परन्तु यदि आपकी यही इच्छा है तो हे अन्तर्यामिन! आप, मेरे अतिरिक्त जिसे भी चाहें उसे यह राज्य प्रदान कर दें।

छं०– गुरु जानि प्रभुकर भाव भल, प्रमुदित कुशहिं बुलवायऊ ।
दिय द्रुतहिं आयसु बरबशहिं, बुध वेद विधि करवायऊ ॥
पुनि अवध अनुपम राज महँ, करि तिलक मुनिवर सुख लहे ।
छबि छत्र छहरत सिर चमर, हर्षण हरषि आनँद बहे ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के सुन्दर भाव को समझकर, गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी ने आनन्द पूर्वक रामात्मज राजकुमार श्री कुश जी को बुलवाया और शीघ्र ही अपनी आज्ञा देकर हठात् वेद विधि पूर्ण करायी तथा श्री अयोध्यापुरी के अनुपमेय राज्य में श्री कुश जी का 'राजतिलक' कर सुख प्राप्त किया। हमारे श्री आचार्य महाप्रभु श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–उस समय श्री कुश जी के शीश में छत्र व चवँर चलते हुए उनकी अनुपमेय छबि का दर्शन कर यह दास भी आनन्द के प्रवाह में प्रवाहित हो गया।

सो०—उत्सव गुरुवर कीन्ह, राज तिलक कुश केर करि।
सबहीं आदर दीन्ह, गुरु बशिष्ठ करतूत कहँ ॥७८॥

गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी महाराज ने श्री राम जी महाराज के ज्येष्ठ पुत्र श्री कुश जी का राज्य तिलक कर महान महोत्सव किया। उस समय वहाँ उपस्थित सभी सज्जन वृन्दों ने रघुकुल के आचार्य श्री बशिष्ठ जी महाराज के इस कार्य का पूर्ण सम्मान किया।

लव अरु भ्रातन के सुत काहीं। करि विचार मुनिवर मन माहीं ॥
जहँ तहँ राज सुखद अति दीने । हरष सहित मुनि त्याग प्रवीने ॥

राजकुमार श्री लव जी और अन्य श्री राम भ्राताओं के राज कुमारों को परम निस्पृह (त्याग करने में कुशल) मुनिश्रेष्ठ श्री बशिष्ठ जी ने मन में विचार कर जहाँ—तहाँ अत्यन्त सुख प्रदायक राज्य प्रदान किया।

गुरु आयसु सबहीं सिर धारी । राम भक्ति रस हृदय मझारी ॥
भूमि भार निज सिरहिं उतारी। बोले गुरु वशिष्ठ हितकारी ॥

श्री राम भक्ति रस से ओत प्रोत हृदय वाले उन राज कुमारों ने श्री गुरुदेव जी की आज्ञा को शिरोधार्य कर लिया। इस प्रकार गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी भूमि—भार से मुक्त होकर परम हितकारी वचन बोले—

यज्ञ अन्त अभिभृत स्नानी। राम लहहु विश्रान्ति महानी ॥
उत्सव सहित सरजु सरि धारी। सहित समाज नहाहिं सुखारी ॥

हे रघुनन्दन! यज्ञ के अन्त में "अभिभृत स्नान" कर आप अब महान विश्राम प्राप्त करें। एतदर्थ उत्सव पूर्वक श्री सरयू जी की निर्मल वारि—धारा में ससमाज आप सुखपूर्वक स्नान करें।

अक्षय अमित शुक्ल फलवारा। अमृतमय शुभ न्हान पियारा ॥
पशु पक्षी जे अवधहिं पाले । सकल नगर वासी निज शाले ॥

यह प्रिय "अभिमृत स्नान" अविनाशी व अपार शुभ फल प्रदान करने वाला अमृत स्वरूप है। अतः श्री अयोध्यापुरी के सभी नगर निवासियों के भवनों में पाले हुये जो पशु—पक्षी हैं———

दो०—सबहिं आज नहवावहीं, नर नारिन का पूँछ ।
होय शुभोदय सबहिं सत, अशुभ होय सब छूँछ ॥७९॥

———उन सब को भी आज आप स्नान करवायें। पुनः स्त्री—पुरुषों के सम्बन्ध में तो बात ही क्या कहें अर्थात् सभी नगर निवासी स्त्री—पुरुषों सहित समस्त जीवधारियों को श्री सरयू जी में स्नान कराया जाय जिससे यथार्थतः सभी प्रकार के मंगलों का उदय व अमंगलों का विनास होगा।

अवधपुरी जे जीव अपारा । सुकृत रूप अनुपम सुख सारा ॥
तदपि वेद विधि सुगुरु बताये। चाहिय करन अकाम अमाये ॥

यद्यपि श्री अयोध्यापुरी के जितने भी असीमित जीवधारी हैं वे सभी सुकृत स्वरूप अनुपमेय

एवं सुखों के सार हैं तथापि पूर्वाचार्यों ने बताया है कि– निष्काम मन और ममता रहित हो सभी को वेद–विधि का अनुसरण अवश्य ही करना चाहिए।

गुरु आयसु प्रभु निज सिर धारी । न्हान करन की कीन्ह तयारी ॥
सुभग सुआसिनि कलश सँभारी । आगे चली सुमंगलकारी ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज ने श्री गुरुदेव जी की आज्ञा सिरोधार्य कर "अभिभृत" स्नान करने की तैयारी की। सुन्दर सुआसिनी–नारियाँ मांगलिक कलश लिये हुए समाज के आगे–आगे चलने लगीं।

गावहिं गीत सकल पुर नारी । चहहिं सुमंगल राम सिया री ॥
चले राम सिय सहित सुभ्राता । अमित तेजमय पुलकित गाता ॥

श्री अयोध्यापुरी की नारियाँ मांगलिक गीत गाती हुई श्री सीताराम जी के मंगल की कामना कर रही थी। इस प्रकार "अभिभृत" स्नान हेतु असीमित आभा से युक्त श्री राम जी महाराज पुलकित शरीर हो अपनी प्राण वल्लभा श्री सीता जी और सुन्दर भ्राताओं के साथ चल दिये।

भरत लषण रिपुहन प्रभु शोभा । कहत न बनै देख मन लोभा ॥
कौशिल्यादिक मातु सुखारी । लै रनिवास साथ पगु धारी ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– श्री भरत जी, श्री लक्ष्मण कुमार जी, श्री शत्रुघ्न जी तथा प्रभु श्री राम जी महाराज की उयस समय की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता, उन्हें देखते ही मन लुब्ध हो जाता है। श्री कौशिल्या जी आदि मातायें सुख पूर्वक सम्पूर्ण रनिवास को साथ लेकर "अभिभृत" स्नान हेतु चल दीं।

दो०– सकल नगर वासी चले, सहित पशुन नर नारि ।
जनक सुनैना मोद मन, सह परिवार सुखारि ॥८०॥

अपने पाले हुये पशुओं सहित, श्री अयोध्या नगर निवासी सभी स्त्री–पुरुष, सपरिवार श्री जनक जी व श्री सुनैना जी मन में आनन्दित हो "अभिभृत" स्नान हेतु सुखपूर्वक चल पड़े।

सिद्धि कुँअरि लक्ष्मीनिधि दोऊ । लै समाज गवने सुख मोऊ ॥
ऋषि मुनि सिद्ध सन्त हरषाने । गवने सरयू अति सुख साने ॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी व श्री लक्ष्मीनिधि जी दोनो अपने–अपने समाज को लेकर सुख में सने हुए "अभिभृत" स्नान हेतु चल दिये। ऋषि, मुनि, सिद्ध तथा सभी सन्त–जन हर्ष पूर्वक अत्यन्त सुख मग्न हो "अभिभृत" स्नान करने के लिये श्री सरयू जी को चल पड़े।

वानर भालु समाज सुहानी । चली न्हान हित हरषि महानी ॥
औरहुँ द्वीप देश नर नारी । आये रहे जो यज्ञ मझारी ॥

वानर–भालुओं का समुदाय महान हर्ष पूर्वक "अभिभृत" स्नान के लिए चल पड़ा। अन्य द्वीप और देशों के स्त्री–पुरुष भी, जो श्री राम जी महाराज के यज्ञ में आये हुए थे–––

गये न्हान हित रघुवर साथा। दरश करत हिय होत सनाथा॥
उत्सव माहिं रहा जो होई। जानहिं सो सुख आँखिन जोई॥

———"अभिभृत" स्नान करने के लिये, श्री राम जी महाराज के साथ उनका दर्शन करते हुये हृदय में सनाथ हो, चल दिये। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– उस उत्सव में जो भी सम्मिलित थे और जिन्होने नेत्रों से उस उत्सव का दर्शन किया है वे ही उस सुख को जान सकते हैं।

विविध वाद्य बाजत सुख सारी। कोकिल धुनि गावहिं वर नारी॥
जय धुनि श्रुति धुनि होत अपारा। बन्दी मागध विरद उचारा॥
मग महँ होवत खेल अथोरी। सेवा गुनि रघुनाथ किशोरी॥

वहाँ सुख का संचरण करने वाले विभिन्न प्रकार के वाद्य बज रहे थे, सुन्दर स्त्रियाँ कोकिल स्वर से गायन कर रही थीं, निरन्तर जय ध्वनि व वेद–ध्वनि हो रही थी, बन्दी व मागध गण श्री रघुकुल के विरद का बखान कर रहे थे तथा श्री सीताराम जी की सेवा समझकर मार्ग में विविध प्रकार के कौतुक (खेल–तमाशा) हो रहे थे।

दो०–केशर मिश्रित दधि तहाँ, चोवा चन्दन चारु।
इतर अरगजा छिटक सब, पुष्प रंग सुख कारु॥८१॥

उस समय केशर मिला हुआ दही, चोवा (विविध सुगन्धित द्रव्यों का रस), सुन्दर चन्दन, इत्र, अरगजा (सुगन्धित लेप), पुष्प तथा रंग आदि सुखकारी द्रव्य सभी लोग परस्पर में छिड़क रहे थे।

गगन चढ़े सुर सकल विमाना। वरषहिं सुमन करहिं जय गाना॥
सनहिं निसान मोद भरि जोहैं। देव नारि नृत्यत सुठि सोहैं॥

आकाश से सभी देवता विमानों में चढ़े हुए पुष्प वृष्टि व जय–नाद कर आनन्द पूर्वक नगाड़े बजाते हुए "अभिभृत" स्नान हेतु पुण्य सलिला श्री सरयू जी को प्रस्थान करते हुये ससमाज श्री राम जी महाराज का दर्शन कर रहे थे, देवांगनायें सुन्दर नृत्य करती हुई सुशोभित हो रही थीं।

यहिं प्रकार आनन्द महाना। छायो भूमि अकाश प्रमाना॥
पहुँचे सरयू रघुवर रामा। सोह रही सिय संग ललामा॥

इस प्रकार भूमि और आकाश में यथार्थतः महान आनन्द छाया हुआ था। ससमाज श्री राम जी महाराज श्री सरयू जी के समीप पहुँच गये उनके साथ परम सौन्दर्य सम्पन्ना श्री सिया जू सुशोभित हो रही थीं।

तबहिं राम गुरु आयसु पाई। करि श्रुति रीति क्रिया सुखदाई॥
सहित सिया न्हावत अनुरागे। जय जय कहत देव रस पागे॥

तदनन्तर श्री राम जी महाराज श्री गुरुदेव जी की आज्ञा पाकर वेद विधि के अनुसार सुखदायी कृत्यों का सम्पादन किये तथा श्री सीता जी सहित अनुराग पूर्वक स्नान करने लगे उस समय देवता प्रेमरस में डूबे हुए जय–जयकार कर रहे थे।

सुरतरु सुमन वृष्टि बहु होई । बजत दुन्दुभी आनन्द मोई ॥
भूमिहुँ महँ धुनि पंच प्रकारा । माचि रही अतिशय सुखकारा ॥

उस समय देव–वृक्ष (कल्पवृक्ष) के पुष्पों की विपुल वर्षा हो रही थी तथा आनन्द परिपूर्ण दुन्दुभी बज रही थी। भूमि में भी पाँच प्रकार (जय, बन्दी, वेद, मंगल–गीत व नगाड़ों) की अत्यन्त सुखकारी ध्वनि छायी हुई थी।

सरयू दिव्य रूप निज धारी । नहवाई सिय अवध विहारी ॥
गंगादिक बहु सरि दिवि रूपा । नहवावहिं कौशलपुर भूपा ॥

श्री सरयू जी ने अपना दिव्य रूप धारण कर अवध विहारिणी–विहारी श्री सीताराम जी को स्नान कराया। श्री गंगा जी आदि बहुत सी पुण्य सलिला सरितायें अपने दिव्य रूप धारण कर कोशलपुरी के महाराज श्री राम जी को स्नान करा रही थीं।

दो०– भ्रात मातु न्हाये मुदित, मिथिला अवध समाज ।
सन्त सचिव द्विज मण्डली, प्रजा अतिथि कपि भ्राज ॥८२॥

उस समय, श्री राम जी महाराज के भ्रातृगण, मातायें तथा श्री मिथिला व अयोध्यापुरी का सम्पूर्ण समाज, सन्तजन, मन्त्री, ब्राह्मण–वर्ग, प्रजागण, समागत अतिथि तथा सुन्दर वानर समूह आदि सभी ने मन मुदित हो स्नान किया।

पशु पक्षी सह सकल समाजा । न्हाये सब तन तेज विराजा ॥
सरि सरयू शुचि तीर महाने । वस्त्र पहिरि सब ठाढ़ सुहाने ॥

इस प्रकार सम्पूर्ण समाज सहित सभी पशु पक्षियों ने भी स्नान किया जिससे उनके शरीर "तेज" (दिव्याभा) से परिपूर्ण हो गये और श्री सरयू जी के विशाल व पवित्र तट में सभी लोग वस्त्र पहन कर खड़े होकर सुशोभित होने लगे।

राम सिया शोभा अधिकाई । नखत बीच युग चन्द्र सुहाई ॥
तेहिं अवसर इक दिव्य विमाना । सदचिद आनँद तेज निधाना ॥

अतीव सौन्दर्य सम्पन्न परम शोभाशाली श्री सीताराम जी, सम्पूर्ण समाज के मध्य ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे नक्षत्रों के बीच दो सुन्दर चन्द्रमा सुशोभित हों। उसी समय एक दिव्य सच्चिदानन्दस्वरूप, तेजोमय विमान–––

गगन उतरि भूमी महँ आयो । सरयू तट विस्तृत अति भायो ॥
तहँ एक वाक्य सुनेव सब कोऊ । प्रेमामृत सुख शान्ति समोऊ ॥

–––जो अत्यन्त विस्तार वाला व दर्शनीय था आकाश से उतरकर भूमि में श्री सरयू जी के तट पर आ गया। तदनन्तर वहाँ प्रेम, अमृत, सुख एवं शान्ति से समाया हुआ एक वाक्य सभी के श्रवणों का विषय बना।–––

हे सिय राम मधुर मधु वारे। अमित मार मद मर्दन हारे ॥
सरयू न्हाइ शान्ति सुख पागे। ठाढ़ देखि आयों तब आगे ॥

–––हे मधुरातिमधुर अमृत–स्वरूप विग्रहवान श्री सीताराम जी! आप तो अनन्त कामदेवों के अभिमान को चूर करने वाले हैं। श्री सरयू जी में स्नान कर शान्ति व सुख में पगे हुए, खड़े देखकर मैं आपके सम्मुख आया हूँ।

दो०–आनँदमय दिवि यान महँ, आनँद कन्द सुजान।
आनँद सनि विहरहिं प्रभो, वसि विश्रान्ति महान ॥८३॥

हे आनन्द स्वरूप सर्वज्ञ प्रभु! अब आप इस आनन्दमय दिव्य विमान में आनन्द पूर्वक निवास कर परम शान्ति प्राप्त करें।

सुनि सत गिरा राम रस साने। सियहिं बिलोकि मधुर मुसुकाने ॥
चहिय करन अब अवशि विहारा। सुनत सीय स्वीकृत सिर धारा ॥

उस सत्य वाणी को श्रवणकर रस–मग्न श्री राम जी महाराज अपनी प्रियतमा श्री सीता जी की ओर देखकर मधुर–मधुर मुस्कुराते हुए बोले–हे प्राण प्रिये! अब हमें अवश्य ही इसमें विहार करना चाहिए, श्री राम जी महाराज की आज्ञा शिरोधार्य कर श्री सीता जी ने अपनी स्वीकृत प्रदान कर दी।

कहा राम सब सन सुख सानी। प्रेम पगे हिय बात प्रमानी ॥
यह विमान अति दिव्य सुहाना। विस्तृत अमित न जाय बखाना ॥

तदनन्तर सुख पूर्वक श्री राम जी महाराज ने सभी से प्रेम प्रपूरित हो अपने हृदय की प्रामाणिक बात कही– हे समस्त समागत सज्जन वृन्द! यह विमान अत्यन्त दिव्य सुन्दर एवं अनन्त विस्तार वाला है जिसका वर्णन करना असम्भव है।

भीतर अवध सरिस मोहि लागै। तनिक भेद नहिं मन महँ जागै ॥
देखहु सोहत कुंज अपारा। बन पर्वत सर सरयू धारा ॥

यह विमान अन्दर से मुझे श्री अयोध्यापुरी के समान प्रतीत होता है इसमें और श्री अयोध्यापुरी में किंचित भी अन्तर मेरे मन में समझ नही आता। अहा, देखिये तो, इसमें असीमित कुंज, वन, पर्वत, सरोवर एवं श्री सरयू जी की धारा भी सुशोभित हो रही है।

परम रम्य मय चमचम होती। स्वर्ण भूमि भ्राजति भलि जोती ॥
दिव्य सदन जहँ सोह अनन्ता। मोरहु भवन बनेव द्युतिमन्ता ॥

इस विमान में अत्यन्त सुन्दर चमकदार तथा सुन्दर प्रकाश से परिपूर्ण स्वर्ण मयी भूमि सुशोभित हो रही है। जहाँ अनन्त दिव्य भवन सुशोभित हैं तथा मेरा भी परम शोभा सम्पन्न भवन बना हुआ है।

भले भोग भरि रसमय रूपा। यह विमान सब भाँति अनूपा ॥
सब प्रकार सब समय अनन्दा। सहजहिं उदित यहाँ सुख चन्दा ॥

यह विमान रसस्वरूप सुन्दर भोगों से परिपूर्ण व सभी प्रकार से अनुपमेय है। यहाँ सर्व काल में सभी प्रकार का आनन्द बना रहता है तथा सुख का चन्द्रमा यहाँ सहज ही उदित रहता है।

छं०– सुखरूप आनँद सत्य चिद, देखहु विमानहि मोद भर ।
जनु लोक अच्युत सार है, अमृतमयी द्युति चन्द्र हर ॥
पुनि मोंहि भाषत तत्व सोइ, जेंहि परम परमारथ कहै ।
कोउ कहत ता कहँ पद परम, हर्षण हमारो मन चहै ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–हे सज्जनों! श्री राम जी महाराज कह रहे हैं कि–इस सुख स्वरूप सच्चिदानन्दमय विमान को आप सभी आनन्द में भर कर देखिए तो, यह जैसे अच्युत लोकों का सार ही है, इसकी अमृतमयी ज्योति चन्द्रमा की द्युति को भी अपहृत कर रही है। किं पुनः यह विमान मुझे वह परम तत्त्व प्रतीत होता है जिसे परम परमार्थ कहते हैं, कोई–कोई उसे परम पद भी कहते हैं, हमारा मन भी हर्षित होकर इसकी कामना करता है।

सो०–परम सुहावन धाम, अवध मार्ग सम मार्ग बहु ।
विहरन हित अठ याम, लीला थल बहु लखि परैं ॥८४॥

परम सुन्दर, धाम स्वरूप इस विमान में श्री अयोध्यापुरी के समान बहुत से मार्ग हैं तथा इसमें आठों प्रहर विहार करने के लिए बहुत से लीला स्थल दिखाई पड़ते हैं।

हय गय रथ गोधन शुचि शाला । मनहर महा सुसोह विशाला ॥
अमित सूर्य सम तेज निधाना । तदपि चन्द्र सत शीत प्रदाना ॥

इस विमान में घोड़े, हाथी, रथ व गायों आदि के लिए विविध प्रकार के मनोहारी महा विशाल भवन सुशोभित हो रहे हैं। यह विमान असीमित सूर्यो के समान तेजवान होते हुये भी सैकड़ों चन्द्रमा के समान शीतलता प्रदान करने वाला है।

आनँद आनँद आनँद याना । कहँ लौं कहौं न जाइ बखाना ॥
ताते सहज शान्ति सुख लाही । चढ़ि विमान विहरहु मुद माही ॥

इस विमान में आनन्द–आनन्द और आनन्द ही परिव्याप्त है। मैं कहाँ तक कहूँ, मुझसे इसका वर्णन नहीं किया जा रहा। इसलिए इस विमान में चढ़कर सहज शान्ति और सुख प्राप्त कर आनन्दपूर्वक सभी विहार करें।

जे पशु पक्षी सरित नहाये । तिनहूँ लेवहु साथ चढ़ाये ॥
बालक वृद्ध युवा नर नारी । चढ़ि सब लेवहिं आनन्द भारी ॥

जिन पशु–पक्षियों ने श्री सरयू जी में स्नान किया है आप सब, उन्हें भी साथ में चढ़ा लीजिये। बालक, वृद्ध व युवा सभी पुरुष व स्त्री इस विमान में सवार होकर महान आनन्द प्राप्त करें।

बैठि विहरि यहि यानहिं माहीं । चलिहैं सुख सह सब घर काहीं ॥
प्रथमहिं सीता राम सुजाना । कहेउ चढ़हु प्रिय सुभग विमाना ॥

इस विमान में बैठ तथा विहार कर सुखपूर्वक सभी लोग अपने नित्य निवास को चलेंगे। पुनः सर्वज्ञ श्री राम जी महाराज ने सर्वप्रथम अपनी प्राण वल्लभा श्री सीता जी से कहा कि– हे प्रिये! इस सुन्दर विमान में आप सवार हो जाइये।

सुनत राम आयसु मृदु बानी । सिया कुअँरि कर गहि निज पानी ॥
दिव्य यान चढ़ि गयी पुनीता । सिद्धि सहित सोही सति सीता ॥

अपने प्राणेश्वर श्री राम जी महाराज की कोमल वाणी से परिपूर्ण आज्ञा को श्रवणकर श्री सीता जी श्री सिद्धि कुँअरि जी का हाथ अपने हाथ में लेकर उस पवित्र दिव्य विमान में चढ़ गयीं तथा श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित सती शिरोमणि श्री सीता जी उस विमान में सुशोभित होने लगीं।

दो०– लक्ष्मीनिधि कर पकरि पुनि, रघुवर राम सुजान ।
चढ़े सुखद गल बाँह दै, सुन्दर दिव्य विमान ॥८५॥

पुनः सर्वज्ञ श्री राम जी महाराज अपने प्रिय श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी का हाथ पकड़कर सुख प्रदायक गल–बाँही दिये हुये उस सुन्दर व दिव्य विमान में चढ़ गये।

लक्ष्मण भरत शत्रुहन भ्राता । चढ़े तियन सह हर्षित गाता ॥
मातु सकल सह सब रनिवासा । चढ़ी राम रुख निरखि हुलासा ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी, श्री भरत लाल जी तथा श्री शत्रुघ्न कुमार जी आदि सभी राजकुमार अपनी–अपनी पत्नियों सहित प्रसन्नतापूर्वक विमान में चढ़ गये। सम्पूर्ण रनिवास सहित सभी मातायें श्री राम जी महाराज की इच्छा जानकर विशेष आनन्द में डूबी हुई विमान में सवार हो गयीं।

जनक सुनैना सहित समाजा । वानर भालु सहित कपिराजा ॥
चढ़े सबहिं मन मोदित कीन्हे । आनन्द अमित अनुप रस भीने ॥

ससमाज श्री जनक जी व श्री सुनैना जी तथा कपिराज श्री हनुमान जी सहित सम्पूर्ण वानर–भालु समाज, मन मुदित हो असीमित व अनुपमेय आनन्द पूर्वक रस–मग्न हो विमान में चढ़ गया।

अवधपुरी सिगरे नर नारी । बाल वृद्ध सब चढ़े अपारी ॥
सबहिं स्वीय पशु शकुन चढ़ाये । स्वे स्वे सदनन सुखी सुभाये ॥

श्री अयोध्यापुरी के सभी असंख्य निवासी पुरुष, स्त्री, बालक, बृद्ध आदि विमान में चढ़ गये। सभी ने अपने पालित पशु–पक्षियों को भी विमान में चढ़ा लिया तथा विमान स्थित अपने अपने भवनों में वे सभी सहज ही सुख पूर्वक बस गये।

ऋषि मुनि सन्त रहे नर बामा । सो सब चढ़े विमान ललामा ॥
द्वीप देश जनपद जग लोगा । रहे उपस्थित समय सुयोगा ॥

ऋषि, मुनि तथा सन्त आदि जो भी स्त्री–पुरुष वहाँ उपस्थित थे वे सभी सुन्दर विमान में सवार हो गये। संसार के सभी द्वीप, देश तथा जनपद के निवासी जो उस सुअवसर में संयोग से उपस्थित थे–––

सोऊ चढ़े विमान सुखारी । देह गेह सब सुरति बिसारी ॥
कछु कारज श्रुति सेवा हेतू । जिनहिं जगाये रघुकुल केतू ॥
सो नहिं चढ़े राम रुख जानी । अमिट अमोघ सकल सुख सानी ॥

–––वे भी अपने शरीर और घर की स्मृति भुला कर सुखपूर्वक विमान में चढ़ गये। श्रुतियों की सेवा के लिए कुछ कार्य बताकर जिन्हें रघुकुल के ध्वज श्री राम जी महाराज ने सचेत किया था वे श्री राम जी महाराज की इच्छा को अमिट, अमोघ एवं सम्पूर्ण सुखों की खानि समझ विमान में नहीं चढ़े।

छं०–रुख राखि रघुवर की रसद, कछु जन विमानहिं नहिं चढ़े ।
गुनि राम सेवा सुख लहत, भूमिहिं जो यानहिं महँ बढ़े ॥
प्रभु प्रेम पगि पेखत तिनहिं, सोऊ विलोकत भाव भर ।
अति नेह साने सेव कर, हर्षण परम आनन्द कर ॥

रस प्रदायक रघुनन्दन श्री राम जी महाराज की इच्छा को स्वीकार कर कुछ प्रेमी जन विमान में नहीं चढ़े वे श्री राम जी महाराज की सेवा में भूमि में भी वही सुख प्राप्त कर रहे थे जो विमानारोहियों को प्राप्त हो रहा था। प्रभु श्री राम जी महाराज प्रेम में पगे हुए उनकी ओर देख रहे थे तथा वे भी भाव में भरे हुए प्रभु की ओर निहार रहे थे। हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– वे तो प्रभु की परम आनन्दकारी सेवा अत्यधिक प्रेम परिपूर्ण हो, कर रहे थे।

सो०–स्वामी रुख जिय जान, आपन सुख इच्छा तजहिं ।
सोई प्रभु प्रिय प्रान, जानहु दास अनन्य सो ॥८६॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– जो सेवक अपने स्वामी की इच्छा को समझ कर अपने सुख की कामना का त्याग कर देते हैं वे ही प्रभु श्री राम जी महाराज को प्राणों से प्रिय होते हैं तथा उन्ही को अनन्य सेवक समझना चाहिए।

औरहु जीव जन्तु जे छोटे । चलि उड़ि ऊपर यान चपोटे ॥
सरयू सरि सब जलचर जीवा । पक्षी जो तहँ रहैं अतीवा ॥

उस समय जो भी अन्य छोटे–छोटे जीव–जन्तु थे वे सभी चल–चल व उड़–उड़कर विमान में चिपक गये। श्री सरयू नदी के सभी अनन्त जलचर जीव और पक्षी जो वहाँ निवास करते थे तथा–––,

वन प्रमोद जे जीव अनन्ता । चढ़े विमान सबै भगवन्ता ॥
लता वृक्ष सब दिवि तन धारी । चढ़े यान मन मोद अपारी ॥

–––प्रमोद वन में जो अनन्त जीव रहते थे वे सभी परम सौभाग्यशाली जीव विमान में चढ़ गये। वहाँ के लता और वृक्ष आदि सभी दिव्य शरीर धारण कर अत्यन्त आनन्दित मना विमान में सवार हो गये।

चढ़े विमानहिं ऊपर सोहैं । वरण वरण उपमा अस जोहैं ॥
यथा शर्करा वृहत सुढेला । चारहु ओर पिपीलक मेला ॥

वे विविध प्रकार के जीव विमान के ऊपर वाह्य भाग में चढ़े हुए सुशोभित हो रहे थे। उन्हे देखकर ऐसी उपमा समझ आ रही थी मानो शक्कर का एक बड़ा टुकड़ा हो और उसके चारो ओर चीटियों का मेला लगा हुआ हो।

तैसहिं बाहर भाग सुयाना । जीव जन्तुमय सकल दिखाना ॥
भीतर माहिं महा विस्तारा । भव्य भवन तहँ सुभग सम्हारा ॥

उसी प्रकार ही विमान का बाहरी भाग भी सम्पूर्ण जीव जन्तुमय दिखाई पड़ रहा था। विमान के भीतर अत्यधिक विस्तार था तथा अनेक सुन्दर भव्य भवन बने हुए थे।

तेहिं बिच कल्प तरुहिं के नीचे । रत्न वेदिका रसमय ऊँचे ॥
तापै रत्न सिंहासन सोहा । परम तेज मय लखि मन मोहा ॥
तेहिं बिच इक कमलासन भायो । सुखद सुकोमल सरस सुहायो ॥

उस विमान के भवनों के मध्य कल्प–वृक्ष के नीचे एक रसमयी ऊँची रत्न वेदी है, उस पर परम तेजवान रत्न सिंहासन सुशोभित है जिसे देखकर मन मोहित हो जाता है। उस दिव्य सिंहासन के मध्य एक सुख प्रदायक, कोमल, रसपूर्ण कमलाकार सुन्दर आसन सुशोभित है।

दो०– राजत सीता राम तहँ, सरसत श्यामा श्याम ।
द्वादस षोडस वर्ष वपु, लोने ललित ललाम ॥८७॥

उस आसन पर आनन्दपूर्वक परम सौन्दर्य सम्पन्न, अतिशय कमनीय बारह और सोलह वर्ष की अवस्था से युक्त, नित्य किशोरी–किशोर श्री सीताराम जी विराज रहे थे।

कोटि काम रति जात लजाई । अंग अंग प्रति अकथ लुनाई ॥
घन दामिनि द्युति राम किशोरी । राजि रहे रसमय सुख बोरी ॥

जिन्हे देखकर करोड़ों रति व कामदेव भी विलज्जित हो जाते हैं। उनका प्रत्येक अंग अकथनीय सौन्दर्य से आपूरित है। हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हें कि–ऐसे मेघ व विद्युत आभा सम्पन्न रस–स्वरूप श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी सुख मग्न हो विराज रहे थे।

नील पीत कंचन मय वसना । धारि रहे चमकत रवि भसना ॥
अंग अंग भूषण भल धारी । सोहि रहे विद्युत छबि वारी ॥

वे नवल युगल श्री सीताराम जी नीले व पीले रंग के स्वर्णिम चमकदार, सूर्य के समान तेजवान वस्त्र धारण किये हुये थे तथा प्रत्येक अंग में विद्युत आभा से युक्त आभूषण धारण किये हुए सुशोभित हो रहे थे।

क्रीट चन्द्रिका परम प्रकाशी । सूरज चन्द्र पात्र उपहासी ॥
श्याम गौर वर वदन सुहावन । आँखिन कहँ आनँद सरसावन ।।

उनकी परम प्रकाशवान क्रीट और चन्द्रिका अपनी आभा से सूर्य और चन्द्रमा का उपहास करती सी प्रतीत हो रही थी और उनका परम सुन्दर श्याम और गौर वर्ण से युक्त मुखार्विन्द नेत्रों को अतिशय आनन्द प्रदान करने वाला था।

मधुर हँसनि मधुरहिं मधु घोलत । मधुर पुष्प झर झर सम बोलत ॥
चितवनि चारु कृपा रस झरनी । कहि न जाय अनुभव सुख सरनी ॥

उनकी मन्द–स्मिति (हँसनि) दर्शन करने वालों के हृदय में मधुर अमृत सा घोलने वाली तथा मधुर वाणी पुष्प बिखरने के समान प्रतीत होती थी अर्थात् अत्यन्त सुखावह थी। उनकी दृष्टि–निक्षेप (चितवनि) सुन्दर कृपा एवं रस की स्रोत है जो अवर्णनीय और अनुभव से सुख उत्पन्न करने वाली थी।

दो०–कुटिल केश सुठि सोह सिर, कुण्डल लोल कपोल ।
आनन अमृत उदधि बिच, जनु युग मीन किलोल ॥८८॥

दिव्य दम्पति श्री सीताराम जी के शिर में घुँघराले व काले केश सुशोभित हो रहे हैं तथा कपोलों में झूलते हुये कुण्डल ऐसे प्रतीत होते है जैसे उनके मुख रूपी अमृत सागर के मध्य दो मछलियाँ क्रीड़ा कर रही हों।

कर कमलनि लीन्हे कल कंजा । फेरत रसिक जनन रस रंजा ॥
चरण चारु शोभा सुठि न्यारी । जलज गुलाब छबिहुँ अति हारी ॥

रसिक जनों के हेतु रस का विवर्धन कर उनका पालन करने वाले श्री सीताराम जी अपने कर कमलों में सुन्दर कमल पुष्प लिये हुए फिरा रहे हैं। उनके सुन्दर चरण कमलों की शोभा अनोखी है जिसके सामने कमल और गुलाब की सुन्दरता भी पराजित हो जाती है।

लक्ष्मण छत्र लिये छबि सारी । सोहहिं दिव्य रूप द्युतिकारी ॥
भरत चमर लै दखिन विराजैं । बायें रिपुहन बिंजन भाजैं ॥

श्री सीताराम जी के पृष्ठ भाग में श्री लक्ष्मण कुमार जी सौन्दर्य का सारभूत क्षत्र लिये हुए परम प्रकाशित दिव्य स्वरूप से सुशोभित हो रहे हैं। श्री भरत जी चँवर लेकर दक्षिण दिशा में विराज रहे हैं तथा बाँयी ओर श्री शत्रुघ्न कुमार जी विंजन चला रहे हैं।

हनुमत चरण समीप विराजी । प्रेम कथा वरणहिं सुख साजी ॥
लक्ष्मीनिधि निज कर लै दर्शा । प्रभुहिं प्रदर्शहिं प्रभु सुख सरसा ॥

श्री हनुमान जी प्रभु चरणों के समीप बैठे हुए सुखपूर्वक प्रेम चरित्र का वर्णन कर रहे हैं, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने हाथों में दर्पण लेकर, प्रभु श्री राम जी महाराज के सुख में आनन्द मानते हुए उन्हें उनका मुख–कमल दर्शन कराने की सेवा कर रहे हैं।

निज निज सेव साज सब धारी । पार्षद खड़े सकल नर नारी ॥
सखी सखा शुचि दासी दासा । सेवा सकल निपुण रस रासा ॥
जनक सुनैना कौशिल्यादी । सोहहिं सबहिं वत्स रस स्वादी ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के सभी पार्षद स्त्री–पुरुष अपनी–अपनी सेवा सामग्री लिये हुए खड़े हैं, सेवा में निपुण पवित्र सखियाँ, दासियाँ तथा दास आदि सभी रस में पगे हुए हैं तथा श्री जनक जी, श्री सुनैना जी व श्री कौशिल्या जी आदि वात्सल्य रस ग्राही सभी मातायें सुशोभित हो रही हैं।

दो०–धनुर्वाण असि चर्म सब, अस्त्र शस्त्र बहु रूप ।
चक्रादिक धरि दिव्य वपु, सेवहिं राम अनूप ॥८९॥

धनुष, बाण, तलवार, ढाल तथा चक्र (सुदर्शन) आदि सभी प्रकार के बहुत से अस्त्र–शस्त्र दिव्य शरीर धारण कर श्री राम जी महाराज की अनुपमेय सेवा कर रहे हैं।

वेद पुराण शास्त्र सब आई । स्तुति करहिं दिव्य तनु लाई ॥
महाकाल और काल विभेदा । वर्ष अयन ऋतु कहहिं जो वेदा ॥

सभी वेद, पुराण और शास्त्र दिव्य शरीर धारण कर सर्वेश्वर श्री सीताराम जी की स्तुति कर रहे हैं। स्वयं महाकाल व समय के भेद वर्ष, अयन (उत्तर व दक्षिण) तथा ऋतु (वर्षा, शरद, शिशिर, हेमन्त, ग्रीष्म व वसन्त) आदि जो वेदों के द्वारा वर्णन किये गये हैं।

धरि दिवि देह दोउ कर जोरी । खड़े सुसेवहिं राम किशोरी ॥
मुनिजन छन्द विधान बनाई । स्तव करहिं राम रघुराई ॥

वे सभी दिव्य शरीर धारण कर दोनों हाथ जोड़कर श्री सीताराम जी की सुन्दर सेवा के लिए खड़े हैं। मुनिजन विधान पूर्वक छन्द बनाकर रघुकुल के राजा श्री राम जी महाराज का स्तवन कर रहे हैं।

कविजन विरद पुनीत उचारैं । जय जय शब्द सबहिं सुख सारैं ॥
वाद्य विविध विधि मधु धुनि झारी । बाजत सरस मुनिन मनहारी ॥

कविगण श्री राम जी महाराज के पवित्र विरद का उच्चारण कर रहे हैं तथा सभी लोग सुख में सने हुये जय–जय की ध्वनि करते हैं। विभिन्न प्रकार के सभी रसमय वाद्य, मधु– मधुर ध्वनि से मुनियों के मन को भी हरण करते हुये बज रहे हैं।

नृत्य गान रसमय प्रभु आगे । होत भाव भरि अति अनुरागे ॥
भीतर यान घरन घर माहीं । बजत बधाव अनन्द अथाहीं ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के आगे भाव में भरा हुआ अत्यानुराग पूर्वक रसमय गायन तथा नृत्य हो रहा है। विमान के भीतर प्रत्येक घर में असीम आनन्द पूर्वक बधाइयाँ बज रही हैं।

दो०–मन बुधि वाणी पार सुख, शेष सकैं नहि गाय ।
विषय लीन मति मलिन मैं, कैसे कहूँ बनाय ॥९०॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–वहाँ का सुख, मन, बुद्धि और बाणी से परे है जिसका वर्णन श्री शेष जी भी नहीं कर सकते तब विषयों में सना हुआ मलिन बुद्धि मैं उसे किस प्रकार वर्णन कर सकता हूँ।

महा महिम उत्सव भरि याना। होत सुसुखमय बहुत विधाना ॥
गगन विमान खचा चहुँ ओरा। अगनित कहन चहैं सो भोरा ॥

उस विमान में विधिपूर्वक सुखस्वरूप महा महोत्सव हो रहा था। जिसे देखने हेतु सम्पूर्ण आकाश अगणित देव विमानों से पूर्ण रूपेण खचाखच भरा हुआ था। वह तो बावला ही है, जो उस आनन्द का वर्णन करने की इच्छा करेगा अर्थात् वह आनन्द अवर्णनीय था।

ब्रह्मा विष्णु महेश महाने। शक्तिन सहित राम रस साने ॥
इन्द्र आदि सुर सेवा करहीं। वरषहिं सुमन जयति उच्चरही ॥

महा महिम्न श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शंकर जी आदि देवता अपनी–अपनी शक्तियों के सहित श्री राम जी महाराज के प्रेमरस में डूबे हुये थे, श्री इन्द्र आदि देवता उनकी सेवा कर रहे थे तथा पुष्प वरषाते हुए जय–जय उच्चारण कर रहे थे।

दुन्दुभि हनत करत बहु गाना। नृत्यति देवि भाव रस साना ॥
शीतल मन्द सुरभिमय पवना। चलत सुखद अनुपम मनभवना ॥

वे देव गण दुन्दुभी बजाते हुए विविध गान कर रहे थे तथा देवांगनायें भाव और रस मे भरी हुई नृत्य कर रही थीं। शीतल, सुगन्धित, मन्द, अनुपमेय, मन–भावन तथा सुखप्रदायक पवन प्रवाहित हो रहा था।

पंच भूतमय प्रकृति सुहानी। सेवहिं राम सिया सुख सानी ॥
ब्रह्मादिक सब देव अपारा। लागे स्तुति करन विचारा ॥

पंच महाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) की स्वरूपा सुन्दर प्रकृति सुख में सनी हुई श्री सीताराम जी की सेवा कर रही थी। ऐसे सुखमय समय का विचारकर श्री ब्रह्मा जी आदि सभी देवता एक साथ श्री राम जी महाराज की स्तुति करने लगे।

दो०–करि सम्मत सब एक स्वर, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
राम स्तव लागे करन, सब सुर सहित सुरेश ॥९१॥

इस प्रकार श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शंकर जी आदि सभी देवता देवराज इन्द्र सहित एकमत होकर एक–स्वर से श्री सीताराम जी महाराज का दिव्य स्तवन करने लगे।

छं०– वर ब्रह्म ललामा सिय सुख धामा, जय जय मंगल कारी ।
जय अजित अनामय शक्ति सुधामय, शुचि साकेत विहारी ॥
परमार्थ अनूपा सुखद स्वरूपा, सीता राम प्रमानी ।
जयकारणकारण दुखविदारण, अनुपम सुठि सुखदानी ॥

हे परम सुशोभन श्रेष्ठातिश्रेष्ठ परब्रह्म श्री राम जी महाराज! आप तो परमाद्या शक्ति श्री सीता जी के सुखों के धाम व मंगल स्वरूप हैं आपकी जय हो, जय हो। हे सर्व अजेय, सर्वथा विकार विहीन, अनन्त शक्ति सम्पन्न, अमृत स्वरूप एवं पवित्र श्री साकेत धाम में विहार करने वाले स्वामी! आपकी जय हो। हे अनुपमेय, सुख प्रदायक, परम परमार्थ स्वरूप व सर्व–साक्षी श्री सीताराम जी आप तो अखिल ब्रह्माण्डों के कारण (निमित्त), दुखों के विनाशक, उपमा–रहित व सुन्दर सुख के प्रदाता हैं आपकी सदा जय हो।

विधि हरि हर देवा शक्ति सुसेवा, करहि नित्य सुख साने ।
तव आयसु धारी जग रखवारी, करहिं त्रिविधि रुख जाने ॥
जय जय जग नायक प्रभु मन भायक, धरे मनुज तन लोका ।
नित परम प्रकाशी आनँद रासी, लीला ललित विशोका ॥

श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शंकर जी आदि देवता अपनी शक्तियों सहित नित्य आपकी सुन्दर सुख पूर्वक सेवा करते रहते हैं तथा आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर व इच्छा को समझ संसार के तीनों प्रकार (सृजन, पालन व संहार) के कार्यो की सुरक्षा करते रहते हैं। हे संसार के नायक व मनोज्ञ स्वामी आपकी जय हो, जय हो। आप संसार में आकर मनुष्य शरीर धारण किये हुए नित्य, परम प्रकाश स्वरूप, आनन्द की राशि, परम सुशोभन व अतिशय सुखमय चरित्र कर रहे हैं।

जय राम सलोना वर छवि भौना, अनुपम अकथ अगाधा ।
नित ज्ञान अखण्डी इकरस मण्डी, हरन सकल भव बाधा ॥
जय जय अणु व्यापक प्रेम प्रथापक, महते महत महाना ।
जय जगत अधारा सबहिं सहारा, गति भर्ता श्रुति जाना ॥

हे परम सौन्दर्य सम्पन्न, सुन्दर छबि के धाम, अनुपमेय, अकथनीय और अगाध श्री राम जी महाराज आपकी जय हो। आप नित्य अखण्ड ज्ञान स्वरूप, एक रस रहने वाले तथा सभी सांसारिक बाधाओं का हरण करने वाले हैं। हे सर्वत्र अणु–अणु में व्याप्त, प्रेम तत्व की महत्ता स्थापित करने वाले, विराट स्वरूप आपकी जय हो। हे सम्पूर्ण संसार के आधार, सभी के एक–मात्र आश्रय, एक–मात्र गति और एक–मात्र स्वामी तथा श्रुतियों के द्वारा प्रतिपादित आपकी जय हो।

सब लोक शरण्या महा वरण्या, अमृत एक अनादी ।
परतम पर गावैं वेद बतावैं, अरु परमारथ वादी ॥
सब शरण तिहारे तन मन वारे, विगत अहं सिर नाई ।
कीजै ह्यि वासा करि निज दासा, हर्षण सुर समुदाई ॥

हे सम्पूर्ण लोकों के आश्रय स्थल, सभी के वरण करने योग्य, अमृत स्वरूप, अद्वितीय व अनादि श्री सीताराम जी! आपको वेद व परमार्थ दर्शी महा–पुरुष, श्रेष्ठतम (सभी से श्रेष्ठ) बताकर गायन करते हैं। हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– ब्रह्मादिक देवता श्री सीता राम जी से विनय करते हुये कह रहे हैं कि–हे नाथ! हम सभी आप पर अपने शरीर

व मन न्योछावर किये हुए, अहंकार से रहित हो शिर झुकाकर आपकी शरण आये हैं। हे स्वामिन! आप हम देवताओं को अपना सेवक बनाकर हमारे हृदय में निवास कीजिये।

दो०– विधि हरि हर वर विनय करि, निरखहिं सीता राम ।
वरषहिं सुमन समोद सुर, जय जय कहत ललाम ॥९२॥

श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शंकर जी आदि देव समुदाय उपरोक्त प्रकार की प्रार्थना कर श्री सीताराम जी की ओर निहारने लगे तथा आनन्दपूर्वक सुन्दर जय–जयकार करते हुए पुष्पों की विपुल वर्षा करने लगे।

बार बार परि दण्डवत, ब्रह्मादिक करि सेव ।
कृपा कोर निरखत खड़े, नत कन्धर सब देव ॥ख॥

श्री ब्रह्मा जी आदि देवता बार–बार श्री सीताराम जी को दण्डवत प्रणाम कर सेवा करते हुए शिर–नत खड़े, उनकी कृपा दृष्टि की वाट निहार रहे हैं।

शंख घड़ी दुन्दुभि सुधुनि, वाद्य अनेक अथोर ।
सुमन वृष्टि जय शब्द सुठि, पुनि पुनि करत विभोर ॥ग॥

उस समय शंख, घड़ी–घण्ट तथा दुन्दुभी आदि अनेक विविध वाद्यों की सुन्दर ध्वनि छायी हुई है तथा पुष्पों की विपुल वृष्टि एवं सुहावनी जय–जयकार सभी को बार–बार विभोर बनाये दे रही है।

ब्रह्मादिक वर विनय सुनि, विहँसे राम सुजान ।
विहँसत ही इक चमक महँ, परेउ न दीख विमान ॥घ॥

श्री ब्रह्मा जी आदि देवताओं द्वारा की गयी सुन्दर प्रार्थना को सुनकर सर्वज्ञ श्री राम जी महाराज हँस पड़े और उनके हँसते ही एक प्रकाश सा हुआ जिसमें वह विमान अदृश्य हो गया (दिखाई नहीं पड़ा)।

विधि हरि हर कछु कोउ न जाने । भये चकित चित देह भुलाने ॥
दिव्य धाम साकेत सुहावा । धेनु लोक विच वेदन गावा ॥

श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी एवं श्री शंकर जी आदि देवताओं में से कोई कुछ भी नहीं जान पाये, वे सभी देह स्मृति भूलकर आश्चर्य चकित हो गये थे। अनन्तर श्री सीताराम जी का जो सुन्दर दिव्य धाम "साकेत" है, जिसे वेदों ने गोलोक के मध्य कहकर गायन किया है।

अक्षर अच्युत आनँद कन्दा । सच्चिन्मय अरु गत दुख द्वन्दा ॥
अव्यय कारण परे सुलोका । सान्तानिक जेहिं वदत विशोका ॥

जो अविनाशी, अच्युत, आनन्दकन्द, सत व चिद स्वरूप, दुख और द्वन्दों से रहित, विकार हीन, कारणों से परे धाम है जिसे समस्त शोकों रहित "सान्तानिक लोक" कहते हैं।

सच्चिद आनन्द भवन मझारी । बैठे सीताराम सुखारी ॥
परिकर सेवित युगल किशोरा । श्यामा श्याम प्रेम रस बोरा ॥

उस महा महिमामय साकेत धाम में सच्चिदानन्दमय भवन के मध्य श्री सीताराम जी सुखपूर्वक विराजे हुए हैं तथा वे युगल किशोर, श्यामा सुन्दरी श्री सिया जी व श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज अपने परिकरों से सेवित प्रेम रस में डूबे हुए अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं।

सकल विकुण्ठन नायक सोहैं। सेवत सिया राम मन मोहैं ॥
अवर अनन्तन हरि अवतारा। राम सिया सेवहिं सुखसारा ॥
महा विष्णु मह ब्रह्मा भाये। महा शम्भु सेवहिं चित लाये ॥

वहाँ मनो–मुग्धकारी श्री सीताराम जी की सेवा करते हुए समस्त वैकुण्ठों के नायक सुशोभित हो रहे हैं, भगवान के अन्य अनन्त अवतार भी सुखों के सार श्री सीताराम जी की सेवा कर रहे हैं तथा महा–विष्णु, महा–ब्रह्मा व महा–शंकर भी ध्यान पूर्वक उनकी सेवा करते हैं।

दो०–शक्ति अमित तहँ सेवहीं, सीता राम स्वरूप।
लक्ष्मीनिधि लखि युगल छवि, आनँद लहैं अनूप ॥९३॥

नित्य साकेत धाम में अनन्त शक्तियाँ श्री सीताराम जी के स्वरूप की सेवा करती हैं तथा श्री लक्ष्मीनिधि जी युगल सरकार श्री सीताराम जी की छवि को देख–देखकर अनुपमेय आनन्द प्राप्त कर रहे हैं।

राम कहा हे प्राण पियारी। लीला चर्चा अबहिं उचारी ॥
पलक गिरी मुख करत उचारा। एक निमिष महँ खुली निहारा ॥

श्री राम जी महाराज ने कहा– हे प्राण प्रिया श्री सीते! आपने इस सुखप्रद चरित्र के रचना करने की वार्ता, अभी–अभी की है, जिसका आपके मुख से उच्चारण करते ही मेरी पलके गिरीं व एक निमिष के अन्तराल में मेरे नेत्र खुल गये।

सुनहु निमिष भीतर वर बामा। पहुँचेव अवध स्वलीला धामा ॥
बाल विवाह रास रस लीला। बन रण राज प्रेम सुख लीला ॥

हे परम सुशोभना श्री सिया जी! सुनिये, इस एक निमिष के भीतर ही मैं अपने लीला धाम श्री अयोध्यापुरी में पहुँच गया और मेरी जो बाल, विवाह, रास, बन, रण तथा राज्य आदि सभी प्रकार की रसमयी, प्रेममयी और सुखमयी लीला है।–––

षट प्रकार लीला रस राती। देखी सरस सुखद सब भाँती ॥
श्री निधि कर नव नेह निहारा। भ्रात मातु पितु प्रेम पसारा ॥

–––उन सभी छहों प्रकार की सरस सुखदायिनी लीलाओं का रस मग्न होकर भली प्रकार से दर्शन कर लिया। पुनः मैंने अपने प्रिय श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी के नवीन प्रेम को भी देख लिया तथा अपने भ्रातृ–गणों, माताओं तथा श्री मान! पिता जी के परिपूर्ण प्रेम को भी प्राप्त कर लिया।–––

महा भाव रस रास स्वरूपे। देखी तुम्हरी प्रीति अनूपे ॥
बहु हजार वर्षन कर चरिता। एक निमिष महँ लखे अकरिता ॥

सो प्रभाव सब तुम्हरो प्यारी । हौ तुम शक्ति अचिन्त्य हमारी ॥

———हे रसानन्द स्वरूपिणी, महाभाव निमग्ना श्री सिया जी, मैंने अपने प्रति आपकी अनुपमेय प्रीति का भी दर्शन किया है। कर्तृत्व भाव से रहित हो एक निमिष में ही मैंने कई हजार वर्षो के चरित्र का दर्शन कर लिया। हे प्यारी जू! वह सब आपका ही प्रभाव है, आप तो हमारी अचिन्त्य शक्ति ही है।

दो०—दीन्हेउ आनँद मोहि कहँ, त्रिभुवन सहित अथोर ।
कहि सुनि नर लीला ललित, लहहिं परम पद मोर ॥९४॥

तीनों लोकों सहित मुझे आपने महान आनन्द प्रदान किया है, मेरी इस मानवी लीला को कह सुनकर जीव मेरे परम पद को प्राप्त कर लेंगे।

बोली सिया सुनहु मम नाथा । तव संकल्प सदा तव साथा ॥
सुफल मनोरथ सदा गोसाँई । यथा विचारहिं लख तेहिं ताँई ॥

श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवण कर श्री सीता जी ने कहा हे प्राण नाथ! आपका संकल्प तो सदैव ही आपके साथ रहता है, आप सदैव ही पूर्ण मनोरथ हैं और आप जैसा विचार करते हैं, वैसा ही दर्शन कर लेते हैं।

पार्षद सहित भूमि मधि लीला । करन विचारेव हे सुख शीला ॥
निमिष मध्य देखे सोइ साँई । तव इच्छा महिमा बड़ि गाई ॥

हे समस्त सुखों के सार स्वामिन्! आपने अपने पार्षदों के साथ लीला भूमि में लीला करने का निश्चय किया, जिसका आपने एक निमिष में ही दर्शन कर लिया। आपके इच्छा शक्ति की महान महिमा अतिशय अगाध गाई गयी है।

अत्र निमिष भूमी बहुत वरषा । बीति जाहिं जानहिं सब सरसा ॥
यथा मनुज इक निमिषहिं माहीं । स्वप्न लखैं सत वर्षन काहीं ॥

पुनः आपको विदित ही है कि– यहाँ (साकेत धाम) के एक निमिष के समय में भूमि के अनेक वर्ष आनन्दपूर्वक व्यतीत हो जाते हैं। जिस प्रकार मनुष्य एक निमिष में सैकड़ों वर्षो के स्वप्न देख लेते हैं।———

तैसहिं नाथ जगत मय लीला । है तव स्वप्न सत्य सुख शीला ॥
जेहिं विधि चाहहिं आनँद लेना । सो विधि आगे ठाढ़ि सचैना ॥

———हे सत्यसंध, सुख स्वरूप प्रभु! उसी प्रकार इस संसार की लीला है जो आपका स्वप्न ही है। आप जिस प्रकार से आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं वही विधि आपके सम्मुख आनन्दपूर्वक इसमें उपस्थित हो जाती है।

दो०—आनँदमय रसमय प्रभू, लीलामय सत रूप ।
चिन्मय अविकारी अहौ, परिकर सुखद अनूप ॥९५॥

आप तो आनन्दमय, रसमय, लीलामय, सत्य स्वरूप, ज्ञान स्वरूप व सर्वथा विकार विहीन

हैं तथा अपने परिकरों को अनुपमेय सुख प्रदान करते रहते हैं।

सुनत सिया की मधुरी बानी । राम लिये निज हिय महँ आनी ॥
दुइ के एक एक बनि दोऊ । विलसहिं कहि न जाय सुख सोऊ ॥

श्री सीता जी के कोमल वचनों को श्रवणकर श्री राम जी महाराज ने उन्हें अपने हृदय से लगा लिया तथा वे दोनों दो के एक और एक के दो बनकर आनन्द पूर्वक लीला करने लगे, उस अवर्णनीय सुख का वर्णन कैसे किया जा सकता है।

अलिगन नृत्यन गावन लागी । आरति करहिं मुदित अनुरागी ॥
चरित वास्तविक होवन लागा । दिव्य धाम जो नित रस पागा ॥

तदनन्तर सेवा संलग्ना सखियाँ नृत्य और गायन करने लगीं तथा प्रसन्नता पूर्वक प्रेम से उन दिव्य दम्पति श्री सीताराम जी की आरती उतारने लगीं। हमारे सद्गुरु देव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– इस प्रकार वहाँ वास्तविक चरित्र होने लगा जो दिव्य धाम "साकेत" में नित्य रस वर्षण करता रहता है।–––

प्रथमहिं लीला भेद सुनायो । जनिहहिं सज्जन जो रस छायो ॥
अष्ट याम भक्तन सुख कारी । अमृत लीला होत अपारी ॥

–––जिसका मैंने पूर्व में ही प्रभु लीला के भेद बखान करते समय वर्णनकर सुनाया है अतः रस में छके हुये सज्जन वृन्द, उसे स्वयं ही जान जायेंगे। वहाँ (साकेत धाम में) आठोंयाम भक्त जनों को सुख प्रदान करने वाली वह अमृतमयी व असीम वास्तविक लीला सम्पादित होती रहती हैं।

दासी दास सखा सखि जेते । वत्स्य भाव के रसिक सु तेते ॥
लीला पात्र बने रस साने । भाव देह सुख सने लुभाने ॥
गुणातीत सो आनँद दिव्या । मन वाणी बुधि पार अतिव्या ॥

वहाँ जो भी दासियाँ, सेवक, सखा, सखी और वात्सल्य आदि भावों के सुन्दर रसिक महानुभाव हैं वे सभी रसमग्न हो भाव देह के अनुसार सुख में डूबे, लुभाये हुए वहाँ के लीला पात्र होते हैं। वहाँ का आनन्द गुणातीत, मन, वाणी और बुद्धि से पार, दिव्य व महान है।

दो०– राम सिया सुखरूप चिद, नित्य किशोरि किशोर ।
परिकर सह आनन्द पगे, रसमय रहत विभोर ॥९६क॥

वहाँ (साकेत धाम में) सुख स्वरूप, चिन्मय, रसमय व नित्य किशोरी–किशोर श्री सीताराम जी अपने परिकरों सहित आनन्द में पगे हुए प्रेम–विभोर बने रहते हैं।

महा अनन्त सुकाल जो, भूत भविष त्रय भेद ।
बर्तमान बनि नित रहैं, प्रभु आगे कह वेद ॥ख॥

महान, अनन्त व सुन्दर जो 'समय' है जिसके भूत, भविष्य और वर्तमान तीन प्रकार के भेद हैं वह नित्य ही प्रभु श्री राम जी महाराज के आगे वर्तमान बनकर रहता है, ऐसा वेद बखान करते हैं।

अमित कल्प लीला ललित, निज परिकर के साथ ।
वर्तमान छन ही लखैं, इक रस सिय रघुनाथ ॥ग॥

अपने परिकरों के साथ की गयी असीमित कल्पों की सुन्दर लीला को श्री सीताराम जी एकरस, वर्तमान समय के समान ही अनुभव करते हैं।

अमित सृजन पालन हरण, होत जगत के काज ।
नित अखण्ड लीला ललित, चलति रहत रघुराज ॥घ॥

सृष्टि संचालन हेतु असीमित उत्पति, पालन और संहार आदि सृष्टि–कार्य सतत होते रहते हैं तथा इस प्रकार से श्री राम जी महाराज की सुन्दर लीला नित्य व अनवरत चलती रहती है।

यहिं विधि सीताराम उदारा । लीला सुख लीला विस्तारा ॥
जिमि जग नृपति घूमि फिर आई । शयन कुंज सोवहिं सुख छाई ॥

परम उदार श्री सीताराम जी लीला सुख के लिये इस प्रकार की लीला का विस्तार करते रहते हैं। जैसे कोई राजा संसार में भ्रमण कर पुनः लौटकर, सुख पूर्वक अपने शयन कुंज में आकर शयन कर जाता है।

तिमि करि लीला जगत मझारी । प्रभु साकेत शान्ति सुख सारी ॥
उभय विभूति नाथ सियरामा । पूर्णकाम पूरण सुख धामा ॥

उसी प्रकार संसार (एकपाद विभूति) में अपनी लीला सम्पादित कर श्री सीताराम जी सुख और शान्तिपूर्वक साकेत–धाम (त्रिपाद विभूति) में विश्राम करते है। सर्वेश्वर व पूर्ण सुख के धाम श्री सीताराम जी अपनी युगल विभूति ("त्रिपाद विभूति" साकेत धाम में व "एक पाद विभूति" लीला स्थली) में पूर्णकाम हो–––

पूर्ण पूर्णतम पूरण राजै । अत्र तत्र प्रभु पूरण भ्राजै ॥
इत सिय राम वहाँ हैं नाहीं । वहाँ युगल प्रभु इत न लखाहीं ॥

–––पूर्ण रूपेण, पूर्णतम परब्रह्म स्वरूप से पूर्ण बन कर विराजते हैं। यहाँ और वहाँ ढ्ढसाकेत–लोक व लीला–धाम) सर्वत्र प्रभु श्री सीताराम जी पूर्णतया सुशोभित होते हैं। श्री सीताराम जी यहाँ (साकेत लोक) हैं तथा वहाँ (लीला धाम) नहीं है अथवा वहाँ हैं यहाँ नहीं हैं–––

कबहुँ घटै नहिं बात अधूरी । पूर्ण ब्रह्म अणु अणु महँ पूरी ॥
एक साथ इत उत रघुराई । करैं ललित लीला सुखदाई ॥

–––यह बात अधूरी है कभी भी यथार्थतः घटित नहीं होती क्योंकि पूर्ण ब्रह्म श्री सीताराम जी अणु–अणु में पूर्ण रूप से विद्यमान रहते हैं। वे एक ही साथ यहाँ और वहाँ (साकेत धाम व लीला भूमि में) सुन्दर एवं सुख प्रदायी लीला करते रहते हैं।

दो०–इहाँ उहाँ कर भेद जो, वास्तव महँ व्यवहार ।
अत्र तत्र सब राम ही, रामहिं रमैं रकार ॥९७॥

यथार्थतः यहाँ और वहाँ (साकेत धाम व लीला भूमि) का जो अन्तर है वह तो केवल व्यवहार में है जबकि यहाँ और वहाँ सर्वत्र श्री राम जी महाराज ही, बीज (रकार) रूप से, संसार स्वरूप श्री राम जी में रमण करते हैं।

राम राम में रामहि द्वारा। रमैं नित्य रम शक्ति अपारा॥
ताते करि सन्देहहिं दूरी। रामहिं भजैं आस सब तूरी॥

श्री राम जी महाराज स्वयं अपने आप में (श्री राम में), स्वयं (राम) के द्वारा, रमण करने की असीमित शक्ति के द्वारा रमण करते हैं इसलिए संदेह को दूर कर जीवों को चाहिए कि– वे अपनी सभी सांसारिक कामनाओं को त्यागकर श्री राम जी महाराज का भजन करें।

मन चित बुद्धि विषय करि रामै। रमै अखण्ड इहै जिव कामै॥
राम रमण बिन दुर्लभ जानो। शान्ति रमण सरसत सुख सानो॥

अपने मन, चित्त तथा बुद्धि का विषय श्री राम जी महाराज को बनाकर उनमें निरन्तर रमें रहें यही जीव का कार्य (परम पुरुषार्थ) है। क्योंकि बिना श्री राम जी महाराज में अनुरक्त हुए जीवों का सुख पूर्वक शान्ति में विहार करना दुर्लभ ही समझना चाहिये।

ताते रमहु राम महँ सारे। जीव धर्म के जानन हारे॥
सहज सनेही राम कृपाला। तिन बिन जगतहिं जानहु काला॥

इसलिए हे धर्मज्ञ जीवो! आप सभी श्री राम जी महाराज में अनुरक्त हो जाइये। श्री राम जी महाराज ही सहज स्नेही एवं कृपालु हैं अतः उनके बिना इस संसार को काल के समान ही समझिये।

प्रीति सहज जोरहु तिन तेरे। कत सोवहु जग बीच अँधेरे॥
जागहु जागहु जागहु भाई। निरखहु राम रविहिं रस छाई॥

आप सभी उनसे अपना सहज प्रेम सम्बन्ध बना लीजिये, आप संसार के मोहान्धकार में क्यों? सोये हुये हैं जागिये, जागिये, जागिये, हे भाइयों! रस मग्न होकर श्री राम रूपी सूर्य का दर्शन तो कीजिये।

दो०– सब प्राणन के प्राण प्रभु, प्राणन राखन हार।
प्राणन प्रण करि भजहु सब, जिव जिव प्राण अधार॥९८॥

अतः समस्त जीवों के प्राणों के प्राण, प्राणों की रक्षा करने वाले, सम्पूर्ण जीवों के जीवन व प्राणों के एक मात्र आश्रय स्थल श्री सीताराम जी का प्राण–पण (प्राणों की बाजी लगाकर) से आप सभी भजन करें।

प्रेम कथा जस मति मैं वरणी। जनक सुवन अरु रघुवर करणी॥
लक्ष्मण हनुमत शुचि सम्वादा। कथन श्रवण भो भरि अहलादा॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–हे भाइयो! जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी और रघुनन्दन श्री राम जी महाराज के पावन चरित्र की प्रेम गाथा का मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन किया। इसमें श्री रामानुज लक्ष्मण कुमार (वक्ता) जी तथा श्री पवन

नन्दन हनुमान जी (श्रोता) के मध्य हुये पवित्र वार्तालाप का आह्लाद पूर्वक कथन एवं श्रवण हुआ है।

कहे विभोर सुने सुख मोऊ। कथा प्रेम रामायण दोऊ ॥
ताते प्रेम प्रदायक भारी। प्रेम कथा रसमय सुखकारी ॥

उन दोनों श्री लक्ष्मण कुमार व श्री हनुमान जी ने सुख पूर्वक प्रेम विभोर हो जिस चरित्र का कथन व श्रवण किया है वही चरित्र श्री प्रेम रामायण है। इसलिए यह रसमयी तथा सुखकारी "श्री प्रेम रामायण" अतिशय प्रेम प्रदान करने वाली है।

जे यहि कथहिं भाव भरि नित्या। पढ़िहैं सुनिहैं समुझि सुचित्या ॥
अवशि त्रिसत्य कहौं गोहराई। राम प्रेम पइहैं रस दाई ॥

जो जन इस "श्री प्रेम रामायण" को नित्य ध्यानपूर्वक भाव सहित पढ़ेंगे तथा सुनेंगे वे अवश्य ही रस प्रदाता श्री राम जी महाराज का "प्रेम" प्राप्त करेंगे, मैं पुकार कर कह रहा हूँ कि–यह बात सत्य है, सत्य है, सत्य है।

राम चरित सब स्वयं सुहावा। प्रेम पगा चहुँ दिशि रस छावा ॥
ग्रहण करैं नर नारी जोई। राम रसहिं रति रागैं सोई ॥

स्वयमेव सुन्दर, प्रेम प्रपूरित व चतुर्दिक रस से परिपूर्ण श्री राम जी महाराज के इस चरित्र "श्री प्रेम रामायण" को जो पुरुष–स्त्री धारण करेंगे वे श्री राम जी महाराज के प्रेमानन्द में रँग जायेंगे।

दो०– राम कथा परभाव यह, लेहिं रसिक जन जान।
मम कथनी करतूत नहिं, भव रस निरत अयान ॥९९॥

इसे रसिक जन भली प्रकार समझ लें कि– यह सब श्री राम जी महाराज के चरित्र का ही प्रभाव है। मेरी कहनी का कौशल्य नहीं है क्योंकि मैं तो सर्वथा संसार रस में अनुरक्त तथा अज्ञानी हूँ।

यहि महँ मोर कछुक है नाहीं। त्रुटिहिं छोड़ मानहु मन माहीं ॥
जो कछु है सो संत उछिष्टा। वेद शास्त्र अनुभव कर शिष्टा ॥

आप सभी अपने मन में यह जान लें कि इस "श्री प्रेम रामायण" में त्रुटियों को छोड़कर मेरा कुछ भी नहीं है, इसमें जो कुछ भी है वह सन्तों का उच्छिष्ट (कृपा प्रसाद) एवं सुधी–जनों के द्वारा वेदों व शास्त्रों का अनुभव किया हुआ सुन्दर तत्त्व है।

उर प्रेरक सिय राम सुजाना। लिखवाये सो लिखेउँ न आना ॥
लीला लिखन लिखावन वारे। तथा लेख अक्षर रस गारे ॥

सर्वज्ञ व हृदय के प्रेरणा श्रोत श्री सीताराम जी ने मुझसे जो कुछ लिखवाया है वही मैने इस "श्री प्रेम रामायण" में लिखा है, अन्य नहीं। अतः इस चरित्र के लिखने–लिखाने वाले, लेख एवं रसमय अक्षर आदि–––

सीय राम हैं सत सत भाई। मैं नहिं अहौं कछुक जग जाई ॥
विषयी पाँवर कुटिल गवाँरा। छन छन करत कुपाप कबारा ॥

–––हे भाइयो! सत्य, सत्य श्री सीताराम जी ही हैं, इस संसार में जन्म लेने वाला (मायाधीन जीव) मैं कुछ भी नहीं हूँ। क्योंकि मैं तो महा विषयी, पामर, कुटिल, गँवार एवं प्रतिक्षण कुपापों को ही एकत्र करने वाला हूँ।–––

कौन पाप जग के हैं भारे । जेहिं न कियो बहु बार हजारे ॥
संत द्रोह गुरु द्रोह महाना । करि जिव द्रोह हरिहिं अपमाना ॥
शास्त्र निहित शुभ धर्म न राता । अकृत करण कीने दुख दाता ॥

–––इस संसार के बड़े से बड़े ऐसे कौन से पाप हैं जिन्हे मैंने हजारों बार न किया हो, सन्त–द्रोह, अतिशय प्रबल गुरु–द्रोह तथा जीवों से द्रोह कर भगवान का सतत अपमान करता रहता हूँ। मैंने कभी भी अपना मन शास्त्रों में वर्णित शुभ–धर्म में नहीं लगाया अपितु सदैव दुखदायी अकरणीय कर्म ही करता रहा।

दो०–करत असह अपचार मैं, यद्यपि महा मलीन ।
तदपि कृपा सिय राम की, चाहत बनो अधीन ॥१००॥

यद्यपि महा मलिन मैं, नित्य असह्यापचार (अक्षम्य अपराध) ही करता रहता हूँ तथापि श्री सीताराम जी के आधीन बने रहने की व उनके कृपा प्राप्ति की इच्छा करता हूँ।

राम कृपा अस अधमहुँ काहीं । कीन्ह वरण लागत मन माहीं ॥
संत सुगुरु सिय साहब केरा । कहैं गुलाम मोहि जग टेरा ॥

मेरे मन में ऐसी प्रतीति हो रही है कि– श्री राम जी महाराज की कृपा ने मुझ अधम को भी वरण कर लिया है क्योंकि यह संसार मुझे सन्तों, सद्गुरु एवं सीताकान्त श्री राम जी महाराज का दास कहकर पुकारता है।

संत बीच बैठन मैं पायो । याते कृपा कौन अधिकायो ॥
कथा कीन्ह आपुहिं सुखकारी । नाम लगायो मोर खरारी ॥

मुझे सन्तजनों की पंक्ति में बैठने का अवसर प्राप्त हो गया है इससे अधिक अब कौन सी भगवत्कृपा होगी। खर नामक राक्षस का वध करने वाले प्रभु श्री राम जी महाराज ने स्वयं ही इस परम सुख प्रदायक "श्री प्रेम रामायण" ग्रन्थ की रचना की है किन्तु मुझे यश प्रदान करने हेतु मेरा नाम लगा दिया है।

दम्भ मोर सदगुण कहवाई । राम कृपा बल देत बड़ाई ॥
अस कृपालु सिय रमण स्वभाऊ । झूँठे भगतहुँ साधु बनाऊ ॥

श्री राम जी महाराज ने अपनी कृपा बल से मेरे दम्भ को, सद्गुण बनाकर मुझे यश का पात्र बना दिया है। सीताकान्त श्री राम जी महाराज का स्वभाव तो ऐसा है कि– वे अपने झूठे भक्तों को भी साधु बना देते हैं।

को न भजहिं जग अस सिय जानी । राम सिया पद रति हिय आनी ॥
जनतहुँ जो न भजै प्रभु काहीं । सो नर सूकर कूकर आहीं ॥
पाइ मनुज तन दुर्लभ देवा । जो न करैं हरि गुरु पद सेवा ॥

श्री सीताराम जी के ऐसे स्वभाव को अपने ह्रदय में समझ कर कौन ऐसा होगा जो श्री उनके चरणों का प्रेम अपने ह्रदय में बसाकर उनका भजन नहीं करेगा? प्रभु के ऐसे स्वभाव को जानते हुये भी जो प्रभु श्री राम जी महाराज का भजन नहीं करते वे मनुष्य सुअर व कुत्ते ही हैं। इस देव दुर्लभ मनुष्य शरीर को पाकर जो भगवान तथा श्री गुरु चरणों की सेवा नहीं करते–––

दो०–तौ सत प्रभु विमुखीन को, पड़त महा यमदण्ड ।
चौरासी भुगतत फिरैं, कर्म महा बरबण्ड ॥१०१॥

–––तो सत्य ही उन प्रभु विमुखी जीवों को यमराज के दण्डों की मार पड़ती है तथा वे महा प्रचण्ड कर्म भोगों को भोगते हुए चौरासी लाख योनियों में भटकते रहते हैं।

जीवन स्वोच्च चहै भव पारा। निज सत्ता महँ स्पृहा विचारा ॥
तौ नर रामहिं बनि प्रिय दासा। भजै अनन्य छोड़ि जग आसा ॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– यदि अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाकर संसार सागर के पार होने कामना है तथा अपने अस्तित्व को बनाये रखने की उत्तम अभिलाषा है तो मनुष्यों को चाहिए कि– वे श्री राम जी महाराज के प्रिय सेवक बनकर अनन्यता पूर्वक संसार का भरोसा छोड़कर उनका भजन करें।

दुख स्वरूप कलियुग मल मूला। सब विधि अहे जीव प्रतिकूला ॥
ज्ञान विराग योग सब साधन। कर्म काण्डमय देव अराधन ॥

यह दुखस्वरूप एवं मल (गन्दगी) का मूल, कलियुग सभी प्रकार से जीवों के यथार्थ हित साधन के लिये प्रतिकूल है तथा ज्ञान, वैराग्य, योग, कर्मकाण्ड व भगवदाराधन रूप सभी जितने भी साधन हैं।–––

सब कर फल कलयुग महँ भाई । केवल श्रम जानहु जिय ध्याई ॥
अविधि दम्भमय बिना विचारा। विषयी मन सह साधन सारा ॥

–––हे भाइयो! अपने ह्रदय में समझ लीजिये कि– उन सभी साधनों का परिणाम कलियुग में केवल परिश्रम ही है क्योंकि वर्तमान में उपरोक्त सभी साधनों का अनुष्ठान विधि विधान रहित (शास्त्रीय विधान से हीन), दम्भ पूर्वक व विषयी मन के सहित होता है।

संयम नियम बिना सब सुनहू । यतन कोटि सुख देत न कबहूँ ॥
याते सब साधन तजि आसा। सिय वर शरण गहहु बनि दासा ॥

आप सभी यह सुन लीजिये कि करोड़ों प्रयत्न करने पर भी संयम और नियम के अभाव में किये हुए साधन कभी भी सुख नहीं दे सकते। इसलिए सभी साधनों का भरोसा त्यागकर आप सीताकान्त श्री राम जी महाराज के सेवक बन उनकी शरणागति ग्रहण करें।

दो०—अभय करहि रघुवंश मणि, देखि आपनी ओर ।
महा पाप भय नास करि, पोंछिहहिं आँसु अथोर ॥१०२॥

तभी रघुकुल मणि श्री राम जी महाराज अपने विरद की ओर देखकर आपके महान पापों एवं भय को नष्ट कर अभय कर देंगे तथा शोक के कारण आपके नेत्रों से अविरल प्रवाहित होने वाले आँसुओं को पोंछ देंगे (शोक रहित कर देंगे)।

रक्षहु राम अहहुँ मैं तोरा । शब्द सुनत रघुचन्द्र किशोरा ॥
आतुर होय हृदय लपटाई । अभय करहिं सब कहँ अपनाई ॥

हे श्री राम जी महाराज! "मेरी रक्षा कीजिये, मैं आपका हूँ" ये शब्द सुनते ही रघुकुल चन्द्र अवध किशोर श्री राम जी महाराज अधीर होकर हृदय से लगा लेते हैं तथा सभी प्रकार से जीव को अपनाकर अभय कर देते हैं।

दृढ़ व्रत सत्य सन्ध प्रभु रामा । शरण पाल जित क्रोध अकामा ॥
अस विचार लहि शरण राम की । चहहु कृपा करुणा स्वधाम की ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज दृढ़–प्रतिज्ञ, सत्य का अनुसंधान करने वाले, शरणागत–पालक, क्रोध पर विजय किये हुये व सर्वथा निष्काम हैं ऐसा विचार कर, करुणा के धाम प्रभु श्री राम जी महाराज की शरणागति ग्रहण कर, उन के कृपा की कामना करना चाहिए।

सीताराम रटहु दिन राती । मन वच करम जगत तजि बाती ॥
अमृत चरित तिनहिं के सुनहू। भाव सहित दृढ़ नेमहिं अनहू ॥

आप सभी मन, वचन और कर्म से सांसारिक वार्ता (व्यर्थ वादाविवाद) को त्याग दिन–रात श्री सीताराम नाम की रटन लगाये रहिये तथा उन्ही के अमृतमय चरित्रों को भाव पूर्वक सुनने का दृढ़ नियम ग्रहण कर लीजिये।

राम सिया रस रसिक सुसन्ता । तिन कर संग करहु मतिवन्ता ॥
अवशि दूर होवै भव रोगा । मिलै सुखद सिय राम सुयोगा ॥

तदनन्तर हे परम प्रज्ञ सज्जनो! श्री सीताराम जी के प्रेम रस के रसिक सुन्दर सन्तों का सत्संग कीजिये तब आपके भव–रोग अवश्य ही दूर जायेंगे तथा आपको श्री सीताराम जी का सुख प्रदायक सुयोग प्राप्त हो जायेगा।

दो०—मिलैपरमपद अवशि तेहिं, सत चिद् आनँद रूप ।
पावन प्रेम प्रसाद प्रभु, देवहिं अकथ अनूप ॥१०३॥

ऐसे साधकों को अवश्य ही सच्चिदानन्द स्वरूप परम पद प्राप्त होता है तथा प्रभु श्री राम जी महाराज उन्हें अपना अकथनीय एवं अनुपमेय परम पवित्र "प्रेम प्रसाद" प्रदान करते हैं।

राम भजत अति नीचहु प्रानी । तरे सदा श्रुति शास्त्र बखानी ॥
विरद पतित पावन सुखदाई । राम सिया कर शास्त्र बताई ॥

श्री राम जी महाराज का भजन करने वाले नीच से नीच प्राणी भी सदैव संसार सागर से पार हो गये हैं ऐसा शास्त्रों एवं श्रुतियों में बखान किया गया है। श्री सीताराम जी का विरद पतितों को पावन बनाने वाला व परम सुख दायी है ऐसा शास्त्र बर्णन करते हैं।

महा पतित लै नाम उदारा। तरे शास्त्र सत साखि पुकारा ॥
राम कथा सुनि पावन भयऊ। अमित लोग श्री हरि पुर गयऊ ॥

बड़े से बड़े पापी भी श्री राम जी महाराज के उदार "नाम" का आश्रय लेकर भवसागर से तर जाते हैं ऐसी सत्य वार्ता शास्त्रों ने साक्षी देकर तथा पुकार–पुकार कर कही है। श्री राम जी महाराज की पवित्र कथा को श्रवणकर असीमित पतित जीव भी पवित्र होकर श्री भगवान के धाम को चले गये हैं।

कलयुग केवल तरन उपाया। राम नाम अरु चरितहिं गाया ॥
संतन साथ कहेव पुनि गाई। अन्य उपाय न यहि युग भाई ॥

अस्तु कलयुग में भव सागर से पार उतरने का उपाय श्री राम जी महाराज का नाम व उनके चरित्र का गायन ही कहा गया है। पुनः सन्तजनों की संगति का बखान भी किया गया है। अतः हे भाइयो! इनके अतिरिक्त अन्य कोई भी उपाय इस कलियुग में नहीं है।

अहैं बचन श्रुति शास्त्र निचोरा। प्रीति प्रतीति करहु जग छोरा ॥
संत वचन जो कर परतीती। भजिहैं सीता पतिहिं अतीती ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– मेरे ये बचन श्रुतियों एवं शास्त्रों के निचोड़ (सार तत्व) हैं। अतएव संसारिक आसक्ति को त्याग कर मेरे इन वचनों में प्रेम और विश्वास कीजिये। जो जीव सन्तों के वचनों में विश्वास कर सीतापति श्री राम जी महाराज का अनवरत भजन करते हैं।———

दो०–राम प्रेम दिवि धाम लहि, प्रभु सहचर्य अनूप ।
अमृत बनि सेवा सुधा, चखिहैं आनन्द रूप ॥१०४॥

———वे श्री राम जी महाराज के प्रेम को प्राप्त कर उनके दिव्य साकेत धाम में उनका अनुपमेय साहचर्य (संग) प्राप्त करेंगे तथा आनन्द स्वरूप एवं स्वयं अमृत बन कर प्रभु सेवा करते हुए अमृत का आस्वाद ग्रहण करेंगे।

सुनहु सबै रामायण माहीं। जो मैं कहा रहस्यहिं काहीं ॥
लषण भनित सो प्रेम रहस्या। गोपनीय जिमि मंत्र समस्या ॥

हे सज्जनों! आप सभी सुनिये, मैंने इस "श्री प्रेम रामायण" में जो भी गुप्त चरित्र वर्णन किये हैं वे सभी श्री रामानुज लक्ष्मण कुमार जी द्वारा बखान किये गये प्रेम रहस्य हैं जो षडक्षर "श्री राम मन्त्र" और उसमें छिपे हुये रहस्य की भाँति अत्यन्त गुप्त रखने योग्य हैं।

हृदय जासु गुरु बचन प्रतीती। प्रेम सनी सेवन शुभ रीती ॥
सीय राम पद प्रेम अपारा। छलकत सहज अतर्क उदारा ॥

जिनके हृदय में गुरु वचनों के प्रति महा विश्वास एवं उनकी सेवा करने की विधि, प्रेम परिपूर्ण व हितकारी है। जिन महापुरुषों के हृदय में श्री सीताराम जी के चरणों के प्रति असीम, तर्क–रहित, सहज व उदार प्रेम छलकता रहता है।

वेद विहित सब करहिं अचारा। श्रुति निषेध पर पग नहिं पारा॥
विषय वितृष्ण बहुत जिज्ञासू। वेद ब्रह्म बचनहिं विश्वासू॥

जो सदैव वेदों के अनुसार ही अपने आचरण करते हैं, श्रुतियों द्वारा निषिद्ध मार्ग में कभी भी पैर नहीं रखते, सभी प्रकार के विषयों से विरत हो गये हैं, अत्यन्त जिज्ञासावान हैं तथा वेद व भगवान के वचनों में दृढ़ विश्वास करते हैं।

राम कथा के रसिक महानी। त्यागे वाद विवाद अमानी॥
सत संगति सरसति अधिकाई। संतन सेवत भाव बढ़ाई॥

जो श्री राम जी महाराज के चरित्र के महान रसिक हैं, व्यर्थ के कुतर्कों को त्याग कर अमानी हो गये हैं, जिनके हृदय में सत्संग करने की तीव्रतर इच्छा समायी रहती है तथा जो भावपूर्वक सन्तजनों की सेवा करते हैं।

दो०–ते सज्जन प्रभु चरित के, गुप्त प्रगट जो आहिं।
अधिकारी जिय जानियहिं, कहिय सुनिय तिन पाहिं॥१०५॥

वे सुधीजन ही प्रभु श्री राम जी महाराज के गुप्त और प्रगट दोनो प्रकार के चरित्रों के अधिकारी हैं, ऐसा हृदय में समझकर उन्हीं से इस "श्री प्रेम रामायण" की कथा को कहना और सुनना चाहिये।

मन वच कर्म न संयम करहीं। पर दुख हेतु जगत महँ चरही॥
तिन कहँ कबहुँ सुनाइय नाहीं। तन धन बाम भले ही जाहीं॥

जिनका मन, वचन और कर्म में किंचित भी संयम नहीं है तथा संसार में जिनके आचरण दूसरों को दुखी करने वाले ही होते हैं उन्हें इस "श्री प्रेम रामायण" को कभी नहीं सुनाना चाहिए, चाहे आपका शरीर, सम्पत्ति और स्त्री आदि सभी सर्वस्व नष्ट होने की स्थिति आ जाय।

काम क्रोध मद लोभ समाने। तिनते कथा न कहहिं सयाने॥
हरि गुरु सन्त जीव की सेवा। जिनहिं न भावै स्वारथ धेवा॥

जिनके हृदय में काम, क्रोध, मद व लोभ आदि विकार निवास किये रहते हैं, सुजान पुरुषों को उनसे इस श्री प्रेम रामायण की कथा को नहीं कहना चाहिये। जिन्हे श्री भगवान, श्री गुरुदेव, श्री सन्तजन तथा जीवों की सेवा अच्छी नहीं लगती तथा जो सतत स्वार्थ पूर्ति के साधन में ही संलग्न रहते हैं।———

तिन कहँ देय न प्रभु की लीला। चाहे कोटिन विघ्न झमीला॥
सुनन चहै नहिं कथा सुहानी। भावत भव रस कथा कहानी॥

———उन्हें भगवान का प्रिय चरित्र यह "श्री प्रेम रामायण" कभी भी नहीं सुनाना चाहिये चाहे

करोड़ों बाधायें और बखेड़े उपस्थित हों। जो लोग सुन्दर भगवत्कथा नही सुनना चाहते तथा सांसारिक रस ‍(भवरस) के किस्से कहानियाँ ही जिन्हे रुचिकर लगती हैं।———

ताहि सुनावै कबहुँ न भाई। प्रभु अपमान तहाँ दुखदाई॥
जे कुतर्क रत भाव न धारे। निज विद्या अभिमान करारे॥

———हे भाइयो! उन्हें यह "श्री प्रेम रामायण" कभी भी नहीं सुनाना चाहिए क्योंकि वहाँ अत्यन्त दुखदायी भगवान का अपमान होता है। जो लोग कुतर्क (व्यर्थ वादाविवाद) करने में ही लगे रहते हैं, जो भगवान के प्रति हृदय में सुन्दर भाव नहीं धारण करते प्रत्युत अपने ज्ञान का अतिशय अभिमान करते हैं।———

दो०—कबहुँक देवै तिनहिं नहिं, लीला ललित अमोल।
करि कुतर्क ते निन्दहीं, दुखद बचन कहँ बोल॥१०६॥

———उन्हें भगवान की सुन्दर, अनमोल लीला से युक्त यह "श्री प्रेम रामायण" कभी नहीं सुनाना चाहिए नहीं तो वे व्यर्थ—विवाद कर दुखदायी बचन बोलते हुए इसकी निन्दा करेंगे।

जे हरि निन्दक जगत मझारी। तिनहिं न देवै कथा पियारी॥
कर्मठ योगी निरस विरागी। बिन प्रभु भाव ज्ञान विद त्यागी॥

इस संसार में जो जन भगवान की निन्दा करने वाले हैं उन्हें यह प्रिय कथा "श्री प्रेम रामायण" नहीं सुनाना चाहिए। जो जीव कर्मवादी, योगी, वैरागी, ज्ञानी व त्यागी आदि नीरस व भगवद्‌भाव से रहित हैं———

ये सब यद्यपि आतम वादी। अति मुमुक्ष दैवी गुण लादी॥
तदपि जानि प्रभु प्रेम विहीना। प्रेम कथा नहिं कहहिं प्रवीना॥

———यद्यपि ये सभी आत्मा में ही रमण करने वाले, अत्यन्त मुमुक्ष तथा दैवी गुणों से सम्पन्न होते हैं तथापि इन्हे प्रभु प्रेम से रहित जानकर सुधीजन "श्री प्रेम रामायण" की प्रेममयी कथा इनसे नहीं कहते।

जो कोउ द्रव्य मान के हेता। बिन अधिकार कथा रस देता॥
प्रभु अपमान करावन काहीं। सो नर करत उपाय अथाहीं॥

जो कोई भी सम्पत्ति व सम्मान के लिये अनधिकारी व्यक्ति (अनुपयुक्त पात्र) को इस श्री प्रेम रामायण की कथा का रस पान कराता है वह श्री भगवान का अपमान कराने का असीम उद्यम ही करता है———

प्रभु निन्दक सो साँचो अहई। करत करावत दम्भहिं गहई॥
अर्थ अनर्थ करहिं मनमाने। वक्ता श्रेष्ठ तिनहिं नहिं जाने॥

———वस्तुतः वही भगवान का सच्चा निन्दक है और पाखण्ड के कारण भगवान की निन्दा करता और कराता रहता है। जो लोग इस श्री प्रेम रामायण की कथा का मनमानी अर्थ—अनर्थ करते हैं, उन्हें श्रेष्ठ वक्ता नहीं समझना चाहिए।———

दो०–कहहु काह बाकी रहेव, पाप करन को ताहि ।
हरि गुरु सत अपकार महँ, महा पाप सब आहिं ॥१०७॥

–––ऐसे व्यक्ति के लिए आप ही कहिये कि, कौन सा पाप करने को शेष बचा क्योंकि श्री भगवान, श्री गुरुदेव एवं सन्तों के अपचार में ही सभी पाप निवास करते हैं।–––

राम कथा जे निन्दा सुनहीं । गोवध सम पातक श्रुति भनहीं ॥
ताते गाइय कथा सम्हारी । पात्र देखि हिय हर्ष बिचारी ॥

–––जो जन श्री राम जी महाराज के चरित्र की निन्दा सुनते हैं उन्हें गोवध द्धगोहत्या) के समान पाप लगता है ऐसा श्रुतियाँ कहती हैं। इसलिए इस चरित्र "श्री प्रेम रामायण" को सम्हाल सहित तथा पात्र देख, हृदय में बार–बार विचार कर हर्ष पूर्वक गायन करना चाहिए।

बनि अकाम वक्ता रस पागे । सहज स्वभाव कथा अनुरागे ।।
कथा प्रभाव परम विश्वासा । छावत हिय महँ प्रेम प्रकाशा ।।

वक्ता को चाहिये कि– वह निष्काम हो, प्रेम रस में डूब, सहज व स्वाभाविक अनुराग में भरकर इस "श्री प्रेम रामायण" की कथा का बखान करे। भगवान की इस "श्री प्रेम रामायण" कथा का प्रभाव यह है कि– अत्यन्त विश्वास पूर्वक कहने और सुनने से हृदय में प्रेम का प्रकाश छा जाता है।–––

प्रेम हेतु प्रेमी सो भाषै । कहत सुनत अमृत रस चाखै ॥
मान द्रव्य यश चाह कुबीजा । वर वक्ता हिय रहन न दीजा ॥

–––वक्ता को चाहिये कि– इस "श्री प्रेम रामायण" की कथा को, प्रभु प्रेम प्राप्ति के हेतु ही, प्रभु प्रेमियों के समीप करें तथा इसे कह और सुनकर अमृतानन्द का आस्वाद ग्रहण करें। श्रेष्ठ वक्ता अपने हृदय में आदर, द्रव्य एवं यश आदि की कामना का बीज तक नहीं रहने देता।–––

सो वक्ता आतम सुख पावै । श्रोतन हिय रस धार बहावै ॥
स्वयं तरै अरु श्रोतन तारै । प्रेम प्रगटि प्रभु धाम पधारै ॥

–––उपर्युक्त स्थिति का वक्ता ही आत्मानन्द प्राप्त करता है तथा श्रोतागणों के हृदय में प्रेम रस की धारा प्रवाहित कर देता है। वह स्वयं तो इस संसार सागर से पार होता ही है, श्रोताओं का भी उद्धार करता है तथा उनके हृदय में प्रेम उत्पन्न कर उन्हें भगवान का अच्युत धाम प्रदान करता है।

दो०–श्रोता वक्ता एक सम, भगति ज्ञान वैराग ।
चाहिय हिय प्रभु प्रेममय, आनँद रस तब जाग ॥१०८॥

श्रोता और वक्ता दोनों को एक समान भक्ति, ज्ञान व वैराग्य से युक्त होना चाहिये तथा दोनों का हृदय भगवत्प्रेममय होना चाहिए तभी भगवत्कथा में आनन्द–रस का प्राकट्य होता है।

राम रहस्य चरित्र अनूपा । आनँद प्रद प्रिय प्रेम स्वरूपा ॥
जो प्रभु प्रेमहिं हिय भरि भावा । वक्ता देवहिं श्रवण सुनावा ॥

श्री राम जी महाराज के अनुपमेय आनन्द प्रदायक प्रिय प्रेम स्वरूप रहस्यमय चरित्रों से युक्त इस "श्री प्रेम रामायण" को जो वक्ता हृदय में भाव प्रपूरित हो भगवान के प्रेमियों को सुनाते हैं।———

करि उपदेश राम रति देई । परम साधु सो जग गिन लेई ॥
परा भक्ति सो प्रभु की कीन्हा । जो जीवहिं हरि सन्मुख दीन्हा ॥

———साथ ही इसका उपदेश दे देकर उन्हें श्री राम जी महाराज का प्रेम प्रदान करते हैं उन्हे संसार में परम श्रेष्ठ साधु समझना चाहिए। उसने भगवान की सर्वश्रेष्ठ पराभक्ति कर ली जिसने जीवों को भगवान के सम्मुख कर दिया।———

प्रेम यज्ञ ते रघुपति केरी। पूजा करि दिय तोष घनेरी ॥
तेहिं पै रीझि राम रस वारा। प्राणन प्राण गिनहिं करि प्यारा ॥

———उसी ने प्रेम यज्ञ के द्वारा श्री राम जी महाराज की अर्चना कर उन्हें पूर्णतः संतुष्टि प्रदान कर दी। ऐसे वक्ता पर रसस्वरूप श्री राम जी महाराज प्रसन्न हो जाते हैं तथा उसे अपने प्राणों का प्राण समझ कर अतिशय प्यार करते हैं।———

राम काज सो सब विधि तेरे । कीन्हेव भाव भरो हिय हेरे ॥
भावै तेहिं समान नहिं कोऊ । राखहिं राम हृदय महँ मोऊ ॥
प्रेम लक्षणा भक्तिहिं पाई । जावै आनँद सिन्धु समाई ॥

———भगवत्कथा का ऐसा वक्ता भाव में भर, हृदय में विचार कर सभी प्रकार से श्री राम जी महाराज के कार्य को पूर्ण कर दिया, भगवान को उसके समान प्रिय अन्य कोई भी नहीं लगता, उसे श्री राम जी महाराज अपने हृदय में वसाये रखते हैं तथा वह प्रभु श्री राम जी महाराज की प्रेम लक्षणा भक्ति को प्राप्त कर आनन्द के सागर मे अस्त हो जाता है।

दो०—रसमय बनि रस धाम वसि, सत साकेत सुहाय ।
राम सेव सहचर्य लहि, सुख विश्रान्तिहिं पाय ॥१०९॥

वह भगवत्कथा वाचक रस स्वरूप हो श्री राम जी महाराज के दिव्य धाम सुन्दर सत्य लोक "साकेत" में निवास करता हुआ सुशोभित होता है तथा श्री राम जी महाराज की सेवा और साहचर्य प्राप्त कर परम सुख व विश्राम प्राप्त करता है।

जो यह कथा मानि परतीती। सुनिहैं श्रद्धा सहित सुप्रीती ॥
भव रस भगिहैं प्रभु रस पागी । होइहैं सो सब परम विरागी ॥

जो जन इस "श्री प्रेम रामायण" की कथा में महा विश्वास मानकर श्रद्धा और प्रेम पूर्वक इसका श्रवण करेंगे उनके मन से संसारी आनन्द दूर हो जायेगा और वे भगवद्रस में डूबकर परम विरक्त हो जायेंगे।

प्रेम लक्षणा भक्ति भलाई । पइहैं अवशि कहत गोहराई ॥
बसिहैं राम धाम पुनि सोऊ। चखिहैं अमृत प्रभु सँग होऊ ॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–यह बात मैं पुकार कर कहता हूँ कि– वे अवश्य ही परम कल्याणप्रद प्रेम–लक्षणा भक्ति प्राप्त करेंगे। पुनः वे जन श्री राम जी महाराज के परम धाम "श्री साकेत लोक" में निवास करते हुये भगवान का सानिध्य प्राप्तकर अमृत का आस्वाद ग्रहण करेंगे।–––

दुर्लभ देव शान्ति सुख पाई। अन्त बनै अमृत रस भाई॥
को न सुनिय अस जानि जहाना। आतमहन बिनु अघहिं अघाना॥

–––हे भाई! वे जन देवताओं को भी अलभ्य शान्ति और सुख संप्राप्त कर अन्त में स्वयं अमृत स्वरूप बन जायेंगे। अतएव इस श्री प्रेम रामायण जी का ऐसा माहात्म्य अपने हृदय में समझकर संसार में आत्मघाती और पापों में डूबे हुए जीवों के अतिरिक्त कौन है जो इसका श्रवण नहीं करेगा अर्थात् सभी इसका प्रेम पूर्वक श्रवण करेंगे।

जो सकाम नर करि विश्वासा। सुनिहैं सादर पइहैं आसा॥
पुत्र काम प्रिय पुत्रहिं पाई। जो यह कथा सुनिय लौ लाई॥

जो लोग लौकिक कामनाओं की पूर्ति के लिए इस "श्री प्रेम रामायण" जी का आदरपूर्वक विश्वास कर श्रवण करेंगे वे भी अपनी मनोभिलाषा की प्राप्ति करेंगे। पुत्र की कामना वाले जो जन इस "श्री प्रेम रामायण जी" की कथा को ध्यानपूर्वक सुनेंगे वे प्रिय पुत्र की प्राप्ति करेंगे।

दो०–यश कामी यश कहँ लहै, धन कामी बहु द्रव्य।
मित्र काम मित्रहिं लहै, सुनहिं कथा जो भव्य॥११०॥

इस परम सुन्दर "श्री प्रेम रामायण" की कथा को श्रवण करने वाले, कीर्ति कामी सुन्दर कीर्ति प्राप्त करेंगे, सम्पत्ति की इच्छा वाले प्रचुर सम्पत्ति प्राप्त करेंगे तथा मित्र की कामना वाले सच्चे मित्र की प्राप्ति करेंगे।–––

नारि काम नारिहिं कहँ पाई। निज अनुरूप सती छवि छाई॥
स्वर्ग काम स्वर्गहिं अपनाई। सुख भोगै बहु काल महाई॥

–––स्त्री की कामना करने वाले अपने अनुरूप सुन्दर व सती स्त्री प्राप्त करते हैं, स्वर्ग की इच्छा रखने वाले स्वर्ग को प्राप्त कर वहाँ बहुत समय तक महान सुखों का उपभोग करते हैं।

ग्रह पीड़ा दुर्दैन्य नसावै। जो यह कथा कपट तजि गावै॥
रोग हरण दुष्टादि निवारक। दैवी गुणहिं हृदय विस्तारक॥

जो कोई इस "श्री प्रेम रामायण" की कथा को कपट छोड़कर गायन करता है तो ये ("श्री प्रेम रामायण") उसकी ग्रहादिक पीड़ा तथा दैन्यता को दूर कर देती है। यह "श्री प्रेम रामायण" रोगों का हरण करने वाली, दुष्टों का दलन करने वाली तथा दैवी गुणों का हृदय में विस्तार करने वाली है।

अति अरिष्ट नासनि प्रभु गाथा। शान्तिमयी कर देय सनाथा॥
विजय विभूति तेज विस्तारी। श्री यश ज्ञान विराग पसारी॥

यह प्रभु श्री राम जी महाराज की प्रिय लीला (श्री प्रेम रामायण) समस्त आपदाओं का नाश

करने वाली तथा शान्ति स्वरूप बना कर सनाथ कर देने वाली है। यह विजय, वैभव एवं तेज का विस्तार कर, श्री, यश, ज्ञान और वैराग्य का हृदय में प्रसार करने वाली है।

सुनहिं नेम करि आनन्द दायी। अवशि त्रितापहिं देय मिटाई ॥
राम कथा ते जो जो चहहीं। सुनि सप्रेम नर सो सो लहहीं ॥

यह आनन्द प्रदायिनी कथा (श्री प्रेम रामायण) नियमपूर्वक सुनने वाले जनो के तीनों तापों (दैहिक, दैविक एवं भौतिक) को निश्चित ही मिटा देती है। श्री राम जी महाराज की पावन चरितावली (श्री प्रेम रामायण) से जो कोई, जो भी कामना करते हैं वे मनुष्य इसका प्रेम पूर्वक श्रवण कर सभी कुछ प्राप्त कर लेते हैं।

दो०–कामधेनु सुरतरु सरिस, रामकथा जग माहिं।
कहत सुनत मन काम दै, सुखी करत सब काहिं ॥१११॥

प्रभु श्री राम जी महाराज का प्रेम चरित्र (श्री प्रेम रामायण) इस संसार में कामधेनु तथा कल्पवृक्ष के समान है जो कहने और सुनने मात्र से मन की इच्छाओं को प्रदान कर सभी को सुखी करने वाला है।

सुख सम्पति इत पावहिं लोगा। उत उर बढ़ रघुवर रति योगा ॥
रस रस हियहिं अकाम बनाई। प्रेम धार दिव देय बहाई ॥

इस श्री प्रेम रामायण जी के पढ़ने और सुनने से सज्जन वृन्द, यहाँ तो सुख और सम्पति प्राप्त करते ही हैं, वहाँ उनके हृदय में भी श्री राम जी महाराज से प्रेम और मिलन का संयोग वृद्धिंगत होता जाता है। ये "श्री प्रेम रामायण जी" धीरे–धीरे हृदय को निष्काम बनाकर दिव्य प्रेम की धारा प्रवाहित कर देती हैं।

राम धाम दै अन्तहिं माहीं। अमृत करै कथा सब काहीं ॥
प्रेम कथा रघुनन्दन केरी। महा योग जानहि मुनि टेरी ॥

यह श्री राम कथा (श्री प्रेम रामायण) जीवन के अन्त में श्री राम जी महाराज का परम धाम 'परम पद' प्रदान कर सभी जीवों को अमृत स्वरूप बना देती है। मुनियों ने इसका अनुभव कर उद्घोषणा की है कि– श्री राम जी महाराज की प्रेम कथा यह "श्री प्रेम रामायण" श्री राम जी महाराज के प्राप्ति का महा–योग है।

वर विज्ञानमयी प्रिय गाथा। पद पद झलक राम रघुनाथा ॥
महा यज्ञ प्रभु चरित्र सुप्रेमा। कथन श्रवण नित करत सुक्षेमा ॥

यह प्रभु श्री राम जी महाराज का प्रिय चरित्र (श्री प्रेम रामायण) श्रेष्ठ विज्ञान स्वरूप है जिसके प्रत्येक पद में श्री राम जी महाराज की झलक दिखाई पड़ती है। प्रभु श्री राम जी महाराज का यह सुन्दर प्रेम चरित्र (श्री प्रेम रामायण) महान यज्ञ स्वरूप है जिसके कहने और सुनने से नित्य ही कल्याण की प्राप्ति होती है।

राम कथा करि परम विरागी। भव सो पार करै हित लागी॥
राम चरित वर वेदन सारा। सुनिय छोड़ सब ग्रन्थ अधारा॥

श्री राम जी महाराज की यह लीला (श्री प्रेम रामायण) जीवों को परम वैराग्य प्रदानकर उनके चरम हित के लिये उन्हे संसार से पार कर देती है। श्री राम जी महाराज का चरित्र ॑श्री प्रेम रामायण) समस्त वेदों का सार है अस्तु सभी कुछ छोड़कर इस ग्रन्थ का आश्रय ले इसे श्रवण कनना चाहिए।

दो०—राम कथा रति राम की, पूजा गिनहु महान।
अमित तीर्थमय पावनी, पावन पावन मान॥११२॥

श्री राम जी महाराज की प्रेम गाथा (श्री प्रेम रामायण) में प्रेम करना ही उनकी महान पूजा है, ऐसा समझना चाहिये। इसे असीमित तीर्थो के समान पवित्र तथा पावन को भी पावनता प्रदान करने वाली जानना चाहिये।

महा भक्ति लीला अनुरागा। प्रेमाचार्य कहैं रस पागा॥
महा धर्म रघुपति गुण गाना। कथन श्रवण जो करैं सुजाना॥

भगवान की लीला (श्री प्रेम रामायण) में अनुराग होना ही महान भक्ति है ऐसा भगवद्रस मग्न प्रेमाचार्य कहते हैं। श्री राम जी महाराज के गुणों (श्री प्रेम रामायण) का गायन ही परम धर्म है, जो कोई इसे कहते और सुनते हैं वे ही परम सुजान हैं।

पर सुकर्म सिय राम चरित्रा। कहत सुनत मन करै पवित्रा॥
राम कथा रति प्रेम निशानी। प्रेमिहिं कथा सत्य सुख दानी॥

श्री सीताराम जी के प्रेम चरित्र (श्री प्रेम रामायण) ही सुन्दर श्रेष्ठ कर्म हैं, जो कथन व श्रवण करने से मन को पवित्र करने वाले हैं। श्री राम जी महाराज की कथा (श्री प्रेम रामायण) में प्रेम (अनुराग) होना ही भगवत्प्रेम की पहचान है, प्रेमियों के लिए भगवत्कथा ही सच्चे सुख की प्रदायिका है।

राम कथा महँ प्रेम न होई। तो कत राग करै जग छोई॥
कथा अहारी जो बड़ भागी। सोइ कहावत अति अनुरागी॥

यदि श्री राम जी महाराज की लीला (श्री प्रेम रामायण) में प्रेम नहीं है तो वह किस प्रकार से संसारी आसक्ति को निस्सार बनायेगी अर्थात् वह संसारी आसक्ति को किस प्रकार समाप्त कर पायेगी। जो बड़भागी जन भगवान की लीला का ही आहार करने वाले हैं वे ही यथार्थ में अत्यन्त अनुरागी कहलाते हैं।

शिव सनकादि ब्रह्म शुक नारद। अरु वर नारि शिवा शुचि शारद॥
राम कथा कर करहिं अहारा। तिन सों बड़ नहिं जगत मझारा॥

भगवान श्री शिव जी, श्री सनक, श्री सनन्दन, श्री सनातन व सनत कुमार जी, श्री ब्रह्मा जी, श्री शुकदेव जी, श्री नारद जी, नारियों में श्रेष्ठ श्री पार्वती जी तथा पवित्र श्री सरस्वती जी आदि सभी

श्री राम जी महाराज की कथा का ही आहार करते हैं जिसके प्रभाव से संसार में उनसे श्रेष्ठ कोई अन्य नहीं है।———

दो०—औरहु जो परमार्थ पथ, जग महँ भये प्रवीन ।
राम कथा रति हिय किये, जिमि जग जल सो मीन ॥११३॥

———इनके अतिरिक्त इस संसार में अन्य जो भी परमार्थ पथ प्रवीणजन हुए हैं उन्होंने भी अपने हृदय में श्री राम जी महाराज की कथा से उसी प्रकार प्रेम किया है जैसे संसार में मछली जल से करती है।

या महँ आपन अनुभव भाई । दृढ़ निश्चय जो जिय महँ छाई ॥
कहहुँ सुनाय सुजन सुन लेहू । श्रवण मनन कर पथ पग देहू ॥

हमारे सद्‌गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–हे भाइयो! इस "श्री प्रेम रामायण" में मेरा आत्म अनुभव व मेरे हृदय का दृढ़ निश्चय है, अतः हे सज्जन वृन्द! आप सुनिये, मैं सभी को सुनाकर कह रहा हूँ कि– आप सभी इस "श्री प्रेम रामायण" का श्रवण एवं मनन करते हुये इसके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण कीजिये।

दूसर की दूसर गति जानै । निज विचार सब कोउ बखानै ॥
तैसहिं आपन सुखद विचारा । वेद पुराण संत निरधारा ॥

दूसरे की स्थिति को तो दूसरे लोग ही समझे परन्तु अपना अपना विचार तो सभी कहते हैं उसी प्रकार मैंने भी वेद, पुराण व सन्तों के द्वारा निर्धारित किया हुआ सुख प्रदायक अपना यह विचार (श्री प्रेम रामायण)———

सेवा महँ सब जीवन केरे । प्रगट करहुँ लेवहुँ हिय हेरे ॥
बज्र लीक यह बात अपेली । करि कुतर्क नहिं जाय ढकेली ॥

———मैं सभी जीवों की सेवा में प्रगट कर रहा हूँ, इसे आप सभी हृदय में विचार कर ग्रहण कर लीजिये क्योंकि यह मेरी बात पत्थर की लकीर के समान अमिट है जो व्यर्थ वाद–विवाद के द्वारा नहीं मिटाई जा सकती कि———

अघटित चहे वरुक घटि जावै । शुभ सिद्धान्त न कोउ हटावै ॥
आदि अन्त सो रहित स्वधर्मा । जाहि सनातन कहैं सुकर्मा ॥

————असम्भव चाहे भले ही सम्भव हो जायँ परन्तु कल्याण–प्रद सिद्धान्तों को कोई नहीं हटा सकता। यह श्री प्रेम रामायण प्रारम्भ और अन्त से रहित सनातन धर्मानुरूप व सुन्दर कर्म से परिपूर्ण है।———

दो०—अनुपम अकथ अगाध सुख, जीवहिं वितरन वार ।
श्रुति सिद्धान्त निचोर है, सब सारन को सार ॥११४॥

———यह ("श्री प्रेम रामायण") जीवों को अनुपमेय, अकथनीय तथा असीमित सुख वितरित

करने वाली, श्रुति–सिद्धान्तों का सारांश तथा सभी शास्त्रों की सारभूता है।

जहाँ राम के ललित ललामा। नाम रूप लीला अरु धामा॥
जहाँ भक्त प्रेमी तेहिं केरे। प्रेम मत्त जग फेरि न हेरे॥

जहाँ श्री राम जी महाराज के सुन्दर चारों तत्वों ‍(नाम, रूप, लीला और धाम) के प्रति अनुरक्ति व आसक्ति है, जहाँ उनके प्रेम में मतवाले बने हुये "प्रेमी–भक्त" निवास करते हैं जिन्होंने संसार की ओर से पीठ देकर पुनः उसकी ओर उलट कर नहीं देखा।

जहाँ राम सिय सुखद चरित्रा। भाव भरा जन करन पवित्रा॥
वैष्णव धर्ममयी शुभ चाली। जहाँ विराजति छोड़ि कुचाली॥

जहाँ श्री सीताराम जी के जन–जन को पवित्र करने वाले, भाव से भरे हुए सुख प्रदायक चरित्रों में अनुराग हैं, जहाँ समस्त दुराचरणों को छोड़कर श्री वैष्णव धर्मानुरूप शुभ आचरण विराजते हैं।

प्रेम योग रत जगत विरागी। जहँ अकामता प्रभु रस पागी॥
राम सीय विज्ञान महाना। जहाँ स्वामि सेवा सुख साना॥

जहाँ मनुष्य संसार से विरक्त होकर सदैव प्रेमयोग में ही लगे रहते हैं तथा निष्काम भाव पूर्वक भगवान के प्रेम रस में पगे रहते हैं, जहाँ सभी के स्वामी, महान व विज्ञान–स्वरूप श्री सीताराम जी की सेवा के सुख में ही सुख प्राप्त होता है।

वेद विरोध जहाँ है नाहीं। विषय वासना नहिं मन माहीं॥
धर्म प्रपत्ति जहाँ सिरमौरा। रक्षक राम तहाँ हर ठौरा॥

जहाँ वेदों का किंचित भी विरोध नहीं है, जहाँ सांसारिक विषयों की वासनाएँ मन में नहीं रहतीं और जहाँ शिरोभूषण श्रेष्ठ प्रपत्ति धर्म का ही अनुष्ठान होता है वहाँ सर्वत्र, सदैव श्री राम जी महाराज रक्षा करने वाले हैं।

छं०– हर ठौर रक्षक राम तहँ, निज रक्ष्य गुनि सत जानियहिं।
भय नाहिं कालहुँ केर वहँ, अमृत चतुर्दिशि मानियहिं॥
भलि भूति श्री यश वश विजय, ध्रुव सत्य तहँ भ्रम नेक नहिं।
बल तेज सद्गुण ज्ञान वर, वैराग राजत बिन श्रमहिं॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–आप सभी सत्य मानिये कि– उपरोक्त सभी स्थानों में, जीवों की रक्षा, अपना रक्ष्य समझकर श्री राम जी महाराज सदा करते हैं, वहाँ काल का भी डर नहीं है अपितु वहाँ चारो दिशाओं में अमृत ही अमृत समझना चाहिए। वहाँ सुन्दर वैभव, श्री, यश और विजय आदि सभी गुण वशीभूत रहते हैं, मेरी यह बात ध्रुव सत्य है इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है। बल व तेज आदि सद्गुण, ज्ञान, वैराग्य आदि साधन वहाँ बिना परिश्रम ही निवास किये रहते हैं।

सियराम पूरण प्रेम रस, छन छनहिं छलकत नित तहाँ।
प्रभु प्यार अमृत नित्य मिलि, कवि कौन वरणै रस महाँ ॥
नित धाम अक्षर सुलभ पुनि, आनँद परम रसिकेश सह ।
सत राम हर्षण दास भनि, सिय राम किरपा कोर चह ॥

श्री सीताराम जी का पूर्ण प्रेम–रस वहाँ नित्य, प्रत्येक क्षण छलकता रहता है तथा प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रेम का अमृत नित्य प्राप्त होता रहता है, उसके आनन्द का वर्णन कौन कवि कर सकता है। पुनः वहाँ नित्य रसिकों के स्वामी श्री राम जी महाराज के साथ परमानन्द व अक्षर धाम "दिव्य साकेत" ही सुलभ रहता है। मैं (आचार्य महा प्रभु) सत्य कहता हूँ कि– मुझे श्री सीताराम जी के कृपा दृष्टि की ही एकमात्र कामना है।

सो०–पावौं कृपा प्रसाद, करहुँ दण्डवत अमित प्रभु ।
अगतिन हरण विषाद, अत तत्र मम कोउ नहिं ॥११५॥

हे मेरे स्वामी श्री राम जी महाराज! मैं आपको अनन्त दण्डवत प्रणाम करता हूँ, मुझे आपकी कृपा का प्रसाद प्राप्त हो, आप तो अगति जीवों (जिनका कोई आश्रय न हो) के दुखों का हरण करने वाले हैं मेरा यहाँ और वहाँ (इस संसार व परम धाम में) कोई भी अपना नहीं है।

कहाँ जाउँ कहँ करहुँ पुकारा । प्रभु बिन कोऊ नाहिं अधारा ॥
साधन हीन पाप प्रिय देही । कौन उधारै तुम बिन एही ॥

हे मेरे स्वामिन् श्री राम जी महाराज्! मैं कहाँ जाऊँ? कहाँ अपनी प्रार्थना निवेदित करूँ? क्योंकि आपके अतिरिक्त मेरा कोई भी सहारा (आश्रय) नहीं है। सभी साधनों से रहित इस पाप–प्रिय शरीरधारी (मुझ दास) का आपके बिना कौन उद्धार कर सकता है।–––

लोक ठाँव परलोक भरोसा । मो कहँ नाहिं कौन कत पोसा ॥
पालहिं पतितहिं पाप प्रनासी । पाहि पाहि पावहुँ परकासी ॥

–––मुझे तो न संसार में ठिकाना (स्थान) है और न ही परलोक (परम–धाम) का भरोसा है। अतएव मेरा कोई क्यों पालन पोषण करेगा? हे नाथ! आप इस पतित के पापों को विनष्ट कर इसका पालन कीजिए तथा मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये जिससे मैं आपके परम प्रकाश को प्राप्त कर सकूँ।

प्रेम सुधा रस भोजन देहीं । दरशन जल दै तृप्त करेहीं ॥
निज एकान्तिक मृदु तन सेवा । देहिं वसन रघुनन्दन देवा ॥

आप मुझे अपने "प्रेमामृत रस" का आहार प्रदान करें तथा अपना दर्शन रूपी जल देकर मेरी प्यास को तृप्त कर दें। हे रघुनन्दन श्री राम जी महाराज! आप मुझे अपने परम सुकोमल दिव्य देह की एकान्तिक सेवा रूपी वस्त्र प्रदान करें।

भूषण साधु स्वभाव पिन्हाई । निज मन देवैं वास सुहाई ॥
मैं अनाथ प्रभु पाइ सनाथा । रहहु नित्य सुनियहिं रघुनाथा ॥
दीन हीन पाले रघुराई । रही दीन बन्धुहुँ बिरदाई ॥

आप मुझे साधु स्वभाव रूपी आभूषण पहना कर अपने मन में सुन्दर निवास प्रदान करें। हे रघुकुल के स्वामी! सुनिये, सभी प्रकार से अनाथ मैं, आपको प्राप्त कर नित्य सनाथ हो जाऊँगा। हे रघुकुल नरेश श्री राम जी महाराज! आपने तो दीन–हीनों का सदैव ही पालन किया है, अतः मेरा भी पालन कीजिये जिससे आपके दीन–बन्धुत्व की विरद–गाथा बनी रहे।

छं०– रह दीन बन्धुहिं की विरद, जो पै प्रभो मोहि पालिहौ ।
बड़ पतित जो पै मोहि कहौं, पतितन उधारे काल्हिहौ ॥
प्रभु पाहिं मोकहँ जनि तजहु, तजतहिं तुरत नशि जाउँगो ।
हर्षण तुम्हारे है शरण, लह प्यार या ठुकराउँगो ॥

हे अनाथों के नाथ श्री राम जी महाराज! यदि आप मेरा पालन कर लेंगे तो आपके दीन–बन्धु नाम की विरदावली शाश्वत बनी रहेगी। यदि आप मुझे अतिशय पतित कहते हैं तो आपने पूर्व में बहुत से पतित जीवों का उद्धार किया है। अतः हे नाथ! आप मेरी रक्षा कीजिये, मेरा त्याग मत कीजिये क्योंकि मैं आपके त्याग करते ही शीघ्र विनष्ट हो जाऊँगा। हे नाथ! यह दास (आचार्य महा प्रभु) तो आपकी शरण है, अब चाहे इसे आपका प्रेम प्राप्त हो या दास आपके द्वारा ठुकरा दिया जाये।

सो०–जिय के जाननहार, अशरण निर्बल हीन गुन ।
दीन दुसह दुख धार, बहा जात राखहु प्रभो ॥११६॥

हे मेरे हृदय की जानने वाले स्वामी! आप मुझे सभी प्रकार से आश्रय रहित, निर्बल, दीन, हीन एवं दुख–धार में बहता हुआ समझकर मेरी रक्षा कीजिये।

दो०–प्रेम स्वरूपा जानकी, प्रेमिन सुख दातार ।
मम त्रिकरण प्रभु प्रेम महँ, रमैं कृपा सुखसार ॥११७क॥

हे प्रेम की साक्षात् विग्रहा व प्रेमी–जनों को सुख प्रदान करने वाली श्री जानकी जी! आप मुझ दास पर अपनी ऐसी महती कृपा कीजिये कि– मैं सुखों के सार–भूत श्री राम जी महाराज के प्रेम में त्रिकरण (मन, वचन और कर्म से) अनुरक्त बना रहूँ।

प्रेम रूप रघुनाथ प्रभु, प्रेमिन जीवन प्रान ।
सीय सहित तव प्रेम महँ, निशि दिन रहहुँ भुलान ॥ख॥

हे प्रेमियों के जीवन, प्राण एवं प्रेम विग्रह रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज! मेरी यही प्रार्थना है कि– आपकी वल्लभा श्री सिया जू सहित आपके प्रेम में मैं, दिन–रात भुलाया रहूँ।

श्लोक– प्रेम रामायणमिदं, सरसं प्रेम प्रदायकम् ।
कथितं श्री सौमित्रेण, प्रेमोदगारः पदे पदे ॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– रस से परिपूर्ण, प्रेम प्रदान करने वाली यह "श्री प्रेम रामायण" सुमित्रा नन्दन श्री लक्ष्मण कुमार जी के द्वारा बखान की गयी है जिसका प्रत्येक पद प्रेम के अन्तर्भावों से परिपूर्ण है।

आञ्जनेयो महा भागी, श्रुत्वा प्रेमामृतंत्विदम् ।
हर्षेण महता युक्तो, ननन्दाश्रु विलोचनः ॥२॥

इस प्रेमामृत स्वरूप "श्री प्रेम रामायण जी" को महाभाग अञ्जनी नन्दन श्री हनुमान जी ने अतिशय हर्ष प्रपूरित आनन्दाश्रु विमोचित करते हुए श्रवण किया है।

भव रोग हरं रम्यं, सुधा स्वादकरं प्रियम् ।
निर्मलानन्ददं श्रेष्ठं, भेषजं मृत जीवनम् ॥३॥

यह श्री प्रेम रामायण संसार रूपी रोग (भव–रोग) को हरण करने वाली, सुन्दर, प्रिय अमृत–स्वाद से परिपूर्ण, निर्मल आनन्द प्रदायिनी तथा मरण धर्मा जीवों के लिए श्रेष्ठ औषधि है।

गुरुवर्य प्रसादेन, आत्म बुद्धि प्रसादजम् ।
चरितं पूर्तिमगमत, सीताराम प्रसादतः ॥४॥

श्री गुरुदेव भगवान के कृपा प्रसाद से आत्मा व बुद्धि का प्रसाद स्वरूप यह प्रभु चरित्र "श्री प्रेम रामायण" श्री सीताराम जी की कृपा से पूर्णता को प्राप्त हुआ।

प्रेम रामायणाम्भोधौ, विक्रीड़तिच यो नरः ।
परमानन्दमाप्नोति, कृपया सीतारामयोः ॥५॥

जो मनुष्य इस श्री प्रेम रामायण रूपी महा सागर में अवगाहन करेंगे वे श्री सीताराम जी की कृपा से परमानन्द की प्राप्ति करेंगे।

प्रस्थानख्यमिदं काण्डं, राम धाम प्रदायकम् ।
सादरेण मया दत्तं, स्वीयं स्वीकुरु राघव ॥६॥

श्री राम जी महाराज के परम धाम को प्रदान करने वाला, श्री प्रेम रामायण जी का यह प्रस्थान नामक काण्ड, आदर पूर्वक मेरे द्वारा आपको समर्पित है, हे रघुनन्दन श्री राम जी महाराज आप अपनी वस्तु को स्वयमेव स्वीकार कीजिये।

श्री सीतारामाभ्यां समर्पितम्

नवाह्न परायण नौवाँ विश्राम,
मास परायण तीसवाँ विश्राम

इति श्रीमद् प्रेम रामायणे, प्रेम रस वर्षणे, जन मानस हर्षणे, सकल कलि कलुष विध्वंसने प्रस्थानो नाम सप्तमः काण्ड

यह श्रीमद् प्रेम रामायण जी का प्रेमानन्द वर्षण कारी, सर्व जन हृदय हर्ष वितरण कारी तथा सकल कलि कालुष्य विध्वंसन कारी, प्रस्थान नाम का सप्तम (अन्तिम) काण्ड समाप्त हुआ।

—— ::: ——

* अनंत श्री विभूषित श्रीरामहर्षण दासजी महाराज का अनमोल भक्ति साहित्य *

१. वेदान्त दर्शन (ब्रह्मसूत्र व्याख्या)
२. श्रीप्रेमरामायण (पंचम संस्करण) सजिल्द
३. औपनिषद ब्रह्मबोध (द्वितीय संस्करण)
४. गीता ज्ञान (द्वितीय संस्करण)
५. रस चन्द्रिका (द्वितीय संस्करण)
६. प्रपत्ति-प्रभा स्तोत्र
७. विशुद्ध ब्रह्मबोध
८. ध्यान वल्लरी
९. सिद्धि स्वरूप वैभव (द्वितीय संस्करण)
१०. सिद्धि सदन की अष्टयामी सेवा
११. लीला सुधा सिन्धु (तृतीय संस्करण)
१२. चिदाकाश की चिन्मयी लीला
१३. वैष्णवीय विज्ञान (द्वितीय संस्करण)
१४. विरह वल्लरी
१५. प्रेम वल्लरी (द्वितीय संस्करण)
१६. विनय वल्लरी (तृतीय संस्करण)
१७. पंच शतक (द्वितीय संस्करण)
१८. वैदेही दर्शन
१९. मिथिला माधुरी
२०. हर्षण सतसई (द्वितीय संस्करण)
२१. उपदेशामृत (द्वितीय संस्करण)
२२. आत्म विश्लेषण
२३. राम राज्य
२४. सीताराम विवाहाष्टक
२५. प्रपत्ति दर्शन (द्वितीय संस्करण)
२६. सीता जन्म प्रकाश
२७. लीला विलास
२८. प्रेम प्रभा
२९. श्रीलक्ष्मीनिधि निकुंज की अष्टयामीय सेवा
३०. आत्म रामायण
३१. मातृ स्मृति
३२. रस विज्ञान

साथ ही -
श्रीप्रेमरामायण टीका-सहित (पंचम संस्करण) सजिल्द - टीकाकार श्रीमति सिया सहचरीजी

प्रकाशन विभाग श्रीराम हर्षण कुंज, नया घाट, परिक्रमा मार्ग, श्रीअयोध्या, जिला-साकेत (उ.प्र.)